सौन्द्रान्तिकी

संपादक

डॉ॰ माला मिश्र

प्रोफेसर, अदिति महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ॰ एस. लिंगमूर्ति

असिस्टेंट प्रोफेसर, कर्नाटक केन्द्रीय विश्वविद्यालय, कलबुर्गी

अलका पब्लिकेशन्स

220, पॉकेट-5, मयूर विहार, फेज-I, दिल्ली-110091

वर्ष : 17 अंक : 2 ❑ अप्रैल–जून, 2024

सैद्धान्तिकी

संपादकीय सम्पर्क:

220, पॉकेट–5, मयूर विहार, फेज–1,
दिल्ली–110091
फोन : 011–40564514, 011–22753916, 8510050610
e-mail : saidhantiki.journal@gmail.com

शाखा कार्यालय:

502, सरस्वती टॉवर, कुसुमपुरम, पटना–801503
फोन : 6201418851

सम्पादकीय

देश में पिछले कुछ समय से बढ़ती जीएसटी प्राप्तियां चर्चा का विषय रही हैं। 1 मई 2024 को जारी आंकड़ों के मुताबिक, देश में जीएसटी प्राप्तियां पहली बार रु. 2 लाख करोड़ के आंकड़े को पार कर रु. 2.10 लाख करोड़ पर पहुंच गई हैं। पिछले साल इसी महीने के मुकाबले इसमें 12.4% की बढ़ोतरी है। रिफंड के बाद जीएसटी संग्रह अप्रैल 2024 में रु. 1.92 लाख करोड़ पर है, जो अप्रैल 2023 के मुकाबले 15.5% की बढ़ोतरी दर्शाता है। वैसे तो जीएसटी की शुरुआत से ही इसकी प्राप्तियां लगातार बढ़ रही हैं, लेकिन वित्त वर्ष 2024 में जीएसटी प्राप्तियां रु. 20.18 लाख करोड़ हैं, जो वित्त वर्ष 2023 के रु. 18.1 लाख करोड़ से 11.7% ज्यादा है। गौर करने वाली बात यह है कि वित्त वर्ष 2023 की प्राप्तियां वित्त वर्ष 2022 के मुकाबले 22% ज्यादा थीं।

जुलाई 2017 में देश के अधिकांश अप्रत्यक्ष करों (वस्तुओं और सेवाओं पर कर) को एक साथ मिला दिया गया और उसकी जगह जीएसटी लागू कर दिया गया। यह जीएसटी केंद्र और राज्यों के बीच बराबर-बराबर बांटा जाता है। इसके अलावा वित्त आयोग की सिफारिश के अनुसार केंद्र द्वारा लगाए गए करों का एक निश्चित प्रतिशत (जो वर्तमान में 42% है) राज्यों को हस्तांतरित करने का प्रावधान है। इसके अनुसार भी जीएसटी का बड़ा हिस्सा राज्यों को मिलता है, जबकि केंद्र को जीएसटी का एक बड़ा हिस्सा नहीं मिलता।

अगर हम जीएसटी के विभिन्न भागों को समझने की कोशिश करें तो अप्रैल 2024 में कुल 2.1 लाख करोड़ रुपये की जीएसटी प्राप्तियों में से केंद्रीय जीएसटी 43,846 करोड़ रुपये, राज्य जीएसटी 53,538 करोड़ रुपये, एकीकृत जीएसटी 99,623 करोड़ रुपये है, जिसमें से 37,826 करोड़ रुपये आयातित वस्तुओं पर जीएसटी से प्राप्त हो रहे हैं। इसके अलावा 13,260 करोड़ रुपये सेस के रूप में प्राप्त हुए, जिसमें से 1,008 करोड़ रुपये आयातित वस्तुओं पर सेस से प्राप्त हुए।

जीएसटी वस्तुओं और सेवाओं पर लगाया जाता है। इसकी खासियत यह है कि यह उत्पादन प्रक्रिया में हर मूल्य संवर्धन पर लगाया जाता है।

यह स्वाभाविक है कि जैसे-जैसे देश में वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन या आयात बढ़ता है, जीएसटी प्राप्तियां बढ़ती हैं, भले ही जीएसटी दर समान रहे। कोविड के बाद पिछले कुछ वर्षों में, जीडीपी वृद्धि न केवल बेहतर हुई है, बल्कि भारत लगातार बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में सबसे तेजी से बढ़ने वाली अर्थव्यवस्था बना हुआ है। वित्त वर्ष 22 में जीडीपी वृद्धि 9.1%, वित्त वर्ष 23 में 7% दर्ज की गई थी। अग्रिम अनुमानों के अनुसार, वित्त वर्ष 24 के लिए जीडीपी वृद्धि 7.6% रहने का अनुमान लगाया गया है। इस वृद्धि में सभी क्षेत्रों का योगदान रहा। पिछले कुछ वर्षों में औद्योगिक विकास की दर बढ़ी है। औद्योगिक उत्पादन सूचकांक अप्रैल 2021 के 126.1 की तुलना में 24 जनवरी तक 153.0 तक पहुंच गया है। सेवा क्षेत्र में भी उल्लेखनीय वृद्धि देखी जा रही है

चूंकि जीएसटी वस्तुओं की कीमत पर लगाया जाता है, इसलिए यह न केवल वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में वृद्धि के कारण बढ़ता है, बल्कि मुद्रास्फीति यानी कीमतों में वृद्धि के कारण भी बढ़ता है। देश में मुद्रास्फीति की दर भी पिछले तीन वर्षों में अधिक रही है। यह वृद्धि घरेलू कारकों के कारण कम और वैश्विक रुझानों के कारण अधिक रही है। अमेरिका, यूरोप समेत दुनिया के अधिकांश देश महंगाई से जूझ रहे हैं। लेकिन कारण जो भी हो, महंगाई भी जीएसटी में कुछ वृद्धि का कारण बन रही है।

भारत की अर्थव्यवस्था का एक बड़ा हिस्सा अनौपचारिक रहा है, और कुछ हद तक आज भी ऐसा ही है। लेकिन पिछले कुछ समय से कुछ प्राकृतिक कारणों से और कुछ हद तक जीएसटी लागू होने के कारण अर्थव्यवस्था का औपचारिकीकरण बढ़ा है। यह समझना होगा कि उत्पादन में मध्यवर्ती वस्तुओं पर लगाए गए जीएसटी का लाभ तभी मिल सकता है, जब उत्पादन प्रक्रिया में शामिल सभी भागीदार जीएसटी के लिए पंजीकृत हों। इस कारण से भी अर्थव्यवस्था का औपचारिकीकरण बढ़ा है, जिसके परिणामस्वरूप जीएसटी प्राप्तियां बढ़ी हैं।

यह देखा गया है कि जीएसटी प्राप्तियों में आयात पर लगाए गए टैरिफ और उपकर भी शामिल हैं। अप्रैल 2024 में आयात से उपकर सहित कुल जीएसटी प्राप्तियां रु. 38,834 करोड़ हैं। अगर यह कहा जाए कि बढ़ता आयात भी जीएसटी में वृद्धि

का एक कारण है, तो आंकड़ों से इसकी पुष्टि नहीं होती है। यह ध्यान देने योग्य है कि अप्रैल 2024 में आयात पर करों से जीएसटी प्राप्तियां जहां रु. 38,834 करोड़ थीं, वहीं पूरे वित्त वर्ष 24 में आयात से औसत जीएसटी (उपकर सहित) रु. 41,327 करोड़ प्रति माह था। इससे पहले वित्त वर्ष 23 में आयात से औसत जीएसटी (उपकर सहित) रु. 40,196 करोड़ प्रति माह था।

वैसे तो जीएसटी प्रणाली को अपनाने के बाद से देश में जीएसटी की प्राप्तियों में काफी उथल-पुथल हुई। लेकिन जीएसटी प्राप्तियां लगातार बढ़ती रहीं और काफी वृद्धि भी देखी जा रही है। वित्त वर्ष 2024 में जीएसटी प्राप्तियों में वृद्धि 11.7% थी, वित्त वर्ष 2023 में यह 22% और वित्त वर्ष 2022 में 30% थी (हालांकि इसका मुख्य कारण कोविड के बाद कम आधार प्रभाव है)। यह माना जा सकता है कि आम तौर पर जीएसटी प्राप्तियों की वृद्धि मौजूदा कीमतों पर जीडीपी वृद्धि से अधिक रही है। जीएसटी दरें समान रहने के साथ, हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि जीडीपी वृद्धि के संबंध में जीएसटी की उछाल और लोच दोनों काफी अधिक है। आर्थिक शब्दावली के अनुसार, यह एक कर प्रणाली, जैसे कि जीएसटी की एक स्वागत योग्य विशेषता है। यह दर्शाता है कि अब जीएसटी के दायरे में वृद्धि के साथ, जीएसटी से प्राप्तियां अपने आप बढ़ रही हैं।

– सम्पादक

Contents

शैक्षणिक स्थिति न्युनतम होने के कारण महिलाओं का श्रम अवमूल्यन–कन्हैया जी 7
भारत–नेपाल सम्बंध: हाल के रूझान–डॉ० किशोर कुमार पासवान 10
सांप्रदायिक सद्भाव, जातिगत भेदभाव के निदान और महिला सशक्तीकरण के संदर्भ में सिख विचारधारा का विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० श्याम शंकर प्रसाद 13
आर्थिक विकास की अवधारणा एवं मूल प्रेरक–डॉ० महावीर प्रसाद शर्मा 17
भारत-बांग्लादेश सम्बन्ध: एक अध्ययन–डॉ० राम कृष्ण सिंह; परमजीत राम 20
21वीं शताब्दी में विश्व राजनीति में महिलाओं की सहभागिता एवं लैंगिक न्याय स्थापित–पूजा कुमारी; डॉ० अंजनी कुमार 23
हाइब्रिड विश्व युद्ध और संयुक्त राज्य अमेरिका-चीन प्रतिद्वंद्विता: एक विश्लेषण–स्वाति सिंह 27
समकालीन महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी की पर्यावरणीय-चेतना (ईको फेमिनिज्म)–आराधना वर्मा; प्रो0(डॉ0) मोहनलाल मौर्य 35
नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति की सामाजिक परिवर्तन् में भूमिका–डॉ० अमित राणा 39
उच्च शिक्षा और राष्ट्रीय विकास का अतीत और भविष्य–अरुण कुमार 42
छत्तीसगढ के विद्यालयों में अध्ययनरत् कक्षा बारहवीं के विद्यार्थियों का परीक्षा चिंता पर अध्ययन–डॉ० हेमन्त कुमार खटकर 45
"माध्यमिक शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि पर अध्ययन"–डॉ० मोहनी सिन्हा 48
मिट्टी के प्रकार, प्रमुख फसलें एवं कृषि नियोजन: बलिया जिले के सन्दर्भ में–डॉ० संध्या कुमारी 52
माध्यमिक शिक्षकों की मूल्य वरीयता का लिंग, विद्यालय प्रकृति एवं शिक्षण अनुभव के सन्दर्भ में अध्ययन–सुनीता यादव 56
नेपाली साहित्यिक आन्दोलन–डॉ० दिल कुमार प्रधान 63
वैदिक काल में विज्ञान–डॉ० नवीन कुमार सिंह 70
भारत में पंचायती राज व्यवस्था: एक अवलोकन–प्रो० (डॉ०) अरविन्द आदित्यराज; किशोर कुमार पासवान 76
भारत में गठबन्धन की राजनीति का स्वरूप: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–ओम प्रकाश शर्मा 81
भारत रूस संबंध के बदलते आयाम–अजय भास्कर; प्रो0 अरविन्द आदित्यराज 87
राष्ट्रीय आन्दोलन और बिहार के किसान–आशीष कुमार ठाकुर 91
भारत में जाति व्यवस्था-उत्पत्ति, विशेषताएं और समस्याएं–शालिनी कुमारी 94
स्थानीय स्वशासन एवं ग्रामीण विकास–मनोज कुमार; प्रो० अनुराधा अग्रवाल 107
छत्तीसगढ़ी साहित्य में उपन्यास–श्रीमती माग्रेट कुजूर 113
पोषण और शिक्षण: एक अवलोकन–अनुजा कुमारी; प्रो० (डॉ०) मंजू कुमारी सिन्हा 116
समाज सुधार आन्दोलन और नवीन राजनीतिक संस्कृति के निर्माण की संकल्पना–डॉ० योगेश्वर नाथ पाण्डेय 123
रामायण युगीन ग्रामीण जीवन का सामाजिक एवं आर्थिक अध्ययन–डॉ० अखिलेश नारायण मिश्र 128
समकालीन उपन्यासो में दलित और स्त्री चित्रण के निहितार्थ का अध्ययन–पैरोजाबानू एम मिस्त्री 132
भारत में सोशल मीडिया और राष्ट्रीय सुरक्षा चिंता–डॉ० अरविन्द नेत्र पाण्डेय; किशन कुमार गुप्ता 136
मानव जनित आपदाएँ: एक संक्षिप्त परिचय–डॉ० अरविन्द नेत्र पाण्डेय; सुनील कुमार वर्मा 140
नेपाल - चीन का गठजोड़ का भारतीय सुरक्षा पर प्रभाव–डॉ० अरविन्द नेत्र पाण्डेय; मोहम्मद जुनैद बक्श 144
पर्यावरण संरक्षण में यूएनईपी की भूमिका–कौशल किशोर; डॉ० राजीव कुमार 148
भारत में सामाजिक समरसता के व्यक्तिगत प्रयास विशेष: भारतीय संतो के संदर्भ में एक ऐतिहासिक अध्ययन–कौशल किशोर 152
कुटीर उद्योग में गृह विज्ञान की संभावनाओं का अध्ययन–मोनिका; प्रो० (डॉ) अंजु श्रीवास्तवा 156
''नई शिक्षा नीति 2020 के अन्तर्गत शिक्षण-अभ्यास के दौरान बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों के शिक्षण व्यवहार एवं शिक्षण प्रभावशीलता के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन''–ओमप्रकाश; डॉ० कौशिक वी. पण्डया 159
उच्च प्राथमिक स्तर पर कार्यरत टी०ई०टी० एवं गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों की एनईपी-2020 के प्रति जागरूकता का अध्ययन –अमित सिंह कुशवाहा; डॉ० दिनेश प्रसाद मिश्रा 164
भारत तथा ईरान का द्विपक्षीय सम्बन्ध–डॉ० सच्चिदा नन्द राम 174
कक्षा 10वीं में अध्ययनरत् सी.जी. एवं सी.बी.एस.ई. के विद्यार्थियों में व्यवसायिक रूचि का अध्ययन–डॉ० समीना कुरैशी 177
सामाजिक विकास और किशोरावस्था: एक अवलोकन–पूनम कुमारी; डॉ० शबनम तिवारी 180
राजनीतिक आधुनिकीकरण: अर्थ और आयाम का सामान्य अवलोकन–प्रकाश नारायण; प्रो० (डॉ०) अनिल कुमार सिंह 185
भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का विकास: एक अवलोकन–अनुराग प्रताप सिंह; प्रो० (डॉ०) अनिल कुमार सिंह 190
भारतीय संघवाद का परिवर्तित स्वरूप: एक अवलोकन–प्रफुल्ल राज पाण्डेय; डॉ० धनंजय यादव 195
कार्ल मार्क्स के विचारों की प्रासंगिकता: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–महंथ माँझी; प्रो० (डॉ०) श्याम शंकर प्रसाद 199
डॉ० राम मनोहर लोहिया के राजनीतिक विचार: एक अवलोकन–राज कुमार; डॉ० अमृतंजय कुमार 203
भारतीय संविधान की विशेषताएं: एक अवलोकन–प्रकाश जयंत; प्रो. (डॉ.) श्याम शंकर प्रसाद 211
''भारतीय संघवाद और राज्यों की स्वायत्तता"–डॉ० पंकज चौधरी 221
भारत इजरायल सम्बन्ध: एक दृष्टि–डॉ० पुष्कर पाण्डेय 225
वैदिक भूगोल के आलोक में संसाधन संरक्षण की संकल्पना की विवेचना–उदयन कुमार 230
पर्यावरणीय स्वच्छता–डॉ० अमरेश कुमार अमर 236
गृहणियों में रसोई सुरक्षा एवं स्वच्छता संबंधी ज्ञान का अध्ययन–डॉ० स्नेह लता 238
डूंगजी जवाहरजी का स्वतंत्रता आन्दोलन में योगदान–डॉ० भगवान सिंह शेखावत 241
चम्पारण आंदोलन का महत्त्व और स्वरूप–अविनाश कुमार 244
बिहार के ग्रामीण महिलाओं पर आधुनिकीकरण का सामाजिक-आर्थिक प्रभाव: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (सहरसा जिले के संदर्भ में) –अनु प्रिया; डॉ० राणा सुनील कुमार सिंह 248
संत गरीबदास के साहित्य में चित्रित सामाजिक संदर्भ–सोमबीर सिंह; डॉ० बाबू राम 254
शंकर शेष के नाटकों में समाज एवं पारिवारिक स्थिति–कुसुम लता; डॉ० आशा सहारन 260
चीन-पाक धुरी और भारत के आंतरिक सुरक्षा को खतरा–मुकेश कुमार यादव; डॉ० शकील हुसैन 266

गोपालगंज जनपद में लिंग अन्तरीय साक्षरता प्रभेद पर शैक्षिक विकास का प्रभाव–डॉ० उषा सिंह; प्रियंका प्रियदर्शिनी 272
COVID-19 एवं भारतीय अर्थव्यवस्था–डॉ० रश्मि पाण्डेय 280
बिहार में पर्यावरणीय मानक एवं उनकी निगरानी: कार्यान्वयन और सुधार की संभावनाओं का विश्लेषण–आनंद. डॉ० दिलीप कुमार 283
हिन्द महासागर में चीन की उपस्थिति एवं भारत की चुनौतियाँ: चीन के मोतियों की माला के परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन
–अनिल् कुमार रवि; डॉ० दशरथ राम 289
श्री गुरु नानक देव का सामजिक दृष्टिकोण–परविंदर शर्मा 293
श्रीराम के आदर्श और डॉ. आम्बेडकर की सामाजिक क्रांति: एक विश्लेषण–डॉ० किस्मत कुमार 297
सेवानिवृत्ति और संस्कृति- एक अध्ययन–डॉ० रश्मि दत्त 300
दलितों की राजनीतिक चेतना और सामाजिक न्याय–शैलेन्द्र कुमार 306
पंथ निरपेक्षता की धारणा एवं गांधी और नेहरू की विरासत–डॉ० क्रान्ति प्रकाश 308
भूमंडलीकरण और हिन्दी: एक साहित्यिक विमर्श–डॉ० तानाबाई पाटिल 311
समाजशास्त्र की प्रकृति का आलोचनात्मक मूल्यांकन–आलोक कुमार श्रीवास्तव 314
उर्मिला एक पौराणिक पात्र- हाशिये से केंद्र की ओर–डॉ० राजेश कुमारी कौशिक 318
वैश्वीकरण और उपभोक्तावादी संस्कृति–डॉ० जोगेश 322
भारत में स्त्री शिक्षा की स्थिति एवं समाज पर प्रभाव–डॉ० धर्मेन्द्र कुमार भारतीय 327
सतसईकार तुलसीराम शर्मा 'दिनेश' की शिल्प चेतना–शर्मिला यादव 331
कारागार पुस्तकालय: इसकी भूमिकाएँ और चुनौतियाँ–डॉ० संगीता सिंह; अन्वया पांडेय 336
चोल सिंहल संघर्ष एवं चोल आधिपत्य का श्रीलंका पर प्रभाव–व्योमेश यादव 339
नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: राजनीतिक और सामाजिक प्रभाव - एक अध्ययन–निखिल गुप्ता 342
मोदी काल में भारत-अफ्रीका संबंधो का विश्लेषणात्मक अध्ययन–रेखा यादव 348
हिन्दी आत्मकथा लेखन का साहित्यिक अवदान–अमित गोयल 352
ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्य में दलित जीवन का संवेदनात्मक यथार्थ–अजय कुमार; डॉ० चित्रा यादव 357
अमरकांत की कहानियों में मध्यमवर्गीय चेतना–सुभाष चन्द्र सिंह; डॉ० हिमांशु कुमार 363
प्राचीन भारतीय वाङ्मय में वर्णित पर्यावरणीय चिंतन: एक अवलोकन–डॉ० आनन्द कुमार त्रिपाठी 366
'चंपारण सत्याग्रह और किसान प्रतिरोध का रूपांतरण'–राकेश कुमार पाण्डेय 370
ईशावास्योपनिषद् तथा श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित कर्मयोग–डॉ० राहुल कुमार 379
भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में भारतीय जनता पार्टी का योगदान: एक अध्ययन–डॉ० स्मिता अंशु 385
The Psychological Impact of Lockdown on Married Adult Population of India—Prof. Yashwant Kumar 1
A Pragmatic Analysis of Digital Education Technology and Its Impact on School Students in Rajasthan
—Sh. Vijay Khichar; Dr Abhishek Lunayach 9
East Indian Railway Company: A Historical Overview—Prof. (Dr.) Meera Kumari 25
The Future of Work:- Anticipating Job Market Dynamics in an AI - Driven Economy
—Dr. Amit Kumar Vats; Kapil Chauhan 31
GST and Its Impact on Small and Medium Scale Enterprises: A Study of Peenya Industrial Area in Indore,
Madhya Pradesh—Dr. Rajesh Shroff; Mrs. Kalpana Soni 37
The Quality Assurance in Teacher Education: Need & Importance—Mr. Gopal Ram 44
Women Empowerment and Education–Dr. Priyanka Kumari 49
Effects of Reservation on Women Representation in Local Governance in Bihar–Sonali Singh 54
Indian Capital Market: A Review—Dr. Sarfaraz Ahmad 65
Teaching Triumphs and Academic Adventures: Dr. Neelanjana Pathak in Conversation with
Prof Bhupinder Aziz Parihar—Prof. Bhupender Aziz Parihar; Dr. Neelanjana Pathak 72
A Study on role of Intellectual Property Rights in the Growth of Micro, Small and Medium Enterprises (MSMEs)
in India—Ragini Singh 81
Forgiveness and its Relationship to Subjective Well-being: An Analytical Study—Dr. Harshita Rathore 84
Incident of Sati Chaura Ghat and the Great Revolt of 1857: A Revisit—Abhishek Tiwari 90
Subhash Chandra Bose's Role as a Bengali Patriot in the Indian Independence Movement
—Ravinder Singh; Dr. Ram Singh Gurna 96
A Comparative Study on Financial Performance of Leading Companies in FMCG Sector: Nestle India Limited
and Britannia Industries Limited—Dr. Gyan Prakash; Amrita Yadav 102
Millet as Healthy Diet—Dr. Poonam Verma; Rinki Jaiswal 111
Navigating the Informal Economy in India: Challenges, Opportunities, and Policy Implications
—Shubham Prakash 117
An Analysis of Crypto Currency in Uttar Pradesh with a Special Reference on Bitcoin
—Monika Gupta; Dr. Meena Bhootda 122
Cashless Economy: The Impact of Demonetization on Small and Medium Businesses
—Dr. Sohit Ram; Dr. Niraj Kumar 130
India-Nepal Cultural Relations: A Comprehensive Perspective–Dr. Alok Kumar Pandey 139
Gender and Social Change: A Sociological Review–Dr. Akhilesh Kumar 146
The Tempest: Shakespeare's Journey from Stage to Screen—Jaspreet Kaur 151
Beyond Books and Blackboards: The Contemporary Relevance of Nai Talim in Jharkhand's
Tribal Education System—Shahina Naaz 155

शैक्षणिक स्थिति न्युनतम होने के कारण महिलाओं का श्रम अवमूल्यन

कन्हैया जी

शोधार्थी, पाटलीपुत्र विश्वविद्यालय पटना, बिहार

शोध सारः-

शिक्षा मनुष्य को सही मायने में पृथ्वी पर मौजुद सभी जीवों से श्रेष्ठ बनाती है। यह जीवन को जीने योग्य बनाती है। जिसमें सभी प्रकार के शोषण का प्रतिकार करने का वो क्षमता देती जिसे सही मायने में ईश्वर ने सभी को दिया है। परन्तु किसी कारण वश कोई मनुष्य शिक्षा हासिल करने में चुक जाता है या वंचित रह जाता है तो उसे पुरे जीवन इसकी भारी किमत चुकानी पड़ती है। स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो उनका मूल्यांकन जानवरों से थोड़ा ऊपर किया जाता है। जानवरों से उपर का मतलब काम के बदले उन्हें मजदूरी दिया जाता है। जबकी जानवरों को सिर्फ चारा दिया जाता है। उसी प्रकार अशिक्षित या साक्षर महिलाओं की स्थिति जो दिन रात काम करती है। और मजदुरी के बदले उन्हें सिर्फ खाना दिया जाता है, या मजदुरी के नाम पर कुछ पैसे जिससे दो वक्त की रोटी का जुगाड होना भी बहुत मुश्किल है। पुरे देश में ऐसी महिलाओं की संख्या लगभग 80 प्रतिशत है। जो या तो खेतो में श्रम करती है या घर का काम करती है या दोनो इन्हे ही करना पड़ता है। इसलिए इनका शोषण बड़े स्तर पर हो रहा है। इसे समाप्त करने की जरूरत है। और जहा तक श्रम अवमूल्यन की बात है तो सरकार को हर स्तर पर समान कार्य समान वेतन का कानुन लागू करनी चाहिए। तब जाकर महिलाओं की स्थिति में सुधार हो सकता है। इसके अतिरिक्त महिलाओ के शिक्षा स्तर को बढ़ाने का प्रयास सरकार को हमेशा करते रहना होगा।

मूल शब्दः महिलाओ, शिक्षा-स्तर, श्रम-अवमूल्यन, खेती, न्याय, समानता, विकास।

परिचयः-

प्रस्तुत तथ्य हालिया आर्थिक समीक्षा के दो महत्वपूर्ण तथ्यो, प्रथम कि देश में कामकाजी महिलाओं की संख्या में गिरावट आ रही है। द्वितीय यह कि खेती, बागवानी मत्स्य-पालन, सामाजिक वानिकी में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होने पर भी उन्हें लंबे समय से उचित महत्व नही मिल पा रहा है, की समीक्षा पर केन्द्रीत है। वर्ष 2005-06 में रोजगार में आ रही महिलाओं का प्रतिशत 36 था, जो कि 2015-16 में कम होकर 24 प्रतिशत रह गया है। उसके साथ ही कृषि में हरेक प्रकार की भुमिका अदा करने के बाद भी इन्हें उचित महत्व नहीं दिया जा रहा है। जो इनके कार्य के अवमूल्यन का कारण बनता है। मानव समाज में श्रम के असमान बँटवारे और उसके भेदभावमूलक निर्धारण के जरिये लैंगिक भेदभाव को स्थापित किया गया है। जो इन महिलाओं के साथ अन्याय है। एंव देश विरोधी भी है।

भारत के कृषिक्षेत्र में कुल श्रम की साठ से अस्सी प्रतिशत हिस्सेदारी ग्रामीण महिलाओं की है। वैश्विक रूप से अनुभवसिद्ध साक्ष्य है की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने और स्थानीय कृषि जैव विविधता बनाए रखने में महिलाओं की निर्णायक भूमिका है। एकीकृत प्रबन्धन और दैनिक घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति में विविध प्राकृतिक संसाधनों के प्रयोग का श्रेय भी ग्रामीण महिलाओं को जाता है। और यह स्थिति भारत ही नहीं बल्कि विश्व भर की है।

संपूर्ण विश्व में कृषि व्यवस्था के प्रबंधन से महिलाओं का योगदान पचास प्रतिशत से ज्यादा है। खाद्य एवं कृषि संगठन के आँकड़ो के मुताबिक कृषिक्षेत्र में कुल श्रम से ग्रामीण महिलाओं का योगदान 43% है। वही विकसित देशों में यह आँकडा 70 से 80 प्रतिशत तक भी है। (EUFTA) लाइकली इम्पैक्ट ऑन इंडियन विमेन, सेंटर फॉर ट्रेड एंड डेवलपमेन्ट' के अनुसार भारत कुल कामकाजी महिलाओं में से चौरासी प्रतिशत महिलाएँ कृषि उत्पादन और इससे जुड़े कार्यों मे आजिविका अर्जित करती है। चाय उत्पादन को लगने वाले श्रम में 47 प्रतिशत, कपास उत्पादन में 48.84 प्रतिशत में उनका सीधा योगदान है। जाहिर है वे कामकाजी है। फिर उन महिलाओं का क्या, जो खेती से और अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ी है, पर उन्हें किसान नहीं माना जाता है और न ही उनके श्रम का आर्थिक मूल्यांकन होता है। वास्तव में अब तक हम सब उसे ही ^किसान' कहते

आए है जिसका जमीन पर मालिकाना अधिकार होता है या जो हल जोतता है। 2011 जनगणना के अनुसार, कुल महिला कामगारों में से 55 प्रतिशत कृषि श्रमिक और 24 प्रतिशत खेतिहर थे। जबकि जोत क्षेत्रो में मात्र 12.8 प्रतिशत का स्वामित्व लैंगिक असमानता को प्रतिबंधित करता है।

विश्व खाद्य एवं कृषि (AFAO) की एक रिपोर्ट के अनुसार 'पहाडी इलाको में लगभग एक एकड के खेत में हर साल एक बैल 1064 घंटे, पुरुष खेतिहर 12,12 घंटे और एक महिला 3455 घंटे काम करते है। बावजूद इसके महिलाओं को किसान क्यो नहीं माना जाता है। यह उल्लेखनीय है कि कुछ दशकों में पुरुषों के गाँवो से हट कर शहरों की ओर पलायन करने के चलते खेतिहरो, उद्यमियों और श्रमिकों के रूप मे महिलाओं की बढ़ती संख्या से कृषि क्षेत्र का काफी हद तक 'नारीकरण' हो गया है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद और Dr~WA की ओर से नौ राज्यों में किये गए एक शोध से पता चलता है कि प्रमुख फसलों की पैदावार में महिलाओं की भागीदारी पचहत्तर प्रतिशत तक है। उतना ही नहीं बागवानी में यह आंकडा 79 प्रतिशत और फसल कटाई के बाद के कार्यों में 51 प्रतिशत तक है। इसके अलावा, पशुपालन में महिलाओं की भागीदारी 58 प्रतिशत और मछली उत्पादन में 95 प्रतिशत तक है। राष्ट्रीय नमुना सर्वेक्षण संगठन के आँकड़ो के अनुसार तेईस राज्यों में कृषि, वानिकी और मछली पालन में ग्रामीण महिलाओं के कुल श्रम की हिस्सेदारी पचास प्रतिशत है। मध्यप्रदेश, छतीसगढ, बिहार में यह भागीदारी 70 प्रतिशत है।

शोध के अनुसार, पौधा लगाना, खरपतवार हटाना और फसल की कटाई के बाद ग्रामीण महिलाओं की सक्रिय भागीदारी शामिल है। यह बात गौर करने लायक है कि संपूर्ण समाजिक व्यवस्था कुछ इस तरह की है कि स्त्री को उसके किये गए हर कार्य के लिये यह बताया जाता है कि उसका श्रम 'श्रम' नहीं घरेलू सहयोग मात्र है। और यही कारण है कि अधिकांश महिलायें जो कृषिकार्य में संलग्न है स्वंय भी वह मानती है कि ये कोई कार्य नही करती है।

शोध उद्देश्यः-

- महिलाओं मे मजदूरी को लेकर जागरूकता लाना होगा।
- श्रम-अवमूल्यन के प्रति राष्ट्रीय स्तर पर कानून लागू करवाना होगा।
- किसी भी परिस्थिति में श्रमिक महिलाओं को नियत समय से ज्यादा कार्य/श्रम करने से रोकना होगा।

शोध-विधिः-

प्रस्तुत शोध को पुरा करने के लिए विश्लेषणात्मक एवं केस अध्ययन विधिको को प्रयोग में लाया जाएगा। केस अध्ययन सैद्धान्तिक पक्ष के लिए पुस्तको, पत्र-पत्रिकाओ तथा शोध क्रियाओं, जैसे द्वितीयक स्रोतों के माध्यम से सामग्री एकत्र की जाएगी। द्वितीय स्त्रोतो के तहत आवश्यक सामग्री विभिन्न राष्ट्रीय पुस्तकालयों इटरनेट एव शोध संस्थानो आदी में उपलब्ध साधनो के अलावा विदेशों में श्रम को लेकर बनाये गये नियम खासकर महिलाओं के संदर्भ में का अध्ययन इंटरनेट के माध्यम से तथा प्राचीन संदर्भों एवं ग्रन्थों से एकत्र किया जाना अनुमान्य है। इस संदर्भ आधारित पुस्तको के अलावा विभिन्न आयोगो के प्रकाशनो, आत्मलेखो, सामाचार. पत्र-पत्रिकाओं एवं अन्य लेखन सामग्री संग्रहित कर विश्लेषणात्मक अध्ययन के साथ इस शोध के द्वारा शैक्षणिक स्थिति न्यूनतम होने के कारण महिलाओं का श्रम-अवमूल्यन होता है जो एक सामाजिक समस्या है,का सुक्ष्म एवं गहन अध्ययन व विश्लेषण करने पर संबंधित सामाजिक दोष इत्यादि की जानकारी प्राप्त करने की कोशिश की जाएगी।

निष्कर्षः-

महिला खेतिहरो के श्रम अवमूल्यन का कारण सिर्फ लिंग आधारित नहीं है। यह तो समाज का गलत दृष्टिकोण का नतीजा मात्र है। क्योंकि प्रकृति ने सिर्फ मानव जाति को श्रेष्ठ बनाया, ना की स्त्री-पुरुष को। यह गलत मानसिकता की देन है। की स्त्री के कार्य को हमेशा निम्न समझा गया। इसलिए सबसे पहले इस तरह के किसी भी मनोवृति को हावि नहीं होने देना चाहिए की महिला का श्रम 'श्रम नहीं है। उनके द्वारा किये गये श्रम को प्रोत्साहन देकर उनके कार्यशैली को श्रेष्ठ बनाने का प्रयास करना चाहिए। चाहे वह धन के रूप में हो या पद-प्रतिष्ठा के रूप में हो। उन्हें समाज में उनके सच्ची योगदान के लिए हमें उनका सम्मान करना चाहिए। तभी जाकर मानव जीवन एक श्रेष्ठ रूप धारण करेगा। वास्तव में देखा जाए तो भारत ही नही

विश्व के लगभग सभी देशों से महिलाओं से भेदभाव किया जाता है। उन्हें हमेशा दोयम दर्जा दिया जाता है। उनके कार्य को कार्य नहीं मानकर उन्हें समाज की कमजोर कड़ी माना जाता है। जो पूर्णत: गलत है। इसी मानसिकता के कारण आज पूरी दुनिया विकसित नहीं हो सकी है।

जहाँ महिलाओं से ज्यादा भेदभाव है वह राष्ट्र सबसे गरीब एवं पिछडे श्रेणी में आता है। जहाँ थोडा कम भेदभाव है वह राष्ट्र विकासशील राष्ट्र के श्रेणी में है। और जहाँ थोड़ा ज्यादा आजादी दी गई है वह राष्ट्र विकसित श्रेणी में आता है। ये बात लगभग दुनिया के सभी राष्ट्र जानते हैं। आश्चर्य है की इन बातों के बावजूद भी महिलाओं के साथ भेदभाव हो रहा है। जबकी बिना महिलाओं के भागीदारी के बिना हम कुछ भी हासिल नहीं कर सकते है। महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति अगर भारत में ठीक होती तो इनकी समझ शक्ति भी ज्यादा होती। परन्तु यहाँ शिक्षा का अभाव है। जिसके कारण यहाँ के महिलाओं का शोषण हर स्तर पर किया जाता है। कारण यह है कि इन्हें पता ही नहीं है। की इनके द्वारा किये गये कार्य का सही किमत इन्हें मिल रही की नही। इन्हे जो भी श्रम मूल्य मिलता है। उन्हें ये सही मानकर कार्य/श्रम कर लेती है।

यहाँ समाज तो दोषी है ही साथ साथ सरकार भी दोषी है। की वे एक ऐसा अभियान नही चलाती जिससे कामकाजी महिलाओं को शिक्षित किया जाए तथा उन्हे प्रशिक्षण भी दिया जा सके। जिससे उन्हे ज्ञान हासिल हो पढ़ना-लिखना सिख जाए तथा उस क्षेत्र में प्रशिक्षण भी प्राप्त कर ले जिसमें उन्होंने श्रम किया है। इससे वे अपने अधिकारों को जान सकेगी तथा अपने कार्य के मूल्यो का सही आकलन लगा सकेगी। इसके साथ-साथ वे आर्थिक रूप से सबल होगी तथा अपने आने वाली पीढ़ियों को शिक्षित कर एक नये भारत का निर्माण करेंगी। जिसमें महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति में सुधार होगा।

संदर्भ सूची

1. भारत में महिला श्रमिक- रवि प्रकाश यादव, रागिनीदीप, पूजा राय।
2. महिलाएँ और कार्य: नारीवाद, श्रम और सामाजिक प्रजनन सुसान फर्ग्यूसन।
3. आइन्ट आई अ वुमन: ब्लैक वीमेन एंड फेमिनिज्म- बेल हुक्स।
4. विज्ञान में महिलाओं के लिए समानता कैसिड़ी आर. सुगीमोये, पिंसेट लारिबिएर
5. महिलाओं का श्रम- खान एण्ड अकादमी।
6. महिला श्रमिको की सामाजिक-आर्थिक स्थिति- डॉ. पंकज गुप्ता।
7. श्रम एवं औद्योगिक विधि- प्रो. सूर्य नारायण मिश्र।
8. श्रमिक विधियाँ- इन्द्रजीत सिंह।
9. भेदभाव का समाजशास्त्र: रोजगार, आवास, ऋण और उपभोक्ता बाजारों में नस्लीय भेदभाव-देवा पेजर एवं हाना शेफर्ड
10. महिला खेतिहरों के श्रम का अवमूल्यन क्यो- ऋतु सारस्वत।
11. महिला रोजगार- एस्टेबन ऑर्टिज-ओस्पिना, सैन्ड्रा त्व्वेत्कोवा और मैक्स रोजर।
12. कार्यस्थल पर महिलाओं के लिए अदृश्य श्रम की उच्च लागत-मिशेल जैगर।
13. वुमेन हु रन विद द वोल्वस कॉनेक्टिंग द पावर ऑफ द वाइल्ड वुमेन- क्लॉरिसा पिकोंला इस्टेस।
14. हेयर, देयर एण्ड एवरिवेयर- मूर्ति सुधा।
15. साबित्री बाई फुले- पाईनर ऑफ वुमेन इम्पावरमेन्ट गोपु सुधाकर।
16. ए वुमेन'स प्लेस इज इन द बोर्ड़रूम: रोडमैप- पी० थोमसन।
17. बी. यौर ऑवन सनसाइन: टुवर्डस ए बेटर टुमारो जेम्स ऐलन।
18. वुमेन इम्पावरमेन्ट उन इण्डिया: इस एण्ड चौलेन्जेस-डॉ शिखा बनर्जी एण्ड कृतिवास दता।
19. इम्पावरमेन्ट ऑफ वुमेन इन इण्डिया- गौरव कुमार।
20. वुमेन एडुकेशन थ्रो द ऐजेस-एन०एल० गुप्ता।

भारत-नेपाल सम्बंधः हाल के रूझान

डॉ० किशोर कुमार पासवान

एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, ए0 एम0 कॉलेज, गया, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया

शोध-सार

भारत के अपने हिमालयी पड़ोसी देशों नेपाल के साथ सम्बंध, इन दो देशों के बीच व्यापक सामाजिक और आर्थिक सम्बंध ों के लम्बे इतिहास से इसकी नींव है जिसे भौगोलिक निकटता और मुक्त सीमाओं द्वारा आगे बढ़ाया गया था। भारत नेपाल में किसी भी राजनीतिक परिवर्तन के सम्बंध में हमेशा केन्द्र बिन्दु पर रहा है, जबकि भारत के लिए यह छोटा भू-भाग हिमालयी हिन्दू राज्य अपनी भू-स्थिति के कारण भारत की सुरक्षा के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है, जिसके निम्न कारणें हैं। पहला, नेपाल, भारत के साथ 1800 कि0मी0 से अधिक लम्बी खुली सीमाओं को साझा करता हे। जो भारत के उत्तर-पूर्वी हिस्से में स्थित है। दूसरे, पाँच भारतीय राज्य, अर्थात, पश्चिम बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, सिक्किम और उत्तराखंड नेपाल के साथ अपनी सीमाएँ साझा करते हैं।

मूल-शब्दः- भारत, नेपाल, सुरक्षा, सम्बंध, सामाजिक, आर्थिक

परिचयः

चीन के लिए, तिब्बत पर नेपाल की भौगोलिक निकटता ने तिब्बत पर नियंत्रण हासिल करने के बाद नेपाल को चीन के लिए बहुत महत्वपूर्ण बना दिया है। लेकिन भारत और चीन दोनों के लिए सबसे महत्वपूर्ण नेपाल का स्थान है। नेपाल को भारत और चीन के बीच दो चट्टानों के बीच एक यम की तरह देखा जाता है। दूनिया की उभरती हुई अर्थव्यवस्था होने के नाते ये दोनों राज्य नेपाल को भू-सामरिक रूप से अपने राष्ट्रीय हित के लिए महत्वपूर्ण मानते हैं क्योंकि नेपाल दो उभरते हुए महाशक्तियों के बीच एक प्रतिरोधी के रूप में कार्य करता है। अपने स्थान का लाभ उठाते हुए, नेपाल भी भारत के खिलाफ 'चाइना कार्ड' खेलता है और जब भी आवश्यकता होती है, उसके लाभ के लिए इसको इस्तेमाल करता है।

भारत-नेपाल सम्बंधः एक पृष्ठभूमि

भारत-नेपाल का सम्बंध प्राचीन काल से है, जो कि 31 जुलाई, 1950 को शांति और मित्रता की संधि से और मजबूत हुआ था। 1949-50 के दौरान तिब्बत पर चीन के कब्जे के बाद भारत और नेपाल दोनों के लिए सुरक्षा चिंताएँ बढ़ गयी। हालाकि इस संधि को भारत-नेपाल सम्बंधों के इतिहास में एक विशिष्ट महत्वपूर्ण मील का पत्थर के रूप में देखा जाता है, लेकिन राजनीतिक अभिजात वर्ग और बुद्धिजीव वर्ग के एक समूह द्वारा इस संधि को 'असमान' माना गया, जिसने उसी की समीक्षा के लिए बुलाया।

इसके अलावा, दोस्ती की संधि दोनों देशों के बीच स्वस्थ द्विपक्षीय सम्बंधों को बनाए रखने के लिए घटनाओं की एक श्रृंख्ला के रूप में देखी जा सकती है। सबसे पहले, कोइराला की बर्खास्तगी और राजा महेन्द्र द्वारा पूर्ण शक्तियों की धारणा, जिनके संरक्षण में नेपाल ने चीन की ओर झुकना शुरू कर दिया। दूसरी बात यह है कि 1975 में जब किंग बिरेंडा के प्रस्ताव को चीन, पाकिस्तान और कई अन्य देशों से समर्थन मिला, तो देश को जोन ऑफ पीस 'घोषित करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय समर्थन हासिल करने का नेपाल का प्रयास रहा। त्मक जोन ऑफ पीस 'प्रस्ताव 1950 की संधि के पूर्ण विरोधाभास में था, लेकिन नेपाल ने इस प्रस्ताव को जारी रखा। इसके अतिरिक्त, सिक्किम को भारत में विलय के लिए नेपाल का विरोध भी भारत के लिए गंभीर चिंता का विषय था।

1980 के दशक में चीन से नेपाल द्वारा शस्त्र खरीद के मुद्दे पर दोनों देशों के बीच एक बार फिर गड़बड़ी सामने आई। व्यापार और Transit संधि में भारत की इच्छाओं को समायोजित करने के लिए नेपाल के इनकार को नेपाल की आर्थिक नाकेबंदी के रूप में भारत द्वारा फिर से लागू किया गया जो अप्रैल 1990 के अंत तक चला।

विभिन्न शासकों द्वारा अपनाई गई उपर्युक्त नीतियों और मित्रता संधि की शर्तों के उल्लंघन के अलावा, नेपाल की निरंतर राजनीतिक अस्थिरता और सम्बंधित घटनाओं ने भी समय-समय पर भारत-नेपाल सम्बंधों में निरंतरर अड़चन के रूप में कार्य

किया। उदाहरण के लिए, नेपाल में 1996 से भारत में बढ़ते माओवादी आंदोलन के प्रभाव के बाद, नेपाल में दस साल के गृहयुद्ध (1996-2000) के दौरान नेपाल में लोकतंत्र समर्थक आंदोलनों को बढ़ावा देने का आरोप था। इसलिए, भारत पर नेपाल की आंतरिक राजनीति में ध्यान केन्द्रित करने का आरोप लगाया गया है और हाल के वर्षों में नेपाल से भारत की भावनाएँ उच्च बनी हुई है।

हाल के रूझानः नेपाल में चीन की

आर्थिक उपस्थितिः

भारत ने 1951 से नेपाल में प्राथमिकता के रूप में काम किया और हाल के वर्षों में नेपाल में आर्थिक विकास की गति को तेज करने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई। भारत नेपाल का सबसे बड़ा व्यापार भागीदार, विदेशी निवेश और पर्यटन के आगमन का स्त्रोत बना रहा। लेकिन 2008-09 और 2009-10 के वित्तीय वर्षों में द्विपक्षीय व्यापार में कमी दर्ज की गई, शायद नेपाल में राजनीतिक अस्थिरता के कारण। हालांकि, 2010-11 में भारत-नेपाल द्विपक्षीय व्यापार ने 36.85 की वृद्धि और 2014-15 में 26.06 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की। भारत ने 2014-15 में नेपाल के कुल बाहरी व्यापार का लगभग 60 प्रतिशत हिस्सा लिया। हालांकि, क्षेत्र में बढ़ती चीनी उपस्थिति से क्षेत्र में भारत की पारंपरिक प्रधानता को चुनौती दी जा रही है। छोटे दक्षिण एशियाई राज्य अपने आर्थिक प्रयासों को बढ़ाने और अपनी निर्भरता में विविधता लाने के लिए इस क्षेत्र में चीन की बढ़ती आर्थिक उपस्थिति का लाभ उठाने की कोशिश कर रहे हैं। नेपाल एक ऐसा राज्य है, जो आयात और निर्यात के लिए भारतीय बंदरगाहों और शहरों का उपयोग करता है। भारत द्वारा 2015 की सीमा की नाकाबंदी के कड़वे अनुभवों ने नेपाल के लिए एक विशेष देश पर निर्भरता के गंभीर परिणामों के बारे में आँखें खोलने का काम किया है। इसलिए, नेपाल ने अपने Trade and transit सुविधाओं में विविधता लाने के लिए चीन के साथ व्यापार करने का फैसला किया। रणनीति बदलाव पर जोर दिया। नेपाल की आंतरिक राजनीति में 'गैर-हस्तक्षेप' की नीति से, चीन ने नेपाल के साथ अपनी सीमा को सुरक्षित करने के लिए सभी स्तरों पर नेपाली राजनीतिक अभिनेताओं को शामिल करने की मांग की है और आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और रणनीतिक क्षेत्रों में अपनी भागीदारी बढ़ाने की कोषिष कर रहा है।

नेपाल में निवेश, विकास और आर्थिक सहायता के सबसे बड़े स्त्रोत के रूप में उभर कर चीन पिछले दशक में आर्थिक रूप से अपनी उपस्थिति बढ़ाने में सफल रहा है। चीन ने नेपाल में भारत के बाद एक बड़ा प्रतिस्पर्धी देश बनने की कोशिश की है क्योंकि चीन ने 2018 में भारत के बाद विदेशी पर्यटकों के दूसरे सबसे बड़े स्त्रोत, व्यापारिक साझेदार और विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (एफडीआई) के सबसे बड़े स्त्रोत का स्थान हासिल कर लिया है। इस प्रकार, पिछले दशक में, चीन ने नेपाल में अपनी वित्तीय सहायता और निवेश कार्यक्रम को आक्रामक रूप से आगे बढ़ाया है और वर्तमान में चीन, नेपाल को आर्थिक और तकनीकी सहायता प्रदान करने वला एक प्रमुख provider माना जाता है।

चीनी सहायता के लिए नेपाल की सकारात्मक प्रतिक्रियाः

भारतीय दबाव के बावजूद नेपाल प्रौद्योगिकी और कौशल में चीनी निवेश और तकनीकी सहायता को आकर्शित करने के लिए उत्सुक था। वर्ष मई 2017 में बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव पर एमओयू पर हस्ताक्षर करने वाले दो देशों को देखा गया। जून 2018 में केपी शर्मा ऑयल की चीन यात्रा के दौरान इसे और बढ़ाया गया, जब दोनों देश कुंजी में कनेक्टिविटी बढ़ाने के लिए उक्त एमओयू को लागू करने पर सहमत हुए। बंदरगाहों, सड़कों, रेलवे, विमानन और संचार सहित ट्रांस-हिमालयन मल्टी- डायमेंशनल कनेक्टिविटी नेटवर्क के प्रमुख ढांचे के साथ। इस वर्ष में भारत के लिए एक और खतरनाक विकास नेपाल की राजधानी काठमांडू के चीनी सीमावर्ती शहर केरूंग (जिलॉन्ग) से एक सीमा पार रेलवे की पूर्व व्यवहार्यता अध्ययन रिपोर्ट का संचालन था, जो दिसम्बर में काठमांडू में हालिया बैठक के दौरान नेपाली अधिकारियों को प्रस्तुत किया गया था। चीन और नेपाल के बीच एक मुक्त व्यापार समझौते की संभावना भी चीन द्वारा खोजी जा रही है, हालांकि नेपाल को लगता है कि चीनी निवेश और उन्नत कनेक्टिविटी लाने की शर्त पर इस तरह के समझौते पर हस्ताक्षर किए जाने चाहिए। चीन एक शांति और मैत्री संधि और आपसी कानूनी सहायता पर हस्ताक्षर करने के लिए नेपाल पर भी दबाव बना रहा है। चीन और नेपाल के बीच बढ़ते आर्थिक सहयोग के अलावा, भारत और नेपाल के बीच तीन विवादित क्षेत्रों के दावे ने भारत को अपने पड़ोसी के इरादों पर सवाल उठाया है।

भारत-नेपाल प्रादेशिक विवाद

हाल ही में नेपाल के कालापानी, लिम्पियाधुरा और लिपु लेख का दावा करने वाले एक नए राजनीतिक मानचित्र को जरी करने के बाद भारत-नेपाल सम्बंध अपने सबसे निचले स्तर पर पहुँच गए हैं। भारत के रक्षा मंत्री द्वारा भारत और चीन को

जोड़ने वाली मोटर योग्य लिंक सड़क के उद्घाटन के बाद नेपाल का यह कदम भारत के लिए गहरी चिंता का विषय है। सड़क कैलाश मानसरोवर यात्रा को कम करता है और लिपुलेख से होकर गुजरती है इसे नेपाल ने अपने क्षेत्र के रूप् में दावा किया है। इससे पहले, नेपाल ने भारत और चीन के बीच 2015 में नेपाल के परामर्श के बिना लिपुलेख दर्रे के उपयोग को लेकर हुए समझौते पर भी नाराजगी जताई थी।

अपने दावों को लेकर नेपाल का रूख

नेपाल ने काली नदी की उत्पत्ति के आधार पर इन तीन क्षेत्रों के अपने दावे को सही ठहराया। नेपाल के अनुसार काली नदी लिपु लेख के उत्तर-पश्चिम में लिम्पियाधुरा में एक धारा से उत्पन्न हुई। इस प्रकार तीन क्षेत्र वास्तव में नदी के पूर्व में स्थित थे और इस प्रकार, नेपाल के धारचूला जिले के हिस्से हैं। नेपाल ने यह भी कहा कि कालापानी नेपाल का क्षेत्र था, जिसे राजा ने भारत को अस्थायी रूप से उपयोग करने की अनुमति दी थी।

नेपाल के दावें के बारे में भारत का रूख

काली नदी की उत्पत्ति के बारे में भारत ने दावा किया कि नदी का उद्गम लिपु लेख दर्रे के ठीक नीचे स्प्रिंग्स में हुआ था और सागौली की संधि ने उन धाराओं के उत्तर में क्षेत्र का सीमांकन नहीं किया था। उपर्युक्त मुद्दे के अलावा भारत ने उन्नीसवों शताब्दी के प्रशासनिक और राजस्व रिकॉर्ड का उत्पादन किया, जिसमें दिखाया गया कि कालापानी भारतीय पक्ष में था इस प्रकार इस क्षेत्र को उत्तरखंड के पिथौरागढ़ जिले का हिस्सा माना जाना चाहिए।

भारत के लिए चिंता के क्षेत्र

नेपाल के लिपु लेख पास को विवादित त्रि-जंक्षन (भारत, नेपाल और चीन के बीच) बनाने का प्रयास जिसमें नेपाल की बराबर हिस्सेदारी थी, विशेषकर ऐसे समय में जब भारत ने माना कि नेपाल, के0पी0 के नेतृत्व में ओली और उनकी कम्युनिस्ट पार्टी चीन की ओर झुके हुए थे, लमी मा ऐसे मुद्दे थे जो भारत के लिए चिंता का विषय है।

भविष्य के लिए रोड मैपः

सामरिक महत्व के मद्देनजर नेपाल भारत और चीन के क्षेत्र में प्रमुखता रखता है, भारत को नेपाल के साथ स्थिर सम्बंध बनाने के महत्व को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए। नेपाल को यह भी महसूस करना चाहिए कि भारत का महत्व इस तथ्य में निहित है कि देश भारत में रहने वाले छह से आठ मिलियन नेपाली नागरिकों को जन्मजात वातावरण प्रदान करता है। इस प्रकार, यह याद रखना चाहिए कि इस सदियों पुराने सम्बंध का Corrosion दोनों देशों के लिए नुकसानदेह साबित हो सकता है। भारत के पड़ोस में चीन का हस्तक्षेप उसके दक्षिण एशियाई पड़ोसियों के साथ उसके सम्बंधों में सौहार्द के विकास के मार्ग में एक सतत बाधा है, और नेपाल कोई अपवाद नहीं है। ड्रैगन समकालीन समय में हिमालयी साम्राज्य में प्रवेश कर रहा है और अपनी तलहटी बढ़ा रहा है- एक ऐसा कारक जो भारत के साथ अपने सम्बंधों में खराब खून पैदा कर रहा है। नेपाल द्वारा विवादित क्षेत्रों पर हाल ही में किए गए दावे की शुरूआत चीन के समर्थन से हुई है जो भारत-नेपाल द्विपक्षीय सम्बंधों की बेहतरी के मार्ग में एक अस्थिर कारक रहा है। दोनों पड़ोसी देशों को यह भी महसूस करना चाहिए कि इन दोनों देशों के बीच मौजूदा द्विपक्षीय संधियों में से एक भी कमियाँ हिमालयी नदियों की शिफ्टिंग को लेकर नहीं है। इसलिए, सभी साझा पर्यावरणीय विशेषताओं के प्रकाश में, सीमा विवादों को हल करना समय की अवश्यकता है।

संदर्भ - सूचीः

1. Nency Jetly, "Nepal and India: A Framework of Cooperation", in B.C Upreti (ed.), India and Nepal: Aspects of Interdependent Relations, South Asian Publishers, 1996, P. 369.
2. Kapileshwar Labh, 'The 1950 India- Nepal Treaty of Peace and Friendship: A Realistic Perspective', in SAARC Encyclopaedia, M.H. Syed, Gyan Publishing House, Chaper 25.
3. Aneek Chatterjee Neighbours, Major powers and Indian Foreign Policy, Orient Blackswan Private Limited, 2017, pp. 63-70.
4. Dr. Pitam Ghosh, 'The Dragon's Growing Footprints in Nepal : How Modi-led India can Check Chinese influence?' in World Focus in November 2019 issue.
5. (www.xinhaunet. com), as available on 8.10.2020.
6. Article titled India Nepal Border Dispute, as available at https://www.drishtiias.com/daily-updates/daily-news-analysis/india-nepal-border-dispute, on 9.10.2020.

सांप्रदायिक सद्भाव, जातिगत भेदभाव के निदान और महिला सशक्तीकरण के संदर्भ में सिख विचारधारा का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० श्याम शंकर प्रसाद

प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, राजा सिंह महाविद्यालय, सिवान, बिहार

Abstract– भारतीय समाज वर्ण व्यवस्था पर आधारित जातियों में बंटा हुआ है। जातिय आधार पर संगठित समाज में ऊंच-नीच का भेदभाव, छुआछूत आदि एक बड़ी समस्या रही है। मुगलों के शासन काल में सांप्रदायिकता भी एक समस्या के रूप में आ गई। महिलाओं की स्थिति मुगल काल में तुलनात्मक रूप से और अधिक दयनीय हो गई। इन्हीं परिस्थितियों में गुरु नानक का आविर्भाव हुआ और उन्होंने जातिय आधार पर भेदभाव का विरोध, सांप्रदायिक सद्भाव और महिला समानता पर जोर दिया। दसवें गुरु, गुरु गोविंद सिंह ने जातिय पहचान को खत्म करने तथा जातिय समरुपता लाने के लिए खालसा की स्थापना की और महिलाओं को भी पुरुषों के अनुरूप ही पंच ककार धारण कराकर महिला सशक्तीकरण को बढ़ावा दिया। भारतीय समाज की समस्या और समाधान के संदर्भ में सिख विचारधारा का अध्ययन प्रासंगिक और महत्वपूर्ण हो जाता है।

Keywords– जातिय भेदभाव, सांप्रदायिक समस्या, महिला सशक्तीकरण, सिख समाज, सिंह समाज

विषय प्रवेश– भारतीय समाज वर्ण व्यवस्था पर आधारित जातियों में संगठित रहा है। धार्मिक कर्मकांड और जातिगत ऊंच-नीच एवं अनेक तरह के अंधविश्वासों में जकड़ा रहा है। इन सब विकृतियों ने गौतम बुद्ध के नेतृत्व में बौद्ध धर्म को जन्म दिया। सम्राट अशोक के नेतृत्व में बौद्ध धर्म का खुब प्रचार प्रसार हुआ। खजूर और जड़ी बूटियों के व्यापार के बहाने अरबों का दक्षिण भारत में आना जाना शुरू हुआ लेकिन सातवीं सदी में सिंध पर मुहम्मद बिन कासिम का आक्रमण हुआ उसके बाद भारत पर मुगलों के आक्रमण का सिलसिला शुरू हो गया। महमूद गजनवी के आक्रमण ने भयावह रूप ले लिया। उसने उत्तर भारत से होते हुए गुजरात तक रास्ते में आने वाले सभी हिन्दू मन्दिरों को तहस-नहस कर दिया। एक के बाद एक आक्रमण, कत्लेआम और मंदिरों के विध्वंस किए गए। लेकिन इसने भी हिन्दूओं को इतना विचलित नहीं किया कि वे सभी इस्लाम कबूल कर लें। बाबर के आक्रमण ने भारत में मुगल शासन की नींव रखी। हुमायूं, अकबर, जहांगीर, शाहजहां, औरंगजेब आदि के शासन काल में भारत में इस्लाम धर्म को खुब बढ़ावा मिला। जजिया कर जैसे औरंगजेब की धार्मिक नीति ने भारत में सांप्रदायिक उत्पीड़न को बढ़ावा दिया। पुनः व्यापार के बहाने भारत में अंग्रेजों का आना- जाना शुरू हुआ। धीरे धीरे उनकी पकड़ बढ़ती गई और वे भारत का शासक बन बैठे।

1947 में भारत स्वतंत्र हुआ लेकिन सांप्रदायिक आधार पर भारत का विभाजन भी हुआ और पाकिस्तान एक नया इस्लामी राष्ट्र बना। स्वतंत्रता से पूर्व तथा स्वतंत्रता के समय भी हुए सांप्रदायिक हिंसा ने लाखों लोगों की जीवन लीला समाप्त कर दी। विभाजन के उपरांत भी अधिकांश मुसलमान भारत में ही रह गए। एक तरफ कर्मकांडों में उलझा, जातियों में बंटा, बहुदेववादी, मूर्ति पूजक हिंदू समाज में जातिवाद एक गंभीर समस्या है। जबकि दूसरी तरफ एकेश्वरवादी, मूर्तिभंजक, मुस्लिम समुदाय के परस्पर विरोधी विश्वासों ने भारत में हिन्दू -मुस्लिम सांप्रदायिकता की समस्या खड़ी कर दी। 1947 के बाद भी रह रह कर सांप्रदायिक दंगे की आग में भारतीय मानवता झुलसती रहीं। अयोध्या मामला में उभार आने के बाद सांप्रदायिक तनाव और हिंसा को और तेजी से बढा दिया। गोधरा में ट्रेन में हुई हिंसा की प्रतिक्रिया में गुजरात भर में हिंसा फैल गई। उसके बाद भी दिल्ली, मुजफ्फरनगर आदि जगहों पर यह समस्या उत्पन्न होती रहती है। इस तरह से भारत में सांप्रदायिकता कोई बीते युग की बात नहीं है। यह आज भी प्रासंगिक हैं और भारतीय समाज के समक्ष एक प्रमुख चुनौती है। इसके समाधान के लिए यह जरूरी है कि सांप्रदायिक विचारधारा को खत्म किया जाए या उसे कम किया जाए।

भारत के संदर्भ में यदि हम अल्पसंख्यक सांप्रदायिकता के विभिन्न रुपों के प्रति नरम रवैया अपनाते हैं तो बहुसंख्यक सांप्रदायिकता के विरुद्ध हमारा संघर्ष भी शिथिल हो जाता है। सांप्रदायिकता के दोनों रूप एक दूसरे का पोषण करती है तथा उनमें से एक का भी सुदृढ़ होना दूसरी सांप्रदायिकता को सुदृढ़ करता है। इसलिए उन दोनों के विरुद्ध एक साथ लड़ाई छेड़ने

की आवश्यकता है। लेकिन इस वैचारिक लड़ाई का रास्ता काफी लम्बा रास्ता है। इसे तात्कालिक तौर पर प्रभावी तरीके से रोकने में केवल राज्य हीं सक्षम हो सकती है। सांप्रदायिक विचारधारा का ज्यामितीय अनुपात में फैलाव होता है। सांप्रदायिकता फैलाने वाले का लक्ष्य यह भी होता है कि ऐसी स्थिति पैदा की जाय कि धर्म निरपेक्ष व्यक्ति भी सांप्रदायिक बन जाय, ऐसे लोगों को नियंत्रित करने लिए केवल तीन उपाय हीं हो सकते हैं- राज्य द्वारा बल प्रयोग, धर्म निरपेक्ष लोगों द्वारा अहिंसक प्रतिरोध और आक्रांत समुह द्वारा आत्मरक्षा। सांप्रदायिक दंगों के मामले में महात्मा गांधी के साथ ही कांग्रेस भी अहिंसक उपाय को असंभव मानते थे। गांधी जी ने हिंसा के खतरे में पड़े हुए समुहों को सलाह दी थी कि वे अपने आपको संगठित करें और खुद अपनी सुरक्षा करें। उनका कहना था कि इससे सांप्रदायिक आक्रमण महंगा हो जाएगा और इससे आक्रामक समुह पर नियंत्रण लगेगा। नि:संदेह उनका दृष्टिकोण बिल्कुल सही था, उस स्थिति में और कोई चारा भी नहीं था।

इसी वैचारिकता का दर्शन हमें सिख धर्म में दिखाई देता है। सिख गुरुओं ने खुद को संगठित करने और अपनी रक्षा खुद करने की आवश्यकता को महसूस किया और भक्ति के साथ शक्ति पर जोर दिया।

सिख धर्म- 15 अप्रैल 1469 को लाहौर के पास तलवंडी राय होये नामक गांव में जिसे अब ननकाना साहिब कहा जाता है, गुरु नानक का जन्म हुआ। उन्होंने अंधविश्वास तथा अज्ञान को दूर करने तथा एक सुदृढ़ नींव पर समाज की रचना के लिए सिख धर्म की शुरुआत की। गुरु अंगद देव तथा गुरु अमर दास ने लंगर सेवा का जीवन भर प्रचार किया। गुरु रामदास ने अमृतसर जैसा धार्मिक और सांस्कृतिक नगर बसाया। गुरु अर्जुन देव ने जहांगीर से डरकर भागे हुए राजकुमार खुसरो को शरण दी, जिसके लिए जहांगीर नाराज होकर इन्हें कैद कर लिया तथा धर्म परिवर्तन के लिए बाध्य किया, लेकिन वे अपने पंथ पर अड़े रहे और इनका दुखद निधन हो गया। इस घटना ने सिखों को शांति पूर्ण जीवन से युद्ध प्रिय समाज में बदल दिया। गुरु हर गोविन्द, गुरु हरि राय, गुरु हरिकृष्ण तथा गुरु तेग बहादुर ने भी इसी परंपरा को आगे बढ़ाया। कश्मीर के पंडितों के पुकार पर गुरु तेग बहादुर दिल्ली गए और तत्कालीन शासक औरंगजेब के आदेश पर चांदनी चौक पर उन्हें शहीद कर दिया गया। गुरु तेग बहादुर के बलिदान से औरंगजेब की धार्मिक नीति का तीव्र विरोध शुरू हो गया। 1666 में जन्मे गुरु गोविंद सिंह उस समय मात्र 9 वर्ष के थे। भारतीय समाज की समस्याओं के निदान और अत्याचारियों के दमन को मिटाने के लिए 1699 में बैसाखी के दिन उन्होंने सिंह समाज की स्थापना की। लाहौर निवासी दयाराम (खत्री), हस्तिनापुर निवासी धर्मदास (जाट), द्वारिका निवासी मुहकमचंद (छीपी), बीदर, कर्नाटक निवासी साहबचंद (नाई) तथा जगन्नाथ पुरी निवासी हिम्मत राय (कहार) भिन्न भिन्न जाति के लोगों को अमृत पान करा खालसा की नींव रखी और इन्हें पंज प्यारे का नाम दिया।

सिख धर्म की विशेषताओं में सबसे पहले बल तथा बन्धन पर जोर दिया गया है। बंधन शारीरिक हो या आत्मिक या सामाजिक, यदि उन्हें दूर कर नये मान्यता को स्थापित करना है तो बल की आवश्यकता होगी हीं। दूसरी विशेषता है शुभ कर्म अर्थात अच्छे काम को अबाध गति से करते जाना है। तीसरे विनम्रता अर्थात परमात्मा की प्राप्ति के लिए नम्रता और स्वाभिमान दोनों से युक्त संतुलित जीवन जीने का तरीका खालसा को सिखाया। चौथी विशेषता भक्ति और शक्ति दोनों पर जोर दिया। पांचवीं विशेषता है सिख त्रिरत्न- नाम जपना अर्थात प्रभु नाम का स्मरण, किरत करनी अर्थात हाथ से काम करके जीविका चलाना और वंड छक्णा अर्थात जरूरतमंद लोगों में मिल बांटकर खाना। सिखो को यह नैतिक आदेश दिया गया है कि वे अपनी कमाई का दसवां हिस्सा दीन दुखियों तथा जन सामान्य के लिए खर्च करेंगे। इस प्रकार उपरोक्त त्रिरत्न सिख धर्म के रीढ़ की हड्डी है। सिखो के लिए लोक कल्याण का केन्द्रीय स्थान गुरुद्वारा है।

गीता रहस्य के रचयिता बाल गंगाधर तिलक के अनुसार व्यवहार में "धर्म" शब्द का उपयोग केवल "पारलौकिक सुख का मार्ग" समझा जाता है लेकिन धर्म शब्द का अर्थ इतना संकुचित नहीं है। वास्तव में इसके अलावा राज-धर्म, देश- धर्म, कुल-धर्म, मित्र- धर्म आदि सांसारिक नीति बंधनों को भी धर्म कहते हैं। दिल्ली के चांदनी चौक में शहीद हुए गुरु तेग बहादुर के बारे में गुरु गोविंद सिंह ने कहा

"धर्म हेतु साका जिन कीआ।।
सीस दिया पर सिरर न दिआ।।

अर्थात गुरु तेग बहादुर ने नैतिक धर्म, सदाचरण और धर्म की स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए अपना बलिदान दे दिया।

सिख धर्म में सांप्रदायिक सद्भाव- सांप्रदायिक सद्भाव के लिए सिख धर्म में समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाया गया है। ज्यादातर हिंदू-मुस्लिम दंगे मूर्ति पूजा और पूजा के बाद मूर्ति विसर्जन जुलूस के दौरान होता है। यदि विसर्जन जुलूस के रास्ते में कोई मस्जिद हो तो यह विवाद और अधिक संवेदनशील हो जाता है। सिख धर्म में मूर्ति पूजा की मनाही है। स्वाभाविक रूप से सांप्रदायिक तनाव के एक प्रमुख मुद्दा कम हो जाता है।

मूर्ति पूजा के संबंध में गुरु नानक का मानना था कि परम सत्ता अपने आप में हीं सबकुछ है उसका न तो सृजन किया जा सकता है और न ही उसे स्थापित किया जा सकता है। वह तो निराकार, अवर्ण एवं तीनों गुणों से भिन्न एवं परे है। वे मूर्ति पूजा करने वाले अनाम पंडित से कहते हैं कि हे पंडित तुम परमात्मा की मूर्ति अपने घर में रख उसे स्नान करा, चंदन, धूप, फल चढ़ाते हो, मूर्ति के पांव छूकर उन्हें प्रसन्न करने की कोशिश करते हो तथा भीख मांग अपने खाने, पहनने का प्रबंध करते हो। यह कार्य वास्तव में दंडनीय है। यह मूर्ति पूजा न तो भूखे को खाना दे सकती है और न भूख से मरने से बचा सकती है। यह अज्ञानी समाज का अज्ञान जनित कार्य है।

सर्वधर्म समभाव के रास्ते में सबसे बड़ा अवरोध वैसे धर्मांध लोग हैं जो केवल अपने धर्म ग्रंथों में वर्णित बातों को ही अंतिम सत्य मानकर चलते हैं तथा लोगों के दिमाग में यह बात कूट कूट कर भरते रहते हैं कि केवल उन्हीं का धर्म ईश्वरीय धर्म है केवल उन्हीं का धर्म ग्रंथ ईश्वरीय प्रेरणाओं का संवाहक है। यह मनोविकृति यहीं पर खत्म नहीं होता है बल्कि इन्हीं धारणाओं के आधार पर दूसरे धर्म तथा समाज के लोगों को अपना धर्म त्यागने के लिए बाध्य करता है और ऐसा करते हुए वह धार्मिक यश का अनुभव करता है। भारत का मध्ययुगीन इतिहास इस बात का साक्षी है कि यहां के लोगों को किस प्रकार से अपना धर्म त्यागने के लिए मजबूर किया जाता रहा है।

सांप्रदायिक आक्रामकता को कम करने तथा उस पर नियंत्रण लगाने के उद्देश्य से सिख धर्म में भक्ति के साथ ही शक्ति पर भी जोर दिया गया है। गुरु नानक ने कच्चे धागे का पारंपरिक जनेऊ पहनने से इंकार कर दिया और दया, संतोष, सत्य का जनेऊ पहनने के लिए सबको ललकारा। जबकि क्षमाशीलता दया और त्याग का मार्ग अपनाने वाले गुरु तेग बहादुर ने जनेऊ और जनेऊधारियों के लिए हंसते-हंसते प्राणों की बलि दे दी। सिख गुरुओं ने भारतीय समाज की कमजोरियों को समझा, अनुभव किया तथा ऊंच-नीच के भावना को मिटाकर जनता को अत्याचार का मुकाबला करने के लिए तैयार किया। धर्म को भक्ति- सिद्धांत के साथ ही व्यवहारिक कर्म के साथ जोड़ दिया। इस प्रकार सिख समाज ने संत सिपाही का रुप धारण कर लिया। गुरु गोविंद सिंह, उनके चारों पुत्र, बंदा सिंह बहादुर तथा लाखों सिखो ने अपनी गैरत और स्वाभिमान के जनेऊ की रक्षा करने को प्राणों की बलि दे दी, लेकिन कभी अपनी प्राण रक्षा के लिए अत्याचारियों के सामने झुके नहीं, रिरियाते हुए प्राणों की भीख नहीं मांगी।

भक्ति और शक्ति के अपूर्व संयोग हम श्री कृष्ण के चरित्र में पाते हैं। उन्होने एक ओर कंस शिशुपाल आदि का वध किया तो दूसरी ओर गीता का उपदेश देते वाले स्थितप्रज्ञ ब्रह्म ज्ञानी के रूप में भी अपने को प्रस्तुत किया। केवल अध्यात्म या केवल योद्धा का जो एकांगी व्यक्तित्व प्रचलित था उसे गुरु गोविंद सिंह जी ने खालसा की स्थापना करके भक्ति और शक्ति का अद्‌भुत मेल समाज के समक्ष प्रस्तुत किया। गुरु अंगद देव ने कहा कि क्षत्रिय वीरोचित तथा शूद्र सेवा कार्य करें- यह परिस्थिति के अनुरूप नहीं है। "सभी संगठित होकर ज्ञान, मनन, क्षत्रियत्व तथा सेवा के व्रत को धारण करें और किसी एक काम को किसी व्यक्ति विशेष का अधिकार न माने।" एक हाथ में माला और दूसरे हाथ में तलवार लेकर चलने वाले खालसा का सृजन भारतीय समाज के लिए एक अनुपम उपहार साबित हुआ।

सिख धर्म में अन्य धर्मों के प्रति सद्‌भावना के सैद्धांतिक पक्ष को पूरी तरह से व्यवहारिक बनाया गया है। गुरु नानक देव की दृष्टि में सच्चा गुरु, परम शिक्षक वह है जो सबको एक दूसरे के साथ जोड़ देता है, सबके हृदय से घृणा दूर कर सबको मिलाता है- "नानक सतिगुरु ऐसा जाणीऔ जो सब लय मिलाई जीऊं।" गुरु ग्रंथ साहिब में जयदेव, नामदेव, त्रिलोचन, परमानंद, सदना, बेणी, रामानंद, धन्ना, पीपा, सैन जी, कबीर, रविदास आदि हिन्दू संतों के साथ ही शेख फरीद, शेख भीखन, मरदाना आदि मुस्लिम संतों की वाणियां भी संग्रहित की गई है। इसके साथ ही गुरु ग्रंथ साहिब में निरंजन, ओंकार, राम, गोपाल, वासुदेव, नारायण, आदि नामों के साथ रहीम, करीम, अल्लाह आदि नामों का भी प्रयोग किया गया है तथा भाषा की रुढियों को भी खत्म करने की कोशिश की गई है। सिख गुरुओं ने जहां भारतीय परंपराओं में एकता का प्रयास किया वहीं स्थाई रूप से बस चुके मुसलमानों के विश्वासों के साथ हीं हिंदू विश्वासों के साथ भी समन्वय लाने का प्रयास किया। गुरु अर्जुन देव ने कहा-कहु नानक गुरि खोये भ्रम। एको अलहु पारब्रह्म।।

सिख धर्म में जाति को खत्म करने पर बल- हिंदू समाज में जाति एक स्थायी संस्था का रूप में स्थापित हो चुकी है। खान- पान, सामाजिक व्यवहार, शादी-विवाह आदि सभी रीति रिवाज जातिय आधार पर आधारित रही है। जाति आधारित भेदभाव और उत्पीड़न आज भी जारी है। जाति के नाम पर छूआछूत जैसी घृणित प्रथा सदियों से चली आ रही थी। जातियों का सोपान बना दिया गया। कुछ जातियां बड़ी तो कुछ जातियों को छोटा कहा गया। हरेक बड़ी जाति अपने से नीचे की जाति

वालों पर वर्चस्व कायम रखने की कोशिश करती रही है। पिछड़ी तथा मध्यवर्ती जातियों ने भी अनुसूचित जाति के लोगों को दबायें रखने के लिए इसी जाति व्यवस्था का उपयोग किया। अर्थात सबसे ज्यादा पीड़ित और वंचित समाज शूद्रों अर्थात हरिजनों या अनुसूचित जाति का रहा। गुरु नानक ने जातिभेद को समाप्त करने तथा सबको बराबर मानने पर जोर दिया। गुरु गोविंद सिंह ने भिन्न भिन्न जाति के लोगों को मिलाकर खालसा का गठन किया। हिंदू समाज में प्रचलित जातिसूचक टाईटल जैसे मिश्रा, झा, चौहान, ठाकुर, ओझा, यादव, कुशवाहा, साह, राम, पासवान, मांझी, महरा आदि जिससे उस व्यक्ति की जाति का बोध होता है तथा तदनुसार ही समाज में लोगों का एक दूसरे के साथ व्यवहार पाया जाता है। यह जातिगत बोध सामाजिक एकता की राह में सबसे बड़ी बाधा है। सामाजिक एकता के लिए समानता सबसे पहली शर्त है। इसीलिए गुरु गोविंद सिंह ने सभी पुरुषों के लिए सिंह तथा सभी महिलाओं के लिए कौर टाईटल लगाने का प्रावधान किया गया ताकि व्यक्ति की जाति का पता न चले और समाज में समरुपता लायीं जा सके तथा लोगों में एकता की भावना का संचार हो सके। सभी पुरुषों के लिए बहादुरी के प्रतीक के रूप में सिंह टाईटल लगाया गया है न कि किसी श्रेष्ठ जाति का बोध कराने के लिए।

सिख धर्म में महिलाओं को भी सशक्त बनाने पर बल- अरस्तू अपने पिछले विचारकों को दरकिनार करते हुए यह कहा कि स्त्री एक अधूरा मानव है जो विकास के दृष्टिकोण से पुरुष की तुलना में नीचला सीढ़ी पर है। पुरुषों का निर्माण हीं आज्ञा देने के लिए हुआ है तथा महिलाओं का आज्ञा पालन करने के लिए। स्त्री की इच्छा शक्ति दुर्बल होती है इसलिए उसे अकेला नहीं छोड़ा जा सकता है। भारतीय संस्कृति में एक समय था जब गार्गी, मैत्रेई, आदि स्त्रियां ऋषि होने का सम्मान पाती थी और कोई भी धार्मिक सामाजिक कार्य स्त्रियों के वगैर पूर्ण नहीं माना जाता था। लेकिन कालांतर में उनका स्थान गिरता चला गया। स्त्री को सारे कष्टों का जड़ बताया जाने लगा। उसे बाघिन, नागिन आदि कहा जाने लगा। सिख समाज भी भारतीय समाज होने के कारण इन कमियों से ग्रस्त था, इसलिए गुरु नानक और गुरु गोविंद सिंह ने स्त्रियों के अधिकारों के लिए सशक्त आवाज उठाई। गुरु नानक ने इतिहास रचने वाले राजाओं को जन्म देने वाली जननी स्त्री को बूरा कहने के लिए समाज के ठेकेदारों को फटकारा और बताया कि स्त्री के वगैर अनुशासित समाज की कल्पना हो हीं नहीं सकती। सती प्रथा को सिख धर्म में स्वीकार नहीं किया गया। विवाह को सामाजिक सुरक्षा के साथ ही आध्यात्मिक उन्नति के लिए भी जरूरी बताया गया।

इसी प्रकार महिला समानता एवं महिला सशक्तीकरण के उद्देश्य से सभी महिलाओं के लिए कौर टाईटल का प्रावधान किया गया। कौर शब्द का अर्थ राजकुमारी होता है अर्थात प्रत्येक महिला का महत्व राजकुमारी के रूप में दिया गया। इतना ही नहीं गुरु गोविंद सिंह ने खालसा में महिलाओं को भी अमृत पान कराया तथा उनके के लिए भी पंच ककार कृपाण, कंघा, केश, कड़ा, कच्छा का प्रावधान किया गया और महिलाओं को भी पुरुषों की भांति सशक्त बनाने पर जोर दिया। सिख समाज में स्त्री को पूर्ण सम्मान का अधिकारी माना गया है।

निष्कर्ष- इस प्रकार हम देखते हैं कि सिख विचारधारा भारतीय समाज में व्याप्त सांप्रदायिकता की समस्या का न केवल समाधान खोजने की कोशिश करती है बल्कि सद्भाव को बढ़ावा देने पर भी बल देती है। जातिय पहचान को खत्म कर समरुपता को बढ़ावा देती है। गुरुद्वारा में चलने वाले लंगर भी जातिय कठोरता को मिटाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जैसा कि राम मनोहर लोहिया जी ने जात पात मिटाने के लिए सहभोज पर जोर दिया था।

साथ ही साथ महिलाओं को भी पुरुषों की भांति धार्मिक सामाजिक कार्यों में भाग लेने तथा सशक्त बनाने पर जोर दिया गया है। गुरु नानक स्त्रियों का महत्व पुरुषों से भी अधिक बताते हैं। मानवीय मूल्यों से सराबोर सिख विचारधारा निश्चित रूप से विश्व को एक अनुपम भेंट है।

संदर्भ सूची:

1. सिंह, डा.जोध, श्री गुरु ग्रंथ साहिब (पहली सैंची, हिंदी अनुवाद) पेज संख्या 01-82, द सिख हेरिटेज पब्लिकेशन, पटियाला, पंजाब।
2. सिंह, खुशवंत- सिखो का इतिहास, किताब घर, प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. चंद्र, विपिन- आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता, हिंदी माध्यम कार्यालय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।
4. फाड़िया, बी एल. एवं जैन पुखराज- भारतीय शासन और राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशंस, आगरा।

आर्थिक विकास की अवधारणा एवं मूल प्रेरक

डॉ० महावीर प्रसाद शर्मा

असिसटेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, पं0 बद्रीदत्त पांडे परिसर,
बागेश्वर सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय बागेश्वर, उत्तराखण्ड

आर्थिक विकास की अवधारणा

आर्थिक विकास की धारणा किसी समाज में विभिन्न नीति उद्देश्यों के सन्दर्भ में निर्धारित होती है। इस धारणा का आधार समाज द्वारा स्वीकृत वे मूल्य हैं जिनके आधार पर समाज के निर्माण का संकल्प लिया जाता है। भारतीय दृष्टि से आर्थिक विकास से अभिप्राय राष्ट्रीय आय में वृद्धि करके निर्धनता को दूर करने तथा सामान्य जीवन स्तर में सुधार लाने से है। इसे अर्थव्यवस्था में समस्त क्षेत्रों में उत्पादकता स्तर उच्च करने के सन्दर्भ में भी प्रकट किया जा सकता है।[1]

आर्थिक विकास की धारणा को तीन रूपों में परिभाषित किया गया है- कुल वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि के रूप में प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि के रूप में और आर्थिक सामाजिक कल्याण में वृद्धि के रूप में।[1]

वास्तविक राष्ट्रीय आय में बृद्धि अवधारणा-

कुछ विद्वान राष्ट्रीय आय में दीर्घकालीन एवं निरन्तर बृद्धि को आर्थिक विकास का प्रतीक मानते हैं। अत: वास्तविक राष्ट्रीय आय में दीर्घकालीन तथा निरन्तर बृद्धि ही आर्थिक विकास है। इस अवधारणा को स्पष्ट करने वाली प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं- "आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में दीर्घकाल में वृद्धि होती है।" मेयर एवं बाल्डविन "किसी देश के द्वारा अपनी वास्तविक आय को बढ़ाने के लिए सभी उत्पादक साधनों का कुशलतम प्रयोग करना आर्थिक विकास कहलाता है।" स्पष्ट है कि इस अवधारणा में तीन बातों पर बल दिया गया है। पाल एल्बर्ट इस अवधारणा का मुख्य दोष यह है कि केवल राष्ट्रीय आय में वृद्धि को आर्थिक विकास का प्रतीक माना गया है जबकि यह सम्भव है कि राष्ट्रीय आय में बृद्धि हो किन्तु प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि न हो जिसके कारण आर्थिक विकास गति प्राप्त न कर सके। यदि राष्ट्रीय आय में वृद्धि के साथ-साथ उससे अधिक अनुपात में जनसंख्या बढ़ती है तो राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने पर भी आर्थिक विकास नहीं हो पाता। अत: आर्थिक विकास के सन्दर्भ में प्रति व्यक्ति आय की प्रगति महत्वपूर्ण है।

प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में बृद्धि अवधारणा-

अनेक विद्वानों ने प्रत्येक व्यक्ति आय में वृद्धि को आर्थिक विकास का प्रतीक माना है। इस सम्बन्ध में कुछ प्रमुख विद्वानों का मत निम्नलिखित है-

"आर्थिक विकास एक ओर पूँजी व कार्यशील शक्ति में वृद्धि की दरों के बीच तथा दूसरी ओर जनसंख्या वृद्धि की दर के बीच ऐसा सम्बन्ध है जिससे प्रति व्यक्ति उत्पादन में बृद्धि होती है।" रोस्टोव

"विकास में किसी अर्थव्यवस्था के प्रति व्यक्ति वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करने की शक्ति में वृद्धि करना निहित है।" हार्वे लिविन्सटीन

सामाजिक कल्याण में बृद्धि अवधारणा-

अनेक विद्धानों तथा संस्थाओं ने आर्थिक विकास के लिए सामाजिक कल्याण में बृद्धि को आवश्यक माना है क्योंकि सामाजिक कल्याण में बृद्धि भौतिक गुणों में बृद्धि पर ही निर्भर करती है। अमेरिका की संस्था ओवरसीस 'डेवलपमेन्ट काउन्सिल' ने आर्थिक विकास की धारणा को जीवन सूचकाँक की भौतिक गुणवत्ता में बृद्धि के रूप में परिभाषित किया है। इस संस्था के अनुसार आर्थिक विकास को स्पष्ट करने वाले भौतिक गुणवत्ता के जीवन सूचकांक में प्रत्याशित आयु, बच्चों की मृत्यु दर तथा साक्षरता सूचकांकों को सम्मिलित किया जाता है। तीनों सूचकांकों का औसत भौतिक गुणवत्ता के जीवन सूचकांक को स्पष्ट करता है जो आर्थिक विकास का अभिसूचक है। इस प्रकार आर्थिक विकास की धारणा मानव कल्याण की धारणा के निकट है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित परिभाषाएँ महत्वपूर्ण हैं-

"यह एक बहुमुखी धारणा है इसके अन्तर्गत केवल मौद्रिक आय में ही वृद्धि शामिल नहीं है परन्तु वास्तविक आदतें, शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, अधिक आराम के साथ-साथ उन समस्त सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में सुधार भी शामिल है जो एक पूर्ण एवं सुखी जीवन का निर्माण करती हैं।" बी. सिंह

"आर्थिक विकास में अर्थ वस्तुओं और सेवाओं को अधिक से अधिक मात्रा में उपलब्ध करने से है जिससे कि जनसाधरण के भौतिक कल्याण में निरन्तर व दीर्घकालीन उन्नति हो सके।"- ओकन एवं रिचर्डसन

स्पष्ट है कि सामाजिक कल्याण सम्बन्धी धारणा के अनुसार आर्थिक विकास में केवल आर्थिक परिवर्तन ही शामिल नहीं हैं अपितु सामाजिक, सांस्कृतिक तथा संस्थागत परिवर्तन भी सम्मिलित हैं। आलोचकों का मत है कि यह धारणा उचित नहीं मानी जा सकती क्योंकि इसमें आर्थिक पक्षों की अपेक्षा सामाजिक उन्नति पर अधिक बल दिया गया है।

आर्थिक विकास के मूल प्रेरक

प्रत्येक अर्थव्यवस्था की पृष्ठभूमि में कुछ ऐसे निर्धारक तत्व विद्यमान रहते हैं जिन पर इस देश का विकास निर्भर करता है। ये तत्व दो प्रकार के होते हैं एक, प्रधान चालक और दूसरे, अनुपूरक तत्व। कुछ अर्थव्यवस्थाओं में प्रधान चालक तत्व उपलब्ध होते हैं। अत: उन्हें आर्थिक विकास हेतु अनुपूरक तत्वों को विकसित करना होता है जबकि कुछ अर्थव्यवस्थाओं में अनुपूरक तत्व विद्यमान होते हैं। अत: उन्हें प्रधान चालक तत्वों की व्यवस्था करनी होती है। अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्थाओं में प्रधान चालक तत्वों का अभाव पाया जाता है। अत: उनके सामने इन्हें विकसित करने की समस्या बनी रहती है गति प्रदान करने में असफल रहते हैं। प्रधान चालक तत्वों में उच्च प्राविधिक विकास और तीव्र पूँजी निर्माण सर्वप्रमुख है। पूँजी निर्माण करारोपण से सम्बन्धित है क्योंकि किसी देश की कर प्रणाली बचत और विनियोग को प्रभावित करके पूँजी निर्माण को प्रभावित करती है। पूँजी निर्माण में दो तत्व निहित हैं एक, वास्तविक बचतों की मात्रा में वृद्धि होना और दूसरे, बचतों का कुशल उत्पादक विनियोग होना।

बचत सम्बर्द्धन

बचत सम्बर्द्धन के दो अर्थ हैं। साधारण अर्थ में बचत सम्बर्द्धन से अभिप्राय कुल बचत की मात्रा में बृद्धि होने से है जबकि विशेष अर्थ में सम्बर्द्धन से अभिप्राय बचत के प्रयोग की गहनता में बृद्धि होने से है। प्रथम अर्थ में बचत सम्बर्द्धन का विचार बचत के परिणाम से सम्बन्धित है जबकि द्वितीय अर्थ में बचत की गुणवत्ता या कुशलता से सम्बन्धित है। प्रस्तुत अनुसन्धान में बचत सम्बर्द्धन का प्रयोग अर्थ में ही किया गया है। क्योंकि परिमाणात्मक विचार होने के कारण प्रथम अर्थ में ही बचत सम्बर्द्धन का उचित माप सम्भव है।

बचत सम्बर्द्धन विकास का चालक तत्व है। बचत की मात्रा में वृद्धि किये बिना निवेश वृद्धि और पूँजी निर्माण में बृद्धि सम्भव नहीं होती। अत: बचत सम्बर्द्धन आर्थिक विकास की एक अनिवार्य शर्त है। बचत सम्बर्द्धन के लिये दो तत्व आवश्यक हैं एक ऐसा समाज जो बचत करने की इच्छा और योग्यता रखता हो साथ ही उसमें त्याग करने और कष्टों को सहने की तत्परता भी हो और दूसरे सरकार की ऐसी कर नीति जो जनसामान्य में बचत की प्रेरणा को प्रोत्साहित करती हो।

निवेश सम्बर्द्धन

निवेश सम्बर्द्धन से अभिप्राय निवेश की मात्रा में बृद्धि से तथा निवेश की उत्पादकता में बृद्धि से होता है। निवेश की उत्पादकता में बृद्धि का विचार निवेश की मात्रा को स्थिर रखते हुये उसकी प्रति इकाई की उत्पादन शक्ति में वृद्धि से सम्बन्ध रखता है। इस कार्य में निवेश की प्रत्येक इकाई आर्थिक विकास में अपना सहयोग निरन्तर बढ़ाती जाती है किन्तु इस प्रकार की धारणा का उचित माप सम्भव नहीं है। अत: सामान्यतया निवेश सम्बर्द्धन से अभिप्राय निवेश राशि के आकार में बृद्धि से ही लगाया जाता है। प्रस्तुत अनुसन्धान में भी निवेश सम्बर्द्धन को इसी अर्थ में प्रयोग किया गया है।

निवेश सम्बर्द्धन आर्थिक विकास की आधारशिला है। प्रथम चालक के रूप में यह सुस्त पड़े अनुपूरक तत्वों को गति प्रदान करते हैं और वे गतिशील होकर आर्थिक विकास के चक्र को सक्रिय करते हैं। वास्तव में निवेश सम्बर्द्धन आर्थिक विकास की कुन्जी है। निवेश सम्बर्द्धन के लिए दो तत्व महत्वपूर्ण है। एक निवेश हेतु उपयुक्त आर्थिक वातावरण एवं उपयोग क्षेत्र तथा दूसरे नवीन निवेश को प्रोत्साहित करने वाली सरकारी नीति, विशेषकर सरकार की करारोपण नीति।

स्पष्ट है कि आर्थिक विकास की धारणा प्रति व्यक्ति आय बृद्धि के विचार के निकट ही और प्रति व्यक्ति आय में बृद्धि करने के मार्ग में भारत जैसी विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के समक्ष अनेक बाधाएँ उत्पन्न होती हैं। अत: इन बाधाओं को दूर करते हुये विकास की पूर्व शर्तों को पूरा करना और आर्थिक विकास हेतु एक उपयुक्त वातावरण तैयार करना अर्द्धविकसित देशों के लिये चुनौती भरा कार्य होता है। इस कार्य की पूर्ति हेतु सरकार एक व्यापक आर्थिक नीति का निर्माण करती है जिसका महत्वपूर्ण अंग करारोपण नीति होती है। सरकार प्रेरक कर नीति के द्वारा बचत एवं निवेश को प्रोत्साहित करके आर्थिक विकास का प्रयास करती है।[2]

प्रत्यक्ष कर और बचत सम्बर्द्धन-

सामान्यतया व्यक्ति जिस आय स्तर का आदी हो जाता है उससे नीचे स्तर को स्वीकार नहीं करता है अपितु प्रयत्न द्वारा उसे बनाये रखता है। प्रत्यक्ष कर व्यक्ति की क्रय शक्ति में कमी लाते हैं जिससे उपभोग में कमी होती है साथ ही व्यक्ति घटी हुई क्रय शक्ति को पूरा करने के लिए अधिक परिश्रम करता है ताकि कर पश्चात आय गिरने न पाये। व्यक्ति के इस प्रयास से सरकार को और अधिक कर आय प्राप्त होती है। इस प्रकार कम उपभोग व सरकार के पास कर द्वारा आने वाली बाध्य बचत से अर्थव्यवस्था में कुल बचत में वृद्धि होती है।[3]

प्रत्यक्ष करों का कुल बचत सम्बर्द्धन पर पड़ने वाला प्रभाव अनेक तत्वों पर निर्भर करता है जो निम्नलिखित हैं-

उपभोक्ताओं का भावी उपभोग के प्रति दृष्टिकोण- भारत जैसे देशों में बचत सामान्यतया भविष्य में उपभोग कर ली जाती है। यदि सरकार उचित करारोपण नीति अपनाती है तो विभिन्न कर नियमों के द्वारा वह व्यक्ति को बचत करने तथा भावी उपभोग को टालने की दिशा में प्रेरित कर सकती है।

उपभोक्ता की माँग और कर में परिवर्तन- यदि उपभोक्ता कर बढ़ाने या घटाने पर कुल वस्तुओं की आपनी माँग लगभग स्थिर रखता है तो कुल बचत स्थिर रहेगी केवल इतना अन्तर आयेगा कि वह व्यक्ति के पास है अथवा सरकार के पास। यदि कर और माँग का सम्बन्ध अधिक लोचदार होगा तो प्रत्यक्ष कर लगाने से उपभोग कम हो जायेगा जिसके फलस्वरूप कुल बचत में वृद्धि होगी।

उपभोक्ताओं का आर्थिक स्तर- यदि प्रत्यक्ष कर की प्राप्ति अपेक्षाकृत निम्न आय वर्ग से होती है तो इसका प्रभाव बाध्य बचत के समान होगा क्योंकि इस वर्ग में ऐच्छिक बचत की मात्रा कम की जाती है। यदि प्रत्यक्ष कर उच्च श्रेणी से प्राप्त किया जाये तो यह सम्भावना होगी कि कर का भुगतान ऐच्छिक बचत में से कटौती का रूप लें न कि उपभोग में कमी का ऐसा होने पर बचत का हस्तान्तरण व्यक्ति से सरकार को होगा किन्तु सम्बर्द्धन नहीं होगा किन्तु यदि करों की दरें बहुत ऊँची हो तो उच्च आय वर्ग भी उपभोग में कटौती करने को विवश हो सकता है।[4]

बचत सम्बन्धी छूटें व रियायतें- सामान्यतया सर्वप्रथम प्रमुख प्रत्यक्ष कर आयकर में बचत से सम्बन्धित छूटें व रियायतें करदाताओं को मिलती हैं इनका भी बचत पर प्रभाव पड़ता है क्योंकि वर्तमान उपभोग की इच्छा तथा बचत से मिलने वाले लाभ में होने वाले संघर्ष में बचत अपेक्षाकृत सुदृढ़ स्थिति में आ जाती है। स्पष्ट है कि आयकर के साथ-साथ सम्पत्ति कर व मृत्यु कर भी बचत को बढ़ाते हैं क्योंकि पूर्वजों से प्राप्त सम्पत्ति पर कर वर्तमान आय में से दिया जाता है जिसके फलस्वरूप वर्तमान आय कम हो जाती है तथा उपभोग में कमी के कारण कुल बचत बढ़ जाती है। उपहार कर भी शुद्ध रूप से बचत में बृद्धि करता है क्योंकि दिया गया उपहार कर उपभोग में कमी करके बचत को बढ़ाता है साथ ही उपहार कर का भय अनावश्यक करों को रोककर बचत को बढ़ाता है।[5]

प्रत्यक्ष कर और पूँजी निवेश सम्बर्द्धन- भारत जैसे अर्द्ध विकसित देशों में अल्प विकसित वित्त पोषण क्रियाएँ निवेश के मार्ग में बाधा डालती हैं। अत: विकासशील देशों में एक ऐसे विकल्प की आवश्यकता होती है जो पूँजी निवेश को उचित दिशा व प्रोत्साहन प्रदान कर सके।

संदर्भ

1. Anil Kamboj, "India's Economic Diplomacy: A Positive Approach" World Focus April 2015.
2. Bose, pratim ranjan, "economic diplomacy, Indian style", the hindu business line, 28 march 2013.
3. Chatrterjee, partha (2008), "democracy and economic transformation in India", economic and political weekly, vol. 43, no16.
4. Deaton and j. dreze, 2002, "poverty and inequality in India : A re-examination", economic and political weekly, 7 september.
5. Manish Sharma "Economic Stimulation and Diplomacy", World Focus, April 2015.

भारत-बांग्लादेश सम्बन्धः एक अध्ययन

डॉ० राम कृष्ण सिंह

प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातेजिक अध्ययन विभाग, श्री गणेश राय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डोभी जौनपुर (उ0प्र0)

परमजीत राम

शोधार्थी, रक्षा एवं स्त्रातेजिक अध्ययन विभाग, श्री गणेश राय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डोभी जौनपुर (उ0प्र0)

भारत पहला ऐसा देश था जिसने बांग्लादेश को एक पृथक और संप्रभु राष्ट्र के रूप में इसको मान्यता दी। दिसंबर 1971 में उसकी स्वतंत्रता के तत्काल बाद कूटनीतिक संबंध स्थापित किया। सबसे उल्लेखनीय दौरा जनवरी 2010 में प्रधानमंत्री शेख हसीना का और सितंबर 2011 में तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह का रहा। इन दौरों ने द्विपक्षीय संबंधों के नए द्वार खोले। इसके अलावा मार्च 2013 में भारत के राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने बांग्लादेश की यात्रा की। यह अब तक दौरों में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण था। वह समानता, साझेदारी और परस्पर विकास के सिद्धांत पर बांग्लादेश से भारत के संबंधों पर आधारित था। पिछले चार दशक से ज्यादा समय में दोनों देशों के बीच मजबूत राजनीतिक, आर्थिक, व्यापारिक और सांस्कृतिक संबंध रहे हैं और दोनों ने अपने द्विपक्षीय संबंधों को बढाघ्वा देने के लिए व्यापक सांस्थानिक ढांचे में ढालने का भरपूर प्रयास किया।

भारत और बांग्लादेश के साथ भू राजनीतिक महत्व बांग्लादेश की भौगोलिक स्थिति के कारण भी काफी अधिक है। भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र का भौतिक जुड़ाव भारत की मुख्य भूमि से बहुत ही सीमित है। पूर्वोत्तर के राज्य लगभग पृथक ही हैं और भारत से मुख्य रूप से 20 किमी चौड़े गलियारे से जुड़े हुए हैं, इस गलियारे को चिकन नेक के नाम से भी जाना जाता है। इसे सिलीगुड़ी गलियारा भी कहते हैं। लेकिन भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में पश्चिम बंगाल से बांग्लादेश होते हुए आसानी से पहुंचा जा सकता है। यह क्षेत्र सुरक्षा के लिहाज से भारत के लिए बहुत ही संवेदनशील है, क्योंकि यह चीन की सीमा से भी जुड़ा हुआ है और विद्रोह और उग्रवाद के लिए बहुत ही माकूल समझा जा रहा है।[1]

2014 में पूर्ण बहुमत प्राप्त करने के बाद नरेंद्र मोदी ने प्रधानमंत्री के पद की शपथ लेने के अवसर पर सार्क देशों के नेताओं को आमंत्रित किया था।[2] यह न केवल एक अभतपूर्व कदम था, बल्कि दक्षिण एशिया के प्रति उनके नजरिये को भी यह दर्शाता है। उन्होंने महसूस किया कि क्षेत्रीय शक्ति बनने के लिए भारत के चारों और इसके पड़ोसियों के साथ दोस्ताना संबंध बनाने होंगे। अमेरिका, रूस, चीन और यूरोपीय संघ तक पहुंचने से पहले अपने पड़ोसियों तक पहुंचना दक्षिण पूर्व एशिया से जुड़ने की उनकी प्राथमिकता का स्पष्ट रूप से संकेत था। इस संदर्भ में, प्रधानमंत्री मोदी के एजेंडे में बांग्लादेश शीर्ष पर हैं।[3]

क्योंकि बांग्लादेश न केवल भारत के साथ सबसे बड़ी अंतरराष्ट्रीय सीमा साझा करता है, बल्कि सार्क देशों में सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार भी हैं 2012-13 में पॉच बिलियन डालर का कारोबार हुआ था। दक्षिण पूर्व एशिया और चीन से जुड़ने के लिए इसकी स्थिति सामरिक रूप से अति महत्वपूर्ण है। इतना ही पिछले दशक में बांग्लादेश के साथ भारत के संबंध तेजी से आगे बढेघ हैं। हालांकि कुछ चुनौतियां भी रास्ते में जरूर आई थीं। क्षेत्रीय कनेक्टिविटी बढाघ्ने के लिए परियोजनाओं को जारी रखने को लाइन आफ क्रेडिट को बढाघ्ने के बांग्लादेश के अनुरोध को भी भारत ने मान लिया था।4

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने न केवल पडोघ्स पहले की नीति अपना कर उल्लेखनीय पहल की है, बल्कि ज्यादातर पड़ोसी देशों में दौरे कर उसे मुकाम तक पहुंचाने के लिए भी पूरी तरह सक्रिय हैं। उन्होंने अपने विदेश नीति के एजेंडे में पड़ोस के साथ संबंध को उच्च प्राथमिकता में रखा है। अगस्त 2015 में भूमि सीमा समझौता (एलबीए) संसद में सफलतापूर्वक पास होने के बाद प्रधानमंत्री मोदी को लेकर बांग्लादेश में उम्मीदें काफी बढ़ गई। एलबीए के पक्ष में सभी सदस्यों ने वोट दिया था, कोई भी उसके विरोध में नहीं था। बांग्लादेश में भी लोगों की यह उम्मीदें बढ़ गई कि मोदी संबंधों को बरकरार रखने के लिए घरेलू जनमत प्राप्त करने में सक्षम हैं। बांग्लादेश में शुरूआती आशंकाओं के बावजूद सभी पार्टियों ने प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का स्वागत किया और उम्मीद जताई कि भविष्य में दोनों देशों के बीच संबंध और प्रगाढ़ होंगे।[5] अक्षय ऊर्जा के लिए एमओयू पर हस्ताक्षर होने के अलावा दोनों देशों ने सामाजिक क्षेत्र में भ समझौते किए हैं। सके तहत स्वास्थ्य, पर्यावरण, मत्स्य कारोबार को बढ़ावा देने पर सहमति बनी है। भारत बांग्लादेश में विकास योजनाओं को संचालित करने के लिए भी आर्थिक मदद दे रहा है।[6]

वादों को पूरा करने की प्रकिया में तेजी लाकर दोनों देशों के बीच विश्वास के संबंधों को और मजबूत करने की जरूरत है। भारत और बांग्लादेश के बीच बढ़ते गठजोड़ का श्रेय केवल भारतीय नेतृत्व को ही नहीं जाता है, बल्कि ढाका भी इसमें बराबर का भागीदार हैं। बांग्लादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना ने देश में भारी विरोध के बावजूद राजनीतिक जोखिम उठाते हुए अपनी तरफ से भारत से संबंध सुधारने का भरपूर प्रयास किया है। इन विरोधियों ने बांग्लादेश के हित से समझौते का आरोप उन पर लगाया था।

प्रधानमंत्री मोदी की मेजबान प्रधानमंत्री शेख हसीना ने लंबे समय से लंबित भू सीमा समझौता को विदेश नीति की विराट सफलता बताया। प्रधानमंत्री मोदी का बांग्लादेश दौरा भारत की विदेश नीति की सफलता के महत्व को दर्शाता है। शेख हसीना ने प्रधानमंत्री के रूप में अपने सात साल के कार्यकाल में भारत के अधिकारियों के साथ सक्रिय सहयोग से सभी विवादों को तेजी से निपटाया है। दूसरी तरफ बीएनपी और जमात ए इस्लामी बांग्लादेश की राजनीति में भारत विरोध रूख रखते हैं। भारत और बांग्लादेश संबंध अगले दशक में कनेक्टिविटी परियोजनाओं से और मजबूत होगा। इससे धीरे-धीरे पूर्वोत्तर के राज्य न केवल बेहतर ढंग से बांग्लादेश से जुड़ेंगे, बल्कि भारत के लिए भी उनसे बेहतर ढंग से जुड़ना आसान होगा।

प्रधानमंत्री मोदी की ढाका यात्रा के दौरान भारत बांग्लादेश गठजोड़ हुआ, तो द्विपक्षीय गठजोड़ को नया आयाम देने के अलावा बांग्लादेश के नीति निर्माताओं, विद्वानों और मीडिया का सकारात्मक नजरिया भी सामने आया। भू सीमा समझौता के पूरी तरह लागू हो जाने से भारत बांग्लादेश के बीच 4096 किमी लंबी सीमा पर मानव, मादक पदार्थों और हथियारों की तस्करी, गैरकानूनी अप्रवासन, कई अन्य अवैध गतिविधियों पर अंकुश लग जाएगा। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की यात्रा के समय नई दिल्ली और ढाका ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मानव तस्करी रोकने के लिए एमओयू पर हस्ताक्षर किया था। इससे सभी तरह की मानव तस्करी खासतौर से बच्चों, महिलाओं की तस्करी को रोकने में न केवल मदद मिलेगी, बल्कि मानव तस्करी के संगठित गिरोह के बारे में जॉच और उनके खिलाफ कार्रवाई में भी तेजी आएगी। भारत और बांग्लादेश के बीच वाणिज्यिक गठजोड़ और आर्थिक सहयोग पिछले कुछ वर्षों में बढ़ा है।

तमाम सारी बातों के बावजूद भारत के साथ द्विपक्षीय संबंधों में बांग्लादेश की कई बडीघ समस्याएं भी हैं। समस्या के इन मुद्दों में जल बंटवारे से लेकर बी.एस.एफ. द्वारा सीमा पर यदा कदा हत्याएं, व्यापार जटिलतांए, भारत के मादक द्रव्यों के लिए बांग्लादेश को एक बाजार की तरह इस्तेमाल करने, धार्मिक अल्पसंख्यकों को बांग्लादेश की सीमा में घुसपैठ कराना, कई बड़ी संधियों के प्रावधानों को भारत द्वारा लागू न करना आदि शामिल है। द्विपक्षीय संबंधों को मजबूत करने और परस्पर विश्वास बहाली के लिए यह जरूरी है कि दोनों देशों को अपने परस्पर हित और लाभ के लिए कोई साझा आधार तलाशना होगा। भारत की यह भी धारण है कि बांग्लादेश अपनी सौदेबाजी की क्षमता को बढाघ्ने के लिए पूरक के तौर पर चाइना कार्ड का भी इस्तेमाल करता है।

इसलिए जरूरी है कि दोनों देश परस्पर विश्वास में आई कमी को दूर करें क्योंकि इससे द्विपक्षीय गठजोड़ पर असर पड़ रहा है। चूंकि भारत बड़ा और आर्थिक रूप से सक्षम है इसलिए बांग्लादेश के साथ संबंधों में सुधार के लिए वह रचनात्मक कदम उठाकर इस प्रक्रिया में तेजी ला सकता है। भारत यदि बांग्लादेश की ताकत को समझता है तो उसकी कमजोरियों को भी समझे जो कि इसकी भू राजनीतिक स्थिति के कारण प्राकृतिक रूप से पैदा हुई हैं। हालांकि बांग्लादेश की पूर्वोत्तर एशिया और भारत के पूर्वोत्तर से निकटता इसे कुछ सुविधाएं भी देता है, क्योंकि यह भारत से तीन ओर से घिरा हुआ है। इसलिए भारत पर उसकी निर्भरता स्वाभाविक रूप से ज्यादा है। बांग्लादेश पर चीन का बढ़ता प्रभाव काफी हद तक भारत पर निर्भर करता है, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि इससे भारत के वर्चस्व की कितनी चुनौती मिलती है। दोनों देशों को अपनी कमजोरियों को पहचान कर दोनों देशों के नेताओं द्वारा जताई गई प्रतिबद्धता को पूरा करने के हर अवसर का लाभ उठाना चाहिए। पूर्वविदेश सचिव तथा वर्तमान विदेशमंत्री एस. जयशंकर ने एक बार पत्रकारों से कहा था कि दोनों देशों को अपने मौजूदा आतंकवाद रोधी ढांचे को मजबूत करना चाहिए। बांग्लादेश को भारत का बहुत ही मजबूत समर्थन हैं क्योंकि वह आतंकवाद और उग्रवाद से जूझ रहा है। उन्होंने कहा कि अच्छे संबंध बरकरार रखकर भारत और बांग्लादेश अपने लंबित द्विपक्षीय मुद्दों को सुलझा सकते हैं।

शेख हसीना की भारत यात्रा- 2019 और भारत-बांग्लादेश में बढ़ता सहयोग भारत और बांग्लादेश के मध्य बढ़ते सहयोग को बांग्लादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना की 3-6 अक्टूबर, 2019 की भारत यात्रा के दौरान भी देखा जा सकता है। इस दौरान 5 अक्टूबर को उनकी भारत के साथ द्विपक्षीय वार्ता सम्पन्न हुई जिसमें उन्होंने असम में एनआरसी के सम्बन्ध में अपनी चिंताओं

से भारत को अवगत कराया जिस पर भारतीय प्रधानमंत्री ने यह भरोसा दिया कि यह भारत का आंतरिक विषय है और बांग्लादेश पर इसका प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसके बाद दोनों देशों के बीच तीन द्विपक्षीय परियोजनाओं का उद्घाटन किया गया।[7] जो एल0पी0जी0 इंपोर्ट, वोकेशनल ट्रेनिंग और सोशल फैसिलिटी से जुड़ी थी। इसके अलावा दोनों के बीच निम्नलिखित 7 समझौते पर हस्ताक्षर भी किए गए।[8]

1. भारत, बांग्लादेश में तटीय निगरानी रडार प्रणाली स्थापित करेगा।
2. बांग्लादेश की फेनी नदी से त्रिपुरा में पेयजल की आपूर्ति की जाएगी।
3. बांग्लादेश में स्थित छत्रोग्राम और मोंगला बंदरगाह का उपयोग भारत द्वारा (विशेषकर अपने पूर्वोत्तर राज्यों के लिए) माल की ढुलाई के लिए उपयोग में लाया जाएगा।
4. ढाका विश्वविद्यालय और हैदराबाद विश्वविद्यालय के बीच समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर।
5. भारत-बांग्लादेश के लिए लाइन आफ क्रेडिट के कार्यान्वयन की अपनी प्रतिबद्धता को बनाए रखेगा
6. युवा मामलों में सहयोग और बढ़ाया जाएगा।
7. सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आदान-प्रदान के बढ़ाने पर जोर।

इस समझौते के अवसर पर भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा कि, "मुझे खुशी है कि आज मुझे भारत और बांग्लादेश के बीच तीन और द्विपक्षीय परियोजनाओं के उद्घाटनका अवसर मिला। 1 साल के भीतर हमने 12 संयुक्त प्रोजेक्ट का उद्घाटन किया है। यह तीनों द्विपक्षीय परियोजनाएं एलपीजी इंपोर्ट वोकेशनल ट्रेनिंग और सोशल फैसिलिटी से जुड़ी हुई हैं जिनका मकसद दोनों देशों के नागरिकों का जीवन और बेहतर बनाना है।" इस अवसर पर बांग्लादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना ने कहा कि, "इस समझौते से भारत बांग्लादेश के सम्बन्धों को और मजबूती मिली है और उन्हें उम्मीद है कि भविष्य में यह सहयोग इसी रूप में जारी रहेंगे।"[9] इन समझौते से भारत को यह फायदा होगा कि इसके पूर्वोत्तर राज्यों के लिए आसानी और कम खर्च में बांग्लादेश से एलपीजी की आपूर्ति संभव हो सकेगी और त्रिपुरा की फेनी नदी से त्रिपुरा राज्य में बेहतर जल आपूर्ति हो सकेगी वहीं बंगाल की खाड़ी में उसे अधिक आसानी से चीन की गतिविधियों पर नियंत्रण रखने का अवसर भी प्राप्त होगा। वहीं दूसरी तरफ बांग्लादेश के लिए भारत में इलाज और शिक्षा की सुविधा और आसान हो सकेगी, वहाँ के लोगों का आसानी से आवागमन हो सकेगा, उसके उत्पादों के लिए भारत जैसा बड़ा बाजार आसानी से उपलब्ध हो सकेगा। इस द्विपक्षीय वार्ता के दौरान भारत बांग्लादेश के बीच एनआरसी मुद्दा, तीस्ता जल बँटवारे का मुद्दा, और रोहिंग्या समस्या पर विचार विमर्श हुआ। भारत ने बांग्लादेश को अवगत कराया कि एनआरसी की प्रक्रिया भारत में न्यायालय के आदेश के तहत पूर्ण रूप से कानूनी तरीके से की जा रही है। भारत ने बांग्लादेश को आश्वासन भी दिया कि तीस्ता जल बँटवारे को लेकर शीघ्र ही दोनों देश सहमति बनाने का प्रयास करेंगे। बांग्लादेश ने भी भारत को आश्वासन दिया है कि रोहिंग्या समस्या को हल करने में वह हर संभव मदद करेगा।

संदर्भ

1. Ayan Guha,(2014), "Strategic importance of Bangladesh in Indo-China rivalry", India Tommorrow, http://www.indiatomorow.net/eng/Strategic-importance- of-bangladesh-in-indo-China-rivaly.
2. https://www.mea.gov.in/Portal/ForeignRelation/Bangladesh_July_2014_pdf.
3. Ibid.
4. Ibid.
5. Ishfaq Ilahi choudhury, (2015),"Bangladesh-India relations: The way forward", The Daily Star, www. The dailystar. Net/Bangladesh- india- relations-the-way-forward-26089.
6. Tridivesh Singh Maini, (2015), "India-Bangladesh Relations: The Bigger Picture", The Diplomat, the diplomat.com /2015/06/india Bangladesh-relations-the bigger-picture.
7. drishtiias.com/ Hindi/daily-updates/ daily- news -editorials/ India -Bangladesh-relations. October 10. 2019. dhyeyaias-com/ videos /global & mudde/India-Bangladesh-new-era-of -relations.
9. भारत-बांग्लादेश सहयोग और आर्थिक भागीदारी https://www.drishtiias.com/hindi/loksabharajyasabha-discussions/india-banglades01 Aug 2020.

21वीं शताब्दी में विश्व राजनीति में महिलाओं की सहभागिता एवं लैंगिक न्याय स्थापित

पूजा कुमारी

शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग मगध विश्वविद्यालय गया, बिहार

डॉ० अंजनी कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, टी.एस. कॉलेज,हिसुआ, राजनीति विज्ञान विभाग, मगध विश्वविद्यालय गया, बिहार

शोध सारः-

लैंगिक न्याय की अवधारणा के द्वारा 21वीं सदी की वैश्विक राजनीति में महिलाओं की भागीदारी स्थापित करवाने हेतु सैद्धांतिक सहमति तो प्राप्त हो गई है। परन्तु व्यवहारिक रूप से महिलाओं की भागीदारी अत्यंत ही चिंताजनक स्थिति में है। क्योंकि वैश्विक सत्ता एवं सत्ता के केन्द्रों पर पुरूषवादी मानसिकता बुरी तरह हावी है। यहाँ तक कि जहाँ महिलाओं को वैधानिक सत्ता हासिल हुई है वहाँ उनके निर्णयों पर पितृसत्तात्मक सोच का प्रभाव पड़ा है। हाँलाकि कई राष्ट्रों के राष्ट्रप्रमुखों के रूप में महिलाओं का अभ्युद्य हुआ है, परन्तु विश्व की महाशक्तियों अमेरिका, रूस, जापान, फ्रांस, इंग्लैण्ड, आदि के राष्ट्र प्रमुख पुरूष ही है। जैसा कि हम जानते हैं कि युद्ध रक्तपात सहित राजनीति होता है। युद्ध में हारे हुए राष्ट्रों के प्रदेशों में जिते हुए राष्ट्रों की सेनाएँ घुसती है तो विजित प्रदेशों के महिलाओं के साथ जबरदस्त लैंगिक हिंसा होती है। इसलिए वैश्विक राजनीति में महिलाओं का सशक्तिकरण मानवता के लिए अत्यंत आवश्यक है। लैंगिक न्याय का सम्बंध सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, पर्यावरणीय, सांस्कृतिक और शैक्षणिक विषयों से जुड़ा है और इनमें सुधार करके हम लैंगिक न्याय स्थापित कर सकते हैं।

21वीं शताब्दी में विश्व राजनीति में महिलाओं के समक्ष लैंगिक न्याय की समस्या का सामाधान विश्व के प्रत्येक देश अपने-अपने स्तर पर कर रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र ने लैंगिक न्याय के लिए बहुत बड़ा जनमत तैयार किया है। 1946 में महिलाओं की भलाई के लिए एक स्वायत संस्था स्थापित की गई ।संयुक्त राष्ट्र महिला विकास फण्ड (UNIFEM) एक संयुक्त राष्ट्र की अतिरिक्त संस्था है जो महिलाओं के राजनीतिक, सामाजिक विकास पर काम करती है। इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र विकास योजना (UNDP) की स्थापना वैश्विक स्तर पर लैंगिक न्याय को स्थापित करने के लिए किया गया है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखें तो आज भी विश्व स्तर पर राजनीति में महिलाओं की भागीदारी बहुत कम है। राजनीति में महिलाओं की वैश्विक रैंकिंग में 191 देशों में भारत 149वें स्थान पर है जो कि विश्व की सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। हाँलांकि कुछ देश अच्छा प्रदर्शित कर रहे हैं। रवांडा, क्यूबा और बोलिबिया के निचले सदन में क्रमशः 61.3%, 53.2% और 53.1% सीटों पर महिला सांसद है वहीं भारत में 16वीं लोकसभा में सिर्फ 11.3% सांसद महिलाएं थी, 17वीं लोकसभा में 14% यह संख्या विश्व औसत से काफी कम है। 1 जनवरी 2019 तक सिर्फ 50 देशों में ही या उससे अधिक महिला सांसद है। 21वीं शताब्दी में विश्व राजनीति में महिलाओं के समक्ष लैंगिक भेदभाव की समस्या को देखते हुए विश्व राजनीति के परिदृश्य में व्यापक बदलाव आया है जिसमें बड़ी संख्या में महिलाएं नेतृत्वकारी भूमिका में है। फिनलैंड में दुनिया की सबसे कम उम्र की महिला प्रधानमंत्री बनी है। फिर भी इनकी स्थिति में सुधार की और आवश्यकता है। जो विश्व के समक्ष एक बड़ी चुनौती के रूप में है।

मूल शब्दः- लैंगिक न्याय, महिला, राष्ट्र, विश्व, राजनीति, आन्दोंलन

प्रस्तावनाः-

विश्व के समूचे इतिहास में महिलाओं की परिस्थिति एवं भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है। हमने 21वीं सदी में प्रवेश किए हैं विश्व राजनीति में महिलाओं की सहभागिता वास्तव में विभिन्न आन्दोलनों और सिद्धांतों का ही परिणाम है। वास्तव में यह विकासात्मक प्रक्रिया है जो उद्विकास की परिणति है।

व्यवहारिक रूप से महिला सहभागिता यह स्पष्ट करता है कि नारी को पूर्ण रूप से सता सौंपें। सहभागिता का मतलब ही यही होता है कि शक्ति का पूर्णरूपेण निवेश किया जाए। महिला सहभागिता के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि यह पद पूरी तरह से नारियों के प्रति समर्पित है कि वो अपने इर्द-गिर्द माहौल संगठनों और जीवनों पर पूर्णरूपेण नियंत्रण करें। महिला सहभागिता का विचार पूर्णरूपेण एसी शक्ति से संबंधित है कि जो हमारे जीवन को एक आकार देती है। महिला सहभागिता का मतलब महिलाओं को समान परिस्थिति से है। यदि नारियाँ सामाजिक और आर्थिक रूप से सशक्त हो गई तो वाकई में यह एक निर्णायक कदम होगा जिससे हमारी सामाजिक सुरक्षा निश्चित होगी और उसका सहभागिता सुनिश्चित होता जाएगा।

महिला सहभागिता के पक्ष में महिलाओं के लिए उच्चस्तरीय शिक्षा का स्तर बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ, उत्पादन, संसाधनों के लिए समान स्वामित्व, आर्थिक एवं व्यवसायिक क्षेत्रों में बढ़ती हुई भागीदारी, अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति जागरूकता, जीवन स्तर में सुधार-आत्म निर्भरता की प्राप्ति तथा आत्म-सम्मान एवं आत्म विश्वास की प्राप्ति शामिल है। ये सारी चीजें समाज की भलाई के लिए शामिल है।

हमें हमेशा यह ध्यान में रखना चाहिए कि सहभागिता एक प्रक्रिया है, यह कोई घटना नहीं है, जो हमेशा से परम्परागत रूप से चले आ रहे शक्ति समीकरणों को चुनौती देता है। लैंगिक भेद-भाव की समाप्ति तथा निर्णय प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी आदि कुछ ऐसे पक्ष है जो प्रत्यक्ष नारी सहभागिता से संबंधित है। वास्तव में महिला सहभागिता केवल एक पक्ष नहीं वरन् बहुपक्षीय अवधारणा है। इसका महिलाओं के जीवन पर गहरा प्रभाव है और यह उन्हें एक अवसर देता है कि वे अपने जीवन का भरपूर आनन्द लें।

आज के समाज में हम सभी महिला सहभागिता की बात करते हैं। लेकिन हम सभी को याद रखना चाहिए कि सहभागिता वास्तव में एक प्रक्रिया है क्योंकि यह हमें एक भाव देता है और हमें इस योग्य बनाता है ताकि हम लैंगिक समानता न होने के कमी से उबर पायें और राज्य स्तर पर लैंगिक भेदभाव से मुक्त हो पाएँ।

व्यावहारिक अर्थों में, सहभागिता का तात्पर्य यह है कि महिलाएँ स्वायत्ता प्राप्त कर सकें और अपने कार्यक्रम तय कर पायें। और सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक निर्णय की प्रक्रिया में भागीदारी तय कर पायें। आज महिला सहभागिता शब्द सारे समाज तथा विकसित एवं विकासशील देशों के लिए पहेली बन चुका है। वास्तव में आज के समय में महिला सहभागिता एक प्रमुख विषय बन चुका है। जिसे अनदेखा करके परिवार, समाज, देश के संपूर्ण विकास की कल्पना नहीं किया जा सकता है। महिला सहभागिता 21वीं शताब्दी का बहुचर्चित विषय है। अभी तक इस विषय पर ढेर सारे सम्मेलन हो चुके हैं। लैंगिक अन्याय एक गंभीर समस्या है जिसके लिए सरकार समाज को उदार होना होगा जिससे समाज में लैंगिक सन्तुलन को स्थापित किया जा सके। लैंगिक न्याय का संबंध सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, पर्यावरणीय, सांस्कृतिक और शैक्षणिक विषयों से जुड़ा है। और इनमें सुधार करके हम लैंगिक न्याय को स्थापित कर सकते हैं। आधुनिक विकास परिवर्तन व सन्तुलन विकास के रास्ते भी अपेक्षा रखता है। वर्तमान विकास की प्रक्रिया समाज में आय के अवसर को बढ़ाने के लिए माँग की गतिशीलता पर जोर देती है। ऐसी स्थिति में रोजगार व आय के अवसरों को बढ़ाना आवश्यक हो जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने लैंगिक न्याय के लिए बहुत बड़ा जनमत तैयार किए हैं। 1946 में महिलाओं की भलाई के लिए एक स्वायत संस्था स्थापित की गई थी। यह आयोग विश्वभर की महिलाओं का आंकड़ा तैयार करके उनके भलाई व मानवाधिकारों की देखरेख करता है। लैंगिक-समानता को लेकर मानवाधिकार संधि महिलाओं से किसी प्रकार के भेदभाव का अन्त करता है। संयुक्त राष्ट्र विकास योजना (UNDP) का भी विकास लैंगिक विकास सूचकांक को दिखाने हेतु पुरूष व स्त्री के बीच असमानता को दर्शाने के लिए किया गया है।

संयुक्त राष्ट्र संघ का यह समसत प्रयार लैंगिक न्याय को वैश्विक स्तर पर स्थापित करने हेतु किया गया है। लैंगिक पदसोपान व महिला सशक्तिकरण के लिए भारत, अमेरिका व यूरोप के अन्दर कुछ कानून व अध्यादेश को तैयार किया गया है। भारतीय संविधान के कुछ अनुच्छेदों में लैंगिक समानता का उपबंध दिखता है अनु0 19 अभिव्यक्ति व बोलने की स्वतंत्रता अनु0 21 जीवन का अधिकार अनु023 शोषण के विरूद्ध अधिकार, अनु0 42 काम के स्थल पर मानवीय वातावरण तैयार करने का राज्य को निर्देश देता है। और अनु0 51 (।) (C) महिलाओं की गरिमा का ध्यान रखता है। लैंगिक असमानता अमेरिका

व यूरोप से जयादा भारत में देखने को मिलता है। यह UNDP के लैंगिक विकास सूचकांक में स्पष्ट दिखाई दे रहा है। यूरोपीय संघ का यह आधारभूत सिद्धांत है कि पुरूष-स्त्री के बीच भेदभाव ना हो। यूरोपीय संघ के समझौते के अनु0 2 और अनु0 3 (2) में लैंगिक समानता की बात की गयी है। अमेरिका के 19वें संविधान संशाधन स्त्री व पुरूष दोनों को मतदान का समान अधिकार देता है और एक तरह से अमेरिका के अन्दर लैंगिक समानता के लिए यह पहला संविधान संशोधन है। ये सारे कानून व अध्यादेश विश्वभर की महिलाओं की स्थिति पुरूष के समान बनाने के लिए है लेकिन भारत जैसी विविधता पूर्ण देश में लैंगिक न्याय को स्थापित करना एक कठिन कार्य है।

शोध उद्देश्यः-

लैंगिक न्याय का सम्बंध सामाजिक गतिशीलता से जुड़ा है और परम्परागत समाजों में इसका अत्यंत महत्व है। इस शोध पत्र का उद्देश्य महिलाओं का विभिन्न आयामों में यश-ज्ञान करना न होकर वर्तमान समय में विश्व-राजनैतिक पटल पर महिलाओं की स्थिति का विश्लेषण करना व अलैंगिक न्याय की कमियों को उजागर करना तथा सुझाव प्रस्तुत करना है। अतः हम विषय-वस्तु की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए मुख्य विषय को रेखांकित करेंगे।

(1) सर्वप्रथम हम पुरे विश्व में महिलाओं की राजनैतिक स्थिति पर नजर डाले तो पायेंगे कि अधिकतर देश राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं को उनका उपयुक्त स्थान व प्रतिनिधित्व देने में नाकाम रहे हैं। यदि विश्व के विभिनन देशों की राजनीति में महिला प्रतिनिधित्व की बात की जाये तो रवाँडा में 56 प्रतिशत, स्वीडर में 46 प्रतिशत, क्युबा में 43 प्रतिशत, फिनलैंड में 42 प्रतिशत, अर्जेंटीना में 40 प्रतिशत है। इसके अतिरिक्त अनेक यूरोपिय देशों में महिलाओं की राजनैतिक भागीदारी 30 प्रतिशत से अधिक है। यहाँ पर एक बात ध्यान देने योग्य है कि समानता की बात करने वाले साम्यवादी देशों में भी महिलाओं का राजनीति में स्थान विशेष नहीं है। क्युबा में यह सबसे अधिक 26 प्रतिशत, चीन में 21 प्रतिशत, कोरिया में 15.6 प्रतिशत महिला प्रतिनिधित्व है। दूसरी ओर ऐसी ही समान स्थिति विकसित देशों की है। कनाडा में 22 प्रतिशत, यू0के0 में 20 प्रतिशत और यू0एस0ए0 में 17 प्रतिशत महिलाओं इन देशों में राजनैतिक प्रतिनिधित्व करती है। अभिप्राय यह है कि जब तक किसी स्थान में न्याय का वितरण समाज के प्रत्येक व्यक्ति तक समुचित और समान रूप से नहीं होगा तब-तक एक न्यायपूर्ण व्यवस्था का खण्डन किया जाना अब असंभव है और न्यायपूर्ण विधान-व्यवस्था को अपनाना पड़ेगा।

(2) महिला साक्षरता दर को बढ़ाने के लिए उनमें जागरूकता व संगठित होने की आवश्यकता है। वर्तमान समय के पुरूष प्रधान समाज में भारतीय महिलाओं की स्थिति काफी दहलाने वाली बनी हुई है। 21वीं सदी के दशक में प्रवेश करने के बाद भी लोग 15-16वीं सदी में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। आज आर्थिक सशक्तिकरण के इतने प्रयासों के बाद भी सच यह है कि कुछ शिक्षित व जागरूक महिलाएँ ही सरकारी योजनाएँ का लाभ उठा रही है।

(3) राजनीति में महिलाओं के पीछे होने में उसकी अरूचि का विशेष योगदान है तथा उनकी सामाजिक और निजी जिम्मेदारियों का दोहरा बोझ उनकी अरूचि का कारण बनता है। इसके अलावा भारत में रूढ़िवादिता भी महिलाओं के राजनैतिक पिछड़ेपन का मुख्य कारण है। उनकी यह रूढ़िवादिता व दमित स्थिति मतदाताओं को लुभाने में अक्षम रहती है। दाँव-पेंच की राजनीति में महिलाओं की सादी समझ व सोच कछ काम नहीं आती है और वह राजनीति से अपना पल्ला झाड़ लेती है।

(4) महिलाओं के लिए क्या किया जा रहा है। कौन कर रहा है। यह सब न तो ज्यादातर महिलाओं को पता है, न ही उनके परिवार वालों को। तो इससे यही स्पष्ट होता है कि महिलाओं में अभी तक वो जागरूकता नहीं आ सकी है।

शोध विधिः-

इस शोध अध्ययन विधि में निश्चित परिणाम प्राप्त करने के लिए समक संकलन हेतु द्वितीयक समंको का प्रयोग किया गया है। जो इस प्रकार से है:-

द्वितीयक संमकः-

(1) पत्र-पत्रिकाएँ - दैनिक जागरण, हिन्दुस्तान, योजना, प्रतियोगिता दर्पण।

(2) शोध अध्ययन से सम्बंधित पुस्तकें

निष्कर्षः-

उपर्युक्त विश्लेषण के अनुसार हम यह कह सकते हैं कि न सिर्फ भारत में बल्कि सम्पूर्ण विश्व में महिलाओं की राजनैतिक स्थिति सुधरने के लिये कुछ अच्छे प्रयास किये गये हैं, परन्तु फिर भी बहुत कुछ करने की आवश्यकता है।

संदर्भ - सूचीः

1. सुधीर वर्मा, पॉलिसी एण्ड एडमिनिस्ट्रेषन, आलेख परिवर्तन, जयपुर 1992 पृ0-09
2. डी0 पॉल चौधरी, वूमन, वेलफेयर एण्ड डेवलपमेण्ट- ए सोर्स बुक, इण्टर इण्डिया पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1992, पृ0-55.
3. नीरा देसाई, भारतीय समाज में नारी, मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड, नई दिल्ली, 1982, पृ0-1-6.
4. आशा रानी व्होरा, भारतीय नारी दशा व दिश नेशनल, नई दिल्ली, 1983.
5. सरस्वती मिस्त्री, भारतीय स्त्रियों की प्रस्थिति, शारदा पब्लिकेशन हाऊस, दिल्ली,1996, पृष्ट-56.
6. प्रज्ञा आप्टे, भारतीय समाज में नारी, क्लासिक पब्लिकेशन हाऊस, 1996, पृष्ट-27
7. प्रो0 कमला प्रसाद स्व0 राजेन्द्र शर्मा (स) स्त्री मुक्ति का सपना, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृष्ट-43.

हाइब्रिड विश्व युद्ध और संयुक्त राज्य अमेरिका-चीन प्रतिद्वंद्विता: एक विश्लेषण

स्वाति सिंह

शोधार्थी स्नात्तकोत्तर राजनीतिक विज्ञान विभाग, (जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा)

सारांश

लेख का प्रस्ताव हाइब्रिड विश्व युद्ध की अवधारणा को आगे बढ़ाना और इसे विश्व व्यवस्था के वर्तमान ऐतिहासिक-स्थानिक संक्रमण में संयुक्त राज्य अमेरिका और चीन के बीच संघर्ष से जोड़ना है। हाइब्रिड विश्व युद्ध की अवधारणा को नए शीत युद्ध के विपरीत और 1970 से 1980 तक उत्पादन, व्यापार और वित्त की एक अंतरराष्ट्रीय प्रणाली के रूप में विश्व पूंजीवादी व्यवस्था द्वारा हासिल की गई विशेषताओं, एकध्रुवीय वैश्विक व्यवस्था के संकट में रणनीतिक प्रतिस्पर्धा की गतिशीलता और चीन के उदय की विशेषताओं और यूएसएसआर से अलग इसके महत्व के संबंध में विकसित किया गया है। इस वैचारिक ढांचे से, संयुक्त राज्य अमेरिका-चीन प्रतिद्वंद्विता का अवलोकन किया जाता है।

मूल शब्द: हाइब्रिड विश्व युद्ध, संयुक्त राज्य अमेरिका-चीन प्रतिद्वंद्विता, ऐतिहासिक-स्थानिक संक्रमण, एशिया प्रशांत, एकध्रुवीयवाद-बहुध्रुवीयवाद

परिचय

सीरिया और यूक्रेन में संघर्षों से या चीन के बढ़ते प्रभाव के कारण एशिया प्रशांत में बढ़ते तनाव से, एक नए शीत युद्ध का विचार प्रेस में और विभिन्न "पश्चिमी" विश्लेषकों के बीच दिखाई देने लगा। यह विचार, एक बिखरे हुए रूप में, एक ओर संयुक्त राज्य अमेरिका, और जिसे हम एंग्लो-अमेरिकन शक्ति का ध्रुव कहते हैं और ग्लोबल नॉर्थ में उसके सहयोगी-जिसे कभी-कभी पश्चिम भी कहा जाता है-और दूसरी ओर, चीन और रूस की प्रमुखता के साथ तथाकथित उभरती शक्तियां और ग्लोबल साउथ के कुछ राज्य के बीच बढ़ते तनाव के संदर्भ में प्रकट होता है।

नए शीत युद्ध की अवधारणा को वैश्विक विश्लेषण में वापस लाने वाले पहले महत्वपूर्ण प्रकाशनों में से एक शोएन और कायलान (2014) द्वारा लिखी गई पुस्तक थी , जिसका शीर्षक था द रशिया-चाइना एक्सिस: द न्यू कोल्ड वॉर एंड अमेरिकाज क्राइसिस ऑफ लीडरशिप।

इसके अलावा, रूस से, कुछ प्रमुख लेखक इस अवधारणा का उपयोग करना शुरू करते हैं, कम से कम बयानबाजी में। 2014 में यूक्रेन में संघर्ष के साथ उभरे नए परिदृश्य के आधार पर, दिमित्री ट्रेनिन ने "वेलकम टू कोल्ड वॉर II" नामक एक लेख में कहा कि शीत युद्ध के बाद को अब पूर्वव्यापी रूप से शीत युद्ध के बीच की अवधि के रूप में देखा जा सकता है।

अपनी ओर से, चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग ने बार-बार पश्चिमी शक्तियों के नेताओं से शीत युद्ध की मानसिकता को त्यागने का आह्वान किया है। हालांकि इस मामले में, वैश्विक भू-राजनीतिक स्थिति का विश्लेषण करने के लिए नए शीत युद्ध की अवधारणा का उपयोग करने के बजाय, इसका उपयोग चीन के खिलाफ अमेरिकी विदेश नीति को वैध बनाने वाली मानसिकता और प्रवचनों की आलोचना करने के लिए किया जाता है।

हाइब्रिड विश्व युद्ध

हाइब्रिड वारफेयर कुछ साल पहले एक ऐसी अवधारणा के रूप में उभरा जो युद्ध करने के एक नए तरीके को संश्लेषित करता है। यानी, "युद्ध" के रूप में, लेकिन "युद्ध" के रूप में नहीं, दो संस्थाओं के बीच संघर्ष की स्थिति। इस विषय पर साहित्य की एक महत्वपूर्ण समीक्षा में, जॉनसन ने कहा है कि हाइब्रिड वारफेयर "रणनीतिक उद्देश्यों के लिए राजनीतिक, आर्थिक, सूचनात्मक, सीईएमए [साइबर और विद्युत चुम्बकीय गतिविधि] और सैन्य प्रयास का सिंक्रनाइज अनुप्रयोग है, जो पारंपरिक युद्ध के साथ होने वाले जोखिमों को कम करता है। यह इस प्रकार है कि इन तकनीकों का मुकाबला करने के लिए

या तो प्रतिक्रियाओं के एक पूर्ण-स्पेक्ट्रम सेट को अपनाना चाहिए, या एक विशेष क्षेत्र में इतना प्रभावी और भारी होना चाहिए कि हाइब्रिड तरीकों को दुश्मन द्वारा अप्रभावी या अक्षम मानकर त्याग दिया जाए" (जॉनसन, 2018 , पृष्ठ 158)। इसके अलावा, हाइब्रिड वारफेयर युद्ध का एक रूप है जिसमें पारंपरिक / अपरंपरागत, नियमित / अनियमित और सूचना और साइबर युद्ध का एक विशेष संयोजन होता है।

नए युद्धों में, सैन्य मोर्चे और नागरिक पहरेदारी के बीच की रेखा तेजी से धुंधली हो रही है। इसके अलावा, शास्त्रीय अंतरराज्यीय युद्ध से गैर-राज्य दलों, जैसे विद्रोही समूहों, आतंकवादी नेटवर्क, मिलिशिया और आपराधिक संगठनों के साथ सशस्त्र संघर्ष में बदलाव तेज हो रहा है। इस अर्थ में, युद्धों का अंतिम उद्देश्य लोगों के "दिल और दिमाग" हैं, जैसा कि ब्रिटिश जेरार्ड टेम्पलर ने कहा था, जिन्होंने मलायी उपनिवेश-विरोधी ताकतों के खिलाफ युद्ध की कमान संभाली थी, जो पत्रकारिता-मीडिया क्षेत्र, सूचना और "मनोवैज्ञानिक" युद्ध में संघर्ष के महत्व को बढ़ाता है।

दूसरा तत्व युद्ध का बढ़ता "निजीकरण" है। वियतनाम में संयुक्त राज्य अमेरिका की हार के बाद, दुनिया भर में और अपनी ही आबादी के भीतर इसके युद्ध आक्रमणों की वैधता खोने की प्रक्रिया शुरू हुई, खास तौर पर मानव जीवन की कीमत की वजह से। नतीजतन, भाड़े के सैनिकों या आउटसोर्स बलों का उपयोग (बढ़ते "पोस्ट-फोर्डिस्ट" आउटसोर्सिंग के उत्पादक प्रतिमान के अनुरूप), जैसे कि ब्लैकवाटर का आदर्श उदाहरण, 1997 में बनाई गई अमेरिकी सैन्य कंपनी जो इराक और अफगानिस्तान में कई अन्य विदेशी हस्तक्षेपों के बीच काम करती थी, का तेजी से सहारा लिया जाने लगा। हाल के दशकों में संघर्ष के तौर-तरीके भी बदल गए हैं, राज्यों के बीच संघर्ष कम हो गए हैं और राज्यों के भीतर या क्षेत्रों या जोन के स्तर पर संघर्षों का प्रसार हुआ है।

प्रारंभिक राष्ट्र राज्यों के उद्भव के समय, उनमें से अधिकांश के जन्म में रक्त और लौह युद्ध द्वारा सहायता की गई थी। उसी तरह, राष्ट्र राज्यों के वैश्वीकरण में संक्रमण के दौरान, विशाल हित समूहों के बीच टकराव से बचने का कोई तरीका नहीं है। नतीजतन, संकीर्ण अर्थों में युद्ध के मैदान को सीमित करते हुए, उसी समय हमने पूरे विश्व को व्यापक अर्थों में युद्ध के मैदान में बदल दिया है।

चीनी पीपुल्स लिबरेशन आर्मी ने 2019 में प्रकाशित अपने आधिकारिक दस्तावेज या श्वेत पत्र "नए युग में चीन की राष्ट्रीय रक्षा" में हाइब्रिड युद्ध की प्रमुख अवधारणाओं का उल्लेख किया है, हालांकि यह उनके बारे में विस्तार से नहीं बताता है: युद्ध सूचना युद्ध की ओर बढ़ रहा है, और बुद्धिमान युद्ध क्षितिज पर है। "बुद्धिमान युद्ध" की अवधारणा "हाइब्रिड युद्ध" के समान होगी, लेकिन संज्ञानात्मक क्षेत्र बुद्धिमान हथियारों और उपकरणों और उनके संबंधित संचालन विधियों के उपयोग के साथ खड़ा है, जो इंटरनेट ऑफ थिंग्स सूचना प्रणाली द्वारा समर्थित है। 2020 में, युद्ध की इस नई अवधारणा को 14वीं पंचवर्षीय योजना में शामिल किया गया था जो देश के भाग्य को नियंत्रित करती है।

युद्ध का एक नया तरीका हमेशा विश्व व्यवस्था और धर्मनिरपेक्ष प्रक्रियाओं में संरचनात्मक स्तर पर होने वाले परिवर्तनों के संबंध में होता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका के आधिपत्य की प्रकृति, इसके वैश्विक बहुपक्षीय संस्थानों के साथ, विश्व प्रणाली में एक गुणात्मक परिवर्तन का गठन करती है, जो समग्र अन्योन्याश्रितता की गहराई को नए स्तरों पर ले जाती है। 1990 के दशक में (एंग्लो-अमेरिकन वैश्विक वित्त पूंजी के प्रभुत्व के तहत) वैश्विकता द्वारा इसे और बढ़ाया गया, जो एक अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक शक्ति और एंग्लो-अमेरिकन कोर से उभरने वाली परियोजना के रूप में थी, लेकिन जो उस कोर से परे जाती है। विश्व प्रणाली में व्यावहारिक रूप से कोई बाहरीता नहीं है- जिसका अर्थ यह नहीं है कि सूचना, धन और माल के प्रवाह के नियंत्रण को समाप्त कर दिया जाए जो इसे पार करते हैं और अंतरराज्यीय प्रणाली की मध्यस्थता करते हैं। एक "बंद" राजनीतिक व्यवस्था है, जिसमें अंतरराज्यीय व्यवस्था विकसित होती है, जो यूएसएसआर के पतन के बाद से और भी गहरी हो गई है। जैसा कि फ्लिंट और टेलर (2018) ने उल्लेख किया है, यूएसएसआर की अर्थव्यवस्था और इसके प्रभाव क्षेत्र के देश विश्व अर्थव्यवस्था और विश्व व्यवस्था से बाहर नहीं थे। हालांकि, उनका एकीकरण अर्ध-परिधीय स्थान से था, जिसमें पूंजीवादी दुनिया के साथ कम सापेक्ष निर्भरता थी और, स्पष्ट रूप से, ऐसे परिभाषित ब्लॉक थे जो एक प्रमुख रूप से द्विध्रुवीय व्यवस्था को कॉन्फिगर करते थे (जिसका अर्थ तीसरी दुनिया, गुटनिरपेक्ष आंदोलन और तीसरे स्थान को अनदेखा करना नहीं है)। वर्तमान गतिशीलता पूरी तरह से अलग है। चीन यूएसएसआर नहीं है, विश्व अर्थव्यवस्था में इसका एकीकरण मात्रात्मक और गुणात्मक रूप से पूरी तरह से अलग है- यह न केवल विश्व अर्थव्यवस्था की महान विनिर्माण कार्यशाला है, बल्कि वैश्विक कमांड गतिविधियों में भी तेजी से शामिल है, और वर्तमान भू-राजनीतिक गतिशीलता बहुध्रुवीय है।

चीनी पीपुल्स लिबरेशन आर्मी (पीएलए) ने 2019 में प्रकाशित "नए युग में चीन की राष्ट्रीय रक्षा" नामक अपने आधिकारिक दस्तावेज या श्वेत पत्र में समकालीन ऐतिहासिक और स्थानिक स्थिति के इस निदान को पुष्ट करते हुए कहा है: "आज, अपने हितों और सुरक्षा के साथ, दुनिया भर के लोग एक साझा भविष्य वाले समुदाय के सदस्य बन रहे हैं" (पीएलए, 2019 , पृष्ठ 1)।

ट्रिगरिंग घटना पूर्वी यूक्रेन में युद्ध है, जो न केवल एक अंतरराज्यीय बल्कि अंतर्राज्यीय संघर्ष को भी व्यक्त करता है, यूरोप में नाटो विस्तार और रूस की लाल रेखाओं के बीच एक क्षेत्रीय संघर्ष, और पुराने प्रमुख कोर और अर्ध-परिधि और विश्व-व्यवस्था की परिधि की उभरती शक्तियों के बीच एक वैश्विक संघर्ष है। तब से, रूस के खिलाफ आर्थिक युद्ध संयुक्त राज्य अमेरिका और जी7 में प्रतिनिधित्व करने वाले ग्लोबल नॉर्थ द्वारा 2,500 से अधिक प्रतिबंधों के साथ शुरू हुआ है, लेकिन युद्ध जैसे टकराव भी बढ़ रहे हैं और मध्य पूर्व, मध्य एशिया और आसपास के क्षेत्रों के तथाकथित "अस्थिरता के क्षेत्र" में कम से कम एक दर्जन तक पहुंच रहे हैं। इसके अलावा, अन्य स्थानों के अलावा, सीरिया, अफगानिस्तान और चीन सागर में शक्तियों के बीच विवाद तेज हो रहे हैं 2014 के बाद से, विश्व शक्ति के मुख्य ध्रुवों के बीच टकराव प्रत्यक्ष (हालांकि सीधे और पारंपरिक रूप से युद्ध जैसा नहीं) और केंद्रीय क्षेत्रों में हो गया है।

संक्षेप में, हाइब्रिड विश्व युद्ध (HWW) या हाइब्रिड और खंडित विश्व युद्ध ने एक नई पीढ़ी के युद्ध को व्यक्त किया, जहां पारंपरिक युद्ध (नियमित सेनाओं वाले राज्यों के बीच- जैसा कि हम आज यूक्रेन और रूस के बीच पूर्व के क्षेत्र में देखते हैं) और गैर-पारंपरिक और/या अनियमित युद्ध के तत्वों को मिलाया जाता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका-चीन प्रतिद्वंद्विता और एकध्रुवीयवाद-बहुध्रुवीयवाद तनाव

विश्व व्यवस्था के ऐतिहासिक-स्थानिक संक्रमण की संरचनात्मक प्रवृत्तियों में से एक प्रणालीगत राजनीतिक-रणनीतिक विरोधाभासों का एक समूह है जो विरोधी बन रहा है। यह प्रक्रिया, अन्य कारणों के अलावा, एंग्लो-अमेरिकन शक्ति के ध्रुव और ग्लोबल नॉर्थ के सापेक्ष गिरावट से विकसित हो रही है, जो चीन के उदय, अर्ध-परिधीय क्षेत्रों से अन्य उभरती शक्तियों और इक्कीसवीं सदी के महान महाद्वीप के रूप में एशिया के साथ विरोधाभासी है। संयुक्त राज्य अमेरिका और ग्लोबल नॉर्थ में प्रमुख ताकतों द्वारा इस वृद्धि को रोकने और सत्ता के नए नक्शे में बदलाव की खोज हाइब्रिड विश्व युद्ध को समझने के लिए महत्वपूर्ण है। इस अर्थ में, 1999-2001 में भू-राजनीतिक संक्रमण की शुरुआत और इसके विभिन्न प्रशासनों (बुश, ओबामा, ट्रम्प और बिडेन) के साथ, जॉर्ज डब्ल्यू बुश के प्रशासन (2001-2009) की शुरुआत में संयुक्त राज्य अमेरिका ने चीन के साथ संबंधों के ढांचे को "इक्कीसवीं सदी के लिए रणनीतिक साझेदारी" से "रणनीतिक प्रतिस्पर्धा" में बदल दिया।

नई अमेरिकी शताब्दी के लिए परियोजना में संश्लेषित नव-रूढ़िवादी दृष्टिकोण को भू-रणनीति में लागू किया गया था ताकि संयुक्त राज्य अमेरिका की एकध्रुवीयता सुनिश्चित की जा सके, जिससे एशिया प्रशांत, यूरोप या यूरेशिया के केंद्र में किसी भी प्रतियोगी के उभरने को रोका जा सके। यह तथाकथित वैश्विक आतंकवाद युद्ध (GWOT) और मध्य एशिया और फारस की खाड़ी पर नियंत्रण बढ़ाने के लिए अफगानिस्तान और इराक में युद्धों में व्यक्त किया गया था।

ये युद्ध एकध्रुवीय विश्व व्यवस्था के विरुद्ध आंदोलनों के कुछ संकेतों के प्रति संयुक्त राज्य अमेरिका और उसके मित्र राष्ट्रों की प्रतिक्रिया थे। यह ऐसे संदर्भ में होता है जिसमें ष्पुंटो कॉमष संकट (प्रौद्योगिकी बुलबुले के फटने के कारण) ने ग्लोबल नॉर्थ को प्रभावित किया और नवउदारवादी वित्तीयकरण की अस्थिर प्रकृति को दर्शाता है। अगला प्रकोप 2008 में हुआ और इसका प्रभाव और भी गहरा है। उस परिदृश्य में, 2009 में BRICS (ब्राजील, रूस, भारत, चीन और दक्षिण अफ्रीका) की शुरुआत की गई, जिसमें लोकतांत्रिक धन और विश्व शक्ति की तलाश में अर्ध-परिधीय क्षेत्र की औद्योगिक और क्षेत्रीय शक्तियों को एक समूह में शामिल किया गया। यह संयोग से नहीं है कि 2008 से 2021 तक चीन की जीडीपी नाममात्र रूप से चौगुनी हो गई है, क्योंकि आर्थिक संचय और राजनीतिक ताकत एक साथ चलते हैं, दोनों भू-राजनीतिक निर्भरता और अधीनता के तंत्र को तोड़ने की क्षमता में प्रकट होते हैं।

बराक ओबामा के सत्ता में आने से वैश्विकता के दृष्टिकोण की वापसी हुई, जिसका मतलब था अमेरिकी भू-रणनीति में बदलाव। उभरती हुई शक्तियों का सामना करते हुए- ब्रिक्स में अभिव्यक्त, ओबामा प्रशासन ने एक नियंत्रण रणनीति लागू करने, यूरेशियाई परिधि पर नियंत्रण को मजबूत करने और एशिया प्रशांत की ओर रुख को बढ़ावा देने की कोशिश की। पश्चिमी परिधि में, नाटो ने रूसी सीमाओं (विशेष रूप से यूक्रेन के साथ) तक अपना विस्तार जारी रखा, और यूरोपीय संघ के विस्तार और ट्रांसअटलांटिक व्यापार और निवेश भागीदारी (टी-टीआईपी) की स्थापना के प्रस्ताव का समर्थन किया।

जिसके साथ 100,000 से अधिक अमेरिकी सैनिकों की बढ़ोतरी के साथ सैन्य दृष्टि से एक मजबूत हस्तक्षेप हुआ। यह 2012 में ओबामा द्वारा घोषित एशिया की धुरी का हिस्सा था: चीन के चारों ओर सैन्य घेराबंदी को मजबूत करने के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका के हवाई-नौसेना सैन्य बल के बड़े हिस्से को प्रशांत क्षेत्र में ले जाना।

इसका उद्देश्य चीन और रूस को घेरना और रोकना, यूरेशिया का प्रभुत्व सुनिश्चित करना और इक्कीसवीं सदी के पूंजीवाद के खेल के नियमों को लागू करना था।

जैसे-जैसे इस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था संयुक्त राज्य अमेरिका या जापान से चीन की ओर स्थानांतरित हुई है, चीन-केंद्रित मॉडल बीजिंग के लिए अनूठा हो गया है।

हालांकि, 2008 से 2021 तक संयुक्त राज्य अमेरिका और चीन के बीच वस्तुओं और सेवाओं के व्यापार में तेज वृद्धि हुई है; विशेष रूप से एशियाई दिग्गज, संयुक्त राज्य अमेरिका को वस्तुओं के मुख्य आपूर्तिकर्ता से वस्तुओं के आयात में, जो उस अवधि में लगभग 50% की वृद्धि हुई। परस्पर निर्भरता बढ़ रही है, जबकि रणनीतिक प्रतिस्पर्धा तेज हो रही है और संयुक्त राज्य अमेरिका और वैश्विक उत्तर में प्रमुख ताकतों द्वारा चीन के उदय को रोकने/रोकने या उसे अपने अधीन करने के प्रयास बढ़ रहे हैं।

इस परिदृश्य में, 2012 में बीजिंग ने क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक भागीदारी (RCEP) बनाने के लिए औपचारिक रूप से बातचीत को बढ़ावा दिया और 2013 में वाशिंगटन और उसके सहयोगियों द्वारा प्रचारित रोकथाम रणनीतियों के सामने क्रांतिकारी बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (BRI) की शुरुआत की। इसके साथ ही, एक नए वैश्विक वित्तीय ढांचे को बढ़ावा दिया जा रहा है। इसे 2014 में ब्राजील के फोर्टालेजा में शिखर सम्मेलन में एशियाई अवसंरचना निवेश बैंक (AIIB) जैसे नए अंतरराष्ट्रीय वित्तीय साधनों के निर्माण और BRICS न्यू डेवलपमेंट बैंक और एक रिजर्व फंड (आकस्मिक रिजर्व समझौते) के शुभारंभ के साथ व्यक्त किया गया था। यह वित्तीय ढांचा वैश्विक उत्तर के समानांतर विकसित हो रहा है, जो IMF और WB पर केंद्रित है।

आज, SCO को भू-राजनीतिक पश्चिम में एक राजनीतिक संघ के रूप में देखा जाता है, जो यूरेशिया में NATO का विरोध करता है और यहां तक कि महान महाद्वीप के प्रमुख क्षेत्रों में सापेक्ष सैन्य उपस्थिति की तुलना भी करता है। एशियाई अवसंरचना निवेश बैंक (एआईआईबी) और चीनी स्टेट बैंक जैसे अन्य संस्थानों के साथ मिलकर, वे भू-राजनीतिक भार के साधन व्यक्त करते हैं जो दुनिया के कई देशों और क्षेत्रों को एक नए उभरते क्षेत्रीय और वैश्विक संस्थागत रूप में एक साथ लाते हैं- जो बहुध्रुवीय बहुपक्षवाद के अनुरूप है। चीन और रूस के बीच गठबंधन सभी स्तरों पर गहरा हो रहा है ताकि यूरेशियन महाद्वीप पर एक महान यूरेशियन संघ की शक्ति संरचना को मजबूत किया जा सके, जो "समुद्र के साम्राज्य" की श्रेष्ठता का प्रतिकार करता है, जैसा कि उन्हें पश्चिमी समुद्री शक्तियां कहा जाता है, जिसका नेतृत्व आज संयुक्त राज्य अमेरिका कर रहा है।

ये आंदोलन संयुक्त राज्य अमेरिका और भू-राजनीतिक पश्चिम की प्रतिक्रियाओं को बढ़ाते हैं और 2014 से एक हाइब्रिड विश्व युद्ध के विकास को बढ़ावा देते हैं (विशेष रूप से अप्रैल 2014 में यूक्रेन के डोनबास में संघर्ष शुरू होने के बाद से)। इसके अलावा, हम चीन, रूस और अन्य अभिनेताओं की बढ़ती क्षमता के सामने संयुक्त राज्य अमेरिका और नाटो के रणनीतिक वर्चस्व को टूटते हुए देख सकते हैं। इसके अलावा, पुराने सहयोगियों के भीतर रणनीतिक दरारें महत्वपूर्ण हैं। अंत में, वैश्विक उत्तर द्वारा नियंत्रित नवउदारवादी वैश्वीकरण का संकट और अपेक्षाकृत बहुध्रुवीय दुनिया में चीन और अन्य उभरती ताकतों द्वारा संचालित वैश्वीकरण का उदय है।

एशिया प्रशांत क्षेत्र में विवाद

द्वितीय विश्व युद्ध के अंत के बाद से संयुक्त राज्य अमेरिका के आधिपत्य के भू-राजनीतिक डिजाइन में, एशिया प्रशांत क्षेत्र में एक लाल रेखा रही है जो रणनीतिक सीमा को चिह्नित करती है जिसे संयुक्त राज्य अमेरिका और जापान के नेतृत्व वाले गठबंधन को चीन (या एक विरोधी-आधिपत्य गठबंधन) को वैश्विक शक्ति बनने से रोकने के लिए बनाए रखना चाहिए, जिसका अर्थ होगा संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए विश्व प्रधानता का नुकसान। वर्तमान में, वह सीमा पहले ही पार हो चुकी है और रणनीतिक ओवरलैप जारी है। यह आर्थिक रूप से और साथ ही बहुपक्षीय संस्थानों और नई बहुध्रुवीय दुनिया की पहलों के एक समूह में देखा जाता है जिसमें बीजिंग एक नायक के रूप में है।

क्षेत्र में वाशिंगटन के लिए महत्वपूर्ण बातों में से एक है अमेरिकी राजनीतिक-रणनीतिक कमान के तहत चीन को घेरने/नियंत्रित करने वाले सैन्य ठिकानों और पदों की दो श्रृंखलाओं को सुरक्षित करना। ताइवान पहली श्रृंखला का केंद्रबिंदु है और चीन के खिलाफ एक केंद्रीय अमेरिकी रणनीतिक चौकी है। बीजिंग, अपने उत्थान में, इन दो श्रृंखलाओं को ओवरलैप और पार करता है। इसलिए ताइवान के उत्तर-पूर्व में पूर्वी चीन सागर में स्थित सेनकाकू/दियाओयू द्वीपों पर विवाद है। ऐसा नियंत्रण चीन को पहली श्रृंखला को आंशिक रूप से तोड़ने, पूर्वी चीन सागर और ताइवान जलडमरूमध्य में ताइवान की रणनीतिक स्थिति को कमजोर करने की अनुमति देगा दक्षिण चीन सागर के मामले में, एशियाई देशों के बीच कई द्वीपों पर विवाद चल रहा है। एक बहुत महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि दक्षिण चीन सागर एक खुला समुद्र नहीं है। इसके विपरीत, इसमें सामरिक महत्व के कई जलडमरूमध्य हैं, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण मलक्का जलडमरूमध्य है, जहाँ सिंगापुर और एक अमेरिकी नौसैनिक अड्डा स्थित है। क्षेत्र में अपनी उपस्थिति के लिए एक और बहुत महत्वपूर्ण अमेरिकी नौसेना बेस फिलीपींस में है।

दोनों समुद्र वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए मौलिक हैं। वे दुनिया के सबसे गतिशील क्षेत्र के केंद्र में हैं, जो वैश्विक उत्पादन और व्यापार का एक तिहाई हिस्सा है, और जहां चीन की स्पष्ट नेतृत्व की स्थिति है। लेकिन चीन की सैन्य क्षमताएं एशिया-प्रशांत में संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रधानता को चुनौती देने के बिंदु तक आगे बढ़ गई हैं।

सैन्य पक्ष पर, वर्तमान स्थिति अब वह नहीं है जो कुछ साल पहले थी, जब संयुक्त राज्य अमेरिका अब तक की प्रमुख विश्व शक्ति था। सैन्य बजट के संदर्भ में, संयुक्त राज्य अमेरिका के 778 बिलियन डॉलर से अधिक और चीन के लगभग 252 बिलियन के बीच चीन ने पिछले दो दशकों में अपने सैन्य बजट और क्षमताओं में लगातार वृद्धि की है, 2000 से अपने रक्षा खर्च को 12 गुना बढ़ाया है, जो इसके सकल घरेलू उत्पाद के विकास के अनुरूप है। इसे साइबरवारफेयर, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) के उपयोग और रक्षा के लिए उद्योग 4.0 में अग्रणी माना जाता है, और इसने हाइपरसोनिक मिसाइलों का भी विकास किया है।

इसके अलावा, एशिया प्रशांत क्षेत्र में अपनी सैन्य उपस्थिति को मजबूत करने के लिए, चीनी सरकार ने जून 2020 में दक्षिण चीन सागर में एक एयर डिफेंस आइडेंटिफिकेशन जोन (ADIZ) की स्थापना का अनावरण किया, जिसे 2013 में पूर्वी चीन सागर में स्थापित ADIZ में जोड़ा गया है। और अप्रैल 2020 के मध्य में, चीनी मीडिया ने दक्षिणी द्वीप हैनान पर सानशा शहर के हिस्से के रूप में दो नए जिले बनाने के सरकार के फैसले को प्रकाशित किया।

इसके जवाब में, संयुक्त राज्य अमेरिका ने जुलाई 2020 में वहां दो विमानवाहक पोत तैनात किए। इसने क्षेत्रीय विवादों में अपनी "तटस्थता" भी त्याग दी, और खुद को वियतनाम और फिलीपींस के साथ जोड़ लिया।

चीन को नियंत्रित करने के लिए एक और रणनीतिक पहल है क्वाड-क्वाड्रिलेटरल सिक्योरिटी डायलॉग- जिसे जापान, भारत और ऑस्ट्रेलिया के साथ मिलकर अमेरिका द्वारा बढ़ावा दिया जा रहा है। 2007 में जापानी प्रधानमंत्री शिंजो आबे द्वारा बढ़ती चीनी आर्थिक और सैन्य शक्ति के जवाब में शुरू किए गए क्वाड को नवंबर 2017 में डोनाल्ड ट्रंप के प्रशासन के तहत चीन के खिलाफ अपने "नए शीत युद्ध" के हिस्से के रूप में फिर से बहाल किया गया था और इसे बीजिंग द्वारा एशियाई नाटो के रूप में देखा जाता है।

सितंबर 2021 में ।न्ज्ैै (ऑस्ट्रेलिया, यूनाइटेड किंगडम और यूनाइटेड स्टेट्स) की स्थापना भी हुई, जो इंडो-पैसिफिक में तीन एंग्लो-सैक्सन देशों के हितों की रक्षा करने के उद्देश्य से एक रणनीतिक गठबंधन है। चीन ने इसे एक खतरे के रूप में देखा है। बीजिंग और सोलोमन द्वीप के बीच हाल ही में हुआ समझौता इस रणनीति के लिए एक बड़ा झटका है, क्योंकि द्वीप राष्ट्र को एशिया-प्रशांत में ऑस्ट्रेलिया का षपिछवाड़ाष माना जाता था।

सभी मोर्चों पर युद्ध या अप्रतिबंधित

व्यापार युद्ध संयुक्त राज्य अमेरिका और ग्लोबल नॉर्थ की अपनी प्रमुख स्थिति को बनाए रखने की सीमाओं को उजागर करता है और उसी सिक्के के दूसरे पहलू के रूप में, उनके आंतरिक विखंडन को भी दर्शाता है। यह युद्ध संयुक्त राज्य अमेरिका की उत्पादक प्रधानता के नुकसान और ग्लोबल नॉर्थ के तकनीकी एकाधिकार के टूटने को दर्शाता है। यह संयुक्त राज्य अमेरिका के विशाल व्यापार घाटे (और विशेष रूप से चीन के साथ) और एशियाई दिग्गज के साथ तकनीकी अंतर के कम होने में परिलक्षित होता है, जो 1999 से इस संबंध में विकसित योजनाओं और विशेष रूप से 2015 में शुरू की गई मेड इन चाइना 2025 योजना के परिणामस्वरूप हुआ है। 2019 से, चीन ने तकनीकी पेटेंट आवेदनों में दुनिया का नेतृत्व किया है और

हुआवेई इस क्षेत्र में दुनिया की अग्रणी कंपनी है। यह प्रक्रिया ग्लोबल नॉर्थ और चीन के बीच पोस्ट-फोर्डिस्ट केंद्र-अर्ध-परिधीय संबंध के टूटने का संकेत देती है, जो विश्व अर्थव्यवस्था को पूरी तरह से बदल देती है।

बदले में, अपने कम प्रतिस्पर्धी औद्योगिक क्षेत्र के हितों को संतुष्ट करने के लिए संरक्षणवादी "मोड़" के हिस्से के रूप में, ट्रम्प ने पदभार संभालते ही टीपीपी और टीटीआईपी को छोड़ने का फैसला किया, जिससे चीन, रूस और यूरेशिया में केंद्रित उभरती शक्तियों की नई धुरी को नियंत्रित करने के लिए वैश्विक भू-रणनीति की दो प्रमुख पहलों को तोड़ दिया गया।

चीन का अपना वजन और विश्व अर्थव्यवस्था में दुनिया की प्रमुख औद्योगिक कार्यशाला (इसका औद्योगिक जीडीपी संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी और जापान के योग के बराबर है) और विश्व विकास के एक प्रमुख इंजन के रूप में इसका स्थान, "व्यापार युद्ध" की अमेरिकी रणनीति में बाधा डालता है और विभिन्न तरीकों से चीन को अपने अधीन करने का प्रयास करता है।

बिडेन के प्रशासन के तहत, चीन के साथ प्रौद्योगिकी युद्ध गहरा गया है, खासकर सेमीकंडक्टर क्षेत्र में, इसलिए कुछ विश्लेषक पहले से ही चिप युद्ध) के बारे में बात कर रहे हैं।

अधिक व्यापक रूप से, वाशिंगटन का उद्देश्य बीजिंग को इस प्रमुख तकनीक के उच्चतम स्तरों पर अपनी क्षमताओं को विकसित करने से रोकना है, अत्यधिक जटिल उद्योगों में चीनी विकास को धीमा करना और दोनों अर्थव्यवस्थाओं की अर्थव्यवस्था के रणनीतिक क्षेत्रों को "अलग करना" है।

2017 से, महाशक्ति प्रतिद्वंद्विता के रणनीतिक ढांचे के तहत, संयुक्त राज्य अमेरिका और उसके सहयोगी तथाकथित ष्नए शीत युद्धष् का उपयोग मित्र-शत्रु भू-रणनीतिक उपकरण के रूप में करने में आगे बढ़े हैं, ताकि विभिन्न देशों पर संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ गठबंधन करने के लिए दबाव डाला जा सके, चाहे वे पारंपरिक सहयोगी और जागीरदार हों या दुश्मन। इसमें राजनीतिक दबाव, खुफिया अभियान, सैन्य खतरे, आर्थिक और वित्तीय प्रतिबंध और तीसरे देशों में हुवावे जैसी चीनी प्रौद्योगिकी कंपनियों की नाकेबंदी शामिल है। प्रौद्योगिकी कंपनियों के मामले में, मुख्य तर्क उनके द्वारा उत्पन्न सुरक्षा खतरे हैं।

निष्कर्ष

हाइब्रिड विश्व युद्ध (HWW) या हाइब्रिड और खंडित विश्व युद्ध ने एक नई पीढ़ी के युद्ध को व्यक्त किया, जहां पारंपरिक युद्ध (नियमित सेनाओं वाले राज्यों के बीच-जैसा कि हम आज यूक्रेन और रूस के बीच पूर्व के क्षेत्र में देखते हैं) और गैर-पारंपरिक और/या अनियमित युद्ध के तत्व संयुक्त होते हैं। एक युद्ध जिसमें विश्व शक्ति के मुख्य ध्रुव शामिल होते हैं, सापेक्ष गिरावट की स्थिति का सामना करने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा केंद्रीय रूप से संचालित होता है, और इसका मुख्य विरोधाभास पुराने एकध्रुवीय वैश्विक व्यवस्था की संकटग्रस्त ताकतों बनाम उभरती ताकतों के रूप में होता है जो एक बहुध्रुवीय व्यवस्था के अनुरूप होने की ओर प्रवृत्त होती हैं।

विश्व व्यवस्था के ऐतिहासिक-स्थानिक संक्रमण की संरचनात्मक प्रवृत्तियों में से एक प्रणालीगत राजनीतिक-रणनीतिक विरोधाभासों का एक समूह है जो विरोधी बन रहा है। यह प्रक्रिया, अन्य कारणों के अलावा, एंग्लो-अमेरिकन शक्ति के ध्रुव और वैश्विक उत्तर के सापेक्ष गिरावट से विकसित हो रही है, जो चीन, अर्ध-परिधीय क्षेत्रों से अन्य उभरती शक्तियों और इक्कीसवीं सदी के महान महाद्वीप के रूप में एशिया के उदय के विपरीत है। यह युद्ध वैश्विक-एकध्रुवीय ताकतों और संयुक्त राज्य अमेरिका के आधिपत्य के तहत निर्मित पुरानी विश्व व्यवस्था की संस्थाओं और बहुध्रुवीय ताकतों और विश्व शक्ति के नए नक्शे को व्यक्त करने वाली नई संस्थाओं के बीच विरोधाभासों के विरोधी विकास को व्यक्त करता है। अपने अंतरराज्यीय रूप में, राजनीतिक और सामाजिक ताकतों के बीच ये प्रणालीगत विरोधाभास जो विरोधी बन जाते हैं, संयुक्त राज्य अमेरिका-चीन प्रतिद्वंद्विता में व्यक्त होते हैं।

संदर्भ

1. अरिघी, जी., और सिल्वर, बी. (1999). आधुनिक विश्व व्यवस्था में अराजकता और शासन. लंदन: यूनिवर्सिटी ऑफ मिनेसोटा प्रेस.
2. आर्टे (2021)। 21वीं सदी का युद्ध। दुनिया का मानचित्रण (2021)। ऑनलाइन उपलब्ध https://www.arte.tv/en/videos/103960-009-A/mapping-the-world/

(10 मार्च, 2022 को एक्सेस किया गया)।

3. बार्न्स, जेई, और सटेरियानो, एस. (2019)। विदेशों में हुआवेई पर प्रतिबंध लगाने का अमेरिकी अभियान सहयोगियों के विरोध के कारण विफल हो गया। द न्यूयॉर्क टाइम्स। ऑनलाइन उपलब्ध: https://www.nytimes.com/2019/03/17/us/politics/huawei-ban.html
4. ब्रेजिंस्की, जेड. (1997). द ग्रेट चेसबोर्ड. न्यूयॉर्क: बेसिक बुक्स.
5. कांग्रेसनल रिसर्च सर्विस (2020)। चीन नौसेना आधुनिकीकरण: अमेरिकी नौसेना क्षमताओं के लिए निहितार्थ। कांग्रेस के लिए पृष्ठभूमि और मुद्दे। ऑनलाइन उपलब्ध: https://fas.org/sgp/crs/row/RL33153.pdf
6. फियोरी, जेएल (2018). "एपिलोगो- एटिका कल्चरल ई गुएरा इनफिनिटा," सोबरे ए गुएरा में, एड जेएल फियोरी (पेट्रोपोलिस: वॉजेस), 397-404।
7. फ्लिंट, सी., और टेलर, पी.जे. (2018)। राजनीतिक भूगोल: विश्व-अर्थव्यवस्था, राष्ट्र-राज्य और स्थानीयता। न्यूयॉर्क: रूटलेज, 2018। सातवां संस्करण। लंदन, यूनाइटेड किंगडम: रूटलेज
8. ग्रीन, एम., और गुडमैन, एम. (2015)। टी.पी.पी. के बाद: एशिया और प्रशांत की भू-राजनीति। वाशिंगटन क्यू. 38:4, 19-34. doi: 10.1080/0163660ग.2015.1125827
9. हॉफमैन, एफ.जी. (2009)। हाइब्रिड वारफेयर और चुनौतियां। ज्वाइंट फोर्स क्वार्टरली, I. 52, 1st क्वार्टर। सेंट लुइस, मिसौरी: नेशनल डिफेंस यूनिवर्सिटी प्रेस।
10. जब्बोर, ई., दंतास, ए., और वेडेल, जे. (2021)। नई प्रोजेक्टमेंट अर्थव्यवस्था से लेकर चीनी एम्बेडेड वैश्वीकरण तक। अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन: पीयूसी मिनस 9, 90-105 द्वारा अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की समीक्षा। doi: 10.5752/P.2317-773X.2021v9n4p90-105
11. जॉनसन, आर. (2018)। हाइब्रिड युद्ध और उसके प्रतिवाद: साहित्य की आलोचना। छोटे युद्ध विद्रोह 29, 141-163. doi: 10.1080/09592318.2018.1404770
12. करागानोव, एस. (2018)। नया शीत युद्ध और उभरता हुआ ग्रेटर यूरेशिया। जे. यूर. स्टड. 9, 85-93. doi: 10.1016/j-euras-2018.07.002
13. किसिंजर, एच. (2017). मार्गरेट थैचर सुरक्षा सम्मेलन में टिप्पणियाँ। ऑनलाइन उपलब्ध: https://www.henryakissinger.com/speeches/remarks-to-the-margaret-thatcher-conference-on-security/ (27 जून, 2017 को एक्सेस किया गया)।
14. कोरिब्को, ए. (2015). हाइब्रिड वॉर्स: द इनडायरेक्ट अडेप्टिव अप्रोच टू रिजीम चेंज. मॉस्को: पीपुल्स फ्रेंडशिप यूनिवर्सिटी ऑफ रशिया.
15. किंज, जे., यू, एस., और लुईस, एल. (2022)। किला चीन: आर्थिक स्वतंत्रता के लिए शी जिनपिंग की योजना। फाइनेंशियल टाइम्स। यहां उपलब्ध: https://www.ft.com/content/0496b125-7760-41ba-8895-8358a7f24685 (19 सितंबर, 2022 को एक्सेस किया गया)।
16. लेगवोल्ड, आर. (2014). नए शीत युद्ध का प्रबंधन। विदेश मामले। ऑनलाइन उपलब्ध: https://www.foreignaffairs.com/articles/united-states/2014-06-16/managing-new-cold-war (26 जनवरी, 2022 को एक्सेस किया गया)।
17. ली, वाई. (2018)। यूरेशियन साझेदारी और बेल्ट एंड रोड पहल: क्या दोनों को जोड़ा जा सकता है? जे. यूर. स्टड . 9, 94-99. doi: 10.1016/j-euras.2018.07.004
18. लिआंग, क्यू., और जियांगसुई, डब्ल्यू. (1999). अप्रतिबंधित युद्ध. बीजिंग: पीएलए साहित्य और कला प्रकाशन गृह.
19. मैकिंडर, एच. (1904). इतिहास की भौगोलिक धुरी. जियोग्र. जे . 23, 421-437. doi: 10.2307/1775498
20. PubMed सार।
21. मेरिनो, जी.ई. (2016)। विश्व व्यवस्था के संकट के एक नए चरण में वैश्विक तनाव, बहुध्रुवीयता और शक्ति ब्लॉक। लैटिन अमेरिका के लिए संभावनाएँ। जियोपोलिटिका(एस) 7, 201-225। doi: 10.5209/GEOP-51951
22. मेरिनो, जी.ई. (2016बी). यूक्रेन की दुनिया: वैश्विक संकट का नया दौर। मद मेरिनो वाई रंग, (कोऑर्ड्स.) ऽन्यूएवा गुएरा फ्रिआ या गुएरा मुंडियाल फ्रैग्मेंटाडा? (यूक्रेन के बाद की दुनिया: वैश्विक संकट का नया चरण, मेरिनो और रंग, (समन्वय) नया शीत युद्ध या खंडित विश्व युद्ध?) कोर्डोबा: संपादकीय यूनिवर्सिटेरिया यूएनएएम और संपादकीय यूएनआरसी
23. मेरिनो, जीई (2021). नई दुनिया का भू-राजनीतिक क्षण: महामारी और समकालीन ऐतिहासिक-स्थानिक संक्रमण की प्रवृत्तियों का त्वरण। अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन: पीयूसी मिनट 9, 106-130 द्वारा अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की समीक्षा। डोई: 10.5752/P.2317-773X.2021v9n4p106-130
24. मिलर, सी. (2022). चिप वॉर: द फाइट फॉर द वर्ल्ड्स मोस्ट क्रिटिकल टेक्नोलॉजी. न्यूयॉर्क: स्क्रिब्नर.
25. राष्ट्रीय सुरक्षा रणनीति (2017)। व्हाइट हाउस। ऑनलाइन उपलब्ध: https://trumpwhitehouse.archives.gov/wp-content/uploads/2017/12/NSS-Final-12-18-2017-0905.pdf (28 मार्च, 2022 को एक्सेस किया गया)।
26. पीएलए. (2019). नए युग में चीन की राष्ट्रीय रक्षा. बीजिंग: विदेशी भाषा प्रेस. ऑनलाइन उपलब्ध:http://www.chinadaily.com.cn/specials/whitepaperonnationaldefenseinnewera.pdf
27. रोमानो, एस., और तिराडो, ए. (2018). लॉफेयर और हाइब्रिड युद्ध: लैटिन अमेरिका में भू-राजनीतिक विवाद, सीईएलएजी। ऑनलाइन उपलब्ध: https://www.celag.org/lawfare-guerra-hibrida-disputa-geopolitica-america-latina/ (17 जून, 2018 को उपयोग किया गया)
28. रोस्किन, एम. (2014). नया शीत युद्ध. पैरामीटर्स 44, 3. doi: 10.55540/0031-1723.2792

29. सालगाडो, बी. (2020). दक्षिण अमेरिका में हाइब्रिड युद्ध: छिपी हुई राजनीतिक कार्रवाइयों की परिभाषा. ग्लोबल 1, 139-168 में प्रकाशित. ऑनलाइन उपलब्ध: https://revistas.ufrj.br/index.php/sg/article/view/31949
30. स्काहिल, जे. (2008). ब्लैकवाटर: दुनिया की सबसे शक्तिशाली भाड़े की सेना का उदय। न्यूयॉर्क: बोल्ड टाइप बुक्स।
31. शोएन, डी., और कायलान, एम. (2014)। रूस-चीन धुरी: नया शीत युद्ध और अमेरिका का नेतृत्व संकट। न्यूयॉर्क: एनकाउंटर बुक्स।
32. स्कॉट, डी. (2012). प्रशांत क्षेत्र में अमेरिकी रणनीति- इक्कीसवीं सदी के लिए भू-राजनीतिक स्थिति। भू-राजनीति, 17, 607-628. doi: 10.1080/14650045.2011.631200
33. सुईशेंग, जेड., और गुओ, डी. (2019)। एक नया शीत युद्ध? उभरते अमेरिका-चीन प्रतिद्वंद्विता के कारण और भविष्य। वेस्टनिक आरयूडीएन। अंतर्राष्ट्रीय संबंध । 19, 9-21। doi: 10.22363/2313-0660-2019-19-1-9-21
34. सन, डी., और एल्माहली, एच. (2019)। नाटो बनाम एससीओ: मध्य एशिया और खाड़ी में बाहरी शक्तियों की सैन्य उपस्थिति का तुलनात्मक अध्ययन। एशियन जे. मिडिल ईस्ट। इस्लामिक स्टड । 12, 4. doi: 10.1080/25765949.2018.1562594
35. द इकोनॉमिस्ट (2014)। पैक्स सिनिका। चीन एशिया से शुरू होकर एक नई विश्व व्यवस्था बनाने की कोशिश कर रहा है। ऑनलाइन उपलब्ध: https://www.economist.com/asia/2014/09/20/pax-sinica (15 फरवरी, 2022 को एक्सेस किया गया)।
36. व्हाइट हाउस (2015)। ट्रांस-पैसिफिक पार्टनरशिप पर राष्ट्रपति का वक्तव्य। ऑनलाइन उपलब्ध: https://obamawhitehouse.archives.gov/the-press-office/2015/10/05/statement-president-trans-pacific-partnership (10 अप्रैल, 2022 को एक्सेस किया गया)।
37. झाओ, एम. (2019)। क्या नया शीत युद्ध अपरिहार्य है? अमेरिका-चीन रणनीतिक प्रतिस्पर्धा पर चीनी दृष्टिकोण। चिन। जे. इंट. पोल । 12, 371-394। doi: 10.1093/cjip/pø010

समकालीन महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी की पर्यावरणीय-चेतना (ईको फेमिनिज्म)

आराधना वर्मा

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, राजकीय महाविद्यालय बबराला-गुन्नौर, (संभल) उ0प्र0

प्रो0(डॉ0) मोहनलाल मौर्य

शोध पर्यवेक्षक-प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, नेहरु मेमोरियल शिवनारायण दास (पी0जी0) कॉलेज, (बदायूँ) उ0प्र0

सारांश-

पर्यावरण मानव जीवन के लिए अनिवार्य है, इसका संरक्षण और बचाव भी मानव का परम कर्तव्य बन जाता है। पर्यावरण संरक्षण में स्त्री की भूमिका महत्वपूर्ण है। पर्यावरण को बचाने के लिए स्त्रियों ने योगदान दिया है जिसका प्रकटीकरण समकालीन महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में होता है। इनके लिखेमें उपन्यासों प्रकृति का मनोहारी वर्णन मिलता है साथ ही इन उपन्यासों में पर्यावरण में होने वाले प्रदूषण एवं उसके कारणों का भी उल्लेख मिलता है। समकालीन महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में पर्यावरण में प्रदूषण प्रभाव एवं उसको समाप्त करने के उपाय भी प्राप्त होते है।

मुख्य शब्द- समकालीन महिला उपन्यासकार, पर्यावरण, प्रकृति, नारी-चेतना, फेमिनिज्म, पारिस्थितिकी, औद्योगीकरण, पूंजीवाद, प्राकृतिक संसाधन, प्रदूषण।

समाज के यथार्थ को अभिव्यक्त करने में उपन्यास विधा साहित्य की सबसे सफल विधा साबित हुयी हैं। समकालीन महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में समाज के व्यापक यथार्थ को अभिव्यक्त होते हुए देखा जा सकता है। इन उपन्यासों में महिला की सामाजिक चेतना के विविध पक्ष उपस्थित हैं। बदलते समय में नारी की सामाजिक चेतना अपने समाज के विविध पक्षों से अन्तरक्रिया करती हुयी यहाँ दिखाई देता है। प्रसिद्ध आलोचक डॉ.पुष्पपाल सिंह का मानना है कि- "हिंदी उपन्यास की नारीवादी सोच और स्त्री की नई चेतना के निर्माण और चित्रण में महिला कथाकारों की कृतियों का ही योगदान अधिक है।"[1]

सृष्टि की व्यापकता के स्तर पर देखा जाए तो स्त्री-पुरुष सभी प्रकृति के तत्व हैं। गोचर या अगोचर पूरा जगत इस प्रकृति का अंश है। लेकिन मनुष्य ने अपनी क्रियाशीलता कि आधार पर अपना अलग अस्तित्व बना लिया है। कार्यक्षेत्र के विस्तार से मनुष्य की एक अलग दुनिया का आभास होता नजर आता है। पुरुष आधिपत्य की बुनियाद इसी वैकल्पिक दुनिया में है। स्त्री की जैविक समर्थ है उसे प्रकृति के नजदीक आज भी बनाए रखा है।

आधुनिक स्त्री चिंतन के आरंभ से ही सीमोन द बोउवार ने स्त्री और प्रकृति को साथ रखकर अपने विचार को प्रस्तुत किया है। स्त्री की सृजनात्मक क्षमता उसे प्रकृति के साथ जोड़े हुए हैं। पुरुष प्रकृति का विघटन कर उसका पुर्न योजना करता है जबकि स्त्री प्रकृति के सृजनात्मक कार्य को सुचारू रूप से आगे बढ़ती है।

यह सच है कि पुरुष वर्चस्व ने स्त्री और प्रकृति दोनों को वस्तु के रूप में बदल दिया है। सीमोन लिखती हैं- "नारी में जीव का अस्तित्व वास्तविक रूप में है।"[2] वह जीव को अस्तित्व में लाती है, एवं जीव को संरक्षण और पोषण देती है। एक जीव के निर्माण में नारी का पूरा अस्तित्व जुड़ा हुआ रहता है। इसलिए स्त्री अपने आप में प्रकृति है। पुरुष इस स्त्री और प्रकृति पर अपना अधिकार बनाए रखना चाहता है। औरत की तुलना धरती से की गई है, इसलिए स्त्री की कलात्मक रचना में प्रकृति एवं पर्यावरण स्वाभाविक रूप से उपस्थित मिलते हैं। नारी की पर्यावरणीय चेतना को देखते हुए एक फेमिनिज्म की अवधारणा चल पड़ी है। एक फेमिनिज्म की विद्वान के.वनजा के शब्दों में- "प्रकृति और स्त्री पर पुरुष के आधिपत्य की आलोचना तथा प्रकृति और स्त्री के संबंध में लिंग अतीत एक नीति शास्त्र है- एक फेमिनिज्म। स्त्री और प्रकृति को केंद्र में प्रतिष्ठित एक वैश्विक विचारधारा है एक फेमिनिज्म।"[3] नई चेतना की परिधि में उसके व्यक्तिगत अस्तित्व के साथ-साथ प्रकृति एवं पर्यावरण के अस्तित्व के लिए भी जगह बची रहती है। नारी स्वयं में पर्यावरण का अंग है इसलिए उसकी कृतियों में पर्यावरणीय चेतना

बनी रहती है। विवेच्य उपन्यासों में पारिस्थितिकी दृष्टि से विमर्श उपस्थित है। महिला उपन्यासकारों ने पर्यावरण के संदर्भ में खुलकर अपनी बात कही है। उपन्यास विधा जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त करती है।हमारे जीवन के समकालीन यथार्थ का अनिवार्य तत्व है- पर्यावरण।

प्रसिद्ध चिंतक रामचंद्र गुहा का मानना है कि "जहां भी औद्योगिकरण है वहां पर्यावरणवाद है।"[4] उपन्यास विधा की उत्पत्ति ही औद्योगीकरण के इतिहास से जुड़ा है। औद्योगीकरण के कलात्मक प्रभाव में उपन्यास विधा का विकास हुआ। लुकाह ने इसी अर्थ में उपन्यास को औद्योगीकृत समाज का महाकाव्य कहा है।"[5] विवेच्य उपन्यासों में पर्यावरणीय चेतना का समुचित रूप से उपयोग हुआ है। अग्नि पर्व, एक जमीन अपनी और मेघ बरसते रहे जैसे उपन्यासों में मिट्टी की और पर्यावरण की महक घुली हुई है। चित्रा मुद्गल अपने दोनों उपन्यासों में हमारी प्रकृति एवं सहज जीवन को उपस्थित करती हैं। अंधाधुंध यांत्रिक एवं विश्व बाजार के आतंक के समय में चित्रा जी मनुष्य की मूलभूत प्राकृतिक क्षमताओं को प्रोत्साहित एवं स्थापित करती नजर आती हैं। तीव्र औद्योगीकरण एवं आबाध पूंजीवाद के विस्तार ने नई चेतना को आज के विकास के मॉडल पर सोचने को विवश करता है। इन उपन्यासों के लेखिकाओं ने सहज तरीके से ऐसे विकास के लक्षणों एवं परिणामों को पाठकों के समक्ष उपस्थित किया है।

प्रभा खेतान लिखती हैं- "अमानवीय विकास के प्रतिमानों को खारिज करना और जुनून, मुख्य नजरिए को विकसित करना नारीवाद का पहला उद्देश्य होना चाहिए।"[6] इसीलिए इन सभी उपन्यासों में नारीवाद के पर्यावरणीय पक्षधरता को आसानी से देखा जा सकता है।

मैत्रीय पुष्पा ने अपने उपन्यास "इदन्नमम" में ऐसे अनेक प्रसंग एवं संवाद है जिनमें पर्यावरण के पक्षधारिता प्रकट होती है। उपन्यास में मैत्रीय पुष्पा ने कई प्रसंग ऐसे उपस्थित किए हैं, जिसमें स्पष्ट रूप से नई पर्यावरण वाद की छलक मिलती है। मंडा के साथ महाराज बाबा आमटे की तरह संघर्ष करते हैं। मंडा बुंदेलखंड क्षेत्र में होने वाले पत्थरों कंक्रीटो के अवैध खनन के विरोध में आंदोलनरत रहती है। वह समाज को उसके पर्यावरणीय जरूरत के प्रति जागरूक करती रहती है। उसकी दृष्टि में धरती की सुरक्षा मनुष्य की सबसे बड़ी जिम्मेदारी है। धरती रहेगी तभी खेती किसानी रहेगी और मानव जीवन निर्वाण रूप से तभी आगे चलता रहेगा। पहाड़ तोड़ने वाले क्रशर मालिकों के खिलाफ मंडा आंदोलनरत रहती है और राजनीति के मंचों से अपना प्रतिरोध दर्ज कराती है।

इन उपन्यासों में पर्यावरण को केवल विचार एवं आंदोलन के केंद्र में ही नहीं रखा जाता है बल्कि जीवन के केंद्र में भी रखा गया है। अधिकांश उपन्यासों के परिवेश में पर्यावरण है, प्रकृति है उपन्यासों के पात्रों में उसे प्राप्त करने की चाह है और प्रयास है। 'और मेघ बरसते रहे" उपन्यास की नारा को प्रकृति से बड़ा लगाव है। उसका घर बहुत छोटा है। 'पौधे लगाने की जगह ही नहीं फिर भी नाली के ऊपर उसने चबूतरा बनवा दिया है जिस पर फूल पत्तियों वाले गमले रखती है और सड़क नाली के बीच एक मालती की लत लगा दी है, जो दो माली तक जा पहुंची है। उस लता में कई पक्षियों ने घोंसला बनाया है। प्रात: 4-00 बजे से ही वह चहचहाना शुरू कर देते हैं, और दिनभर उनके आने-जाने से घर गुलजार रहता है। छत पर भी उसने कई सारे गमले रखे हैं जिसमें पक्षी कभी-कभी खुद भी कुछ बोल देते हैं। अभी पिछले वर्ष तीन-चार गमले में टमाटर के पौधे देखकर वह चौंक उठी थी जो इतनेज्यादा है कि कई महीने तक बाजार से टमाटर लाने की जरूरत नहीं पड़ी। वह सोचती है कि क्या प्रकृति भी उससे प्यार करती है, मालती इस समय फूलों से लदी हुई हैं। रात में उसे प्यारी-प्यारी सुगंध आती है।"[7]

'बारिशगर' उपन्यास में प्रत्यक्षा जी ने प्रकृति के आगोश में ही जैसे पूरा का पूरा जीवन रस डाल दिया है। उपन्यास के शीर्षक के अलावा अंदर के अधिकांश उपशीर्षक प्रकृति एवं पर्यावरण के शब्दावलियों एवं भावों से युक्त हैं। झड़ते पत्तों का खुमार एक टुकड़ा धूप जैसे उपशीर्षक पूरे उपन्यास में है। उपन्यास में ढेर सारी उपमाएं कवियों की कविताओं की तरह प्रकृति से जुड़ी हुई आती हैं-"सुबह घर जैसे बदल गया है। दीवारें फैल गई हैं, पोर्च की धूप वर्षो पहले की धूप है। गमले में नया फूल आया है। हाल के फर्श धूप चमक से चमकते हैं।"[8] अनामिका प्रकृति को मनुष्य का हम-जोली बनकर देखती हैं- "पेड़ों के बीच नीचे बैठा आदमी कभी अकेला नहीं होता पेड़ उसके साथ होता है- अपनी सारी अर्थ छवियों में।"[9] मनुष्य को पेड़ पौधों के साथ की, सानिध्य हमेशा से आवश्यकता रही।वह अपने दुख और सुख में इन्हें अपना सहभागी बनाते आया है। एक कस्बे के नोट्स उपन्यास की नायिका पेड़ों के ममत्व को महसूस करती है तभी वह कहती है- "पेड़ हमें ताकते रह गए.. ..... डागा ले मुस्कुराने लगी।"[10] मनुष्य अपने सुख और दुख में इस अचेतन प्राणियों को अपने साथ जोड़कर चलता है। हम

जानते हैं कि कवियों ने राम को सीता के हरण के समय पेड़, पौधों एवं पक्षियों के साथ विलाप करते दिखाया है। यह एक शाश्वत मानवीय दशा है। मनुष्य को ऐसे अवसरों से मनोवैज्ञानिक तसल्ली मिलती है। मनुष्य को जीने के लिए इन पेड़ पौधों से एक ठोस से आधार मिल जाता है। ऐसी स्थितियां अनेक तरह से देखी जा सकती हैं। उपन्यास में घर गृहस्थी को फलीभूत करने वाले प्राणी को 'बारिशगर' कहा गया है।"[11] लोग अपने परिवार में खुशियां के भरने के लिए 'बारिशगर' बने रहना चाहते हैं। किरण सिंह ने अपने उपन्यास 'शिलावहा' में प्राकृतिक संसाधनों एवं पर्यावरण पर वर्चस्व बनाए जाने का भी चित्रण किया है। अपनी जरूरत की पूर्ति के उद्देश्य से नदियों के जल को बंदी बनाया जाना और उत्सव की अनेक विलासिता तथा धर्म से जुड़े कर्मकांड से निकले प्रदूषण को नदियों में छोड़ जाना अहिल्या के समय में जितना सत्य था उससे ज्यादा आज हमारे समय में सच है। अहिल्या इन गतिविधियों की मुखालफत करती हैं। वह पानी को बांधने का विरोध करती हैं। वह अपने जीवन में प्राकृतिक बनी रहना चाहती हैं। उसका जन्म भी प्राकृतिक स्थितियों में हुआ है। वह मनुष्य कम प्रकृति ज्यादा लगती है।

पहले अपने पास सहायता के लिए आई कन्या से कहती है- "यहां रहने का एक नियम रहेगा। घने वन से निकलकर सनी तलहटी में चार बिरवे नित्य रोपण होंगे।"[12] उपन्यास में पूरा प्रदेश ही आदि समय की प्राकृतिक प्रकृतिपर आधारित है। लोग सभ्यता के स्तर पर प्रयोगरत दिखाई पड़ते हैं, जिससे पर्यावरण की क्षति होने की आशंका बनी रहती है। इसीलिए अहिल्या पेड़ लगाने, पानी को स्वतंत्र बहाने और जैसे कार्यों पर जोर देती है। उपन्यास का परिवेश पर्यावरण के अनुकूल ही सुगठित है।

'शर्मिष्ठा' उपन्यास में कच्छ गुरु शुक्राचार्य के आश्रम में हरियाली देखकर विस्मित हो जाता है- "गुरु आश्रम के पेड़ पौधे तो मेरी निगरानी में थे पर आश्रम के बाहर या अपनी ही जड़ता में विस्तृत जंगली वृक्ष एवं लतिकाओं का सौंदर्य अलग ही था। बसंत में पुष्पित उनकी तरुणाई जैसे देवयानी आश्रम से खेलते हुए बाहर निकल आई हो और अपनी ओढ़नी से पूरा बंद ढक लिया हो।"[13] इन लेखिकाओं की पर्यावरणीय पक्षधरता इन्हीं स्तरों पर दिखाई पड़ती है। साहित्य के स्तर पर यही एक फेमिनिज्म है।अल्पना मिश्र कृत अस्थिफूल और महुआ माजी कृत मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ जैसे उपन्यासों में यही पर्यावरण एवं प्रकृति अपने आप में सौंदर्य भी है, जीवन भी है और आर्थिक आधार भी है- "घने जंगल बीच बरसों पहले अपनी-अपनी झोपड़ियां के आसपास हमारे पुरखे द्वारा यतन पूर्वक लगाए गए इमली, आम, कुसुम, महुआ आदि के पेड़ ही हमारे पेट हैं।"[14] यहां के निवासी इन्हीं पेड़ों से अपनी जीविका के स्रोत तलासते हैं।

'बिसात पर जुगनू' उपन्यास में प्रकाशो नामक युवती के जन्म के समय उसे चमेली के फूलों पर लिटाया गया था। उसकी माँ प्रसव पीड़ा के समय बार-बार चमेली के फूल एवं उसके सुगंध की मांग करती है-अच्छा चमेली का फूल सुना दो।..... बड़े..... राजा की बगिया में मिला है। उउ ईईईईईई .....। अम्मा..... मर जैब..... बचा लो..... लोओ। कोई लो एक फूल ही सुना दो।"[15] पैदा हुई प्रकाशो गरीबी में ही जीवन बिता रही थी, लेकिन उसकी चेतना में प्रकृति की खुशबू भी रहती थी।यह नई चेतना के प्रत्यक्ष प्रमाण है जिसमें उसकी पर्यावरणीय पक्षधरता बोल रही है। इन उपन्यासों के ये नारी पात्र पर्यावरण से कितना लगाव रखते हैं। इनके लिए जीवन का महत्वपूर्ण अंश है यह पेड़ पौधे वनस्पतियां यही पात्र प्रतिकूल स्थितियों में अपने पर्यावरण के आधार के लिए ललित रहती हैं। दिनों दिन पूरे इकोसिस्टम को विकास के नाम पर नष्ट किया जा रहा है। वनस्पति या नदी नाले पर्वत पठार विध्वंस के कगार पर पहुंच रहे हैं।

महुआ माजी कृत मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआउपन्यास में पर्यावरण संवेदनशीलता का सर्वोत्तम साक्ष्य उपस्थित है। मनुष्य आज प्रदूषण से भरी एक नई दुनिया तैयार कर रहा है। इसी उपन्यास की महिला पात्र सवाल करती है- "किसका विकास कैसा विकास? हमारी यह धरती लोहे के रूप में सोना उगलती है। फिर भी हमारे लोग इतने गरीब। ऊंची पहाड़ियों पर स्थित लौह अयस्क की खदानों और मिलों से बरसात में लाल पानी बहकर बरसों से हमारे खेतों को बर्बाद कर रहा है। प्रदूषण की वजह से इन इलाकों के लोगों की औसत आयु कितनी कम हो गई है। इसका खामियाजा कौन देगा हमें। हमारी धरती का लोहा तो निकाल कर चला जाता है देश-विदेश के कल कारखानों में..... दूसरों को समृद्ध करने। हमारे लोगों को क्या मिलता है और हमारे वे बदकिस्मत लोग जिन्हें उखाड़ना पड़ता इन खदानों के कारण उनकी पीड़ा का कोई लेखा-जोखा है किसी के पास?"[16] इसका जवाब आज के विकास के पूरे तंत्र में किसी के पास नहीं है। विकिरण से पूरी नस्ल चौपट हो रही है, पेड़ पौधे मेंढक मछलियों का जीवन बर्बाद हो रहा है। यह उपन्यास इस समस्या पर समग्रता के साथ सवाल खड़ा करता है।

समकालीन महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में विभिन्न प्रकार की पर्यावरणीय समस्याओं को अपना विषय बनाकर आज के समय में एक महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। इन लेखिकाओं के इस पर्यावरणीय पक्षधरता से उनकी सजग मानवी चेतनाएं और

ज्यादा प्रमाणित होकर के सामने आती हैं। समकालीन महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में पर्यावरण से लगाव परिलक्षित होता है, इन उपन्यासों में पर्यावरणीय समस्यायों के वर्णन तथा निराकरण के उपाय प्राप्त होते हैं।

संदर्भ सूची-

1. पुष्पपाल सिंह- भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन- दिल्ली, संस्करण- 2023, पृष्ठ- 210
2. सीमोन द बोउवार- स्त्री: उपेक्षिता, हिंद पॉकेट बुक्स- दिल्ली, संस्करण- 2004, पृष्ठ -75
3. के.वनजा- फेमिनिज्म, वाणी प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण- 2023, पृष्ठ- 14
4. रामचंद्र गुहा- उपभोग की लक्ष्मण रेखा, पेंगुइन बुक्स-इंडिया, संस्करण -2013, पृष्ठ -18
5. जॉर्ज लुकाच- इतिहास दृष्टि और ऐतिहासिक उपन्यास, ग्रंथशिल्पी- दिल्ली, संस्करण- 2009, पृष्ठ-38
6. प्रभा खेतान- उपनिवेश में स्त्री, राजकमल प्रकाशन -दिल्ली, संस्करण-2016, पृष्ठ-13
7. रंजना जायसवाल- और मेघ बरसते रहे, सामाजिक प्रकाशन -दिल्ली, संस्करण- 2022, पृष्ठ-9
8. प्रत्यक्षा-बारिशगर, आधार प्रकाशन- पंचकूला हरियाणा, संस्करण -2019, पृष्ठ-114
9. अनामिका-दस द्वारे का पींजरा अनामिका, राजकमल प्रकाशन -दिल्ली, संस्करण-2023, लिस्ट -36
10. नीलेश रघुवंशी-एक कस्बे के नोट्स, राजकमल प्रकाशन- दिल्ली, संस्करण- 2013, पृष्ठ-144
11. प्रत्यक्षा-बारिशगर, आधार प्रकाशन- पंचकूला हरियाणा, संस्करण -2019, पृष्ठ-192
12. किरण सिंह-शिलावहा, आधार प्रकाशन-पंचकूला हरियाणा, संस्करण- 2019, पृष्ठ-119
13. अणुशक्ति सिंह- शर्मिष्ठा, वीणा प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण -2020, पृष्ठ-75
14. महुआ माजी -मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन- दिल्ली, संस्करण- 2023, पृष्ठ-116
15. वंदना राग- बिसाद पर जुगनू, राजकमल प्रकाशन- दिल्ली, संस्करण- 2020, पृष्ठ-28
16. महुआ माजी -मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन- दिल्ली, संस्करण- 2023, पृष्ठ-318

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति की सामाजिक परिवर्तन में भूमिका

डॉ० अमित राणा

असिस्टेंट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, किशोरी रमण महाविद्यालय, मथुरा

सारांश – शिक्षा किसी समाज में सदैव चलने वाली वह सोद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान, एवं कला कौशल में वृद्धि तथा व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और इस प्रकार उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति छात्र-छात्राओं की रचनात्मक संज्ञात्मक क्षमता के साथ-2 सामाजिक, नैतिक और भावनात्मक क्षमताओं के विकास पर जोर देती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति सामाजिक परिवर्तन के साथ – साथ सामाजिक समस्याओं के लिये नवीन समाधान विकसित करने के लिये प्रोत्साहित करती है। यह शोध पत्र नई शिक्षा नीति 2020 के लिये संदर्भित है, जो मुख्यत: शिक्षा नीति 2020 की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करती है। नई शिक्षा नीति का उद्देश्य बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक व्यक्ति को आगे बढ़ने और विकसित होने के लिये एक समान अवसर प्रदान करना है। तथा समाज में परिवर्तन लाना है।

मूलशब्द – नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, सामाजिक परिवर्तन, शिक्षा

प्रस्तावना:-

शिक्षा किसी समाज में सदैव चलने वाली वह सोद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कला-कौशल में वृद्धि तथा व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है। और इस प्रकार उसे सौम्य, सृसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। इसे द्वारा व्यक्ति एवं समान दोनों का निरन्तर विकास होता है।

सामाजिक परिवर्तन से अर्थ सामाजिक संरचना तथा सामाजिक व्यवहार मे परिवर्तन से है। समाज में हमारे सभी व्यवहार किसी न किसी सामाजिक नियम से प्रभावित होते है। हम अपने सामाजिक मूल्यों के अनुसार कुछ मूल्यों को अनछा समझते हैं तथा कुछ मूल्यों को गलत। जब कभी भी इन सामाजिक नियमों, मूल्यों तथा सामाजिक संबंधों में परिवर्तन के तत्व स्पष्ट होने लगते है, तब सामाजिक व्यवस्था का रूप भी बदलने लगता है। परिवर्तन की इसी दशा को हम सामाजिक परिवर्तन कहते है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति की अवधारणा:- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 जिसे 29 जुलाई 2020 को भारत के केंन्द्रीय मंत्रिमंडल द्वारा अनुमोदित किया गया था। भारत की नई शिक्षा प्रणाली के दृष्टि अनुमोदित किया गया था। भारत की नई शिक्षा प्रणाली के दृष्टिकोण को रेंखाकित करती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति प्राथमिक शिक्षा से उनच शिक्षा के साथ-साथ ग्रामीण और शहरी भारत दोनों में व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिये एक व्यापक रूपरेखा तैयार करती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति का उद्देश्य धर्म, लिंग, जाति या पंथ के किसी भी भेदभाव के बिना, सभी को बढने और विकसित होने के लिये एक समान मंच प्रदान करना और सभी को उनच गुणवत्ता वाली शिक्षा प्रदान करके मौजूदा जीवंत ज्ञान समाज को बनाये रखने और उसकी देखभाल करना है। यह भारत को वैश्विक ज्ञान महाशक्ति बनाने की दिशा में भी एक कदम है। इस नीति में यह परिकल्पना की गई है कि हमारे संस्थानों के समान पाठयक्रम और शिक्षाशास्त्र, को छात्रों में मौलिक कर्त्तव्यों के प्रति सम्मान की भावना पैदा करनी चाहिये और संवैधानिक मूल्यों, अपने देश और एक बदलती दुनिया के साथ एक संबंध पैदा करना चाहिये। इस नीति का दृष्टिकोण शिक्षार्थियों के बीच ज्ञान, कौशल, आत्मविश्वास, बृद्धि और कर्म के साथ न केवल विचार करना है, जो मानव अधिकारों सतत विकास और जीवन का सर्मथन करते है और वैश्विक कल्याण के लिये एक जिम्मेदार प्रतिबद्धता, जिससे वास्तव में एक वैश्विक नागरिक प्रतिबिंबित होता है।

नई शिक्षा नीति पांच स्तंभों पर केंन्द्रित है। वहनीयता, अभिग्मयता, गुणवत्ता, न्यायपरस्ता और जवाबदेही-निरंतर सीखने की प्रक्रिया को सुनिश्चित करने के लिये। इसे समाज और अर्थव्यवस्था में ज्ञान की मांग के रूप से नागरिकों की जरूरतों के

अनुरूप तैयार किया गया, जिससे नियमित आधार पर नये कौशल हासिल करने की आवश्यकता को पूरा किया जा सकता है। इस प्रकार गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान और सभी के लिये आजीवन सीखने के अवसर पैदा करना संयुक्त राष्ट्र सतत विकास लक्ष्य 2030 में सूचीबद्ध पूर्ण और उत्पादक रोजगार और अनछे काम की ओर अग्रसर होना, नई शिक्षा नीति 2020 का उद्देश् है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के द्वारा ही सामाजिक परिवर्तन सम्भव है। परिवर्तन समय की मांग के अनुसार किया जाये तो वह देश की उन्नति में सहायक होता है।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति एक सामाजिक परिवर्तन के साधन के रूप में :- नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति एक सामाजिक परिवर्तन के साधन के रूप में कार्य कैसे करेंगी। इस सामाजिक परिवर्तन को हम निम्न पहलुओं के माध्यम से समझेंगे:-

शिक्षा का सर्वव्यापीकरण:- NEP 2020 में 2030 तक स्कूली शिक्षा के सर्वव्यापीकरण का लक्ष्य रखा गया है। इसका अर्थ है कि 2030 तक प्रीस्कूल और सेंकेडरी स्तर 100% सकल नामांकन अनुपात-ग्रीस एनरॉलमेंट रेशियों (जीईआर) हासिल कर लिया जाये। साथ ही 2035 तक उनचतर शिक्षा के सर्वव्यापीकरण का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। उनचतर शिक्षा में जीईआर को बढाकर 50% करने का लक्ष्य है। विभिन्न राज्य और उसके भीतर के समूह शिक्षा प्राप्ति के लिहाज से अलग-अलग स्तरों पर है। इसीलिये लक्ष्यों और प्रयोजनों के सर्वव्यापीकरण को क्षेत्रो और समूहोंके संदर्भ में देखने की दरकार है। उम्मीद है कि स्कूली शिक्षा के सर्वव्यापीकरण से उनचतर शिक्षा में अधिकतम नामांकन संभव होगा।

पाठ्यक्रम और अध्यापन के तौरतरीको में बदलाव:- एनइीपी 2020 में शिक्षा में उदार नजरिये को अपनाने की बात कही गयी है। इसमे स्कूली और उनचतर शिक्षा में मौजूदा पाठ्यक्रम और अध्यापन के तौर तरीको के पुनर्गठन पर जोर दिया गया है ताकि इस नीति के लक्ष्यों और प्रयोजनो को पूरा किया जा सके। इसमे 10+2 के मौजूदा ढॉचे के बजाये 5+3+3+4 का नया ढॉचा अपनाने का सुझाव दिया गया है। इसमें तीन वर्ष की उम्र में शुरूआती बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा भली चाइल्डहुड केयर एंड एजुकेशन का मजबूत आधार होगा। नीति में 2030 तक मजबूत अध्ययन शिक्षा संस्थान-हायर एजूकेशन इंस्टीटूशंस बनाने की सिफारिश की गई है। इन संस्थानों को बहुविषयक शैक्षिक अनुसंधान विश्वविद्यालय के नाम से जाना जायेगा।

शिक्षा में न्यायसंगतता और समावेशन:- नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति में सबके लिये गुणवत्तापूर्ण, न्यायसंगत और समावेशी शिक्षा का लक्ष्य रखा गया है। इसमे शिक्षा के सभी स्तरों पर पहुॅच, भागीदारी और ज्ञानार्जन के परिणामों में विभिन्न सामाजिक वर्गों के बीच के अंतर को दूर करने की प्रतिबद्धता दोहरायी गई है। न्यायसंगता को समावेशी विचार मानते हुये सामाजिक और आर्थिक रूप से कमजोर समूहो-सोशली एंड इकोनौमिकली डिसएड वांछेड ग्रुप्स और क्षेत्रों पर घ्यान केंन्द्रित किया गया है। इसमें कमजोर समूहों की बडी आबादी वाले क्षेत्रो की विशेष शिक्षा एजूकेशन जोन घोषित करने की सिफारिश की गयी है। शुरूआती बाल्यावस्था देखभाल से लेकर उनचतर शिक्षा तक ज्ञानार्जन के परिणामों में न्यायसंगता को बढावा देकर समाज में परिवर्तन लाना मुख्य लक्ष्य है।

प्रभावशाली व्यवस्था के लिये सुधार:- इस नीति में शिक्षा के क्षेत्र में लक्ष्यों और प्रयोजनो को हासिल करने के लिये व्यवस्था का परिवर्तनकारी एजेंडा निर्धारित किया गया है। स्कूली शिक्षा के प्रमुख सुधारों में स्कूल परिसरों/समूहों की स्थापना, स्कूल मापदंडो और प्राधिकरणों का निर्धारण तथा विद्यालय परीक्षा बोर्डो में सुधार शामिल है। इसमें एक भारतीय उनचतर शिक्षा आयोंग के गठन की सिफारिश की गयी है। यह आयोग उनचतर शिक्षा में एक मात्र नियामक संस्था होगा। इसके चार स्तंभ होंगे- राष्ट्रीय उनचतर शिक्षा संसाधन केन्द्र, राष्ट्रीय मूल्यांकन और मान्यता परिषद तथा सामान्य शिक्षा परिषद। इस आयोग के गठन का उद्देश्य उनचतर और पेरोवर शिक्षा में जरूरत से ज्यादा नियमन से होने वाली समस्याओं को दूर करना है।

व्यावसायिक शिक्षा:- एनईपी 2020 में सामान्य शिक्षा में कौशल के तत्व को मजबूत करने पर बल दिया गया। इसमें व्यावसायिक शिक्षण का मुख्यधारा की औपचारिक शिक्षा में समावेश कर इसका दर्जा बढाने की बात कही गई है। आशा है कि 2025 तक 50% से ज्यादा छात्र स्कूली और उनचतर शिक्षा प्रणाली के जरिये ही व्यावसायिक शिक्षण भी हासिल कर सकेंगे।

गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अनुसंधान:- नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति अनुसंधान और ज्ञान सृजन की एक मजबूत संस्कृति विकसित करने का पक्ष लेती है। इसका उद्देश्य भारत को ज्ञान के क्षेत्र में महाशक्ति बनाना है। इसमें एक राष्ट्रीय अनुसंधान संस्थान की स्थापना का सुझाव दिया गया है। यह सस्थान विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में अंतरविषयक अनुसंधानों को बढावा देगा।

प्रौद्योगिकी का उपयोगः- NEP 2020 में एक राष्ट्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी मंच की स्थापना का प्रस्ताव दिया गया है। यह विचारण की प्रक्रिया को बेहतर बनाने तथा ज्ञानार्जन, आंकलन, योजना और प्रशासन में सुधार के मंच के रूप में कार्य करेगा। नीति में शिक्षौ के सभी स्तरों पर प्रौधेगिकी के समुचित समावेश की बात कही गयी है। जिससे शिक्षण, ज्ञानार्जन और मूल्यांकन की प्रक्रियाओं में सुधार होगा।

शिक्षा पर सरकारी खर्च में वृद्धिः- NEP 2020 में शिक्षा पर सरकारी खर्च को समल घरेलू उत्पाद का 6% करने का संकल्प जाहिर करती है। जिसकी सिफारिश 1986 की नीति में की गयी थी। नीति में शिक्षा प्रणली को मजबूत करने के मकसद से वित घोषणा के लिय दीर्घकालिक महत्वपूर्ण क्षेत्रों की पहचान की गई है। ये है- गुणवत्ता पूर्ण शुरूआती बाल्यावस्था देखभाल शिक्षा, बुनियादी साक्षरता और अंक ज्ञान सुनिश्चित करना, स्कूल परिसरों को समुचित संसाधन मुहैया कराना शिक्षक और शिक्षको के सतत विकास में निवेश, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में सुधार, अनुसंधान संवर्द्धन तथा आनॅलाइन शिक्षा का व्यापक उपयोग।

भारतीय भाषाओं, कला और संस्कृति का संवर्द्धनः- एनईपी 2020 शिक्षा के सभी स्तरों पर भारतीय भाषाओं, कला और संस्कृति के प्रयोग की सिफारिश करती है। इसमें देश की भाषाओं के संवर्द्धन के मकसद से भारतीय अनुवाद और विवेचना संस्थान की स्थापना का प्रस्ताव किया गया है। इसमें कहा गया है कि संस्कृत को स्कूली और उच्चतर शिक्षा संस्थानों की मुख्यधारा में शामिल किया जायेगा।

शिक्षा में अंतर्राष्ट्रीयकरणः- एनईपी 2020 शिक्षा में ज्यादा से ज्यादा अंतर्राष्ट्रीयकरण का पक्षधर है। इसमें ऐसे अवसर पैदा करने की बात कही गयी है जिनसे बडी संख्या में अंतर्राष्ट्रीय छात्र अध्ययन के लिये भारत आ सकें।

निष्कर्षः- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की दृष्टि अत्यंत व्यापक और दीर्घकालिक है। शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन करके समान में परिवर्तन किया जा सकता है। इन उद्देश्यों को हासिल करने के लिए तौर तरीके निर्धारित किये गये हैं। शिक्षा के मौजूदा और इच्छित परिणामों के बीच अंतर को शुरूआती बाल्यावस्था से उनचतर शिक्षण तक व्यवस्था में बडे सुधारों तथा समुचित रणनीतियों और कार्यक्रमों के जरिये दूर किया जाना है। यह नीति अपने दृष्टिकोण और इरादे में वैश्विक के साथ स्थानीय भी है। इसमें शिक्षा को शैक्षिक सुधारों के एजेंडे में सबसे ऊपर रखा गया है। इसका लक्ष्य शिक्षा की बुनियाद को मजबूत बनाना, तथा सामाजिक परिवर्तन द्वारा भारत को शिक्षा के क्षेत्र में वैश्विक तौर पर अग्रणी स्थान तक पहुॅचाना है।

संदर्भ

- एनईपी 2020, पृष्ठ 6
- एनईपी 2020 खंड 3, पैरा 3.1
- एनईपी 2020, खंड 10, पैरा 10.06
- एनआई ई पीए 2020, पृष्ठ 117, कस्तुरीरंगन, 2021 एनईपी 2020, 12.8 पृष्ठ 39
- योजना पत्रिका
- मसौदा राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2019
- https://www.prabhathhabas.com/opinion/importona - ofsocial – education.in- education- policy - article by prof – Deepak – kumar – srivastava -srn

उच्च शिक्षा और राष्ट्रीय विकास का अतीत और भविष्य

अरुण कुमार

शोधार्थी, ऐतिहासिक अध्ययन और पुरातत्व विभाग, दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय, गया, बिहार

यह अक्सर जाना जाता है कि शिक्षा किसी राष्ट्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, विशेष रूप से उच्च शिक्षा। शिक्षा प्रणाली किसी देश के सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन की कुंजी होती है। "उच्च शिक्षा किसी देश के प्रशासन, उद्योग, व्यापार, व्यवसाय और अन्य प्रयासों के लिए अत्यधिक कुशल वैज्ञानिक और तकनीकी श्रम का उत्पादन करती है। "जिन लोगों ने अपनी प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा पूरी कर ली है, वे उन मामलों को पढ़, लिख, व्याख्या और विश्लेषण कर सकते है, जो उनके लिए तत्काल चिंता का विषय होता है, चाहे वो विषय स्थानीय या क्षेत्रीय ही क्यों न हो। इसके अतिरिक्त, उच्च शिक्षा पुरुषों और महिलाओं को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दोनों ही दृष्टिकोणों से समस्याओं का विश्लेषण करने के लिए एक व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रदान करती है जो वर्तमान और भविष्य में सभी मानव जाति को प्रभावित करती हैं।

षशिक्षा न केवल आर्थिक रूप से समृद्ध समाज के विकास का साधन है, बल्कि एक ऐसा समाज है जो बहुलवाद और लोकतंत्र के संदर्भ में फल-फूल सकता हैष। आधुनिक युग ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी में बहुत अधिक प्रगति देखी है। "विज्ञान आधारित दुनिया में, शिक्षा और अनुसंधान किसी देश की संपूर्ण विकास प्रक्रिया, उसके कल्याण, प्रगति और सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण होता है।" वैश्वीकरण हमें अपने वित्तीय हितों की रक्षा करने और समाज में तेजी से हो रहे परिवर्तनों के साथ तालमेल बनाये रखने के लिये अपने व्यापार, व्यवसाय, कृषि और अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में अधिक प्रतिस्पर्धी बनने के लिए मजबूर करता है।

तकनीकी श्रम की मात्रा और गुणवत्ता के मामले में संयुक्त राज्य अमेरिका और पूर्व सोवियत संघ क्रमशः दूसरे और तीसरे स्थान पर है। भारत के तकनीकी और पेशेवर कार्यबल को विदेशों में इसकी दक्षता और प्रभावशीलता के लिए अत्यधिक महत्व दिया जाता है। हालांकि, जब वैश्विक औद्योगिक विकास की बात आती है, तो हम दसवें स्थान पर है, किन्तु वर्तमान में यह पायदान संशोधित हुआ है, इसलिए हमारे तकनीकी और पेशेवर कार्यबल की मात्रा हमारे तकनीकी-आर्थिक आधुनिकीकरण के अनुरूप नहीं है। सच्चाई यह है कि हम अपने कुशल श्रम को संयुक्त राज्य अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन और कनाडा सहित सभी औद्योगिक देशों में निर्यात करते हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि हम विकास के मामले में अन्य देशों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपने सीमित और अमूल्य राष्ट्रीय संसाधनों को आवंटित कर रहे हैं। जो कि हमारे खराब कार्मिक नियोजन का परिणाम है।

दूसरे बिंदु के बारे में, जो यह है कि उच्च शिक्षा ने पेशेवर श्रम प्रदान किया है, इसने लोक सेवकों और अन्य पेशेवरों को प्रशिक्षित करके और समकालीन संस्थानों और व्यवसायों के प्रबंधन के लिए योग्यता के नए ढांचे विकसित करके ऐसा किया है। हालाँकि, पदानुक्रम, भाई-भतीजावाद और गुटबाजी हमारे संस्थानों की जानी-मानी विशेषताएँ हैं, जिनमें औपचारिक संगठन, नौकरशाही और पेशे सम्मिलित है। समर्पण के साथ काम करने के लिए आवश्यक आधुनिक संवेदनशीलता उच्च शिक्षा द्वारा ही प्रदान की जाती है, केवल कौशल ही नहीं प्राप्त किया जा सकता है। वास्तव में, समाज में एक मौलिक क्रांति लाने के बजाय, उच्च शिक्षा ने सामाजिक पदों में बदलाव किया है। सामाजिक पदानुक्रम के संदर्भ में लगभग बहुत कुछ परिवर्तन हुआ है।

परिणामस्वरूप, हमारे पास आधुनिक संस्थान तो है, लेकिन आधुनिक तर्क नहीं है, वैज्ञानिक और तकनीकी लोग तो है, लेकिन वैज्ञानिक सोच और दृष्टिकोण नहीं, और आधुनिक लक्ष्य तो है, लेकिन आधुनिक नैतिकता नहीं है। स्वतंत्रता के बाद के युग में उच्च शिक्षा के कौशल घटक ने मूल्य घटक पर बढ़त हासिल की है, हमारी पद्धति बौद्धिक कौशल पर कच्ची शिक्षा को प्राथमिकता देती है। मूल्य समावेशन को उस तरह से महत्व नहीं दिया जाता, जैसा कि ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था में दिया जाना चाहिए, जो हमारी उच्च शिक्षा है। इन तरीकों से जो भी मूल्य व्यक्त किया जाता है, वह आधुनिक नहीं है।

यह मध्ययुगीन है। श्रम सम्मान, समानता और सार्वभौमिकता के सिद्धांतों को बढ़ावा देने के बजाय, यह स्थानीयता, अभिजात्यवाद और सफेदपोश नौकरियों के वर्चस्व के मूल्यों को बढ़ावा देता है।

वर्तमान शोषक संस्थानों के बारे में आलोचनात्मक जागरूकता बढ़ाने के बजाय, यह पारंपरिक मूल्यों को मान्य और सुदृढ़ करने का प्रयास करता प्रतीत होता है। इन जन्मजात कमियों के कारण उच्च शिक्षा युवा पीढ़ी के दृष्टिकोण में आधुनिकता का संचार करने में असमर्थ है।

उन्नत शिक्षा और राष्ट्र की उन्नतिः

इस स्थिति का मुख्य कारण राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी है। प्रशासन ने बार-बार घोषणा की है कि शिक्षा आधुनिकता का इंजन है, लेकिन व्यवस्था में सुधार के लिए बहुत कुछ नहीं किया गया है। कई शिक्षा आयोगों के प्रस्तावों पर अमल नहीं किया गया है। एम.एस. गोरे और एस.सी. दुबे जैसे प्रमुख समाज वैज्ञानिक भी सामाजिक परिवर्तन लाने में उच्च शिक्षा की विफलता पर शोक व्यक्त करते हैं और इसके लिए राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी को जिम्मेदार ठहराते हैं।

यह बिना कहे ही समझ लेना चाहिए कि, शिक्षा समाज का एक अंग है और यह एक उप-प्रणाली के रूप में कार्य करती है। यह कई उप-प्रणालियों के साथ मिलकर काम करती है, जैसे कि राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और जातीय। सामाजिक संरचना की विशेषताओं के आधार पर, यह अन्य उप-प्रणालियों के साथ स्वायत्त या आश्रित अंतःक्रिया स्थापित कर सकती है। भारत में शिक्षा अब ऐतिहासिक कारकों और हमारी अत्यंत अनुचित सामाजिक संरचना दोनों के कारण अन्य सामाजिक उप-प्रणालियों पर निर्भर है। इसलिए, आम जनता के दृष्टिकोण को आधुनिक बनाने के लिए शिक्षा का उपयोग करने के बजाय, राजनीतिक रूप से प्रभावशाली समूहों ने औपनिवेशिक युग से ही अपने राजनीतिक अधिकार को बनाए रखने के लिए इसका उपयोग किया है।

भारत में पूंजीवादी अर्थव्यवस्था ने स्वतंत्रता के बाद के युग में विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों के आधिपत्य को बनाये रखने के लिए इसका इस्तेमाल किया है। कुलीन पब्लिक स्कूलों, जातियों द्वारा नियंत्रित कॉलेजों और धार्मिक संस्थानों के प्रसार के महत्वपूर्ण सबूत है। समाज के संरचनात्मक स्वरूप को बदलने के लिए आलोचनात्मक और वैज्ञानिक रूप से सोचने के लिए लोगों को बंदी व्यवस्था से मुक्त नहीं किया जा सकता है।

समापन टिप्पणियाँः

देश के समग्र विकास के लिए उच्च शिक्षा प्रणाली के लक्ष्यों और प्राथमिकताओं पर पुनर्विचार और पुनर्गठन कि आवश्यकता है। हमारे देश में मौजूद गरीबी और विविधता के बारे में विस्तार से जानना भी आवश्यक है। औद्योगिक और कृषि क्षेत्रों के विकास को गति देने के अलावा, शांति, सामाजिक सामंजस्य और गतिशीलता के लिए सामाजिक न्याय, समानता और धर्मनिरपेक्षता भी अत्यंत आवश्यक है- ये सभी विकास को टिकाऊ बनाने के लिए आवश्यक हैं। इस कारण से, उच्च शिक्षा का व्यापकीकरण और इसकी विशिष्ट और भेदभावपूर्ण प्रकृति का उन्मूलन उस दिशा में पहला कदम होना चाहिए।

प्रख्यात पश्चिमी पूंजीवादी मॉडलों को चुनौती देनाः

विश्वविद्यालय प्रयोगशालाओं को प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों में अनुसंधान के केंद्र के रूप में बदल दिया जाना चाहिए, पश्चिम के उच्च-स्थिति वाले, पूंजीवादी मॉडल की नकल किये बिना, लेकिन हमारे वित्तीय संसाधनों और सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। ऐसा करने के लिए हमें उच्च शिक्षा प्रणाली में अपना विश्वास बहाल करना होगा। यह कॉलेजों के परिसरों को अधिक वैज्ञानिक अनुभव देगा। हमारे देश की मांगों और जीवन की विकसित प्रकृति को प्रतिबिंबित करने के लिए पाठ्यक्रम सामग्री को अद्यतन किया जाना चाहिए। छात्रों को समस्ययां-समाधान कौशल में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए और भविष्य के तेजी से विकसित हो रहे विज्ञान-आधारित समाज की यथार्थवादी समझ दी जानी चाहिए। उन्हें एक समृद्ध, आत्मनिर्भर देश के निर्माण की यात्रा पर जाने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए है।

जीवाश्म ईंधन का अत्यधिक उपयोग पश्चिम में औद्योगिक और कृषि विकास मॉडल का आधार है। इसके परिणामस्वरूप प्रदूषण और पर्यावरण में गिरावट आती है। इससे कम नौकरियाँ पैदा होती हैं और पूंजी की अधिक आवश्यकता होती है। यह विकास प्रक्रियां जारी नहीं रह सकती। उच्च शिक्षा को विज्ञान शिक्षा को उचित रूप से पुनर्निर्देशित करने और रचनात्मक अनुसंधान में संलग्न होने की चुनौती को स्वीकार करना चाहिए, ताकि घरेलू तकनीकें बनाई जा सकें, जो कम ऊर्जा और

नवीकरणीय स्रोतों का उपयोग करें, कम प्रदूषण और पर्यावरणीय गिरावट में योगदान दें, और अधिक नौकरियाँ पैदा करें।

मूल्य-संवर्धन की कमी के कारण, उच्च शिक्षा सामाजिक परिवर्तन लाने में पूरी तरह विफल रही है। निजी वित्त, धार्मिक और जाति संगठनों और विश्वविद्यालय प्रणाली पर इसकी निर्भरता कभी भी समाप्त हो जाएगी, जिससे यह अपनी आश्रित प्रकृति से मुक्त हो जाएगी। मूल्य-संवर्धन के लिए अलग से नैतिक या धार्मिक शिक्षा और निर्देश आवश्यक नहीं हैं। पाठ्यक्रम में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, धर्मनिरपेक्षता, सार्वभौमिकता, समाज, राष्ट्र और अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के कल्याण के लिए चिंता, सांस्कृतिक विरासत के प्रति सम्मान, सामाजिक जिम्मेदारी, शांतिपूर्ण संघर्ष समाधान, न्याय, समानता, सत्य, स्वतंत्रता आदि जैसे महत्वपूर्ण मूल्यों को इस तरह से शामिल किया जाना चाहिए कि वे अत्यधिक प्रचलित न हो जाएं। उच्च शिक्षा की पूरी व्यवस्था को इन मूल्यों को ध्यान में रखकर बनाया जाना चाहिए।

हमारे देश के राष्ट्रीय विकास में उच्च शिक्षा की उचित भूमिका को पूरी तरह से महसूस नहीं किया गया है। हालाँकि, प्रशासन पिछली गलतियों से सीखने और सुधारात्मक और उपचारात्मक उपायों को लागू करने के बजाय उच्च शिक्षा के निजीकरण पर जोर दे रहा है। निजीकरण से अल्पावधि में कुछ सौ करोड़ रुपये की बचत हो सकती है, लेकिन लंबे समय में, यह न्याय, समानता और वांछित सामाजिक सुधार नहीं लाएगा, जो शांति और आर्थिक प्रगति दोनों को नुकसान पहुंचा सकता है।

संदर्भ

1. जंध्याला बी. जी. तिलक. (2007). ज्ञान आयोग और उच्च शिक्षा. आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 42(8), 630-633. http://www.jstor.org/stable/4419273
2. तिलक, जे.बी. (2007). ज्ञान आयोग और उच्च शिक्षा.आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 630-633.
3. ऐसमोग्लू, डी., जॉनसन, एस., और रॉबिन्सन, जे. (2003)। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में रोग और विकास। जर्नल ऑफ द यूरोपियन इकोनॉमिक एसोसिएशन, 1(2/3), 397-405
4. मोईद, ए., और अफजल, एम. (2024)। शैक्षिक सशक्तिकरण: वाणिज्यिक बैंकों में शैक्षिक वित्तपोषण का विकास, नवाचार और चुनौतियाँ। कॉजेंट इकोनॉमिक्स एंड फाइनेंस, 12(1), 2339519
5. कुमार, ए.(2004). भारतीय विश्वविद्यालयों के सामने चुनौतियाँ. जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय शिक्षक संघ (जेएनयूटीए), नई दिल्ली.
6. अल्टबैक, पी. जी., और टेचलर, यू. (2001)। एक वैश्विक विश्वविद्यालय में अंतर्राष्ट्रीयकरण और आदान-प्रदान। जर्नल ऑफ स्टडीज इन इंटरनेशनल एजुकेशन, 5(1), 5-25
7. कुमार, वी., और गुप्ता, जी. (सं.). (2022). महामारी के दौरान रणनीतिक प्रबंधन. लंदन: रूटलेज. सेन, ए. (2002). देश बनाने के लिए, एक स्कूल बनाएं. न्यूयॉर्क टाइम्स, 27.
8. मैथ्यू, ए. (2019)। सामाजिक और क्षेत्रीय समानता को संतुलित करना: केरल में उच्च शिक्षा नीति प्रक्षेप पथ। भविष्य के लिए उच्च शिक्षा, 6(2), 207-225।

छत्तीसगढ के विद्यालयों में अध्ययनरत् कक्षा बारहवीं के विद्यार्थियों का परीक्षा चिंता पर अध्ययन

डॉ० हेमन्त कुमार खटकर

गांव- सुखापाली, पोस्ट-बिछिया, वि.ख.-बसना, जिला-महासमुन्द (छ.ग.)

प्रस्तावना- शिक्षा क्षेत्र में बढती जनसंख्या शिक्षा प्राप्त करने के बाद नौकरी पाने की समस्या बढती बेरोजगारी, गरीबी, नौकरी के लिए शिफारीश, जागृतिकीकरण, यांत्रिकीकरण, गुणवत्ता, असफलता आदि के कारण ग्रामीण में तनाव व आक्रामकता निर्माण होता है और सतत इनका विचार करने के कारण चिंता निर्माण होती हैं। इन सभी का प्रभाव ग्रामीण विद्यार्थी के शैक्षिक स्तर पर पडता है।

शिक्षा के द्वारा ही हमारे शरीर की सर्वोत्तम उन्नती होती है जब हम परिमार्जन के साथ परिवर्तन करते हैं तथा किसी भी समाज में अपने आप को ढ़ाल लेते हैं। शिक्षा का कार्य आदमी को साक्षर बनाना तो है ही साथ में आदमी की सोई हुई शक्तियों को जगाकर उसे अपने आप में पूर्ण गुणवान बनाना भी है। शिक्षा की शुरूआत अज्ञानता से होती है और ज्ञान की उपलब्धि तक पहुंचकर पूर्ण हो जाती है।

ग्रामीण व नगर के माता पिता घर की स्थिति उचित न होने से अपनी संतानों की शिक्षा सरकारी विद्यालयों में दिलवाते हैं। बच्चों की आवश्यकताओं को लेकर होने वाली व्याकुलता, नजदीकी, वातावरण निर्धनता इत्यादि भी बच्चों को आक्रामक व घातक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं इस तरह वह स्वयं को एकल महसूस करते हैं जिससे उनके आक्रोशी व्यवहार में बढ़त होती चली जाती है, इसी के साथ वह संवेग संबंधी उतार-चढ़ाव से लड़ते रहते हैं भविष्य में यही आक्रमकता विद्यार्थियोंकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव डालती है।

परीक्षा की चिंता का बोझग्रामीण विद्यार्थियोंके मस्तिष्क पर आना एक स्वाभाविक क्रिया है जो उसे अपनी कमजोरी का तो अहसास दिलाता ही है साथ ही अच्छे परिणाम लाने में लगाये जाने वाले मेहनत, लगन, श्रम और व्यवस्थित तैयारी को मजबूती देने का रास्ता खोलकर मनोबल भी प्रदान करता है।

वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी चिंता से ग्रसित है। विद्यार्थियों इंम्तिहान की चिंता नवजवानों को भविष्य की चिंता रहती है, उस प्रकार अभिभावक अपने बच्चों के उज्जवल भविष्य को लेकर चिंतित रहते हैं। अत: चिंता एक सामान्य घटना है जो कि भय उत्पन्न करती है। परीक्षार्थी छोटा हो या बड़ा सभी को परीक्षा की चिंता होती है कि मैं सभी प्रश्नों को हल कर पाऊंगा या नहीं, समय पर कोर्स हो पायेगा या नहीं आदि। अत: परीक्षा चिंता को समाप्त करने के लिये उचित वातावरण में बालकों को विद्या दी जाये तथा समय-समय पर शिक्षकों द्वारा खुब उत्साहित किया जाये जिससे उनकी परीक्षा व्यग्रता दूर हो सके। वर्तमान में शिक्षा संबंधी बहुत सी समस्याएं हैं जो विद्यार्थियोंकी शैक्षणिक सफलता को प्रभावित करती है। उन्ही में से है, परीक्षा चिंता और आक्रमकता।

परीक्षा-चिन्ता-

चिन्ता एक प्रकार का नकारात्मक एवं अस्वस्थ्यकर संवेग है। चिन्ता के कारण व्यक्ति में सोचने-समझने, तर्क करने, स्मरण करने, विचार करने की क्षमता का ह्रास हो जाता है तथा व्यक्ति अपनी समस्याओं का समुचित समाधान नहीं ढूँढ़ पाता है। यथार्थ में चिन्ता व्यक्ति की एक कष्टप्रद मानसिक स्थिति है, जिसमें वह भविष्य की विपत्तियों व आशंकाओं से चिन्तित रहते है। चिन्ता सामान्यत: काल्पनिक भय के कारण उत्पन्न होती है। चिन्ता शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द "Anxiets" से हुई है जिसका अर्थ है ''किसी परिस्थिति के प्रति अनिश्चित भय एवं आशंका का अनुभव'' मनोविज्ञान में इस शब्द को

सर्वप्रथम लाने का श्रेय सिग्मण्ड फ्रायड महोदय को है।चिन्ता से तात्पर्य डर एवं आशंका के दु:खद भाव से होता है। फिशर के अनुसार- ''चिन्ता मन: स्नायुविकृति में उन आन्तरिक व्यक्तिगत अप्रवेश योग्य कठिनाइयों की प्रक्रिया है जिनका ज्ञान व्यक्ति को नहीं होता।''

मैक्डूगल ने कहा है- 'चिन्ता मन: स्नायुविकृति उस अवस्था में उत्पन्न होती है जब व्यक्ति एक निश्चित उद्देश्य के परिणाम को प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहता है अंर ऐसी परिस्थितियों में जब अवांछित संवेगों का जन्म हो जाता है तो उसे यह प्रतीत होने लगता है कि वह कठिनाइयों पर विजय प्राप्त नहीं कर पायेगा।'

चिन्ता के प्रकार-

1. तीव्र चिन्ता
2. दीर्घकालिक चिन्ता

परीक्षा-चिन्ता मनोवैज्ञानिक रूप से स्वयं ही शिक्षण के प्रति व्यक्ति में चेतना का विकास करती है। स्वाभाविक रूप से कुछ ग्रामीण में मनोवैज्ञानिक रुप से परीक्षा के प्रति नकारात्मक भाव उत्पन्न हो जाती है और वे स्वयं का मूल्यांकन असफलता के रूप में करते हैं। ऐसी परिस्थिति में उसके आत्मसम्मान और अहं को ठेस पहुँचती है जिससे वह चिन्ता से ग्रसित हो जाते हैं। परीक्षा चिन्ता एक ऐसी समस्या है जो सामाजिक परिस्थितियों के कारण जन्म लेती है बच्चे समाज में मजाक उड़ाये जाने के डर से कम शैक्षणिक उपलब्धियों के विचार से ही घबरा जाते हैं। किशोरों के समूह में यदि कुछ ग्रामीण विद्यार्थी खराब उपलब्धियों के कारण चिन्तित रहते हैं तो अन्य छात्र भी उनसे प्रभावित हो जाते हैं। जो छात्र परीक्षा चिन्ता से ग्रसित होते हैं वे विषय सामग्री जल्दी याद नहीं कर पाते। परीक्षा चिन्ता और खराब शैक्षणिक उपलब्धि दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

अध्ययन के उद्देश्य-

1. कक्षा बारहवीं के विद्यार्थियों की परीक्षा चिन्ता के प्रभाव का अध्ययन करना।
2. विद्यार्थियों के पारिवारिक वातावरण के आयामों के साथ परीक्षा चिन्ता के स्तरों का अध्ययन करना।

सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन-

गार्निक (2002) के अनुसार बौद्धिक कार्य करने में चिंता की महत्वपूर्ण भूमिका है। जैसे याद करके ब्लॉक डिजाइन करना आदि।

श्रीदेवी (2018)ने हायर सेकंडरी शिक्षार्थियों के शैक्षणिक उपलब्धि एवं सामान्य दुश्चिंता तथा परीक्षा दुश्चिंता के बीच संबंधों पर शोध किया। अध्ययनकर्ता ने अध्ययन के लिए शासकीय निजी अनुदान प्राप्त एवं निजी गैर अनुदान प्राप्त 10 दस यादृच्छिक रूप से चुने गये विद्यालयों को लिया गया। अध्ययन क्षेत्र -छत्तीसगढ के महासमुंद जिले के 12 हायर सेकंडरी स्कूल (5 शहरी, 7 ग्रामीण (2 शासकीय, 4 निजी अनुदान प्राप्त, 6 गैर अनुदान प्राप्त)) में से 10 दस ग्रामीण, 10 दस शहरी, 10 दस महिला, 10 दस पुरूष 20 बीस पुरूष, संपूर्ण 40 चालिस शिक्षाार्थी प्रतिदर्श लिया गया।

- सामान्य दुश्चिंता व परीक्षा दुश्चिंता के मध्य उच्च धनात्मक सहसंबंध हैं।
- सामान्य दुश्चिंता एवं शैक्षणिक दुश्चिंता के मध्य निम्न नकारात्मक सहसंबंध है।

अनुसंधान अंतराल-

1. कक्षा दसवीं के विद्यार्थियों में परीक्षा चिंता का अध्ययन नहीं हो पाया है।
3. कक्षा दसवीं के विद्यार्थियों की उच्च शिक्षा हेतु माता-पिता उपयुक्त वातावरण प्रदान करता है, पर उनके परीक्षा चिंता को नही समझ पाते है।

अनुसंधान विधि-

प्रस्तुत शोध समस्या का विषय विश्लेषणात्मक है। इसलिये अनुसंधानकर्त्ता ने शोध विषय के लिये अनुकूल एवं उपयोगी विधि के रूप में सर्वेक्षण विधि, अनुसूची तथा प्रश्नावली विधि का प्रयोग किया है।

परिकलपना-

Ho_1 कक्षा दसवीं के विद्यार्थियों परीक्षा चिन्ता के साथ कोई प्रभाव नहीं पाया जायेगा।

Ho_2 कक्षा दसवीं के विद्यार्थियों में उच्च स्तर की परीक्षा चिन्ता के साथ पारिवारिक वातावरण के आयामों में सार्थक प्रभाव नहीं पाया जायेगा।

चर-

किसी व्यक्ति, वस्तु या घटना के ऐसे स्थिति को चर कहते हैं, जिसमें दो बातें उपलब्ध होती हैं। प्रथम उसमें मात्रात्मक परिवर्तन सम्भव हो और उसे मापा जा सके। द्वितीय वह स्वयं प्रभावित हो सके और दूसरे चर को प्रभावित कर सकें तथा उत्पादन को भी प्रभावित कर सकें।

स्वतंन्त्र चर- वह चर जिसके मूल्यों में प्रयोगकर्ता परिवर्तन करता है और उसका प्रभाव दूसरे चर पर पड़ता है।

आश्रित चर- वह चर जो किसी अन्य चर से प्रभावित हो और स्वतन्त्र चर में परिवर्तन होने पर आश्रित चर भी परिवर्तित हो।

स्वतंत्र चर- परीक्षा चिन्ता,

आश्रित चर- छत्तीसगढ के विद्यालयों में कक्षा 10 के प्राप्तांक

उपकरण-

परीक्षा चिन्ता मापनी- कुमारी वर्षा कौशल एवं डॉ0 मधु अग्रवाल, (मेरठ, 2018)।

सांख्यिकीय तकनीक-

विचलन का मापन

सह-सम्बन्ध गुणांक

निष्कर्ष-

Ho_1 कक्षा दसवीं के विद्यार्थियों के परीक्षा चिन्ता में सार्थक प्रभाव नही पाया जायेगा। (अस्वीकृत)।

Ho_2 कक्षा दसवीं के विद्यार्थियों में उच्च स्तर की परीक्षा चिन्ता के साथ पारिवारिक वातावरण के आयामों में सार्थक प्रभाव नहीं पाया जायेगा। (अस्वीकृत)।

सीमाएँ-

1. अध्ययन के लिए महासमुंद जिले का चयन किया गया और शासकिय ग्रामीण और शहरी विद्यालयों को अध्ययन में सम्मिलत किया गया है।
2. अध्ययन में 40 विद्यार्थियों का न्यादर्श के रूप में चयन कर सीमित किया गया।
3. विद्यालय में आंकड़ा संग्रह के लिए परीक्षा चिन्ता उपकरण का उपयोग किया गया।

"माध्यमिक शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि पर अध्ययन"

डॉ० मोहनी सिन्हा

W/O राजेद्र सिन्हा, श्रीनगर, वार्ड क्र.01, रूद्री, जिला- धमतरी (छ.ग.)

प्रस्तावना:-

मनुष्य का चरित्र विभिन्न प्रवृत्तियों का सम्मिश्रण है, उसका मन सभी कर्मों का योग फल है। सत्य, दु:ख जैसे-जैसे उसकी आत्मा पर से होकर गुजरते हैं, वे उस पर अपनी छाप या संस्कार छोड़ जाते हैं और विभिन्न छापों का मिश्रण ही मनुष्य का चरित्र कहलाता है। आने वाली पीढ़ी को अगर अच्छा इंसान और नागरिक बनाना है, तो उन्हें अच्छी शिक्षा के साथ ही साथ अच्छे संस्कार भी देने होंगे। समाज से जुड़े सभी पक्षों को अपनी-अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन करते हुए एक संतुलन की स्थिति बनानी होगी, तभी एक अपराध मुक्त सुन्दर समाज की कल्पना की जा सकती है।

व्यक्ति के विचार ही उसकी पहचान होते हैं, वाणी का महत्व भी गौण है। विचार जीवंत होते हैं और उनका प्रभाव बहुत दूर तक पहुंचता है। मानव के सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा और उसके प्रभावी विस्तार के लिए कुशल अध्यापकों का होना नितांत आवश्यक है। प्रत्येक समाज में शिक्षकों का स्थान महत्वपूर्ण होता है। किसी भी राष्ट्र का भविष्य उसके शिक्षकों की कुशलता पर निर्भर करता है। आज के बदलते सामाजिक परिवेश में शिक्षा, और उसके प्राप्ति के तरीकों में कई परिवर्तन आए हैं, जिससे शिक्षक की भूमिका में बदलाव हुआ है। अच्छे शिक्षक के बारे में महाकवि कालिदास ने कहा है श्रेष्ठ शिक्षक वही है, जिसकी अपने विषय में गहरी समझ हो। उसे अपने विषय पर न केवल अधिकार होना चाहिए, बल्कि उसकी अध्यापन क्षमता भी उत्कृष्ट होनी चाहिए, ताकि छात्रों को श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त हो सके।

सामाजिक आर्थिक स्तर का तात्पर्य व्यक्ति की भौतिक सम्पति से रखा गया है, वह जिस समाज में रहता हैं, एक विशेष स्थिति उसके भोतिक सम्पत्ति व संसाधनों को तथा सामाजिक संस्कृतिक प्रतिष्ठा, शक्ति को एक आधार प्रदान करता हैं। आर्थिक स्तर व्यक्ति के आय-व्यय का लेख व उनकी परवारिक व्यवसाय उनकी जटिलता सभी प्रकार से पूर्ण किया गया, जिसमें व्यक्ति का एक पद है, जिसे व्यक्ति एक समूह में रखते है, जो कि लिंग, आयु, परिवार, धर्म, व्यवसाय, विवाह आदि प्रयत्नों के कारण प्राप्त करता हैं।

संवेगात्मक बुद्धि

गोलमैन- ''संवेगात्मक बुद्धि, व्यक्ति के स्वयं व दूसरों के संवेगों को पहचानने की वह क्षमता जो हमें प्रेरित करने और संवेगों को स्वयं में अपने संबंधों के दौरान भली भांति साधने में सहायक होती है।''

सोलवे व मैयर- ''संवेगात्मक बुद्धि, संवेगों का प्रत्यक्षीकरण करने, समझने, प्रबन्धन करने व उन्हें प्रयोग में लाने की योग्यता है।''

सैद्धांतिक ढांचा

माध्यमिक स्तर-

उच्चतर माध्यमिक स्तर को संदर्भित करता है तथा यह प्राथमिक या हाईस्कूल व स्नातक का मध्यवर्ती स्तर होता है। यह स्तर शिक्षा केवल 2 वर्ष की होती है। अवधि और कक्षाओं के संदर्भ में शिक्षा के इस स्तर पर एकरूपता है अर्थात् सभी राज्य तथा संघ शासित क्षेत्र इस 10+2 पैटर्न का पालन करते है भारत में उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में 11वीं से 12वीं कक्षा शामिल है तथा 16 से 18 वर्ष के बीच की आयु के विद्यार्थी होते हैं शिक्षा के इस स्तर पर विद्यार्थियों को अपनी पंसदीदा वर्ग तथा विषय के चुनाव की स्वतंत्रता है कला, वाणिज्य, विज्ञान (चिकित्सा और गैर चिकित्सा) का उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के स्तर का होता है उच्चतर माध्यमिक स्तर में विद्यार्थियों को अपने हितों के आधार पर अपने विषयों का चुनाव

करना होता है। 12वीं की परीक्षा देने वाले विद्यार्थी आमतौर पर चार या पाँच विषय अंग्रेजी या स्थानीय भाषा के साथ अनिवार्य करते है 10वीं कक्षा के पश्चात् अधिकांश माध्यमिक विद्यालयों में फिर से प्रवेश लेने वाले क्षेत्रों को अंग्रेजी या स्थानीय भाषा के अलावा ''कारे स्ट्रीम'' चुनने का विकल्प बनाना पड़ता है विज्ञान (गणित/जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान और भौतिक), वाणिज्य, लेखा, व्यवसाय अध्ययन और अर्थशास्त्र या मानविकी (इतिहास, राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान तथा भूगोल) में से कोई भी तीन जो कि विद्यालय पर निर्भर करता है।

संवेगात्मक बुद्धि की कुछविशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

- यहएक सार्वभौमिक योग्यता है।
- यह व्यक्ति की जन्मजात योग्यता होती है।

अध्ययेन का औचित्य-

हम समाज में रहते है, यह युग हमेशा गतिमान रहता है, वैज्ञानिक तथा तकनीकी और संस्कृति का युग माना गया है, आज का युग हम जहां जीवन यापन कर रहे है वहां के बदलते परिवेश से हम अपने वर्तमान परिस्थति को ढ़लते जाते है, जिससे कि व्यक्ति ज्ञान के अभाव में अपने वर्तमान परिस्थिति में सुधार नहीं कर पाता है। किसी भी स्थति में यदि व्यक्ति शिक्षित हो तो अपना जीवन-यापन करने में आसानी होती है, व्यक्ति विशेष, व्यक्ति का परिवारिक वातावरण समुह कार्य आदि अध्ययन के औचित्य माने गये है, नैतिक मूल्य समाज के आचरण उनके नियमों सत्य, असत्य ज्ञान सभी प्रकार के ज्ञानेन्द्रिया आदि को हम नैतिक मूल्यों का एक अभिन्न अंग मान सकते हैं। कोई भी समाज के निर्माण में व्यक्ति विशेष होना बहुत जरूरी हैं। राष्ट्र का निर्माण उस देश में रहने वाले नागरिकों के चरित्र व्यवहार, शिक्षा, ज्ञान व उनके मूल्यों के ऊपर निर्भर करता हैं।

इस शोध अध्ययन के परिणाम तीनों प्रकार के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों (छत्तीसगढ़ माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, आई0सी0एस0सी0 बोर्ड व सी0बी0एस0ई0) के विद्यालय वातावरण सुधार करके शिक्षकों के सामाजिक स्तर एवं नैतिक मूल्यों के उन्नयन में उपागम सिद्ध होगें। इस शोध अध्ययन के निम्नलिखित से स्पष्ट है कि शिक्षकों के नैतिक मूल्य उनके सामाजिक-आर्थिक स्तर एवं विद्यालय में अन्तर दृष्टिगत है।

सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन-

संवेगात्मक बुद्धि पर आधारित शोध

- सुग्रीथम तथा कृष्णनन (2022) ने माध्यमिक बालिका विद्यालयों के शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि का अध्ययन किया। इस अध्ययन का उद्देश्य अध्यापिकाओं की शिक्षण में संवेगात्मक बुद्धि का मूल्यांकन करना था। इसके लिए 245 शिक्षिकाओं का चयन किया गया। परिणामस्वरूप, यह पाया गया कि जो अध्यापिकाएं विभिन्न तकनीकों और विधियों का उपयोग कर रही थीं, उनकी संवेगात्मक बुद्धि अधिक थी।
- कृष्णनन और सुग्रीथम (2022) ने मिलकर माध्यमिक बालिका विद्यालयों के अध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि का अध्ययन किया। जिसका उद्देश्य अध्यापिकाओं की शिक्षण में संवेगात्मक बुद्धि का अध्ययन करना था, इस हेतु 245 शिक्षिकाओं का चयन किया गया। परिणामस्वरूप, यह पाया गया कि जो अध्यापिकाएं विभिन्न तकनीकों तथा विधियों का प्रयोग कर रही थीं, उनकी संवेगात्मक बुद्धि ज्यादा थी।

अध्ययन के उद्देश्य-

प्रस्तावना व सम्बद्धित साहित्यों के विवेचन के आधारपर प्रस्तुत शोघके उद्देश्य निम्न हैं-

1. माध्यमिक शिक्षकोंवकी संवेगात्मकबुद्धि कालिंग, विद्यालयप्रकृति व शैक्षणिक अनुभव के सन्दर्भ में अध्ययन करना।
2. माध्यमिक शिक्षकों की आशावादिताकालिंग, विद्यालयप्रकृति व शैक्षणिक अनुभव के सन्दर्भ में अध्ययन करना। सम्बन्धित साहित्य का अर्थ

अनुसंधान की कठिनाइयों को विभिन्न प्रकार की पुस्तकों पत्र-पत्रिकाओं, ज्ञान-कोषों, प्रकाशित तथा अप्रकाशित शोध-प्रबन्धों एवं अन्य सम्बन्धित साहित्यों के अध्ययन से शोधकर्ता को समस्या के चयन, परिकल्पनाओं के निर्माण, अध्ययन की वास्तविक रूपरेखा तैयार करने में एवं कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता मिलती है। शोध कार्य सम्बन्धित साहित्य के

अध्ययन के अनुसार है शोध अध्ययन के प्रतिवेदन का पता लगाना पढ़ना तथा मूल्यांकन करना और साथ ही साथ शोधकर्ता के द्वारा किये गये चरणबद्ध शोध के प्रतिवदनों के कारणों का अवलोकन तथा राय स्थापित करने से सम्बन्धित है। सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन तथा समीक्षा शोध का एक महत्वपूर्ण कार्य है यदि शोधकार्य के साहित्य का ज्ञान न हो तो शोध कार्य इतना अधिक महत्व व प्रभावशीलता ग्रहण नहीं कर सकता जितना कि आवश्यक है।

सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण से लाभ-

सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण से शोधकर्ता को निम्नलिखित लाभ होते है-

- इससे अनावश्यक पुनरावृत्ति से बचाव होता है।
- अध्ययन उस क्षेत्र में अब तक हुए कार्य की सूचना देता है।
- यह शोध समस्या के चुनाव, विश्लेषण तथा समस्या में मदद मिलती है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोध परिकल्पनाएँ निम्नलिखित् है-

HO_1 माध्यमिक शिक्षकों की संवेगात्मकबुद्धि कालिंग, विद्यालयप्रकृति एवं शैक्षणिक अनुभव में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाऐगा।

HO_2 माध्यमिक शिक्षकों की आशावादिता का लिंग, विद्यालयप्रकृति एवं शिक्षण अनुभव में कोई अंतर नहीं पाया जाऐगा।

चर-

शोध अध्ययन के चर इस प्रकार हैं-

आश्रित चर- लिंग, विद्यालयप्रकृति व शैक्षणिक अनुभव।

स्वश्रित चर- संवेगात्मक बुद्धि, बहुस्तरीय सरल यादृच्छिक न्यादर्श विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या

प्रत्येक शोध कार्य हेतु जनसंख्या का निर्धारण करना आवश्यक होता है क्योंकि इसी जनसंख्या में से तथ्यों वं प्रदत्तों का संकलन किया जाता है। प्रस्तुत शोध अध्ययन की जनसंख्या हेतु मुंगेली जिले को चयनित किया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से मुंगेली भारत की आधुनिक शिक्षा पद्धति का आधुनिक केन्द्र भी रहा है। अत: यहाँ आरम्भ से ही विद्यालयी शिक्षा भी विकसित रही है। विद्यालयी शिक्षा के साथ-साथ व्यावसायिक एवं उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी विकास हुआ हैं। अत: यहाँ विद्यालयों की संख्या भी अधिक है। अत: मुंगेली, लोरमी तथा पथरिया ब्लॉकों के शासकीय तथा अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षणरत समस्त 2540 माध्यमिक शिक्षक इस शोध अध्ययन की जनसंख्या है।

प्रस्तुत शोध हेतु मुंगेली जिले में 76 शासकीय, 58 अशासकीय, कुल 134 विद्यालय है। मुंगेली, लोरमी तथा पथरिया ब्लॉक है जिसमें मुंगेली ब्लॉक में 29 शासकीय विद्यालय, पथरिया ब्लॉक में 28 शासकीय विद्यालय व लोरमी ब्लॉक में 19 शासकीय विद्यालय है। उसी प्रकार मुंगेली ब्लॉक में 23 अशासकीय विद्यालय, पथरिया ब्लॉक में 27 अशासकीय विद्यालय व लोरमी ब्लॉक में 08 अशासकीय विद्यालय है। अत: मुंगेली ब्लॉक में कुल 52 शासकीय विद्यालय, पथरिया ब्लॉक में कुल 55 शासकीय विद्यालय व लोरमी ब्लॉक में कुल 27 शासकीय विद्यालय है।

अनुसंधान विधि

अनुसंधान विधि या शोध विधि से तात्पर्य- एक निश्चित व्यवस्था के आधार पर अध्ययन करने की प्रणाली को अनुसंधान विधि कहा जाता है अनुसंधान विधि उस सारणी की ओर इंगित करती है जिसके आधार पर सत्य की खोज व समस्या के करणों को ज्ञात किया जा सकता है वर्तमान में व्याप्त जटिलता का प्रभाव शिक्षा के क्षेत्र में भी देखने को मिल रहा है जिससे शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर अनकों प्रकार की समस्याए उत्पन्न हो गई है जिसके निदान के लिए इनके कारकों का विश्लेशण तथा सह संबंध स्थापित करना आवश्यक हो जाता है।

प्रस्तुत शोध में शोधार्थी ने निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से तथा शोध प्रकृति को ध्यान में रखकर वर्णात्मक सर्वेक्षण विधी का प्रयोग किया गया है क्योंकि इस विधि के माध्यम से पूर्व निर्धारित उद्देश्यों के पूर्ति हेतु वांछित प्रदत्तो का

संकलन किया जा सकता है अत: व्यवहारिक दृष्टि से उपकरण ऐसा होना चाहिए जिसके द्वारा शोध कार्य में विशेश सुविधा रहे। उत्तर दाताओं के साथ भावनात्मक संबंध स्थापित करने में कठिनाई न हो तथा जिसकी प्रक्रिया कठिन असुविधा जनक तथा महंगे न हो एवं प्राप्त परिणाम विश्वसनीय और वैध हो।

सांख्यिकी-

सांख्यिकीय तकनीक

शोध में अनुसंधान उद्देश्यों के अनुरूप प्रयोग की गयी सांख्यकीय विधियों का विवरण इस प्रकार है

मध्यमान- यह केन्द्रीय प्रवृत्ति का एक प्रकार है, जिसे औसत भी कहा जाता है। मध्यमान समंकों का गुरुत्व केंद्र होता है। यह वह प्राप्तांक है जो समस्त प्राप्तांकों के योग को प्राप्तांकों की संख्या से भाग देने पर प्राप्त होता है। मध्यमान वह प्राप्तांक है जिसके दोनों ओर प्राप्तांकों का विचलन समान होता है। इसे संकेत से दर्शाया जाता है।

प्रमाणिक विचलन- प्रदत्तों में निहित विचलनशीलता व विभिन्न समूहों की तुलना करने के संदर्भ में प्रमाणिक विचलन मान की गणना की गई है।

प्रमाणिक विचलन की गणना हेतु प्रयुक्त किया गया हैं।

निष्कर्ष-

सुझाव-

माध्यमिक शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि, मूल्य वरियताएँ एवं आशावादिता पर अध्ययन एक महत्वपूर्ण विषय है जो न केवल शिक्षकों के पेशेवर विकास में सहायक हो सकता है, बल्कि छात्रों और पूरे शैक्षणिक समाज पर भी सकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। इस अध्ययन के आधार पर विभिन्न समूहों के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं।

छात्रों के लिए सुझाव-

1. "संवेगात्मक जागरूकता": अपनी भावनाओं को पहचानना और उन्हें सही तरीके से व्यक्त करना सीखें।
2 "सकारात्मक सोच": चुनौतियों का सामना करने के लिए सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाएं और आशावादी रहें।

शिक्षकों के लिए सुझाव-

1. "संवेगात्मक बुद्धि": अपने और अपने छात्रों की भावनाओं को समझने और प्रबंधित करने के लिए संवेगात्मक बुद्धि विकसित करें।

संदर्भित ग्रंथ सूची-

- कॉदस व सरोज (2017) ने- अध्ययन में 600 माध्यमिक विद्यालयी शिक्षकों के साथ एक अनुसंधान किया।
- जूड (2018) ने माध्यमिक विद्यालयी शिक्षकों के व्यावसायिकतनाव पर संवेगात्मक बुद्धि व लिंग के प्रभाव का अध्ययन किया। अध्ययन में ओन्डो राज्य के 392 शिक्षकों को शामिल किया गया और उनकी संवेगात्मक बुद्धि वव्यावसायिक तनाव के बीच में सार्थक अंतर पाया गया। महिला व पुरुष शिक्षकों के व्यावसायिक तनाव में सार्थकअंतर नहीं पाया गया।
- त्रिपाठी के (2009) ए स्टडी इन इफैक्ट एजूकेशन आफ स्कुल आन स्टुडेन्स साइन्टिफिक एटिट।
- सारस्वत मालती (2013) शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा लखनउ आलोक प्रकाशन।

मिट्टी के प्रकार, प्रमुख फसलें एवं कृषि नियोजनः बलिया जिले के सन्दर्भ में

डॉ० संध्या कुमारी

भूगोल विभाग

ग्रामीण जनसंख्या के जीवन यापन के सहायक तत्वों में मृदा एक आधारभूत संसाधन है। मानव उपयोग की दृष्टि से किसी भी क्षेत्र की मिट्टियाँ वहाँ के आवरण- प्रस्तर का सबसे अधिक मूल्यवान अंग है और उसकी सबसे बड़ी प्राकृतिक संपत्ति है। वस्तुतः मानव जीवन के लिए भोजन, वस्त्र एवं आवश्यक खनिज आदि की उपलब्धि प्रत्यक्ष रूप से ही संबंधित है। भू-पृष्ठ पर प्राप्त होने वाले असंगठित पदार्थों को मिट्टी की संज्ञा दी जाती है।

मृदा विज्ञान के अनुसार- बलिया जनपद के संपूर्ण क्षेत्र की मिट्टी जलोढ़ है। इस मिट्टी को दो भागों में बाँटा गया है।

(1) खादर मिट्टी- इसमें प्रतिवर्ष बाढ़ के कारण जलोढ़ परिवर्तित होता रहता है। इसे नई जलोढ़ मिट्टी भी कहते हैं। यह बलुई एवं दोमट तक होती है।

(2) बांगर मिट्टी- इसमें बाढ़ का पानी नहीं पहुँच पाता है। इसे पुरानी जलोढ़ मिट्टी भी कहते हैं। यह हल्की से भूरी एवं कभी-कभी राख की तरह होती है।[1]

संरचना की दृष्टि से बलिया जनपद की मिट्टी को 6 वर्गों में विभक्त किया जा सकता है- (1) बलुई मिट्टी, (2) बलुई दोमट मिट्टी, (3) चिकनी बलुई दोमट मिट्टी, (4) दोमट मिट्टी, (5) चिकनी मिट्टी, (6) क्षारीय एवं लवणयुक्त मिट्टी।

गंगा, घाघरा एवं छोटी सरयू नदियाँ भी अपने समीपवर्ती क्षेत्र की मिट्टी पर अलग-अलग प्रभाव डालती है। इस प्रकार अध्ययन क्षेत्र की मिट्टी को दो वर्गों एवं छः उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

1. क्षेत्रीय मिट्टी- इस क्षेत्रीय मिट्टी का निर्माण मुख्य रूप से नदियों के कारण हुआ है। इसमें जलोढ़ मिट्टी आती है। इसे हम तीन उपवर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

(A) खादर मिट्टी- जनपद के 27.52 प्रतिशत यानि की 875.8 वर्ग कि.मी. भू-भाग पर इसका विस्तार है। यह मिट्टी बाढ़गस्त क्षेत्रों में मिलती है। सोहॉव विकासखंड के पूर्वी भाग, हनुमानगंज के दक्षिणी भाग, दुबहर, बैरिया, बेलहरी, मुरलीक्षपरा, बॉसडीह, रेवती, सीयर, नवानगर, पन्दह, मनियार, रसड़ा एवं चिलकहर विकासखंडों में गंगा, घाघरा एवं छोटी सरयू नदियों के तटवर्ती क्षेत्रों में यह मिट्टी मिलती है।

(B) पार खादर मिट्टी- यह मिट्टी बलिया जनपद के 17 प्रतिशत यानि की 540.9 वर्ग कि.मी. भू-भाग पर हनुमानगंज एवं दुबहर विकासखंड के पूर्वी भाग, भंगई एवं छोटी सरयू नदियों के संगमस्थल तथा बाँसडीह, पंदह एवं नवानगर विकासखंडों में खादर क्षेत्र के अंतर्गत ही मिलती है। बाढ़ का पानी प्रतिवर्ष नहीं पहुँच पाता है। यह मिट्टी भूरी एवं हल्के रंग की हल्की उदासीन से हल्की क्षारीय प्रतिक्रिया वाली होती है।

(C) ***उच्च भूमि दोमट मिट्टी***- यह मिट्टी लगभग 6.1 प्रतिशत (287.9 वर्ग कि.मी.) भू-भाग पर सोहाँव विकासखंड के उत्तरी पश्चिमी, हनुमानगंज के दक्षिणी पश्चिमी, गड़वार के दक्षिणी एवं उत्तरी, बेरूआरबारी के दक्षिणी, रसड़ा के उत्तरी, नगरा के मध्यवर्ती, दक्षिणी क्षेत्रों एवं सीयर, पंदह, नवानगर तथा बाँसडीह विकासखंडों में मिलती है।

2. अंतर्क्षेत्रीय मिट्टी- धरातल, पैतृक शैल, जलवायु एवं वनस्पति से प्रभावित क्षेत्रीय मृदा को ही अंतर्क्षेत्रीय मिट्टी कहा जाता है। गुण एवं निर्माण प्रक्रिया के आधार पर इस मिट्टी को तीन उपवर्गों में विभक्त किया जा सकता है-

(A) ***धनखर मिट्टी***- इस मिट्टी में जल धारण करने की अपार क्षमता होती है। जिससे यह धान की कृषि के लिए उपयुक्त होती है। इसलिए इसे "धनखर" मिट्टी कहा जाता है। यह मिट्टी जनपद के लगभग 38.68 प्रतिशत अर्थात् 1167.7 वर्ग कि. मी. भू-भाग पर विस्तृत है, जिसके अंतर्गत हनुमानगंज, बॉसडीह, मनियर, पंदह, नवानगर, नगरा, रतनपुरा, रसड़ा, गड़वार एवं चिलकहर विकासखंडों के क्षेत्र आते हैं।

(B) ***करइल मिट्टी***- यह मिट्टी जनपद के 5.87 प्रतिशत अर्थात् 185.9 कि०मी० भू-भाग पर मंगई नदी के दोनों तरफ तथा मुरली छपरा, दुबहर एवं बैरिया विकासखंडों में पाई जाती है।

(C) ***क्षारीय एवं लवणयुक्त मिट्टी***- क्षेत्रीय भाषा में इस मिट्टी को 'उसर' या 'रेह' कहा जाता है। यह अनुत्पादक मिट्टी होती है। यह मिट्टी जनपद के 4.86 प्रतिशत (154.9 वर्ग कि.मी.) भू-भाग पर नगरा एवं रसड़ा विकासखंडों में पाई जाती है।[2]

प्रमुख फसलें:- बलिया जनपद के अन्तर्गत बोयी जाने वाली फसलें इस प्रकार है-

1. चावल:- बलिया जनपद में आधुनिक कृषि विकास के कारण बोई जाने वाली विभिन्न फसलों के उत्पादक क्षेत्रों में विस्तार एवं परिवर्तन हुए हैं। जनपद में सबसे अधिक क्षेत्र (3,31,800 एकड़ भूमि) में गेहूँ की खेती की जाती है, जबकि द्वितीय स्थान (2,99,035 एकड़ भूमि) पर धान की खेती की जाती है।
2. गेहूँ- चावल की तरह गेहूँ की खेती में भी परिवर्तन हुआ है। यद्यपि कि सिंचाई व्यवस्था से पूर्व जनपद में जौ की खेती अधिक की जाती थी, किंतु उसके पश्चात् चावल एवं गेहूँ की खेती अधिक की जाने लगी और अब गेहूँ ने प्रथम स्थान ग्रहण कर लिया है।
3. जौ- जौ की खेती 1901, 1911, 1921, 1931, 1941, 1951, 1961, 1971, 1981, 1991, 1992, 1993, 1994, 1995, 1996, 1997, 1998, 1999 एवं 2000-01 के वर्षों में क्रमशः 113233, 119337, 101694, 106953, 99632, 112479, 123262, 67357, 32505, 28812, 26785, 26055, 25850, 24880, 21165, 19172, 21690, 18250 एवं 14145 एकड़ भूमि पर की गयी। इस प्रकार जौ की खेती का क्षेत्रफल में क्रमशः 5.39, 14.78, 5.17,- 6.84, 2.89, 9.58,-45.35,-51.74,-11.36,-7.03,-2.72, 0.78,-3.75,-14.93,-9.41, 13.13,-15.85-22.49 प्रतिशत का परिर्तन हुआ है।
4. मक्का- मक्का की खेती 1901, 1911, 1921, 1931, 1941, 1951, 1961, 1971, 1981, 1991, 1992, 1993, 1994, 1995, 1996, 1997, 1998, 1999 एवं 2000-01 के वर्षों में क्रमशः 57034, 51849, 35005, 30384, 32851, 33049, 46399, 54779, 35597, 31962, 33282, 39360, 41920, 45537, 1367, 56927, 54205, 53467 एवं 54102 एकड़ भूमि पर की जाती है।
5. चना- बलिया जनपद में उक्त वर्षों में चना की खेती क्रमशः 81371, 82171, 95699, 89257, 113808, 110278, 101037, 71080, 70320, 58962, 54182, 47107, 49935, 42910, 31707, 30595, 24872, 19897 एवं 19332 एकड़ भूमि पर की जाती रही है।
6. गन्ना- उक्त वर्षों में जनपद में गन्ना की कृषि क्रमशः 40636, 31434, 37240, 32113, 39587, 36308, 39875, 36308, 39875, 36205, 39030, 37535, 36030, 3200, 31845, 34622, 30302, 28037, 26927, 27655 एवं 25922 एकड़ भूमि पर की जाती है।

बलिया जनपद में उत्पन्न होने वाली फसलों में विषमता पायी जाती है। वर्ष 2001-02 के अनुसार जनपद में संपूर्ण क्षेत्रफल के 45.4 प्रतिशत भू-भाग पर खरीफ, 51.9 प्रतिशत भू-भाग पर रबी तथा 2.7 प्रतिशत भू-भाग पर जायद की फसलें बोयी

जाती थीं, जबकि 2015-16 के अनुसार क्रमशः 50.39, 47.76 एवं 1.84 प्रतिशत भूमि पर रबी, खरीफ एवं जायद की खेती की जाती है।

बलिया जनपद में विभिन्न फसलों के अंतर्गत क्षेत्रफल 2015-16[3]

फसल	क्षे० हेक्टेयर	प्रतिशत
गेहूँ	140375	41.21
चावल	120231	35.29
कुल दालें	21510	6.31
मक्का	32151	9.44
गन्ना	4208	1.24
आलू	6375	1.87
जौ	3093	0.91
अन्य धान्य	5570	1.6
तिलहन	950	0.28
अन्य सब्जियाँ	8145	2.38
योग	342,608	100.00

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि जनपद में फसलों के उत्पादक क्षेत्रों में हुये परिवर्तन एवं शस्य परिवर्तन के आधार पर कहा जा सकता है कि कृषि में भी व्यापक रूपांतरण हुआ है। कृषकों में नकदी फसलों के प्रति जागरूकता बढ़ी है, जिसके चलते नकदी फसलों के उत्पादन क्षेत्र में भी वृद्धि हो रही है। जनपद में भूमि सुधार, सिंचाई सुविधाओं की वृद्धि, सरकारी प्रोत्साहन, उर्वरकों का प्रयोग तथा नये बीजों के अविष्कार के चलते कृषि में व्यापक रूपांतरण हुआ है। इस प्रकार कृषि रूपांतरण में हरित क्रांति में विशेष भूमिका निभाई है।

कृषि नियोजन-

"कृषि" अध्ययन क्षेत्र का मुख्य उद्यम है। ग्रामीण विकास में कृषि नियोजन के सामान्य भूमि उपयोग प्रतिरूप का वितरण, परिवर्तन, शस्य-स्वरूप का वितरण, उन्नतशील बीज एवं उर्वरकों का प्रयोग, सिंचाई, भंडारण एवं विपणन तथा नवीन कृषि तकनीकी के प्रचार-प्रसार हेतु योजनायें प्रस्तुत की गयी है। सामान्य रूप से यह देखा जाता है कि कृषि के विकास में प्राकृतिक और मानवीय या सांस्कृतिक अवरोधक होते हैं। मानवीय या सांस्कृतिक अवरोधकों के रूप में खेतों के आकार, अधिकार, भूमि दूरी बटाई आदि होते हैं तथा प्राकृतिक अवरोधकों में जैसे- मानसून की अनियमितता, मिट्टी अपरदन, धरातलीय अपवाह तल आदि कृषि उत्पादन को प्रभावित करते हैं। कृषि नियोजन में अध्ययन से स्पष्ट होता है कि न केवल किसी विकासखंड में बल्कि संपूर्ण जनपद में कृषि के स्तर को सुधारने के लिए विद्युतीकरण एवं सिंचाई व्यवस्था का समुचित विकास एवं विस्तार की अति आवश्यकता है। इन दोनों अवस्थापनात्मक तत्वों का विकास कर एवं उर्वरकों तथा नये बीजों एवं कृषि पद्धतियों का प्रयोग कर गहन कृषि प्रति हेक्टेयर एवं प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है।[4]

यही नहीं जनपद के प्रत्येक विकासखण्डों में मिश्रित फसल पद्धति की खेती अपनाकर इनसे आर्थिक लाभ प्राप्त करके जनपद का न केवल कृषि स्तरोन्यन बल्कि आर्थिक विकास का भी स्तरोन्यन किया जा सकता है।

निष्कर्ष-

जनपद बलिया में कृषि विकास के विभिन्न पक्षों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि स्वतंत्रता पश्चात जनपद बलिया के कृषि क्षेत्रों में बहमुखी विकास हुआ है। एक तरफ जहाँ सिंचाई के साधनों का विकास करके सिंचित क्षेत्रों में वृद्धि हुई, वहीं दूसरी तरफ कृषि की नवीन पद्धतियों को अपनाकर उर्वरकों एवं नये बीजों के प्रयोग में भी वृद्धि हुई है, जिसके चलते जहाँ उत्पादकता में वृद्धि हुई है वही दूसरी तरफ कृषि की नवीन पद्धतियों को अपनाकर उर्वरकों एवं नये बीजों के प्रयोग में भी वृद्धि हुई है, जिसके चलते जहाँ उत्पादकता में वृद्धि हुई है। वहीं दूसरी तरफ शस्य विविधता में भी वृद्धि हुई है।

अतः किसानों द्वारा वाणिज्यिक फसलों एवं नकदी फसलों के उत्पादन पर विशेष जोर दिया जाने लगा है, क्योंकि ये फसलें मुद्रादायिनी होती है। इस तरह स्वतंत्रता पश्चात् अध्ययन क्षेत्र में जहाँ खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि हुई है, वहीं व्यवसायिक फसलों (आलू, गन्ना, मसाला, सब्जी आदि) के उत्पादन में भी वृद्धि हुई है, जिसके चलते इस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ होने का आधार प्राप्त हुआ है तथा बेरोजगारी दूर करने में भी कृषि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अतः यह कहा जा सकता है कि कृषि ने बलिया जनपद के ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

संदर्भ

1. Johnes, C.F. and Darkenwald, C.G., 1954, Economic Gography, New York, The Macmillan and Co., P.429.
2. Mehrotra, C.L. (1972), 'Soils of U.P. in soils of India. edited by A laxander, T.M.F.A.I., New Delhi, pp. 288 - 289, 291-295.
3. स्रोत- कृषि विभाग, उत्तर प्रदेश।
4. Singh, Anil Kumar (1978), 'Ballia district A study in rural settlement geography, Ph.D Thesis B.H.U. Varanasi, pp. 11-17, p-61.

माध्यमिक शिक्षकों की मूल्य वरीयता का लिंग, विद्यालय प्रकृति एवं शिक्षण अनुभव के सन्दर्भ में अध्ययन

सुनीता यादव

शोधार्थी, प्रो. अभिषेक श्रीवास्तव, विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग श्री रावतपुरा सरकार विश्वविद्यालय रायपुर, छत्तीसगढ़

मूल्य का अर्थ-

मनुष्य जीवनपर्यन्त सीखता रहता है तथा उसके अनुभवों में निरन्तर अभिवृद्धि होती है। जैसे-जैसे वह अधिकाधिक सीखता जाता है तथा परिपक्व होता है वह ऐसे अनुबन्ध प्राप्त करता है जो उसके व्यवहार को निर्देशित करते हैं। ये निर्देशक जीवन को दिशा प्रदान करते हैं। इन्हें मूल्य कहा जा सकता है। व्यवहार के निर्देशक के रूप मूल्य अनुभवों के विकसित व परिपक्व होने के साथ-साथ विकसित तथा परिपक्व होते हैं। मूल्य किसी वस्तु या स्थिति का वह गुण है जो वरीयता को प्रकट करता है। यह एक आदर्श या इच्छा है जिसे पूरा करने के लिए व्यक्ति जीता है तथा आजीवन प्रयास करता है। मूल्य परक शिक्षा की अवधारणा प्राचीन है। किन्तु वर्तमान में मूल्य परक शिक्षा के नाम पर जो क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ देखने को मिल रही हैं उनसे लगता है कि देश, समाज और व्यक्ति असमंजस और डांवाडोल स्थिति में है। यह स्थिति क्यों हुई का विश्लेषण करें तो यह ज्ञात होता है कि मूल्य विहिनता को समाप्त करने के लिए शिक्षार्थी को एक प्रयोगशाला के रूप में और शिक्षक को प्रयोगकर्ता के रूप में मान लिया। शिक्षा के महत्त्वपूर्ण घटक विद्यार्थी को विभिन्न प्रयोगों द्वारा मूल्यों के विकास का केन्द्र मान लिया। शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षाचार्यों ने भी शिक्षा देने के नाम पर केवल बौद्धिक व्यायाम या कोरा ज्ञान दिया है। जिससे शिक्षार्थी की बुद्धि का विकास तो हुआ पर संस्कार विकसित करने वाली मानसिकता का विकास नहीं हो पाया। देश का भविष्य जो विद्यालयों में अपने भविष्य का निर्माण कर रहा है, उसका मानवता के प्रति, राष्ट्र के प्रति, समाज के प्रति, अर्थव्यवस्था के प्रति, शिक्षा के प्रति क्या दायित्व है? ये दायित्व बोध अगर उनमें जगा दिया तो शिक्षा का अर्थ सार्थक हो जायेगा और यही दायित्व बोध मानव मूल्यों की शिक्षा होगी और यही शिक्षा का दर्शन भी है।

स्प्रैंगर ने 6 आधारभूत प्रकार के मूल्यों का वर्णन किया है जो हैं-

(1) सैद्धांतिक या बौद्धिक, (2) आर्थिक या व्यवहारिक, (3) सौदर्यबोधी, (4) सामाजिक या परार्थवादी, (5) राजनीतिक या सत्ता-सम्बन्धी, (6) धार्मिक या रहस्यात्मक।

मुखर्जी द्वारा मूल्यों को दो मुख्य वर्गों में- (1) साध्य मूल्य (2) साधन मूल्य के रूप में विभाजित किया है। सभी मूल्य एक ही स्तर के नहीं होते अपितु उनमें एक स्तर देखने को मिलता है। इस स्तर का सम्बन्ध मूल्यों के आयामों से होता है। मूल्यों के तीन आयाम- (1) जैविक, (2) सामाजिक एवं (3) आध्यात्मिक हैं। जैविक मूल्य स्वास्थ्य, जीवन-निर्वाह, कुशलता, सुरक्षा आदि से सम्बन्धित होते हैं। सामाजिक मूल्य सम्पत्ति, प्रस्थिति, प्रेम तथा न्याय सम्बन्धी होते हैं तथा आध्यात्मिक मूल्य सत्य, सुन्दरता, सुसंगति तथा पवित्रता विषयक होते हैं। मानव जीवन का आरम्भ, अस्तित्व व निरन्तरता जैविक आधार पर ही निर्भर है- शरीर बना रहेगा, स्वस्थ व उपयुक्त होगा तभी जीवन-निर्वाह एवं उसकी अग्रगति सम्भव होगी। इसीलिए मूल्यों के सोपान या संस्तरण में जैविक मूल्यों का उल्लेख पहले किया गया है। पर जैविक जीवन समाज की सहायता के बिना सम्भव नहीं। इसीलिए जीवन मूल्यों के बाद ही सामाजिक स्तर से गुजरते हुए ही सम्भव है। इसीलिए आध्यात्मिक मूल्यों को सबसे अन्त में, मानव-जीवन के अन्तिम लक्ष्य के रूप में रखा गया है।

मूल्य की परिभाषायें-

आलपोर्ट के अनुसार- ''मूल्य एक मानव विश्वास है, जिसके आधार पर मनुष्य वरीयता प्राप्त करते हुये कार्य करता है।''

जै. आर. फ्रैंकल के अनुसार- ''मूल्य आचार, सौन्दर्य, कुशलता या महत्व के वे मानदण्ड हैं जिनका लोग समर्थन करते हैं, जिनके साथ वे जीते हैं तथा जिन्हें वे कायम रखते हैं।''

ब्राइटमैन के अनुसार- ''आदर्श व्यवहार को मूल्य कहा जाता है।''

आटवे के अनुसार- ''मनुष्य जिसके लिये जीता है, जिसके लिए मरता है, वही उसका मूल्य कहलाता है। इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि मूल्य आदर्शात्मक व्यवहार होते हैं। व्यक्ति के प्रत्येक कार्य या व्यवहार को उसके मूल्य प्रभावित करते हैं मूल्य अधिगमित होते हैं।''

परिभाषाओं के आधार पर मूल्यों की विशेषतायें इस प्रकार हैं:-

- जीवन के मानक रूपी मानदण्ड
- समाज द्वारा स्वीकृत
- आकांक्षाओं के रूप में धारणीय
- जीवन के प्रति दृष्टिकोण
- अनुकरणीय
- भावनाओं तथा संवेदनाओं से संबंधित
- धर्म एवं संस्कृति से संबंधित

संक्रियात्मक परिभाषायें:-

प्रस्तुत शोध में प्रयुक्त तकनीकी शब्दों के संक्रियात्मक रूप को अग्र प्रकार परिभाषित किया गया है-

माध्यमिक शिक्षक:-

प्रस्तुत शोध में माध्यमिक शिक्षक से अभिप्राय छत्तीसगढ़ माध्यमिक षिक्षा बोर्ड से सम्बद्ध विद्यालयों में कक्षा 6, 7 एवं 8 में शिक्षण करने वाले शिक्षकों से है।

मूल्य:-

मूल्य वे विश्वास हैं जिन्हें व्यक्ति अनुभव के द्वारा अर्जित करता है। ये अभिवृत्तियों से भिन्न हैं। प्रस्तुत शोध में मूल्य का अर्थ व्यक्ति के ऐसे वांछित लक्ष्यों, आदर्शों या कार्य के ढंग्गों से है जिनके कारण व्यक्ति एक प्रकार का व्यवहार न करके दूसरे प्रकार का व्यवहार करता है या चयनात्मक व्यवहार करता है। व्यवहार के निर्देशक के रूप में मूल्य अनुभवों के विकसित होने के साथ-साथ विकसित होते हैं। मूल्य किसी वस्तु या स्थिति का वह गुण है जो समालोचना की वरीयता प्रकट करता है। मूल्यों में भिन्नता के कारण व्यक्ति के व्यवहारों में भिन्नता होती है। व्यक्ति के यह आदर्षात्मक व्यवहार धार्मिक, सामाजिक, लोकतान्त्रिक, सौन्दर्यात्मक, आर्थिक, ज्ञानात्मक, सुखवादी, शक्ति, परिवार-प्रतिष्ठा, स्वास्थ्य के क्षेत्रों से सम्बद्ध होने पर, सम्बन्धित मूल्यों का परिचायक होता है। इन्ही दस मूल्यों को षोध में मूल्य के रुप में परिभाषित किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य:-

1. माध्यमिक शिक्षकों की मूल्य वरीयता का लिंग के सन्दर्भ में अध्ययन ।
2. माध्यमिक शिक्षकों की मूल्य वरीयता का विद्यालय प्रकृति के सन्दर्भ में अध्ययन
3. माध्यमिक शिक्षकों की मूल्य वरीयता का शिक्षण अनुभव के सन्दर्भ में अध्ययन।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ

Ho_1.माध्यमिक शिक्षकों की मूल्य वरीयता का लिंग के सन्दर्भ में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाऐगा।

Ho_2.माध्यमिक शिक्षकों की मूल्य वरीयता का विद्यालय प्रकृति के सन्दर्भ में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाऐगा।

Ho_3.माध्यमिक शिक्षकों की मूल्य वरीयता का शिक्षण अनुभव के सन्दर्भ में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाऐगा।

शिक्षकों के मूल्यों से सम्बन्धित अध्ययन-

मिश्रा सविता (2013) द्वारा मूल्यों के प्रभावी तथा अप्रभाविता के प्रत्यक्षीकरण का शिक्षकों के लिंग, आयु तथा आवासीकरण के सन्दर्भ में अध्ययन किया गया। अध्ययन में पाया गया कि - पुरूष शिक्षकों का सैद्धान्तिक, राजनैतिक एवं आर्थिक मूल्यों का मध्यमान प्राप्तांक उच्च पाया जाता है तथा महिला शिक्षकों में सौन्दर्यात्मक, धार्मिक एवं सामाजिक मूल्यों का मध्यमान प्राप्तांक अधिक पाया गया। शिक्षक एवं शिक्षिकाओं में आर्थिक, सौन्र्यात्मक, सामाजिक एवं राजनैतिक मूल्यों में सार्थक रूप से भिन्नता पायी गयी। शहरी एवं ग्रामीण शिक्षकों के सैद्धान्तिक मूल्यों में सार्थक भिन्नता पायी गयी।

चन्द रिद्धि (2016) ने माध्यमिक स्तर पर कार्यरत शिक्षकों के व्यावसायिक मूल्य: अध्ययन का उद्देश्य उच्च-प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के व्यावसायिक मूल्यों का विद्यालय प्रकृति, लिंगभेद, शैक्षिक स्तर, शिक्षण अनुभव के सन्दर्भ में अध्ययन किया। शोध में सर्वेक्षण विधि प्रयुक्त की गयी। यादृच्छिक विधि द्वारा 400 शिक्षकों का न्यादर्श लिया गया। अध्यापक व्यावसायिक मूल्य मापनी प्रयुक्त की गयी। प्रदत्तों का विश्लेषण मध्यमान, मानक विचलन, टी-परीक्षण द्वारा किया गया। निष्कर्षत: शासकीय व अषासकीय शिक्षकों के व्यावसायिक मूल्यों में सार्थक अन्तर पाया गया। अषासकीय महिला शिक्षकों के व्यावसायिक मूल्य और अषासकीय पुरूष शिक्षकों की तुलना में निम्न पाये गये। शहरी व ग्रामीण विद्यालयों की महिला शिक्षकों के व्यावसायिक मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया, जबकि शहरी व ग्रामीण पुरूष शिक्षकों के व्यावसायिक मूल्यों में सार्थक अन्तर पाया गया। स्नातक व अधिस्नातक शिक्षकों के व्यावसायिक मूल्यों में सार्थक अन्तर पाया गया। 6 वर्ष से अधिक व 6 वर्ष से कम शिक्षण अनुभव वाले शिक्षकों के व्यावसायिक मूल्यों में सार्थक अन्तर पाया गया।

गुप्ता (2017) ने माध्यमिक विद्यालय शिक्षकों के मूल्य लिंग, शिक्षण अनुभव एवं विद्यालय प्रकृति के सन्दर्भ में अध्ययन किया। अध्ययन का उद्देश्य विद्यालयी शिक्षकों के लिंग, शिक्षण अनुभव एवं विद्यालय प्रकृति के सन्दर्भ में अध्ययन करना रहा। मानदण्डात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। 600 माध्यमिक शिक्षकों को यादृच्छिक विधि द्वार चयनित किया गया। उपकरण हेतु डॉ. हरभजन एल. सिंह एवं डॉ. एस. पी. एहलूवालिया द्वारा निर्मित शिक्षक मूल्य मापनी प्रयुक्त की गयी। मध्यमान, मानक विचलन एवं टी-परीक्षण सांख्यिकी प्रयुक्त की गयी। निष्कर्षत: महिला एवं पुरूष शिक्षकों के सैद्धान्तिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सौन्दर्यात्मक मूल्यों में सार्थक भिन्नता पायी गयी। कम शिक्षण अनुभव वाले शिक्षक एवं अधिक शिक्षण अनुभवयुक्त शिक्षकों के आर्थिक एवं राजनैतिक मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। शासकीय एवं निजी विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के सैद्धान्तिक, आर्थिक, सौन्दर्यात्मक, सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक मूल्यों में सार्थक अन्तर पाया गया।

अनुसंधान अंतराल निम्नलिखित है-

1. प्रस्तुत शोध कार्य में छत्तीसगढ़ के मुंगेली जिला को लिया गया है।
2. मुंगेली जिले के माध्यमिका स्तर को अध्यापन रत कक्षा 6, 7, 8 वी के शिक्षको को लिया गया है।
3. माध्यमिक स्तर के शिक्षको के संवेगात्मक बुद्धि मुल्य वरियताएँ एवं आशावादिता पर यह शोध कार्य किया गया है।
4. प्रस्तुत शोध में अनुसंधान अंतराल समय का है यह अनुसंधान वर्तमान समय में किया गया है। प्रस्तुत शोध के आकल्पन एवं कार्यान्वयन की प्रक्रिया का प्रस्तुतीकरण अग्र अध्याय में किया गया है।

सीमाएं

- यह अध्ययन छत्तीसगढ़ राज्य के बिलासपुर संभाग के मुंगेली जिलें के माध्यमिक स्तर पर षिक्षण करने वाले शिक्षकों तक सीमित है।
- सी.बी.एस.ई. बोर्ड, आई.सी.एस.सी. बोर्ड, स्वायत्त विद्यालय, खुले विद्यालय व नवोदय विद्यालय से सम्बद्ध शिक्षकों को प्रस्तुत षोध में सम्मिलित नहीं किया गया है।

अनुसंधान विधि अनुसंधान विधि या शोध विधि से तात्पर्य- एक निश्चित व्यवस्था के आधार पर अध्ययन करने की प्रणाली को अनुसंधान विधि कहा जाता है अनुसंधान विधि उस सारणी की ओर इंगित करती है जिसके आधार पर सत्य की खोज व समस्या के करणों को ज्ञात किया जा सकता है वर्तमान में व्याप्त जटिलता का प्रभाव शिक्षा के क्षेत्र में भी देखने को मिल

रहा है जिससे शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर अनकों प्रकार की समस्याए उत्पन्न हो गई है जिसके निदान के लिए इनके कारकों का विश्लेषण तथा सह संबंध स्थापित करना आवश्यक हो जाता है।

प्रस्तुत शोध में शोधार्थी ने निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से तथा शोध प्रकृति को ध्यान में रखकर वर्णात्मक सर्वेक्षण विधी का प्रयोग किया गया है क्योंकि इस विधि के माध्यम से पूर्व निर्धारित उद्देश्यों के पूर्ति हेतु वांछित प्रदत्तो का संकलन किया जा सकता है अत: व्यवहारिक दृष्टि से उपकरण ऐसा होना चाहिए जिसके द्वारा शोध कार्य में विशेष सुविधा रहे। उत्तर दाताओं के साथ भावनात्मक संबंध स्थापित करने में कठिनाई न हो तथा जिसकी प्रक्रिया कठिन असुविधा जनक तथा महंगे न हो एवं प्राप्त परिणाम विश्वसनीय और वैध हो।

न्यादर्श

तालिका

मुंगेली जिला के चयनित माध्यमिक विद्यालयों के नाम और चयनित शिक्षकों की संख्या

ब्लॉक	शासकीय			अशासकीय			शिक्षकों का योग
	विद्यालय के नाम	शिक्षक महिला	शिक्षक पुरूष	विद्यालय के नाम	शिक्षक महिला	शिक्षक पुरूष	
मुंगेली	शा.उ.मा शाला दशरंगपुर	08	06	रविन्द्र भारती उ.मा.शा. मुगेली	05	04	23
	शा.उ.मा शाला,बीरगांव	04	06	स.शि.मं. उ.मा शाला जरहागांव	06	04	20
	शा.उ.मा शाला,टेमरी	06	05	क.कन्या उ.मा शाला ,मुंगेली	03	05	19
	शा.उ.मा. शाला, जरहागांव	05	05	स.उ.मा शाला,करही	05	06	21
	शा.उ.मा शाला, बी.आर. साव मुगेली	05	05	गु.घ. बहु..उ.मा शाला शीतलदह	06	06	22
पथरिया	शा.उ.मा शाला,बधरा	03	04	आर,एम,उ.मा शाला पथरिया	05	05	17
	शा.उ.मा शाला, सिलदहा	05	05	स.शि.मं.उ.मा शाला पथरिया	05	04	19
	शा.उ.मा शाला,सकेत	06	04	स,उ.मा शाला सिलतरा	04	04	18
	शा.उ.मा शाला,आमोरा	04	05	प.र.श.उ.मा शाला सिलाडीह	05	05	19
	शा.उ.मा शाला,बावली	06	05	ज.भा.प.स्कूल सिलदहा	04	05	20
लोरमी	शा.उ.मा शाला,हरदी	04	05	इ,गां उ.मा शाला,अखरार	05	06	20
	शा.उ.मा शाला,लगरा	06	06	स.उ.मा शाला, खामी	06	07	25
	शा.उ.मा शाला,कोटरी	04	04	स.उ.मा शाला,लोरमी	06	04	18
	शा.उ.मा शाला,लालपुर	04	05	स.मा.उ.मा शाला,लालपुर	05	05	19
योग		70	70	योग	70	70	280

अध्ययन के चर:-

प्रस्तुत शोध अध्ययन के चर अग्र प्रकार हैं-

स्वतन्त्र चर- लिंग, विद्यालय प्रकृति एवं शिक्षण अनुभव

आश्रित चर- मूल्य वरीयता

शोध न्यादर्श चयन विधि

प्रस्तुत शोध अध्ययन में मुंगेली तथा मुंगेली जिले के माध्यमिक स्तर के शासकीय तथा अशासकीय विद्यालयों को स्तरीयकृत यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा चयन किया गया है। चयनित विद्यालयों में से शिक्षकों को सरल यादृच्छिक विधि द्वारा चुना गया।

डेटा संग्रह के लिए प्रयुक्त उपकरण

प्रस्तुत शोध में निम्न उपकरण प्रयुक्त किये गये हैं-

व्यक्तिगत मूल्य प्रश्नावली (प्रमापीकृत) जी. पी. शैरी एवं आर. पी. वर्मा द्वारा निर्मित(2014)

सांख्यिकीय तकनीक

शोध अध्ययन में शोध उद्देश्यों के अनुरूप प्रयुक्त सांख्यकीय प्रविधियों का विवरण अग्र प्रकार है–

मध्यमान– केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान का एक प्रकार मध्यमान है इसे अंक गणित में अवसत भी कहते है मध्यमान समंकों का गुरूत्व केन्द्र होता है मध्यमान वह प्राप्तांक है जो समस्त प्रप्तांको के योग को प्रप्तांको की संख्या से भाग देने पर प्राप्त होता है मध्यमान वह प्राप्तांक है जिसके दोनों ओर प्राप्तांको का विचलन सामान होता है। मध्यमान को M संकेताक्षक द्वारा दर्शाया जाता है।

मध्यमान ज्ञात करने की विधि–

$$M = \frac{\sum x}{N}$$

जहां M =k मध्यमान

$\sum x$ = प्राप्तांको का योग

N =k प्राप्तांकों की संख्या

वर्गीकृत समंको से मध्यमान की गणना

$$M = \frac{\sum fx}{N}$$

जहां– f =k वर्ग का आवृत्ति

x =k वर्ग का मध्यबिन्दु

विभिन्न वर्गो की आवृत्तियां व मध्य बिन्दुओं का गुणा का योग

N =k कुल आवृत्ति

$\sum fx$ = मध्यमान निकालने की यह दीर्घ विधि है।

वर्गीकृत प्रदत्तो का मध्यमान ज्ञात करने लिए लघु विधि या कल्पित मध्यमान विधी का प्रयोग किया गया ळें

मध्यमान $M = AM + \frac{\sum fd}{N} i$

जहां– AM =k कल्पित मध्यमान

f =k वर्ग की आवृत्ति

d =k वर्ग का विचलन

$\sum fd$ = f व d गुणा का योग

i =k वर्ग विस्तार

N =k कुल आवृत्ति

प्रमाणिक विचलन– प्रदत्तों में निहित विचलन शीलता तथा विभिन्न समूहों की तुलना करने के संदर्भ में प्रमाणिक विचलन मान की गणना की गई है।

प्रमाणिक विचलन की गणना हेतु प्रयुक्त सूत्र–

$$S.D. = i\sqrt{\frac{\sum fd^2}{N} - \left(\frac{\sum fd}{N}\right).^2}$$

जहां–

S.D. =प्रमाणिक विचलन

i =k वर्गान्तर

f =k विभिन्न वर्गो की आवृत्ति

d =k कल्पित मध्यमान से प्रदत्तों का विचलन

छ त्र आवृत्तियों की कुल संख्या

क्रांतिक अनुपात (C.R.)

दो मध्यमानों के अंतर की सार्थकता की परख के लिए 'टी' परिक्षण का प्रयोग किया जाता है। 'टी' का मान ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

'टी' टेस्ट का सूत्र-

$$\text{'t'} = \frac{(M_1 - M_2)}{\sqrt{\left(\frac{\sigma_1^2}{N_1} + \frac{\sigma_2^2}{N_2}\right)}} = \frac{(M_1 - M_2)}{\sqrt{(\sigma_{M_1}^2 + \sigma_{M_2}^2)}}$$

टी-टेस्ट का प्रयोग शिक्षकों में संवेगात्मक बुद्धि, आषावादिता एवं व्यक्तिगत मूल्य का लिंग एवं विद्यालय प्रकृति के संदर्भ में अंतर की सार्थकता ज्ञात करने हेतु प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय उद्देश्य के अंतर्गत किया गया है। प्रस्तुत शोध में प्राप्त टी मूल्य के सारणी में दिये गये 0.05 स्तर से अधिक होने पर अंतर की सार्थकता को स्वीकृत किया गया है।

प्रसरण विश्लेषण (ANOVA)- दो से अधिक मध्यमानों की तुलना के लिए प्रसरण विश्लेषण का उपयोग किया जाता है इसे संक्षिप्त रूप में एनोवा भी कहा जाता है। प्रसरण विश्लेंषण विधि का अनेक समूहो के प्रसरणों के बीच अंतर से कोई प्रत्यक्ष संबंध नही होता है। प्रसरण विश्लेषण दो प्रसरणों के अनुपात जिसे एफ अनुपात (F - Ratio) कहते है पर आधारित है। प्रसरण विश्लेषण का सूत्र-

$$\mathsf{F} = \frac{MS_B}{MS_W}$$

जहां-

F =k प्रसरण अनुपात

MS_B = माध्य समूहो के मध्य

MS_W = माध्य समूहो के अन्तर

एनोवा का प्रयोग शिक्षकों में संवेगात्मक बुद्धि, आशावादिता एवं व्यक्तिगत मूल्य का शिक्षण अनुभव के संदर्भ में अंतर की सार्थकता ज्ञात करने हेतु प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय उद्देश्य के अंतर्गत किया गया है। प्रस्तुत शोध में प्राप्त एफ अनुपात के सारणी में दिये गये 0.05 स्तर से अधिक होने पर अंतर की सार्थकता को स्वीकृत किया गया है।

3. माध्यमिक शिक्षकों की मूल्य वरीयता का लिंग, विद्यालय प्रकृति एवं शिक्षण अनुभव के सन्दर्भ में प्राप्त निश्कर्ष

- माध्यमिक शिक्षकों के मूल्य वरीयताओं में आर्थिक, सुखवादी एवं शक्ति मूल्यों के अति उच्च स्तर पर क्रमशः (60%, 58% व 81%), धार्मिक, सौन्दर्यात्मक एवं परिवार-प्रतिष्ठा मूल्यों के सामान्य स्तर पर क्रमशः (54%, 59% व 55%), लोकतान्त्रिक, ज्ञानात्मक एवं स्वास्थ्य मूल्यों के निम्न स्तर पर क्रमशः (46%, 48% व 47%), सामाजिक मूल्य के अति निम्न स्तर पर 86% सर्वाधिक शिक्षक प्रतिशत पायी गयी है। शिक्षकों के विभिन्न मूल्यों में सबसे अधिक माध्य 15.15 आर्थिक मूल्य का प्राप्त हुआ तथा सबसे कम माध्य 7.75 सामाजिक मूल्य का प्राप्त हुआ एवं सबसे अधिक विचलन 3.23 लोकतान्त्रिक मूल्य का प्राप्त हुआ व सबसे कम विचलन 2.47 सौन्दर्यात्मक मूल्य का प्राप्त हुआ है। इस प्रकार शिक्षकों में विभिन्न मूल्यों का स्तर भिन्न-भिन्न पाया गया है।
- लिंग के सन्दर्भ में माध्यमिक शिक्षकों के विभिन्न मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है। महिला एवं पुरुष शिक्षकों के मूल्य समान पाये गये हैं। महिला एवं पुरुष शिक्षकों में आर्थिक मूल्य सबसे अधिक एवं सामाजिक मूल्य सबसे कम पाया गया है।

- विद्यालय प्रकृति के सन्दर्भ में माध्यमिक शिक्षकों के मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है। सरकारी एवं गैर-सरकारी शिक्षकों के मूल्य समान पाये गये हैं। सरकारी एवं गैर-सरकारी शिक्षकों में आर्थिक मूल्य सबसे अधिक एवं सामाजिक मूल्य सबसे कम पाया गया है।
- शिक्षण अनुभव के प्रथम वर्ग में आर्थिक, सुखवादी व शक्ति मूल्य के अति उच्च स्तर पर, धार्मिक, सौन्दर्यात्मक व परिवार-प्रतिष्ठा मूल्य के सामान्य स्तर पर, लोकतान्त्रिक व स्वास्थ्य मूल्य के निम्न स्तर पर, सामाजिक मूल्य के अति निम्न स्तर पर सर्वाधिक शिक्षक प्रतिशत पायी गयी।
- शिक्षण अनुभव के द्वितीय वर्ग में आर्थिक, सुखवादी व शक्ति मूल्य के अति उच्च स्तर पर, धार्मिक, सौन्दर्यात्मक व परिवार-प्रतिष्ठा मूल्य के सामान्य स्तर पर, लोकतान्त्रिक व स्वास्थ्य मूल्य के निम्न स्तर पर, सामाजिक मूल्य के अति निम्न स्तर पर सर्वाधिक शिक्षक प्रतिशत पायी गयी।
- शिक्षण अनुभव के तृतीय वर्ग में आर्थिक, सुखवादी व शक्ति मूल्य के अति उच्च स्तर पर, धार्मिक, सौन्दर्यात्मक व परिवार-प्रतिष्ठा मूल्यों के सामान्य स्तर पर, लोकतान्त्रिक मूल्य के निम्न स्तर पर, सामाजिक व स्वास्थ्य मूल्य के अति निम्न स्तर पर सर्वाधिक शिक्षक प्रतिशत पायी गयी।
- शिक्षण अनुभव के चतुर्थ वर्ग में आर्थिक, सुखवादी व शक्ति मूल्यों के अति उच्च स्तर पर,, लोकतान्त्रिक, सौन्दर्यात्मक व परिवार-प्रतिष्ठा मूल्य के सामान्य स्तर पर, धार्मिक व स्वास्थ्य मूल्य के निम्न स्तर पर, सामाजिक व ज्ञानात्मक मूल्य के अति निम्न स्तर पर सर्वाधिक शिक्षक प्रतिशत पायी गयी।
- शिक्षण अनुभव के सन्दर्भ में माध्यमिक शिक्षकों के धार्मिक, सामाजिक, सौन्दर्यात्मक एवं परिवार-प्रतिष्ठा मूल्यों में सार्थक अन्तर पाया गया है तथा लोकतान्त्रिक, आर्थिक, ज्ञानात्मक, सुखवादी, शक्ति एवं स्वास्थ्य मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है।

सन्दर्भ सूची

- गहाली, विजया लक्ष्मी (2006). माध्यमिक स्तर के बालकों के अभिभावकों व शिक्षकों द्वारा दिये गये मूल्यों का महत्व. एजूट्रैक नीलकमल पब्लिकेशन्स, हैदराबाद, (2006). 34-38
- अल्लिडा (2005). माध्यमिक विद्यालयी शिक्षकों के व्यावसायिक मूल्य, व्यावसायिक तनाव एवं शिक्षण प्रदर्शन. रिट्राइव्ड फिरोम हार्डिंग लाइब्रेरी 224.38.l44.V42005
- देसारी राजेन्द्र प्रसाद (2017). माध्यमिक विद्यालयी शिक्षकों की मूल्य व्यवस्था एवं मूल्य वरीयतायें: एक भारतीय सर्वेक्षण. यूनिवर्सल जर्नल ऑफ एजूकेषन रिसर्च, 5(8), (2017) 1403-1409
- गुप्ता, एस. पी. (2006). सांख्यिकीय विधियाँ. शारदा पुस्तक भवन, पब्लिसर्श एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, यूनिवर्सिटी रोड़, इलाहाबाद (2006). 44-58

नेपाली साहित्यिक आन्दोलन

डॉ० दिलकुमार प्रधान

सहप्राध्यापक, नेपाली विभाग, वीरपाडा कलेज, हुलाक- वीरपाडा, जिल्ला अलिपुरद्वार, पश्चिम बङ्गाल

1. प्रस्तावना

भाषा और साहित्य समय के साथ बदलते रहते हैं। विश्व की लगभग सभी भाषाएँ और उस भाषा में लिखा गया साहित्य परिवर्तन और संशोधन की गति का अनुसरण करते हुए प्रगति की सीढ़ी के शीर्ष पर चढ़ता जाता है। इस प्रक्रिया में ऐसा प्रतीत होता है कि साहित्यिक अभियानों या आंदोलनों का जन्म परम्परा से हटकर कुछ लिखने की चाहत, दूसरों से हटकर कुछ विशिष्ट प्रकार का साहित्य लिखने की मंशा से हुआ। साहित्य की दिशा, गति, आयाम, विषय, भाव, विचारधारा और अभिव्यक्ति प्रणाली अर्थात स्वरूप या शैली में परिवर्तन लाने में सक्षम ऐसे अभियान साहित्यिक आंदोलन कहलाते हैं। साहित्यिक आन्दोलन भी एक प्रकार का प्रयोग है। हालाँकि ऐसे प्रयोग दूरगामी परिवर्तन नहीं ला सकते, लेकिन ऐसा लगता है कि कुछ अस्थायी प्रभाव पीछे छूट जाते हैं। एक भाषा के साहित्य में होने वाले ऐसे आंदोलन विश्व की विभिन्न भाषाओं के साहित्य को प्रभावित करते हैं। तात्कालिक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक स्थिति और गतिविधियों ने भी साहित्यिक आंदोलन को प्रेरित किया है। पुनर्जागरण के बाद यूरोप में कई साहित्यिक आंदोलन उभरे। विशेषकर फ्रेंच, जर्मन और अंग्रेजी भाषा के साहित्य से रूमानियत, यथार्थवाद, दादावाद, प्रकृतिवाद, अस्तित्ववाद, प्रगतिवाद, प्रतीकवाद, प्रतिमावाद, नारीवाद आदि को भी साहित्यिक आंदोलन का विशिष्ट रूप माना जा सकता है।

भारत और नेपाल में लिखे गए नेपाली साहित्य के इतिहास में हम पाते हैं कि कई ऐसे आंदोलनों का जन्म हुआ जिन्होंने इसके विषयों, भावनाओं, विचारों और शैली को बदलने और बढ़ावा देने में मदद की। ऐसे साहित्यिक आंदोलनों में 'अयामिक आंदोलन' सबसे प्रसिद्ध और प्रभावशाली माना जाता है। भारत-नेपाली साहित्य के इतिहास पर नजर डालें तो पता चलता है कि ऐसे साहित्यिक अभियान मुख्य रूप से काशी, दार्जिलिंग और असम से संचालित हुए।

1.2 भारत में हुए नेपाली साहित्यिक आंदोलन

1.2.1 साहित्यिक इतिहासकारों के अनुसार पहला नेपाली साहित्यिक आन्दोलन मोती मंडली है। 1881 ई. तदनुसार विक्रम संवत् 1938 में बनारस (काशी) के मोतीराम भट्ट ने पद्मविलास पंत, काशीनाथ, रंगनाथ, चेत सिंह तथा तेज बहादुर राणा के साथ मिलकर सृजन में प्रशिक्षण, उत्साह तथा प्रेरणा प्रदान करने के उद्देश्य से 'मोती मण्डली' का गठन किया। नेपाली साहित्य के इतिहासकारों के अनुसार उनका 'समस्यापूर्ति' नामक अभियान बहुत लोकप्रिय हुआ।

1.2.2 मोतीराम भट्ट की मृत्यु के एक दशक बाद बनारस में ही रसिक समाज की स्थापना हुई। हिंदी साहित्य के भारतेंदु हरिश्चंद्र की प्रेरणा से हिंदी में नाटक करने के उद्देश्य से देवीदत्त पराजुली, सोमनाथ सिगड्याल, गंगादत्त और चक्रपाणि चालीसे द्वारा सोसायटी का गठन किया गया था। ज्ञात होता है कि उक्त सोसायटी ने 1906 ई. से बिक्रम संवत 1963 तक श्सुंदरीश नामक पत्रिका प्रकाशित की और नेपाली भाषा साहित्य के विकास में सहायता की।

1.2.3 बनारस से 1908 ई. तदनुसार विक्रम संवत 1965 में 'माधवी' पत्रिका का प्रकाशन कर राममणि आचार्य दीक्षित के नेतृत्व में चलाए गए हलंत बहिष्कार आंदोलन ने भी साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यह उस समय नेपाली भाषा में हलंत के अनावश्यक बढ़ते उपयोग के खिलाफ आयोजित किया गया था। ऐसा माना जाता है कि स्वरों के साथ-साथ व्यंजनों के पदों को काटकर नेपाली अक्षर लिखने की बढ़ती प्रथा को देखकर शुरू हुए इस आंदोलन ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से नेपाली साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

1.2.4 बनारस से बिक्रम संवत 2013 के अनुसार 1956 ई. में झर्रोवाद आंदोलन हुआ, जिसमें कहा गया कि साहित्यिक भाषा में नेपाली थेट या झर्रा (देशज) शब्दों का प्रयोग होना चाहिए। नेपाल से बनारस पढ़ने आए छात्र बालकृष्ण पोखरेल, तारानाथ शर्मा और बल्लभमणि दहल ने 'नौलो पाइलो' नामक पत्रिका प्रकाशित की और अपने अभियान के उद्देश्य पर प्रकाश डाला। इस आंदोलन के अन्य समर्थकों में कोषराज रेग्मी, चूड़ामणि रेग्मी के नाम भी उल्लेखित हैं। पत्रिका के विभिन्न अंकों

में वे विदेशी शब्दों के स्थान पर नेपाली गलत शब्दों का प्रयोग करते हैं जो कि नेपाली भाषा में तेजी से बढ़ रहे हैं, आवश्यकता पड़ने पर नेपाली शब्दों पर आधारित शब्द भी बनाते हैं। मृतप्राय: नेपाली शब्दों का पुन: उपयोग करना और उन्हें लोकप्रियता प्रदान करना, संस्कृत से ऐसे शब्दों का निर्माण करना जो हिंदी आदि के अनुकूल न हों, नेपाली प्रत्यय और कृत प्रत्यय का चलन बढ़ाना और वर्तनी को अधिक सरल बनाना। नेपाल और भारत के ऐसे पत्रकारों और लेखकों की संख्या बढ़ती जा रही थी जो अनावश्यक रूप से अंग्रेजी, फारसी और हिंदी शब्दों का उपयोग कर रहे थे, क्योंकि नेपाली शब्द उनके विचारों या भावनाओं की गहराई को व्यक्त करने के लिए पर्याप्त नहीं था। देखा जा सकता है कि काशी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर दिवाकर प्रधान ने विभिन्न समाचार पत्रों के माध्यम से नेपाली लेखन में प्रयुक्त अनेपाली शब्दों के स्थान पर मीठामीठा उपयुक्त शब्दों का प्रयोग करने का प्रस्ताव रखा। भाषाविद् आर. एल. टर्नर ने अपने शब्दकोष में नेपाली शब्द जनजिह्वा का शब्द कहकर जितनी शब्द संकलित किए है पुष्कर शमसेर जंग बहादुर राणा ने उस दिशा में विशेष खोज की। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि नेपाली भाषा का लेखन संस्कृतनिष्ठ नहीं होना चाहिए और अंग्रेजी के प्रभाव को रोकने के प्रति सचेत रहना चाहिए। इसीलिए बालकृष्ण पोखरेल ने पुष्कर शमशेर को झर्रोवाद का आदिगुरु माना (नेपाली भाषा-साहित्य आंदोलन: पृष्ठ 79-80)।

1.2.5 1963 ई. में दार्जिलिंग में परम्परागत रूप से लिखे जा रहे साहित्य को आयामहीन, खोखली भावुकता एवं भ्रमजाल मानकर इसके विरुद्ध एक नये साहित्यिक सिद्धांत के साथ आयामिक आंदोलन का जन्म हुआ। आयामिक आंदोलन को तेस्रो आयाम के नाम से भी जाना जाता है। इस आंदोलन की घोषणा अप्रैल 1963 ई. में तेस्रो आयाम नामक पत्रिका प्रकाशित करके की गई थी। इंद्र बहादुर राई, बैरागी काइँला और ईश्वर वल्लभ इस आंदोलन के संस्थापक, अग्रणी या प्रवर्तक थे। बैरागी काइँला के जन्म का नाम तिलविक्रम नेमवांग है। इस आंदोलन की पृष्ठभूमि बैरागी काइँला के संपादन में प्रकाशित फूल, पात, पत्कर पत्रिका (1961 ई.) से प्रारंभ मानी जाती है। अशेष मल्ल का मानना है कि पृष्ठभूमि के तौर पर इन्द्र बहादुर राई के कहानी संग्रह विपना कतिपय (1961) को भी लिया जा सकता है।

नेपाली साहित्य के केवल विषयवस्तु (प्लट) ही नहीं उसके रूप (फर्म) और अभिव्यक्ति प्रणाली (शैली) के बारे में सैद्धांतिक ढंग से सोचने, विचारने और आलोचना करने का यह पहला आंदोलन था। गोविन्दराज भट्टराई लिखते हैं, "नेपाली भाषा और साहित्य दोनों को एक ही दृष्टि से विकसित करने के अभियान में लगे आयामिक आंदोलन के साथ संयुक्त साहित्यकार पारंपरिक साहित्य को तृतीय आयामहीन माना और 'लंबाइ, चौड़ाइ, गहराइ और मोटाइयुक्त अर्थात् तृतीय आयामयुक्त साहित्य करने का यह अभियान बौद्धिक एवं साहसपूर्ण था (गोविन्दराज भट्टराई: काव्यिक आन्दोलनको परिचय, पृ.149)।'

"वर्तमान साहित्यिक लेखन को मनुष्य के समग्रता को ऊपर उठाने का प्रयास करना चाहिए। मनुष्य केवल आँखें, केवल कान, केवल मन नहीं है। वह इंद्रियों, मन और मस्तिष्क का एक पुञ्ज है, और अब लिखेने जाने प्रत्येक वाक्य और पंक्ति में जीवन के संपूर्णता प्रदर्शित होना आवश्यक है। ऐसा करने के लिए, हमारा प्रत्येक कृति (काव्य) तृतीय आयाम युक्त होना चाहिए। किसी पीड़ित व्यक्ति की कहानी या कविता उस एक पीड़ित व्यक्ति की कहानी या कविता तक सीमित नहीं रहनी चाहिए। उस में एक विशाल विचार हो। दर्शन का एक आकाश, राजनीति और सामाजिक भाष्य बने। यह इस से भी और अधिक विषयों का पुञ्ज बनें (तेस्रो आयाम, वर्ष-1, अङ्क-1)!" अभियान में लगे इस आंदोलन ने जेस्टालवाद, घनत्ववाद, सापेक्षतावाद, हेलियोग्राफ और सामूहिक अवचेतनवाद से प्रेरणा ग्रहण की है।

आयामिक आन्दोलन की अवधारणा

1. वस्तु के घनत्व या तीन आयाम (लम्बाइ, चौडाइ और गहराइ), 2. वस्तुता, 3. सम्पूर्णता, 4. चित्रकला की सीधा साम्य भाषा और 5. आद्यस्वरूप

1. **वस्तु के घनत्व या तीन आयाम:** आयाम का अर्थ फैलावट वा विस्तार है। कोई भी वस्तु लम्बाइ, चौडाइ और गहिराइ तीन आयामों से युक्त होती है। यह तीन आयाम वस्तु के समग्रता और घनत्व को दर्शाती है। यह तीन आयाम में से एक की अनुपस्थिति में वस्तु की अङ्कन वा चित्रण अपूर्ण होती है। घनत्व का अभाव साहित्य में वैचारिक एवं दार्शनिक

गहिराइ की अभाव होती है। जीवन की संपूर्ण आयाम को पकड़ने में नाकामयाब होते हैं। वस्तु के तीनों आयामयुक्त मूर्त रूप एवं उस के घनत्व को प्रतिपादन किये जाने वाली प्रणाली में सब कुछ एकसाथ प्रकट हुए समान साहित्य में भी मानव जीवन के सभी पक्ष एकसाथ एक बार समग्र रूप में प्रकट होने चाहिए। इस के लिए साहित्य में भी तृतीय आयाम की आवश्यकता है। कला के क्षेत्र में पाब्लो पिकासो और ब्राक घनत्ववाद के प्रतिपादक माने जाते है।

2. **वस्तुता:** आयामिक आन्दोलन का मुख्य आधार वस्तुता है। इस आंदोलन के प्रणेताओं का कहना है वस्तु का स्वतन्त्र अस्तित्व ही वस्तुता है। वस्तु स्वतन्त्र रहता है, मनुष्य द्वारा दिए गये अर्थ और विशेषण से अलग एवं स्वतन्त्र। स्वतन्त्रता, अर्थनिरपेक्षता, साक्षात्कृति एवं तात्क्षणिकता वस्तु की वस्तुता है। 'एक ही झलक में जिन्दगी के समग्र रूप को देखने का लक्ष्यप्राप्ति के लिए आयामेलीओं द्वरा दर्शाया गया वस्तुता और समग्रता दो पृथक् अस्तित्व न होकर एक दूसरे का पूरक है। सम्पूर्णता कहना ही वस्तुता है, क्यों कि सम्पूर्णता वस्तुता में समीकृत है। आयामेलीओं ने आध्यात्मिक योगबिन्दु के साथ सम्बद्ध करके वस्तुता को पराभौतिक माना है। वस्तु दिखे हुए क्षणों में होती है परन्तु वस्तुता अबौद्धिक चित्त के द्वारा बोधनीय होती है, इस लिए यह दिखाइ नहीं देती। वस्तुता समग्र और पूर्ण होती है और अमूर्त भी। (दयाराम श्रेष्ठ: नेपाली साहित्यका केही पृष्ठ, 231)।' आयामिकों का विश्वास है कि यही अमूर्तता से जीवन का यथार्थ प्रक्षेपित होंगे।
3. **संपूर्णता:** दयाराम श्रेष्ठ के विचार में आयामेली सिद्धान्त में संपूर्णता की अवधारणा घनत्ववाद, जेस्टाल्टवाद और ब्राडले की दार्शनिक मतों से मेल खाते हैं। वस्तु के यथार्थ को भेद कर उसके पराभौतिक गहराइ में पहुंचने पर ही संपूर्णता सम्भव होगी। जीवन में संपूर्णता की खोज मूल अभिप्राय होने के कारण आयामिक कृति में किसी भी विषय को (अर्थात् राजनीति, दर्शन आदि) अकेला अर्थात् एकाकी रूप में नहीं देखा जाता। जीवन की संपूर्णता के पक्ष में मनुष्यों के आदिम वृत्तियों को समाहित कर आद्यबिम्ब उपस्थित कराने की रुचि आयामिक लेखकों में पाई जाती है। प्रतापचन्द्र प्रधान के विचारों में संपूर्णता का अर्थ समग्रता (वस्तु के आन्तरिक एवं बाह्य दोनों पक्ष), निरन्तरता, अविभाज्य एवं आन्तरिकता का मापन है।
4. **चित्रकला की सीधी साम्य भाषा:** आयामिक लेखन में भाषिक संरचना पर विशेष जोड़ दिया गया है। लिखाइ में चित्रकला की सीधी साम्य भाषा प्रयोग इनकी मौलिक विशेषता है। भाव के अमूर्त विधान में आस्था रखते हुए परम्परागत भाषा के संकीर्णताको लांघ कर इस आन्दोलन नें वस्तुता और संपूर्णता के खातिर चित्रात्मक अनुभूति संप्रेषित करवाते है (दयाराम: नेपाली साहित्यका केही पृष्ठ, 231)। अर्थात् अनुभूति को तात्क्षणिकता में अभिव्यक्त करने के लिए चित्रात्मक भाषा की जरुरत है। प्रचलित के साथ अप्रचलित बिम्ब, प्रतीक और मिथकों का प्रयोग कर अनुभूति को नूतन एवं सम्प्रेषित ढंग में प्रस्तुत करना आयामिकों का दूसरा विशिष्ट पद्धति रहा है।
5. **आद्यस्वरूप/आद्यबिम्ब:** आद्यबिम्ब वंशानुक्रमिक आदिवृत्ति को सम्बोधन करती है। आद्यबिम्ब का अर्थ सामूहिक अवचेतन की अभिव्यञ्जन है। आयामिक चिन्तक आद्यबिम्ब को आत्मसात् करने के लिए कालगत नैरन्तर्य की खोज करते हैं। निरन्तरता में विभिन्न मिथक एवं आद्यबिम्ब ग्रहण करते वक्त सामान्यीकरण की जाती है और इस प्रक्रिया में लिए गए वस्तु ही नहीं भाषा भी अमूर्त बन जाती है। आयामिकों इसी अमूर्तता की अवस्था को सिर्जनात्मकता प्रदान करने की बातों में विश्वास रखते हैं (राजेन्द्र सुवेदी, गोरखापत्रअनलाइन डट कम)।

आयामिक आन्दोलन ने समसामायिक चिन्तन, पाश्चात्य दर्शन, चिन्तन प्रणाली, कला और सङ्गीत की समावेश कर के नव बौद्धिक धरातल तयार करना एवं नेपाली साहित्यरूपी नदी की रूपको विस्तार करने का काम किया है (गोविन्दराज भट्टाराई: काव्यिक आन्दोलनको परिचय, पृ. 152-153)।

1.2.6 आयामिक आन्दोलन के प्रणेता इन्द्रबहादुर राई ने नेपाली साहित्य में लीला लेखन' नाम में एक और साहित्यिक अभियान वा लेखन चलाए हैं। आयामिक लेखन के 'वस्तुता' नामक सिद्धान्त लीला लेखन की आधार बताया गया है। विक्रम सम्वत् 2034, पौष महिना (ईस्वी 1977) में प्रकाशित 'रूपरेखा' पत्रिका की 200 अंक में प्रकाशित इन्द्रबहादुर राई की 'भ्रान्ति र लीलालेखन मात्र' लेख में लीलालेखन की उद्घोषणा हुई थी। ईस्वी १९८९ में राई की 'कठपुतलीको मन' कहानी संकलन प्रकाशित होने पर लीला लेखन अभियान और विस्तारित हुई। उक्त कहानी संकलन में उन्होनें लीला लेखन सम्बन्धी बीससूत्रीय घोषणा पत्र समावेश की है। सिर्जनात्मक रचना ही नहीं ईस्वी 1994 में 'अर्थहरूको पछिल्तिर' नामक समालोचना कृति प्रकाश

में लाकर लीला लेखन क्या है बताने की प्रयास की है। इन्द्रबहादुर राई के अलावा नेपाल से कृष्ण धरावासी, दीनबन्धु शर्मा, कृष्ण बराल, रत्नमणि नेपाल, सुन्दर मानन्धर, कुमार भट्टराई आदि साहित्यकारों ने लीला लेखन को आगे बढाया है। कृष्ण धरावासी की 'शरणार्थी', 'आधाबाटो', 'कान्छी', 'झोला', 'राधा' आदि उपन्यास लीला लेखन पर आधारित है।

'लीला' शब्द की शाब्दिक अर्थ खेल, क्रीडा, नाटक वा अभिनय है। पूर्वीय दर्शन में 'लीला' शब्द की अर्थ व्यापक है। संपूर्ण लोक वा विश्वब्रह्माण्ड ही एक हिसाब से परमतत्त्व है। ईश्वर की रचना, लीला वा क्रीडा है। लोक में होने वाले प्रत्येक क्रियाकलाप, व्यतीत होने वाले समय, क्षण, जीवन वास्तविक ना होकर लीला है। प्रकृति के प्रत्येक चराचर की क्रियाकलाप, आवश्यकता और परिस्थिति के अनुरूप स्वरूप, भाव एवं प्रस्तुति में दिखने वाले अन्तर वा भिन्नता भी लीला है। एक ही वस्तु का अनेक रूप, अनेक गुण और विशेषता भी लीला है। 'यही है मानकर विश्वास किया गया विषयआशय परवर्ती काल में कुछ और दिखने लगती है। आगे देखा हुआ रूप में आया यह परिवर्तन जो स्वरूप वा अनुभूति कराती है वह भी लीला है। समय एवं स्थान की भिन्नता के साथ विभिन्न चराचर जगत की स्वभाव में आने वाली गतिशीलता ही भिन्नता लाती है जिस से भ्रम वा लीला की सिर्जना होती है। इस प्रकार समय के साथासाथ वस्तुविषय भिन्न होना, मरना, प्रभाव निष्क्रिय होना उस वस्तुविषय की सक्रियकाल में हमने जो भी धारणा रखा था आज वह उचित नहीं लगना, भूल बोध होना भी लीला है। विश्वास मरते जाना, ध्वंस होते जाना और फिर से नया विश्वास उत्पन्न जागरित होने का स्थिति भी लीला मानी गई है। पूर्वीय साहित्य की अनेक महाख्यानों के साथ जुड्ते हुए आया इस 'लीला' शब्द ने अर्थ को गति और शक्ति प्रदान की है (कृष्ण धरावासी: लीलाको दार्शनिक अवधारणा, भृकुटी, पृ.97)।' परिवर्तनशीलता से उत्पन्न अनिश्चयता और अनिर्धार्यता लीला लेखन है। 'एक मात्र ब्रह्म सत्य, जगत मित्थ्या, खेल वा नाटक है और हम उस का खेलाडी, निमित्त मात्र हैं, मात्र अभिनय हैं हमारे साथ' कहना भी 'लीला' के अस्तित्व की स्वीकृति है। पूर्वीय दर्शन की यही सूत्र को पकड़ इन्द्रबहादुर राई ने लीला लेखन की अवधारणा वा सिद्धान्त नेपाली साहित्य में आगे किये हैं।

उन्होनें बीससूत्रीय घोषणापत्र में कहा है औपनिषिदक माया, बौद्ध शून्य, जैन स्याद्वाद, भौतिक वैज्ञानिक सापेक्षवाद, मनोविश्लेषणात्मक फ्रायडवाद, गेस्टाल्ट मनोविज्ञान, मार्क्सवादीय 'आइडियोलजी' की सिद्धान्त, व्यावहारवाद (प्र्यागमटिज्म), समालोचनात्मक पाठकीय प्राप्ति सिद्धान्त, विनिर्माणवाद (डिकन्स्ट्रक्सन) एवं क्वान्टम फिजिक्स के सिद्धान्त और पूर्वीय दर्शन की 'लोकवक्त लीलाकैवल्यम' के सिद्धान्त लीला लेखन की प्रेरणा स्रोत है (कृष्ण धरावासी : लीला प्रस्तावना, पृ. 7)।

लीला लेखनको अवधारणा प्रस्ट करने के लिए उन्होनें भागवत गीता की प्रसङ्ग आगे की है। भागवत पुराण (श्लोक 10/43/17) अनुसार कंस के सभा मे कृष्ण प्रवेश करते समय मल्लों ने वज्रपुरुष, स्त्रियों नै मूर्तिमान कामदेव, सामान्य मनुष्यों ने नररत्न, गोपों ने स्वजन, शास्तकारों ने दण्डकर्ता, वासुदेव और देवकी ने शिशु, कंस ने कराल मृत्यु, अविदूषों ने विराट्, योगीयों ने परमतत्त्व देखा। अर्थात् वहाँ उपस्थित जन ने एक ही कृष्ण को भिन्न भिन्न रूप मे देखा। वास्तविक कृष्ण किसी ने नहीं देखा, अपना अपना कृष्ण देखा। सोहीप्रकार वस्तु एक होन पर भी द्रष्टा भिन्न भिन्न चीज भिन्न भिन्न देखते हैं, उस वस्तु की यथार्थ किसी को गोचर नहीँ होती है। यथार्थ सदा अगोचर है, गोचरणीय केवल रूप। 'हमारे भावना, विचारणा, क्रिया लीला सब लीला है। हम सब निमित्त, माध्यम मात्र हैं। निरन्तर प्रवाह मे है सब, पुरानी नास होती रहती है और नया बनते रहते है।' भाषा, भाषिका, व्याकरण, लिखाइ की भिन्नता दृष्टिभिन्नता की वाहक है। सांसारिक एवं परसांसारिक की योग से अवतारों का लीला है। जीवन ओर जगत की कर्मभूमि मे लीलानुसारी सङ्घर्ष में रत रहेँ। लीलाक्षेत्र में हैं ना भूलेँ परन्तु, और 'खेलेँ बच्चे का खेल'। 'यह अनस्थिर' वा शून्य को साहित्य में दिखाने का प्रयास करना ही लीला लेखन है। इन्द्र बहादुर राई के अनुसार वास्तविक कृष्ण किसी को गोचर नहोना वा पहचान नहीँ पाना जैसा ही किसी भी साहित्यिक कृति कोही भी पढ़ नहीँ सकता। कवि वा कृतिकार निज जाना हुआ यथार्थ लिखते हैं एवं पाठक निज पहचाना हुआ यथार्थ बोध करते हैं। हम जो जानते हैं वह केवल धारणा मात्र है। धारणा भ्रम है। यथार्थ अज्ञेय है, साहित्यकार वस्तुजगत को जानकर वा बोध करके जो भी लिखते हैं वह भ्रम मात्र लिखते हैं। साहित्य एक प्रकार से धारणाओं की लीला है। यही लीला की लेखन है लीला लेखन। लीला लेखन को और प्रस्ट करने की उद्देश्य से इन्द्रबहादुर लिखते हैं, 'यह सत्य संसार में रहा एक जो बड़ा सत्य है, वह प्रतिबिम्बि हों। हमारे शब्दों में, हमारे वाक्यों में, कविताओं में, कहानी में वह सत्य उदाहरणीय बनकर आएँ। भिन्न भिन्न परख, पहचान और बोध को साहित्य बनाना लीला लेखन है (समयाङ्कन, वर्ष १, अङ्क १, पृ. ४६-४७।'

उत्तराधुनिक लेखन के रूप में दिखे लीला लेखन को गोविन्दराज भट्टराई ने विनिर्माणवाद (डिकन्स्ट्रक्सन) की निकट का लेखन बताया है। ऋषिराज बराल विनिर्माणवाद की रूपान्तरण बताया है ('गरिमा' समालोचना विशेषाङ्क, वर्ष 12, अङ्क 5, पूर्णाङ्क 137)।

1.2.7 नेपाली साहित्य में पूर्वोत्तर भारत अर्थात् असम से 'कोलाज' नामक साहित्यिक आन्दोलन चलाइ गई थी। उक्त अभियान में अविनाश श्रेष्ठ, देवेन सापकोटा, मित्र उपमन्यु विजय पद्मनील, अनुराग प्रधान एवं दीलिप सिंह आदि संयुक्त थे। असम में नेपाली भाषी नागरिकों को विदेशी का लाञ्छना लगाकर असम से खदेड़ने का जो मुहिम चलाया गया था उस के विरुद्ध सचेत, निर्भीक साहित्यकारों ने 'कोलाज आन्दोलन' चलाया था। कोलाज समूह ने असम के विभिन्न गावँ एवं बस्ती जाकर कवि, गायक सब को एक स्थान में संयोजित कर, नेपालीत्व बचाना, शैली और विचार की समन्वय करने का काम किया है (नेपाली भाषा-साहित्यमा आन्दोलन : पृ. १३१)।'

1.2.8 ईस्वी 1993 फरवरी में 'सङ्क्रमण' पत्रिका प्रकाश करते हुए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्ययनरत सञ्जय राई, सञ्जय विष्ट, कविता लामा, परशुराम पौड्याल और सरिता शर्मा आदि ने नेपाली साहित्य में सङ्क्रमण कविता आन्दोलन आरम्भ किया था। उस पत्रिका के 6 अंक में केवलचन्द्र लामा, पुष्कर पराजुली, सुधीर छेत्री, सन्तराज मङ्ग्राती, विमल छेत्री एवं रेमिका थापा भी जुड़ गये थे। आयामिक एवं लीला लेखन की तरह सिद्धान्त प्रतिपादित तो नहीँ किये मगर 'वैश्विक एवं स्थानिक स्तर में बढ़ रहे नव चेतना, दृष्टिकोण तथा प्रविधि के सम्बन्ध क्रमशः चर्चा करते हुए (सञ्जय वान्तवा : सङ्क्रमण, अङ्क ६)' चेतना से सङ्क्रमण कविता एवं कहानी लिखने में उत्साही रहे।

'वक्रताहीन, सरल, लोकव्यवहार के शब्द और प्रतीक (जस योञ्जन 'प्यासी', सङ्क्रमण, अङ्क ६)' प्रयोग करके सौन्दर्य की नया चेतना एवं नया सम्भावना प्रतिस्थापन करने की चाह सङ्क्रमणवादी साहित्यकारों में पाया गया है। घनश्याम नेपाल कहते हैं, वर्ग विशेष की वर्ग स्वार्थ की साहित्यलेखन सभ्यता अब पुरानी हुई है। आज वर्ग निरपेक्ष, सार्वभौम जीवन लेखन की आग्रह है। हरियाली कविता, पर्यावरण कविता, आशा-आस्था, वैषम्य, भातृत्व कविता जैसे हमारे अभ्यासशील तरुण कवियों का है सङ्क्रमण कविता (सङ्क्रमण, अङ्क १)।'

1.2.9 ईस्वी 2001 में सिलगडीवासी बी.पी. बजगाईँ ने 'सार्विकतावाद की घोषणापत्र' प्रकाश कर सार्विकतावादी अभियान की उद्घोषणा किये थे। सार्विकतावाद की धारणा एवं सिद्धान्त भी उन्होनें प्रकाश किये थे। परन्तु सिर्जनात्मक लेखन एवं परिचर्चा को आगे नहीं बढाने की वजह से यस आगे नहीँ चली।

1.2.10 ईस्वी 2007, 1 अप्रेल में कालेबुङ (कालिम्पङ) से विचलन नामक साहित्यिक आन्दोलन आरम्भ की गई। इस में कवि सुधीर छेत्रीकवि उज्जवल बम्बजन, मनोज बोगटी, सुरज रोसुरी, राजेन्द्र ढकाल र उमेश उपमा आदि संलग्न थे। सुधीर छेत्री और उज्जवल बम्बजन प्रमुख स्तम्भ हैं। इस आन्दोलन की वैचारिक अवधारणा ईस्वी 2010 तक प्रकाशित विचलन पत्रिका की 8 अंको मे मिलते हैं। 'चलन' शब्द में 'वि' उपसर्ग जुडकर बना 'विचलन' शब्द के अर्थ अस्थिरता, परम्परा वा प्रचलित मान्यता विपरीत, क्रमभङ्ग आदि है। 'विचलन' शैलीविज्ञान में चला शब्द है।

'विचलन' परम्परा से भिन्न रहकर 'समय, अनुभूति, अभिव्यक्ति और लेखन में नव परिपाटी की अन्वेषण करते हुए (विचलन, अङ्क १)' लिखना विचलन माना गया है। आख्यानात्मकता, आत्मपरावर्तकता (सेल्फ रिफ्लेक्सिबिलिटी) एवं अग्रभूमिकरण (फेरग्राउन्डिङ) वा कुन्तक के 'वैदग्ध्यभङ्गीभणिति' विचलन की सैद्धान्तिक सूत्र बताया गया है। विचलन सचेत रूप से अतीत, वर्तमान और भविष्य की गतिशील कालचिन्तन मे विश्वास रखकर आगे बढ्ना चाहता है। वैश्विक एवं स्थानिक, केन्द्र एवं किनारा, मानवतावाद एवं जातिवाद, नारी एवं पुरुष, गावँ एवं नगर, संस्कार एवं सभ्यता, सतह एवं गहराइ जैसे अनेकन् द्विचर द्वन्द्व के साथ आगे आते हुए क्रमभङ्ग और अस्थिरता लिखने का उपक्रम विचलन बताया गया है।

1.2.11 ईस्वी 2008 में मनप्रसाद सुब्बा और रेमिका थापा ने संयुक्त रूप से 'किनाराका आवाजहरू' काव्य संकलन प्रकाशित करते हुए 'किनारीकरण' की अवधारणा अग्रसरित किये। अङ्ग्रेजी 'मार्जिनलाइजेसन' की पर्याय के रूप में 'किनारीकरण' अभिधान प्रयोग करके 'सबाल्टर्न' एवं 'उत्तरऔपनिवेशिक' अवधारणाओं का "वैश्विक (ग्लोबल) और स्थानिक (लोकल) अर्थात् वैश्थानिक (ग्लोकल) सोच को सूत्र मानकर (किनारा विमर्श, पृ.112) साहित्यिक अभियान के रूप में 'किनारीकरण' आरम्भ हुई है।

किसी भी राष्ट्र, उस राष्ट्र की कोही भी व्यक्ति, उस की वर्ग, जाति और समाज राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक आदि विविध कारणों से तटस्थ, उपान्तक अर्थात् किनारीकृत अवस्था में पहुँचते है। वही किनारीकृत अर्थात् तटीकृतों अपने

अवस्था से उपर उठ्ने के लिए सङ्घर्षरत रहते हैं। निज को तट में पहुँचाने वाले मूलस्रोत वा केन्द्र में अपनी समूह की आवाज पहुँचाना ही किनाराका आवाज है।

1.2.12 ईस्वी 2014 से वासुदेव पुलामी, ज्ञानेन्द्र यक्सो, प्रवीण खालिङ, सदीप प्रधान, सूरज धडकन, निरज थापा, प्रकाश हाङखिम, योगेश पन्त और सपन प्रधान आदि ने समावेशी लेखन (इन्क्लुसिभ इन्नोवेसन) की अवधारणा प्रस्तावित की है।

विचलनवादीयों की तरह वस्तु (कन्टेन्ट) और रूप (फर्म) एवं विचार और शैली को एकदुसरे की पुरक मानकर भूमण्डलीकरण, नारीवाद, परिचय सङ्कट, सबाल्टर्न, दलितवाद, लैङ्गिक असमानता जैसे विमर्श को आगे की है।

1.2.13 ईस्वी 2015 की अगस्ट में हस्तक्षेप नामक पत्रिका प्रकाश करके राजा पुनियानी, मनोज बोगटी, टीका भाइ, भूपेन्द्र सुब्बा, निमा शेर्पा और लेखनाथ छेत्री ने हस्तक्षेपी साहित्यिक अभियान चलाया है।

1.3 निष्कर्ष

भारतीय नेपाली साहित्य में आन्दोलन, अभियान वा लेखन के नाम से चला गतिविधियों का मुख्य आशय साहित्यिक भाषा, साहित्य के विषयवस्तु, रूप एवं अभिव्यक्तिगत ढंग को समायनुकूल परिवर्तन, परिमार्जन एवं विकास करना रहा है। सब से अधिक योगदान आयामिक आन्दोलन और लीला लेखन का रहा है। यह दो आन्दोलन परवर्ती साहित्यकारों के आदर्श, प्रेरणा स्रोत बना। आयामिक और लीला लेखन के केन्द्र मे रहे इन्द्रबहादुर राई ही 90 की दशक के बाद जन्मे साहित्यिक आन्दोलन का प्रेरक स्रोत है। इन्द्रबहादुर प्रतिपादित आन्दोलन के द्वारा बौद्धिक पाठकों के माझ सीमाबद्ध हुई साहित्यिक रुचि, लेखन एवं पठन की धारा को सङ्क्रमण, कोलाज, विचलन, किनारीकरण, समावेश और हस्तक्षेपीयों ने सामान्य पाठक की आकर्षण पुनरुद्धार की है। नेपाली साहित्य में चले साहित्यिक अभियानों की उमर लम्बी छोटी होते हुए भी यह द्वारा भारतीय नेपाली वा गोर्खा नागरिक की सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं विशेषकर साहित्यिक कला की परिचय को प्रज्ज्वलित करने मे बहुत अधिक योगदान की है।

१.४ सारांश

भाषा एवं साहित्य में समयानुकूल परिवर्तन आते रहते है। परिवर्तन और परिमार्जन की गतिपथ पकड् के ही विश्व के प्रायः सभी भाषा एवं उक्त भाषा की साहित्य उन्नति की शिखर पहुँचते हैं। इस क्रम में परम्परा से भिन्न लिखने की अभिप्रायः साहित्यकारों को नई दिशा की तरफ अग्रसारित करते हैं। साहित्य का दिशा, गति, आयाम, विषय, भाव, विचारधारा एवं अभिव्यक्ति प्रणाली अर्थात् शैली में परिवर्तन करने की साहस और अभियानलाई को साहित्यिक आन्दोलन कहा जाता है। यह लेख में नेपाली साहित्य में चले ऐसे 13 साहित्यिक आन्दोलन की संक्षिप्त इतिहास में परिचर्चा प्रस्तुत करने की प्रयास की गई है।

सर्वप्रथम काशी वा बनारस से आरम्भ हुई भाषिक सुधार एवं साहित्य रचना की रथ को आगे बढाने में मोती मण्डली, रसिक समाज, हलन्त बहिष्कार और झर्रोवादी आन्दोलन हुई थी। इस के बाद आयामिक, लीला, संक्रमण, विचलन, किनारीकरण, समावेशी और हस्तक्षेपी आन्दोलन ने नेपाली साहित्य में नया प्रयोग करने की प्रयास की है।

1.6 सहयोगी पुस्तकें

1. नेपाली साहित्यका केही पृष्ठ– दयाराम श्रेष्ठ, साझा प्रकाशन, काठमान्डु, ईस्वी 1984, द्वितीय संस्करण।
2. गोविन्दराज भट्टराई, काव्यिक आन्दोलनको परिचय, नेपाल राजकीय प्रज्ञा प्रतिष्ठान, काठमान्डु, ईस्वी 1992, प्रथम संस्करण।
3. सुकुम शर्मा, नेपाली भाषा–साहित्यमा आन्दोलन, हेरिटेज पब्लिसर्स एन्ड डिस्ट्रिब्युटर्स प्रा. लि., काठमान्डु, ईस्वी 2019, द्वितीय संस्करण।
4. मनप्रसाद सुब्बा, रेमिका थापा, किनारा विमर्श, गामा प्रकाशन, दार्जिलिङ, ईस्वी 2011, प्रथम संस्करण।
5. सङ्क्रमण 1 से 6 अङ्क
6. विचलन 1 से 8 अङ्क

7. समावेशी अङ्क 1 और 2
8. हस्तक्षेप अङ्क 1 और 2

प्रकाशित पुस्तकः

१. आञ्चलिकता अनि केही नेपाली उपन्यास (ईस्वी २००१)
२. लोकविश्वास (ईस्वी २०२०)
३. नेपाली र बङ्गला आञ्चलिक उपन्यास (ईस्वी २०२१)

सम्पादनः

१. निर्वाण, सामायिक पत्रिका, ईस्वी १९९५
२. आधुनिक भारतेली नेपाली कविता (राष्ट्रिय सङ्गोष्ठी प्रपत्र सङ्कलन), ईस्वी २०११
३. आधुनिक भारतेली नेपाली उपन्यास (राष्ट्रिय सङ्गोष्ठी प्रपत्र सङ्कलन), ईस्वी २०१४

वैदिक काल में विज्ञान

डॉ० नवीन कुमार सिंह

सहायक. प्रोफेसर इतिहास विभाग, डी.एन.एस. कॉलेज, भूसिया, राजौन टी.एम.बी.यू. भागलपूर

भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास का इतिहास बहुत पुराना है। भारतीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी का जन्म् सिंधुघाटी सभ्यता में ही हो चुका था, चूँकि सिंधुघाटी नगरीय सभ्यता थी और नगरीय सभ्यता का विकास विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के बिना संभव नहीं हुआ होगा, लेकिन लिखित साक्ष्य के अभाव और सिंधुघाटी के लिपि को नही पढ़ पाने के कारण सिंधुघाटी में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास का इतिहास उपलब्ध साक्ष्यों को देखने के बाद अनुमान पर आधारित है। भारतीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी से जुड़े विभिन्न तथ्यों और विचारों की जानकारी वैदिक ग्रंथों में मिलती है, वैदिक ग्रंथ विज्ञान की उच्चतम ग्रंथ है।

गणितः- यज्ञवेदी निर्माण प्रक्रिया की जानकारी का प्रमुख स्त्रोत शुल्व सूत्र नामक वैदिक रचनाओं में मिलता है। शुल्व का अर्थ रस्सी से मापना। वेदियों की लम्बाई, चौडाई और ऊँचाई को रस्सी या धागों से मापा जाता था।[1] वेदी के माप से सम्बन्धित कई शल्वसूत्र है, जिसमें 7 प्रमुख है, जैसे- बोघायन, आपस्तम्ब, कात्यायन शुल्वसूत्र आदि। इन सभी शुल्वसूत्रों का नाम वैदिक मनिषियों के नाम पर है, जिसने वैदिक सूत्रों को संकलित किया हैं।

इस प्रकार शुल्वसूत्र से ही भारतीय गणित की शुरूआत मानी जाती है। ऐसा है कि शुल्वसूत्रों से विभिन्न प्रकार के यज्ञवेदी की माप, आकार तथा ईटों के माप, आकार आदि के विषय में प्रमुख जानकारी मिलता है। यज्ञ कई प्रकार के होते थे। सभी तरह के यज्ञ के लिए अलग-अलग आकार की वेदियाँ बनायी जाती थी। यज्ञवेदियाँ रेखागणित के नियमों के अनुसार होता था, कभी-कभी पुरोहितों के निर्देशन में वेदियों का आकार बदलना पड़ता था, पर क्षेत्रफल या मूल आधार ज्यों का त्यों बनाए रखना पड़ता था। जैसे वर्गाकार वेदी को वृत्ताकार वेदी में बदलना तथा वृत्ताकार वेदी को आयताकार या वर्गाकार में बदलना पड़ता था। इस प्रकार यज्ञवेदी के निर्माण के क्रम में ही न्यूनकोण, अधिककोण, समकोण का ज्ञान विकसित हुआ।

शूल्वकारों ने रेखीय क्षेत्र की रचना, क्षेत्रफल, विकर्ण आदि के ज्ञान को विकसित किया। अग्निवेदी निर्माण के क्रम में अयात की लम्बाई, चौड़ाई, वर्ग की भुजाओं, विकर्ण की लम्बाई, क्षेत्रफल का ज्ञान हुआ होगा। यज्ञवेदी के माप के क्रम में ही आयात का विकर्ण यानि कर्ण2 त्र लम्ब2 + आधार2 का जन्म हुआ, यह प्रमेय पाइथागोरस की देन मानते हैं, जबकि इसके जन्म् के पूर्व ही इसकी प्रथम जानकारी शुल्वसूत्रों में मिलती है, इस नियमों को बौद्वायन ने निम्न प्रकार से श्लोक के रूप में व्यक्त किया है।

''दीर्घ चतुरस्त्र स्थाक्ष्णयाज्जु पार्श्वमानी"।

तिष्यडमानी च यत् पृथगभूतेकरूत स्तुढमयं करोति।[2]

डॉ0 विभूति दत्त ने भी दावा किया है कि पाइथागोरस के बहुत पहले ही हिन्दूओं को इस प्रमेय का हल मालूम था।[3] इन सभी से स्पष्ट होता है कि पाइथगोरस प्रमेय के नाम से जो साध्य(प्रेमय) प्रचलित है, वह प्रथम आविष्कार नहीं था, इसके जन्म् के पूर्व ही भारतीयों को ज्ञान था। तैत्तिरीय संहिता और शतपथ ब्राह्मण में भी इस प्रमेय के प्रयोगों की जानकारी मिलती है। अतः स्पष्ट है कि पाइथगोरस हिन्दू ज्यामिति के इस सूत्र ने प्रभावित थे और वे इस सूत्र को और अधिक विस्तार दिये, जिसके कारण यूनानियों ने पाइथगोरस प्रमेय का नाम दे दिया। शुल्वकारों ने एक और प्रमेय का उल्लेख किया है कि ''किसी समान कोणीय त्रिभुज के कर्ण पर अंकित वर्ग, क्षेत्रों के क्षेत्रफल उसकी अन्य दो भुजाओं पर अंकित वर्ग क्षेत्रों के क्षेत्रफल के समान हैं।"

संख्या पद्धतिः- वाणिज्य-व्यापार के विकास और लेनदेन के कारण वैदिक काल में संख्या पद्धति का विकास हो चुका था। वैदिक ग्रंथों में संख्या के नामों का उल्लेख पद्य के रूप में मिलता है।4 जैसे- 1 के लिए एक, 2 के लिए द्वि, 3 के

लिए त्रि, 4 के लिए चंतुः, 5 के लिए पंच, 6 के लिए षष्ट, 7 के लिए सप्त, 8 के लिए अष्ट, 9 के लिए नव, 10 के लिए दश, 100 के लिए शत, 1000 के लिए सहस्त्र और 10,000 के लिए अयुत शब्द का उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद के मंत्र से प्रथम, द्वितीय, तृतीय से लेकर द्वादश संख्याओं का उल्लेख किये है, सचिता प्रथम, अग्नि द्वितिये वायु स्तृती यड आदित्य श्रद्यर्थ चन्द्रमा पश्चऋतु पष्टे मरूतः सप्तमे वृहस्पति शष्टमे। मित्रो नवमें वरूणा दशम्इन्द्रडरकादशे विश्वे देवा द्वादश।

यजुर्वेद के अन्य श्लोक(14-23) में 15, 17, 19, 20, 23, 24, 25, 31, 33, 34, 36 और 48 का उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद के एक श्लोक(18-25) में चार का एक दर्जन तक पूरा पहाड़ा 4, 8, 12, 16 - - - 48 तक का उल्लेख मिलता है। इससे साबित होता है कि वैदिक काल में गुणफल का ज्ञान था। इसके अलावे ऋग्वेद में संख्या का उल्लेख इस प्रकार है5:-

एक	-	1/7/9
एकादश	-	10/75/45
द्वि	-	1/53/9
द्वितीय	-	1/53/9
द्वादश	-	1/25/8
त्रि	-	1/20/7
चतु	-	1/31/13
चतुः दश	-	10/114/7
पंच	-	1/7/9 इत्यादि

ऋग्वेद में सबसे बड़ी संख्या अयुत अर्थात् 10,000(दस हजार) का उल्लेख किया है। यजुर्वेद के तैतिरीय संहिता में अधिकतम संख्या परार्ध अर्थात् 1012 (दस खरब,1000, 000, 000, 000) का उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद वाजंसनेयी संहिता के खण्ड 17/2 में संख्या के गुणोत्तर श्रेणी का उल्लेख मिलता है। वाजसनेयी संहिता में श्लोक के रूप में इस प्रकार उल्लेखित है।6 एका च दश च, दश च शंत च, शंत च सइस्त्र च सहस्त्रा चार्युते च अयुंत च, अयुतं च नियुतं च, नियुतं च प्रयुत च, प्रयुत च अबुर्द्ध च, अबुद्व च चन्दबुद्व च, समुद्रश्य मध्यं च, अंतश्य परार्ध श्य चः...।

इस श्लोक से स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में दस की गुणोत्तर श्रेणी पनप चुकी थी, जिससे हर संख्या अपनी पिछली संख्या से दस गुणा बड़ी हैं।[7] इस प्रकार भारतीय गणित की उत्पत्ति और विकास वैदिक काल में ही हो गया था। वैदिक साहित्य में उल्लेख मिलता है कि गणित सब प्रकार की विद्याओं में से श्रेष्ठ विद्या है। वेदांग ज्योतिष के अनुसार गणित का स्थान सबसे ऊँचा है, वेदांग ज्योतिष में एक जगह उल्लेख मिलता है कि-

''यदा शिखा मयूराणां नागानां मणयोचथा।
त्द्वद्वेदांग शास्त्राषां गणित मूर्द्वनि स्थितम।।

अर्थात् मयूर के मस्तक की शिखा की भांति के मष्तक की मणि के भांति, वेदांग नाम से सब विज्ञानों के शीर्ष भाग पर गणित का स्थान है।[8]

ज्योतिष विद्याः- वैदिक ग्रंथो का प्रमुख अंग वेदांग है, जिसकी कुल संख्या 6 है, जिसमें शिक्ष, कल्प, निरूक्त, छंद, ज्योतिष और व्याकरण, जिसमे ज्योतिष विज्ञान महत्वपूर्ण है। वैदिक समाज की यज्ञ क्रिया सर्वाधिक महत्वपूर्ण हिस्सा थी। वेदि निर्माण यज्ञ और बलि के शुभ मुहूर्त निकालने के लिए ग्रह, नक्षत्रों की स्थिति जानने के लिए ज्योतिष विज्ञान की आवश्यकता ने उन वैज्ञानिक विषयो को जन्म दिया। इसके अलावे आर्यो की कृषि अर्थव्यवस्था के कारण ऋतुओं और मौसमों को ज्ञात करने के क्रम में खगोल विज्ञान व ज्योतिष विज्ञान का जन्म हुआ। खेती के लिए बीजों के बोने के अनुकूल समय की गणना तथा वर्षा ऋतु का आकलन करने के लिए ग्रह नक्षत्रों के विषय में जानकारी ज्ञात किये। कृषि के साथ-साथ वाणिज्य-व्यापार के लिए शुभ-अशुभ मुहूर्त जानने के लिए ग्रहो-नक्षत्रों का अध्ययन शुरू हुआ।

वैदिक काल में खगोलशास्त्र से जुड़े प्राचीनतम वैदिक ग्रंथ ज्योतिष वेदांग में 27 नक्षत्रों का उल्लेख मिलता है[9]। अथर्ववेद में 27 नक्षत्रो का नाम इस प्रकार उल्लेखित है:- अश्विन, भरणी, कृतिका, रोहणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुर्नवसु, पुष्या, अश्लेषा,

मधा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तर फाल्गुनी, हस्ता, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्योष्ठा, मूला, पूर्वापाठा, उत्तरषाठा, श्रवणा, घनिष्ठा, शतमिषा, पूर्वभाद्रपद उत्तरभाद्रपद, रेवती।

वैदिक काल में मुहूर्त को शुभ समय का विशेष महत्व था। यज्ञादि व कृषि, वाणिज्य-व्यापार शुभ मुहूर्त में शुभारम्भ करते थे। जैसा कि ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लेख मिलता है कि पुनर्वसु नक्षत्र में जिस दिन से सूर्यदेव विश्राम करते है उस दिन से यज्ञादि शुरू करने का शुभ मुहूर्त होता है। ऋग्वेद मे मुहूर्त शब्द दो बार प्रयुक्त हुआ है। शतपथ ब्राह्मण में एक दिन और रात में 30 मुहूर्तो का उल्लेख मिलता है।[10] तैत्तिरीय ब्राह्मण में दिवस एवं रात्रि के मुहूर्तो (अथर्ववेद 19/6/1-5) का नाम इस प्रकार उल्लेखित है1[11]

दिन के पन्द्रह मुहूर्तः-	रात के पन्द्रह मुहूर्तः-
चित्र, केतु, प्रमान्, आभान्	दाता, प्रदाता, आनन्द
संभान्, ज्योतिष्मान्, तेजस्वान,	मोद, प्रमोद, आवेशयन्
आतपन्, तपन्, अभितपन, रोचन,	निवेशयन, संवेशन, शांत,
रोचमान, शोभमान और कल्याण	आभवन, प्रभवन् संभवन, संभूत, भूत

वैदिक ग्रंथो में अयन, ऋतु, मास, पक्ष, नक्षत्र, तिथि और दिनों का उल्लेख मिलता है। वेदाग ज्योतिष के अनुसार एक वर्ष में 366 दिन, दो अयन और 12 सौर मास होते है। समय की गणना के लिए युग शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्यों में प्रचुरता से हुआ है, यानि ऋग्वेद में 33 बार उल्लेख आया है। एक युग वर्ष का पंच गुणित होता था, यानि एक युग में 366 x 5 =k 1730 सूर्योदय होते थे।[12]

लौह प्रौद्योगिकीः- वैदिक काल में सबसे महत्पूर्ण परिवर्त्तन लौह तकनीकि के प्रयोग से हुआ। हालाँकि ऋग्वैदिक काल कांस्ययुगीन सभ्यता का प्रतिनिधित्व करता था, क्योंकि लोहे का प्रथम प्रयोग 1000 ई0 पू0 के आसपास हो पाया था। उत्तर वैदिक ग्रंथों में लोहे के लिए श्याम अयस या कृष्ण अयस शब्द का प्रयोग किये हैं। यजुर्वेद के एक मंत्र में ''मन्यवे अपस्तापम्''(Iron Smelter) शब्द का उल्लेख किये हैं[13], इससे स्पष्ट होता है कि उत्तर वैदिक काल में लोहे धातु अयस्क का शुद्धिकरण और गला कर औजार निर्माण करना सीख लिया था। उत्तर वैदिक ग्रंथों में लोहे के अयस्क को लकड़ी की आग में तपाकर औजार बनाने का उल्लेख मिलता है, लोहे के पिण्ड को गर्म करने के लिए बड़ी-बड़ी भट्टी बनी रहती थी, जिसमें चमड़े के बने छौकनी से हवा भेजकर प्रज्वलित करते थे।

उत्तरवैदिक काल में पुरातात्विक स्थलों से लौह निर्मित कृषि औजार हल फार, कुदाल, कुठार तथा घरेलू वर्त्तन और युद्ध के अस्त्र-शस्त्र, भाला, तीर, तलवार आदि बनाये जाते थे। 1000 ई0 पू0 के आसपास लोहे के अवशेष दादपुर तथा लहुरदेवा(उत्तर प्रदेश) से मिले है, इसके अलावे प्राचीनतम लोहे अयस्कों का साक्ष्य अंतरंजीखेडा(उत्तरप्रदेश) से मिला है।

वैदिककाल में लोहे के अलावे अन्य धातुओं को गलाने और आभूषण बनाये जाने का उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद संहिता के एक मंत्र में सोना-चाँदी धातु का उल्लेख मिलता है। जैसा कि श्लोक में मिलता है कि 'हरितेत्रीणि रजते त्रीण्यअयसि त्रीणि तपसा- विष्टितानि[14]' अर्थात् सोना(हरित), रजत(चाँदी) लोहा(अयसि) को तपाकर आभूषण बनाने का उल्लेख मिलता हैं। अथर्ववेद में सीसा धातु के प्रयोग करने का उल्लेख मिलता है।[15] जैसेः-

सीसायाध्याह वरूणः सीसायाग्निरूपावति।
ससीं मइन्द्रः प्रायच्छत् तदडग यातुयातनम्।।
तंत्वा सीसेन विध्यामी यथा नाडसो अबीरहा।।

वरूण, अग्नि और इन्द्र तीनों की कृपा से सीसा धातु प्राप्त हुई है, जो शत्रुओं को दूर भगाने वाली है। उस श्लोक से वैदिक काल में सीसे के बने छर्रे युद्ध में शत्रुओं को नाश करने के लिए प्रयोग करने का संकेत मिलता है, जेसा आज बारूद के साथ सीसा का प्रयोग कर बम बनाते है। इस प्रकार सीसा से भारतीय लोग वैदिक काल से ही परिचित थे।

कृषि प्रौधेगिकीः- लोह प्रौद्योगिकी के कारण कृषि क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्त्तन हुआ। अब लोहे का हल(फार), कुल्हाड़ी का निर्माण होने लगा। लोहे के बने कुल्हाड़ी से बड़े पैमाने पर जंगलों को साफ करना असान हो गया, ऋग्वेद में लोहे से निर्मित हल के प्रथम प्रयोग या अविष्कार का उल्लेख मिलता है। हल को खीचने के लिए बैलों का प्रयोग तथा उनकी सहायता से क्यारियाँ बनाना यहीं से आरंभ हुआ[16]। अथवर्वेद के सूत्र संख्या(6/91/1) तथा काठक संहिता में 24 बैलों द्वारा हल खीचे जाने का उल्लेख मिलता है, वहीं यजुर्वेद में बारह बैलों द्वारा खीचें जाने वाले हलों का उल्लेख मिलता है। ऋगवेद में भी छह से बारह बैलों के द्वारा खेत जोते जाने का उल्लेख मिलता हैं, बैलों को हाकने के लिए अष्ट्रा (चाबुक) कोड़े का प्रयोग करते थे। हल में बैलो को वरत्रा(चमड़े की रस्सी) द्वारा बांधे जाने का उल्लेख मिलता हैं। वैदिक काल में खेत जोतने के लिए एक

जोड़ी बैलों से अधिक संख्य में बैलों के प्रयोग से साबित होता है कि जंगलों को साफ करने के बाद कठोर मिट्टी की जोताई के लिए एक से अधिक जोड़ों के बैल की जरूरत पड़ी होगी या एक ही हल में आधुनिक मशीनों के समान अधिक फाल होंगे, इस कारण अधिक से अधिक बैलों की जरूरत पड़ती होगी। अधिक से अधिक बैलों के प्रयोग से अधिक गहरी जुताई भी संभव हो पाई थी और उर्वरता में वृद्धि हुई थी।

खेती की उर्वरता बढ़ाने के लिए सीचने तथा खाद डालने का उल्लेख वैदिक ग्रंथों में मिलता है। ऋग्वेद के अनेक स्थानों पर तथा सुक्त संख्या(7/101/3, 10-105-1) में सिंचाई व वर्षो के लिए देवताओं से स्तुति करने का उल्लेख मिलता हैं। अथर्ववेद में सिंचाई के साधनों का उल्लेख मिलता है। सिचाँई के लिए वर्गाकूप या नहर का उल्लेख मिलता है।[17] इसमें बस्त्रा(रस्सी) से आहाव(बाल्टी) को बांधकर कुएँ से पानी खींचा जाता था। ऋग्वेद में खाद के लिए करीष शब्द का प्रयोग किये है, खाद के रूप में गोमल का प्रयोग करते थें।

इस प्रकार वैदिक काल में खेतों की सिंचाई तथा खादों के प्रयोग द्वारा खेतों की उर्वरता शक्ति में वृद्धि होने की विद्या से अवगत थे। वैदिक सभ्यता में खाद के रूप में जैविक खाद का प्रयोग करते थे।

यजुर्वेद के तीसरे अध्याय में तिल, उरद, गेहूँ, चावल, जौ आदि अनाजों के विषय में प्रथम लिखित जानकारी मिलती है।[18] तैत्तिरीय संहिता(7-2-10, 5-1-7) में फसलों के बोने तथा फसलों के पकने के समय का उल्लेख किया है। कौषीतकी ब्राह्मण(21/3) में तिल और दाल वाले अनाज की बुआई का समय शीत ऋतु बतलाया है। तैतरीय संहिता में ग्रीष्म तथा शरद ऋतु में बोने वाले तथा पकनेवाले फसलों का उल्लेख करते हुए वर्ष में दो फसलों को काटे जाने का उल्लेख मिलता है। सर्वप्रथम शतपथ ब्राह्मण में कृषि की समस्त प्रक्रियाओं कर्षण(जुताई), वपन(बुआई) लुनन(कुटाई) तथा मर्षन(मड़ाई) का उल्लेख मिलता है। इन्ही चार शब्दों से कृषि के समस्त प्रौद्योगिकी विषय की जानकारी मिलती है।

ऋग्वेद के एक मंत्र में सक्तु(सक्त) चालने के लिए तिहिना अर्थात् चलनी शब्द का उल्लेख मिलता है।[19] जिसमें छोटे-छोटे छिद्र होते थे। सकतुमिव तितउना पुजन्त। उसी प्रकार भूसी को अनाज से अलग करने के लिए उवाविनक और शूर्प(सूप) शब्द का प्रयोग मिलता है।[20] अर्थात् दिति शूर्प मदितिः शुर्ष ग्राही वातो उपविनकी। भुने हुए अनाज को पत्थरों के पाटा(सिल) में पिसकर सक्त बनाने की प्रक्रिया उत्तर वैदिक काल में प्रारंभ हो गया था।

प्रिवहनः- वैदिक काल में यातायात के लिए सड़कों का निर्माण का उल्लेख मिलता है, रथ और बैलगाड़ी चलने के लिए सड़के सामान्य भूमि से ऊँचा होता था, जंगलों को साफकर सड़क बनाये जाते थे। सड़क के दोनो ओर पेड़ लगे होते थे। ऋग्वेद में बड़ी-बड़ी व लम्बी सड़को का उल्लेख मिलता है, जिसपर रथ और सार्थवाह, ऋषि-मुनि चला करते थे। रथ के पहिये में आरे होते थे, जिसकी संख्या 4 से अधिक होती थी, रथ एक या दो घोड़े से खींचे जाते थे, राजा या शासक वर्ग रथ पर चला करते थे।[21]

वैदिक काल के लोगों को समुद्र की जानकारी नही थी, लेकिन आर्य को बोलन दर्रा पार कर आगे बढ़ने के क्रम में सप्त-सिंधु, गंगा, यमुना, सरस्वती नदी के किनारे बस गये। नदी को पार करने तथा वाणिज्य-व्यापार के लिए नावें और डोगी का प्रयोग करते थे। बढ़ई द्वारा निर्मित लकड़ी की छोटी डोगी को द्रोण कहते थे। नावें को खींचने के लिए पतवारे का प्रयोग करते थें।

चिकित्साः- भारतीय ज्ञान का प्रमुख स्त्रोत अथर्ववेद है। अथर्ववेद में रोगों के नाम रोगों के कारण, निदान, लक्षण और औषधि एवं शरीर विज्ञान के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। अथर्ववेद में जादुई धार्मिक चिकित्सा पद्धति का भी वर्णन मिलता है।[22] सुश्रुत संहिता में अथर्ववेद को चिकित्सीय ज्ञान के कारण आयुर्वेद अथर्ववेद का ही अंग माना है। वाग्भट्ट ने तो आयुर्वेद को अथर्ववेद का ही उपवेद माना है। ऐसा माना जाता है कि आयुर्वेद की उत्पत्ति अथर्ववेद से ही हुई है। यही कारण है कि अथर्ववेद को चिकित्सा शास्त्र का जन्मदाता माना है।

अथर्ववेद में आयुर्वेद से सम्बन्धित चिकित्सीय ज्ञान और शरीर रचना के विषय में वर्णन के कारण श्रेणीबद्ध समाज के पोषक ब्राह्मणों ने इस अथर्ववेद को वेद मानने से इंकार कर दिया। बाद में चिकित्सा विद्या को अथर्ववेद से अलगकर आयुर्वेद या पंचम वेद रचित हुआ। अथर्ववेद के अलावे अन्य संहिता और ब्राह्मण ग्रंथों में रोगों के उद्भव, कारण उसके निदान के उपाय, जड़ी-बूटियों के औषधीय गुण तथा शल्य-क्रिया का उल्लेख मिलता है।

आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के प्रमुख ग्रंथ अथर्ववेद में शरीर रचना, शारीरिक रोग, रोगों के कारण, उसके निदान, जड़ी-बूटी के औषधीय गुण, आहार-विहार आदि के विषय में चर्चा है, अथवर्वेद विभिन्न रोग जैसे शीर्षामय(सिरदर्द), कर्णशूल(कान का दर्द), यम्मा या बलास अंगज्वर(बुखार), अस्त्राव (अतिसार), कासिका(खाँसी), अचयित(जख्म), विद्रध(कोडा), किलास(कुष्ट रोग), एलर्जी(चक्षु रोग), विलोहित(रक्त स्त्राव), स्नायु वेदना जैसे अनेक रोगों का उल्लेख अथर्ववेद के नवे

मण्डल के चौदहवाँ सूक्त में मिलता है। अथर्ववेद में इन सभी रोगों का कारण त्रिदोष बताया है। अर्थात् वात, पित्त, कप का असंतुलन हो जाना ही शरीर में रोग उत्पन्न होता, जब तक शरीर में वात, पित्त, कफ का संतुलन बना रहता है, तब तक मनुष्य निरोग रहता है।

अथर्ववेद में अनेक प्रकार की जड़ी-बूटियों का नाम तथा उसके औषधीय गुण के विषय में उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद के अनुसार वैदिक काल में जड़ी-बूटियों की सहायता से जो चिकित्सक ईलाज करते थें उन्हें ''भिषक" कहा गया है तथा अथर्ववेद में रोग निवारण के लिए विभिन्न मंत्रों जादु-टोना के द्वारा ईलाज करने वाले हजारों 'भिषजो' का उल्लेख मिलता है शर्त अस्य भिषज सहस्त्रमउत् वीरूध:।

अथर्ववेद में तीन महत्वपूर्ण औषधियों का उल्लेख किया है[24]। अथर्ववेद के एक सूक्त में पिप्पली औषधि का वर्णन मिलता है, जो युद्ध में घायल सैनिकों के घावों को शीघ्र भरने में उपयोग किया जाता था। पिप्पली के समान अन्य वनस्पितिक औषधि पृश्निपर्पी(अपामार्ग) का उल्लेख मिलता है, जिसका प्रयोग कुष्ठ रोगों तथा गर्भपात से बचाने के लिए करने का उल्लेख मिलता है, इसी प्रकार तीसरी औषधि रोहणी या अरून्धति का उल्लेख मिलता है, इसके सेवन से मज्जा, मांस, त्वचा, छिन्न-भिन्न, टुटी हड्डी को जोड़ने के लिए प्रयोग करने का उल्लेख मिलता है। टुटी हड्डी को जोड़ने वाली एक दूसरी औषधि 'लांक्षा' या 'सिलाची' का भी उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है। इस प्रकार 600 से अधिक जड़ी-बूटियों के औषधीय ज्ञान वैदिक ग्रंथो में मिलता है। अथर्ववेद में जादू-टोना, तंत्र-मंत्र, यज्ञयादि के द्वारा रोगों और महामारियों के निदान का भी उल्लेख मिलता है। आज भी आदिवासी समाज और सुदुर गाँवों में जड़ी-बूटियों और झाड़-फूक से ईलाज किया जा रहा है। शायद यह परम्परा वैदिक काल से ही चली आ रही है। वैदिक दर्शन से स्पष्ट होता है कि मनुष्य का जन्म कर्म और योग दोनों के लिए हुआ है। भोग के साथ मनुष्य को व्याधियों और रोगों का अभिशाप मिला है। वैदिक ग्रंथों में रोगों का कारण भूत-पिशाच के प्रभावों का उल्लेख मिलता है। इसके निवारण हेतु देवताओं की आहूति बलि के माध्यम से करने का उपाय बतलाया है। अथर्ववेद में शांतियज्ञ, मंत्रपाठ और कवच धारण का भी उल्लेख मिलता है।

वैदिक काल में शल्य चिकित्सा के विषय में भी जान मिलता है। वैदिक काल में यज्ञ एक महत्वपूर्ण क्रियाकलाप था। यज्ञ के दौरान पशुओं की बलि दी जाती थी, शायद बलि के दौरान ही शरीर रचना के विषय में जानकारी मिली होगी। इसके अलावे आर्यो द्वारा घोड़ों और हाथियों को पालतू बना लिये जाने के बाद और युद्ध के दौरान घायल हो जाने के कारण उनकी शारीरिक संरचनाओं के विषय में ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक हो गया। इस काल में पशुओं के आहारों और स्वयं के बीमारी के समय स्वस्थ्य हो जाने से मनुष्य ने भी जड़ी-बूटि के औषधीय गुणों का प्रयोग और अध्ययन शुरू किया। वैदिक साहित्यों के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय 260 से अधिक जीव-जन्तु के बारे में जानकारी उपलब्ध थी।

शायद यज्ञ के समय बलि से शारीरिक रचना के विषय में पूर्ण जानकारी थी। वैदिक ग्रंथों में शरीर में रूधिर की प्रवाह को ले जाने वाले दोनों प्रकार के नसों अर्थात् शिरा और धमनी का भी उल्लेख मिलता है। शल्यक्रिया और ऑपरेशन के समय या युद्ध में घायल हो जाने के क्रम में रक्तस्त्राव को बाँध देने का भी उल्लेख मिलता है। वैदिक ग्रंथों में शरीर रचना के विषय में पूर्ण जानकारी था। वैदिक ग्रंथों में शरीर की अस्थियों के विषय में शतपथ ब्राह्मण में 360 बताई है। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि शरीर यज्ञरूपी अग्निकुंड है। शायद यज्ञ के दौरान पशुओं के बलि से मनुष्यों के शारीरिक रचना के विषय में पूर्ण जानकारी हो गया था। वैदिक लोगों को रूधिर प्रवाह तंत्र का भी ज्ञान था। वैदिक ग्रंथों में शरीर में रूधिर की प्रवाह को ले जाने वाले दोनों प्रकार के नसों अर्थात् शिरा और धमनी का भी उल्लेख मिलता है। जैसा कि अथर्ववेद के एक श्लोक से ज्ञात होता है कि 'तीव्रा अरूणा लोहिनीस्ता म्रघृम्रा उर्ध्वा अवायी: पुरूषे तिरश्ची':।[25]

यानि मनुष्य के शरीर में ऊपर, नीचे, तिरछे, जाल, ताम्र और धूम रंग के रूधिर इधर-उधर प्रत्येक दिशा में प्रवाहित होता है। शल्यक्रिया और ऑपरेशन के समय या युद्ध में घायल हो जाने पर रक्तस्त्राव के समय शिरा को बाँधने तथा रक्तस्त्राव को रोकने के ज्ञान से अवगत थें।

वैदिक ग्रंथों से शरीर रचना के विषय में पूर्ण जानकारी मिलता है। अवर्ववेद के एक सूक्त में शरीर रचना के विषय में जानकारी मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में शरीर की अस्थियों के विषय में कुल संख्या 360 बताई है।[26] शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि शरीर यज्ञरूपी अग्निकुण्ड है, जिस प्रकार वेदि के निर्माण में 360 ईटों को लगायी जाती है, उसी प्रकार शरीर में 360 हड्डियाँ का जिक्र किया है।

इस प्रकार भारतीयों को वैदिक काल से ही अस्थियों के विषय में सटीक जानकारी था। विद्वान हॉनले ने अस्थियो के विषय में प्राचीन भारतीय ज्ञान तथा यूरोपियन ज्ञान के बीच तुलानात्मक अध्ययन मे आश्चर्य व्यक्त किया है कि भारतीय लोगों को वैदिक काल से ही सटीक जानकारी था।

वैदिक काल में कोढ़ का ईलाज करने वाली असुरमायारूप नामक प्रथम स्त्री चिकित्सक के रूप में उल्लेख मिलता है। वैदिक ग्रंथों में सूर्य चिकित्सा के विषय में भी उल्लेख मिलता है। सूर्य की रश्मि(किरण) द्वारा रोग के मुख्य कारण कृमि को नष्ठ करने की चिकित्सीय विधि का उल्लेख मिलता है। ''उद्यन्नादित्य व्रिमीन हन्तु निर्म्रोचन ये अन्तः क्रिमयो गवि"!!

इस प्रकार वैदिक काल से ही सूर्य चिकित्सा का ज्ञान था। वैदिक काल में आयुर्वेदिक चिकित्सा व प्राकृतिक चिकित्सा का काफी विकास हुआ था।

कुल मिलाकर वैदिक काल में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का काफी विकास हुआ था। वैदिक काल में कृषि, कपड़े की बुनाई, कढ़ाई, धातु निर्माण, तकनीक आदि के क्षेत्र में जो नींव रखी, कमोवेश वह भाप इंजन के अविष्कार तक भारत में चलता रहा। अर्थात् आधुनिक, यांत्रिक उपकरणों के अविष्कार और वैश्वीकरण के पूर्व तक भारत में परम्परागत तकनीक, जो वैदिक काल में आधार रखी गयी थी, वह चलती रही।

संदर्भ सूचिः-

1. गुणाकर मुले- प्राचीन भारत के महान वैज्ञानिक, ज्ञान-विज्ञान प्रकाशन नई दिल्ली, पृ0 सं0- 13
2. एस0 एन0 सेन0- विज्ञान का इतिहास, भाग-1, अनु0- भूपेन्द्र नाथ सान्याल, पृ0 सं0 - 135-136
3. विभूति भूषण दत्त- वैदिक मैथेमैटिक्स हेरिटेज ऑफ इंडिया, रामकृष्ण शतवार्षिकी, कमैटी, कलकत्ता, एस0एन0सेन, पृ0 सं0- 136
4. वीरेन्द्र कुमार- गणित की रोचक बातें, पृ0 सं0- 26
5. डॉ0 सत्यप्रकाश- वैज्ञानिक परम्परा का इतिहास, पृ0 सं0- 24
6. वाजसनेयी संहिता- 17/2 वही पृ0 सं0 - 26
7. वीरेन्द्र कुमार- गणित की रोचक बातें, नई दिल्ली, पृ0 सं0- 27
8. वेदांग ज्योतिष- पृ0 सं0 - 04
9. एस0 एन0 सेन0- विज्ञान का इतिहास, भाग-1, पृ0 सं0- 151
10. शतपथ ब्राह्मण- 10/4/2/18
11. तैतरीय ब्राह्मण- 3/10/1/1-3
12. यजुर्वेद ज्योतिष- श्लोक- 27
13. यजुर्वेद- 30/14
14. अथर्ववेद- 5/28/1
15. अथर्ववेद- 1/16/2-4
16. ऋग्वेद- 10/117/7
17. ऋग्वेद- 10/101/5
18. यजुर्वेद- 31/10
19. ऋग्वेद- 10/71/2
20. अथर्ववेद- 11/3/4
21. ऋग्वेद- 1/141/9
22. अथर्ववेद- 10/417/42-44
23. अथर्ववेद- 9/8/6
24. अर्थववेद- 4/17-19
25. अथर्ववेद- 10/2/11
26. शतपथ ब्राह्मण- 12/3/2/3

भारत में पंचायती राज व्यवस्थाः एक अवलोकन

प्रो० (डॉ०) अरविन्द आदित्यराज

राजनीति विज्ञान विभाग, कॉलेज ऑफ कॉमर्स आर्ट्स एण्ड साइंस, पटना

किशोर कुमार पासवान

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, पी०पी०यू०, पटना

शोध का सारतत्वः विश्व के समस्त लोकतान्त्रिक व्यवस्था वाले देशों में भारतीय लोकतान्त्रिक व्यवस्था का स्वरूप सबसे विशाल एवं सुदृढ़ शासन व्यवस्था का है। हम सभी को ज्ञात है कि लोकतन्त्र सत्ता के विकेन्द्रीकरण पर आधारित शासन व्यवस्था होती है। प्रायः शासन व्यवस्था के इस स्वरूप में यह स्वीकार किया जाता है कि लोकतन्त्र अपने वास्तविक स्वरूप को तब तक प्राप्त नहीं कर सकता और न ही वह अपने ऊपरी स्तर पर सफल माना जा सकता है, जब तक कि निचले स्तर अर्थात स्थानीय स्तर पर लोकतान्त्रिक मूल्य एवं मान्यतायें शक्तिशाली न हों। यदि लोकतन्त्र का अर्थ जनता की समस्याओं एवं उनके समाधान की प्रक्रिया में आम जन मानस की पूर्ण एवं प्रत्यक्ष भागीदारी है तो प्रत्यक्ष एवं विशिष्ट लोकतन्त्र का प्रमाण उतना सटीक कहीं और देखने को नहीं मिलेगा, जितना स्थानीय स्तर पर हैं। शायद इसीलिए भारत में वर्षो पूर्व राजतन्त्रात्मक व्यवस्था के होते हुए भी स्थानीय स्तर पर पंचायती राज व्यवस्था के स्वरूप को स्वीकार किया जाता रहा है। आज हमारे देश में पंचायती राज व्यवस्था की सम्पन्नता एवं सुदृढ़ता के लगभग छैः दशक हो चुके है। इस शोध पत्र में इसके विभिन्न स्तरों पर आये परिवर्तनों, तथा वास्तविक लोकतन्त्र के विशिष्ट लक्षणों जैसे- महिला सशक्तिकरण, आरक्षण, साक्षर पंचायत, विकेन्द्रीकरण तथा संवैधानिक दर्जा जैसे बिन्दुओं पर प्रकाश डालेगें।

प्रमुख शब्दः प्रत्यक्ष लोकतन्त्र, विकेन्द्रीकृत शासन, हिस्सेदारी, स्थानीय स्वशासन, आरक्षण, साक्षर पंचायत।

शोध प्रविधिः प्रस्तुत शोध आलेख में शोधकर्ता द्वारा ऐतिहासिक विश्लेषणात्मक व वर्णनात्मक विधि का प्रयोग किया गया है। इसके साथ-साथ शोधकर्ता ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों को भी स्थान दिया है।

शोध सामग्रीः शोधकर्ता द्वारा शोध सामग्री का संकलन द्वितीयक स्रोतों से किया गया है। इस सन्दर्भ में, इस विषय पर लिखी गयी विविध पुस्तकें, समाचार पत्र, पत्रिकायें व विविध प्रकार की वेबसाइटों का सहयोग शोध पत्र को पूर्ण करने हेतु लिया गया है।

प्रमुख आधर बिन्दुः

1. पंचायती राज की संरचना व उससे सम्बन्धित विभिन्न आयोग,
2. 73वां संविधन संशोधन अधिनयम,
3. प्रत्यक्ष लोकतन्त्र की आधारशिला,
4. सामाजिक, आर्थिक व लैंगिक न्याय की आधारशिला,
5. पंचायती राज व्यवस्था की उपयोगिता व महत्व,

प्रस्तावनाः भारत में पंचायती राज व्यवस्था का इतिहास बहुत पुराना है। शाब्दिक अर्थ में पंचायती राज का आशय पाँच जनप्रतिनिधियों के समूह के शासन से है। पंचायत शब्द मूलतः संस्कृत भाषा के 'पंचायतन' शब्द से उत्पन्न हुआ है। वैदिककालीन इतिहास ने हमें सर्वप्रथम पंचायती राज व्यवस्था से परिचित करवाया। वैदिक साहित्य इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि वैदिक काल से ही ग्राम सभाओं एवं ग्राम पंचायतों का गठन हो चुका था। इस समय सभा और समितियों का उल्लेख मिलता है और ये सभा तथा समितियां निष्पक्ष रूप से कार्य करती थी। अथर्ववेद में उद्धृत है- 'समानो मंत्रः समिति समानी, समानं मनः सह चित्तभेषाम' वैदिक काल के पश्चात् महाकाव्य काल, मौर्यकाल, गुप्तकाल तथा मुगलकाल में भी स्थानीय स्वशासन की इकाईयों को वरीयता मिलती रही।

ब्रिटिश काल में लार्ड रिपन के कार्यकाल (1880-1884) को भारत में पंचायती राज का स्वर्ण काल माना जाता है। इस दौर में ग्राम स्तर पर निर्वाचित ग्राम पंचायतों की स्थापना को प्रोत्साहित किया गया। लार्ड रिपन का मानना था कि भारत के गाँव केवल शहरी लोगों का पेट भरने तथा माल गुजारी देने के लिए ही नहीं हैं। रिपन की योजना थी कि भारत में निचले स्तर से लेकर जिला स्तर तक स्थानीय स्वशासन स्थापित हो और उसमें गैर सरकारी निर्वाचित सदस्यों का बहुमत हो।

भारत जैसे विविधता से पूर्ण देश के लिए पंचायती राज व्यवस्था अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि भारत गाँवों का देश है और यहाँ की अधिकांश जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुये महात्मा गाँधी ने स्वीकार किया कि 'हमारा संघ गाँवों का संघ होगा।' गाँधी जी का मानना था कि 'शहरों में लोग रहते हैं और गाँवों में देवता निवास करते हैं। यदि गाँव नष्ट होते हैं तो भारत नष्ट हो जायेगा, वह भारत नही होगा और विश्व में उसका सन्देश समाप्त हो जायेगा।' इसी मत के समानान्तर पूर्व प्रधानमन्त्री चौधरी चरण सिंह ने भी स्वीकार किया कि भारत की प्रगति और उन्नति का रास्ता गाँवों से होकर जाता हैं। हमारे संविधान निर्माता भी शायद इस तथ्य से परिचित थे कि गाँवों का उद्धार किये बिना भारत का उद्धार नहीं किया जा सकता और शायद इसी कारण से उन्होंने संविधान के भाग चार में वर्णित नीति निदेशक तत्वों में पंचायती राज व्यवस्था को समाहित करते हुये अनुच्छेद 40 में स्पष्ट किया कि- 'राज्य ग्राम पंचायतों के गठन के लिए कदम उठायेगा तथा उन्हें ऐसे अधिकार एवं सत्ता प्रदान करेगा जो कि उनके द्वारा स्वशासन की इकाईयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो।' यद्यपि संविधान में ग्राम पंचायतों सम्बन्धी उपबन्ध तो किया गया परन्तु इसको संवैधानिक दर्जा नहीं दिया गया था।

पंचायती राज व्यवस्था ग्रामीण स्थानीय स्वशासन पद्धति का पर्याय है। यह भारत के सभी राज्यों में जमीनी स्तर पर लोकतन्त्र के निर्माण हेतु शासन द्वारा स्थापित की गयी है। इसे ग्रामीण विकास का दायित्व सौंपा गया है। इस तरह पंचायती राज व्यवस्था उन पंचायत समितियों को प्रतिबिम्बित करती है जो भारत को लोकतान्त्रिक पहचान देती है। पंचायती राज व्यवस्था के अन्तर्गत पंचायतों को नियम निर्माण, क्रियान्वयन और शासन सत्ता में सक्रिय भागीदारी प्राप्त होती है। चूँकि पंचायते सामान्य जनमानस से मिलकर बनती है, इसलिए पंचायती राज में आम आदमी नीतियों के निर्माण और उनके क्रियान्वयन में प्रत्यक्ष रूप से सहभागी होता है। इस सन्दर्भ में पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने कहा था कि 'यदि हमारी आजादी को जनता की आवाज की प्रतिध्वनि बनाना है तो पंचायतों को अधिकारिक शक्ति सम्पन्न बनाना होगा।'

भारतीय राजनीति के समकालीन चिन्तक प्रो. रजनी कोठारी ने माना था कि 'पंचायती राज की स्थापना राष्ट्रीय नेतृत्व का एक दूरदर्शी' कार्य था। इसमें भारतीय राज व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण हो रहा और देश की आन्तरिक एकता बढ़ रही है क्योंकि देश में एक स्थानीय संस्था आकार ले रही है।'

पण्डित जवाहर लाल नेहरू पंचायती राज व्यवस्था के समर्थक थे और उन्होंने ही स्वतन्त्रता के पश्चात् इस व्यवस्था को वास्तविक रूप देने का कार्य किया। पण्डित नेहरू का मानना था कि गाँव के लोगों को अधिकार सौपना चाहिए, उनको काम करने दो, चाहे वे हजार गलतियाँ करें। इससे घबराने की आवश्यकता नहीं है। पंचायतों को अधिकार दो ताकि लोग सत्ता में भागीदारी निभा सकें। पण्डित नेहरू का लोकतन्त्र एवं लोकतान्त्रिक मूल्यों तथा मान्यताओं में अटूट विश्वास था। वे गाँवों को अधिकार सौपनें के प्रबल समर्थक थे। वे चाहते थे कि गाँवों को गरीब जनता भी लोकतान्त्रिक प्रक्रिया में सहभागी बनें। उनका विचार था कि पंचायती राज व्यवस्था का मूलमन्त्र है सामुदायिक विकास अर्थात सभी का मिल जुलकर विकास। इसी परिप्रेक्ष्य में उन्होंने 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम की शुरूआत की गयी। अपने प्रारम्भिक दौर में सामुदायिक विकास कार्यक्रम ज्यादा सफल नहीं हुआ क्योंकि आम जन मानस अपने आपको इन कार्यक्रमों से जोड़ नहीं पाया था। अत: यह बिना हिस्सेदारी वाला कार्यक्रम सिद्ध हुआ। इस कार्यक्रम की विफलता के पश्चात् 1953 में राष्ट्रीय विस्तार सेवा योजना की शुरूआत हुयी। सामुदायिक विकास कार्यक्रम व राष्ट्रीय सेवा योजना को सफल बनाने व जन सहयोग जुटाने के लिए बलवन्त राय मेहता समिति का गठन किया गया। 1957 को प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में इस समिति ने लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण योजना की सिफारिश की। इसे बाद में पंचायती राज कहा जाने लगा। अपने प्रतिवेदन में इस समिति ने त्रिस्तरीय पंचायती राज योजना के प्रारूप को प्रस्तुत किया।

भारत में पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना 2 अक्टूबर 1959 को राजस्थान में हुयी और राजस्थान का नागौर जिला इस व्यवस्था को लागू करने वाला स्वतन्त्र भारत का प्रथम जिला बना। इसकी शुरूआत भी पण्डित नेहरू ने ही की। राजस्थान के साथ-साथ आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडू ने भी इस व्यवस्था को इसी वर्ष स्थापित किया। तत्पश्चात् उड़ीसा, पंजाब, कर्नाटक,

असम व उत्तर प्रदेश में भारत के लगभग सभी राज्यों ने कानून बनाकर पंचायती राज व्यवस्था को स्थापित कर दिया, यद्यपि उनके स्वरूप में भिन्नता थी।

पंचायती राज व्यवस्था के सुदृढ़ीकरण तथा इसकी सफलता के लिए बाद में विभिन्न समितियों का गठन किया गया है, जिनमें कुछ महत्वपूर्ण हैं।

1. अशोक मेहता समिति- दिसम्बर 1977 में जनता पार्टी की सरकार ने अशोक मेहता की अध्यक्षता में समिति का गठन किया। इसने द्विस्तरीय पंचायत व्यवस्था प्रथम खण्ड स्तर और द्वितीय जिला स्तर का सुझाव दिया। इस समिति ने एक तरह से देश में पतनोन्मुख पंचायती राज व्यवस्था को पुनर्जीवित करने का कार्य किया। इसने पंचायतों के पुनरुद्धार हेतु 132 सिफारिशें की लेकिन जनता पार्टी की सरकार भंग हो जाने के कारण केन्द्रीय स्तर पर इस समिति की सिफारिशों पर कोई कार्यवाही नहीं हुयी फिर भी कर्नाटक, पश्चिम बंगाल और आन्ध्र प्रदेश ने इसकी कुछ सिफारिशों को लागू किया।
2. जी०वी०के० राव समिति- 1985 में ग्रामीण विकास एवं गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम की प्रशासनिक व्यवस्था के लिए योजना आयोग ने जी0वी0के0 राव की अध्यक्षता में समिति का गठन किया। वास्तव में यह समिति बिना जड़ की घास वाली समिति थी और इसका पंचायतों के सुदृढ़ीकरण से कोई विशेष सम्बन्ध् नहीं था।
3. एल०एम० सिंघवी समिति- 1986 में राजीव गाँधी सरकार ने 'लोकतन्त्र व विकास के लिए पंचायती राज संस्थाओं का पुनरुद्धार' पर लक्ष्मीमल सिंघवी की अध्यक्षता में समिति का गठन किया। इस समिति ने सर्वप्रथम पंचायती राज संस्थाओं को संवैधनिक दर्जा तथा उनके संरक्षण की आवश्यकता पर बल दिया।

इन समितियों के अतिरिक्त 1989 में पी0के0 थुंगन व 1990 में हरलाल खर्रा के नेतृत्व में समितियों का गठन किया गया और इन्होंने भी इस सन्दर्भ में अपने-अपने सुझाव दिये।

पंचायती राज व्यवस्था को मूर्त व संवैधानिक रूप देने का श्रेय पी0वी0 नरसिंहा राव के नेतृत्व वाली कांग्रेस सरकार को जाता है। 22 दिसम्बर 1992 को संविधान में 73वां संविधान संशोधन कर इस सरकार ने मुख्यतः पंचायती राज व्यवस्था के सुदृढ़ीकरण व उसके उज्जवल सफलता को सार्थक बनाने का कार्य किया। इस आशय हेतु लाये गये इस विधेयक को राष्ट्रपति शंकर दयाल शर्मा ने 20 अप्रैल 1993 को अपनी सहमति प्रदान की। तत्पश्चात् 24 अप्रैल 1993 को इसे पंचायती राज कानून के रूप में सम्पूर्ण भारत में लागू किया गया। इस अधिनियम द्वारा न केवल पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा दिया गया अपितु संविधान के भाग 9 व अनुच्छेद 243 के अन्तर्गत इनको विश्लेषित करने के साथ-साथ अनुसूची 11 का निर्माण कर इनके कार्यक्षेत्रों को स्पष्ट किया गया।

अनुच्छेद 243(क) के अन्तर्गत ग्राम सभाओं को कार्य एवं शक्तियाँ प्रदान करने का उत्तरदायित्व प्रत्येक राज्यों की विधान सभाओं को सौंपा गया है। साथ ही 11वीं अनुसूची में उद्धत 29 विषयों के सन्दर्भ में सामाजिक न्याय एवं लैंगिक समानता सम्बन्धी कार्यों के क्रियान्वयन व मूल्यांकन के कार्यभार का दायित्व ग्राम सभाओं को दिया गया है। पंचायतों की संरचना सम्बन्धी उपबन्ध में इस व्यवस्था को स्वीकार किया गया कि जिन राज्यों की आबादी 20 लाख से ऊपर है, वहाँ त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था व 20 लाख से कम आबादी वाले राज्यों में द्वि-स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था लागू होगी। 73वें संशोधन अधिनियम में इस बात का प्रावधान किया गया कि पंचायत क्षेत्र की कुल जनसंख्या में अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति की आबादी के अनुपात में प्रत्येक स्तर की पंचायत व्यवस्था में इस वर्ग के लिए स्थान आरक्षित होंगे, साथ ही साथ ग्राम पंचायत व किसी भी स्तर की पंचायतों के अध्यक्ष पद में आरक्षण का प्रावधान किया गया है। इसके साथ ही साथ महिलाओं को सशक्त बनाने के उद्देश्य से पंचायतों के प्रत्येक स्तर पर कुल संख्या के कम से कम तिहाई स्थान महिलाओं के लिए सुरक्षित किये गये है। महिलाओं के आरक्षण सम्बन्धी प्रावधान में पंचायतों के अध्यक्ष पद भी शामिल है।

वर्ष 2009 में पंचायती राज मंत्रालय की ओर से 110वां संविधान संशोधन विधेयक लाया गया, जिसमें इस बात का उल्लेख किया गया कि त्रिस्तरीय पंचायत चुनावों में सीटो तथा अध्यक्ष के 50 प्रतिशत पद महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे। वास्तव में पंचायती राज व्यवस्था ने महिला नेतृत्व की स्थिति को सरल बनाने का कार्य किया है। इस पद्धति के माध्यम से दिये गये अधिकारों के कारण ही महिलाओं में राजनीतिक चेतना का प्रसार हुआ है और आज वे राजनीतिक मंचों पर सक्रिय भागीदारी को प्रदर्शित कर रही है।

प्रस्तुत अधिनियम के प्रावधानों को देश के समस्त राज्यों ने स्वीकार किया और उन्हें लागू किया। अधिनियम के प्रावधानों के बिन्दु निम्नलिखित रूप में है:

1) ग्राम सभा: यह अधिनयम पंचायती राज व्यवस्था के अन्तर्गत ग्राम सभा का प्रावधान करता है। यह निकाय मुख्यत: गाँव स्तर पर गठित पंचायत क्षेत्र के निर्वाचक सूची में पंजीकृत मतदाताओं की एक ग्राम स्तरीय सभा है जिसका मुखिया संरपंच होता है। इसका निर्वाचन गाँव के पंजीकृत मतदाताओं द्वारा प्रत्यक्ष रूप से होता है।
2) त्रिस्तरीय प्रणाली: इस अधिनियम में सभी राज्यों के लिए त्रिस्तरीय प्रणाली का प्रावधान किया गया है, अर्थात ग्राम, माध्यमिक (प्रखण्ड) और जिला स्तर पर पंचायत सृजित की गई जिन्हें क्रमश: ग्राम पंचायत, पंचायत समिति व जिला परिषद नाम दिया गया।
3) सदस्यों एवं अध्यक्ष का चुनाव: गाँव प्रखण्ड तथा जिला स्तर पर पंचायतों के सभी सदस्य जनता द्वारा सीधे चुने जायेंगे। इसके अलावा प्रखण्ड एवं जिला स्तर पर पंचायत के अध्यक्ष का चुनाव निर्वाचित सदस्यों द्वारा उन्हीं में से अप्रत्यक्ष रूप से होगा।
4) पंचायतों का कार्यकाल: यह अधिनियम सभी स्तर पर पंचायतों का कार्यकाल पाँच वर्ष के लिए निश्चित करता है, फिर भी समय पूरा होने से पूर्व भी उसे विघटित किया जा सकता है।
5) राज्य निर्वाचन आयोग: अनुच्छेद 243(ट) के अन्तर्गत चुनावी प्रक्रियाओं की तैयारी की देखरेख, निर्देशन, मतदाता सूची तैयार करने पर नियन्त्रण और पंचायतों के सभी चुनावों को सम्पन करान की शक्ति राज्य निर्वाचन आयोग में निहित है। इसमें राज्यपाल द्वारा नियुक्त राज्य चुनाव आयुक्त शामिल है। इसके साथ-साथ अनुच्छेद 243(1) में राज्य वित्त आयोग के गठन का प्रावधन भी इस अधिनियम में है। इसके अध्यक्ष की नियुक्ति भी राज्यपाल द्वारा की जाती है।

पंचायती राज की उपयोगिता एवं महत्व: पंचायती राज व्यवस्था किसी न किसी रूप में प्राचीन काल से ही मौजूद रही है। जहाँ पहले पंचायतें जाति पंचायतों एवं पंच परमेश्वर की अनौपचारिक प्रक्रिया व सोच पर आधारित थी, वहीं स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इसे सुव्यवस्थित एवं कानूनी आधार दिया गया।

भारत गाँवों का देश है और गाँवों को सशक्त व समृद्ध बनाकर ही हम अपने देश को समृद्धशाली बना सकते हैं। महात्मा गाँधी जी का भी मानना था कि जब तक ग्रामवासियों को सत्ता में हिस्सेदार न बना लिया जायेगा तब तक भारत का विकास सम्भव नहीं है। वे आगे कहते हैं कि- ''सच्चा लोकतन्त्र केन्द्र में बैठकर राज्य चलाने वाला नहीं होता, अपितु यह तो गाँव के प्रत्येक व्यक्ति के सहयोग से चलता है।''

यद्यपि स्वतन्त्रता के तुरन्त बाद भारत में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण वाली परिस्थिति को लागू करने में समस्या थी परन्तु संविधान निर्माताओं ने संविधान में इसको स्थान देकर इसका भविष्य उज्जवल कर रखा था। यही कारण है कि अतिशीघ्र 1959 में ही पंचायती राज व्यवस्था की शुरूआत हुयी और ग्रामीण जनता के सत्ता में भागीदारी का मार्ग प्रशस्त्र हुआ। आज प्रत्येक व्यक्ति अपनी समस्याओं को प्रधानों के माध्यम से सरकारों तक पहुँचा सकते हैं व उनका निवारण करवा सकते हैं।

महत्वपूर्ण बिन्दु:

1) भारत में पंचायती राज संस्थाओं ने स्वस्थ प्रजातान्त्रिक परम्पराओं को स्थापित करने के लिए ठोस आधर प्रदान किया। इसके माध्यम से शासन सत्ता जनता के हाथों में चली जाती है।
2) ये संस्थायें भारत का भावी नेतृत्व तैयार करती है। विधयकों एंव मन्त्रियों को प्राथमिक अनुभव एवं प्रशिक्षण में संस्थायें ही प्रदान करती है जिससे वे ग्रामीण भारत की समस्याओं से अवगत होते हैं।
3) पंचायती राज व्यवस्था में शासक और जनता दोनों का संवाद सीधे रूप से होता है।
4) इन संस्थाओं ने प्रत्यक्ष लोकतन्त्र का आधर खड़ा किया है। दूसरे शब्दों में कहे तो ये संस्थायें प्रजातन्त्र की प्रयोगशालायें है।
5) पंचायतों में समाज के निचले तबके के लोगों को आगे लाने के लिए जो आरक्षण पद्धति को स्वीकार किया गया है, उससे गाँवों में सामाजिक न्याय की स्थापना हुयी।

6) इसी तरह महिलाओं को पंचायती राज व्यवस्था में व्यापक हिस्सेदारी दी गयी जिससे लैंगिक समानता समाज में विद्यमान हुयी।

निष्कर्ष:

स्वतन्त्रता के पश्चात् पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से समाज के सर्वाधिक पिछड़े व निचले तबके के लोगों की प्रथम व्यापक राजनीतिक लोगों को प्रत्यक्ष लोकतन्त्र की कार्यप्रणाली से परिचित करवाया है। आज गाँवों के विकास की सम्पूर्ण जिम्मेदारी पंचायतों में आ गयी है और लोगों की ग्राम सभाओं के माध्यम से राजनीतिक सक्रियता में वृद्धि हुयी है। पंचायतें अनुसूचित जाति, पिछड़े वर्ग व महिलाओं के राजनीति में प्रतिनिधित्व को मूर्त रूप देने में सहायक सिद्ध हुयी है। आज नेतृत्व के लिए ज्यादा योग्य व व्यवस्था को समझने वाले लोग प्रतिस्पर्धा में आ रहे है तथा ग्रामीण विकास एवं सामाजिक सुधारों को उत्साहवर्धक ढंग से आगे बढ़ा रहे हैं। पंचायती राज व्यवस्था ने एक ओर जहाँ ग्रामीण स्तर पर युवाओं एवं महिलाओं के नेतृत्व को उभारा है, राजनीतिक महत्वाकांक्षा को जगाया है जिससे यह वर्ग लोकतन्त्र में औपचारिक भागीदारी करने तथा जागरूक नेतृत्व देने में सक्षम हुआ है वही दूसरी ओर यह संस्थायें गाँव, समाज में स्थानीय सामुदायिक संसाधनों के प्रति स्वामित्व का भाव जगाने में असफल साबित हुयी है। महिला सशक्तिकरण की पोल इससे खुल जाती है कि ज्यादातर महिलायें नाम मात्र के लिए प्रधान बनती है और समस्त कार्य उनके पति करते हैं। कहना न होगा कि वर्तमान पंचायती राज व्यवस्था की सारी की सारी सफलता पंचायत प्रतिनिधि व विकास अधिकारियों की जागृति, ईमानदारी, कुशलता, विवेक, मंशा और सरकारी अनुदान के रहमोकरम पर आकर टिक गयी है। आज यह व्यवस्था गाँवों को प्रशासनिक क्रियान्वयन की इकाई बनाने पर अमादा है जबकि गाँव सांस्कृतिक इकाई है। पंचायती राज भूल गया है कि गाँव सम्बन्धों की नींव पर बनते हैं। यदि हम पंचायतों को सही मायने में लोक प्रतिनिधि इकाई के तौर पर व्यवस्थित करना चाहते है तो राज व सत्ता को त्यागकर लोक और प्रतिनिधि सभा का प्रयोग करना होगा। आवश्यक है कि ग्राम सभाओं को भूमि समेत अपने सभी स्थानीय संसाधनों के प्रबन्धन, उन्नयन, विवाद निपटारा, क्रय-विक्रय व कर वसूली के अधिकार सौंप दिये जायें। दलगत राजनीति से पंचायतों को दूर रखा जाये जिससे वह सामुदायिक प्रतिनिधित्व के संकल्प का एकाकार कर सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थ:

1. मुन्नी पड़लिया (2012): भारत में पंचायती राज, अनामिका पब्लिकेशंस एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
2. अंजली, वर्मा (2014): भारत में पंचायती राज, ओमेगा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।
3. रजनी, कोठारी (1961): पंचायती राज की असेस्मेण्ट, इकॉनामिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, नई दिल्ली।
4. धर्मवीर, चन्देल (2012): भारत में पंचायती राज: सिद्धान्त एवं व्यवहार, अविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर।
5. एस०एस० अल्तेकर (1955): स्टेट एण्ड गर्वमेंट इन एनसियेन्ट इण्डिया, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस।
6. सुरेन्द्र, कटारिया (2017): पंचायती संस्थान, अतीत और भविष्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।
7. रमेश कुमार (अप्रैल 2016): 73वें संविधन संशोध्न अधिनयम, 1992 कुरूक्षेत्र पत्रिका, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली।
8. कपिल देव (2018): पंचायती राज: वर्तमान सन्दर्भ में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, www.ignited.in
9. दैनिक नवज्योति डेली हंट: भारत में पंचायती राज व्यवस्था एक परिचय।
10. एस०आर० महेश्वरी (1998): भारत में स्थानीय स्वशासन, लक्ष्मी नारायन अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
11. रत्ना घोष एवं आलोक कुमार (2002): भारत में पंचायती व्यवस्था, शारदा प्रकाशन, इलाहाबाद।
12. डॉ० नीतू रानी, (2018): पंचायती राज व्यवस्था, सिद्धान्त एवं व्यवहार, राजपाल प्रकाशन, नई दिल्ली।
13. प्रमोद कुमार अग्रवाल (2009): भारत में पंचायती राज, प्रभात प्रकाशन, लखनऊ।
14. अनूप कुमार (2016): भारत में पंचायती राज, गियोल बुक वर्ल्ड, नई दिल्ली।
15. डॉ० धर्मवीर चन्देल (2013): पंचायती राज एवं महिला सहभागिता, नेहा पब्लिशर्स, दिल्ली।
16. www.sansarlochan.in
    www.wikipedia.org
    www.deshbandhu.com
    www.wonderhindi.com
    www.amarujala.com

भारत में गठबन्धन की राजनीति का स्वरूपः एक विश्षलेषणात्मक अध्ययन

ओम प्रकाश शर्मा

शोधार्थी, राजनीतिक विज्ञान विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

शोध सारः-

गठबन्धन का अर्थ एक ऐसे समूह से होता है जो किसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु विशेष रूप से अस्थायी तौर पर संयुक्त होते है। राजनीति विज्ञान में इस शब्द का प्रयोग उस अर्थ में होता है जबकि विभिन्न राजनीतिक दल, निहित स्वार्थ समूह अथवा गुट नीति निर्णयों को निश्चित करने अथवा सत्ता प्राप्ति के लिए राजनीतिक समूह अथवा गूट नीति निर्णयों को निश्चिय करने अथवा सत्ता प्राप्ति के लिए राजनीतिक समूह बनाते है। राजनीतिक अर्थ के गठबन्धन का अर्थ सामान्य रूप से एक सामूहिक व्यवस्था से है जिसके अन्तर्गत राजनीतिक दलों अथवा उसके सदस्य सरकार अथवा मंत्रिपरिषद गठित करने के लिए एक साथ होते हैं।

मुल शब्दः- राजनीतिक, गठबन्धन, बहुदलीय, सिद्धान्त, समस्या, संभावना।

प्रस्तावनाः-

भारतीय संसदीय राजनीति की परम्परा में दो या दो से अधिक राजनीतिक दलों की मिली जुली सरकारों के लिए गठबन्धन, से युक्त व संविद आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता रहा है। सामान्य रूप से इन शब्दों के अर्थ परिस्थिति विशेष में बनी सरकारों के सन्दर्भ में सन्दर्भित भिन्नता प्राप्त करते है किन्तु ये सभी राजनीतिक शब्दावली के अनुसार आंग्ल भाषा के एक ही शब्द "कोएलिशनध की ओर संकेत करते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में गठबन्धन शब्द का प्रयोग कोएलीसनध के अर्थ में ही किया गया है।

"कोएलिसनध शब्द लैटिन के कोलेसियो' से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है एक साथ जाना, एक साथ उगना या मिलना। इंग्लिश शब्दकोष में इसे विभिन्न दलों, व्यक्तियों या राज्यों का स्थायी रूप से एक में विलीन हुए बिना, किसी संयुक्त कार्य के लिए किया गया समझौता बताया गया है।' गठबन्धन वस्तुतः संसदीय राजनीति को प्रेरित करती है। इसलिए राजनीति की यह प्रक्रिया बहुदलीय व्यवस्था वाले संसदीय लोकतन्त्रं में ही प्रायः दृष्टिगोचर होती है।

विलियम एच० रिकर ने इंस्टन को उद्धत करते हुए स्पष्ठट किया है कि गठबन्धन सामान्यतः राजनीतिक निर्णय निर्माण के लिए एक विशेष प्रकार का सामाजिक संगठन है। राजनीति को मूल के अधिकारिक बंटबारे के रूप में परिभाषित किया जाता रहा है....बटवारा गठबन्धन निर्माण की प्रक्रिया है, यह स्पष्ट है के गठबन्धन का सिद्धान्त राजनीति के सिद्धान्त का केन्द्रीय भाग है।

वैसे तो गठबन्धन सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न के संयुक्त होने की प्रक्रिया है। किन्तु सह स्थिति विशुद्ध संघर्ष या विशुद्ध सहयोग की स्थिति में बन पाना संभव नहीं है। संघर्ष की स्थिति में हार और जीत की स्पष्ट स्थिति गठबन्धन निर्माण में बाधक है। इसी तरह सहयोगियों में यदि पूर्ण तादात्म्य स्थपित हो जाये तो गठबन्धन का स्वरूप ही बदल जायेगा। अथर्थात तब ऐसी स्थिति में सहयोगी अलग अलग न होकर एकीकृत हो जायेगे इसलिए बिलियक ए० गेम्सन का कहना है कि गठबन्धन का निर्माण तभी संभव है जब संघर्ष और सामान्य हित दोनो साथ साथ अधिकतम लाभ मिल सके किन्तु साथ-साथ इसकी भी सम्भावना रहती है कि अलग-अलग कार्य करने की अपेक्षा संयुक्त होकर काम करने से दोनों सहयोगियों को अधिक लाभ मिलेगा। इसलिए विलियम ए० गैम्सन ने गठबन्धन की परिभाषा देते हुए कहा कि गठबन्धन का अर्थ दो या दो से अधिक इकाइयों द्वारा मिश्रित प्रेरणा की स्थिति में किसी निर्णय को प्रभावित करने के उद्देश्य की दृष्टि से साधनों के सम्मिलित प्रयोग से होता है। वस्तुतः गठबन्धन से आशय दो या दो से अधिक दलों द्वारा मिलकर गठित उस समूह से है जो किसी सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए सम्मिलित किया गया हो। यह सामान्य उद्देश्य एक नई सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था के गठन से लेकर

सत्ता प्राप्त करने तक हो सकता है। जब यह समूह सत्ता प्राप्त करने में सफल हो जाता है तब इसे गठबन्धन, संयुक्त अथवा संविद, सरकार कहते है। प्रस्तुत शोध पत्र में 'भारत में गठबन्धन की राजनीतिध के व्यापक सन्दर्भ में गठबन्धन के निर्माण निर्वाचित का संचालन, बहुदलीय गठबन्धन सरकार के निर्माण और सरकार संचालन में आने वाली समस्याओं एवं संभावनाओं का विशेष रूप से अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

इसी सन्दर्भ में कुछ भ्रमों का निराकरण आवश्यक है। गठबन्धन और अल्पमत सरकार को समानर्थी नहीं समझना चाहिए। जब दो या दो से अधिक दल संयुक्त रूप से सरकार का निर्माण कहते है तो उसे गठबन्धन सरकार कहते हैं। गठबन्धन के सहयोगी प्रत्येक दल अलग-अलग अल्पमत में होते हैं, किन्तु सम्मिलित रूप से संसद में बहुमत प्राप्त कर लेते हैं और इस तरह संसदीय नियमों के अनुसार सत्ता प्रप्ति का अधिकारी हो जाते हैं, जैसे 1996 में श्री एच. डी. देवगौड़ा के नेतृत्त्व वाली संयुक्त मोर्चा सरकार, 1997 में श्री गुजराल के नेतृत्व वाली सयुक्त मोर्चा सरकार, 1998 व 1999 में श्री बाजपेयी के नेतृत्व वाली राजग सरकार तथा 2004 में डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में सप्रग सरकार इसके विपरीत अल्पमत सरकार में केवल एक ही दल सत्तारूढ़ रहता है। अकेले अपने ही साधनों के बल पर वह दल संसद में अल्पमत में होता है, किन्तु एक या एक से अधिक दल संसद में उत्सका बाहर से समर्थन करते है और व्यवस्थापिका में उसका बहुमत बनाये रहते है, जैसे 1989 में श्री बी. पी. सिंह के नेतृत्व में जनता दल सरकार 1990 में श्री चन्द्रशेखर के नेतृत्त्व में बनी सरकार व 1991 में श्री पी. वी नरसिंहराव के नेतृत्व में बनी कांग्रेस सरकार इस तरह के सत्तारूढ़ दल की सरकार को अल्पमत सरकार रहते है। इसी प्रकार गठबंधन और समझौता (एलायंस) में भी स्पष्ट अन्तर है। समझौता वस्तुतः गठबन्धन निर्माण की प्रक्रिया है। यह प्रारम्भिक चरण है।

गठबन्धन निर्माण के लिए उत्तरदायी कारणः-

गठबन्धन की राजनीति अथवा सरकार मुख्य रूप से निम्न तीन कारणों से प्रारम्भ होती है या अस्तित्व में आती है-

1. बहुदलीय व्यस्था के अन्तर्गत संसद के निम्न सदन में मन्त्रिपरिषद् गठित करने के लिए निश्चित बहुमत प्राप्त करने में किसी एक दल की असमर्थता।
2. द्विदलीय व्यवस्था के अन्तर्गत जब दलों में सन्तुलन हो और दो में से कोई एक दल किसी एक छोटे गुट के साथ मिलकर सत्ता प्राप्त करना चाहता हो, अथवा
3. राष्ट्रीय आपात काल में जबकि सभी शक्तियां सामान्य सुरक्षा की दृष्टि से एक ही दिशा में कार्य करने को तत्पर हो।

भारत में राज्यों अथवा केन्द्र में बनी गठबन्धन सरकारें मूलतः पहले कारण के चलते अस्तित्व में आयी। संसदीय शासन की अपरिहार्यता, सरकार गठन के लिए निचले सदन में बहुमत ने, आश्यकता पड़ने पर गठबन्धन की भावना कोप्रेरित किया है। जहां तक भारत में संघीय सरकार का प्रश्न है. वहीं विश्लेषण का बिन्दु यह है कि कोई एक दल लोकसभा में क्यों स्पष्ट बहुमत नहीं प्राप्त कर पा रहा है। वस्तुतः भारतीय राजनीति में केन्द्र और राज्यों दोनों ही स्तर, पर कांग्रेस पार्टी का वर्चस्व रहा है और केन्द्र में कांग्रेस ही एकमात्र ऐसा राजनीतिक दल रहा है जिसने पूर्ण बहुमत के साथ सरकार बनाई। 1977 में बनी जनता पार्टी की सरकार को हम इस श्रेणी में नहीं सम्मिलित कर सकते क्योंकि जनता पार्टी का जन्म स्वयं एक बहुत बड़े गठबन्धन के आधार पर हुआ था। किन्तु 1967 के आम चुनावों से ही कांग्रेस का यह वर्चस्व टूटने लगा और क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का राजनीति में प्रभाव बढ़ने लगा। इसके लिए स्वयं कांग्रेस की शक्ति के केन्द्रीयकरण और केन्द्र द्वारा राज्यों के नामलों में अधिकाधिक हस्तक्षेप की नीति उत्तरदायी हैं। इस प्रकार क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की अलग अलग क्षेत्रों में प्रभावशाली सिथति व लोकसभा में उनके बढ़ते प्रतिनिधित्व ने यह स्थिति, उत्पन्न कर दी है कि किसी भी राष्ट्रीय दल के लिए यह कठिन हो गया है कि वह अकेले दम पर लोकसभा में बहुमत प्राप्त कर सरकार बना सके अथवा इन क्षेत्रीय दलों से सहयोगात्मक गठबन्धन की स्थिति से बच सके।

कांग्रेस के साथ ही राष्ट्रीय दलों के लिए जाति पर आधारित राजनीतिक दलों ने कम मुश्किले नहीं खड़ी की है। बिहार में राष्ट्रीय जनता दल, उत्तर प्रदेश में बहुजन समाज पार्टी व समाजवादी पार्टी के प्रभाव ने भी राष्ट्रीय दलों के एक दलीय बहुमत वाली सरकार के मार्ग में रोड़े अड़ाये है और गठबन्धन धर्म के विकास को प्रेरित किया है यह सब सामाजिक न्याय के नाम पर संभव हुआ है। किसी एक दल को लोकसना में पूर्ण बहुमत न मिल पाने के कारण नित नये उगने वाले सिद्धान्त विहीन राजनीतिक दल भी बनते जा रहे हैं। स्वार्थों व महत्वाकांक्षाओं के कारण दलों में विखंडन हो रहा है और नये राजनीतिक दल

अस्तित्व में आ रहे हैं ये राजनीतिक दल मतों के विभाजन का खेल खेलकर राजनीत्ति के वास्तविक खिलाड़ी के रूप में नहीं बल्कि खेल बिगाडने वाले की भूमिका में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं। भरत में दलीय विखंडन व दल-बदल कितने आम हो गये है इसका अनुमान भारत के पूर्व मुख्य निर्वाचन आयुक्त आर. के. त्रिवेदी के इस व्यक्तव्य से लगाया जा सकता है कि भारत में केवल 1967 से 1973 के बीच 2,700 विखंडन अथवा दल बदल हुए।

भारत में केन्द्रीय स्तर पर विशुद्ध रूप से अब तक 1989, 1996, 1998 व 1999, 2004, 2008, 2014 तक में बनी सरकारों को गठबन्धन की श्रेणी में रखा जा सकता है। किन्तु राज्यों की राजनीति में अब तक कई गठबन्धन सरकारें अस्तित्व में आ चुकी है। जो निम्न प्रकार से रही हैं:-

संख्या का आधार- गठबन्धन में सम्मिलित दलों की संख्या के आधार पर गठबन्धन सरकारों के आधार पर गठबन्धन सरकारों के दो प्रकार होते हैं-

(क) द्विदलीय गठबन्धन सरकार

(ख) बहुदलीय गठबन्धन सरकार

(क) द्विदलीय गठबन्धन सरकार:- जब दो दल आपस में संयुक्त होकर संयुक्त सरकार का गठन करते हैतो इस प्रकार की सरकार द्विदलीय गठबन्धन सरकार कहलाती है। भारत के केन्द्रीय राजनीति में अब तक दो दलों का गठबन्धन असितत्व में नहीं आया है। किन्तु राज्यों की राजनीति में अनेकों बार द्विदलीय गठबन्धन सरकारें बनी है। जैसे केरल में 1954 में बनी प्रसोपा एवं कांग्रेस की सरकार उड़ीसा में 1959 में कांग्रेस गणतंत्र की सरकार, पुन: 1967 में उड़ीसा में स्वतंत्र दल एवं जन कांग्रेस की गठबन्धन सकरार, पंजाब में 1970 में अकाली व जन संघ की सरकार पुन: 1997 में पंजाब में बनी अकाली भाजपा सरकार तथा महाराष्ट्र में शिवसेना-भाजपा गठबन्धन सरकार व वर्तमान कांग्रेस-राष्ट्रीय काग्रेस पार्टी का गठबन्धन सरकार आदि।

(ख) बहुदलीय गठबन्धन सरकार:- जब दो से अधिक दल आपस में संयुक्त होकर गठबन्धन का निर्माण करते हैं तो इसके आधार पर बनने वाली सरकार बहुदलीय पतबच्चन सरकार कहलाती है। केन्द्र में बनी अब तक की सभी गठबन्धन सरकारें इसी श्रेणी में आती है। राज्यों में सन् 1900 ई. में केरल में बनी प्रसोपा, कांग्रेस व मुस्लिम लीग की संविद सरकार, सन् 1967 में पं. बंगाल में अजय मुखजी के नेतृत्व में बनी 14 दलों की गठबन्धन सरकार उत्तर प्रदेश में सन् 1967 में चौधरी चरण सिंह के नेतृत्व में बनी संविद सरकार, पुन: 1970 में त्रिभुवन नारायण सिंह से नेतृत्व में बनी संविद सरकार, हरियाण में सन् 1967 ई. में बन सरकार, 1967 में ही पंजाब में बनी संविद सरकार व वर्तमान प. बंगाल, केरल व उ.प्र की गठवन्धन सरकारें आदि।

सिद्धान्तों अथवा विचारधारा का आधार:- सिद्धान्तों अथवा विचारधारा के आधार पर गठबन्धन सरकारों के दो भेद होते हैं-

- सिद्धान्तों अथवा विचार की समानता के आधार पर बनने वाले गठबन्धन
- सिद्धान्त विहीन गठबन्धन

सिद्धान्तों अथवा विचारों की समानता के आधार पर बनने वाले गठबनधन:-

जब एक समान सिद्धान्तों पर गठित राजनीतिक दल अथवा समान विचारधारा व कार्यक्रम रखने वाले दल संयुक्त होकर गठबन्धन का निर्माण करते हैं तो उन्हें सैद्धान्तिक आधार वाले गठबन्धन की श्रेणी में रखा जाता है। किन्तु यहाँ यह उल्लेखनीय है फि केन्द्र में अब तक जितनी भी गठबन्धन सरकारे बनी, उनमें से कोई भी सैद्धान्तिक समानता के आधार पर नहीं बनी। जहाँ तक राज्यों का प्रश्न है पं. बंगाल की वाम मोर्चा सरकार व केरल में रही वाम मोर्चा सरकारें इसी श्रेणी में आती हैं। वर्तमान में महाराष्ट्र की कांग्रेस-रा. कां. पा. की सरकार भी इसी प्रकार की गठबन्धन सरकारें है। एक सीमा तक पंजाब की पूर्व अकाली जनसंघ व अकाली भाजपा सरकार व महाराष्ट्र की मनोहर जोशी के नेतृत्व में चनी शिवसेना-भाजपा सरकार को भी इसी श्रेणी में रखा जा सकता है। यहाँ यह स्पष्ट करना समाधीन होगा कि सैद्धान्तिक समानता के आधार पर बनने वाली गठबन्धन सरकारे सामान्यतया द्विदलीय होती है। कुछ उदाहरणों जैसे पं. बंगाल में ये बहुदलीय भी हो सकती है।

सिद्धान्त बिहीन गठबन्धन-

जब दो या दो से अधिक राजनीतिक दल विना किसी सैद्धान्तिक या वैचारिक समानता के संयुक्त होकर गठबन्धर का निर्माण करते है तो ऐसी गठबन्धन सरकारों को सिद्धानत विहीन गठबन्धन सरकार कहा जा सकता है। केन्द्र मे बनी अब तक की सभी गठबन्धन सरकारें और राज्यों में बनी अधिकांश गठबन्धन सरकारें इसी श्रेणी में आती है।

कार्यक्रम का आधार:-

कभी-कभी राजनीतिक दल निर्धारित कार्यक्रम अथवा बिना किसी निर्धारित कार्यक्रम के आधार पर गठबन्धन का निर्माण करते हैं अत: कार्यक्रम के आधार पर भी गठबन्धन सरकारें के दो प्रकार हो सकते हैं-

क. बिना किसी निर्धारित कार्यक्रम के आधार पर गठबन्धन

बिना किसी निर्धारित कार्यक्रम के आधार पर गठबन्धन:-

जब दो या दो से अधिक दल बिना किसी खास कार्यक्रम पर सहमत हुए ही संयुक्त हो जाते है और सरकार का गठन करते है तब ऐसी सरकार को बिना निर्धारित कार्यक्रम के आधर पर गठित गठवन्धन सरकार कहते हैं। उ.प्र. में 1970 में बनी कांग्रेस भा.कां.द. की संयुक्त सरकार 1995 व 1996 में बनी बसपा- भाजपा सरकार, व 1997 में श्री कल्याण सिंह के नेतृत्व में बनी विभिन्न दलों की सरकार को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है 1996 में केन्द्र में बनी संयुक्त मोर्चा सरकार का गठन बिना किसी कार्यक्रम के आधार पर होता है किन्तु सरकार गठन के बाद वे न्यूनतम साझा कार्यक्रम की अपरिहार्यता को स्वीकार कर लेते हैं।

समय अवधि अथवा चुनाव समझौते का आधार-समय अथवा चुनाव समझौते के आधार पर गठबन्धन सरकार के दो प्रकार होते हैं

- चुनाव पूर्व गठबन्धन
- चुनाव बाद गठबन्धन

चुनाव पूर्व गठबन्धन:-

जब दो या दो से अधिक राजनीतिक दल आम चुनाव अथवा मध्यावधि चुनाव पूर्व ही आपस में समझौता अथवा चुनाव व्यवस्था कर लेते है और उसी व्यवस्था के आधार पर चुनाव लड़ते है तथा गठबन्धन के बहुमत में आने पर सरकार का गठन करते है तो ऐस सरकार को चुनाव पूर्व गठबन्धन कहते हैं। 1967 में उड़ीसा में बनी स्वतंत्र दल जन कांग्रेस की सरकार, केरल में यूनाइटेड डेमोक्रेटिक फ्रेन्ट तथा लेपट डेमोक्रेटिक फ्रन्ट की बनने वाली सरकारें, 1997 में पं. बंगाल में बाम मोर्चे की सरकार व केन्द्र में 1998 व 1999 में बनी राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन की सरकार, 2004 में बनी संप्रग सरकार इसी वर्ग में आते हैं।

चुनाव बाद गठबन्धन:-

जब दो या दो से अधिक राजनीतिक दल परस्पर एक-दूसरे के विरूद्ध निर्वाचन में भाग लेते है और किसी भी एक दल को पूर्ण बहुमत न मिलने पर परिस्थितिवश अवसर का लाभ उठाते हुए संयुक्त होते है और सरकार का निर्माण करते है तो ऐसी गठबन्धन सरकार को चुनाव बाद गठबन्धन सरकार कहते हैं। 1996 व 1997 में केन्द्रीय राजनीति में संयुक्त मोर्चा की सरकार इसी प्रकार की सरकार थी। 1967 के बाद से राज्यों में बनने वाली अधिकांश गठबन्धन सरकारे बिना किसी चुनावी समझौते के ही अस्तित्व में आई थी।

सदन में स्थिति का आधार:-

लोकप्रिय सदन में गठबन्धन के बहुमत की स्थिति के आधार पर गठबन्धन सरकार के दो प्रकार होते है-

- बहुमत प्राप्त गठबन्धन
- अल्पमत प्राप्त गठबन्धन

बहुमत प्राप्त गठबन्धन:-

जब दो या दो से अधिक राजनीतिक दल आपस में संयुक्त होकर गठबंधन सरकार का निर्माण करते है और लोकसदन में उनके द्वारा बनाये गये गठवन्धन को पूर्ण बहुमत प्राप्त होता है तो ऐसी गठबन्धन सरकार को बहुमत प्राप्त गठबन्धन कहते है। पं. बंगाल में 1977 से बनी वामं नोर्चे की सरकार 1995, 1996 में उ.प्र. में बनी भाजपा-बसपा गठबन्धन सरकार राज्यों में इस श्रेणी के कुछ प्रमुख उदाहरण है। केन्द्र में 1998 च 1999 में श्री अटल बिहारी बाजपेयी के नेतृत्व में बनी गठबन्धन सरकारें

बहुमत प्राप्त गठबन्धन के उदाहरण है यदि 1977 के जनता पार्टी की सरकार को भी गठबन्धन सरकार का एक उदाहरण माना जाये तो वह सरकार भी इसी वर्ग में सम्मिलित की जायेगी।

अल्पमत प्राप्त गठबन्धनः-

जब दो या दो से अधिक राजनीतिक दल आपस में संयुक्त होकर गठबन्धन सरकार का निर्माण करें किन्तु इस गठबन्धन को लोकसदन में पूर्ण बहुमत न प्राप्त हो और किसी अन्य दल के वाह्य समर्थन के आधार पर सरकार का संचालन कर रहे हो तो ऐसी गठबन्धन सरकार को अल्पमत गठबन्धन सरकार कहते है। 1967-69 में पं. बंगाल में पी.सी. घोष के नेतृत्व में बनी गठबन्धन सरकार व 1968 में बिहार में बी. पी. मंडल के नेतृत्व में बनी सरकार अल्पमत गठबन्धन सरकार थी। इसी प्रकार केन्द्रीय राजनीति में 1996 में श्री एच डी. देवगौड़ा व 1997 में इन्द्र कुमार गुजराल के नेतृत्य में बनी सरकारें अल्पमत गठबन्धन सरकारें थी।

गठबन्धन का सिद्धान्तः-

किसी भी देश के राजनीतिक परिदृश्य पर आवश्यकतानुसार गठबन्धनों का निर्माण कतिपय निर्धारित सिद्धान्तों और मान्यताओं के आधार पर होता है। कुछ निर्धारित तत्व व कारक होते हैं जो न केवल गठबन्धन के सहभागियों का निर्धारण करते है वरन् गठबन्धन निर्माण की प्रक्रिया का भी निरूपण करते हैं। इन तत्वों कव कारको को राजवैज्ञानिकों ने प्रारम्भ से ही जानने परखने का प्रयास किया है। इस सम्बन्ध में सबसे पहला महत्वपूर्ण प्रयास थियोडोर कैपलों का थां गठबन्धन (कोएलिशन) निर्माण के सम्बन्ध में कैंपलों का सिद्धान्त यह है कि किसी भी निर्णय को प्रभावित करने की किसी भी व्यक्ति की क्षमता उसके साधनों के अनुपात में होती है।10 इसलिए कोई भी व्यक्ति या दल सदैब उसी संयुक्त में सम्मिलित होना चाहेगा जिसमें वह अपने साधनों का अधिकत्तम प्रयात्त कर सकें अर्थात जिसमें वह सुदृढ़ स्थिति में रह सके। "अध "बध और "सध तीन व्यक्तियों अथवा दलों के क्रमशः 48, 30 और 22 प्रतिशत प्राप्त मतों की स्थिति में "अध और "सध का गठबन्धन यथासंभव नहीं बन पायेगा क्योंकि ऐसी स्थिति में "अध के 48 प्रतिशत शक्ति के समक्ष सध का 22 प्रतिशत साधन निर्णय को उतना अधिक प्रभावित नहीं कर पायेगा जितना कि 'य' और 'स' के गठबन्धन में जिसमें "बध के 30 प्रतिशत मतों के समक्ष "तध के 22 प्रतिशत मतों में बहुत अधिक अन्तर नहीं है।

कैपलो का गठबन्धन निर्माण का सिद्धान्त निम्नलिखित चार मान्यताओं पर आधारित है-

- किसी भी तीन व्यक्तियों के गुट में तीनों व्यक्तियों की शक्ति भिन्न-भिन्न होती है। इनमें जो शक्तिशाली होगा वह स्थितियों को नियंत्रित करने का प्रयास करेगा।
- इन तीन व्यक्तियों के गुट का प्रत्येक सदस्य दूसरे दो अन्य सदस्यों को नियंत्रित करने का प्रयत्न करेगा। यदि इन दोनों सदस्यों पर नियंत्रण न हो सका तो किसी एक पर नियंत्रण करना चाहेगा। किसी पर नियंत्रण न होने की दशा में एक पर और एक की अपेक्षा दो व्यक्तियों पर नियंत्रण ज्यादा अच्छा होगा।
- गठबन्धन की शक्ति इन दो व्यक्तियों की शक्ति के बराबर होती है।
- हर तीन के व्यक्तियों में गठबन्धन निर्माण की संभावना रहती है। इन तीन व्यक्तियों में से यदि एक बहुत शक्तिशाली है और अन्य दोनों को दबाना चाहता है तो ये दोनों अन्य व्यक्ति पहले शक्तिशाली व्यक्ति के विरूद्ध संयुक्त हो जायेगें। उदाहरण के लिए हम तीन व्यक्तियों को लेते है जिनमें अ शक्तिशाली है व और से तो गठबन्धन का निर्माण इस तरह से होगा।

कैपलों के अनुसार इन तीन अ, ब, और स के गुट में स का किसी के भी ऊपर नियंत्रण नहीं रहता है किन्तु वह अयाब के साथ गठबन्धन बनाकर अ या व पर नियंत्रण की स्थिति प्राप्त कर सकता है। यदि यह ब के साथ गठबन्धन बनाता है तो "अध के ऊपर उसका नियंत्रण हो जायेगा क्योंकि ब और संसयुक्त रूप से अधिक शक्तिशाली होगें किन्तु गठबन्धन में यह "बध के नियंत्रण में रहेगा क्यो कि "यध उत्तकी तुलना में अधिक सशक्त है। इसी प्रकार "अध के साथ "सध का गठबन्धन बनने की स्थिति में 'सध "बध पर नियंत्रण की स्थिति में आ जाता है क्योंकि अ और स की संयुक्त शक्ति व से अधिक है लेकिन गठबन्धन में वह "अध के नियंत्रण में रहेगा इसलिए कैपलों के अनुसार 'स' 'अ' या 'ब' के साथ 'व' दोनों ही गठबन्धन का निर्माण कर सकता है अर्थात अव और स तीन व्यक्तियों में से सध और "व 'सध दोनों ही गठबन्धन बनने की

समान संभावना है। कैपलों का यह सिद्धांत यह तो स्पस्ट करता है कि अस और बस दोनों ही गठबंधन बन सकता है, किन्तु यह नहीं बतला पाता कि इन दो सम्भावित गठबन्ठनों में से कौन सा गठबंधन अधिक सम्भव है। गेम्सन ने इस कमी को पूरा करने का प्रयत्न किया। गठबंधन निर्माण के सम्बन्ध में गैम्सन ने तीन सिद्धांत प्रस्तुत किये है।

निष्कर्ष:-

जब दो या दो से अधिक राजनीजिक दल किन्हीं विशेष कार्यक्रमों के आधार पर संगठित होते है और इन्हीं कार्यक्रमों को क्रियान्चित करने के लिए सरकार का गठन करते है तो ऐसी सरकार को निर्धारित कार्यक्रमों पर आधारित गठबन्धन सरकार कहते हैं। 1967 में उत्तर प्रदेश में बनी संविद सरकार 19 सूत्रीय न्यूनतम सामान्य कार्यक्रमों पर आधारित थी। 1999 के पुनाव में बने गठबन्धन ने न केवल अपना नाम राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन रखा बल्कि अपना संयुक्त चुनावी घोषणा पत्र भी जारी किया था जिसमें उन नीतियों और कार्यक्रमों का उल्लेख था जिनके आधार पर सत्तारूढ़ होने की स्थिति में शासन का संचालन किया जायेगा उल्लेखनीय है कि 1996 में बनी संयुक्त मोर्चा तरकार चुनाव बाद की परिस्थितियों के बाद बने गठबन्धन का परिणाम थी किन्तु सरकार गठन के बाद संयुक्त मोर्चे से जुड़े नेताओं ने एक साझा कार्यक्रम की सफलतम अभिव्यक्ति के लिए गठबन्धन (मोर्चे) में सम्मिलित दलों की एक समन्वय समिति का भी गठन किया गया। तेलगूदेशम के नेता एवं आंध प्रदेश के मुख्यमन्त्री श्री चन्द्रबाबू नायडू को इस सनन्चय समिति का संयोजक चुना गया था। इसी प्रकार 1998 व 1999 में हुए लोकसभा चुनावों में भाजपा नेतृत्व में बना गठबन्धन चुनाव पूर्व ही अस्तित्व में आ गया था और सरकार चलाने के लिए 'न्यूनतम साझा कार्यक्रम भी तय कर लिए गये थे। यहाँ भी समता पार्टी के नेता श्री जार्ज फर्नान्डीस के संयोजकत्व में समन्वय समिति के प्रयोग को दोहराया गया। 2004 में बनी संप्रग सरकार ने भी न्यूनतम साझा कार्यक्रम और समन्वय सीमित पर बल दिया है। कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी समन्वय समिति की संयोजक हैं।

संदर्भ सूची

1. An alliance for combined action of district parties, persons or states, without permanent incorporation into one body"- दि आक्सफोर्ड डिक्सनरी, द्वितीय संस्करण, जिल्द 111 पृष्ठ 389 आक्सफोर्ड 1989
2. विलियम एचरिकर ''द थ्योरी ऑफ पोलिटिकल कोएलीशन'', न्यू हैवेन, येल युनिवर्सिटी प्रेस, अध्याय।
3. In a political sense, coalition commonly denotes a Co-operaticive arrangement under which distinct rict political parties, or at all events members of such parties unite to form a government or ministry. Encyclopedia of the social science, editor-in-Chief Edwrin, R.A. Seligman, Associate Editor Alwin Johnson, Vol- III, Bright Commentators, The macmillan Company, New York, 1963, P- 600
4. इण्टर नेशनल एन साइक्लोपीडिया ऑफ द सोशल साइंसेज, जिल्द 11 पृष्ट 530-31
5. एनसाइक्लोपीडिया आफ सोशल साइंसेज, एडीटर-इन-चीफ एडविन आर.ए. सेलिंगमैन, एसोशियेशन एडीटर, आल्विन जानसन, जिल्द ब्राइट कमेन्टेटर्स द मैकमिलान क., न्यूयान 1963 पृष्ठ 600,605
6. मैरी, थामस, "पोलिटकल पार्टीज इन इण्डया, लिबरल टाइम्स वाल्यू, नं. 1, 2001 पृ. 20
7. मैरी, थामस, "पोलिटकल पार्टीज इन इण्डया, लिबरल टाइम्स वाल्यू नं. 1. 2001 पृ. 20001 पृ. 21
8. डी. एन. सिंह, "भारत में संसदीय लोकतन्त्र: चुनौतियां और संभावनायें। भ.गां. का. विद्यापीठ में राज. वि. विभाग द्वारा 27-28 फरवरी 2001 को आयोजित संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध पत्र।
9. मैरी, थामस, "पोलिटकल पार्टीज इन इण्डया, लिबरल टाइम्स वाल्यू, नं. 1, 2001 पृ. 22
10. थियोडोर कैपलो, ए थ्योरी ऑ कोएलिशन इन द ट्रेड, सोशियोलोजिकल रिव्यू 21 (1956) पृ.- 484-893
11. रामचन्द्र सिंह, भारत में संयुक्त सरकारें: खिंचाव तनाव (उत्तर प्रदेश का अनुभव। 1967 से 1970 तक) शोध प्रबन्ध, राज०वि०,का०हि०वि०वि० 19711।

भारत रूस संबंध के बदलते आयाम

अजय भास्कर

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय पटना

प्रो0 अरविन्द आदित्यराज

प्राध्यापक राजनीति विज्ञान विभाग, कॉलेज ऑफ कॉमर्स आर्ट एण्ड़ साइन्स, पटना

शोध सारः-

वर्तमान समय भारत-रूस के राजनीतिक सम्बन्धों का विश्लेषण करते हुए यह कहा जा सकता हैं कि आर्थिक, सामरिक, सैन्य तकनीकी व सभी क्षेत्रीय व वैश्विक मुद्दे दोनों देशों के राजनीतिक सम्बन्धों के मूल निर्धारक हैं। प्रथम दोनों देशों के मध्य आर्थिक कारक ने सहयोग की व्यापक स्थिति हासिल कर ली है। इसलिए अब दोनों देशों के आर्थिक सम्बन्ध उनके राजनीतिक सम्बन्धों को प्रभावित कर रहे है। दूसरे सामरिक और ऊर्जा दो ऐसे क्षेत्र है, जिन्होने हमेशा ही भारत-रूस सम्बन्धों को निर्धारित किया है। इसलिए वर्तमान समय में भी रूस भारत के लिए सबसे बड़ा हथियार आपूर्तिकर्ता देश है।

मूल शब्दः- राजनीतिक, आर्थिक, साझेदारी, आंतकवाद, लोकतांत्रिक, वैश्विक।

प्रस्तावनाः-

पुतिन के शासनकाल में भारत-रूस सामरिक साझेदारी मजबूत राजनीतिक, कूटनीतिक और आपसी हितों का आदर्श उदाहरण रही है। इसके अलावा आंतकवाद एक ऐसा कारक है जिससे केवल भारत और रूस ही नहीं बल्कि विश्व के अधिकांश देश पीड़ित है। लेकिन यदि हम चेचन्या (रूस) व जम्मू कश्मीर (भारत) की बात करें तो दोनों ही देश आतकवाद के सबसे बडे शिकार हैं। इसलिए आतंकवाद पर दोनों देशों के विचार एक समान है, वैश्विक बहुध्रुवीयता का उद्देश्य भारत व रूस की विदेश नीतियों को प्रभावित करने वाला एक अन्य सामान्य कारक है। इस संदर्भ में यहां अफगानिस्तान, ईराक व ईरान में अमेरिकी हस्तक्षेप के विषय में बताना महत्वपूर्ण हो जाता है। यदि बिना किसी पूर्वाग्रह के इसका विश्लेषण किया जाये तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि संयुक्त राज्य अमेरिका ने किस प्रकार संयुक्त राष्ट्र बैनर के तले विश्व की पुलिसमैन की भूमिका निभानी शुरू कर दी है। वहीं दूसरी ओर भारत व रूस ने लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था का समर्थन किया हैं जहाँ तक पूरे विश्व में लोकतांत्रिक मूल्यों का सवाल है. रूस ने हमेशा संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में वीटो पावर के साथ भारत की स्थायी सदस्यता का समर्थन किया है। इसलिए विभिन्न क्षेत्रीय और वैश्विक मुद्दों पर भारत व रूस स्वयं को एक ही पक्ष में खड़ा पाते हैं। अमेरिकी विदेश नीति में अधिनायकवाद की जो प्रवृत्ति दिखाई देती है. भारत व रूस दोनों ने ही उसके विरूद्ध अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी है और दोनों ही देश संयुक्त राष्ट्र संघ को अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के मामलों को निपटाने के लिए एक उचित मंच के रूप में देखना चाहते हैं। मध्य एशियाई क्षेत्र में भी उनके भू-राजनीतिक और सुरक्षा भी धार्मिक उग्रवाद, आतंकवाद, मादक पदार्थों व छोटे हथियारों की तस्करी आदि के कारण एक समान है। इस प्रकार भारत व रूस के राजनीतिक सम्बन्ध ऐतिहासिक मित्रता के आधार पर अधिक प्रगतिशील प्रतीत होते हैं और दोनों ही देशों का प्रमुख वैश्विक और क्षेत्रीय समस्याओं पर एक समान दृष्टिकोण है।

यदि हम भारत-रूस के बीच आर्थिक व व्यापारिक सम्बन्धों की चर्चा करें तो पूरे विश्लेषण की सहायता से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि द्विपक्षीय व्यापार दोनों देशों के मध्य एक ऐसा क्षेत्र है जिस पर दोनों देशों के नेताओं को तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है। दोनों देशों के मध्य द्विपक्षीय व्यापार की मात्रा बहुत कम है जो एक दशक पहले के 3.5 अरब डॉलर से बढ़कर पिछले वर्ष लगभग 12 अरब डॉलर हो गयी थी, जिसका प्रभाव दोनों देशों रणनीतिक सम्बन्धों पर भी पड़ने की

संभावना है। यद्यपि दोनों देशों की अर्थव्यवस्थाएं निरन्तर प्रतिवर्ष 7-9 प्रतिशत (कोरोना काल से पूर्व) की दर से बढ़ रही थी और दोनों देशों की अर्थव्यवस्थाएं एक दूसरे की पूरक होने के बावजूद भी भारत व रूस के मध्य व्यापार लगभग स्थिर हो गया है जो कि दोनों ही देशों के सम्बन्धों के लिए अच्छा संकेत नहीं है। इसके विपरीत चीन के साथ भारत का व्यापार हाल के वर्षों में बढ़कर लगभग 92 अरब डॉलर हो गया है। इसी तरह चीन के साथ रूस का व्यापार पिछले वर्षों में 110 अरब डॉलर को पार कर गया था जिसे दोनों देशों द्वारा 2024 में 200 अरब डॉलर तक ले जाने का लक्ष्य रखा गया।

हाँलाकि भारत व रूस के मध्य द्विपक्षीय व्यापार को बढ़ाने के लिए सन् 2000 से ही द्विपक्षीय शिखर सम्मेलन आयोजित होते रहे हैं और व्यापार में निरन्तर वृद्धि करना इन शिखर सम्मेलनों का मूलमंत्र रहा है। दोनों देशों ने द्विपक्षीय व्यापार को 2025 तक 30 अरब डॉलर करने का लक्ष्य रखा है। इस तरह के लक्ष्य पहले भी रखे गये थे जो कभी पूरे नहीं हो पाये। यद्यपि द्विपक्षीय व्यापार में आने वाली समस्याओं का समाधान करने के लिए एक संयुक्त अध्ययन समूह का गठन किया गया था। इसमें कोई संदेह नहीं है कि द्विपक्षीय व्यापार में कुछ बाधाएँ पहले भी मौजूद थी और अभी भी हैं। दिसम्बर 2002 में नई दिल्ली में भारत-रूस सम्बन्धों पर एक शिखर सम्मेलन का आयोजन किया गया था जिसमें आर्थिक वैज्ञानिक व तकनीकी सहयोग को मजबूत करने व बढ़ाने के लिये एक संयुक्त घोषणा पत्र जारी किया गया था। इसके अलावा इस सम्मेलन में द्विपक्षीय व्यापार के आदान प्रदान के लिये एक कुशल वीजा व्यवस्था स्थापित करने पर भी सहमति हुई थी परन्तु अभी तक वीजा समस्या का उचित समाधान नहीं हो पाया है।

भारत व रूस के मध्य रक्षा सम्बन्ध अन्य सम्बन्धों की तुलना में सबसे महत्त्वपूर्ण रहे है। यद्यपि सोवियत संघ के विघटन के उपकरणों की आपूर्ति की व्यवस्था में कुछ समस्याएँ उत्पन्न हुई परन्तु शीघ्र ही इसका समाधान कर लिया गया। अक्टूबर 2000 में राष्ट्रपति पुतिन की भारत मात्रा ने अंततः भारत को महत्वूपर्ण रक्षा उपकरणों और हथियारों की आपूर्ति का रास्ता खोल दिया। यद्यपि सोवियत काल की तुलना में भारत रूस के मौजूदा सम्बन्धों में उस काल की गर्माहट का अभाव है और यह सम्बन्ध निम्न प्रकार से एकतरफा प्रतीत होते हैं- रूस से सैन्य आयात व्यापार का प्रमुख भाग गया है, जबकि गैर-सैन्य व्यापार की कुल राशि लगभग 10 मिलियन डॉलर तक ही है। इसके अतिरिक्त भारत लगभग 70 साल के सहयोग के बाद रूस से सैन्य उपकरणों का दूसरा सबसे बड़ा आयातक बना हुआ है। वहीं भारत से रूस या अन्य देशों को बहुत ही अल्प मात्रा में सैन्य उपकरणों का निर्मात हुआ है। रूस द्वारा भारत के साथ हथियारों का संयुक्त विकास और प्रौद्योगिकी का हस्तान्तरण भारत को आत्मनिर्भर बनाने में विफल रहा है। दूसरा रूस के साथ रक्षा सहयोग अब व्यापक अर्थ और महत्व नहीं रखता है। शीत युद्ध के समय 'रक्षा सहयोग' शब्द का एक व्यापक और उपयुक्त अर्थ हुआ करता था, जब अधिकांश पश्चिमी देश भारत को महत्वपूर्ण तकनीक और हथियार देने को तैयार नहीं थे, सोवियत संघ ने उस समय भारत को अत्याधुनिक हथियार और तकनीक प्रदान करके सहयोग किया था। वर्तमान समय में परिस्थितियों बदल चुकी हैं। चीन की तुलना में भारत के पास संयुक्त राज्य अमेरिका, फ्रांस ब्रिटेन और अन्य देशों से सैन्य सामान खरीदने का विकल्प है। ये देश भारत को परिष्कृत हथियार बेचने के लिये तैयार है।

यद्यपि अभी भी रूस भारत को बड़े पैमाने पर रक्षा उपकरणों का निर्यात करता है। तथापि भारत का अन्य देशों के साथ व्यापार बढ़ा है और उसमें विविधता भी आई है। परन्तु भारत का सैन्य क्षेत्र अभी भी रूस पर ही निर्भर है। रूसी सैन्य साजों समान पर भारतीय सेना की तीनों शाखाओं की निर्भरता इतनी अधिक है कि भारत द्वारा अपने रक्षा आयात में विविधता लाने के बढ़ते प्रयासों के बावजूद कुल सैन्य हार्डवेयर का दो-तिहाई से भी अधिक अभी भी रूस से ही आयात किया जाता है। आशा की जा रही है कि आने वाले कुछ और वर्षों में भारत रूसी सैन्य निर्यात पर ही निर्भर रहेगा। यद्यपि जैसे-जैसे प्रतियोगिता बढ़ रही है, इजरायल, फ्रांस, ब्रिटेन और अमेरिका जैसे देशों का हथियारों के इस व्यापार में एक बड़ा हिस्सा मिलने की संभावना है। भारत और अमेरिका के मध्य सुघरते सम्बन्ध भारत-रूस सैन्य सम्बन्धों के लिए एक गम्भीर चुनौती है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि रक्षा खरीद के मामले में आने वाले कुछ दशकों तक रूस भारत के लिये एक प्रमुख भागीदार बना रहेगा। रूस को भी पश्चिमी देशों, इजरायल व तेजी से भारत के आगामी स्वदेशी रक्षा उद्योग के साथ प्रतिस्पर्धा करने के लिये तैयार रहना चाहिए, यह सर्वविदित है कि वर्तमान समय वैश्विक रक्षा बाजार कुछ प्रौद्योगिकियों को छोडकर एक खरीददार बाजार ही है और भारत दुनिया के सबसे बड़े रक्षा खरीददारों में से एक है। इसलिए विश्व के तमाम हथियार निर्यातक देशों के लिये भारत एक बडा बाजार है।

अत: भारत व रूस के मध्य जो भी मतभेद है उन्हें शीघ्र ही दूर करके इस सम्बन्ध को और अधिक मजबूत करने की आवश्यकता है। इसके लिए दोनों देशों की ओर से न केवल सकारात्मक रूख दिखाने की आवश्यकता है बल्कि दोनों देशों को इसके लिये प्रतिबद्धता भी दिखानी होगी।

भारत के रूस साथ सांस्कृतिक सम्बन्ध भी ऐतिहासिक रहे हैं। ये सम्बन्ध 1947 से पूर्व भारत को स्वतंत्रता मिलने से पहले ही विकसित हो गये थे। वास्कोडिगामा के भारत पहुंचने से पहले ही रूसी यात्री अफनासी निकितिन भारत की यात्रा कर चुका था और भारतीय गुजराती व्यापारियों के रूस के अस्त्राखान क्षेत्र में बसने व कोलकाता में रूसी रंगमंच की स्थापना आदि ने रूसियों को भारतीयों के करीब ला दिया था। गेरेसिम लेबेदैव और निकोलस रोरिक जैसे विद्वानों ने भारत की यात्रा की व भारतीय संस्कृति और दर्शन का अध्ययन किया। रूसी साहित्यकारों और विचारकों जैसे लियो टॉलस्टाय और अलेक्जेडर पुश्किन आदि का भारतीय साहित्य व विचारों पर गहरा प्रभाव पड़ा। रूसियों की कई पीढ़ियां भारतीय फिल्में देखते हुये बड़ी हुई है। 1980 के दशक से ही रूसी लोगों में योग के प्रति विशेष रूचि रही है, और योग वहां तेजी से लोकप्रिय हो रहा है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान रूस में भारतीय पर्यटकों और भारत में रूसी पर्यटकों की संख्या में वृद्धि हुई है। दोनों देश एक दूसरे देश के नागरिकों तक आसानी से पहुंच बनाने के लिये कदम उठा रहे हैं।

1989 में स्थापित जवाहरलाल नेहरू सांस्कृतिक केन्द्र, मास्को को रूसी संघ के साथ भारत के सांस्कृतिक सम्बन्धों को बनाये रखने का कार्य सौंपा गया है। यह रूसी संघ में भारतीय संस्कृति का प्रसार करने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन में रूसी विश्वविद्यालयों के साथ निकट सम्बन्ध में काम कर रहा है। इसके अलावा यह भारतीय शिक्षकों के माध्यम से हिन्दी, योग, वेद, संस्कृत, कथक नृत्य, बॉलीवुड नृत्य, भारतीय लोक नृत्य, तबला और हिन्दुस्तानी संगीत में कथाएं संचालित कर रहा है। इसके अतिरिक्त एक आयुष पीठ की भी स्थापना की गयी है। जिसमें रूस की पीपल फ्रेंडशिप युनिवर्सिटी कक्षाएं लेकर और सेमिनार आयोजित करके व प्राचीन भारतीय आयुर्वेद का अध्ययन करके रूस में इसके उपयोग का प्रचार करती है।

2018-19 में भारतीय सांस्कृतिक परिषद (ICCR) नई दिल्ली ने रूस के सांस्कृतिक मंत्रालय की एक शाखा रोसकोंनसर्ट के साथ एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किये थे, जिसमें दोनों देशों के सांस्कृतिक दल एक दूसरे देश की बारी-बारी से यात्रा करते हैं। भारत सरकार द्वारा रूसी नागरिकों को भारत में मानविकी, विज्ञान, आयुर्वेद, नृत्य और संगीत का अध्ययन करने व उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये चार छात्रवृत्ति योजनाएं भी संचालित की जा रही है। रूसी नागरिकों को भारतीय संस्कृति से परिचित कराने के लिये निश्चित समयान्तराल के बाद भारतीय त्यौहारों का आयोजन किया जाता है। इसके अलावा भारतीय संस्कृति दिवस भी आयोजित किये जाते हैं। रूस में कई भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र हैं जहां भारतीय भाषाएं और भारतीय विषय पढ़ाये जाते हैं। 2019 में जवाहरलाल नेहरू सांस्कृतिक केन्द्र ने महात्मा गांधी की 150वीं जयन्ती के अवसर पर महात्मा गांधी के विचारों का प्रसार करने के लिये कई सभाओं का आयोजन किया था।

निष्कर्ष:-

भारत और रूस के आपसी सम्बन्धों को सामरिक क्षेत्र के साथ-साथ व्यापार को और बढ़ाकर संतुलित किया जा सकता है। दोनों देशों के बीच व्यापार अभी भी आठ बिलियन डॉलर के लगभग हैं। इसे बढ़ाकर 2025 में 30 बिलियन डॉलर करने पर जोर दिया गया है। 2014 के बाद दोनों देशों का व्यापार कुछ कम हो गया है। इसे रूस से प्राकृतिक तेल का आयात कर बढ़ाया जा सकता है। रूस इसकी अनदेखी नहीं कर सकता कि हाल के समय में भारत वैश्विक राजनीति में एक महत्वपूर्ण ताकत के तौर पर तेजी से उभरा है। मूलत: भारत और रूस के बीच हितों का कोई टकराव नहीं है, लेकिन अमेरिका के साथ भारत के गहराते सहयोग से रूस प्रसन्न नहीं है। दूसरी ओर भारत इससे सन्तुष्ट नहीं है कि रूस चीन के हितों की परवाह करता दिख रहा है। रूसी विदेश मंत्री के अनुसार रूस-चीन सम्बन्ध इतिहास में आज सबसे मजबूत अवस्था में है। यह स्थिति भारत के हितों के अनुरूप नहीं है। भारत और रूस के बीच जो मतभेद उभरे हैं, उनका समाधान करने का उत्तरदायित्व रूस पर अधिक है। भारत-रूस सम्बन्ध आपसी हित और सम्मान पर आधारित है। रूस भारत का पुराना मित्र है, लेकिन वैश्विक राजनीति की तेजी से बदलती जटिलताओं से सम्बन्धों में कुछ बाधाएँ खड़ी होती दिख रही हैं।

संदर्भ सूची

1. नवभारत टाइम्स. 30 जुलाई, 2020
2. हर्ष वी० पंत "इण्डियन फरिन पोलिसि द मोदी एरा हर आनन्द पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2019 पृष्ठ 46. 47. 48
3. http://foreignolicy.com/2020/10/05/india-quad-alliance- containment.
4. https://www-bbc.com/hindi/international-565123691
5. https://www.aajtak.in/amp/world/storey/russia-india-annual- summit –postponed–mea-and-russia issues-statement-tilf-118129-2020-12-24
6. https://mea-gov.in/press-releases-html/33197/12th+BRICS+Summit
7. https://amarujala.com/amp/india-news/embassy-of-the russian- federation-in-india-says-12th-bric-summit-to-be-held-on- november-17-via-video-conference amp
8. https://www.orfonline.org/hindi/research/russia-brics-chairmanship- the-2020-summit-and-challenges-ahead.
9. https://www.newsnationtv.com/amp/india/news/what-is-shanghai- cooperation-organisation-what-is-sco-what-is-sco-importance-for- india-92029.html.
10. दीपक यादव "चाइना रशिया–इण्डिया रिलेशन इन 21 सेन्चुरी कावेरी बुक्स, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ 120–121
11. https://www.drishtiias.com/hindi/daily-updates/daily-news- editorials/shanghai-cooperation-india
12. लेविना ली, रशियाज इगंजमेंट ऑफ इण्डिया' इयान हॉल (सम्पादक) "द इगेंजमेंट ऑफ इण्डिया" फाउण्डेशन बुक्स, जार्ज टाउन यूनिवर्सिटी प्रेस, वाशिंगठन, डी०सी०, 2015, पृष्ठ 65
13. वर्ल्ड फोकस, जनवरी 2019
14. हर्षवर्धन पंत "भारतीय सुरक्षा एवं विदेश नीति" प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृष्ठ 89–90

राष्ट्रीय आन्दोलन और बिहार के किसान

आशीष कुमार ठाकुर

शोधप्रज्ञ, नेट उत्तीर्ण, इतिहास विभाग, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

सारतत्व

बिहार आंदोलन में किसानों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। स्थायी बन्दोबस्त के द्वारा बिहार में जमींदारों के द्वारा किसानों का आर्थिक शोषण एवं दोहन इस कदर किया गया कि इसका कुल परिणाम किसानों के उत्पीड़न के रूप में उभरा।[1] इन किसानों ने उत्पीड़न से मुक्ति पाने के लिए बिहार में न केवल चम्पारण सत्याग्रह वरन असहयोग आन्दोलन सविनय अवज्ञा आन्दोलन और भारत छोड़ो आन्दोलन में भी इनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इन किसानों ने तो हमेशा आजादी की लड़ाई में अपनी सक्रियता को दिखाई लेकिन कांग्रेस की गलत राजनीति के कारण हमेशा इनका शोषण ही होता रहा।[2] किसानों के खास वर्ग एवं जमींदारों को ही किसान आन्दोलन का लाभ भी मिलता था।[3] बिहार में किसान आन्दोलन के पुरोध स्वामी सहजानंद सरस्वती ने किसान सभा को नवजीवन प्रदान किया। स्वामी जी तथा उनके सहयोगियों ने किसानों में राष्ट्रीयता की भावना को जीवित रखा तथा किसान आन्दोलन को बिल्कुल एक नई दिशा दी, जो बिहार में सर्वाधिक वामपंथ के रूप में उभरा। 1933 से 1935 के बीच में स्वामी सहजानंद सरस्वती ने एक सौ सत्तरह सभाएँ आयोजित की[4] जहाँ किसानों को सम्बोधित किया तथा उनकी आर्थिक समस्याओं को सुलझाने का लक्ष्य भी रखा गया।

शब्दावली: आंदोलन, किसान, जमींदार, आर्थिक शोषण, किसान आन्दोलन, स्वतंत्रता

प्रस्तावना: बिहार प्रदेश किसान सभा की स्थापना 18 नवम्बर 1929 को एक जमींदार समर्थक विधेयक का विरोध करने के लिए कांग्रेस और स्वराज्य दल के इशारे पर हुई थी और कांग्रेस के भविष्य के मुख्यमंत्री श्री कृष्ण सिंह इसके सचिव थे। किन्तु सविनय अवज्ञा आन्दोलन और वर्गीय एकता को देखते हुए इस आन्दोलन को स्थगित कर देना पड़ा।[5] लेकिन बाद में सरकार एवं जमींदार वर्ग ने कुछ किसान नेताओं को अपने प्रश्रय में लेकर कांग्रेस की अनुपस्थिति में इस विधेयक को पास कराना चाहा लेकिन इसमें इन्हें सफलता नहीं मिल पाई। तब तक स्वामी सहजानन्द सरस्वती जेल से निकल चुके थे और बिहार किसान सभा के सभी सभाओं में इस विधेयक का विरोध करना शुरू कर दिए। धीरे-धीरे बिहार में किसान सभा की लोकप्रियता और जनाधार बढ़ने लगी जिसमें समाजवादियों ने भी अपनी सहायता प्रदान की।[6]

बिहार प्रदेश में किसान स्वराज्य के बैनर तले संगठित होकर कार्य करने के लिए तैयार हो गए। किसानों ने खुले तौर पर यह ऐलान किया कि 'कर नहीं दो' और विदेशियों से घृणा करो। 1930 में सविनय किया और चौकीदारी कर वहीं दो अभियान की शुरूआत हुई। अनेक ग्रामीण चौकीदारी कर नहीं देने के लिए तैयार हो गए। यह अभियान सम्पूर्ण बिहार प्रांत में सफल रहा।

किसान आन्दोलन के बढ़ते हुए जनाधर ने कांग्रेस की स्वतंत्रता की लड़ाई को खूब मजबूत किया। अनुग्रह नारायण सिन्हा ने अपनी आत्मकथा में बखूबी इस बात की चर्चा की है कि सविनय अवज्ञा आंदोलन के बाद नैशश्य स्थिति से गुजरी जनता की मनोभावना को किसान आन्दोलन ने मनोबल ऊँचा कर कांग्रेस की झंडा को शिखर पर कायम रखा।[7] बल्कि किसान आन्दोलन के नेताओं ने अपने-आपको कांग्रेस के अन्दर एक संगठन के रूप में मानने लगे।[8]

किसान आन्दोलन को जब कांग्रेस की सहभागिता मिलने लगी तब इस आन्दोलन से सम्बंधित लोगों को खूब मजबूत किया। अनुग्रह नारायण सिन्हा ने अपनी आत्मकथा में बखूबी इस बात की चर्चा किया है कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बारे नैशश्य स्थिति से गुजरी रही जनता की मनोभावना को किसान आन्दोलन ने मनोबल ऊँचा कर कांग्रेस की झंडा को शिखर पर कायम रखा।[7] किसान आन्दोलन के नेताओं ने अपने-आपको कांग्रेस के अन्दर एक संगठन के रूप में मानती रही।[8]

किसान आन्दोलन को जब कांग्रेस की सहभागिता मिलने लगी तब इस आन्दोलन से सम्बंधित लोगों ने बिहार के कोने-कोने में ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ उग्र प्रदर्शन करना प्रारम्भ कर दिया। गोपालगंज जिले में आर्थिक मंदी के समय मूल्यों में गिरावट आने के उपरांत किसानों की दुर्दशा सीमा पार करने लगी, तब आक्रोशित किसानों ने भौरे और कटैया पुलिस थानों पर आक्रमण भी किया। देवरिया अनुमंडल किसान सभा के अध्यक्ष सच्चिदानंद के नेतृत्व में इन जगहों पर आन्दोलन प्रगति पर था।

मई 1931 में जहानाबाद में किसानों का एक सम्मेलन हुआ जहाँ कड़े शब्दों में गया जिले के जमींदारों द्वारा किसानों के दमन की निंदा की गई तथा एक प्रस्ताव पारित कर किसानों की शिकायतों की जांच के लिए एक समिति नियुक्त की गई। सम्मेलन के अध्यक्ष ने गया के जिलाधीश को प्रस्ताव की प्रति भेजकर मालगुजारी में 50 प्रतिशत करने का अनुरोध किया गया।

मार्च 1933 में मधुबनी जिला में प्रान्तीय किसान सभा में किसान सभा की एक औपचारिक प्रति देने के लिए प्रयास किया गया किन्तु दरभंगा राज की साजिश के कारण यह प्रयास असफल रहा। फिर भी एक महीने के भीतर दूसरा प्रान्तीय किसान सभा सम्मेलन बिहटा में आयोजित किया गया है। इसके बाद स्वामी जी किसान सभा के निर्विवाद नेता हो गए। उनके हुंकार और सतत् प्रयास के फलस्वरूप बिहार के किसान बकाश्त लगान में छूट[9] और अंततः जमींदारी उन्मूलन के प्रश्न पर एकजूट होने लगे। 1935 ई. तक किसान सभा के सदस्यों की संख्या बढ़कर 80,000 हो गई। यह बिहार में किसानों का एक अत्यंत ही शक्तिशाली और वामपंथी संगठन बन गया।

पूर्व में 1931 में मुंगेर मुफस्सिल थाने के अंदर बिन्दा दियारे में किसान आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। 1930 ई. तक गंगा शिकस्त जमीन के संबंध में लगान एवं मालगुजारी को कानूनी दॉव-पेंच ब्रिटीश शासकों के द्वारा शुरू किया गया। कालिका प्रसाद सिंह ने मुद्दे को कौंसिल में रखा और अंततः लगान एवं मालगुजारी की दरों में कमी करने का निर्णय लिया गया।[10]

वर्ष 1937-38 में दरभंगा जिला के बंगलावा ग्राम में सन्याल, मुसहर आदि निम्न श्रेणियों के लोगों ने बेगारी के खिलाफ आन्दोलन खड़ा किया। इस आन्दोलन में भी स्वामी जी, रामवृक्ष बेनीपुरी, विशेश्वर प्रसाद सिन्हा, कार्यनन्द शर्मा, मौलाना मंजर रिजवी और सम्पूर्णानंद जी ने आम जनता के मनोबल को प्रोत्साहित किया। इससे पहले दरभंगा जिला में स्वामी विद्यानंद के द्वारा किसानों की समस्या को लेकर सरकार एवं दरभंगा राज के खिलाफ आन्दोलन चलाया गया था। इनमें दरभंगा जिला के बचौर, पारी, जरैहाती तथा मल परगना के किसानों का सम्मेलन भी आयोजित किया। जहाँ किसानों के शोषण की जाँच के लिए एक जाँच आयोग बैठाने के लिए लेफ्टिनेन्ट को तार दिया गया।[11]

1936 ई. में बड़हिया टाल, शेखपुरा में किसान आन्दोलन कार्यानन्द शर्मा ने प्रारम्भ किया। इन दोनों क्षेत्रों में बकास्त जमीन के मुद्दों को लेकर झगड़ा था। कार्यानन्द शर्मा ने शेखपुरा तथा बरबीघा के कई गाँवों का दौरा किया तथा किसानों को संघर्ष के लिए प्रेरित किया। बड़हिया टाल के मामले को जमुई में राजनीति सम्मेलन में सुलझाने के लिए नन्दन कुमार सिंह श्याम प्रसाद सिंह और महंथ सियाराम दास की एक समिति बनी[12] लेकिन इस समस्या का समाधान भी नहीं निकल सका और 1937 में गोदहां में आन्दोलन शुरू हुआ जो किसान और जमींदारों के बीच संघर्ष छिड़ गया और मुकदमा के स्वरूप में बदल गया मुकदमा के दौरान ही समझौता हुआ तथा कुछ जमीन रैयतों को मिली।

4 दिसम्बर 1937 को श्री कृष्ण सिंह ने पटना के बख्तियारपुर के अपने भाषण के दौरान यह कहा कि बकाश्त जमीन पर जबरदस्ती कब्जा करने का समय आ गया है। इसी समय प्रान्तीय बिहार किसान परिषद की बैठक में 'लठ हमारा जिन्दाबाद' का नारा भी दिया गया। बकाश्त के प्रश्न पर किसान आन्दोलन बड़ा उग्र हो गया। बिहार के विभिन्न भागों में वृहत पैमाने पर किसान विद्रोह हुए इस विद्रोह में वामपंथी दल सक्रिय भूमिका निभा रहे थे। बकाश्त जमीन के बन्दोवस्ती के सिलसिले में मुफस्सिल इलाके में मुजफ्फरपुर का एक किसान जब दौरा कर रहा था, तब उसके कान एवं नाक काट डाले गए।

बिहार में भारत छोड़ो आन्दोलन में किसानों ने बड़े पैमाने पर शामिल होकर इसे गति प्रदान की। दरभंगा जिले के जिलाधिकारी ने अपने रपट में लिखा[13] कि 10 अगस्त को सम्पूर्ण जिला में स्कूल एवं कॉलेज के छात्रों ने प्रदर्शन किया। किसानों ने इस जिले के 20 थानों पर आक्रमण किया और 13 पर कब्जा भी किया। रेलगाड़ियों को रोका गया। बेनीपट्टी में रजिस्ट्री कार्यालय को जला दिया गया। कमतौल के रजिस्ट्री कार्यालय पर अधिकार कर लिया गया। मुजफ्फरपुर के बेलसंड

थाना पर 5000 किसानों ने आक्रमण कर अपने कब्जे में ले लिया। हाजीपुर में भीड़ ने मालगोदाम को लूट लिया।[14] इस तरह बिहार के कुछ गाँव में कांग्रेस की समानान्तर सरकार भी गठित कर कर ली और सम्पन्न किसानों से मजदूर वर्ग में परिवर्तित किसानों ने जबरन कर वसूलना शुरू किया।[15] इन किसानों ने कांग्रेस को दरकिनार कर सीधे तौर पर ब्रिटिश सरकार के खिलाफ मोर्चा खोल दिया। जिससे कांग्रेस को अपनी स्थिति को कायम रखने के लिए सोचना पड़ा।

कांग्रेस सरकार ने किसान आन्दोलन पर नियंत्रण डालने के लिए कानूनी उपायों का सहारा लिया। इसने 1947 ई. में बिहार सार्वजनिक व्यवस्था अनुरक्षण अधिनियम पारित कर आन्दोलन पर काबू पाने का प्रयास किया। इस अधिनियम के द्वारा किसानों को परेशान किया गया। कानून का उल्लंघन करने पर मुकदमा चलाया जाता था। केवल दरभंगा जिला में तीन हजार किसानों पर आरोप लगा कर मुकदमा चलाया गया। अनेक मामलों में किसानों पर मिथ्या आरोप लगा कर किसानों को गिरफ्तार किया गया तथा भारतीय दंड संहिता की धारा 107, 144, 188 और 370 के तहत मुकदमा चलाया गया।

निष्कर्ष

राष्ट्रीय आन्दोलन में बिहार के किसानों की अहम भूमिका रही। किसानों ने तो अपना समर्थन देकर भारत को आजादी दिलाई और साम्राज्यवादी सरकार को उखाड़ फेंकने के संकल्प को पूरा किया लेकिन आजादी मिलने के उपरांत भी बिहार के किसानों की आर्थिक स्थिति में उतनी परिवर्तन देखने को नहीं मिलता है जितनी उम्मीद की जाती है। आज भी किसान अपनी दयनीय स्थिति से उबर नहीं पा रहे है। इन किसानों को अंग्रेजी कानून की नीति आज भी किसी न किसी तरह से आंशिक रूप से प्रताड़ित करती रहती है। बिहार जैसे प्रांत में भौगोलिक स्थिति एवं मानसून भी इनके साथ मजाक करती रहती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1) गिरीश मिश्रा - अग्रेरियन प्रोब्लेम ऑफ परमानेंट सेटलमेंट : ए केश स्टडी ऑफ चम्पारण - दिल्ली 1979।
2) अरविन्द एन० दास - अग्रेरियन अनरेस्ट एण्ड सोशियों एकोनोमिक चेंज - 1900- 1980, नई दिल्ली।
3) कौशल किशोर शर्मा - अग्रेरियन मूवमेंटस एण्ड कांग्रेस पॉलिटिक्स, नई दिल्ली 1989 पृ. - 113
4) अवधेश्वर प्रसाद सिंह - सचिव की रिपोर्ट, पटना 1935 पृ. - 24
5) सुमित सरकार - माडर्न इंडिया, दिल्ली 1983 पृ. 340
6) विनय भूषण चौधरी - अग्रेरियन मूवमेंटस इन बंगाल एण्ड बिहार (1919-39)
7) अनुग्रह नारायण सिन्हा - मेरे संस्मरण, पृ. 171
8) कौशल किशोर शर्मा - वही पृ. 114
9) स्वामी सहजानंद सरस्वती - मेरा जीवन संघर्ष
10) नवशक्ति 7 नवम्बर 1936
11) बद्रीनाथ उपाध्याय - मेमोरियल टूल लेफ्टीनेंट गर्वनर ऑफ बिहार एण्ड उड़ीसा
12) नवशक्ति 7 नवम्बर 1936
13) स्टीफेन हनींघम - विश्व इंडिया इन बिहार एण्ड द इस्टर्न यूनाइटेड प्रामिसेज - दरभंगा की रपट।
14) फ्रिडम मूवमेंट ऑफ बिहार पेपर्स, बिहार राज्य अभिलेखाकार, पटना फाइल नं.- 2742
15) फ्रिडम मूवमेंट ऑफ बिहार पेपर्स - फाइल नं. 15/42

भारत में जाति व्यवस्था-उत्पत्ति, विशेषताएं और समस्याएं

शालिनी कुमारी

पीएच.डी. (इतिहास) बी०एन० मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा

सारांश

जाति शब्द स्पेनिश और पुर्तगाली शब्द "कास्टा" से निकला है, जिसका अर्थ है "नस्ल, वंश या नस्ल"। पुर्तगालियों ने आधुनिक अर्थ में कास्टा का इस्तेमाल तब किया जब उन्होंने इसे भारत में 'जाति' कहे जाने वाले वंशानुगत भारतीय सामाजिक समूहों के लिए लागू किया। 'जाति' मूल शब्द 'जन' से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है जन्म लेना। इस प्रकार, जाति का संबंध जन्म से है।

जाति व्यवस्था के बारे में प्रारंभिक लिखित साक्ष्य वेदों में मिलते हैं, जो संस्कृत भाषा के ग्रंथ हैं और जिनकी तिथि 1500 ईसा पूर्व से ही है। वेद हिंदू धर्मग्रंथों का आधार हैं।

"भगवद गीता", जो लगभग 200 ईसा पूर्व से 200 ईसवी तक की है, जाति के महत्व पर जोर देती है। इसके अलावा, उसी युग के मनु या मनुस्मृति के कानून, चार अलग-अलग जातियों या वर्णों के अधिकारों और कर्तव्यों को परिभाषित करते हैं। इस प्रकार, ऐसा लगता है कि हिंदू जाति व्यवस्था 1000 और 200 ईसा पूर्व के बीच किसी समय ठोस रूप से स्थापित होने लगी थी।

एंडरसन और पार्कर के अनुसार, "जाति सामाजिक वर्ग संगठन का वह चरम रूप है जिसमें स्थिति पदानुक्रम में व्यक्तियों की स्थिति वंश और जन्म द्वारा निर्धारित होती है।"

मूल शब्दः नस्ल, वंश या नस्ल, ब्राह्मण, ब्रह्मा, क्षत्रिय, योद्धा, वैश्य, व्यापारी, शूद्र

परिचय

भारत और नेपाल में जाति व्यवस्था की उत्पत्ति पूरी तरह से ज्ञात नहीं है, लेकिन ऐसा लगता है कि जातियों की उत्पत्ति 2,000 साल से भी पहले हुई थी। हिंदू धर्म से जुड़ी इस व्यवस्था के तहत लोगों को उनके व्यवसायों के आधार पर वर्गीकृत किया जाता था।

हालाँकि मूल रूप से जाति व्यक्ति के काम पर निर्भर करती थी, लेकिन जल्द ही यह वंशानुगत हो गई। प्रत्येक व्यक्ति एक अपरिवर्तनीय सामाजिक स्थिति में पैदा हुआ था। चार प्राथमिक जातियाँ हैं ब्राह्मण, पुजारी; क्षत्रिय, योद्धा और कुलीन; वैश्य, किसान, व्यापारी और कारीगर; और शूद्र, किरायेदार किसान और नौकर। कुछ लोग जाति व्यवस्था के बाहर (और नीचे) पैदा हुए थे; उन्हें "अछूत" या दलित- "दबे हुए लोग" कहा जाता था।

भारत में जाति व्यवस्था की उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धांत

पारंपरिक, नस्लीय, राजनीतिक, व्यावसायिक, विकासवादी आदि कई सिद्धांत हैं जो भारत में जाति व्यवस्था को समझाने का प्रयास करते हैं।

1. पारंपरिक सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार जाति व्यवस्था दैवीय उत्पत्ति की है। यह कहता है कि जाति व्यवस्था वर्ण व्यवस्था का ही विस्तार है, जहाँ 4 वर्ण ब्रह्मा के शरीर से उत्पन्न हुए हैं।

पदानुक्रम के शीर्ष पर ब्राह्मण थे जो मुख्य रूप से शिक्षक और बुद्धिजीवी थे और ब्रह्मा के सिर से आए थे। क्षत्रिय, या योद्धा और शासक, उनकी भुजाओं से आए थे। वैश्य, या व्यापारी, उनकी जांघों से बनाए गए थे। सबसे नीचे शूद्र थे, जो ब्रह्मा

के पैरों से आए थे। मुंह उपदेश, शिक्षा आदि के लिए इसके उपयोग को दर्शाता है, भुजाएँ- सुरक्षा, जांघें- खेती या व्यवसाय के लिए, पैर- पूरे शरीर की मदद करते हैं, इसलिए शूद्रों का कर्तव्य सभी अन्य लोगों की सेवा करना है। 4 वर्णों के बीच अंतर्जातीय विवाह के कारण बाद में उपजातियाँ उभरीं।

इस सिद्धांत के समर्थक अपने पक्ष के समर्थन में ऋग्वेद के पुरुषसूक्त, मनुस्मृति आदि का हवाला देते हैं।

2. नस्लीय सिद्धांत

जाति के लिए संस्कृत शब्द वर्ण है जिसका अर्थ रंग है। भारतीय समाज के जातिगत स्तरीकरण की उत्पत्ति चतुर्वर्ण व्यवस्था में हुई थी- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। भारतीय समाजशास्त्री डीएन मजूमदार अपनी पुस्तक, "रेस एंड कल्चर इन इंडिया" में लिखते हैं, जाति व्यवस्था ने भारत में आर्यों के आगमन के बाद अपना जन्म लिया।

ऋग्वेदिक साहित्य आर्य और अनार्यों (दास) के बीच के अंतरों पर बहुत जोर देता है, न केवल उनके रंग-रूप में बल्कि उनकी बोली, धार्मिक प्रथाओं और शारीरिक विशेषताओं में भी।

वैदिक काल में प्रचलित वर्ण व्यवस्था मुख्य रूप से श्रम और व्यवसाय के विभाजन पर आधारित थी। ऋग्वेद में तीन वर्गों, ब्रह्मा, क्षत्र और विश का बार-बार उल्लेख किया गया है। ब्रह्मा और क्षत्र कवि-पुजारी और योद्धा-प्रमुख का प्रतिनिधित्व करते थे। विश में सभी आम लोग शामिल थे। चौथे वर्ग, 'शूद्र' का नाम ऋग्वेद में केवल एक बार आता है। शूद्र वर्ग घरेलू नौकरों का प्रतिनिधित्व करता था।

3. राजनीतिक सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार, जाति व्यवस्था ब्राह्मणों द्वारा स्वयं को सामाजिक पदानुक्रम की सबसे ऊंची सीढ़ी पर रखने के लिए आविष्कृत एक चतुर उपकरण है।

डॉ. घुर्ये कहते हैं, "जाति भारतीय-आर्य संस्कृति की ब्राह्मणवादी संतान है, जो गंगा की भूमि में पली-बढ़ी और फिर भारत के अन्य भागों में स्थानांतरित हो गई।"

ब्राह्मणों ने राजा के आध्यात्मिक गुण की अवधारणा को भी पुजारी या पुरोहित के माध्यम से जोड़ दिया ताकि देश के शासक का समर्थन प्राप्त किया जा सके।

4. व्यावसायिक सिद्धांत

जाति पदानुक्रम व्यवसाय के अनुसार है। जो व्यवसाय बेहतर और सम्मानजनक माने जाते थे, उन्हें करने वाले लोग गंदे व्यवसायों में लगे लोगों से श्रेष्ठ होते थे।

न्यूफील्ड के अनुसार, "केवल कार्य ही भारत में जाति संरचना की उत्पत्ति के लिए जिम्मेदार है।" कार्यात्मक विभेदीकरण के साथ ही व्यावसायिक विभेदीकरण और अनेक उपजातियाँ अस्तित्व में आईं, जैसे लोहार (लोहार), चमार (चर्मकार), तेली (तेल निकालने वाले)।

5. विकास सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार जाति व्यवस्था अचानक या किसी विशेष तिथि पर अस्तित्व में नहीं आई। यह सामाजिक विकास की एक लंबी प्रक्रिया का परिणाम है।

- वंशानुगत व्यवसाय;
- ब्राह्मणों की स्वयं को शुद्ध रखने की इच्छा;
- राज्य पर कठोर एकात्मक नियंत्रण का अभाव;
- कानून और रीति-रिवाज के एक समान मानक को लागू करने में शासकों की अनिच्छा
- 'कर्म' और 'धर्म' सिद्धांत भी जाति व्यवस्था की उत्पत्ति की व्याख्या करते हैं। जहाँ कर्म सिद्धांत का मानना है कि पिछले जन्म में किए गए कर्मों के परिणामस्वरूप व्यक्ति किसी विशेष जाति में जन्म लेता है, वहीं धर्म का सिद्धांत बताता है कि जो व्यक्ति जाति व्यवस्था और जिस जाति से वह संबंधित है, उसके सिद्धांतों को स्वीकार करता है, वह धर्म के अनुसार जीवन जी रहा है। अपने धर्म का पालन करने से व्यक्ति को धनी उच्च जाति में जन्म लेने से छूट मिलती है और उल्लंघन करने पर व्यक्ति को निम्न और गरीब जाति में जन्म मिलता है।

- विशिष्ट परिवार, पूर्वज पूजा और संस्कार भोज के विचार;
- विरोधी संस्कृतियों, विशेषकर पितृसत्तात्मक और मातृसत्तात्मक प्रणालियों का टकराव;
- नस्लों का टकराव, रंग-भेद और विजय का पूर्वाग्रह;
- विभिन्न विजेताओं द्वारा जानबूझकर अपनाई गई आर्थिक और प्रशासनिक नीतियां
- भारतीय प्रायद्वीप का भौगोलिक अलगाव;
- विदेशी आक्रमण;
- ग्रामीण सामाजिक संरचना.

नोट: यह उत्तर-वैदिक काल से है, आर्य और शूद्र का पुराना भेद द्विज और शूद्र के रूप में प्रकट होता है, पहले तीन वर्गों को द्विज (दो बार जन्मे) कहा जाता है क्योंकि उन्हें दीक्षा समारोह से गुजरना पड़ता है जो पुनर्जन्म का प्रतीक है। शूद्र को "एकजाति" (एक बार जन्म लेने वाला) कहा जाता था।

नोट: मौर्य काल के बाद जाति व्यवस्था कठोर आधार पर विकसित हुई। मनुस्मृति के माध्यम से, ब्राह्मणों ने एक बार फिर वर्चस्व को संगठित करने में सफलता प्राप्त की और शूद्रों पर कड़े प्रतिबंध लगाए। मनुस्मृति में उल्लेख किया गया है कि, 'जो शूद्र द्विज पुरुष का अपमान करता है, उसकी जीभ काट दी जाएगी'।

नोट: चीनी विद्वान ह्वेन त्सांग, जो 630 ई. में भारत आए थे, लिखते हैं कि, "ब्राह्मणवाद देश पर हावी था, जाति सामाजिक संरचना पर शासन करती थी और कसाई, सफाईकर्मी जैसे गंदे व्यवसायों में लगे लोगों को शहर के बाहर रहना पड़ता था"।

भारत में जाति व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ

1. समाज का खंडीय विभाजन: समाज कई छोटे-छोटे सामाजिक समूहों में विभाजित है जिन्हें जातियाँ कहा जाता है। इनमें से प्रत्येक जाति एक अच्छी तरह से विकसित सामाजिक समूह है, जिसकी सदस्यता जन्म के आधार पर निर्धारित होती है।
2. पदानुक्रम: लुई ड्यूमॉन्ट के अनुसार, जातियाँ हमें पदानुक्रम का एक मौलिक सामाजिक सिद्धांत सिखाती हैं। इस पदानुक्रम के शीर्ष पर ब्राह्मण जाति है और सबसे नीचे अछूत जाति है। बीच में मध्यवर्ती जातियाँ हैं, जिनकी सापेक्ष स्थिति हमेशा स्पष्ट नहीं होती है।
3. अंतर्विवाह: अंतर्विवाह जाति की मुख्य विशेषता है, यानी किसी जाति या उपजाति के सदस्यों को अपनी ही जाति या उपजाति में विवाह करना चाहिए। अंतर्विवाह के नियम का उल्लंघन करने का मतलब होगा बहिष्कार और जाति का नुकसान। हालाँकि, हाइपरगैमी (महिलाओं द्वारा किसी ऐसे व्यक्ति से विवाह करने की प्रथा जो अधिक धनी या उच्च जाति या सामाजिक स्थिति का हो) और हाइपोगैमी (निम्न सामाजिक स्थिति वाले व्यक्ति से विवाह) भी प्रचलित थे। प्रत्येक जाति में गोत्र बहिर्विवाह भी कायम है। प्रत्येक जाति को गोत्र के आधार पर अलग-अलग छोटी इकाइयों में विभाजित किया जाता है। एक गोत्र के सदस्यों को एक ही पूर्वज का उत्तराधिकारी माना जाता है-इसलिए एक ही गोत्र में विवाह करने पर प्रतिबंध है।
4. वंशानुगत स्थिति और व्यवसाय: 300 ई.पू. में भारत आने वाले यूनानी यात्री मेगस्थनीज ने जाति व्यवस्था की दो विशेषताओं में से एक के रूप में वंशानुगत व्यवसाय का उल्लेख किया है, तथा दूसरी विशेषता है अंतर्विवाह।
5. खाने-पीने पर प्रतिबंध: आमतौर पर एक जाति अपने से सामाजिक स्तर पर नीचे की किसी अन्य जाति से पका हुआ भोजन स्वीकार नहीं करती, क्योंकि इससे उसे दूषित होने का खतरा होता है। भोजन से संबंधित कई तरह की वर्जनाएँ भी थीं। खाना पकाने की वर्जना, जो भोजन पकाने वाले लोगों को परिभाषित करती है। खाने की वर्जना, जो भोजन के समय अपनाई जाने वाली रस्म को निर्धारित करती है। सहभोज की वर्जना, जो उस व्यक्ति से संबंधित है जिसके साथ कोई भोजन कर सकता है। अंत में, वह वर्जना जो बर्तन की प्रकृति (चाहे वह मिट्टी, तांबे या पीतल से बना हो) से संबंधित है जिसका उपयोग कोई पीने या खाना पकाने के लिए कर सकता है। उदाहरण के लिए: उत्तर भारत में ब्राह्मण केवल अपनी जाति से नीचे की कुछ जातियों से ही पक्का भोजन (घी में पकाया हुआ) स्वीकार करते थे। हालाँकि, कोई भी व्यक्ति किसी निम्न जाति द्वारा बनाया गया कच्चा (पानी में पकाया हुआ) भोजन स्वीकार नहीं करता था।

ब्राह्मण द्वारा बनाया गया भोजन सभी को स्वीकार्य है, यही कारण है कि होटल उद्योग में लंबे समय तक ब्राह्मणों का वर्चस्व रहा। हरिजनों को छोड़कर किसी भी जाति को मांस खाने की अनुमति नहीं थी।

6. एक विशेष नाम: हर जाति का एक विशेष नाम होता है जिसके माध्यम से हम उसे पहचान सकते हैं। कभी-कभी, किसी विशेष जाति के साथ कोई व्यवसाय भी जुड़ा होता है।
7. पवित्रता और प्रदूषण की अवधारणा: उच्च जातियों का दावा है कि उनके पास अनुष्ठान, आध्यात्मिक और नस्लीय शुद्धता है जिसे वे प्रदूषण की धारणा के माध्यम से निचली जातियों को दूर रखकर बनाए रखते हैं। प्रदूषण की अवधारणा का अर्थ है कि निचली जाति के व्यक्ति का स्पर्श उच्च जाति के व्यक्ति को प्रदूषित या अपवित्र कर देगा। यहाँ तक कि उसकी छाया भी उच्च जाति के व्यक्ति को प्रदूषित करने के लिए पर्याप्त मानी जाती है।
8. जाति पंचायत: प्रत्येक जाति की स्थिति को न केवल जाति कानूनों द्वारा बल्कि परंपराओं द्वारा भी सावधानीपूर्वक संरक्षित किया जाता है। इन्हें समुदाय द्वारा एक शासी निकाय या बोर्ड के माध्यम से खुले तौर पर लागू किया जाता है जिसे जाति पंचायत कहा जाता है। विभिन्न क्षेत्रों और जातियों में इन पंचायतों को एक विशेष तरीके से नाम दिया गया है जैसे कि मध्य प्रदेश में कुलद्रिया और दक्षिण राजस्थान में जोखिला।

वर्ण बनाम जाति- अंतर

वर्ण	जाति
शाब्दिक रूप से 'वर्ण' का अर्थ रंग होता है और इसकी उत्पत्ति 'वृ' धातु से हुई है जिसका अर्थ है किसी के व्यवसाय का चुनाव। इसलिए वर्ण का संबंध किसी के रंग या व्यवसाय से है।	जाति या जाति शब्द की उत्पत्ति मूल शब्द 'जन' से हुई है जिसका अर्थ है जन्म लेना। इस प्रकार, जाति का संबंध जन्म से है।
वर्ण संख्या में केवल चार हैं अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र	जातियों की संख्या बहुत अधिक है। जातियों में कई उपविभाग भी होते हैं जिन्हें उपजाति कहा जाता है।
यह एक अखिल भारतीय घटना है	क्षेत्रीय विविधताओं की उपस्थिति, जो अधिकतर भाषायी अंतरों पर आधारित होती है।
गतिशीलता पैटर्न जातियों की तुलना में वर्णों में व्यक्ति की प्रतिभा और ज्ञान के साथ अपेक्षाकृत लचीलापन होता है।	यह कठोर सिद्धांतों पर आधारित है और इसमें गतिशीलता कम है। यह एक बंद प्रकार का स्तरीकरण है
वर्ण व्यवस्था सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक अक्षमताओं से मुक्त है	सदस्यों पर कई प्रतिबंध लगाता है। –
वर्ण-वर्ग सहसंबंध अधिकतर सकारात्मक है	जाति-वर्ग सहसंबंध हमेशा सकारात्मक नहीं होता है, विभिन्न समूहों की आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षिक स्थिति के कारण नियुक्ति में भिन्नता हो सकती है।

जाति व्यवस्था के कार्य

1. इसने भारत की पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था को जारी रखा।
2. इसने विभिन्न समुदायों को एक विशिष्ट आजीविका के साधन पर एकाधिकार सुनिश्चित करके उन्हें समायोजित किया है।
3. व्यक्तियों को सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक मान्यता प्रदान की। यह व्यक्ति की जाति ही है जो विवाह में उसकी पसंद को प्रभावित करती है, राज्य-क्लब, अनाथालय और लाभकारी समाज की भूमिका निभाती है। इसके अलावा, यह उसे स्वास्थ्य बीमा लाभ भी प्रदान करता है। यह उसके अंतिम संस्कार की भी व्यवस्था करता है।

4. इसने एक जाति के वंशानुगत व्यवसाय के ज्ञान और कौशल को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित किया है, जिससे संस्कृति के संरक्षण में मदद मिली है और उत्पादकता सुनिश्चित हुई है।
5. जाति व्यक्तियों को उनके समाज की संस्कृति, परम्पराओं, मूल्यों और मानदंडों की शिक्षा देकर समाजीकरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।
6. इसने जजमानी संबंधों के माध्यम से विभिन्न जातियों के बीच अन्योन्याश्रित संपर्क को भी बढ़ावा दिया है। जाति ने एक ट्रेड यूनियन के रूप में कार्य किया और अपने सदस्यों को शोषण से बचाया।
7. राजनीतिक स्थिरता को बढ़ावा दिया गया, क्योंकि जाति व्यवस्था द्वारा क्षत्रियों को आमतौर पर राजनीतिक प्रतिस्पर्धा, संघर्ष और हिंसा से बचाया जाता था।
8. अंतर्विवाह के माध्यम से नस्लीय शुद्धता बनाए रखी।
9. विशेषज्ञता के कारण वस्तुओं का गुणवत्तापूर्ण उत्पादन हुआ और इस प्रकार आर्थिक विकास को बढ़ावा मिला। उदाहरण के लिए: भारत की कई हस्तशिल्प वस्तुओं को इसके कारण अंतर्राष्ट्रीय पहचान मिली।

जाति व्यवस्था की विकृतियाँ

1. जाति व्यवस्था आर्थिक और बौद्धिक उन्नति पर रोक है तथा सामाजिक सुधारों के मार्ग में एक बड़ी बाधा है, क्योंकि यह आर्थिक और बौद्धिक अवसरों को जनसंख्या के एक निश्चित वर्ग तक ही सीमित रखती है।

2. यह श्रम की दक्षता को कमजोर करता है और श्रम, पूंजी और उत्पादक प्रयास की पूर्ण गतिशीलता को रोकता है

3. यह आर्थिक रूप से कमजोर और सामाजिक रूप से निम्न जातियों, विशेषकर अछूतों का शोषण जारी रखता है।

4. इसने बाल-विवाह, विधवा-पुनर्विवाह पर प्रतिबंध, महिलाओं के एकांतवास आदि जैसी प्रथाओं पर जोर देकर महिलाओं पर अनगिनत कष्ट डाले हैं।

5. यह अतीत में क्षत्रियों को राजनीतिक एकाधिकार देकर और वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य में वोट बैंक के रूप में कार्य करके वास्तविक लोकतंत्र का विरोध करता है। ऐसे राजनीतिक दल हैं जो केवल एक जाति का प्रतिनिधित्व करते हैं। उदाहरण के लिए: बीएसपी का गठन कांशीराम ने मुख्य रूप से एससी, एसटी और ओबीसी का प्रतिनिधित्व करने के लिए किया था।

6. यह राष्ट्रीय और सामूहिक चेतना के रास्ते में खड़ा है और एक एकीकृत कारक के बजाय विघटनकारी साबित हुआ है। राजनीति, नौकरियों और शिक्षा में आरक्षण, अंतर-जातीय विवाह आदि में जातिगत संघर्ष व्यापक रूप से प्रचलित हैं। उदाहरण: जाट आरक्षण की मांग, पाटीदार समुदाय द्वारा आंदोलन।

7. इसने धर्म परिवर्तन के लिए गुंजाइश पैदा कर दी है। ऊंची जातियों के अत्याचार के कारण निचली जाति के लोग इस्लाम और ईसाई धर्म में धर्मांतरित हो रहे हैं।

8. जाति व्यवस्था व्यक्ति को जातिगत मानदंडों के अनुसार सख्ती से कार्य करने के लिए बाध्य करके, परिवर्तन का विरोध करके आधुनिकीकरण के मार्ग में बाधा डालती है।

क्या जाति व्यवस्था केवल भारत तक ही सीमित है?

जाति व्यवस्था नेपाल, पाकिस्तान और श्रीलंका जैसे अन्य देशों में भी पाई जाती है। इंडोनेशिया, चीन, कोरिया, यमन और अफ्रीका, यूरोप के कुछ देशों में भी जाति जैसी व्यवस्था पाई जाती है।

लेकिन भारतीय जाति व्यवस्था को बाकी जातियों से अलग करने वाली बात है शुद्धता और अशुद्धता का मूल विषय, जो दुनिया की अन्य समान प्रणालियों में या तो परिधीय है या नगण्य है। यमन में, एक वंशानुगत जाति है, अल-अखदम, जिन्हें बारहमासी मैनुअल श्रमिकों के रूप में रखा जाता है। जापान में बुराकुमिन, मूल रूप से जापानी सामेती युग में बहिष्कृत समुदायों के सदस्य हैं, जिनमें वे लोग शामिल हैं जिनके व्यवसाय को अशुद्ध या मृत्यु से दूषित माना जाता है।

हालाँकि, भारत कुछ मामलों में अद्वितीय है।

1. भारत में सांस्कृतिक निरंतरता रही है जो किसी अन्य सभ्यता में नहीं रही। अन्य सभ्यताओं की प्राचीन प्रणालियाँ, धर्म, संस्कृतियाँ लगभग समाप्त हो चुकी हैं। भारत में इतिहास मौजूद है और यहाँ तक कि बाहरी साम्राज्यों ने भी व्यवस्था को बदलने के बजाय उसे अपना लिया।

2. जाति को आधुनिक धर्म में मिला दिया गया है, जिससे इसे हटाना कठिन हो गया है।
3. भारत ने कई प्रणालियों को अधिक आसानी से एकीकृत किया है। पुर्तगाली/अंग्रेजी में जिसे ष्जातिष् के रूप में जाना जाता है, वह वास्तव में 3 अलग-अलग घटकों से बना है- जाति, जन, वर्ण। जाति एक व्यावसायिक पहचान है। जन एक जातीय पहचान है। वर्ण एक दार्शनिक पहचान है। सदियों से इनका अधिक मजबूती से विलय हुआ है।
4. दुनिया के सबसे परिवर्तनकारी काल में - पिछली तीन शताब्दियों में, भारत ने अपना अधिकांश समय यूरोपीय उपनिवेशवाद के अधीन बिताया। इस प्रकार, भारत ने बदलाव करने में बहुत समय खो दिया। व्यवस्था में अधिकांश परिवर्तन 1950 में ही आए जब भारत एक गणतंत्र बना ।

सैद्धांतिक रूप से संक्षेप में कहें तो, एक सांस्कृतिक घटना के रूप में जाति (अर्थात विचारधारा या मूल्य प्रणाली के रूप में) केवल भारत में पाई जाती है, जबकि जब इसे एक संरचनात्मक घटना के रूप में देखा जाता है, तो यह अन्य समाजों में भी पाई जाती है।

सैद्धांतिक निर्माण के दो स्तरों, यानी सांस्कृतिक और संरचनात्मक, तथा सार्वभौमिक और विशिष्टवादी के बीच अंतर करके जाति के बारे में चार समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण हैं। ये चार दृष्टिकोण सांस्कृतिक-सार्वभौमिक, सांस्कृतिक-विशिष्टवादी, संरचनात्मक-सार्वभौमिक और संरचनात्मक-विशिष्टवादी हैं।

- जाति के संरचनात्मक-विशेषवादी दृष्टिकोण ने यह माना है कि जाति व्यवस्था भारतीय समाज तक ही सीमित है
- संरचनात्मक-सार्वभौमिकतावादी श्रेणी का मानना है कि भारत में जाति, विश्व भर में पाए जाने वाले सामाजिक स्तरीकरण के बंद स्वरूप की एक सामान्य घटना है।
- घुर्ये जैसे समाजशास्त्रियों का तीसरा दृष्टिकोण जो जाति को एक सांस्कृतिक सार्वभौमिक घटना के रूप में मानते हैं, उनका मानना है कि जाति-जैसे सांस्कृतिक स्तरीकरण के आधार अधिकांश पारंपरिक समाजों में पाए जाते हैं। भारत में जाति स्थिति-आधारित सामाजिक स्तरीकरण का एक विशेष रूप है। इस दृष्टिकोण को सबसे पहले मैक्स वेबर ने प्रतिपादित किया था।
- सांस्कृतिक-विशेषवादी दृष्टिकोण लुई ड्यूमॉन्ट का है, जो मानते हैं कि जाति केवल भारत में ही पाई जाती है।

क्या जाति व्यवस्था केवल हिंदू धर्म तक ही सीमित है?

नेपाली बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम, यहूदी धर्म और सिख धर्म जैसे अन्य धर्मों में भी जाति-आधारित मतभेद प्रचलित हैं। लेकिन मुख्य अंतर यह है कि हिंदू धर्म में जाति व्यवस्था का उल्लेख उसके धर्मग्रंथों में है जबकि अन्य धर्मों ने जातिवाद को समाजीकरण या धार्मिक रूपांतरण के एक भाग के रूप में अपनाया है। दूसरे शब्दों में, हिंदू धर्म में जाति व्यवस्था एक धार्मिक संस्था है जबकि अन्य में यह सामाजिक है।

सामान्य नियम के अनुसार, उच्च जातियों के धर्मांतरित लोग अन्य धर्मों में उच्च जातियों के हो गए, जबकि निम्न जातियों के धर्मांतरित लोगों ने निम्न जातियों का पद प्राप्त कर लिया।

- इस्लाम- कुछ उच्च जाति के हिंदू इस्लाम में परिवर्तित हो गए और सल्तनत और मुगल साम्राज्य के शासक समूह का हिस्सा बन गए, जो अरबों, फारसियों और अफगानों के साथ अशरफ के रूप में जाने गए। उनके नीचे मध्य जाति के मुसलमान हैं जिन्हें अजलाफ कहा जाता है, और सबसे कम स्थिति उन लोगों की है जो मुस्लिम हैं।
- ईसाई धर्म- गोवा में, हिंदू धर्म अपनाने वाले लोग ईसाई बामोन बन गए, जबकि क्षत्रिय और वैश्य ईसाई कुलीन बन गए जिन्हें चारदो कहा जाता है। जो वैश्य चारदो जाति में शामिल नहीं हो पाए वे गौड़ो बन गए और शूद्र सुदीर बन गए। दलित जो ईसाई बन गए वे महार और चमार बन गए
- बौद्ध धर्म- कई बौद्ध देशों में जाति व्यवस्था के विभिन्न रूप प्रचलित हैं, मुख्य रूप से श्रीलंका, तिब्बत और जापान में, जहां कसाई, चमड़ा और धातु श्रमिकों और चौकीदारों को कभी-कभी अशुद्ध माना जाता है।
- जैन धर्म- ऐसी जैन जातियाँ हैं जिनमें एक विशेष जाति के सभी सदस्य जैन होते हैं। साथ ही, कई हिंदू जातियों के जैन विभाजन भी हुए हैं।

- सिख धर्म- सिख साहित्य में वर्ण का उल्लेख वरन और 'जाति' का 'जात' के रूप में किया गया है। धर्म के प्रोफेसर एलेनोर नेस्बिट कहते हैं कि वरन को एक वर्ग व्यवस्था के रूप में वर्णित किया गया है, जबकि जात में सिख साहित्य में जाति व्यवस्था की कुछ विशेषताएं हैं। सिखों के सभी गुरुओं ने अपनी जात के भीतर विवाह किया, और उन्होंने अंतर्जातीय विवाह की परंपरा की निंदा या उल्लंघन नहीं किया।

निष्कर्ष

15वीं-16वीं सदी में भारतीय समाज ब्राह्मणी वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत जातियों के मकड़जाल में फंस कर पूरी तरह से बिखर गया था. सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ इसी समय बहुत सारे समाज सुधारक आगे आये. लेकिन ब्राह्मणों ने अपने रक्षक क्षत्रिय शासकों के साथ मिलकर कठोर दमनात्मक करवाई करते हुए कबीर आदि संतो के सामाजिक सुधार आंदोलन को दबाने का काम किया. फिर भी समाज सुधारक संतगण उस ब्राह्मणी वर्ण और जाति व्यवस्था से इतना ज्यादा दुखी थे कि अपने समाज सुधार आंदोलन को उनके बलपूर्वक रोकने के बावजूद नहीं रुके और उस आंदोलन को आगे बढ़ाते गए.

शिक्षा, प्रौद्योगिकी, आधुनिकीकरण और सामान्य सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन के कारण भारत में जाति व्यवस्था में परिवर्तन हो रहा है। निचली जातियों की स्थिति में सामान्य सुधार के बावजूद, भारत को समाज से जाति व्यवस्था की बुराइयों को जड़ से खत्म करने के लिए अभी भी एक लंबा रास्ता तय करना है।

संदर्भ

1. भारतीय सामाजिक व्यवस्था लेखक- राम आहूजा
2. अली, सैयद. "सामूहिक और वैकल्पिक जातीयता: भारत में शहरी मुसलमानों में जाति," समाजशास्त्रीय मेच , खंड 17, संख्या 4, दिसंबर 2002, पृ. 593-620.
3. चंद्रा, रमेश. भारत में जाति व्यवस्था की पहचान और उत्पत्ति. ज्ञान बुक्स, 2005.
4. घुर्ये, जी.एस. भारत में जाति और नस्ल। लोकप्रिय प्रकाशन, 1996।
5. पेरेज, रोजा मारिया. किंग्स एंड अनटचेबल्स: ए स्टडी ऑफ द कास्ट सिस्टम इन वेस्टर्न इंडिया. ओरिएंट ब्लैकस्वान, 2004.
6. रेड्डी, दीपा एस. "जाति की जातीयता," मानवशास्त्रीय त्रैमासिक, खंड 78, संख्या 3, ग्रीष्म 2005, पृ. 543-584.
7. केन, पांडुरंग वामन (1962-1975)। धर्मशास्त्र का इतिहास: (प्राचीन और मध्यकालीन, धार्मिक और नागरिक कानून)। भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट।
8. लाल, के.एस. (1995). मध्यकालीन भारत में अनुसूचित जनजातियों और जातियों का विकास।
9. ली, अलेक्जेंडर (2020), पदानुक्रम से जातीयता तक: बीसवीं सदी के भारत में जाति की राजनीति, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, आईएसबीएन 978-1-108-48990-4
10. चक्रवर्ती, उमा (2 मार्च 1985), "प्राचीन भारत में स्तरीकरण के ऐतिहासिक समाजशास्त्र की ओर: बौद्ध स्रोतों से साक्ष्य", आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 20 (9): 356-360, JSTOR 4374135

छात्रों में शरीरिक भावात्मक, संवेगात्मक एवं अध्यात्मिक स्वास्थ्य का विकास

ज्योति सिंह

(शोध छात्रा) शारीरिक शिक्षा विभाग, महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढवाल विश्वविद्यालय, पौडी गढवाल, उत्तराखण्ड

डॉ० अनुज कुमार

(शोध निर्देशक) महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढवाल विश्वविद्यालय, पौडी गढवाल, उत्तराखण्ड

स्वास्थ्य मनुष्य की सबसे अमूल्य संपत्ति है। (Health is wealth) जो लोग अपने स्वास्थ्य के प्रति सचेत होते हैं वे नीरोग रहते हैं तथा इसके विपरित जो लोग अपने स्वास्थ्य के प्रति सचेत नहीं होते वे अपने स्वास्थ्य को खो देते हैं। पहले समय में स्वास्थ्य को शरीर का सही सलामत या निरोगी अवस्था होना प्रस्तावना ही माना जाता था।

स्वास्थ्य का अर्थ निरोग एवं प्रसन्नचित होना माना जाता था एक आम धारणा होती थी कि स्वास्थ्य बीमारी का अभाव है, लोग हृष्ट-पुष्ट शरीर को स्वस्थ मानते थे और यह शरीर के अंगों (Organs) एवं विभिन्न संस्थानों (Systems) की सामान्य रूप से कार्य करने की स्थिति हैं; परन्तु बदलते समय के अनुसार स्वास्थ्य का अर्थ और भी व्यापक होता चला गया मनोवैज्ञानिकों ने मानव व्यक्ति के तीन मुख्य आधार माने है- शरीर (Body), मन (Mind) तथा आत्मा (Soul)।

मानव एक समाजिक प्राणी है तथा समाज की एक अभिन्न इकाई है। अत: उसे स्वस्थ तभी माना जा सकता है जब उसका शरीर, मन और आत्मा पूर्णतया स्वस्थ हों और इसके साथ उसमें सभी प्रकार के समाजिक गुणों का समावेश हों। सम्पूर्ण स्वास्थ्य वह अवस्था है जो कि मनुष्य को अपना जीवन हर प्रकार से भरपूर तरीके से जीने के योग्य बनाती है। स्वास्थ्य वह शारीरिक, भावात्मक, संवेगात्मक तथा अध्यात्मिक योग्यता है जो हमारे शरीर को लगातार बदलते हालातों के अनुसार ढालने के योग्य बनाती है और जिसका उपयोग शरीर को और अधिक सुदृढ़ बनाने, थकावट का मुकाबला करने की क्षमता विकसित करने के लिए किया जाता है स्वास्थ्य का ज्ञान रखने वाले धीरे-धीरे इस धारणा को अब त्यागते जा रहे है कि स्वास्थ्य सिर्फ बीमारियों का इलाज या इनकी रोकथाम तक ही सीमित है। उनका स्वास्थ्य के प्रति जो संकल्प अब है उसमें इस बात पर जोर दिया जाता है कि अपने स्वास्थ्य एवं कुशल-क्षेम (Health and Wellk-being) का ध्यान रखना व्यक्ति की अपनी जिम्मेदारी है क्योंकि भगवान ने हमें एकमात्र शरीर दिया है और इसकी देखभाल करना बहुत जरूरी है। (We have only one body and it must be cared lovingly) जीवन में शिक्षा, खुशी, सम्पन्नता, सफलता आदि को प्राप्त करने तथा एक अच्छा नागरिक बनने के लिए अच्छा स्वास्थ्य बुनियादी आवश्यकता है।

स्वास्थ्य का तात्पर्य शरीर की उस अवस्था से है जिसमें शरीर के सभी अंग-प्रत्यंग, मन और बुद्धि प्राकृतिक रूप से कार्य करें। उनमें आपसी तालमेल हो और जिससे मनुष्य अपने आप को शारीरिक और मानसिक कार्यकरने के लिए सक्षम समझें। शरीर और मन का अटूट संबंध है। स्वस्थ शरीर के साथ-साथ मानसिक व भावात्मक स्वास्थ्य भी आवश्यक है।

स्वास्थ्य की परिभाषाएँ (Definitions of Health)

प्रत्येक दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक अथवा अन्य जितने भी स्वास्थ्य संगठन है प्रत्येक ने स्वास्थ्य को पृथक्पृथक् परिभाषित किया है। उक्त सन्दर्भ में हम स्वास्थ्य की विभिन्न परिभाषाओं का हवलोकन करेंगे-

- विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.0.1997) के अनुसार, "स्वास्थ्य केवल रोग अथवा असमर्थता या अपंगता की अनुपस्थिति ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण, शारीरिक, मानसिक तथा समाजिक सम्पन्नता की स्थिति है। ("Health is a state of complete physical] mental and social well being and not merely the absence of disease or infirmity")
- जे. एफ. विलियम (J-F- Williams) के शब्दों में, स्वास्थ्य जीवन का वह गुण है जिसके द्वारा हम अच्छे से अच्छा जीवन व्यतीत कर सकें तथा दूसरों के अधिक से अधिक काम आ सकें। ("Health is that quality of life which enables a person to

live most and serve best")

- वॉल्टमर एवं इसलिंगर (VoltmerAnd Esslinger) के शब्दों में, "स्वास्थ्य वह मानसिक एवं शारीरिक स्थिति है जिसमें व्यक्ति अपने शरीर के विभिन्न अवयवों का आंतारिक रूप से तथाअपने वातावरण से बाहा रूप से, पूर्ण सांमजस्य स्थापित कर सके। ("Heath is considered as that condition, mental and physical, in which the individual is functionally well adjusted internally as concerns all body parts and externally as concem his environment")
- ओबर टयुफर के अनुसार, "स्वास्थ्य वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुरूप कार्य करने में सक्षम होता है।"
- डॉ. थॉमस वुड का कहना है "स्वास्थ्य उन सभी अनुभवों का योग है जो हमारे जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित करते है।"

स्वास्थ्य के पक्ष (Aspects of Health)

स्वास्थ्य के विभिन्न पक्ष है जैसे शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, सामाजिक स्वास्थ्य, भावात्मक स्वास्थ्य तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्य। स्वास्थ्य के ये सभी पक्ष एक दूसरे पर निर्भर होते है। जब भी हम सम्पूर्ण स्वास्थ्य के बारे में बात करते है तो स्वास्थ्य के इन समग्र पक्षों के बिना स्वास्थ्य का अर्थ अधूरा ही माना जायेगा। स्वास्थ्य के इन विभिन्न पक्षों का संक्षित विवरण निम्नलिखित है

- शारीरिक पक्ष (PhysicalAspect)– शारीरिक पक्ष का संबंध शरीर के बाहरी व आंतरिक तौर पर सम्पूर्णता के साथ काम करने से है। शारीरिक पक्ष से अभिप्राय है शारीरिक प्रणालियों व अंगों का ठीक एवं सुचारू ढंग से कार्य करना तथा व्यक्ति का निरोग एवं हृष्टपुष्ट होना। इसके अलावा दैनिक जीवन के कार्यो को सुचारू रूप से करने के लिए शारीरिक योग्यता का होना भी बहुत जरूरी है। शारीरिक स्वस्थता व्यक्ति को अच्छी तरह से जीवनयापन करने कार्य करने और उसमें आनन्द लेने तथा सेवा कार्य करने योग्य बनाती है।
- मानसिक पक्ष (MentalAspect)– मानसिक स्वास्थ्य किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व व भावनात्मक दृष्टिकोण का संतुलित विकास है जो उसे अपने आस पास के लोगों के साथ सौहार्दपूर्ण ढंग से रहना सिखाता है। अच्छा स्वास्थ्य शरीर और मन की स्थिति पर निर्भर करता है ये दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते है। कोई भी व्यक्ति शारीरिक रूप से कितना भी स्वस्थ्य क्यों न हो परन्तु यदि वह मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं है तो उसे स्वस्थ नहीं माना जायेगा। मानसिक स्वास्थ्य मन अर्थात संवेगों, सहजात वृत्तियों और प्रवृतियों को समझने में हमारी सहायता करता है इससे हमें दूसरे के संवेगा विशेषताओं और व्यवहारों को भी समझने में भी सहायता मिलती है। मानसिक तौर से तंदरूस्त या स्वस्थ व्यक्ति आंतरिक खींचतान से मुक्त होता है, अपनी कमियों को पहचानता एवं स्वीकार करता है, अपनी जिम्मेदारियाँ निभाता है तथा जीवन की आवश्यकताओं से निपटने में समर्थ होता है। उसमें जीवन जीने को चाह होती है।
- सामाजिक पक्ष (SocialAspect– सामाजिक रूप से स्वस्थ कहलाने और होने के लिए मनुष्य को अपने परिवार, समुदाय और समाज के लिए सकारात्मक योगदान देना पड़ता है। जो माता पिता अपने उत्तरदायित्वों को सफलतापूर्वक निभातेहै वे सामाजिक रूप से स्वस्थ कहलाते है, जो इस विषय में दोषी, लापरवाह या असफल पाये जाते है, उन माता पिता को सामाजिक बुराई या अभिशाप समझा जाता है। इसलिए किसी भी मनुष्य के सामाजिक स्वास्थ्य के स्तर का मापन उसकी व्यक्तिगत भावनाओं के आधार पर नहीं होता है, अपितु दूसरों की खुशहाली या सम्पन्नता पर पड़े प्रभावों के मापदण्ड से मूल्यांकित किया जाता है। डोनाल्ड के अनुसार, "व्यक्ति के अपने आप व औरों के साथ संबंध कितने प्रगाढ या किस किस्म केहै और भाइचारें के कामकाजों या गतिविधियों में वह किस हद तक शामिल होता है, जैसे तत्व ही उसके समाजिक स्वास्थ्य को परिभाषित करते है।" हर व्यक्ति की कुछ बुनियादी जरूरतें होती हैं। इनमें अपने से दूसरों के साथ लगाव, मान्यता, स्वाभिमान व स्नेह आदि तत्व शमिल है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति सामाजिक स्वास्थ्य को प्रोत्साहित करती है। सामाजिक तौर पर स्वस्थ व्यक्ति के अन्दर नेकनियती, ईमानदारी, स्वार्थहीनता, रहमदिली, सहयोग,

न्याय भावना जैसे गुण आवश्यक समझे जाते है। सामाजिक स्वास्थ्य व्यक्ति के अच्छे आचरण में अभिव्यक्त होता है।

- भावात्मक पक्ष (EmotionalAspects)- अपने व्यवहार, दृष्टिकोण व अपने कार्यों द्वारा जो वातावरण हम तैयार करते है उसे भावात्मक वातावरण कहा जाता है, यह वातावरण व्यक्ति के व्यक्तित्व पर असर डालता है भावात्मक स्वास्थ्य से अभिप्राय है हमें अपनी भावनाओं पर नियंत्रण होना चाहिए। किसी व्यक्ति को भावात्मक तौर पर स्वस्थ तभी कहा जा सकता है जब उसकी भावनाएं सकारात्मक हों और उन पर उसका पूर्ण नियंत्रण हो।
- आध्यात्मिक पक्ष (SpiritualAspect)- आध्यात्मिक स्वास्थ्य से अभिप्राय है व्यक्ति के व्यक्तित्व का वह हिस्सा जिस की ओर से जिन्दगी का मकसद व अर्थ जानने का प्रयत्न किया जाता है मनुष्य जीवन में उतार चढ़ाव आते रहते है उस दौरान आध्यात्मिक पक्ष उसे संयमित जीवन जीने तथा सही निर्णय लेने में मार्गदर्शन करता है। इससे स्वयं की समझ इसका आशय है कि मैं और मेरी शरीर की समझ दोनों की आवश्यकतायें अलग-अलग है। इसकी समझ विकसित होना।

स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Influencing Health)

स्वास्थ्य व्यक्ति की अपनी ही जिम्मेदारी है। इसकी अच्छी प्रकार से तथा समय पर देखभाल करना व्यक्ति के लिए किसी बड़े पुरस्कार से कम नहीं है तथा इसके प्रति लापरवाही सजा के रूप में प्राप्त होती है स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारकों को सकारात्मक कारक जो स्वास्थ्य को उत्तम स्वास्थ्य की ओर तथा नकारात्मक कारक जो कि स्वास्थ्य को शून्य दिशा की ओर ले जाते है। स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित है।

- व्यक्तिगत कारक (च्मतेवदंस थ्ंबजवते)- एक व्यक्ति को सम्पन्न एवं समृद्ध जीवन जीने के लिए अपने स्वास्थ्य कार्यक्रम में निम्नलिखित दिनचर्या को शामिल करना चाहिए-

I. दैनिक व्यायाम करना चाहिए (कम से कम 30 मिनट प्रतिदिन)।
II. प्रतिदिन स्नान करना चाहिए। तथा व्यक्तिगत स्वास्थ्य पर ध्यान देवें।
III. दैनिक जीवन के कार्यों को करते समय सही शारीरिक आसन बनाए रखना चाहिए।
IV. नियमित रूप से संतुलित तथा पौष्टिक आहार लेना चाहिए।
V. उपयुक्त नींद, आराम तथा मनोरंजन।
VI. जीवन के प्रति सकारात्मक मानसिक दृष्टिकोण।

- अनुवंशिकता/वशांनुक्रम (Heredity Factors)- वह गुण जो माता-पिता से उनके बच्चों में चले जाते है इन्हे हम 'जीन' (Genes) कहते है इन्हें जन्म के पश्चात् बदला नहीं जा सकता। इन गुणों को अनुवंशिकता कहा जाता है मंदबुद्धि, डायबटीज, एड्स, मेटाबोलिज्म में खराबी, उच्च रक्त चाप, इत्यादि ऐसे रोग है जो साधारणतयः माता-पिता से बच्चों में स्थानांतरित हो जाते है। अच्छी अनुवंशिकता बच्चे को सुदृढ शरीर तथा अच्छा मस्तिष्क प्रदान करती है, जबकि एक कमजोर अनुवंशिकता शारीरिक विकारों तथा रोगों का कारण बनती है।
- वातावरण (Environment)- बच्चा गर्भधारण के पश्चात से ही वातावरण से प्रभावित होना शुरू हो जाता है यह एक सच्चाई है कि इस संसार में एक बच्चे के शारीरिक, मानसिक तथा समाजिक पक्षों को वातावरण पूरी तरह से प्रभावित करता है। वातावरण में एक बच्चे का पारिवारिक समूह, व्यवसाय, दोस्त तथा समाज आदि सभी शामिल है। वातावरण को दो भागों में विभाजित किया गया है-

1. आंतरिक वातावरण- इसमें मनुष्य के शरीर का तापमान, विभिन्न प्रणालियों के सामान्य कार्य, उत्सर्जन प्रक्रिया, रक्त, स्वास्थ्य तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता आदि शामिल है।
2. बाहरी वातावरण- इसके अन्तगत, साफ सुथरें मौसम के अनुकूल कपड़े, घर, स्कूल, सड़कें, शुद्ध पानी की उपलब्धता, पौष्टिक खाद्य सामग्री, व्यवसाय, कार्य करने के स्थान का माहौल आदि आते है।

- सामाजिक, सांस्कृतिक कारक (Social, Cultrual Factros)- स्वास्थ्य शिक्षा के सिद्धांत जीवन को सामाजिक तथा सांस्कृतिक तरीके से जीना सिखाते है। स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा के प्रति व्यक्ति का दृष्टिकोण उसकी स्थिति तथा पृष्ठभूमि पर

निर्भर करता है। अंधविश्वास, परम्पराएँ. रीतिरिवाज, अच्छी आदते, खाना पकाने के तरीके, बच्चों का पालन पोषण, जनसंख्या, शहरीकरण, परिवारका आकार, धार्मिक मान्यताएँ, आर्थिक स्थिति, खर्च करने की क्षमता आदि हमारे देश भारत में व्यक्ति केस्वास्थ्य को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

- मानसिक मनोवृत्ति (MentalAttitude)– अपने स्वास्थ्य के प्रति सकारात्मक रवैया व्यक्ति के जीवन में उत्साह भर देता है तथा स्वास्थ्य को ओर बेहतर बनाने में सहायक होता है। दूसरी तरफ नकारात्मक रवैया, विनाश, हताशा, बैचेनी तथा खराब सेहत की तरफ ले जाता है। एक अच्छा और स्वस्थ जीवन व्यतीत करने का ढंग सदैव व्यक्ति में अच्छी आदतों का विकास करता है। अपर्याप्त नींद, अनियमित दिनचर्या, नशीले पदार्थों का सेवन, आराम न करना, पोषक तत्वों की कमी, जीवन की भाग दौड़ तथा मोटापा आदि कुछ कारक है जो व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करते है।

स्वास्थ्य/कुशल-क्षेम की संकल्पना (Concept of Well Being)

कुशल–क्षेम किसी व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, भावनात्मक, अध्यात्मिक और सौन्दर्यपरक स्वास्थ्य का प्रदर्शक होता है। इस प्रकार कुशल क्षेम किसी व्यक्ति के पर्याप्त स्वस्थता आध्यात्मिकता, समुचित पोषण, तनाव मुक्ति, धूम्रपान निषेध, एल्कोहल और ड्रग उपयोग न करना, रोग निदान व स्वास्थ्य शिक्षा नियमित शारीरिक जांच को लेकर पर्यावरणीय सहयोग को प्रकट करता है। कुशल–क्षेम को शरीर की अच्छी से अच्छी क्रिया करने तथा वातावरण में सृजनात्मक रूप से ढल जाने के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो पूर्ण व्यक्ति को शामिल करता है। शारीरिक तथा मानसिक रूप से स्वस्थ होने की दशा को कुशलक्षेम कहा जाता है।

स्वास्थ्य एवं कुशल-क्षेम का महत्व (Importance of HealthAnd Well Being)

मनुष्य के जीवन में स्वास्थ्य एवं कुशल–क्षेम का महत्वपूर्ण स्थान है। स्वास्थ्य ही धन है (Health is wealth)। यह कहावत स्वास्थ्य के महत्व को प्रकाशित करती है, जिसका एकमात्र भाव यह है, यदि हम स्वस्थ है तो धन कमा सकते है, किन्तु यह जरूरी नहीं कि यदि हम धनी हो तो स्वस्थ भी होगें स्वास्थ्य वास्तव में शिक्षा, खुशी, सफलता, अच्छे नागरिक बनने एवं आनन्दमय जीवन की कुंजी है। अच्छे स्वास्थ्य के बिना मनुष्य अपनी पूरी क्षमता से कोई कार्य नहीं कर सकता। परिणामस्वरूम वह समाज की एक उपयोगी इकाई बनकर भी उस पर एक प्रकार का बोझ बन जाता है स्वस्थ मनुष्य समाज का आधार होता है। वह न केवल स्वयं हृष्ट–पुष्ट, सुन्दर, प्रसन्नचित व परिश्रमी होगा अपितु एक अच्छा पिता–माता, अच्छा अभिभावक, अच्छा शिक्षक, अच्छा नागरिक बन सकता है।

स्वास्थ्य के महत्व को हम एक और दृष्टि से भी देख सकते है और वह है अपने देशवासियों को स्वस्थ रखकर अस्पतालों के निर्माण तथा चिकित्सा के विभिन्न साधनों पर खर्च होने वाले धन को बचाकर देश की प्रगति के लिए अन्य दिशाओं एवं मदों में खर्च किया जा सकता है इस प्रकार की विचारधारा विदेशों, विशेषकर पश्चिमी देशों में बहुत प्रबल है। वे "Prevention is better than cure"– अर्थात "इलाज से बचाव अच्छा है" के सिद्धांत पर चलते है और यही सिद्धांत उनकी प्रगति का मूल आधार भी है। अत: स्वास्थ्य के महत्व को ध्यान में रखकर हमें व्यक्तिगत स्वास्थ्य व समाजिक स्वास्थ्य के सभी संभव उपाय करने चाहिए।

बेकान के अनुसार, "स्वस्थ शरीर आत्मा का अतिथिग्रह है और दुर्बल तथा रोगी शरीर आत्मा का काराग्रह है।" जो व्यक्ति शारीरिक, मानसिक और समाजिक दृष्टि से स्वस्थ है वही व्यक्ति शारीरिक रूप से हष्टपुष्ट होने के कारण जीवन शक्ति से पूर्ण, भावात्मक, संवेगात्मक, अध्यात्मिक, रूप से सहनशील एवं चिन्तारहित होता है और समाजिक दृष्टि से सहयोगी, परोपकारी, निस्वार्थी तथा दूसरों का सम्मान करने वाला होता है। वह अपने जीवन को तो सुखमय एवं आनन्द से पूर्ण बनाता ही है, साथ ही सुखी जीवन व्यतीत करते हुए वह समाज और राष्ट्र को भी अमूल्य योगदान दे सकता है इस प्रकार से एक स्वस्थ व्यक्ति ही राष्ट्र का निर्माण, राष्ट्र का विकास, राष्ट्र की प्रगति और उन्नति में कुशलतापूर्वक अपना सहयोग दे सकता है।

स्वास्थ्य के निर्धारक (Determinants of Health)

अनेकों ऐसे कारक है जो एक साथ मिलकर व्यक्ति तथा समुदाय के स्वास्थ्य को प्रभावित करते है। लोगों का स्वास्थ्य

कैसा है यह उनके वातावरण एवं प्रभावित करते है। लोगों का स्वास्थ्य कैसा है यह उनके वातातरण एवं परिस्थितियों पर निर्भर करता है जिसमें वह रहते है इसमें अनेक कारक जैसे हमारा वातावरण, आनुवंशिक, आर्थिक स्थिति, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं, साफ सफाई, हमारे पारस्परिक सम्बंध आदि हमारे स्वास्थ्य के स्तर को निर्धारित करते है। स्वास्थ्य के कुछ महत्वपूर्ण निर्धारकों का उल्लेख नीचे दिया गया है।

- भोजन (Food)- भोजन का हमारे जीवन तथा स्वास्थ्य पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है कहा गया है कि जैसा खाओगे अन्न वैसा होगा मन हमारा खान-पान हमारे विचारों को प्रभावित करता है तथा विचारों से हमारा व्यवहार प्रभावित होता है। अपने शरीर को स्वस्थ रखने के लिए भोजन सम्बंधी कुछ बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

I. सर्वप्रथम इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि भोजन संतुलित व पौष्टिक हो।

II. दिन में 3 या 4 बार से अधिक भोजन नहीं करना चाहिए।

III. प्रत्येक बार भोजन में कम से कम 4 घण्टे का अन्तर होना चाहिए। यदि संभव हो सके तो भोजन करने का समय निश्चित कर लेना चाहिए।

IV. भूख लगने पर ही भोजन करना स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होता है तथा भूख से ज्यादा भोजन नहीं करना चाहिए।

V. भोजन करते समय पानी नहीं पीना चाहिए, भोजन चबा चबाकर खाना चाहिए।

VI. भोजन करते समय अपने चित्त को शांत रखना चाहिए। भोजन करते समय ज्यादा बातें नहीं करनी चाहिए तथा भोजन करने में जल्दी भी नहीं करनी चाहिए।

VII. भोजन बच्चों के वृद्धि और विकास के लिए बुनियादी जरूरत है। अपर्याप्त भोजन बच्चों के वृद्धि और

VIII. विकास को प्रभावित कर सकता है।

- स्थान (Location)- व्यक्ति जिस स्थान पर रहता वह भी उसके स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। वर्तमान समय में शहरीकरण के कारण अनेको व्यक्तिगत स्वास्थ्य समस्याएं उत्पन्न हुई है। जनसंख्या ज्यादा बढ़ने से लोगों को स्वच्छ पीने का पानी, साफ सफाई, उपयुक्त प्रकाश, खाने पीने की वस्तुओं की शुद्धता, अच्छे कपड़े, रहनेके लिए उपयुक्त जगह आदि मूलभूत सुविधाएँ बहुत सारे लोगों को उपलब्ध नहीं हो पाती जिसके कारणअनेक प्रकार के संक्रामक रोग, दुर्घटनाएं, आपसी झगड़ों की वजह से चोट लगना, या मृत्यु होना आदि पारिस्थितिक संम्बधी विपदाएँ आती रहती है जिसके कि व्यक्ति का स्वास्थ्य बहुत प्रभावित होता है।
- स्वास्थ्य सेवाएँ (Hlealth Services)- स्वास्थ्य सेवाएँ एक व्यक्ति के स्वास्थ्य का मूल्यांकन करती है। स्वास्थ्य सेवाएं स्वास्थ्य कार्यक्रम का महत्वपूर्ण अंग है। जिसका कार्य स्वास्थ्य का मूल्यांकन करना, मार्गदर्शन करना, रोगों की जांच करना, प्राथमिक चिकित्सा, आपातकालीन सेवाएं, मिड -डे -मील, टीकाकरण तथा उपचारात्मक उपाय करना है। स्वास्थ्य सेवाओं का उद्देश्य एक व्यक्ति के स्वास्थ्य में सुधार लाना तथा उसे अच्छा बनाएं रखना है।
- साफ सफाई (Sanitation)- लोगों के स्वास्थ्य की रक्षा तथा सुधार के आवश्यक उपायों में से साफ- सफाई एक महत्वपूर्ण उपाय है। इसके अन्तर्तगत मनुष्य और पशुओं के अपशिष्ट का सही निपटारा, खुले स्थान पर शोच न करना,शौचालयों का उचित उपयोग, गन्दगी न फैलाना आदि को बढ़ावा दिया जाता है। नागरिकों को स्वयं के स्वास्थ्य के साथ-साथ दूसरों के स्वास्थ्य की रक्षा करने के लाने में जागरूक करना चाहिए।

निष्कर्षत: जीवन की कला में पारंगत होने के लिये एक नहीं अनेक ढंग है। किसी भी ढंग, पद्धति या रास्ते में यात्रा करे, मंजिल एक ही है। पद्धतियाँ भिन्न-भिन्न है। किन्तु लक्ष्य एक है। पद्धतियों को देखकर भिन्न-भिन्न लक्ष्यों की कल्पना करना भ्रामक है। इस भ्रम के वशीभूत होकर ही बहुत से लोग शारीरिक शिक्षा के अर्थ को बहुत ही संकुचित कर देते है उनके विचार में शारीरिक पुष्टता और सौष्ठव को प्राप्त करना ही शारीरिक शिक्षा का उद्देश्य है आज ही नही. प्राचीन काल में इस भ्रामक दृष्टिकोण का खण्डन किया गया था और स्पष्ट किया गया था कि आसनो, बन्धो और मुद्राओं से शारीरिक ही नही मानसिक और आत्मिक विकास सम्भव है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. Neil, R; Mellalieu, S. D. & Hanton , S. (2006) Psychological kills usage and the comptine anxiety it response as a function and of kill level in rugby

Union journal of sport, science and medicine, 5, 415-423
2. Smith, R.E., Smoll, F. l.., & Ptacek, J. T. (1990) measurements ande correlates o sport-specific cognitive and somatic trait amxiety . Anxiety Research, 2, 263-280.
3. Kirby, R. J. & Liu J. (1990) Precompetion anxiety in Chinese athletes. Perceptual and Motor Skills. 88, 297-303 Sport Psychologist, 8, 58-72 (1994)
4. Medail Science in Sport and Exercise, 23, s 119
5. Development and Validation of the Competitive State Anxiety Inventory-2 (CSAI-2) inr. martens
6. Effact of 6 week yagasnas training on agility and muscular strength in sportsmen. Vol-II 72-74
7. The effect of imagery on Female college swimmers percepation of anxiety. The sport Psychologist, 13, 458-469
8. The Sport Psychologist, 12, 169-179
9. The content of precompetitive state anxiety in top and lowe level of female gymnasts . Anxiety, Stress and coping: An International Journal 9, 19-31
10. Journal of Sport Psychology, 10, 45-61
11. Sport Psychology : An analysis of Athletic Behavior, Movement Publications, Lthaca, NY 236-249
12. State Trait anxiety research on sportsin the USSR. In C. D. Spielberger & R. Diaz (Eds.), Cross-cultural Anxiety (Vol-3), Hemisphere, Washington, D.C., 45-64
13. Stress and performance in Sport, 81-106

स्थानीय स्वशासन एवं ग्रामीण विकास

मनोज कुमार

शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो० अनुराधा अग्रवाल

शोध पर्यवेक्षक, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सारांश

भारत में पंचायतीराज की अवधारणा बहुत प्राचीन है। यहां प्राचीन संस्थाओं से सम्बन्धित अवधारणा को ही परिवर्तित स्वरूप में प्रस्तुत किया गया है। 'पंचायतीराज' शब्द का अस्तित्व स्वतन्त्र भारत में श्री बलवन्तराय गोपाल जी मेहता के 'लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण' प्रतिवेदन से उदय हुआ, शाब्दिक दृष्टि से पंचायतीराज शब्द हिन्दी भाषा के दो शब्दों 'पंचायत' और 'राज' से मिलकर बना है जिसका संयुक्त अर्थ होता है पांच जनप्रतिनिधियों का शासन। भारत के प्राचीन साहित्यिक ग्रन्थों में भी पंचायत अथवा 'पंचायती' शब्द संस्कृत भाषा के 'पंचायतन' शब्द से उद्भूत हुआ है। संस्कृत भाषा ग्रन्थों के अनुसार किसी आध्यात्मिक पुरूष सहित पांच पुरुषों के समूह अथवा वर्ग को पंचायतन् के नाम से संबोधित किया जाता था। परन्तु शनैः शनैः पंचायत की इस आध्यात्मिकतायुक्त अवधारणा में परिवर्तन होता गया और वर्तमान में पंचायत की अवधारणा का अभिप्राय इस प्रकार की निर्वाचित सभा से है जिसकी सदस्य संख्या प्रधान सहित पांच होती है और जो स्थानीय स्तर के विवादों को हल कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। गांधी जी ने भी पंचायत शब्द की व्यख्या करते हुए लिखा है कि,

'पंचायत' शब्द का शाब्दिक अर्थ ग्राम निवासियों द्वारा चयनित पांच जनप्रतिनिधियों की सभा से है। हमारे देश में पंच परमेश्वर यानि की पांच व्यक्तियों द्वारा किया गया कार्य व निर्णय, परमेश्वर की बात के बराबर है, का प्राचीन काल से महत्व रहा है। यहां के ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायत व्यवस्था संस्कृति की धरोहर के रूप में जानी पहचानी जाती है। स्थानीय लोगों के समूह जिसमें पांच व्यक्तियों द्वारा गांव की समस्याओं का मतभेदों का फैसला करना, प्राचीन पंचायत का मूल कार्य होता था तथा इन व्यक्तियों को पंच परमेश्वर का स्थान दिया गया था। इस प्रकार हम देखें तो गांव के फैसले गांव में ही स्थानीय लोगों के द्वारा किये जाते थे इसमें बाहरी व्यक्तियों या समूहों का हस्तक्षेप नहीं होता था। वास्तव में यह व्यवस्था स्थानीय स्वशासन का एक व्यवहारिक प्रयोग था।

मूल शब्दः पंचायतीराज, जनप्रतिनिधियों, लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण।

प्रस्तावना-

भारतीय लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था का मूल आधार पंचायत राज व्यवस्था रही है। सभ्य समाज की स्थापना के बाद से ही मनुष्य ने जब मनुष्यों में रहना सीखा, पंचायत राज के आदर्श एवं मूल सिद्धान्त उसकी चेतना में विकसित होते आए है। इस व्यवस्था को विभिन्न कालों में अलग-अलग नामों से पुकारा जाता रहा है। सहकारिता और आत्मनिर्भरता व स्वावलंबन, इन व्यवस्थाओं का मूल मंत्र रहा है। हमारे इतिहास में जब भी शासन व्यवस्था की चर्चा हुई है, राज्य के आश्रय से अलग एक व्यवस्था का उल्लेख भी आया है। चाहे उसे राज्य पर शर्म का प्रभाव कहा जाए या पंचों की राय माना जाए, लेकिन सार्वजनिक हित में काम करने की भावना हर स्थिति में बलवती रही है और यही भावना अनेक रूपों में प्रकट होती रही है। हमारे दर्शन, ग्रन्थों, इतिहास तथा साहित्य और समाज में भी सबको साथ लेकर चलने और सबके हित के लिए कार्य करने की प्रेरणा को बल मिला है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भारतीय जन मानस की इस प्रवृत्ति को नया रूप देने का प्रयास किया कि समष्टि में ही व्यक्ति का अपना हित समाहित है। महात्मा गांधी ने स्वतन्त्र भारत के एक मजबूत पंचायत राज शासन पद्धति का स्वप्न संजोया था जिसमें शासन कार्य की सबसे प्रथम इकाई पंचायते होगी। उनकी कल्पना पंचायतों की शासन व्यवस्था की धुरी होने के साथ ही आत्म निर्भर, पूर्णतया स्वायत्त और स्वावलंबी होने की थी। स्वन्त्रता के पश्चात् महात्मा गांधी की इस परिकल्पना को साकार करने हेतु समय-समय पर प्रयास किए गए। कभी ग्रामीण विकास के नाम पर और कभी सामुदायिक

विकास योजनाओं के माध्यम से पंचायतों को लोकतंत्र का मूल आधार बनाने के लिए उपयोग किया जाता रहा। अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग तरह के प्रयोग इसके लिए चले। कुछ असफल रहे तो कुछ सफल रहे और अन्य राज्यों के लिए अनुकरणीय बने। लेकिन पूरे देश में प्रशासन का विकेन्द्रीकरण करके बुनियादी स्तर पर पंचायत राज की स्थापना और जनता के हाथ में सीधे अधिकार देने की शुरूआत संविधान के 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से सम्भव हुई।

73वें संविधान संशोधन अधिनियम ने भारत में पंचायत राज व्यवस्था को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया। पंचायतों में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग एवं महिलाओं को आरक्षण के माध्यम से प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ। महिलाएं समाज के लगभग आधे भाग का प्रतिनिधित्व करती हैं लेकिन उनकी राजनीतिक सहभागिता लगभग नगण्य रही है। वर्तमान पंचायत राज सामाजिक समता नया रूप देने का एक सामूहिक प्रयास है।

भारतीय संविधान के 73वें संविधान संशोधन अधिनियम ने पंचायत के विभिन्न स्तरों पर पंचायतों के सदस्य और उनके प्रमुख दोनों पर महिलाओं के लिए एक तिहाई स्थानों के आरक्षण का प्रावधान किया जिससे देश के सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में संतुलन आए। इस संशोधन के माध्यम से संविधान में एक नया खण्ड- (9) और उसके अन्तर्गत 16 अनुच्छेद जोड़े गए हैं। अनुच्छेद 243 (द) (3) के अन्तर्गत महिलाओं की सदस्यता और अनुच्छेद 243 (द) (4) में उनके लिए पदों पर आरक्षण का प्रावधान है। अनुच्छेद 243 (द) के अनुसार अनूसूचित जाति एवं जनजाति के लिए उनक जनसंख्या के अनुपात में ऐसा आरक्षण करना है जिससे इन्हीं वर्गों की महिलाओं हेतु ऐसे स्थानों के एक तिहाई स्थान आरक्षित रहे।

भारतीय संविधान में 73वां तथा 74वां संवैधानिक संशोधन भारतीय राजनीति की संरचनात्मक व्यवस्था में बहुत बड़ी क्रान्ति के द्योतक है। तत्कालीन भारतीय सरकारों अभिनन्दनीय और धरातल से जुड़े लोकतंत्र के प्रति उनकी आस्था के प्रतीक हैं। इन संशोधन अधिनियमों से भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के वर्तमान ढांचे, संरचना एवं कार्यकलापों में महत्वपूर्ण परिवर्तन एवं सुधार होंगे ऐसी आशा थी। इनसे देश में लोकतंत्र की नींव मजबूत होगी क्योंकि अभी तक पिछले पांच दशकों मे शासन सत्ता का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर ही रहा है जबकि सच्चे लोकतंत्र की सफलता के लिए शासन सत्ता का प्रवाह नीचे से ऊपर की ओर प्रवाह की दिशा में की जा रही पहल के परिचायक हैं। भारत जैसे विशाल देश में लोकतंत्र के सुचारू संचालन के लिए लोकसभा एवं विधान सभाओं के लिए ही निर्वाचित प्रतिनिधि पर्याप्त नही है तथा शासन सत्ता का प्रयोग केवल केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा ही हो, यह पर्याप्त नहीं है। लोकतंत्र को सामान्यजन के दरवाजे तक लाने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि गांवों तथा नगरों के स्तर पर भी लोगों का प्रतिनिधित्व हो तथा ग्रामीण तथा नगरीय जन प्रतिनिधियों द्वारा स्थानीय स्तर पर स्थानीय लोगों के हित में स्थानीय कार्यों के सम्पादन हेतु शासन सत्ता का प्रयोग हों। इस दिशा में 73वां संवैधानिक संशोधन उल्लेखनीय शुरूआत है। स्थानीय स्वशासन लोगों की अपन स्वयं की शासन व्यवस्था का नाम है। अर्थात स्थानीय लोगों द्वारा मिलजुलकर स्थानीय समस्याओं के निदान एवं विकास हेतु बनाई गई ऐसी व्यवस्था जो संविधान और राज्य सरकारों द्वारा बनाए गये नियमों एवं कानून के अनुरूप हो। दूसरे शब्दों मे 'स्वशासन' गांव के समुचित प्रबन्धन में समुदाय की भागीदारी है। यदि हम इतिहास को पलट कर देखें तो प्राचीन काल में भी स्थानीय स्वशासन विद्यमान था। सर्वप्रथम कुटुम्ब से कुनबे बने और कुनबों से समूह। यह समूह ही बाद में ग्राम कहलाये। इन समूहों की व्यवस्था प्रबन्धन के लिये लोगों ने कुछ नियम, कायदे कानून बनाये। इन नियमों का पालन करना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म माना जाता था। ये नियम समूह अथवा गांव में शाति व्यवस्था बनाये रखने, सहभागिता से कार्य करने व गांव में किसी प्रकार की समस्या होने पर उसके समाधान करने, तथा सामाजिक न्याय दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। गांव का सम्पूर्ण प्रबन्धन तथा व्यवस्था इन्हीं नियमों के अनुसार होती थी। इन्हें समूह के लोग स्वयं बनाते थे व उसका क्रियान्वयन भी वही लोग करते थे। कहने का तात्पर्य है कि स्थानीय स्वशासन में लोगों के पास वे सारे अधिकार हों जिससे वे विकास की प्रक्रिया को अपनी जरूरत और अपनी प्राथमिकता के आधार पर मनचाही दिशा दे सकें। वे स्वयं ही अपने लिये प्राथमिकता के आधार पर योजना बनायें और स्वयं ही उसका क्रियान्वयन भी करें। प्राकृतिक संसाधनों जैसे जल, जंगल और जमीन पर भी उन्हीं का नियत्रंण हो ताकि उसके संवर्धन और संरक्षण की चिन्ता भी वे स्वयं ही करें। स्थानीय स्वशासन को मजबूत करने की पीछे सदैव यही मूलधारणा रही है कि हमारे गांव, जो वर्षो से अपना शासन स्वयं चलाते रहे है। जिनकी अपनी एक न्याय व्यवस्था रही है, वे ही अपने विकास की दिशा तय करें। आज भी हमारे गई गांवों में परम्परागत रूप से स्थानीय स्वशासन की न्याय व्यवस्था विद्यमान है।

स्थानीय स्वशासन का तात्पर्य-

- गांव के लोगों की गांव में अपनी शासन व्यवस्था हो व गांव स्तर पर स्वयं की न्याय प्रक्रिया हो।

- ग्रामस्तरीय नियोजन, क्रियान्वयन व निगरानी में गांव के हर महिला पुरूष की सक्रिय भागीदारी हो।
- किस प्रकार का विकास चाहिये या किस प्रकार के निर्माण कार्य हों या गांव के संसाधनों का प्रबन्धन व संरक्षण कैसे होगा ये सभी बातें गांव वाले तय करेंगे।
- गांव की सब तरह की समस्याओं का समाधान गांव के लोगों की भागीदारी से ही हो।
- ऐसा शासन जहां लोग स्थानीय मुद्दो, गतिविधियों में अपनी सक्रिय भागीदारी निभा सके।
- स्थानीय स्तर पर स्वशासन को लागू करने का माध्यम गांव के लोगों द्वारा मान्यता प्राप्त लोगों का समूह हो जिन्होंने सम्पूर्ण गांव का विकास, व्यवस्था व प्रबन्धन करना है। ऐसा समूह जिसका निर्णय सभी को मान्य हो।

संविधान में संशोधन व स्थानीय स्वशासन-

- हमारे देश में पंचायतों की व्यवस्था सदियों से चली आ रही है। पंचायतों के कार्य भी लगभग समान हैं। उनके स्वरूप में जरूर परिवर्तन हुआ है। पहले पंचायतों का स्वरूप कुछ और था। उस समय वह संस्था के रूप में कार्य करती थी और गांव के झगड़े, गांव की व्यवस्थायें सुधारना जैसे फसल सुरक्षा, पेयजल, सिंचाई, रास्ते, जंगलों का प्रबंधन आदि मुख्य कार्य हुआ करते थे।
- लोगों को पंचायतों के प्रति बड़ा विश्वास था। उनका निर्णय लोग सहज स्वीकार कर लेते थे। और हमारी पंचायतें भी बिना पक्षपात के कोई निर्णय किया करती थी। ऐसा नहीं कि पंचायतें सिर्फ गांव का निर्णय करती थी। बड़े क्षेत्र, पट्टी, आदि के लोगों के मूल्यों से जुड़े संवेदशील निर्णय भी पंचायतें बड़े विश्वास के साथ करती थी। इससे पता लगता है कि पंचायतों के प्रति लोगों का पहले कितना विश्वास था। वास्तव में जिस स्वशासन की बात हम आज कर रहे हैं, असली स्वशासन वही था। जब लोग अपना शासन खुद चलाते थे, अपने विकास के बारे में खुद सोचते थे, अपनी समस्यायें स्वयं हल करते थे एवं अपने निर्णय स्वयं लेते थे।
- धीरे-धीरे ये पंचायत व्यवस्थायें आजादी के बाद समाप्त होती गई। इसका मुख्य कारण रहा, सरकार का दूरगामी परिणाम सोचे बिना पंचायत व्यवस्थाओं में अनावश्यक हस्तक्षेप। जो छोटे-छोटे विवाद पहले हमारे गावं में हो जाते थे अब वह सरकारी कानून व्यवस्था से पूरे होते हैं, जिन जंगलों का हम पहले सुरक्षा भी करते थे और उसका सही प्रबंधन भी करते थे अब उससे दूरियां बनती जा रही हैं और उसे हम अधिक से अधिक उपभोग करने की दृष्टि से देखते हैं। जो गांव के विकास संबंधी नजरिया हमारा स्वयं का था उसकी जगह सरकारी योजनाओं ने ले ली है और गांवों में उनका क्रियान्वयन होने लगा।
- परिणाम यह हुआ कि लोगों की जरूरत के अनुसार नियोजन नहीं हुआ और जिन लोगों की पहुंच थी. उन्होंने ही योजनाओं का उपभोग किया। लोग योजनाओं के उपभोग के लिए हर समय तैयार रहने लगे चाहे वह उसके जरूरत की हो या न हो। उसको पाने के लिए व्यक्ति खींचातानी में लगा रहा। इससे कमजोर वर्ग धीरे-धीरे और कमजोर होता गया और लोग पूरी तरह सरकार की योजनाओं और सब्सिडी (छूट) पर निर्भर होने लगे। धीरे-धीरे पंचायत की भूमिका गांव के विकास में शून्य हो गई। लोग भी पुरानी पंचायतों से कटते गये।
- लेकिन 80 के दशक में यह लगने लगा कि सरकारी योजनाओं का लाभ समाज के अंतिम व्यक्ति तक नहीं पहुंच पा रहा है। यह भी सोचा जाने लगा कि योजनाओं को लोगों की जरूरत के मुताबिक बनाया जाये। योजनाओं के नियोजन और क्रियान्वयन में भी लोगों की भागीदारी जरूरी समझी जाने लगी। तब ऐसा महसूस हुआ कि ऐसी व्यवस्था कायम करने की आवश्यकता है जिसमें लोग खुद अपनी जरूरत के अनुसार योजनाओं का निर्माण करें और स्वयं उनका क्रियान्वयन करें।
- इसी सोच के आधार पर पंचायतों को कानूनी तौर पर नये काम और अधिकार देने की सोची गई ताकि स्थानीय लोग अपनी जरूरतों को पहचानें, उसके उपाय खोजें, उसके आधार पर योजना बनायें, योजनाओं को क्रियान्वित करें और इस प्रकार अपने गांव का विकास करें।
- इस सोच को समटते हुए सरकार ने संविधान में 73वाँ संशोधन कर पंचायतों को नये कार्य और अधिकार दे दिये हैं। इस प्रकार केन्द्र और राज्य सरकार की तरह पंचायतें भी स्थानीय लोगों की अपनी सरकार की तरह कार्य करने लगी।

स्थानीय स्वशासन की आवश्यकता-

स्थानीय स्वशासन में लोगों के हितों की रक्षा होती है तथा स्थानीय लोगों की सहभागिता से आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय की योजनाएं बनायी व लागू की जाती हैं।

- ग्रामीण विकास हेतु किये जाने वाले किसी भी कार्य में स्थानीय एवं संसाधनों का लोगों द्वारा बेहतर उपयोग किया जाता है।
- स्थानीय लोग अपनी समस्याओं एवं प्राथमिकताओं से भली-भांति परिचित होते हैं। तथा लोग अपनी समस्या एवं बातों को आसानी से रख पाते हैं।
- स्थानीय स्वशासन व्यवस्था से लोगों की भागीदारी से जिम्मेदारी का अहसास होता है और स्थानीय स्तर की समस्याओं का निदान व विवादों का निपटारा लोग स्वयं करते हैं।
- गांव के विकास में महिलाओं, निर्बल, कमजोर एवं पिछड़े वर्ग की भागीदारी सुनिश्चित होती है तथा वास्तविक लाभार्थी को लाभ मिलता है।

अब्राहम लिंकन के कथनानुसार लोकतंत्र का अर्थ है जनता की, जनता के लिय, जनता के द्वारा चलाई जाने वाली व्यवस्था। ग्राम स्वराज ही लोकतंत्र की जड़ है। जब तक लोग स्वयं अपने ग्राम हित सम्बन्धी विभिन्न मुद्दों पर अपना विचार नहीं रखते, स्वयं निर्णय नहीं लेते, निर्णयों को सबके हितों में क्रियान्वित नहीं करते, तब तक ग्राम स्वराज केवल कागजों तक ही सीमित रहेगा।

स्थानीय स्वशासन व पंचायते-

स्थानीय स्वशासन को स्थापित करने में पंचायतों की अहम भूमिका है। पंचायतें हमारी संवैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त संस्थायें हैं और प्रशासन से भी उनका सीधा जुड़ाव है। भारत में प्राचीन काल से ही स्थानीय स्तर पर शासन पर संचालन पंचायत ही करती आयी है। स्थानीय स्तर पर स्वशासन से स्वप्न को साकार करने का माध्यम पंचायतें ही है। चूंकि पंचायतें स्थानीय लोगों के द्वारा गठित होती हैं और इन्हें संवैधानिक संस्थाएं ही आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय की योजनाएं ग्राम सभा को साथ मिलकर बनायेंगी व उसे लागू करेंगी। गांव के लिये कौन सी योजना बननी है, कैसे क्रियान्वित करनी है, क्रियान्वयन के दौरान कौन निगरानी करेगा, ये सभी कार्य पंचायतें गांव के लोगों (ग्रामसभा सदस्यों) की सक्रिय भागीदारी से करेंगी। इससे निर्णय स्तर पर आम जनसमुदाय की भागीदारी सुनिश्चित होगी।

स्थानीय स्वशासन तभी मजबूत हो सकता है जब पंचायतें मजबूत होंगी और पंचायतें तभी मजबूत होंगी जब लोग मिलजुलकर इसके कार्यों में अपनी भागीदारी देंगे और अपनी जिम्मेदारी को समझेंगे। लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करने के लिये पंचायतों के कार्यों में पारदर्शिता होना जरूरी है। पहले भी लोग स्वयं अपने संसाधनों का, अपने ग्राम विकास का प्रबन्धन करते थे। इसमें कोई शक नहीं कि वह प्रबन्धन आज से कहीं बेहतर भी होता था। हमारी परम्परागत रूप से चली आ रही स्थानीय स्वशासन की सोच बीते समय के साथ कमजोर हुई है। नई पंचायत व्यवस्था के माध्यम से इस परम्परा को पुनः जीवित होने का मौका मिला। अतः ग्रामीणों को चाहिये कि पंचायत और स्थानीय स्वशासन की मूल अवधारणा को समझने की चेष्टा करें ताकि ये दोनों ही एक दूसरे के पूरक बन सकें।

गांवों का विकास तभी सम्भव है जब सम्पूर्ण ग्रामवासियों को विकास की मुख्य धारा से जोड़ा जायेगा। जब तक गांव के सामाजिक तथा आर्थिक विकास के निर्णयों में गांव के पहले तथा अन्तिम व्यक्ति की बराबर की भागीदारी नहीं होगी जब तक हम ग्राम स्वराज की कल्पना नहीं कर सकते हैं। जनसामान्य की अपनी सरकार तभी मजबूत बनेगी जब लोग ग्राम सभा और ग्राम पंचायत में अपनी भागीदारी के महत्व को समझेंगे।

स्थानीय स्वशासन व पंचायतों में आपसी सम्बन्ध-

भारत में प्राचीन काल से ही स्थानीय स्तर पर शासन का संचालन पंचायत ही करती आई है। स्थानीय स्तर पर स्वशासन के स्वप्न को साकार करने का माध्यम है पंचायतें।

- चूंकि पंचायतें स्थानीय स्तर पर गठित होती है अतः पंचायतें स्थानीय स्वशासन को स्थापित करने का अचूक तरीका है।
- पंचायत में गांव के विकास हेतु स्थानीय लोग ही निर्णय लेते हैं विवादों का निपटारा करते हैं, स्थानीय मुद्दों के लिए कार्य करते हैं अतः गांव की हर गतिविधि व कार्य में स्थानीय लोगों की ही भागीदारी रहती है।

- पंचायत द्वारा बनाये गये विकास कार्यक्रमों में क्रियान्वयन में स्थानीय लोगों की भागीदारी होती है तथा स्थानीय लोगों को ही इसका लाभ मिलता है। अत: पंचायत स्थानीय लोगों के अधिकारों व हकों की सुरक्षा करती है।

स्थानीय स्वशासन की दिशा में 73वां संविधान संशोधन अधिनियम एक कारगार एवं क्रान्तिकारी कदम है। लेकिन गांव के अन्तिम व्यक्ति की सत्ता एवं निर्णय में भागीदारी से ही स्थानीय स्वशासन की सफलता आंकी जा सकती है। स्थानीय स्वशासन तभी मजबूत होगा जब गांव के हर वर्ग चाहे दलित हों अथवा जनजाति, महिला हो या फिर गरीब, सबकी समान रूपसे स्वशासन में भागीदारी होगी। इसके लिये गांव के प्रत्येक ग्रामीण को उसके अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति जागरूक किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। हम अपने गांवों के सामाजिक एवं आर्थिक विकास की कल्पना तभी कर सकते हैं जब गांव के विकास संबंधी समुचित निर्णयों में अधिक से अधिक लोगों की भागीदारी होगी लेकिन इस सबके लिये पंचायत व्यवस्था ही एक मात्र एक ऐसा मंच है जहां आम जन समुदाय पंचायत प्रतिनिधियों के साथ मिलकर विकास से जुड़ी विभिन्न समस्याओं पर विचार कर सकते हैं और सबसे विकास की कल्पना को साकार रूप दे सकते हैं।

स्थानीय स्वशासन कैसे मजबूत करें-

- स्थानीय स्वशासन की मजबूती के लिए सर्वप्रथम पंचायत में सुयोग्य प्रतिनिधियों का चयन होना आवश्यक है। पंचायत का नेतृत्व करने के लिए ऐसे व्यक्ति का चयन किया जाना चाहिए जिसकी स्वच्छ छवि हो व वह नि:स्वार्थ भाव वाला हो।
- स्थानीय ग्राम सभा पंचायती राज की नींव होती है। अगर ग्रामसभा के सदस्य सक्रिय होंगे व अपनी भूमिका तथा जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक रह कर पंचायत के कार्यों में भागीदारी करेंगे, तभी स्थानीय स्वशासन मजबूत हो सकता है।
- स्थानीय स्तर पर उपलब्ध भौतिक, प्राकृतिक, बौद्धिक, संसाधनों का बेहतर उपयोग एवं उचित प्रबन्धन से ही विकास प्रक्रिया को गति प्रदान की जा सकती है। अत: स्थानीय संसाधनो के बेहतर उपयोग द्वारा पंचायतें अपनी स्थिति को मजबूत बनाकर ग्राम व ग्रामवासियों के विकास को गति प्रदान कर सकती है।
- स्थानीय स्वशासन तभी मजबूत होगा जब गांव वासी अपनी आवश्यकता व प्राथमिकता के अनुसार योजनाओं व कार्यक्रमों का नियोजन करेंगे व उनका स्वयं ही क्रियान्वय करेंगे। ऊपर से थोपी गयी परियोजनायें कभी भी ग्रामीणें में योजना के प्रति अपनत्व की भावना नहीं ला सकती, अत: सूक्ष्म नियोजन के आधार पर ही योजनाएं बनानी होंगी तभी वास्तविक रूप से स्थानीय व स्वशासन मजबूत होगा।
- पंचायतों की मजबूती का एक महत्वपूर्ण पहलू है निष्पक्ष सामाजिक न्याय व्यवस्था व महिला पुरूष समानता को बढ़ावा देना। पंचायतें सामाजिक न्याय व आर्थिक विकास को ग्राम स्तर पर लागू करने का माध्यम है। अत: समाज के वंचित, उपेक्षित व शोषित वर्ग को विकास प्रक्रिया में भागीदारी के समान अवसर प्रदान करने से ही पंचायती राज की मूल भावना 'लोक शासन' को मूर्त रूप दे सकती है।
- युवा किसी भी देश व समाज के लिए पूँजी है। अनके अंदर प्रतिभा, शक्ति व हुनर विद्यमान है इस युवा शक्ति व प्रतिभा का पलायन रोककर व उनकी शक्ति व ऊर्जा का रचनात्मक कार्यों में सदुपयोग किया जाए तो वे स्थानीय स्तर पर पंचायतों की मजबूती में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।
- पंचायतीराज की मजबूती के लिए सत्ता का वास्तविक रूप में विकेन्द्रीकरण अर्थात कार्य, कार्मिक व वित्त सम्बन्धित वास्तविक अधिकार पंचायतों को हस्तांतरित करना आवश्यक है। इनके बिना पंचायतें अपनी भूमिका व जिम्मेदारियों को सफलतापूर्वक निभाने में असमर्थ है।

स्थानीय स्वशासन व ग्रामीण विकास में संबंध-

- स्थानीय स्वशासन और ग्रामीण विकास एक दूसरे के पूरक है। स्थानीय स्वशासन के माध्यम से गांव की समस्याओं को प्राथमिकता मिल सकती है व ग्रामीण विकास को आगे बढ़ाया जा सकता है।
- स्थानीय स्वशासन की आधारशिला पंचायत है अत: पंचायत के माध्यम से गांव के समुचित प्रबन्धन में समुदाय की भागीदारी बढ़ती है।

- ग्राम विकास की समस्त योजनाएं गांव के लोगों द्वारा ही बनाई जायेंगी व लागू की जायेगी। इससे विकास कार्यों के प्रति सामूहिक सोच को बढ़ावा मिलेगा। साथ ही स्थानीय समुदाय का विकास की गतिविधयों में पूर्ण नियत्रंण।
- ग्रामीण विकास प्रक्रिया में सभी वर्गों को उचित प्रतिनिधित्व एवं सब को समान महत्व मिलने से स्थानीय स्वशासन मजबूत होगा। महिलाओं तथा कमजोर वर्गों की भागीदारी से ग्राम विकास की प्रक्रिया को मजबूती मिलेगी।
- मजबूत स्थानीय स्वशासन से किसी भी प्रकार के विवादों का निपटारा गांव स्तर पर ही किया जा सकता है।
- स्थानीय समुदाय की नियोजन व निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी से विकास जनसमुदाय व गांव के हित में होगा। इससे लोगों की समस्याओं का समाधान भी स्थानीय स्तर पर सबके निर्णय द्वारा होगा। स्थानीय संसाधनों का समुचित विकास व उपयोग होगा तथा सामूहिकता का विकास होगा।

निष्कर्ष-

73वें संविधान संशोधन के अनुसार पंचायतें स्वायत्त शासन की संस्थाएं हैं। पंचायतें ग्राम, ब्लाक व जिला स्तर पर आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय के लिए योजनाएं बनाएंगी जिसमें 11वीं अनुसूची में सूचीबद्ध 29 विषय भी शामिल हैं। अर्थात पंचायतें आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय की योजनाएं बनाकर उनको क्रियान्वित करेंगी। इस कार्य के लिए पंचायतों की कार्यात्मक, वित्तीय व प्रशासनिक स्वायत्ता उसके सामने सबसे बड़ी चुनौती है क्योंकि बिना इस स्वायत्तता के पंचायतों के लिए पूर्ण रूप से संभव नहीं है कि वे लोगों की आशाओं व आकांक्षाओं को पूरा कर सकें। यही नहीं पंचायतों में आरक्षण के बाद पहली बार अधिक संख्या में समाज के गरीब तबके के लोग व महिलाएं भी चुनकर आई हैं। अधिकतर महिलाएं व पुरूष, जो इन वर्गों से चुनकर आए हैं, आर्थिक व सामाजिक दृष्टि से पिछड़े है। उनका सामाजिक व आर्थिक रूप से पिछड़ापन भी उनके लिए चुनौती है।

पंचायतों की कार्यात्मक, वित्तीय, प्रशासनिक, सामाजिक व आर्थिक चुनौतियों को देखकर लगता है कि पंचायती राज व्यवस्था शायद ही अपनी संवैधानिक जिम्मेदारी निभा सके, लेकिन पूर्ण रूप से फेल हो गई हो, ऐसा नहीं है। पंचायतों के सामने अनेक बाधाएं है।. लेकिन केन्द्र सरकार, राज्य सरकारों व स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा उठाए गए अनेक सकारात्मक कदम तथा स्वयं पंचायत प्रतिनिधियों द्वारा किये गये जा रहे अनेक प्रयास ढाढ़स बंधाते हैं कि पंचायती राज व्यवस्था आने वाले समय में लोगों की आकांक्षाओं को पूरा करने में समर्थ हो सकेगी।

ग्रामीण समाज के दबे कुचले वर्ग में पिछले लगभग एक दशक के दौरान जागृति आई है। वे ग्रामीण समाज के उच्च वर्ग की शोषणप्रद आदतों व व्यवहारों के विरूद्ध आवाज नहीं उठा पाते, लेकिन उनकी आदतों व व्यवहार को समझने लगे हैं। पहले ऐसा नहीं था। विभिन्न राज्यों में पंचायत प्रतिनिधियों के संगठन बने हैं, जिनमें निर्णय लिए गए हैं कि पंचायत अधिनियम में जहां-जहां नौकरशाही का नियत्रंण है उनमें संशोधन किया जाए। विभिन्न राज्यों में हुए पंचायतों के चुनावों में लोगों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया है। अनेक महिलाएं गैर सुरक्षित सीटों से जीतकर आई हैं। पंचायत प्रतिनिधियों द्वारा किए गए प्रयासों से जनता में उनसे अपेक्षा बढ़ती जा रही है। आने वाले समय में पंचायतों को अधिक संघर्ष करना होगा क्योंकि सत्ता के विकेन्द्रीकरण के रास्ते में अनेक राजनैतिक, प्रशासनिक व सामाजिक बाधाएं आएंगी।

संदर्भ

1. महीपाल पंचायती राज अतीत, वर्तमान और भविष्य, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, (1996)
2. श्रीवास्तव अरूण, भारत में पंचायती राज, रावत पब्लिशर्स, जयपुर (1994)
3. Kumar Narendra, Raj Manoj Dalit Leadership in Panchayats, Rawat Publsihers, Jaiupur, 2006
4. सिंह, धर्मेन्द्र पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास, रावत पब्लिशर्स, जयपुर (2007)
5. महीपाल: पंचायती राज- चुनौतियां एवं संभावनाएं, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली (2004)
6. Mishra, S.N., Singh, S.S : Roads to Model Panchayati Raj, Mittal Publications, New Delhi, 1993.
7. माहेश्वरी, एच0आर0: भारत में स्थानीय प्रशासन-अग्रवाल प्रकाशन, आगरा (1984)
8. शर्मा, अग्रवाल: ग्रामीण तथा नगरीय प्रशासन, रेखा प्रकाशन, दिल्ली (2002)
9. बाजपेयी अशोक: पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास, साहित्य भवन प्रकाश, नई दिल्ली, (1997)

छत्तीसगढ़ी साहित्य में उपन्यास

श्रीमती माग्रेट कुजूर

सहायक प्राध्यापक हिन्दी, शासकीय महाविद्यालय धरमजयगढ़, जिला रायगढ़, (छ.ग.)

छत्तीसगढ़ी साहित्य में प्रथम उपन्यास को लेकर विद्वानों एवं समीक्षकों में मतभेद है। डॉ. नरेन्द्र देव वर्मा के अनुसार- "छत्तीसगढ़ी साहित्य जगत् में उपन्यास की रचना प्रक्रिया विलम्ब से शुरू हुई एवं छत्तीसगढ़ी साहित्य में अब तक की स्थिति में केवल तीन-चार उपन्यास ही जन-साधारण के सम्मुख आये हैं। शिवशंकर शुक्ल ने छत्तीसगढ़ी उपन्यास 'दियना के अंजोर' का सृजन किया है एवं दूसरा 'मोंगरा' उपन्यास प्रसिद्ध है। सन् 1965 ई. में 'दियना के अंजोर' का प्रकाशन हुआ एवं आपके मोंगरा उपन्यास का प्रकाशन कुछ महीनों के बाद हुआ। इन उपन्यासों में लेखक ने हृदय के मार्मिक उद्‌गार को चित्रित किया है।"[1] अधिकांश विद्वानों एवं समीक्षकों ने शिवशंकर शुक्ल जी की मोंगरा को प्रथम उपन्यास के रूप में स्वीकार करते हैं। मोंगरा छत्तीसगढ़ी संस्कृति, लोकजीवन एवं लोकव्यवहार को उकेरता हुआ स्त्री प्रधान उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास की नायिका 'मोंगरा' अपने पथभ्रष्ट पति के आचरण एवं व्यवहार को अपनी प्रेम-साधना से बदलकर जीवन के नई राह में ले आती है। इसी तरह उपन्यास में 'केतकी' का चरित्र भी प्रभावी है, जो अपने बिखरे एवं टूटे हुए पति के जीवन को संवारती है।

डॉ. विमल कुमार पाठक के अनुसार- "छत्तीसगढ़ के ग्रामीण जीवन में आज भी ऐसे पात्र मिलेंगें जो आदर्श एवं जड़ के पुतले मात्र नहीं हैं। छत्तीसगढ़ में स्त्रियों की महानता से यहाँ की संस्कृति पुष्पित एवं गौरवान्वित है। छत्तीसगढ़ की वाटिका को यहाँ के आंचलिक परिवेश में विकसित और सुवासित होकर मोंगरा गौरव प्रदान करती है।"[2] श्री लखनलाल गुप्त रचित 'चंदा अमरित बरसाइस' सन् 1965 को छत्तीसगढ़ी साहित्य जगत् का द्वितीय उपन्यास कहना न्याय संगत ही होगा। श्री नंद किशोर तिवारी जी ने 'चंदा अमरित बरसाइस' को मोंगरा उपन्यास के पहले का होना बताया है। डॉ. नरेन्द्र देव वर्मा के अनुसार- "चंदा अमरित बरसाइस' लखनलाल गुप्त जी की इस कथा कृति को उपन्यास के रूप में प्रसारित किया गया है। लेकिन यह वास्तव में संस्मरणात्मक वृत्त चित्र के अधिक करीब है, साथ-ही साथ कई विद्वान इसे छत्तीसगढ़ी की कृति स्वीकार करने में हिचकिचाते हैं, कारण कई स्थानों पर भाषागत् अपरिपक्वता के दर्शन होते हैं, भाषा की अपर्याप्त जानकारी के कारण लेखक ने छत्तीसगढ़ी भाषा में प्रयुक्त स्त्री के लिये जो शब्द होते हैं, उसके स्थान पर उन्होंने महिला शब्द का बेझिझक प्रयोग किया है।"[3] अनेक त्रुटियों के बाद भी भारतेन्दु साहित्य समिति, बिलासपुर के द्वारा प्रकाशित इस रचना को ऐतिहासिक दृष्टिकोण से मोंगरा के बाद छत्तीसगढ़ी साहित्य का द्वितीय उपन्यास स्वीकार किया गया है। "सन् 1970 में ठाकुर हृदय सिंह चौहान कृत 'फुटहा करम' सन् 1983 में पंडित कृष्ण कुमार शर्मा कृत 'छेरछेरा' एवं सन् 2000 में जे. आर. सोनी कृत 'उढ़रिया' का प्रकाशन प्रयास प्रकाशन, बिलासपुर से हुआ एवं उपन्यास की दिशा में इसे एक क्रांतिकारी कदम कहा जा सकता है।"[4] 'फुटहा करम' उपन्यास में कर्मशील व्यक्ति का भाग्य साथ न देने का मार्मिक चित्रण मुहावरे के रूप में है, वहीं 'फुटहा करम के टूटहा दोना', 'रस गँवागे चारो कोना' छत्तीसगढ़ी भाषा के लोकोक्ति के रूप में सम्पृक्त है। उपन्यास की सम्पूर्ण कथा प्रस्तुत शीर्षक को जीवंत करती है। छत्तीसगढ़ के संवर्ण समाजों में विधवा विवाह निषेध है। उपन्यास का सम्पूर्ण कथानक बाल विवाह एवं उससे उत्पन्न समस्याओं को लेकर चित्रित किया गया है। नि:संदेह उपन्यास में प्रस्तुत विचार में उपन्यासकार ने अंधविश्वास एवं पुनर्विवाह का समर्थन ही किया है। डॉ. नरेन्द्र देव वर्मा के अनुसार- "फुटहा करम' इस आधार पर उल्लेखनीय है कि इसमें घटना बहुल तो नहीं है, फिर भी भावात्मक रूप से मर्मस्पर्षी बन पड़े हैं।"[5] एवं भाषा शैली की दृष्टि से रोचक एवं प्रेरणास्पद पठनीय है, भाषा प्रवाहमयी एवं काव्यत्मकता का पुट लिये हुए है। 'फुटहा करम' एवं 'मोंगरा' पर डॉ. विमल कुमार पाठक एवं डॉ. पालेश्वर प्रसाद शर्मा का तुलनात्मक विवेचना बहुत-ही आवश्यक है। राधा अनुपम अद्वितीय सुंदरी है तो मनहरण सिंह भी मन को हरण करने वाला आकर्षक व्यक्तित्व का धनी व्यक्ति है एवं दोनों की जोड़ी अप्रतिम है, लेकिन रूढ़ियों से ग्रस्त अंधविश्वासी समाज के साथ-साथ निष्ठुर भाग्य को यह मंजूर नहीं है, जो राधा के जीवन के लिये बड़ी बाधा है, अत: वह पूर्ण नहीं बल्कि आधा है। डॉ. विनय कुमार पाठक के अनुसार- "उपन्यास की काव्यात्मकता, चित्रात्मकता, भाषा शैली, सशक्त-सप्राण है, इनकी भाषा में मधुरता, सरलता, सहजता एवं सम्प्रेषणीयता है, जो छत्तीसगढ़ी साहित्य का साहित्यिक सौष्ठव है। वर्णन शैली में मार्मिकता व सजीवता है संवाद योजना के साथ-साथ नाटकीय तत्वों का प्रेषण है।"[6] राधा के माध्यम से नारी जीवन की विभिषिका का चित्रण नंद किशोर तिवारी के अनुसार- "उपन्यास में नायिका 'राधा' की मृत्यु हो जाती

है और विधवा राधा का पुनर्विवाह भी नहीं हो पाया। हिन्दी प्रदेश के लेखक गण समाज के द्वारा निर्मित किये गये लक्ष्मण रेखा से आगे अपने को नहीं बढ़ा पाये। प्रसिद्ध उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंदजी ने विधवा विवाह को एक सामाजिक समस्या के रूप में चित्रित किया है, लेकिन उन्होनें अपने उपन्यास में किसी भी विधवा पात्र की शादी नहीं करा पाये।"[7] वस्तुतः प्रेमचंद जी की रचनाएँ यथार्थवादी होती हैं और समाज परंपरावादी होता है, इन सबके बाद भी विधवा विवाह की परिस्थितियाँ निर्मित होती है। श्री नंद किशोर तिवारी ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है कि- "उपन्यास 'फुटहा करम' में विधवा राधा की मार्मिक व्यथा-कथा उजागर हुआ है। उपन्यास की नायिका राधा बचपन से लेकर युवावस्था तक वर्जना की कठिन वेदना झेलती है। जीवन के मध्य पड़ाव में ठाकुर मास्टर जी के प्रेम से अमृत तत्व का एहसास होता है। ठाकुर राधा के सौंदर्य की ओर आकृष्ट होता है और विधवा विवाह को समाज में जरूरी मानकर पुरजोर समर्थन करता है।"[8]

पं. कृष्णकुमार शर्मा की प्रसिद्ध कृति 'छेरछेरा' के विषय में डॉ. शोभना हरीश परसाई ने अपने विचार इस प्रकार दिये हैं कि- "कृषक-पुत्र के द्वारा अन्नपूर्णा के घर आगमन पर अनन्य उत्साह से प्रेरित होकर लोकोत्सव में दिया जाने वाला दान है, लेकिन इस छेरछेरा एवं प्रेम का अनुपम रूप प्रस्तुत करता है।"[9] केयूर भूषण कृत सन् 1995 में 'कुल के मरजाद' के बाद उपन्यास छेरछेरा के संबंध में श्री नंद किशोर तिवारी लिखते हैं कि- "उपन्यास का नायक 'गरीबा' एक खाता-पीता किसान था। गाँव में भीषण महामारी फैलती है, गाँव में प्रचलित प्रथा के मुताबिक पुजारी एक लकीर खींचता है और गाँव की महिलाओं को उससे लांघने को कहता है। लेकिन 'फुलवा' जो कि गरीबा की पत्नी थी का पैर किसी कारणवश साड़ी से उलझ जाता है और वह लकीर को लांघ नहीं पाती। फलतः उसे टोनहीं करार कर उन्हें गाँव छोड़कर जाने का आदेश दिया जाता है और गाँव का मालगुजार कुंदन सिंह उसके सभी खेती-बाड़ी घर को हड़प लेता है। यहाँ पर उपन्यासकार ने षोषण की प्रक्रिया का चित्रण किया है। गरीबा एवं उसका परिवार भिन्न-भिन्न यातनाओं को सहता है, एक-बार गरीबा का बेटा हीरा अपने स्कूल समय में कुंवर सिंह की बेटी सोना को बचाता है। गाँव में सूर्य प्रकाश जो कि मालगुजार का अवैध संतान था, साधु बन के आता है, गंजेड़ी-नशेड़ी लोग जो समाज के रखवाले हैं, मालगुजार के सुर में सुर मिलाते हैं। मालगुजार की निर्दयता एवं उसकी शोषणता का हीरा विरोध करता है। सूर्यप्रकाश और सोना के सकारात्मक प्रयासों से गाँव के मजदूर लोगों एवं मिल में काम करने वाले कामगारों को मिलकियत मिलती है और आचार्य विनोबा भावे जी का सर्वोदय का सपना सकार होता है।"[10] उपन्यास में लोकजीवन, लोकसंस्कृति व आंचलिकता का जीवंत रूप प्रस्तुत हुआ है। उपन्यास में प्रयुक्त भाषा सहज, सरल, कहावतों व मुहावरों के सार्थक प्रयोगों से अभिव्यंजित है। "श्री केयूर भूषण कृत पाचवाँ उपन्यास 'कुल के मरजाद' एवं छठवाँ उपन्यास डॉ. जे. आर. सोनी कृत 'उढ़रिया' है। इसमें 'छेरछेरा', 'कुल के मरजाद' उपन्यास में स्वतंत्रता पूर्व की स्थितियों का चित्रण है। नामानुसार कुल की मर्यादा को लेकर सवाल उठाये गये हैं। रियासतकालीन संस्कृति को उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है, जिसमें भोग-विलास से संलिप्त एवं उससे उत्पन्न अवैध संतानों को दास के रूप में माना जाता था, जिसमें वह कभी भी राजकुमार के भाई का दर्जा प्राप्त नहीं कर पाता और दासी कभी भी रानी का दर्जा प्राप्त नहीं कर पाती। 'रामकली', दासी जब कुल की मर्यादा को लेकर न्याय का दरवाजा खटखटाती है, तब राजा-राजवाड़ों की पोल खुलने लगती है और वास्तविकता सामने आने लगती है।"[11] उपन्यास में छत्तीसगढ़ी लोकजीवन व संस्कृति संपोषित है। भाव एवं भाषा सरल, सहज है, संवाद नाट्यता से परिपूर्ण है, कहावतों व मुहावरों का सार्थक प्रयोग भाषा को प्रवाहमयी बनाती है।

"डॉ. जे. आर. सोनी कृत 'उढ़रिया' एक गरीब ब्राह्मण की व्यथा-कथा है, जिसमें पिता के द्वारा दहेज न दे पाने पर उनकी दो बेटियाँ आत्महत्या के लिये विवश हो जाती हैं एवं तीसरी बेटी सतनामी समाज के युवक से शादी कर लेती है। प्रस्तुत उपन्यास में अमीर गरीब जाति-पाँति, अंधविश्वास, अस्पृश्यता, ऊँच-नीच एवं अशिक्षा के तम को उपन्यासकार ने उभारा है एवं छत्तीसगढ़ी लोककला, लोकजीवन एवं लोकसंस्कृति को उजागर कर इसके महत्व को प्रतिपादित किया है।"[12] उपन्यास में पंडित रामनाथ जो कि 'स्वाति' के पिता हैं, अपनी बेटी के द्वारा सतनामी युवक से विवाह कर लेने से खुश नहीं होते हैं और समाज में फैले असामनता का विरोध उपन्यास में कायम नहीं है एवं सामाजिक भय से अशांत होकर पंडित रामनाथ आत्महत्या कर लेते हैं। सन् 2002 में डॉ. परदेशी राम वर्मा कृत 'आँवा', श्री संतोश कुमार चौबे कृत 'भाग जबर करनी मा दिखथ', श्री केयूर भूषण कृत 'लोकलाज', डॉ. जे. आर. सोनी कृत 'चंद्रकला', श्री रामनाथ साहू कृत 'कका के घर' 'भुइंया', ठाकुर बलदेव सिंह कृत 'मानवता के कछेरी मा', श्री हेमनाथ यदु कृत 'चँदा-चंदैनी, ठाकुर हृदय सिंह चौहान कृत 'पठौनी', श्री केयूर भूषण कृत 'समे के बलिहारी', मैथ्यूजहानी जर्जर कृत 'चंदा के डोंगा' आदि उपन्यास की पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित है। संतोष कुमार चौबे जी की 'भाग जबर करनी म दिखथे' कामेश्वर पांडे कृत 'तुंहर जाए ले गिंया' और 'जुराव' लोक बाबू कृत

'डिंगई' जिसमें हिन्दी, अंग्रेजी व छत्तीसगढ़ी भाषा का यथोचित प्रयोगकर कहावतों के माध्यम से जनमानस तक पहुँचाने का प्रयास किया गया है। वर्तमान छत्तीसगढ़ी साहित्य उत्कृष्ट उपन्यास लेखन की प्रतीक्षारत में है।

संदर्भ सूची

1. वर्मा, डॉ. नरेन्द्र देव, छत्तीसगढ़ी भाषा का उद्विकास. पृ.115-116.
2. पाठक, डॉ. विमल कुमार. छत्तीसगढ़ी साहित्य का ऐतिहासिक अध्ययन. पृ. 345.
3. वर्मा, डॉ. नरेन्द्र देव. छत्तीसगढ़ी भाषा का उद्विकास. पृ. 116.
4. दीवान, डॉ मनीष (2003). छत्तीसगढ़ी भाषा, साहित्य व संस्कृति के विकास में डॉ. विनय पाठक का योगदान. छत्तीसगढ़ टुडे पब्लिकेशन, पृ. 255-256.
5. वही, पृ. 41.
6. पाठक, डॉ. विनय कुमार. छत्तीसगढ़ी के परिनिष्ठित साहित्य व लोक साहित्य का तुलनात्मक एवं सांस्कृतिक अनुषीलन. पृ. 104.
7. तिवारी, डॉ. नंद किशोर. छत्तीसगढ़ी साहित्य दशा और दिशा. पृ. 76.
8. वही, पृ. 75.
9. परसाई, डॉ. शोभना हरीश, छत्तीसगढ़ी साहित्य के समर्पित हस्ताक्षर, डॉ. विनय कुमार पाठक. पृ. 77.
10. तिवारी, डॉ. नंद किशोर. छत्तीसगढ़ी साहित्य दशा और दिशा. पृ. 77.
11. दीवान, डॉ मनीष कुमार (2003). छत्तीसगढ़ी भाषा, साहित्य व संस्कृति के विकास में डॉ. विनय पाठक का योगदान. छत्तीसगढ़ टुडे पब्लिकेशन, पृ. 357.
12. टंडन, डॉ. रमेश (सं.) (2020). लोकसाहित्य एवं छत्तीसगढ़ी साहित्य. वैभव प्रकाशन, रायपुर, पृ. 124.

पोषण और शिक्षणः एक अवलोकन

अनुजा कुमारी

शोधप्रज्ञा, गृह विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

प्रो० (डॉ०) मंजू कुमारी सिन्हा

(शोध पर्यवेक्षक), विभागाध्यक्ष, गृह विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

शोध आलेख का सारतत्व :

पोषण मानव जीवन की मौलिक आवश्यकता है, जिसके बिना वह जीवित नहीं रह सकता है। स्वस्थ एवं सशक्त शरीर का निर्माण उचित पोषण पर ही निर्भर करता है। भोजन से शरीर को कई ऐसे तत्त्व प्राप्त होते हैं जो उसके लिए अनिवार्य है। शरीर एक मशीन की भाँति हमेशा कार्यरत रहता है और किसी भी मशीन के सही एवं संपूर्ण परिचालन के लिए शक्ति एवं ऊर्जा की आवश्यकता होती है। ये ऊर्जा एव शक्ति मानव शरीर को भोजन से प्राप्त होती है। भोजन में कई ऐसे तत्त्व, विद्यमान होते हैं, जिनके द्वारा शरीर सशक्त, निरोग एवं निरंतर कार्यरत रहता है। भोजन में पाए जाने वाले इन तत्त्वों को पोषक तत्त्व कहा जाता है। ये पोषक तत्त्व ही मानव शरीर को पोषण प्रदान करते हैं। स्वास्थ्य और पोषण में घनिष्ठ संबंध है। स्वस्थ रहने के लिए सभी को उचित पोषण की आवश्यकता होती है। पोषण उन प्रक्रियाओं का संयोजन है, जिनके द्वारा जीवित प्राणी अपनी क्रियाशीलता बनाए रखने के लिए तथा अपने अंगों की वृद्धि एवं उनके पुर्ननिर्माण के लिए आवश्यक पदार्थों को प्राप्त करता है और उनका उचित उपयोग करता है। उचित पोषण संतुलित आहार से मिलता है। उचित पोषण से तात्पर्य है- भोजन की आपूर्ति इस मात्रा और प्रकार में हो कि शरीर के प्रत्येक अंग की आवश्यकता की पूर्ति हो सके, शरीर के अंगों तथा उनकी सामान्य क्रियाओं के लिए आवश्यक ऊर्जा की पूर्ति हो सके तथा वे शरीर को कार्यरत रहने के परिणाम स्वरूप होनेवाली क्षति की पूर्ति कर सके। स्वास्थ्य के लिए पोषण आवश्यक है तथा उत्तम पोषण के लिए शिक्षण आवश्यक है। शिक्षा के माध्यम से ही व्यक्ति स्वास्थ्य और पोषण के प्रति सजग हो सकता है ।सार रूप में, स्वास्थ्य व पोषण तथा शिक्षण एक - दूसरे से संबंधित है।

प्रमुख शब्दावली: स्वास्थ्य, पोषण, शिक्षण ऊर्जा, संतुलित आहार, संतुलित भोजन, सक्रियता, समुचित वातावरण, कुपोषण।

प्रस्तावना :

पोषण को भोजन-विज्ञान एवं इसके स्वास्थ्य से सम्बन्धों के रूप में परिभाषित किया जाता है। शरीर भोजन द्वारा प्राप्त शक्ति से ही कार्य करता है. जिसमें भोजन के साथ होनेवाली प्रत्येक क्रिया शामिल है। पोषण, पोषक तत्त्वों एवं शरीर द्वारा उसके विविध उपयोग का अध्ययन है, जिसके द्वारा शरीर की वृद्धि, विकास एवं रखरखाव होता है। शरीर के पूर्ण विकास व स्वास्थ्य के लिए कोई एक भोजन समस्त भोज्य तत्त्वों की पूर्ति नहीं कर सकता है। प्रत्येक भोज्य तत्त्व से शरीर की किसी विशेष क्रिया का संपादन होता है। ज्यादातर भोज्य तत्त्व अन्य तत्त्वों से मिलकर शरीर को बेहतर स्वास्थ्य व गति प्रदान करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति जीवन पर्यन्त सभी पोषक तत्त्वों को ग्रहण करता है, किंतु अलग-अलग मात्रा का प्रयोग करता है। पोषक तत्त्वों की आवश्यकता व्यक्ति की उम्र, लिंग, कार्यशीलता तथा स्वास्थ्य की स्थिति पर निर्भर करती हैं। पोषक तत्त्वों की कितनी मात्रा में प्रयोग में लाया जाए, यह दक्ष भोजन विशेषज्ञों द्वारा नियत की जाती है। भोजन की व्यवस्था या हैंडलिंग भोज्य तत्त्वों की मात्रा, उसकी सुरक्षा, रूप व स्वाद पर जैसे निर्भर करता है। यहाँ हैंडलिंग या व्यवस्था का अर्थ उपजाने, प्रोसेसिंग, संग्रहण व पकाने के दौरान किए गए कार्यों से हैं। भोजन में चार बृहद् पोषक तत्त्वों जैसे जल, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा हैं जो शरीर के निर्माणकारक तत्त्व हैं। इसके अतिरिक्त विटामिन एवं विविध खनिज लवण लघु पोषक तत्त्व माने जाते हैं।स्वस्थ होने के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति की वृद्धि एवं विकास उम्र के अनुकूल हो। इसके साथ ही साथ उसमें जेनेटिक क्षमता, स्वस्थ मानसिकता, शरीर के उत्तकों व शरीरिक संरचना में अनुकूलता, रोगों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता, बीमारियों से बचाव वातावरणीय विषयों का घातक पदार्थों से जूझने की क्षमता भी होनी अत्यावश्यक है। पोषण, स्वास्थ्य एवं विकास का आधार है। बेहतर संतुलित पोषण स्वास्थ्य

के लिए अत्यावश्यक है। यह पोषण ही हमारे स्वास्थ्य का आधार है। पोषण रोगियों / व्यक्ति के स्वास्थ्य एवं कुशलता हेतु भोजन ग्रहण करने से लेकर शरीर द्वारा विभिन्न कार्यों के लिए प्रयुक्त होने के लिए आवश्यक है। पोषण ही कुपोषण को रोककर शरीर की वृद्धि एवं विकास करता है। शरीर को विभिन्न रोगों से बचाकर उसकी प्रतिरोधक क्षमता बनाए रखना भोजन ग्रहण करने का मुख्य उद्देश्य है। व्यक्ति के सामान्य शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक विकास एवं वृद्धि के लिए आदर्श व संतुलित भोजन बहुत ही आंवश्यक है। तथा इन सब की जानकारी के लिए पोषण तथा शिक्षण का संबंध आवश्यक है।

सामुदायिक पोषण स्तर को उच्च स्तर पर लाने हेतु विकासशील देशों में पोषण-शिक्षण को पिछले कुछ वर्षों से आवश्यक माना जाने लगा है। विकासशील देशों के पूर्व शालीय बच्चों एवं जनसंख्या के विशेष वगों में फैले हुए कुपोषण का मुख्या कारण आहारीय आवश्यकताओं एवं खाद्य-पदार्थों के पोषक मुल्यों की जानकारी का अभाव होना है। अत: पोषण-शिक्षण में व्यवहारिकता, खान-पान की आदतों स्थानीय खाद्य पदार्थों की उपलब्धता तथा आर्थिक- सामाजिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए विषयों का समावेश करना चाहिए। इसे सामुदायिक विकास कार्यक्रम का मुख्य भाग बनाने के साथ-साथ सभी माताओं/महिलाओं को सहभागी बनाना चाहिए जिनके माध्यम से संपूर्ण समाज में पोषण की सही-सही जानकारी उपलब्ध कराई जा सके। संपूर्ण विश्व में आहार एवं पोषण विशेषताओं के प्रशिक्षण के लिए विशेष कार्यक्रम चलाए जाते है ताकि विद्यालयों, महाविद्यालयों, अस्पतालों, मातृ-शिशु स्वास्थ्य केंद्रों के माध्यम से संपूर्ण समुदायों एवं वर्गों में पोषण के स्तर में सुधार ला सकें। पोषण-विशेषज्ञों को विषय के सैद्धांतिक एवं प्रायोगिक, दोनों पक्षों का ज्ञान होना चाहिए ताकि वे राष्ट्रीय पोषण कार्यक्रमों का सफल संचालन कर सकें। उन्हें न सिर्फ पोषण एवं आहारिकी का ज्ञान होना चाहिए, बल्कि सामाजिक संरचना उनकी आर्थिक व सामाजिक स्थिति का ज्ञान भी अवश्य होना चाहिए। कुपोषण की स्थिति एवं उनके पीछे छिपे कारणों को जानकर, उन्हें दूर कर ही कुपोषण से जनसंख्या को मुक्त कराया जा सकता है। आहार-विशेषज्ञों को विभिन्न शारीरिक स्थिति एवं अस्वस्थता की अवस्था में दिए जानेवाले आहारों की सैद्धांतिक एवं प्रायोगिक जानकारी दी जाती है। ऐसे लोगों को विश्वविद्यालय स्तर पर दी गई आहरिकीय (क्पमजमजपब) जानकारी दी जाती है ताकि वे अस्पतालों, स्कूलो, होटल एवं अन्य संस्थानों में पोषकीय जानकारी दें। अपने पूरे कार्यक्रम के दौरान वे अन्य नसों, शिक्षिकाओं एवं सामाजिक कार्यक्रर्ताओं में आहार एवं पोषण से जुड़ी जानकारियाँ उपलब्ध करा सकते हैं। भारत में जो आहार सर्वेक्षण किए गए हैं, उनसे पता चलता है कि हमारे यहाँ अधिकांश लोगों के पोषण का स्तर अत्यंत निम्न है। महिलाओं, धात्री माताओं और कुपोषण का प्रभाव सबसे ज्यादा गर्भवती एवं बच्चों पर पड़ता है। जनसंख्या के अनुपात में खाद्यान्त्र का उत्पादन नहीं बढ़ा है वर्तमान जनसंख्या को पोषण संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त भोजन, वे उच्च पोषण स्तर का आहार उपलब्ध नहीं है। धनाभाव में लोगों की पौषणिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाना संभव नहीं है और जबतक लोगों का आर्थिक सामाजिक स्तर नहीं सुधरता, तबतक उनसे पौष्टिक भोजन के प्रति जागरूक रहना अथवा पौष्टिक व संतुलित आहार ग्रहण करने की अपेक्षा नहीं की जा सकती। शिक्षा की कमी भी कुपोषण का एक महत्त्वपूर्ण कारण है। स्थानीय उपलब्ध सस्ते खाद्य पदार्थों से भी स्वादिष्ट एवं संतुलित भोजन बनाया जा सकता है। इस जानकारी के अभाव में महिलाएँ अपने परिवार को उचित आहार नहीं दे पाती हैं। ऐसे में पोषण शिक्षण की आवश्यकता बढ़ जाती है। अत: पोषण शिक्षा का प्रचार-प्रसार बहुत जरूरी है ताकि जन-समान्य पौष्टिक भोजन ग्रहण कर अपनी शारीरिक स्थिति एवं जीवनशैली में बदलाव ला सक स्वास्थ्य एवं हृष्ट-पुष्ट रहकर ही व्यक्ति अपने कार्यक्षेत्र में उत्त्पादकता बढ़ाकर धन अर्जित कर सकेंगे, जिससे देश, समाज एवं व्यक्ति विशेष का आर्थिक एवं सामाजिक विकास हो सकेगा। पश्चिमी देशों में लोग अपने स्वास्थ्य एवं जीवन शैली के विषय में बहुत जागरूक हैं, किंतु पिछड़े एवं विकासशील देशों में इसका सर्वथा अभाव है। ये विकसित देश, अन्य विकासशील देशों में जनसामान्य को शिक्षित करने, उनके पोषण स्तर को ऊँचा उठाने में अपना सतत् योगदान दे रहे हैं किंतु अभी लक्ष्य काफी दूर है। विभिन्न राष्ट्रीय एवं अर्न्तराष्ट्रीय संस्थाएँ, यथा युनीसेफ, विश्व स्वास्थ्य संगठन, खाद्य एवं कृषि संगठन प्ब्डत, केयर, समन्वित बाल विकास योजना आदि दिशा में अग्रसर है, ताकि जन-जन में पोषण संबंधी जागरूकता उनके स्वास्थ्य एवं जीवन स्तर में सुधार ला सके। भारत में थ्व्व्क थ्वत ॅवता एवं खाद्य सुरक्षा देने संबंधी कानून इसी संदर्भ में बनाए गए हैं ताकि सबको भरपेट भोजन मिल सके। उनका स्वास्थ्य बना रहे। गैर-सरकारी संगठनों व प्रशासन की मदद मिलने भी इस दिशा में अत्यावश्यक है।

पोषण शिक्षण के अग्रलिखित उद्देश्य हैं : (1.) जनता में पोषण की सलाह हेतु विशेषज्ञों की सेवा उपलब्ध कराना।(2.) सामुदायिक पोषण कार्यक्रम तथा संबंधित एजेंसियों के कार्यक्रमों में सामंजस्य स्थापित करना।(3.) पूरक आहार कार्यक्रम विकसित करना।(4.) समुदाय की पोषण-स्तर बेहतर बनाने के लिए विविध माध्यमों का प्रयोग।

पोषण शिक्षण कार्यक्रम का व्यवस्थापन महत्वपूर्ण होता हैं। किसी भी कार्यक्रम की व्यवस्थापन प्रक्रिया मुख्य रूप से चार चरणों में संपन्न होती है। कार्यक्रम नियोजन चाहे वह राष्ट्र अथवा समुदाय के स्तर का हो, इसका उद्देश्य लोगों के जीवन-स्तर को सुधारने, आर्थिक सामाजिक विकास एवं समानता लाने हेतु किया जाता है। इस उद्देश्यों की पूर्ति में पोषण महत्त्वपूर्ण रखता है। ख वर्तमान शिक्षण प्रणाली में आहार-पोषण संबंधी शिक्षण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। फलतः विशेषकर विकासशील देशों में पोषण शिक्षण पर विशेष जोर दिया जा रहा है। पोषण संबंधी शिक्षा देने का मुख्य उद्देश्य एक समूह को भोज्य पदार्थों के उत्पादन, उसे पकाने एवं वितरण करने के ज्ञान से परिचित कराने के लिए स्कूल या कॉलेजों में पाठ्यक्रम को अधिक जटिल न बनाकर सामान्य तौर पर हल्के-फुल्के ढंग से प्रशिक्षित करना है। अपने आहार के प्रति जागरूकता उत्पन्न करके उनकी अभिरूचियों को परिष्कृत रूप में प्रदर्शित करना भी पोषण-शिक्षण का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। किंतु पोषण-शिक्षण के अधि कांश क्रार्यक्रम मात्र पाक-विधियों के प्रर्दशन तक ही सीमित है। सिर्फ प्रदर्शन अथवा कहने से लोगों में प्रचलित पारंपरिक आहार का स्वरूप अथवा पाक विधि बदल नहीं सकती। अतः पोषण शिक्षिक को यह बताना चाहिए कि लोग प्राप्त संसाध नों से किस प्रकार गुणवत्तापूर्ण पोषण प्राप्त किया जा सकता है। किंतु लोगों की खाद्य-पदार्थों के प्रति रूचि, पाक विधि अथवा पोषण संबंधी सीमित ज्ञान के लिए पोषण विशेषज्ञ को दोषी नहीं दहराया जा सकता क्यों कि इस प्रकार के शिक्षण हेतु भी संसाधन अत्यंत सीमित हैं, जो पोषण-शिक्षा की राह में अनेक बाधाएँ उत्पन्न करते हैं। पोषण-शिक्षण की सफलता हेतु अग्रलिखित बातों पर ध्यान देना अनिवार्य प्रतीत होता हैः (1.) संपूर्ण समुदाय के लोग इन कार्यक्रमो की योजना उनके कार्यन्वयन तथा मूल्यांकन से किसी न किसी प्रकार सम्बद्ध रहें। (2.) आहार बनाने की विधि में किया जाने वाला परिवर्तन एकदम सीधी-सीधी सरल भाषा में बताया जाए तथा इस बात का पूरा ख्याल रखना चाहिए कि किसी भी व्यक्ति के पारंपरिक एवं धार्मिक विश्वास को ढेस न पहुँचे। सारे निर्देश सभी सहभागियो को समझ में आने चाहिए। (3.) सभी बच्चों, गृहिणियों एवं पुरूषों को भोजन-संबंधी जानकारियाँ एवं संदेश बार-बार दिए जाने चाहिए ताकि वे आपसी विपर्श से किसी मुद्दे पर एकमत हो सके। (4.) सभी लोग अपने-अपने क्षेत्रों में विशेषज्ञों द्वारा दी गई जानकारियों की चर्चा करें ताकि लोग इनसे अवगत होकर उन्हें अपने व्यवहार में अपना सकें।

यह उल्लेखनीय है कि विशेषज्ञों द्वारा दिए जाने वाले संदेश स्पष्ट एवं सीधी भाषा में दिए जाने चाहिए ताकि लोग इन्हें समझ पाएँ। उदाहरणस्वरूप, पोलियो का टीका नहीं लगाने से बच्चा पोलियोग्रस्त हो सकता है, विटामिन श्एश की कमी से बच्चा अंधा हो सकता है, कैल्शियम का प्रयोग नहीं करने से दाँतों एवं हड्डियों से संबंधित शिकायतें हो सकती हैं। पोषण-शिक्षण कार्यक्रम की सफलता उसकी ध्यानपूर्वक बनाई गई योजना पर निर्भर करती है। इस योजना में आहार एवं पोषण नीति जो सरकार द्वारा अपनाई गई हो, शामिल की जानी चाहिए। योजना जो सामुदायिक विकास कार्यक्रम के कार्यान्वयन हेतु चलायी जा रही हो, उनके लिए पर्याप्त मानवीय एवं भौतिक, आर्थिक साधनों की उपलब्धता होना अत्यावश्यक है।

पोषण शिक्षण करने के पहले उस परिवेश का अध्ययन कर लेना आवश्यक होता है जैसे लोगों के विषय में जानकारी हासिल करना ; लोगों के आहार के विषय में जानकारी हासिल करना ; लोगों की आर्थिक स्थिति का आकलन ; वातावरण की स्वच्छता तथा स्वास्थ्य कार्यक्रम की जानकारी।

यह भी उल्लेखनीय है कि सामान्यतः ऐसे ही कार्यक्रम सफल होते हैं, जो सभी लोगों की आवश्यकता को ध्यान में रखकर बनाए जाते हैं। पोषण कार्यक्रम बनाने के पूर्व पूरी जानकारी प्राप्त कर उक्त समुदाय के अनुकूल लाभकारी योजना बनाना चाहिए। किसी भी कार्यक्रम के नियोजन (Planning) के अंतर्गत कार्यक्रम से संबंधित समस्त क्रियाओं के ढंग गैर-सरकारी संगठनों व प्रशासन की मदद से पूर्ण से करने की इस प्रकार की योजना बनाई जाती है कि कार्य कुशलतापूर्वक हो जाए। दूसरे शब्दों में, कार्य कैसे, कब, कहाँ और किसके द्वारा किया जाए आदि प्रश्नों का उत्तर ही ढूंढना ही नियोजन है। निकेल एवं डारसी के अनुसार ष्एक वाछित लक्ष्य तक पहुँचने के लिए विभिन्न संभावित मार्गों के संबंध में सोचना, कल्पना के लिए विभिन्न संभावित मागों के संबंध में सोचना, कल्पना में प्रत्येक योजना की समाप्ति तक अनुगमन करना और व्यापक योजना का चुनाव ही नियोजन है।

पोषण शिक्षण कार्यक्रम को चार चरणों (Phases) में सामान्यतः संपन्न किया जाता है सर्वप्रथम, समन्वय सर्वेक्षण एवं प्रारंभिक योजना का नाम आता हैं। कार्यक्रम को आरंभ करने से पहले उस स्थान की वर्त्तमान स्थिति और आवश्यकताएँ जान लेनी चाहिए। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि उस देश या स्थान में यह कार्यक्रम सफल होगा या नहीं। अतः प्रथम चरण को संभावना सर्वे या रिसर्च कार्य कहते है। सामान्यतः इसमें राष्ट्रीय कर्मचारियों और अंतर्राष्ट्रीय प्रतिनिधि मिलकर कार्य करते हैं।

यदि यह संभव न हो तो देश की पोषण समस्या को हल करने के लिए बच्चों एवं परिवार का पूर्ण लेखा/आँकड़ा एवं कार्यक्रम का निर्देश, स्थान विशेष, जहाँ कार्यक्रम होना है, वहाँ के लोगों की रूचि, उनका पोषण संबंधी ज्ञान, साक्षात्कार, बाद-विवाद आदि सभी सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। जहाँ तक संभव हो, मुख्य क्षेत्रों में जाना आवश्यक है। इस अनुसंधान को रिपोर्ट में अग्रांकित बातों का होना आवश्यक है: (1) देश की आंतरिक, आर्थिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं एवं राष्ट्रीय योजनाओं और पोषण नीति के साथ संबंध। (2) भौगोलिक क्षेत्रों, जनसंख्या और विभिन्न समूहों की पोषण आवश्यकताओं, साधन, समय तथा आर्थिक-सामाजिक जरूरतों का ध्यान रखा जाना। (3) मुख्य क्षेत्रों, साधनों, लोगों की मनोवृत्ति एवं परिवर्तनों को ग्रहण करने की आंतरिक इच्छा का ज्ञान। (4) कार्यक्रम में साथ काम करने के लिए सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठनों प्रशासन की मदद मिलने की पूरी संभावना होनी चाहिए। (5) व्यक्तिगत प्रशिक्षण, आवश्यकता और विभिन्न स्तर पर प्राप्त साधनों और वहाँ प्राप्त आवश्यक सामग्रियों, आवश्यकताओं की तुलना, कार्यक्रम में लगने वाले समय तथा धन आदि का अनुमान होना चाहिए।

प्राथमिक आंकड़ों का संग्रहण और विस्तृत नियोजन भी एक महत्वपूर्ण चरण है। इस स्तर पर अधिक व्यापक और विशिष्ट रूप से सर्वेक्षण कर के सूचनाएँ प्राप्त की जाती है। इसे विस्तार से योजना बनाने में प्रयोग किया जाता है। इस स्तर पर कई सालों के लिए योजना बनाई जाती है और प्रारंभिक काल के लिए विभिन्न कार्यक्रम और विभागों के लिए अधिक विस्तार से योजना बनाई जाती है। यह योजना एक वर्ष या उससे अधिक दिनों की हो सकती है। इस सामान्य योजना को संयुक्त राष्ट्र की एजेंसियों ने कार्य योजना की संज्ञा दी है। इनमें अग्रलिखित महत्वपूर्ण बातों को सम्मिलित किया जाता हैं: (1.) भोजन एवं पोषण की समस्या, कार्यक्रम के उद्देश्य एवं अभिप्राय, कार्यक्रम के स्थान पर निर्धारित कर लेना चाहिए। (2.) कार्यक्रम के सामान्य उद्देश्य एव उसे प्रारंभ करने का कारण होना चाहिए। लंबे, मध्यम एवं छोटी अवधि के उद्देश्य जो कार्यक्रम का मार्ग निर्देशन करते हैं और उनकी प्रभावोत्पादकता मूल्यांकन का आधार बनती है।(3.) कार्य-योजना और इसमें भाग लेनेवाले व्यक्तियों, कर्मचारियों एवं विभागों उनके कार्य उत्तरदायित्व स्पष्ट होना चाहिए। (4.) कार्यक्रम की पुर्नपरीक्षा एवं अनौपचारिक शिक्षक की व्यवस्था होनी चाहिए।विभिन्न स्तर पर पूरा होनेवाले कार्य और उद्देश्यों की पूरी सारणी बनी होनी चाहिए।कार्यक्रम पूरा करने के लिए यदि कोई भी जरूरी बाह्य आवश्यकता या उपकरण की आवश्यकता है, तो उसका भी पूर्ण विवरण होना चाहिए। यह उल्लेखनीय है कि योजना अधिक लंबी नहीं होनी चाहिए।

प्राथमिक आँकड़ों के प्रकार एवं स्रोत प्राप्त किए जाने चाहिए। अतिरिक्त सर्वेक्षण और अध्ययन उन्हीं स्थानों पर किया जाना चाहिए, जहाँ इसकी जरूरत है अनावश्यक और अनुपयुक्त आँकड़ों की उपेक्षा की जानी चाहिए। वांछित आंकड़ों को हम अग्रलिखित वर्गों में बाँट सकते हैं-(क) भोजन वितरण और जनसंख्या/जनगणना अध्ययन तथा भोजन की खपत की विधि की सूचनाएँ।(ख) भोजन के उत्पादन और खपत के सामाजिक, आर्थिक कारण, आदतें और शैक्षणिक स्तर की सूचनाएँ।(ग) उपयोगी व सामयिक आंकड़े, जिसमे सेवा और नेतृत्व की विधियों, स्त्रियों की भूमिका और कार्य करने की आदतों का विवरण होना चाहिए।(घ) स्वास्थ्य और पोषण की स्थिति की सूचनाएँ।ये सभी आँकड़े अनेक स्रोतों से जमा किया जाता है जिसमें सरकारी विभागों की फाइल रिकार्ड, समाचार पत्र, रेडियो बायोग्राफी या इससे संबंधित व्यक्तियों की जाँच, वाद-विवाद या निरीक्षण आदि शामिल है। पोषणशास्त्रियों को किसी भी योजना को प्रारंभ करने से पूर्व निम्नलिखित आंकड़ों को प्राप्त करना आवश्यक होता है।

कार्यक्रम का क्रियान्वयन को दो वर्गों में विभाजित किया गया है:स्थानीय एवं गहन तैयारी तथा मुख्य क्षेत्रों में सक्रिय क्रियान्वयन। यह उल्लेखनीय है यह दूसरा स्तर है, जिसमें सर्वप्रथम योजना के प्रशासनिक औपचारिक क्रियाओं को व्यवस्थित करना पड़ता है। इस चरण में स्थानीय कमिटी को अधिक उत्तरदायित्व लेना चाहिए और जहाँ तक संभव हो, राष्ट्रीय, अर्न्तराष्ट्रीय एवं प्रादेशिक समितियों को भी इसमें हिस्सा लेना चाहिए। नई रूचि व नए विचार कार्यक्रम को बेहतर बनाते हैं। इसके लिए आवश्यकतानुसार उपकरणों, कर्मचारियों तथा अधिकारियों की सुविधा। होनी चाहिए। उन्हें पोषण मूल्य वाले भोज्य पदार्थों के उत्पादन के लिए प्रेरित करना चाहिए। कृषि प्रसार शिक्षण द्वारा कृषकों के अच्छी फसल, जिनका पोषक मूल्य अधि क हो, के उत्पादन हेतु जागरूक करना चाहिए। साथ ही साथ उन्हें संग्रहण एवं नए तकनीकों के विषय में शिक्षित करना चाहिए। इस प्रक्रिया में दो से तीन वर्षों का समय लग सकता है।जब विधियों एवं प्रक्रियाओं मे पूर्ण विश्वास हो जाए तो ध ीरे-धीरे उसका विस्तार क्षेत्रों में योजनानुसार किया जा सकता है। इस कार्यक्रम में मुख्य कार्यक्रम होने के कारण काफी सावध ानी बरतनी चाहिए।

नियंत्रण एवं निर्देशन : नियंत्रण वह शब्द जिसका अर्थ होता है किसी को बार-बार याद दिलाना अथवा आगाह कराना, निरीक्षण द्वारा इसकी जाँच एवं नियंत्रण करना। यह किसी भी कार्यक्रम का आवश्यक अंग है। कार्यक्रम के कार्यान्वयन के आरंभ में ही इस परिभाषित आवश्यक है। यदि इसे खाना खिलाने के कार्यक्रम मे लगाया गया है तो इसमें भोजन की व्यवस्था, केंद्र एवं भोजन कार्यक्रम के दौरान हुए परिवर्तन आदि को परिभाषित करना चाहिए।भोजन व्यवस्था के निर्देशन में भोज्य पदार्थो की प्राप्ति की सूचनाएँ उनका संग्रहण, परिवर्तन प्रोसेसिंग एवं लाभदायक वर्ग में उसका विवरण आदि सम्मिलित हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि इसमें भोज्य पदार्थ प्राप्त होने के स्रोत से लेकर अंत में जहाँ भोजन पहुँचता है, वहाँ तक की पूर्व सूचना उपलब्ध होती है। इस तरह के कार्यक्रम के निर्देशन में प्रशासनिक व आर्थिक संसाधन के प्रयोग के कारण विभिन्नता हो सकती है।

मूल्यांकन से तात्पर्य किसी व्यक्ति, कार्य या स्थिति का विश्लेशणात्मक अध्ययन करने से है जिससे उसकी त्रुटि एवं लाभ का ज्ञान हो सके। अत: किसी कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए उसके सही होने या गलत होने का अध्ययन किया जाता है। एक विद्वान के अनुसार ष्मूल्यांकन किसी कार्यक्रम के पहले और बाद की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन है जो पहले से निर्धारित समय के अंतर्गत क्रियाशील होता है।ष्अत: कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए समय-समय पर इसकी जाँच करना जिससे यह पता चल सके कि कार्यक्रम में कहाँ कमी है और फिर इस कमी को किस प्रकार दूर किया जाए, इसका मूल्यांकन किया जाता है।यह किसी भी योजना का आवश्यक चरण है या यूं भी कह सकते हैं कि यह किसी निश्चित लक्ष्य पर पहुँचने की प्रक्रिया है। पोषण शिक्षण के संदर्भ में संगठित विधियों द्वारा मूल्यांकन एक व्यवस्थित कोशिश है। अत: कार्यक्रम बनाते समय इसकी योजना भी बना लेनी चाहिए। जैसे-जैसे कार्यक्रम की प्रगति होती जाती है, उसकी विभिन्न विधियों, उपकरणों, आपूर्ति एवं निर्देशकों तथा परिणामों की परीक्षा कर लेनी चाहिए। कार्यक्रम के क्रिया-कलापों का परीक्षण एवं विश्लेषण तथा उसके अनुसार उसमें परिवर्तन लाने चाहिए।

पूरी मूल्यांकन की प्रक्रिया को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है। प्रथम, जिसमें व्यक्ति अपने-आप का अपनी सफलता एवं विफलता के कारणों की खोज करता है। दूसरा है अनौपचारिक मूल्यांकन, जिसमें कर्मचारियों की नियमित रिर्पोट, स्थानीय या जनता के साथ वाद् विवाद द्वारा किया जाता है। तीसरा कदम अनौपचारिक मूल्यांकन जो कार्यक्रम के प्रत्येक स्तर पर, पूर्व निश्चित समय पर परिणाम परीक्षण हेतु किया जाता है। समुदाय की जागरूकता, प्रतिक्रियाओं और क्रियात्मक प्रवृत्ति को जानते हेतु ज्ञान, मनोवृत्ति एवं अभ्यास का उपयोग किया जाता है। परंतु समुदाय से प्राप्त उत्तर या अनुभव की विश्वसनीयता पर संदेह होता है। अत: इस ज्ञान, अभ्यास व मनोवृत्ति का प्रयोग सीमित मात्रा में किया जाता है। मुल्यांकन का अर्थ है - परिवर्तन या प्रभाव को मापना। अत: सर्वप्रथम प्रारंभिक सूचनाएँ प्राप्त करना आवश्यक है। विकासशील देशों में इस प्रकार के आँकड़े प्राप्त नहीं होते और ये आँकड़े उपयुक्त भी नहीं होते। मूल्यांकन, कार्यक्रम में सम्मिलित एजेंसियों के संबंधों के अनुसार आंतरिक या बाह्य हो सकता है। कार्यक्रम के क्रियान्वयन करने वाले विभाग द्वारा आंतरिक मूल्यांकन किया जाता है तथा बाह्य मूल्यांकन में एजेंजियाँ स्वास्थ्य व पोषण क्षेत्र में कार्य करती है। बाह्य मूल्यांकन में पक्षपातपूर्ण तत्त्वों का अभाव होता है। यह मूल्यांकन सांख्यिकीय होता है। किंतु मूल्यांकन के पूर्व इन एजेंसियों को स्थानीय स्थिति एवं कार्यक्रम से संबंधित तथ्यों समस्याओं से परिचित होना चाहिए।

पोषण शिक्षण के निम्नलिखित माध्यम हैं : हेल्थ सेंटर माताओं के बीच पोषण शिक्षा देने के लिए एक आर्दश माध्यम है। यहाँ पोषण शिक्षण देने के लिए व्यक्तिगत संपर्क लेक्चर एवं कार्य-प्रर्दशन तथा पूरक आहार बाँटने की विधियाँ प्रयोग में लाई जा सकती हैं - (1.) व्यक्तिगत संपर्क : गर्भवती एवं धात्री माताएँ अपनी स्वास्थ्य समस्याओं को लेकर हेल्थ सेंटर में परामर्श हेतु जाती हैं। सेंटर में काम करने वाले चिकित्सक उन्हें आहार संबंधी सलाह देते हैं और बताते हैं कि उनके तथा उनके गर्भस्य शिशु को किस प्रकार पोषण लेना ठीक होगा। साथ ही साथ वे उन्हें स्वास्थ्य संबंधी परामर्श भी देते हैं। (2.) व्याख्यान एवं प्रदर्शन : आहरीय आवश्यकताओं, न्यूनताजनित बीमारियों तथा संतुलित आहार के विषय में जागरूकता फैलाने के लिए विधि-प्रदर्शित करने की जरूरत होती है। अत: माताओं एवं बच्चों के लिए स्थानीय प्राप्त अनाज एवं सब्जियों का पूरक प्रयोग किया जाना चाहिए। कुपोषित बच्चो, प्रोटीन-कैलोरी कुपोषण से पीड़ित लोगो, के विटामिन । की कमी से होनेवाली बीमारियों की उपस्थिति में प्रोटीन एवं विटामिन । के सांद्र स्त्रोत का प्रयोग किस प्रकार किया जाए, इसको चाट एवं पोस्टर की सहायता से दिखाया जाना चाहिए।(3.)पूरक भोज्य पदार्थो का वितरण : बच्चों के विकास हेतु प्रोटीन मुक्त भोजन/अनाज, गर्भवती महिलाओं में आयरन के टैबलेट्स एवं धात्री माताओं में इन टैबलेट्स के अतिरिक्त लौह लवण युक्त भोज्य पदाथों का वितरण

किया जाना चाहिए। साथ ही साथ माताओं व महिलाओं में इन भोज्य पदार्थों के विषय में जानकारी देनी चाहिए।(4.) महिला संगठन : महिला संगठन पोषण शिक्षण देने में मुख्य भूमिका अदा कर सकते है जहाँ बच्चों व शिशुओं के लिए स्थानीय स्तर पर प्राप्त भोज्य पदार्थों को बनाने के तरीको का प्रदर्शन किया जा सकता है। स्कूल शिक्षक तथा सामाजिक कार्यकर्त्ता इस कार्य में सहायता प्रदान कर सकते हैं। (5.) स्कूल एवं कॉलेज : स्कूल एवं कॉलेजों में पोषण- शिक्षण को पाठ्यक्रम में आवश्यक रूप से शामिल किया जाना चाहिए। इससे लड़के एवं लड़घकियों में, जो भावी माता-पिता हैं, संतुलित भोजन के संबंध में प्रशिक्षित किया जा सकता हैं। इससे अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक पोषक पदार्थों जो बच्चों गर्भवती स्त्रियों एवं धात्री माताओं को दिए जाने चाहिए, की जानकारी उपलब्ध कराई जा सकती है।

पोषण शिक्षण के निम्नलिखित तरीके हैं :

1. व्याख्यान एवं प्रदर्शन : पोषण शिक्षण हेतु दिए जानेवाले व्याख्यान सरल एवं व्यावहारिक होने चाहिए। ये आसानी से समझे जा सकें, उनके द्वारा जो इन्हें सुनते हैं। प्रायोगिक प्रदर्शन भी सरल होने चाहिए ताकि समुदाय इन्हें आसानी से अपना सकें।
2. कार्यशाला : पोषण संबंधी कार्यशाला में स्थानीय पोषण समस्याओं को शामिल किया जाना चाहिए। साथ-ही-साथ उन समस्याओं को सुलझाने के तरीके सामुदायिक पोषण को बेहतर बनाने के उपाय बताए जाने चाहिए।
3. फिल्म, तस्वीरें एवं स्लाइड्स (थ्पसउे, च्पबजनतमे दंक ैसपकमे)- फिल्म, तस्वीरें एवं स्लाइड्स आजकल बड़े पैमाने पर विचार प्रेषित करने के लिए प्रयोग में लाए जाते हैं। ये तरीके सबसे अधिक प्रभावशाली होते हैं किंतु ये माध्यम व इनके द्वारा प्रचारित संदेश व्यावहारिक विस्तृत एवं आसानी से समझे जाने योग्य होने चाहिए। इनमें क्षेत्रीय भाषा का उपयोग शिक्षण को ज्यादा बेहतर बना सकता है।
4. पोस्टर, चार्ट एवं प्रर्दशनी : पोषण शिक्षण हेतु प्रयोग किए जानेवाले पोस्टर साधारण, स्पष्ट एवं रंग व व्यवस्था में अच्छे और क्षेत्रीय भाषा में बने होने चाहिए। इनमें दर्शको में पसंद किए जाने व प्रोत्साहित करने की क्षमता होनी चाहिए। चार्ट दूर से ही दिखाई देने चाहिए। उनमें प्रयुक्त अक्षर बड़े व ग्राफ युक्त डिजाइन से बने होने चाहिए। सही तरीके से संतुलित भोजन एवं कुपोषण पैदा करनेवाले भोज्य पदार्थों का पदर्शन ऐसा होना चाहिए कि वो समझे जा सकें। प्रदर्शनी में लगाए गए पोस्टर एवं चार्ट स्थायी रूप से लगे रहने चाहिए ताकि लोग उन्हें समयानुसार देख सकें। ये प्रदर्शनियाँ स्कूल, कॉलेज, अस्पतालों, क्लब एवं अन्य लोक-स्थानों पर आसानी से देखी जानेवाली जगहों पर लगाए जाने चाहिए।
5. किताबें, पम्पलेट्स बुनेटिन एवं समाचार पत्र : पोषण एवं आहिरिक संदेश एवं साहित्य क्षेत्रीय भाषा में किताबों पम्पलेट्स एवं सामाचार पत्र में उपलब्ध कराई जाने चाहिए ताकि छात्र, छात्राएँ शिक्षक गण एवं सामान्य जनता तक बातें पहुँचाई जा सके।
6. रेडियो एवं टेलीविजन : रेडियो तथा टेलीविजन ऐसे संचार साधन हैं जिनकी सहायता से एक बार में बहुत लोगों तक संदेश पहुँचाए जा सकते हैं। क्षेत्र की विशेष पोषण समस्याएँ एवं उनसे संबंधित वार्ता टेलीविजन व रेडियो पर प्रसारित कर पोषण-शिक्षण को प्रभावी बनाया जा सकता है।

निष्कर्ष :

शोध आलेख के अब तक की विवेचन से स्पष्ट है कि पोषण शिक्षण गृह विज्ञान के अंतर्गत अध्ययन का एक बहुत ही महत्वपूर्ण विषय है।आहार विशेषज्ञों के अनुसार यदि व्यक्ति आहार को ग्रहण करता है , तो वैसी स्थिति में उसका शारीरिक और मानसिक विकास भी बेहतर होगा। पोषण कार्यक्रमों का सही ढंग से व्यवस्थापन से भी पोषण शिक्षण अपने उद्देश्यों को प्राप्त करता है । पोषण शिक्षण के कई चरण है ,जिनमें योजना बनाना, उनका क्रियान्वयन करना , आंकड़ों का संग्रह करना , विस्तृत नियोजन करना ,आंकड़ों के प्रकार तथा स्रोत के संबंध में जानकारी रखते हुए कार्यक्रमों का क्रियान्वयन और मूल्यांकन करना आदि महत्वपूर्ण है। पोषण शिक्षा के माध्यम से व्यक्तिगत संपर्क, व्याख्यान ,प्रदर्शन ,भोज पदार्थ का विवरण इत्यादि महत्वपूर्ण होता है। महिला संगठन, स्कूल कॉलेज तथा विश्वविद्यालय भी पोषण शिक्षा के महत्वपूर्ण शैक्षणिक माध्यम या साधन होते हैं। वर्तमान समय में मीडिया और विशेषत: सोशल मीडिया का पोषण शिक्षा में महत्व बढ़ गया है।

सन्दर्भ सूची :

प्रस्तुत शोध आलेख में कई महत्वपूर्ण अभिलेखों, पुस्तकों तथा सन्दर्भ ग्रंथों ससन्दर्भ लिया गया हैं , जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं :

1. सिंह, डा बृन्दा, ह्यूमन डेवेल्पमेंट एण्ड फैमिली रिलेशनसीप, पंचशील प्रकाशन जयपुर राजस्थान, थर्टीज एडीसन, 2019
2. वर्मा, डा. प्रमिला एण्ड पाण्डेय, डा. कांति, आहार एवं पोषण विज्ञान, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना तृतीय संस्करण, नवम्बर 2006
3. सिंह, डॉ. बृन्दा, आहार विज्ञान (फूड साइंस), पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2019
4. सिंह, डॉ. बृन्दा, आहार विज्ञान (फूड साइस), पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2018
5. स्वामीनायन, एम, इसेन्नसियल ऑफ फूड एण्ड न्यूट्रीशन, वाल्यूम-1, बलैकस्वान प्रकाशन, 1986
6. जैकब, ए.- न्यूट्रीशन एण्ड बायोकमेस्ट्री, एन पब्लि., 1993
7. सिंह, डा. बन्दना एवं सिन्हा अर्पणा, भोजन, पोशण एवं स्वास्थ्य, नोवेल्टी एण्ड कम्पनी प्रकाशन, पटना, वर्ष 2021
8. सिंह, डा. बृन्दा, मातृ एवं शिशु पालन, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2019
9. यू. एस. ए. आई. डी.. यू. एस. ए., 1945

समाज सुधार आन्दोलन और नवीन राजनीतिक संस्कृति के निर्माण की संकल्पना

डॉ० योगेश्वर नाथ पाण्डेय

इतिहास विभाग

प्रस्तावना-

19वीं शताब्दी के द्वितीय चरण तक राजनैतिक दृष्टि से अंग्रेजों का प्रभुत्व सारे देश में फैल गया। अत्याचार व शोषण के बढ़ते प्रभाव को देखते हुए 1857 ई0 में सर्वप्रथम भारतीय नरेशों, सैनिकों तथा देश के कुछ विशिष्ट लोगों ने विदेशी शासन को भारत से सदैव के लिए समाप्त करने का प्रयास किया। जिसे भारतीय इतिहास में गदर या भारत के प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम की संज्ञा दी जाती है। यद्यपि भारतीय इस स्वतंत्रता - संग्राम में सफलता प्राप्त करने में असफल रहे किन्तु भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अन्त हो गया। ज्यों-ज्यों भारतीयों ने अंग्रेजों के सम्पर्क में आकर नई प्रकार की शिक्षा और संस्कृति तथा यूरोपीय राजनैतिक विचार-धारा का प्रभाव स्वीकार किया, त्यों-त्यों भारत में नवीन राजनैतिक-संस्कृति का निर्माण होने लगा।

नवीन शिक्षा प्रणाली के प्रभाव से भारतीयों को जीवन के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा मिली। अंग्रेजों की सामाजिक चेतना, स्वतंत्र-प्रियता, राष्ट्रीयता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, अनुशासन आदि बातों ने भारतीयों को बहुत प्रभावित किया। मुद्रण-कला के बढ़ते प्रभाव से बड़ी सरलता से ग्रन्थ आदि उपलब्ध होने लगे, जो मध्य-काल में केवल राजाओं एवं राजमंत्रियों के हाथों में ही हस्तलिखित एवं सुशोभित होते थे। इस प्रकार समस्त नवीन ज्ञात प्रेस के माध्यम से मध्यवर्गीय लोगों के लिए सहजता से सुलभ हो गया। जिससे नवीन धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक, राष्ट्रीय चेतना के विकास में सहायता मिली।

इसी युग में गमनागमन के आधुनिक साधन विशेष रूप से रेल आदि का आरम्भ हुआ। जिसके फलस्वरूप देश में एक स्थान से दूसरे स्थान में जाना अत्यंत सुलभ हो गया। जो राष्ट्रीय एकता के लिए सहायक सिद्ध हुआ। इस प्रकार जहाँ एक ओर भारतवासियों का राजनैतिक और आर्थिक शोषण हो रहा था, जिसके फलस्वरूप महामारी, आर्थिक - दरिद्रय और बेगारी बढ़ती जा रही थी वही दूसरी ओर भारतीयों को अपनी राजनैतिक अधोगति का भी अनुभव होने लगा था। कुछ उदारवादी अंग्रेज जिन्हें भारतीयों से सहानुभूति थी, परोक्ष रूप से राजनैतिक चेतना के विकसित होने में सहायक हो रहे थे। 1876 में ''इण्डियन एसोसियशन" की भी स्थापना हुई जिसके मुख्यत: तीन उद्देश्य थे। प्रथम- राजनैतिक प्रश्नों और समस्याओं पर भारतीय जनता की सम्मति की स्थापना करना। द्वितीय- भारतीयों में राजनैतिक एकता का प्रयत्न करना। तृतीय- हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करना।[1]

इस प्रकार इन सभी स्त्रोतों से समाज में एक नवीन विचारधारा का जन्म हुआ। समाज में एक चेतना जागृति हुई। साहित्य, शिक्षा तथा कला में बौद्धिक जागृति आई। नई पीढ़ी में आन्दोलन पर उत्तेजना की नैतिक शक्ति का विस्तार हुआ। आर्थिक क्षेत्र में भी आधुनिकीकरण को अपनाया गया। धार्मिक क्षेत्र में हिन्दू धर्म के अन्तर्गत रूढ़ियों और अन्ध विश्वासों को त्यागने पर जोर दिया जाने लगा और धर्म का नवीनीकरण किया जाने लगा। भारतीय भाषा साहित्य और दर्शन में परिवर्तन होने लगा। अंग्रेजी बोलना लोग अपनी प्रतिष्ठा समझने लगे। मेमिनी और गैरोल्ड लोगों के आदर्श बन चुके थे। विदेशी शैली और भारतीय-प्राचीन चिन्तन में तालमेल बिठाकर एक नए साहित्य का सृजन हुआ। शकुन्तला, कादम्बरी, मेघदूत, रामायण आदि सभी धर्मग्रन्थों का विदेशी भाषाओं में अनुवाद हुआ। चारों वेदों का पश्चिमी भाषाओं में अनुवााद हुआ। इसके अतिरिक्त नव हिन्दूत्व की लहर का संचार हुआ। प्राचीन ग्रन्थों का पुनर्मुल्यांकन एवं अध्ययन, औद्योगीकरण एवं नगरीकरण का विकास, लोगों में राष्ट्रीयता की भावना का विकास साथ ही ललित कलाओं का भी बहिर्मुखी हुआ।[2]

समाज सुधार आन्दोलन:-

तत्कालीन परिस्थितियों से प्रेरित होकर समाज में, अनेक समाज सुधार आन्दोलन आरम्भ हुए- जिनमें ब्रह्म समाज आन्दोलन, आर्य-समाज आन्दोलन, रामकृष्ण मिशन, प्रार्थना-समाज, थियोसाफिकल सोसायटी, पारसी-सुधार आन्दोलन मुस्लिम-सुधार

आन्दोलन आदि का नाम लिया जा सकता है। इस शताब्दी के सुधार आन्दोलनों ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का प्रभावित किया।

(1) ब्रह्मम समाजः-

ब्रह्मम समाज की स्थापना 1828 ई0 में धर्म तथा सामाजिक उद्देश्य को लेकर स्वर्गीय राजाराम मोहन राय (1772-1833) द्वारा हुई। अनेक हिन्दू मनीषियों की भाँति इन्होंने निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना पर जोर दिया। उनके उद्देश्य का यही सार था कि समस्त धर्मावलम्बियों के बीच एकता के सूत्र को दृढ़ बनाया जाय।

राजा रामघ्मोहन राय संस्कृत के प्रकाण्ड पंण्डित और अंग्रेजी के विद्वान भी थे तथा फ्रेन्च, लैटिन, ग्रीक और हिब्रू का उन्हें पूर्ण ज्ञान था। राजाराम मोहन राय आधुनिक संस्कृति के जन्मदाताओं में से थे। उन्होंने हिन्दू-धर्म की स्थूलता को हटाकर उसे सूक्ष्म रूप दिया। धर्म के नकारात्मक स्वरूप को बदल कर सक्रिय रूप देने का श्रेय इन्हीं को है। राजाराम मोहन राय के बाद केशव, चन्द्रसेन (सन् 1838-1884 तक) ने ब्रह्म समाज का कार्य आगे बढ़ाया। ईसाई न होते हुए भी वे प्रथम भारतीय थे, जो ईसाईयत से सर्वाधिक प्रभावित थे। धर्म तथा समाज के प्रत्येक क्षेत्र में इन्होंने राजाराम मोहन राय के मिशन को आगे बढ़ाया और मूर्ति पूजा तथा कर्मकाण्डों का विरोध करते हुए निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर जोर दिया। महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर (सन् 1817-1905) ने सन् 1839 ई0 में ''तत्व-बोधिनि" नामक एक स्वतंत्र-सभा की स्थापना की। सन् 1842 ई0 में महर्षि देवेन्द्र ने ब्रह्म समाज में प्रवेश किया। इन्होंने जाति-पाति से परे समस्त मानव जाति को ब्रह्म की उपासना का अधिकारी माना।

केशवचन्द्र सेन के पश्चात् प्रताप मजूमदार ने केशवचन्द्र के सिद्धान्तों का प्रचार इस देश में ही नहीं वरन् विदेश में भी किया। केशवचन्द्र सेन ने जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे के नेतृत्व में प्रार्थना समाज की स्थापना की। इसी समाज से कालान्तर में ''सर्वेन्ट्स ऑफ इण्डिया सोसायटी" का जन्म हुआ। महाराष्ट्र प्रदेश में बम्बई, पूना तथा गुजरात प्रदेश में अहमदाबाद में इसकी विभिन्न शाखाएँ खोली गई। यद्यपि उत्तर प्रदेश और पंजाब में प्रार्थना समाज का विशेष प्रचार न हो सका।

(2) आर्य-समाजः-

स्वामी दयानन्द सरस्वती (सन् 1824-1893) ने वैदिक धर्म के प्रचारार्थ एवं हिन्दू समाज में सुधार के उद्देश्य को लेकर सन् 1875 में आर्य समाज की स्थापना की। दो वर्ष बाद लाहौर में आर्य-समाज की स्थापना हुई। स्वामी जी ने वेदों का नवीन भाष्य लिखा और सारे देश का भ्रमण कर वैदिक धर्म का प्रचार किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने ''सत्यार्थ प्रकाश" नामक ग्रन्थ का प्रणयन भी किया, जिसमें उनके समस्त सिद्धान्तों का संग्रह है। पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश में आर्य समाज आन्दोलन का विशेष प्रभाव पड़ा। उन्होंने वेदों पर ब्राह्महणों के विशेषाधिकार का खण्डन किया और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा स्त्री और पुरूष सबकों वेदों के अध्ययन का अधिकारी माना। वे स्थूल कर्मकाण्ड एवं मूर्तिपूजा के घोर विरोधी थे। आर्य समाज के प्रभाव में आकर बहुत से लोगों ने अपने घर के देवी देवताओं की प्रतिमाओं को तोड घ्कर बाहर फेंक दिया बहुतों ने श्राद्ध की पद्धति बन्द कर दी और बहुतों ने पुरोहितों को अपने यहाँ से विदा कर दिया।[3]

अपरोक्ष रूप से स्वामी ने राष्ट्रीयता के प्रचार में भी काफी योगदान दिया। सामाजिक कुरीतियों का निवारण करते हुए भारतीयों को स्वतंत्रता संग्राम में कूद पडने की प्रेरणा दी। वे प्रथम भारतीय थे, जिन्होंने 'स्वदेशी' का प्रचार आरम्भ किया। उन्होंने भारतीयों को उनके गौरवपूर्ण अतीत का स्मरण कराते हुए भविष्य के नव जीवन निर्माण का संदेश दिया। आर्य समाज ने आगे चलकर सार्वजनिक आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। उसने अपने अनुयाइयों एवं समाज को आगे बढ़ाने के लिए नव-स्फूर्ति एवं नव-उत्साह प्रदान किया। ''शुद्धि" द्वारा समाज की सुरक्षा इसका अपना मौलिक प्रयास था।

(3) थियोसॉफिकल सोसायटीः-

थियोसॉफिकल सोसायटी का जन्म सन् 1875 में मैडम ब्लावाटस्की एवं कर्नल आल कॉट द्वारा अमेरिका में हुआ था। सन् 1879 में डॉ0 एनीबेसेन्ट ने इस सोसायटी में प्रवेश किया और अपना सारा जीवन जनसेवा में समर्पित कर दिया। सर्वप्रथम सन् 1879 में मद्रास के निकट अड्यार में इस सोसायटी का केन्द्र खोला गया। डॉ0 एनी बेसेन्ट के अनुसार - ''भारतीयों का कर्तव्य है कि सर्वप्रथम प्राचीन हिन्दु धर्म, पारसी एवं बौद्ध धर्म का पुनरूद्धार कर उन्हें पुनः शक्तिशाली बनाया जाय।[4]

इस उद्देश्य के फलस्वरूप देशवासियों में एक नवीन आत्म गौरव की चेतना, अतीत के प्रति गर्व तथा भविष्य के प्रति अखण्ड विश्वास की भावना जागृत हुई और परोक्ष रूप से धर्म सुधार, समाज-सुधार और राष्ट्र-भक्ति के द्वारा एक नए राष्ट्र-निर्माण की प्रेरणा उत्पन्न हुई। डॉ0 एनी बेसेन्ट-अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व की महान महिला थी। सन् 1907 में वे सोसायटी

की अध्यक्ष चुनी गई। उनके नेतृत्व में थियोसाफिकल सोसायटी ने भारतीय जीवन के राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

(4) रामकृष्ण मिशनः-

स्वामी रामकृष्ण परमहंस की (सन् 1836-1886) पुण्य स्मृति में स्वामी विवेकानन्द (1862-1902) ने 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की। स्वामी विवेकानन्द पहले ब्रह्म समाज के सदस्य थे। किन्तु परमहंस से प्रभावित होकर इनके शिष्यत्व में आ गए। विवेकानन्द ने वेदान्त का विशेष रूप से प्रचार किया। सन् 1893 में शिकागों के विश्व धर्म सम्मेलन में हिन्दू-वेदान्त को सर्वोपरि सिद्ध किया। रामकृष्ण मिशन ने नवयुग के अनुसार हिन्दू धर्म का नए रूप में प्रचार किया एवं सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन में भी उसे स्थान दिया। रामकृष्ण मिशन की अनेक शाखाएँ भारत के कोने-कोने में फैल गई जिन्होंने धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय तथा शिक्षा के क्षेत्र में देश की बहुत सेवा की। मिशन के शिष्यों के कई वर्ग थे एक उन सन्यासियों का वर्ग जो आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर ईश्वर और मानवजाति की सेवा में अपना सारा जीवन अर्पित कर देते है, दूसरा वर्ग उन सांसारिक एवं सामाजिक जीवन यापन करने वाले व्यक्तियों का जो अपनी जीविका स्वयं उपार्जित करते हैं किन्तु अपने जीवन को परमहंस के सिद्धान्तों के अनुसार ही व्यतीत करते है। इस प्रकार दूसरे वर्ग के लोग प्रत्यक्ष रूप से धर्म सुधारक या समाज सुधारक नहीं कहे जा सकते किन्तु फिर भी मिशन के सन्यासी उनके सुधार के संदेश के प्रचार एवं प्रसार में पर्याप्त सहायता पहुँचाते थे।

उपर्युक्त संस्थाओं के अतिरिक्त अन्य अनेक छोटी-छोटी संस्थाओं ने भी समाज के किसी न किसी क्षेत्र में सुधार के कार्य को आगे बढ़ाया। इन संस्थाओं में रानाडे का ''डेकन एजूकेशन सोसायटी'' (सन् 1884), गोखले का ''सर्वेन्टस ऑफ इण्डिया सोसायटी'' (सन् 1905), सोशल रिफार्म एसोशिएशन (1904), सोशन सर्विस लीग एवं दलित वर्ग आन्दोलन आदि मुख्य थे जिन्होंने अपनी संस्थाओं द्वारा। सामाजिक क्षेत्र के शिक्षा सम्बन्धी सुधार करने एवं स्त्री जाति की दशा उन्नत करने के अनेक प्रयत्न किए और ब्रह्म समाज, आर्य समाज, आदि समाज सुधार आन्दोलनों के कार्य को आगे बढ़ाया।

इन समाज सुधार आन्दोलनों के अतिरिक्त कांग्रेस ने भी इस क्षेत्र में पर्याप्त योगदान दिया। सन् 1885 में कांग्रेस की स्थापना हुई उस समय देश की प्रगति के लिए सामाजिक सुधार की आवश्यकता का अनुभव किया गया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सन् 1888 में कांग्रेस की प्रत्येक बैठक के साथ प्रतिवर्ष 'राष्ट्रीय समाज सुधार-परिषद' के अधिवेशन भी होने लगे। इस परिषद के प्राण थे महादेव गोविन्द रानाडे। इसमें प्रत्येक वर्ष स्त्री-शिक्षा के र्प्रसार पर बाल-विवाह निषेध, पर्दा-प्रथा विरोध, विधवाओं एवं अस्पृश्यों की दशा सुधारने, अन्तर्जातीय खान-पान और विवाह संबंधी विषयों पर प्रोत्साहन देते हुए र्प्रस्ताव पास होते थे। सन् 1890 में समाज सुधार का एक प्रबल समर्थक साप्ताहिक पत्र 'सोशल रिफार्म निकाला गया। सन् 1897 में बम्बई मद्रास में समाज सुधार के प्रान्तीय संगठन भी बने। इस प्रकार समाज सुधार का कार्य कांग्रेस द्वारा भी पर्याप्त रूप में हुआ।

उन्नीसवीं शताब्दी में समाज-सुधार का जो फार्म आरम्भ हुआ। राजाराम मोहन राय इन समाज सुधारकों में अग्रणी थे। अनेक विषयों में भारत के पथ-प्रदर्शक होते हुए भी वे भारत की प्राचीन संस्कृति को उसके समग्र रूप में ग्रहण नहीं कर सके थे। हिन्दू-धर्म को भी उन्होंने पूर्ण सम्मान नहीं किया था। उन्होंने संस्कृत के स्थान पर अंग्रेजी को उच्च आसन प्रदान किया। यद्यपि वे समाज में परिवर्तन करना चाहते थे किन्तु यह कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं होगा कि परिवर्तन की यह चिन्तन पद्धति उनके निजी जीवन-धारा में ही सीमित होकर रह गयी थी।

सती दाह-प्रथा को समाप्त करने और समुद्र यात्रा को आरम्भ करने में निश्चय ही उनका अधिक योगदान था। प्राचीन पंथी हिन्दुओं की दृष्टि से, राममोहन के द्वारा सामाजिक-सुधार का यह प्रयास विरोधी लगने पर भी मानना पड़ेगा कि वे तत्कालीन भारत में एक उदारता पूर्ण गतिशील मनोभाव का संचार करना चाहते थे, और इस कार्य में उन्हें थोड़ी बहुत सफलता भी मिली। लेकिन पश्चिमी शिक्षा में शिक्षित थोड़े से लोगों के द्वारा इस नये नेतृत्व को मान लेने पर भी विराट हिन्दू समुदाय पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। राम मोहन राय की विचारधारा में मानों एक विदेशी मनोभावना ने ही प्रकट होकर हिन्दुओं की आत्मश्रद्धा पर चोट की थी, जिसे हिन्दु जाति सादर स्वीकार नहीं कर सकी। राम मोहन राय मुसलमान और ईसाईयों की भाँति प्रतिमा पूजन को मूर्ति पूजा कहा करते थे। वे उन्हीं की भाषा में उनकी निन्दा किया करते थे। उनके विचार के अनुसार प्रतिमा की पूजा करने वाले देश में नैतिकता की कमी हो जाती है। इससे अवैध सम्बन्धों का मार्ग खुल जाता है तथा आत्म हत्या, नारी हत्या, नरमेध यज्ञ आदि-आदि होने लगते हैं, मूर्ति पूजक देश में बुद्धि की उन्नति नहीं हो पाती।[5]

इसलिए वेदान्त विहित धर्म की फिर से स्थापना की आवश्यकता का अनुभव करने पर भी राम मोहन राय उपनिषद का सहारा लेकर सगुण, निराकार की उपासना में रत हुए। सगुण उपासना को उनके द्वारा संशोधित धर्म सिद्धान्त में कोई जगह न मिली। अंग्रेजी की भाँति राम मोहन राय ने भी मान लिया कि सांसारिक उन्नति के लिए हिन्दुओं को अपने धर्म में सुधार करना चाहिए।

राजनैतिक जीवन में सुअवसर और सुविधा पाने तथा सामाजिक जीवन में सुख-स्वच्छन्दता की व्यवस्था की इच्छा ने राम मोहन राय की विचारधारा को इस प्रकार का स्वरूप प्रदान किया था। वे एक उन्नति प्रदान करने वाले सर्वव्यापी धर्म के सहारे भारतीय समाज को सुसम्बद्ध और सतेज कर देना चाहते थे। राजा राम मोहन राय भारत में पश्चिमी शिक्षा फैलाकर अपने देश को पश्चिमी ज्ञान विज्ञान से समृद्ध करना तथा इसे एशिया महादेश के नेता के पद पर प्रतिष्ठित देखना चाहते थे।

राजा राम मोहन राय में जो भाव धारा कभी क्षीण और कभी सबल रूप में बहती थी उसी ने बाद में ब्रह्म समाज के द्वारा एक साकार रूप धारण किया। राजा राम मोहन राय अपने को अहिन्दू नहीं कहा। वे आदि ब्रह्म समाजी सनातन भावधारा में पूरी तरह से अलग नहीं होना चाहते थे।[6]

देवेन्द्र नाथ ठाकुर का नाम भी समाज सुधारकों में अग्रणी रहा है। वे मूल रूप से भारतीय थे। किन्तु साधारण ब्रह्म समाज में विवाह और आहार विहार में जाति भेद को अस्वीकार कर दिया। तब विधान समाज विभिन्न धर्मो का निचोड़ लेकर विशेष रूप से ईसा मसीह को प्रमुखता देकर एक नया धर्म सिद्धान्त गढ़ने में लग गया। युवा काल में केशवचन्द्र सेन (1838-84) देवेन्द्रनाथ के ही शिष्य और सहयोगी थे। किन्तु शिष्य के मन में उठ रहे इन सब नये भावों के कम्पन्न को देवेन्द्रनाथ देख रहे थे। 1866 ई0 में दोनों अलग- अलग रास्ते पर चल पड़े। केशव चन्द्रसेन ने खुलकर ईसा मसीह का धर्म प्रचार भारत में करना आरम्भ कर दिया। इससे ब्रह्म समाज में घोर आन्दोलन छिड़ गया। परिणाम स्वरूप केशवचन्द्र दूसरे सम्प्रदायों के महापुरूषों के प्रति भी श्रृद्ध व्यक्त करने लगे। विभिन्न सम्प्रदाय के लोगों को भी ब्रह्म समाज में प्रवेश करने का अधिकार प्रदान किया गया। हिन्दुओं के देवी देवताओं को भी महत्व प्रदान किया गया। केशव चन्द्र सेन न 1865 ई0 से ''नवविधान'' का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। केशव उनके कार्य और विचारों में अन्तर्विरोध विद्यमान रहा। बाल विवाह के विरोधी होकर भी उन्होंने अपनी कम उम्र की पुत्री का विवाह कूच बिहार के राजा के पुत्र से कर दिया। जिसके कारण दल के सदस्य केशवसेन के विरूद्ध हो गये। इस प्रकार ब्रह्म समाज का उद्देश्य आशा के अनुरूप सफल सिद्ध नही हो सका। इसका प्रभाव उच्च प्राप्त लोगों तक ही सीमित रह गया। 1884 ई0 में केशवचन्द्र के निशन के समय समाज के सदस्यों की संख्या 6,400 थी।

केशवचन्द्र सेन के समय से ही ब्रह्म समाज के द्वारा पश्चिम का अनुकरण किये जाने के विरोध में हिन्दू समाज का ही एक व्यक्ति सिर उठाकर खड़ा हो गया। वे व्यक्ति थे स्वामी दयानन्द सरस्वती (1824-83) उन्होंने 10 अप्रैल 1875 ई0 को ''आर्य समाज की स्थापना की। यद्यपि अनेक विषयों में आर्य समाज और ब्रह्म समाज में समानता दिखाई देती है। दयानन्द रूढ़िवादिता और कुसंस्कार के विरोधी, जाति-भेद की प्रथा को समाप्त करने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ, मूर्ति-पूजा विरोधी, और एकेश्वरवादी थे। ब्रह्म समाज ने उपनिषद के ब्रह्म तत्व का अवलम्बन किया था दयानन्द ने उपनिषद की प्रमाणिकता को अस्वीकार कर वेद की संहिता को अवलम्बन ले प्राचीन यज्ञ आदि गौण विधियों के विन्यास में अपने को अर्पित कर दिया। ब्रह्म समाज की भाँति आर्य समाज भी बहुतांश में सनातन धर्म विराधी था। तथापि दयानन्द के संस्कृत साहित्य में पाण्डित्य विरोध की प्रबल आकांक्षा, अपने सिद्धान्त में विश्वास, सामाजिक बोध और वीरता पूर्ण प्रचार अभियान के फलस्वरूप इस समाज का प्रभाव, उत्तर-पश्चिम भारत के कुछ भागों में तेजी से फैल गया।[7]

निष्कर्ष -

इन संस्थाओं के क्रियाकलापों से ईसाई मिशनरियों का प्रचार कार्य विशेष रूप से बाधित हुआ। किन्तु विराट हिन्दू समाज इस विचार धारा से भी पूरी तरह जागृत नहीं हो सका। फिर नया ज्ञान और कार्य प्रणाली का सहारा लेने पर जिस प्रकार ब्रह्म समाज एक संकीर्ण नये सम्प्रदाय में परिणत हो गया था, आर्य समाज का वैसा ही भाग्य हुआ। दोनों समाजों के सदस्यों के मन में और तटस्थ दर्शकों के हृदय में यह सन्देह बना ही रहा कि ये दोनों सम्प्रदाय हिन्दू हैं या नहीं। ब्रह्म समाज के द्वारा असवर्ण विवाह तथा सिविल मैरेज को स्वीकार कर लिए जाने एवं आर्य समाजियों के द्वारा जाति भेद को समाप्त करने के फलस्वरूप यह अलगाव और भी अधिक स्पष्ट दिखाई पड़ने लगा था। इस प्रकार पश्चिमी देशों के आगमन से उत्पन्न

तत्कालीन परिस्थिति के साथ हिन्दुओं के विचार में सामूहिक रूप से समझने योग्य समस्या और उसका समाधार पहले की भाँति ही अविवंचित एवं अपूर्ण रह गया।[8]

संदर्भ

1. कल्चरल हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इण्डिया-युसूफअली - 89।
2. मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, प्रो0 यदुनाथ सरकार, पृ0 150।
3. कल्चरहिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इण्डिया, युसुफअली, पृ0 138।
4. भारतीय संस्कृति के चार, अध्याय, रामधारी सिंह ''दिनकर", पृ0 400।
5. भारतीय संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह ''दिनकर", पृ0 410।
6. स्वामी रामकृष्ण, रोमां रोलां, पृ0 105।
7. भारत में अंग्रेजी राज (द्वितीय भाग), डॉ0 सुन्दर लाल, पृ0 248।
8. भारत में अंग्रेजी राज (द्वितीय भाग), डॉ0 सुन्दर लाल, पृ0 248।

रामायण युगीन ग्रामीण जीवन का सामाजिक एवं आर्थिक अध्ययन

डॉ० अखिलेश नारायण मिश्र

असिसटेंट प्रोफेसर संस्कृत विभाग, जीडी बिनानी पीजी कॉलेज मिर्जापुर

प्रस्तावना -

रामायणकालीन समाज नृशास्त्रीय दृष्टिकोण से अनेक जातियों का संगम प्रतीत होता है। भारतवर्ष को अनेक जातियों का महासागर कहा जाता है। इस तथ्य के प्रमाण महाकाव्य में यथेष्ट रूप से मिलते हैं। उत्तर-वैदिक काल का आते-आते जनसंख्या, क्षेत्रफल और प्रभुता, सभी दृष्टिकोण से आर्य जाति का विस्तार हुआ। आर्यों ने आर्येतर जाति की कन्याओं से विवाह किया। ये विवाहित कन्यायें सभी आर्य जाति के अन्तर्गत आ गई, जिससे आर्यों की जनसंख्या बढ़ी। इसके अतिरिक्त आर्यों ने अपने समन्वयात्मक प्रवृत्ति के कारण दास या दस्यु कहलाने वाली आर्येतर जाति को अपने वृत्त में सम्मिलित करके, उसे चौथा वर्ण बना लिया और इस प्रकार आर्यों की जनसंख्या में विस्तार हुआ। यह सत्य है कि जो विशुद्ध आर्य थे, अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य- ये शूद्रों की अपेक्षा अपने को श्रेष्ठ समझते थे और इसी कारण धीरे-धीरे 'आर्य' शब्द संज्ञा से 'विशेषण' बन गया। किन्तु इस युग में जो जातियां आर्यों के वृहत्वृत्त के अन्तर्गत नहीं आई, उनसे भी आर्यों ने सामाजिक सम्पर्क स्थापित किये। इस प्रकार तात्कालिक समाज आर्य और अनेक आर्येतर जातियों के सम्पर्क के फलस्वरूप, एक भारतीय समाज के रूप में दिखाई पड़ता है।

आर्य जाति के अतिरिक्त रामायण में अन्य अनेक आर्येतर जातियों का भी उललेख का भी उल्लेख मिलता है, जो नृशास्त्रीय दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। इन जातियों को हम निम्नलिखित प्रमुख वर्गों में बांट सकते हैं-

1. निषाद
2. किरात
3. कन्नर, यक्ष, गन्धर्व, अप्सरस
4. राक्षस, दानव, दैत्य, पिशाच, असुर
5. वानर, यक्ष
6. नाग, गृध्र, उरग

निषादः-

यह वाल्मीकि रामायण का बहुचर्चित एक महत्वपूर्ण शब्द है अथावा यों कहें कि 'निषाद' ही वाल्मीकि रामायण की रचना का प्रमुख कारण है। प्रथम श्लोक (मा निषाद... ...) में निषाद का परिचय एक आखेटक के रूप में मिलता है, जो हिंसा द्वारा अपना जीवनयापन करता था। निषाद ऊंचे कद के, शरीर से हृष्ट-पुष्ट, बलवान तथा श्याम वर्ण के होते थे।[1] रामायण में अनेक सिानों पर इनके राज्यों की ओर संकेत भी मिलता है, उदाहरणार्थ श्रृंगवेरपुर में निषादाधिपति गुह वास करता था, जो राम का घनिष्ठ मित्र था, जिसने राम के वनगमन के समय श्रृंगवेरपुर में उनका यथेष्ठ स्वागत किया।

किरातः-

इनकी उत्पत्ति के विषम में रामायण में एक पौराणिक कथा की ओर संकेत मिलता है। वाल्मीकि का मत है कि वशिष्ठ की गाय के रोम कूपों से किरात प्रकट हुए थे तथा अन्यों के साथ इन लोगों ने भी विश्वामित्र की समस्त सेना का संहार कर डाला था, अर्थात् ये युद्ध भी किया करते थे। रामायण से इस तथ्य की ओर संकेत मिलता है कि ये जातियां पर्वतों, समुद्रों के किनारों तथा द्वीपों में निवास करती थीं।

किन्नरः-

(संस्कृत तद्भव) वाल्मीकि रामायण में यह शब्द एक विशिष्ट जाति का बोधक है। किन्नर-गण प्रमुखतः संगीतकला में निपुण थे। कैलास पर्वत पर मधुर कण्ठवाले कामार्त किन्नर, अपनी कामिनियों के साथ रागयुक्त गीत गाया करते थे। चित्रकूट पर जहां राम का निवास था, उसके आस-पास भी किन्नर रहते थे। क्रीडार्थ ये सुदर्शन पर्वत पर भी आते-जाते रहते थे।[2] विद्वानों के अनुसार यह एक स्त्रैण जाति थी, जो सदा श्रृंगारिक गीतों और क्रीडाओं में मग्न रहती थी।[3]

यक्षः- 'यक्ष' शब्द किन्नर का ही समवर्गी तथा विशिष्ट जाति का बोधक है। किन्नरों की भांति ये भी क्रीड़ा-विहार, संगीत-कला, स्तुतिगानादि में प्रवीण थे, किन्तु किन्नरों की अपेक्षा इनका क्षेत्र अधिक व्यापक था। ये विस्तृत राज्य के अधिपति थे तथा युद्ध-विद्या में भी निपुण थे। अन्य जातियों के साथ यक्ष भी प्रायः सभी महत्वपूर्ण अवसरों पर उपस्थित रहते थे।

गन्धर्वः- गन्धर्व प्रायः आश्रमों एवं पर्वतों पर निवास करते थे। वशिष्ठाश्रम एवं सोमाश्रम इनके निवास से सुशोभित था।[4] पश्चिमी समुद्र के मध्य 'परियात्रा पर्वत'[5] पर चौबीस करोड़ गन्धर्व निवास करते थे, इसके अतिरिक्त अरिष्ट पर्वत, महेन्द्र-गिरी पर भी अनेक गन्धर्व वास करते थे।जनसाधारण का मनोरंजन करना इनका प्रधान लक्ष्य था।

अप्सरस्ः- वाल्मीकि के अनुसार इनकी उत्पत्ति समुद्र-मंथन से हुई। समुद्र-मंथन करने से दी 'अप्' में से ये सुन्दरी स्त्रियां उत्पन्न हुई, इसलिए इनका नाम 'अप्सरस्' पड़ा, किन्तु देव एवं दानवों में से कोई भी उन्हें पत्नी रूप में ग्रहण करने को तैयार नहीं हुआ, जिससे वे 'साधारण' (सब के लिए सुलभ) स्त्रियां बन गई।[6] अप्सराएं संगीत विद्याा, विशेषतः नृत्य-विद्या में अत्यन्त निपुण एवं कुशल होती थीं, यही कारण है कि प्रत्येक राजनीतिक एवं सामाजिक उत्सवों के अवसर पर उपस्थित होकर अपना नृत्य प्रस्तुत करती थीं। राम-जन्मोत्सव, राम-राज्याभिषेक के अवसर पर ये अपना नृत्य प्रस्तुत करती हैं।

दानवः- पौराणिक परम्परा के अनुसार दानव दनु के पुत्र थे। राक्षस राज रावण ने दैत्यों के साथ दानवों को भी अनेकों बार हटाया था, अतएव दानवों और राक्षसों का मैत्री भाव नहीं था। आकार-प्रकार, शारीरिक गठन तथा वर्ण के दृष्टिकोण से ये दैत्यों से मिलते-जुलते थे। इनके निवास सीन सागर, द्वीप, पाताल लोक तथा वन-भाग थे।

असुरः- असुर पाताल में निवास करते थे तथा मांस इनका प्रिय आहार था। 'पिशिताशनः, वातापि और इत्वल इनक प्रमुख नेता थे, जो अगस्त्य के हाथों मारे जाते हैं। असुर लोग ब्राह्मण संस्कृति के प्रबल विरोधी, ऋषि-मुनियों के द्वेषी एवं ब्रह्महत्यारे थे। यज्ञ-विरोधी असुरों को मारने के लिए दण्टकारण्य के ऋषिगण राम से प्रार्थना करते हैं और राम समय-समय पर इन विप्र-घाती असुरों का विनाश करते हैं।

वानरः- 'वानर' शब्द का उल्लेख प्रमुखतः अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकांड, सुन्दरकांड, युद्धकाण्ड एवं उत्तरकांड में हुआ है। वर्ण के दृष्टिकोण से वाल्मीकि ने इन्हें सायंकालीन सूर्य रश्मि के समान पीत एवं हेम पिंगल कहा है। शारीरिक आकार प्रकार के विषय में वाल्मीकि ने इन्हें दैत्य समान वीर, पराक्रमी एवं भयनाक कहा है। प्रलम्बाहु, भीमकाय एवं दैत्य, दानव, राक्षसों की भांति मांसाहारी न होकर ये शाकाहारी थे। निष्ठा, ईमानदारी, मैत्रीभाव, भक्तिभाव, कृतकृत्यता आदि श्रेष्ठ गुण इनमें विद्यमान थे। भवन, ग्राम, नगर-निर्माण कला का इन्हें ज्ञान था, क्योंकि किष्किन्धापुरी का पर्याप्त उल्लेख किष्किन्धाकाण्ड में मिलता है, जहां कैलाश शिविर के समान विशाल भव्य एवं राज प्रसाद थे। वानरों की युद्धप्रणाली आर्यों की युद्धप्रणाली से कुछ भिन्न थी। विश्व की अनेक आदिम जातियों की भांति वानरगण पाषाण खण्डों, वृक्षों, वृक्षों की डालियों का प्रयोग करते थे। इनके मुक्के एवं पदप्रहार भी प्रसिद्ध थे और गदा-युद्ध भी करते थे। आर्यों की भांति ये तलवारों, धनुषबाणों का प्रयोग करते थे। मल्लयुद्ध में तो ये निपुण होते ही थे।

नागः- नागों की राजधानी भोगवती नगरी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि रामायण-युग में नागों का राक्षसदि जातियों से निरन्तर युद्ध होता रहता था। राक्षसराज रावण ने भोगपुरी पर आक्रमण करके वासुकि, तक्षक, शंख, जटी आदि प्रसिद्ध नागों को परास्त कर, उन्हें नाग-स्त्रियां अपने शारीरिक सुन्दरता के लिए जगत प्रसिद्ध थीं। हनुमान लंका में चन्द्र निभ मुखवाली, वरारोह नाग कन्याओं को देखते हैं। रावण कई रूपवती नाग कन्याओं का अपहरण कर उन्हें लंका ले आया था।[7] नागों एवं राक्षसों में वैवाहिक सम्बन्ध प्रायः होते थे। सूर्पणखा ने रूपवान तक्ष कनाम नाग-वर से विवाह किया था। राक्षसराज रावण ने भी अनेक नाग कन्याओं को लंका लाकर उनसे विवाह कर लिया था।

रामायण युगीन आर्थिक दशा

रामायणयुगीन समाज में मनुष्य के जीवन में अर्थ को अत्यधिक महत्व दिया गया है और उसे ही सर्वोपरि कहा गया है। लंका में लक्ष्मण राम से कहते हैं-अर्थ ही धर्म का मूल है, जैसे पर्वत से नदियां निकलती हैं, वैसे ही अर्थ से सब क्रियाएं। जो धनवान होता है, उसी के मित्र और बान्धव होते हैं; वही पंडित, पराक्रमी, गुणी और बुद्धिमान कहलाता है। धन के त्याग में दोष है। धनवानों के ही धर्म और काम पूर्ण होते हैं, दरिद्र के नहीं। धर्म, काम, प्रसन्नता, दया, क्रोध, शम, दम-ये सभी धन द्वारा ही पूर्ण होते है। तपस्वियों का यह लोक बिना धन के नष्ट हो जाता है। एक सुशासित राज्य ही आर्थिक व्यवस्था का मूलाधार हो सकता है, क्योंकि राजाहीन राज्य में खेतों में बीज नहीं बाये जाते, मेघ अच्छे जल की वर्षा नहीं करता, कृषि-गोरक्षा आदि द्वारा जीवन यापन करने वाले धनवान सुरक्षित नहीं रह सकते और दूर देशों में व्यापार करने वाले व्यापारी विक्री की अधिक लेकर मार्ग में कुशलतापूर्वक नहीं चल पाते।

कृषिः- रामायण युग में भी 'कृषि' का एक व्यवसाय रूप में वर्णन प्राप्त होता है। वाल्मीकि ने कृषि की अतिशयता को व्यंजित करने के लिए 'सुकृष्ट' पद का प्रयोग किया है। कहीं- कहीं वनों में भी कृषि करने के उल्लेख मिलते हैं। दशरथ और राम के शासनकाल में देश कृषि की दृष्टि से समृद्धि और सुखी था। कौसल राज्य का वर्णन करते हुए वाल्मीकि कहते हैं- वह धन-धान्य और गौओं से परिपूर्ण तथा तालाबों, उद्यानों और आम्रवनों से युक्त था।[8] रामायण युग में कृषि उद्योग को राज्य की ओर से पर्याप्त संरक्षण प्राप्त था। जिन आठ शासन सम्बन्धी विषयों से राजा को परिचित रहना पड़ता था, उन्हें अष्टवर्ग कहते थे, जिसमें कृषि भी समाविष्ट थी। वैश्यों को कृषक भी कहते थे। यद्यपि अन्न उपजाने का कार्य तो मुख्यरूप से वैश्यवर्ग ही करता था किन्तु राज समारोहों में सार्वजनिक रूप से राजा द्वारा हल चलाना एक पुण्यकार्य माना जाता था क्योंकि प्रत्येक यज्ञारंभ के लिए यज्ञ भूमि का हल से शोधन करना आवश्यक था, अतः कषि का सम्बन्ध यज्ञ-यज्ञादिक से स्थापित हो गया था और उसके आर्थिक महत्व में धार्मिकता का पुट जुड़ गया।

पशुपालनः-

कृषि एवं पशुपालन दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। अतएवं इस युग में 'पशुपालन' अत्यन्त महत्वपूर्ण था। रामायण में निम्नलिखित पशु आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त लाभकारी थे-

गोः- रामायण में सर्वाधिक महत्व गो का था। रामायण युग में भी गोपालन का कार्य सभी वर्णों में, विशेषतः ब्राह्मण एवं वैश्य परिवार में होता था। गायों के दूध, दधि एवं मट्ठे से निर्मित कई प्रकार के व्यंजन का उल्लेख रामायण में मिलता है। गो का गोबर ईंधन के रूप में जलाने के काम आता था। रामायण युग में 'गो' पवित्र और पूज्या समझी जाती थी। गोमांस खाने का रामायण में कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता।

अश्वः- रामायण तथा महाभाष्य में 'अश्व' घोड़े का द्योतक है। घोड़े की अच्छी नस्ल का विशेष ध्यान रखा जाता था। राम के घोड़े श्रेष्ठ नस्ल के शीघ्रगामी तुरग थे। अश्व-रथ सेना का अनिवार्य अंग था, जिस पर सेना नायक नायक सवार रहता था। उत्तकांड में 'हय रथों' का वर्णन मिलता है।

उष्ट्रः- रामायण युग में ऊँट बोझा, माल आदि ढोने तथा सवारी के भी काम आता था। वह गाड़ी में भी जोता जाता था और रथ भी खींचता था-उष्ट्ररथ को 'रथोष्ट्र' कहा जाता था।[9] अयोध्या को जाते समय भरत के पीछे-पीछे अनेक उष्ट्र-रथ चलते हैं।[10]

उद्योग धन्धेः-

रामायण में विभिन्न व्यवसायों का वर्णन मिलता है। लोग अपने जीवन-व्यापन के लिए विभिन्न प्रकार के उद्यम पर धनोपार्जन करते थे। व्यवसाइयों का तात्कालिक समाज में महत्वपूर्ण स्थान था। ये राजनीतिक मामलों में भी हस्तक्षेप करते थे और कठिनाई-दुःख के समय राजा का साथ देते थे। महाराज दशरथ की मृत्यु पर अन्य के साथ ये लोग भी दीर्घकाल तक शोक मनाते हैं और अपना व्यवसाय बन्द कर देते हैं और दुकानें भी नहीं खोलते। राम को वन से लौटा लाने के लिए जब भरत वन के लिए प्रस्थान करते हैं, तो ये लोग भी पूर्ण सहयोग देते हुए भरत के साथ-साथ वन गमन करते हैं। अन्य सामाजिक-राजनीतिक अवसरों पर ये लोग प्रजा के साथ मिलकर सामाजिक-राजनैतिक उत्सवों में भाग लेते थे। राम के राज्याभिषेक के अवसर पर समस्त व्यवसायी सम्मिलित रूप में हर्ष-विनोद मनाते हैं। रामायण में प्राप्त विभिन्न प्रकार के व्यवसायियों के वर्णन द्वारा उनके विभिन्न प्रकार के व्यवसायों पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

संदर्भ

1. वा0 रा0 २।५0।३३।
2. वा0 रा0 ४।४0।४४ ।
3. नानूराम व्यासः रामायण कालीन समज, पृ0 २१ ।
4. वा0 रा0 ४।४२।१७ ।
5. वा0 रा0 ४।४१।१७ ।
6. वा0 रा0 १।४४।२१ ।
7. वा0 रा0 ५।१0।२२ ।
8. वा0 रा0 २।४३
9. ऋग्0 ८।५८, १५,९।९२, ६
10. वा0 रा0 ७।२४।२५

समकालीन उपन्यासो में दलित और स्त्री चित्रण के निहितार्थ का अध्ययन

पैरोजाबानू एम मिस्त्री

(शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, सनराइज विश्वविद्यालय, अलवर, राजस्थान)

सारांश

''19वीं सदी के उत्तरार्द्ध एवं बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के महिला लेखन और समाकालीन स्त्री-विमर्श में एक मौलिक अंतर पाया जाता है। वहाँ स्त्री का प्रतिपक्ष 'पुरुष' नहीं है, 'जड़ीभूत रूढ़ियाँ' हैं, जिनके विरुद्ध वे खड़ी होती हैं।''[1] समकालीन स्त्री-विमर्श अपने को पूरी तरह से उस पृश्ठभूमि से कटकर अपने लिए प्रेरणा एवं ऊर्जा पश्चिम के नारी आंदोलनों से ग्रहण करता है। 'स्त्री-विमर्श' न तो स्त्री द्वारा लिखा गया साहित्य है और न ही स्त्री के लिए लिखा गया साहित्य। वरन् यह स्त्रियों द्वारा स्त्रियों के लिए लिखा गया साहित्य है। स्त्री-विमर्श लेखन से जुड़ी स्त्रियां पुरुषों द्वारा स्त्रियों के लिए लिखे गये साहित्य को नारी-विमर्श के दायरे में स्वीकार नहीं करतीं। क्योंकि उनका तर्क है कि पुरुष लेखन स्त्री रचनाकार की तरह उसकी आशाओं-आकांक्षाओं, सपनों तथा शोषण के अंतहीन सिलसिलों का वैसा अनुभव नहीं कर सकता, जैसा कि स्त्रियाँ कर सकती हैं।

बीसवीं सदी के मुक्ति संघर्षों में स्त्री और दलित मुक्ति संघर्ष सबसे अधिक मूलगामी और सार्वभौमिक रहा है। सबसे अधि क अहिंसक, रक्तहीन और सत्याग्रही भी। इस संघर्ष की व्यापकता का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि 'यह जितना अधि क बाहरी स्तर पर घटित हुआ है, उतना ही आंतरिक स्तर पर भी। वह एक साथ आत्मसंघर्ष भी रहा है। आत्मबोध, आत्मविश्लेषण और आत्माभिव्यक्ति का संघर्ष भी। दर्शन, मनोविज्ञान, समाज विज्ञान, इतिहास जैसी अनेक विधाएं इस संघर्ष पर एकाग्र हुई है और स्त्री तथा दलित मुक्ति संघर्ष का एक समृद्ध शास्त्र विकसित हुआ है, जिसे समग्र रूप से स्त्री-विमर्श और दलित-विमर्श कहा जाता है।

प्रस्तावना

अमेरिका में 1910 ई. में नारी मुक्ति का आंदोलन शुरू हुआ था। 1908 ई. में ब्रिटेन में 'वीमेंस फ्रीडम लीग' की स्थापना हुई और 1911 ई. में जापान में महिला मुक्ति आंदोलन का प्रारंभ हुआ, लेकिन अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर महिला आंदोलन की शुरुआत 1951 ई. से मानी जाती है, जब संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने भारी बहुमत से महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों का नियम पारित किया। इधर भारत में आधुनिक युगीन नवजागरण आजादी की लड़ाई के साथ स्त्री जागरण की लड़ाई भी लड़ रहा था। इसमें महिलाएँ पृथक नहीं थीं। ''19वीं सदी के उत्तरार्द्ध एवं बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के महिला लेखन और समाकालीन स्त्री-विमर्श में एक मौलिक अंतर पाया जाता है। वहाँ स्त्री का प्रतिपक्ष 'पुरुष' नहीं है, 'जड़ीभूत रूढ़ियाँ' हैं, जिनके विरुद्ध वे खड़ी होती हैं।''[2] समकालीन स्त्री-विमर्श अपने को पूरी तरह से उस पृष्ठभूमि से कटकर अपने लिए प्रेरणा एवं ऊर्जा पश्चिम के नारी आंदोलनों से ग्रहण करता है।

यह कि दलित साहित्य किसे माना जाय? वह जो दलितों द्वारा लिखा गया है अथवा अन्य द्वारा लिखा गया दलितों के साहित्य? दो, यह कि दलित साहित्यकार किसे माना जाय? उसे जो जन्मना दलित है अथवा अन्य सभी साहित्यकार जो दलित साहित्य लिख रहे हैं? वस्तुतः उपर्युक्त दोनों प्रश्नों में अन्तःसम्बंध है। एक का उत्तर मिल जाने पर दूसरा प्रश्न अपने आप हल हो जायेगा। इस सम्बंध में कुछेक साहित्यकारों के कथन यहाँ सहायक हैं। प्रख्यात दलित साहित्यकार डॉ. श्योराज सिंह बेचैन के अनुसार ''जो साहित्य दलित साहित्यकारों द्वारा लिखा जाता है, मैं उसे ही दलित साहित्य मानता हूँ''।[4] स्पष्ट है कि बेचैन जी जन्मना दलितों को ही इस श्रेणी में स्वीकार करते हैं। जबकि कँवल भारती कहती हैं कि ''मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ कि दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है। ऐसे बहुत से लेखक हैं, जिनका साहित्य हिन्दूवादी है। बहुत दलित लेखकों ने हिन्दू नायकों की वरुदावलियां गायी हैं। उसे हम दलित साहित्य कैसे कह सकते हैं।''[5] इस मसले पर सबसे संतुलित

प्रतिक्रिया डॉ. शोभा पंवार निंबालकर की है। वे कहती हैं कि ''लिखने वाला चाहे दलित है, अगर उसकी रचना में वंचित वर्ग की स्थिति, परिस्थिति का अंकन किया गया है तो वह लेखक दलित लेखक कहलाएगा। यह अवष्य है कि जो भुक्तभोगी होते हैं, पीड़ा और वेदना अधिक स्वाभाविक रूप से प्रस्फुटित होती है। अतः जहां व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाने की बात आती है तो कहना औचित्यपूर्ण होगा कि दलित जाति से लेखक ही दलित साहित्यकार कहलाने का हकदार है। ठीक उसी प्रकार कि नारी लेखन में नारी की पीड़ा जितनी स्वाभाविक रूप से लेखिका व्यक्त करती है, उतना लेखक नहीं कर सकता, क्योंकि उसका वह भोगा हुआ नहीं होता है।''[6] अतः इस मसले पर हम पाते हैं कि स्वयं दलित साहित्यकार ही एकमत नहीं है। हालांकि ज्यादातर यही मानते हैं कि जन्मना दलित ही दलित साहित्यकार हो सकता है। प्रस्तुत अध्याय में इसी बिन्दु को स्वीकारते हुए दलित, गैर दलित, स्त्री, गैर स्त्री लेखकों का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

अस्सी के दशक के बाद दलित एवं नारी विमर्शीकरण

भारत में आजादी के बावजूद दलितों को लगातार शोषण और अत्याचारों का सामना करना पड़ रहा था। महाराष्ट्र में शिवसेना जैसे उग्र हिन्दू संगठनों ने ऊँची जातियों में अपनी पैठ बना ली थी। दलितों के लिए कांग्रेस के 'अस्पृश्यता निवारण', 'गरीबी हटाओ' आदि नारे हवा-हवाई साबित हो रहे थे। दलितों पर बढ़ते अत्याचारों को देखकर ऐसे ही वातावरण में महाराष्ट्र में नवबौद्धों का उग्र आंदोलन और दलित साहित्य के आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। इन आन्दोलनों ने दलित अत्याचारों के विरुद्ध मोर्चा खोल दिया। 1972 ई. में दो दलित कार्यकर्ताओं नामदेव ढसाल और जे.वी. पवार ने बंबई में 'दलित पैन्थर' का गठन किया। अगस्त 1972 ई. में राजा ढाले ने एक लेख 'काला स्वातंत्र्य दिवस' शीर्षक से लिखा, जो काफी विवादास्पद हुआ। इस लेख ने दलितों में सनसनी पैदा कर दी और इसी के साथ 'दलित' शब्द भी प्रचलित हो गया।

उस समय तक कुछ ऐसा उभार और उत्थान दिखाई नहीं पड़ता था।' मराठी में तो इसकी चर्चा जोरों पर थी, लेकिन हिन्दी में नहीं। 90 का दषक आते-आते हिन्दी में भी दलित ने साहित्य दस्तक देना शुरू कर दिया और हिन्दी भाषा में दलित साहित्य का दौर चल पड़ा। इस दौरान दलित कविताएँ, कहानियाँ, आत्मकथाओं के अंश आदि हिंदी कविताओं में छपकर आने लगे थे। अर्थात् 1992 के आस-पास 'दलित साहित्य' सभा-सम्मेलनों, मंचों, हिंदी कवितों आदि माध्यमों से अपनी मौजूदगी जाहिर कर चुका था, लेकिन 'हंस' कविता में जो दलित चेतना की हवा बहाई, वह आज आँधी बन चुकी है। कहने का आशय यह कि हंस ने ही दलित चेतना को साहित्य के केंद्र में खड़ा कर दिया। इसके अतिरिक्त 'युद्धरत आम आदमी', 'निर्णायक भीम', 'अंगुत्तर' आदि अन्य पतिर्काओं ने दलित चेतना को उभरने में सहायता प्रदान की।

हालांकि हिन्दी में स्त्री विमर्श का इतिहास दलित विमर्श की अपेक्षा पुराना है। बीसवीं सदी के प्रारम्भिक दो दशक तो 'स्त्री-विमर्श' के संदर्भ में रिक्तता लिए हुए थे, किन्तु तीसरे दशक में महिला रचनाकारों की एक पूरी खेप पूरे जोष से उपस्थित होती है। इसमें महादेवी वर्मा और सुभद्रा कुमारी चौहान का नाम पहले आता है। स्वतंत्रता के बाद 'स्त्री चेतना' जोर पकड़ती है। छठा दशक बेहद उथल-पुथल लेकर आया। यह साहित्य की प्रत्येक विधा में नये-नये आंदोलनों का दौर था। स्त्री-विमर्श एक आंदोलन का रूप यहीं से पकड़ता है, जिसमें पहला नाम शशिप्रभा शास्त्री का आता है। शताब्दी के अंतिम दशक तक आते-आते स्त्री-विमर्श का कुछ रूप और हो जाता है। बदलती परिस्थितियों ने स्त्री चेतना के नये-नये मुहावरे विकसित कर दिये। 'दलित-विमर्श' की ही तरह हंस हिंदी कविता में इस चेतना को भी एक नये रूप-रंग में प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयास किया। आज इस विमर्श ने हाशिए पर खड़ी स्त्रियों को साहित्य के केंद्र में ला खड़ा कर दिया है। स्त्री-विमर्श एवं दलित विमर्श को साहित्य के केंद्र में जिन महत्वपूर्ण हिंदी कविताओं का योगदान है, वे इस प्रकार हैं।:

दलित विमर्शः प्रमुख बिन्दु

वर्ण-व्यवस्था ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र आदि चार वर्णों पर आधारित समाज व्यवस्था है, जो भारतीय समाज में प्राचीन काल से आज तक किसी न किसी रूप में चली आ रही है। इसी से जाति व्यवस्था निकली अधिकतर विद्यान यह मानते हैं कि यह व्यवस्था प्रारंभिक काल में कर्म पर आधारित थी, जिसे बाद में धर्मग्रंथों का हवाला देकर जन्मना बना दिया गया। 'शूद्र' सामाजिक संरचना के सबसे निचले पायदान पर अवस्थित सर्वाधिक निकृष्ट और उपेक्षित वर्ग बन गया। किन्तु 'दलित' शब्द बिल्कुल नया है। यह आधुनिक मराठी, गुजराती, हिन्दी और अन्य अनेक भारतीय भाषाओं का एक अति प्रचलित शब्द है, जिसका सामान्य अर्थ होता है दरिद्र और उत्पीड़ित। दलित भी शुद्र की श्रेणी का ही वर्ग है, किन्तु दोनों की सामाजिक स्थिति में पर्याप्त अंतर है। आज के प्रचलित अर्थ में 'शूद्र' सेवा धर्म से जुड़े सभी लोगों को कहा जाता है; जबकि 'दलित' केवल

अन्त्यज समझे जाने वाले भारत के अनुसूचित जाति (चमार, मुसहर, डोम, पासी, खटिक आदि) और नगर से बाहर रहने वाले अनुसूचित जनजाति (आदिवासी) आदि लोग हैं। दलित शब्द का कोशीय अर्थ है- जिसका दलन और दमन हुआ हो। जो दबाया, रौंदा, मसला, सताया, कुचला हुआ हो। पर सामाजिक, साहित्यिक और राजनीतिक संदर्भों में इसे एक भिन्न सांस्कृतिक अर्थ मिल गया है। आंदोलन और साहित्य के साथ मिलकर यह शब्द सहज ही एक विशिष्ट अर्थ को सूचित कर देता है, जो भारतीय संदर्भ में अन्त्यजों और वंचित जनजातियों के लिए रूढ़ है। इस प्रकार दलित शब्द की लोकप्रियता का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। यह विगत तीन-चार दशकों में ही प्रचलित हुआ है; इसके पहले तो गांधी जी का 'हरिजन' शब्द ही अधिक प्रचलित था। इस प्रकार दलित एक गतिशील शब्द है, जो एक खास सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना को सूचित करता है। साथ ही इसमें एक विशिष्ट आंदोलनकारी चेतना भी है। स्पष्ट है कि दलित शब्द की समाजशास्त्रीय सीमा और अर्थबोध अत्यंत व्यापक है। किन्तु राजनीति और समाजशास्त्र के लिए यह चाहे जितनी भी अर्थ-व्यंजना करे, साहित्य के लिए यह सीमित अर्थ में ही प्रचलित हो गया है। जब तक समाजशास्त्र और राजनीति में वर्णित उपर्युक्त सीमाओं को साहित्यशास्त्र स्वीकार नहीं कर लेता, तब तक दलित साहित्यकारों द्वारा निर्धारित स्वरूपों पर ही हम दलित शब्द की व्याख्या करेंगे। परिवर्तन की गति अबाध और शाश्वत है। यह अलग बात है कि कुछ समाजों में यह धीमा होता है तो कुछ में तेज। विचारपूर्वक देखा जाय तो पश्चिम में इसकी गति तीव्र होती है और भारतीय समाज में मंद। फिर भी आधुनिक भारतीय समाज में तेजी से परिवर्तन हुआ है। किसी भी समाज के परिवर्तन की धारा और उसके स्वरूप को समझने के लिए उसकी परंपरा और सामाजिक संरचना को जानना जरूरी है। नेडल के अनुसार, ''सामाजिक संरचना को हम समाज में व्यक्तियों की भूमिकाओं तथा परिस्थिति से उत्पन्न अंतर-सम्बन्धों के नेटवर्क के रूप में परिभाषित कर सकते हैं।''[6] परिवर्तन स्वत: चालित तो होता ही है, किन्तु यह व्यक्तियों एवं संस्थाओं के प्रयासों का भी परिणाम होता है। एक ओर भारतीय समाज में होने वाले परिवर्तनों ने दलित समुदाय को प्रभावित किया तो दूसरी ओर दलित समुदाय ने भी अपने उत्थान हेतु अनेक आंदोलनों द्वारा अपने समाज में परिवर्तन के लिए प्रयास किया। यह प्रयास सामाजिक क्रियाकलापों, राजनीतिक गतिविधियों और साहित्यिक विमर्शों द्वारा लगातार किया जा रहा है। साहित्यिक प्रयास को दलित विमर्श का नाम दिया गया, जो आज हिन्दी साहित्य का सर्वाधिक चर्चित और विवादित एजेंडा है। दलितों की मुक्ति चेतना साहित्य में दलित विमर्श या दलित साहित्य के रूप में अभिव्यक्त हो रही है। इस बारे में यह कई विद्यानों द्वारा कहा जा रहा है कि दलित विमर्श का साहित्य- साहित्य से अधिक सामाजिक आंदोलन और सांस्कृतिक विमर्श है। इसलिए दलित साहित्य की समस्या सामाजिक और सांस्कृतिक दोनों है। दलित साहित्य की यह स्पष्ट मान्यता है कि ऐसी संस्कृति सम्पूर्ण भारतीय समाज का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती, जिसमें समाज की सारी सहूलियतें, सारी सुख-सुविधा किसी खास वर्ग के लिए ही जुटा दी गयी हों। दलित साहित्य सम्पूर्ण पूर्ववर्ती साहित्य को सवर्णों का साहित्य कहकर पूरी तरह खारिज कर देता है। पूरे दलित साहित्य को ऊपरी तौर पर देखने से तो ऐसा ही लगता है, किन्तु ऐसा है नहीं। वह तो केवल अपनी खोई संस्कृति की पड़ताल चाहता है। वह केवल संस्कृति की पुनर्व्याख्या द्वारा उसका परिष्कार चाहता है। दरअसल, सारी लड़ाई संस्कृति के पाठ और उसकी पुनर्व्याख्या को लेकर है। हिन्दी साहित्य में वर्णित दलित चेतना के विविध प्रश्नों के स्वरूप पर कई दृष्टियों से विचार किया जा सकता है।

दलित मुक्ति का अतीत और वर्तमान

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद दलित नवोन्मेश भारतीय राजनीति की सबसे महत्वपूर्ण घटना है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि सम्पूर्ण स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीति का स्वभाव दलितोन्मुखी हो गया है। वस्तुत: आज भारत की दलित चेतना अपना स्पष्ट राजनीतिक चरित्र प्राप्त कर चुकी है, वह अन्य परम्परागत शक्तियों के साथ सत्ता संघर्ष में एक अपराजेय प्रतिद्वंद्वी के रूप में उभर रही है। अब यह भारतीय राजनीति में एक तथ्य मात्र नहीं, उसकी धुरी के रूप में स्थापित हो चुकी है और सभी राजनीतिक दल इस शक्ति के साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर उसकी भारतीय राजनीति, विशेषकर उत्तर भारत की राजनीति के दलित नवोन्मेश के समानांतर उसकी सबसे महत्वपूर्ण सौाावना का विकास हिन्दी साहित्य में दलित आंदोलन के रूप में मराठी साहित्य में दलित लेखन काफी पहले से ही एक आंदोलन की शक्ल ले चुका था, पर अब हिन्दी भाषी क्षेत्रों में दलितों की राजनीतिक सहभागिता के साथ ही साहित्य में भी दलित लेखकों की एक पीढ़ी तैयार हो गयी है। इसे कार्य-कारण संबंध माना जाय या मात्र संयोग, यह विचार का विषय हो सकता है, लेकिन इतना सुनिश्चित है कि भारतीय राजनीति की तरह हिन्दी साहित्य में भी दलित प्रसंग एक प्रबल चुनौती, एक निर्भ्रान्त सत्य के रूप में स्वीकार किया जा चुका है। शुभाराव ने लिखा है कि ''दलित लेखन को यह स्वीकृति सुगमता से प्राप्त नहीं हुई है। साहित्यकारों और आलोचकों का एक वर्ग निरंतर हिन्दी

साहित्य की मुख्य धारा में दलित आगमन को एक हस्तक्षेप से अधिक कुछ न मानते हुए उनकी साहित्यिक उत्कृष्टता पर प्रश्न चिह्न लगाता रहा है।''

श्योराज सिंह बेचौन ने कहा है कि ''हिन्दी की सभी राष्ट्रीय-क्षेत्रीय कविताओं में जातीय सोच से संचालित होती हैं। बतौर लेखक, सम्पादक दलितों की लोकतांत्रिक भागीदारी पर उन्होंने विशेष जोर दिया।''[12] शिक्षा के लिए दलितों ने सदैव से संघर्ष किया, किन्तु संघर्ष के अनुरूप उन्हें कभी भी सफलता नहीं मिली। अत्यधिक चाहकर भी उन्हें उगने नहीं दिया गया। विश्वेश्वर पासवान ने लिखा है कि ''दलितों से शिक्षा छीनी गयी। उन्हें साहित्य से वंचित किया गया। आज जन भाषा ही दलित साहित्य की भाषा हो सकती है।''[13] जय प्रकाश कर्दम ने लिखा कि ''सारिका में मात्र मराठी क्षेत्र के दलित ही प्रकाशित हुए। हिन्दी के दलित लेखकों को कोई स्थान नहीं मिला।''[14] इसी तरह के अन्य शैक्षिक संघर्ष को सहना पड़ा है, दलितों के इसके कुछ उदाहरण आगे विवृत हैं। जैसे दलितों का उच्च शिक्षा में भागीदारी का न होना। जब तक दलित षिक्षकों की उच्च षिक्षा में भागीदारी पूरी नहीं होती, तब तक दलित शिक्षकों को गैर-दलितों के प्रतिमान से नहीं आंका जा सकता। यूजीसी का अनुदान दलित लेखकों या शोधकोंको नहीं मिल पाता। जबकि दलित छात्रों को आर्थिक सहायता की सबसे अधिक जरूरत होती है। अतः बिना किसी प्रतियोगिता के दलित षोधकों को छात्रवृत्ति मिले। प्रकाषन के सम्बंध में दलित साहित्य को 75 फीसदी प्रकाशन की सहायता दी जाय। चूँकि सम्पादक, पत्रकार ज्यादातर सवर्ण जातियों से हैं और उनका नजरिया ब्राह्मणवादी है, इसलिए संपादकों में अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया जाना चाहिए। जिन संस्थाओं में प्रतिनिधित्व न मिले, उनका सरकारी अनुदान बंद होना चाहिए। दलित महिलाओं का हर शैक्षिक संस्था में गैर दलित औरतों की तुलना में लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व पूरा कराया जाय। कक्षा पाँच से एम.ए. तक के पाठ्यक्रम में दलितों के साहित्य को शामिल किया जाय। दलित साहित्यकारों की भागीदारी के बगैर एकतरफा मूल्यांकन किया जाय। दलित शिक्षा के संयोजक चंद्रभान प्रसाद ने दलित शिक्षा और साहित्य के संबंधों पर विचार करते हुए लिखा है कि ''गुलाम युग की तरह आज भी दलितों के शिक्षा संबंधी दरवाजे बंद हैं। अगर उन्हें उच्च पदों पर पदासीन नहीं किया जायेगा तो दलित साहित्यकार बनेंगे कहाँ से ? उन्हें मुक्त होने में सबसे बड़ी बाधा मनुवादियों ने खड़ी की है।''[15] दलितों के समक्ष आधुनिक समय में कुछ ऐसे ज्वलंत प्रष्न हैं, जिससे मुक्ति हेतु सदैव संघर्ष किया और उससे मुक्ति में कई यातनाएँ भुगतनी पड़ी।

निष्कर्ष

हिन्दी में स्त्री विमर्श को लेकर अब तक आशंका, भ्रम, आक्रोश और नकार, लगभग युद्ध की मनोस्थिति में है। यहाँ तक कि कुछ लेखिकाएँ भी अपने आपको स्त्रीवाद के साथ जोड़ना पसंद नहीं करतीं। उसका कारण है कि सचमुच स्त्री-विमर्श परिवार-सत्ता को ऐसा आइना दिखाता है, जिसे वे देखना नहीं चाहतीं। देह-मुक्ति के मुद्दे पर तो कुछ आलोचकों ने स्त्री-लेखिकाओं को कुलटा, व्यभिचारिणी, स्वच्छन्द और भारतीय परम्परा को नष्ट करने वाली आदि न जाने कितने विभत्स विशेषणों से युक्त सिद्ध करने की कोशिश की।

दलित साहित्य की रचना प्रक्रिया से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण प्रष्न उठता है कि दलित साहित्य कौन लिख सकता है? या फिर किसे दलित साहित्य/ साहित्यकार माना जाय? यह प्रश्न नहीं यक्षप्रश्न है कि क्या दलितों द्वारा लिखा साहित्य ही दलित साहित्य है या दलित विषय पर गैर दलितों द्वारा लिखा साहित्य भी इस श्रेणी में आयेगा? इस प्रश्न ने हिन्दी साहित्य जगत में एक खासा विवाद पैदा कर दिया है। लेखक और विचारकों में दलित साहित्य की रचनात्मक अवधारणा को लेकर दोनों ही तरह के विचार प्रचलित हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हंस (मासिक), संपादक- राजेंद्र यादव, नई दिल्ली
2. दलित साहित्य (वार्षिकी), संपादक- जय प्रकाश कर्दम, नई दिल्ली
3. अपेक्षा (त्रैमासिक), संपादक- तेज सिंह, दिल्ली
4. दलित टुडे (मासिक), संपादक-
5. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, राधाकृश्ण प्रकाशन- 1995
6. स्त्री परंपरा और आधुनिकता: संपादक- राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण 1999

भारत में सोशल मीडिया और राष्ट्रीय सुरक्षा चिंता

डॉ० अरविन्द नेत्र पाण्डेय

प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, सतीश चन्द्र कालेज, बलिया (उत्तर प्रदेश)

किशन कुमार गुप्ता

शोधकर्ता- रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, सतीश चन्द्र कालेज, बलिया (उत्तर प्रदेश)

प्रस्तावना -

आज सामाजिक मीडिया सामाजिक जीवन, राजनीतिक जागरूकता, शिक्षा और खेल के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित कर रहा है। सोशल मीडिया उन कई मुद्दों पर चर्चा करने के लिए एक मंच प्रदान करता है जिन पर वर्तमान स्थिति में ध्यान नहीं दिया गया है। आज ये सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म यूजर्स को अलग-अलग तरीकों से अपनी बात कहने का मौका दे रहे हैं। इसमें यूजर्स सामाजिक, राजनीतिक, क्षेत्रीय और धार्मिक जैसे कई मुद्दों पर अपनी राय रखते हैं। सोशल मीडिया अक्सर प्रश्न प्रस्तुत करने के लिए एक मंच प्रदान करता है; प्रश्न सामाजिक, राजनीतिक, क्षेत्रीय या धार्मिक हो सकता है। सोशल मीडिया पर उपयोगकर्ता अक्सर स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर अपने विचार व्यक्त करते हैं।

सोशल मीडिया-

सोशल मीडिया संचार के प्रमुख माध्यम के रूप में जाना जाता है। यह सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी में क्रांति के कारण संभव हुआ है। इस तकनीकी परिवर्तन ने ऐसे हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर की उपलब्धता पैदा की है जो सूचनाओं के आदान-प्रदान को आसान बनाते हैं। इंटरनेट के भीतर एक आभासी समाज या समुदाय है जो सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर लाइक, शेयर और टिप्पणियों के माध्यम से प्रतिक्रियाओं की रिपोर्ट करता है। सोशल नेटवर्क को एक ऐसी सेवा के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो इंटरनेट पर उपलब्ध है और यह सेवा विभिन्न लोगों से जुड़ने और संचार करने के लिए मंच प्रदान करती है।[1]

राष्ट्रीय सुरक्षा-

राष्ट्रीय सुरक्षा एक व्यापक शब्द है जो न केवल संप्रभुता से संबंधित है, बल्कि देश की क्षेत्रीय अखंडता, देश की रणनीतिक स्थिति, भूमि के कानून, आंतरिक और बाहरी दुश्मनों से राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय साम्राज्यों की सुरक्षा से भी संबंधित है। इसका अर्थ है, राष्ट्रीय सुरक्षा के माध्यम से किसी भी विदेशी शक्ति से अपने आंतरिक मूल्यों की रक्षा करना। सैन्य भाषा में, रक्षा का तात्पर्य भूमि, वायु और समुद्र द्वारा किसी भी तरह से क्षेत्रीय आक्रमण से रक्षा करना है। किसी भी देश के अस्तित्व के लिए राष्ट्रीय सुरक्षा आवश्यक है।[2]

सोशल मीडिया और राष्ट्रीय सुरक्षा चिंता -

आज सोशल मीडिया का उपयोग उस स्तर पर पहुंच गया है जो भारत की सामाजिक और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए कई चुनौतियां खड़ी कर सकता है। विश्व के इतिहास पर नजर डालें तो नकारात्मक सोच वाले लोगों ने अक्सर समाज के सामने बाधाएं खड़ी की हैं। फारसी सैन्य विचारक कार्ल वॉन क्लॉजविट्ज के अनुसार, "प्रत्येक काल में युद्ध की एक नई पद्धति विकसित होती है, उस पद्धति की कुछ सीमाएँ होती हैं लेकिन कुछ विशिष्ट उद्देश्य भी होते हैं।" आज की स्थिति उस कथन के अनुरूप प्रतीत होती है। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म सूचना और मनोवैज्ञानिक युद्ध के एक नए माध्यम के रूप में उपलब्ध हो गए हैं। प्रौद्योगिकी और सोशल मीडिया के प्रवेश ने गैर-राज्य तत्वों, आतंकवादियों, अपराधियों, प्रदर्शनकारियों, नफरत फैलाने वालों और दंगाइयों सहित घरेलू और वैश्विक सुरक्षा को प्रभावित करने की क्षमता बढ़ा दी है। पूरी दुनिया में सोशल मीडिया का सकारात्मक इस्तेमाल करने वाले लोगों की संख्या बहुत बड़ी है।

इसी तरह सोशल मीडिया का नकारात्मक इस्तेमाल करने वाले लोगों की बड़ी संख्या से भी इनकार नहीं किया जा सकता. आज, सामाजिक उपद्रव, सोशल मीडिया का उपयोग करके, नस्लीय दरार पैदा करते हुए देखा जाता है। आतंकवादी संगठन पैसे जुटाने और नए रंगरूटों को फंसाने के लिए सोशल मीडिया का इस्तेमाल करते देखे जाते हैं। नक्सली भी प्रचार के लिए अपने पारंपरिक साधनों की जगह सोशल मीडिया का इस्तेमाल करने लगे हैं. यह शोध सोशल मीडिया के उपयोग का विश्लेषण करेगा ताकि यह मूल्यांकन किया जा सके कि समाज में नफरत कैसे फैल रही है और क्या सोशल मीडिया के माध्यम से फैलाई गई नफरत समाज में विभाजन पैदा कर रही है। कैसे भड़काऊ सामग्री को बढ़ावा दिया जाता है यानी भड़काऊ सामग्री और लोगों के बीच नफरत फैलाई जाती है। ऐसे तथ्यों के कारण पूरे समाज पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। इसके अलावा सोशल मीडिया का इस तरह से नकारात्मक इस्तेमाल देश की राष्ट्रीय सुरक्षा पर भी नकारात्मक असर डाल सकता है।[3]

भारत में निम्नलिखित कारणों से सोशल मीडिया का उपयोग आंतरिक सुरक्षा चिंता का विषय बन गया है। भारत एक सहिष्णु क्षेत्र है जो संवाद और पारस्परिक स्वीकृति की सांस्कृतिक परंपरा को विकसित करता है। यह आम धार्मिक और का प्रतिनिधित्व करने वाला एक प्रतिनिधि क्षेत्र है। संपूर्ण भारतीय समाज की सांस्कृतिक परंपराएँ। ये संयुक्त धार्मिक, सांस्कृतिक परंपराएँ सैकड़ों वर्षों से जीवित हैं, जो आम आदमी की प्रथाओं और लोककथाओं में निहित हैं। इस परंपरा को बचाए रखना एक सामूहिक बुद्धिमत्ता है और मानव जीवन के प्रति बहुत बड़ी श्रद्धा है। समाज में धार्मिक एवं जातीय सद्भाव को बनाये रखने एवं बढ़ाने के लिए विभिन्न स्तरों पर सक्रिय प्रयास किये जा रहे हैं। लेकिन सोशल मीडिया के माध्यम से धार्मिक और जातीय पहचान के अस्थिर मुद्दे पैदा करके लोगों की भावनाओं को भड़काया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप हिंसक घटनाओं में वृद्धि होती है। राजनीतिक लाभ के लिए देश भर में धार्मिक विभाजन पैदा करने के सुनियोजित प्रयास किये जा रहे हैं। नफरत फैलाने के लिए सोशल मीडिया के जरिए अल्पसंख्यक समुदाय के खिलाफ अफवाहें फैलाई जा रही हैं। समाज में अल्पसंख्यक समूहों के गरीब, कमजोर नागरिक ऐसी घटनाओं का शिकार हो रहे हैं।

इन उत्पीड़ित नागरिकों की मदद और समर्थन करना प्रत्येक लोकतांत्रिक नागरिक का कर्तव्य है। ऐसी पहल, विशेषकर बहुसंख्यक लोकतांत्रिक नागरिकों की पहल से, उत्पीड़ित नागरिकों को अल्पसंख्यक बना दिया जाएगाय वंचित समूह सुरक्षित महसूस करेंगे और समाज में शांति और सद्भाव भी बनाए रखेंगे।[4]

भारत कई अलग-अलग धर्मों, जातियों और संप्रदायों वाला एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है। इस तथ्य के बावजूद कि भारत में कई अलग-अलग धार्मिक और सांस्कृतिक समूह हैं, हम अभी भी समाज में सहिष्णुता पा सकते हैं। भारत की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसकी विविधता में एकता है। प्रत्येक जाति, धर्म और संप्रदाय के अपने अद्वितीय मूल्य और परंपराएं हैं। विभिन्न धर्मों के अस्तित्व के बावजूद और भारत में संप्रदाय, भारतीय समाज एकजुट नजर आता है. आज, सोशल मीडिया ने संचार में क्रांति ला दी है और दुनिया भर के लोगों को प्रभावित किया है।

सोशल मीडिया ने मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं जैसे धार्मिक, मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय को प्रभावित किया है। भारत जैसे देश में इस सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म का उपयोग दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है। इंटरनेट और दूरसंचार की मदद से आभासी माध्यम से एक-दूसरे से जुड़े लाखों लोगों की भीड़ को सकारात्मक और नकारात्मक दोनों दिशाओं में ले जाया जा सकता है।

हालाँकि, दुखद बात यह है कि इस अदृश्य लेकिन वस्तुतः जुड़ी हुई भीड़ को समाज को विभाजित करने के लिए विशेष स्वार्थ या गलतफहमी या पूर्वाग्रह के कारण विभाजित किया जा सकता है। सोशल मीडिया साइटें चरमपंथी समूहों को ऑनलाइन प्रचार साझा करने की अनुमति देती हैं और इसके कारण सोशल मीडिया समाज में अफवाहें, भ्रामक जानकारी, घृणा सामग्री और दहशत फैलाने का साधन बन सकता है। सोशल मीडिया का उपयोग अन्य लोगों या समुदायों के खिलाफ नफरत और दुश्मनी फैलाने के लिए किया जाता है।

इस खतरे से हमारे देश की अखंडता और आंतरिक सुरक्षा को नुकसान पहुंच रहा है। सुरक्षा की दृष्टि से सोशल मीडिया को कैसे नियंत्रित किया जा सकता है, इसकी जांच समय की मांग है। सरकार को इस गंभीर समस्या पर सर्वोच्च प्राथमिकता से ध्यान देना चाहिए। सोशल मीडिया का नकारात्मक उपयोग भारत की आंतरिक और राष्ट्रीय सुरक्षा को कैसे प्रभावित करता है, इसका समग्र अध्ययन करने की आवश्यकता है।

सोशल मीडिया राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए गंभीर खतरा पैदा कर सकता है क्योंकि ये खतरे समाज में एकता और अखंडता के सिद्धांतों को कमजोर करते हैं। विशेष रूप से, ये खतरे सामाजिक ध्रुवीकरण, लोगों को भड़काने के लिए सोशल मीडिया के दुरुपयोग, दहशत फैलाने, भ्रामक जानकारी और अफवाहें फैलाने और राष्ट्र विरोधी गतिविधियों के लिए सोशल मीडिया के उपयोग से संबंधित हैं। सोशल मीडिया हिंसा की बढ़ती घटनाओं को बढ़ावा दे रहा है और कानून तथा लोकतंत्र के बीच टकराव बनता जा रहा है।

इसकी जरूरत है एक नवीन दृष्टिकोण से सोशल मीडिया के कुछ नकारात्मक उपयोग की जाँच करें। सोशल मीडिया के दुरुपयोग और राष्ट्रीय सुरक्षा पर इसके प्रभाव से जुड़े विभिन्न मुद्दों का अध्ययन करने के लिए शोधकर्ता ने सोशल मीडिया के माध्यम से फैली दुश्मनी और राष्ट्रीय सुरक्षा पर इसके प्रभाव के संबंध में विषय का चयन किया है। यह अध्ययन इस बात पर भी प्रकाश डालेगा कि कैसे सोशल मीडिया का उपयोग राष्ट्र विरोधी गतिविधियों के साथ-साथ लोगों को भड़काने, गलत सूचना और अफवाहें फैलाने और समाज में नफरत और दुश्मनी पैदा करने के लिए किया जाता है।[5]

जैसे-जैसे इंटरनेट पूरी दुनिया में फैल रहा है, हर कोई इसका उपयोग कर रहा है। मोबाइल और कंप्यूटर संचार के प्रभावी साधन हैं जिनका आज व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। पूरी दुनिया एक साथ आ गई है और वर्चुअल प्लेटफॉर्म के माध्यम से जुड़ गई है जिसे सोशल मीडिया कहा जाता है। इस माध्यम को संभालना आसान है और इसका उपयोग वे उपयोगकर्ता कर सकते हैं जिन्हें कंप्यूटर का कम ज्ञान है। आज सोशल मीडिया, जिसने संचार में क्रांति ला दी है, ने दुनिया भर के अधिकांश लोगों के जीवन पर नियंत्रण कर लिया है। भारत जैसे देश में इन सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म का इस्तेमाल दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है और इसका असर मानव जीवन के कई पहलुओं पर पड़ रहा है। कभी-कभी प्रभावित करने वाले कारक धार्मिक, मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय होते हैं।

आज सोशल मीडिया का जनमानस पर व्यापक प्रभाव है और इस आभासी माध्यम से जुड़े लाखों लोगों की भीड़ को सकारात्मक और नकारात्मक दोनों दिशाओं में ले जाया जा सकता है। सोशल मीडिया पर उपयोगकर्ता अक्सर सामाजिक, राजनीतिक, क्षेत्रीय और धार्मिक जैसे स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर अपने विचार व्यक्त करते हैं। सोशल मीडिया अक्सर प्रश्न प्रस्तुत करने के लिए एक मंच प्रदान करता हैय प्रश्न सामाजिक, राजनीतिक, क्षेत्रीय या धार्मिक हो सकता है। प्रौद्योगिकी प्रगति ने आतंकवादियों जैसे गैर-राज्य तत्वों की क्षमता में वृद्धि की है।

अपराधियों, प्रदर्शनकारियों, घृणित व्यक्तियों और दंगाइयों को सोशल मीडिया के माध्यम से राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा को प्रभावित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। आज की जनता असुरक्षित हैय सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर वे जो पढ़ते हैं या देखते हैं उसका उन पर गंभीर प्रभाव पड़ता है क्योंकि सोशल मीडिया और इसकी सामग्री हमेशा जनता को प्रभावित करती है। घृणा समूहों के लिए ऑनलाइन प्रचार वितरण सोशल मीडिया प्लेटफार्मों द्वारा संभव बनाया गया है। कट्टरपंथी धार्मिक समूह धर्म के बारे में फर्जी कहानियाँ और जानकारी फैलाते हैं, जिससे अंतर-सांप्रदायिक सद्भाव बिगड़ता है और मनमुटाव बढ़ता है। इससे सांप्रदायिक और सामाजिक ध्रुवीकरण हो सकता है.

जब सोशल मीडिया का उपयोग समाज को दो विपरीत विचार वाले समूहों मे बांटने के लिये किया जाता है तो राष्ट्रीय सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है। जब सोशल मीडिया का उपयोग समाज का ध्रुवीकरण करने के लिए किया जाता है तो हमारे देश की अखंडता और आंतरिक सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है।

इस खतरे से हमारे देश की अखंडता और आंतरिक सुरक्षा को खतरा है। भविष्य में ऐसी घटनाओं को कम करने के लिए शोध को बढ़ावा देना जरूरी है।

निष्कर्ष -

सोशल मीडिया सूचनाओं का एक महासागर है जिसमें ऐसे कई लेखक देखे जा सकते हैं जो खुद को दार्शनिक मानते हैं। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर उपलब्ध जानकारी के संबंध में सबसे बड़ा नुकसान यह है कि जानकारी की प्रामाणिकता की कोई गारंटी नहीं है। अधिकांश समय यह भ्रम पैदा करता है कि क्या अनदेखा किया जाए और क्या पढ़ने लायक है। सोशल मीडिया पर जानकारी साझा करने के लिए कोई सेंसर नहीं हैं और इन प्लेटफार्मों पर उपलब्ध जानकारी की वैधता की जांच करने के लिए कोई उपकरण नहीं हैं। सोशल मीडिया झूठी खबरें, अफवाहें, अविश्वसनीय और गलत सूचनाएं फैलाने का हथियार बन रहा है। केंद्रीय सेंसर तंत्र की अनुपस्थिति के कारण, गलत सूचना और अफवाहें, कलह और नफरत की धुंध तुरंत

सोशल मीडिया पर फैल जाती है। सोशल मीडिया की मदद से कई देश विरोधी गतिविधियों को अंजाम दिया गया। सोशल मीडिया पोर्टलों के माध्यम से समूह भर्ती के लिए आतंकवादी एजेंडा चला रहे हैं।

सोशल मीडिया का इस्तेमाल विरोध प्रदर्शन और प्रदर्शनकारियों की संख्या बढ़ाने के लिए किया जाता है. इन प्लेटफार्मों पर उपयोगकर्ता की जानकारी की गोपनीयता के संबंध में कई प्रश्न हैं, जिनमें उपयोगकर्ता की जानकारी के दुरुपयोग के कई उदाहरण भी शामिल हैं। भारत में दंगे अत्यंत असाधारण परिस्थितियों में हो रहे हैं। यह समाज में फैली कुछ भ्रांतियों के कारण होता है। इसी बात का फायदा उठाकर कुछ असामाजिक प्रवृत्तियाँ सोशल मीडिया के माध्यम से सामाजिक घृणा और वैमनस्य फैलाने का काम कर रही हैं, जिससे सामाजिक दरारें पैदा होती हैं और समाज में ध्रुवीकरण होता है। सोशल मीडिया का यह अनियंत्रित उपयोग समाज पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है इसलिए इसे नियंत्रित करने की आवश्यकता है।

अतः सोशल मीडिया के उपयोग को नियंत्रित करने के लिए इस संबंध में कोई नीति बनाना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि विभिन्न संस्थागत स्तरों पर ठोस एवं योजनाबद्ध प्रयास करना आवश्यक है। सरकार को इस गंभीर समस्या पर सर्वोच्च प्राथमिकता से ध्यान देना चाहिए। इस आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, शोधकर्ता ने सामाजिक दरार पैदा करने के साथ-साथ समाज में नफरत और दुश्मनी फैलाने और राष्ट्रों की आंतरिक और राष्ट्रीय सुरक्षा पर इसके प्रभाव के लिए सोशल मीडिया के उपयोग के संबंध में अध्ययन करने का निर्णय लिया।

संदर्भ

1. Boyd, Donah; Ellison, Nicole (2007) Social Network Sites: Definition, History, and Scholarship, Journal of Computer-Mediated Communication, Volume 13, Issue 1, 1 October 2007, Pages 210–230, https://doi.org/10.1111/j.1083-6101.2007.00393.x
2. https://en.wikipedia.org/wiki/National_security
3. https%@@en-wikipedia-org@wiki@National&security.
4. देवीदास भोसले और चन्द्रशेखर मुरुमकर (2018) "सोशल मीडिया नफरत फैलाने का एक नया उपकरण और भारत में राष्ट्रीय सुरक्षा पर इसके परिणाम" उपलब्ध है यहां: http%@@www- humanitics-org@Images@DB&Path@Vol1-pdf 18 सितंबर 2018।
5. प्रणव गुप्ता (2014) "सोशल मीडिया का दुरुपयोग" यहां उपलब्ध है: https%@@www-lawctopus com@academike@abuse&of&social&media@ अंतिम बार 29 मार्च 2022 को देखा गया।

मानव जनित आपदाएँः एक संक्षिप्त परिचय

डॉ० अरविन्द नेत्र पाण्डेय

प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, सतीश चन्द्र कालेज, बलिया (उत्तर प्रदेश)

सुनील कुमार वर्मा

शोधकर्ता- रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, सतीश चन्द्र कालेज, बलिया (उत्तर प्रदेश)

प्रस्तावना -

आपदाओं को आकस्मिक या बेकाबू घटनाओं के तौर पर देखा जा सकता है वास्तविक या खतरनाक जो एक समय और जगह में केंद्रित है जिसमें एक समाज या एक अपेक्षाकृत आत्मनिर्भर समाज का उपखंड, गंभीर खतरे से होकर गुजरता है और अपने सदस्यों और भौतिक सामानों के तौर पर बड़ी इतनी क्षति होती है कि सामाजिक सरंचना पूरी तरह से टूट जाता है और फिर समाज के बुनियादी काम रुक जाते हैं।[1]

आपदा की परिभाषा कुछ इस तरह है: 'समाज के कामकाज में गंभीर व्यवधान पैदा होना, जिससे बड़े पैमाने पर मानवीय संसाधनों या पर्यावरण को नुकसान होता है। यह नुकसान प्रभावित समाज के अपने संसाधनों के जरिए इससे निपटने की क्षमता से ज्यादा होता है।

आपदा तब होती है, जब असुरक्षित समाज पर विपत्ति (प्राकृतिक या मानवीय) का आक्रमण होता है। आपदा के लिहाज से असुरक्षा या कमजोरी की परिभाषा इस तरह है: खतरे की आशंका वाले इलाके से नजदीकी या निर्माण, प्रकृति आदि के कारण किस हद तक समुदाय, ढांचा, सेवाओं या भौगोलिक इलाकों को नुकसान पहुंचने की आशंका है।[2]

शब्द आपदा लैटिन शब्द डिस एस्टो या बैड स्टार से लिया गया है जिसका मतलब है एक तबाही जो ग्रह की एक अवांछनीय स्थितियों के चलते आता है। शब्द आपदा आसानी से आम जनता के लिए एक स्पष्ट अर्थ देता है, लेकिन उसकी एक सटीक परिभाषा देना वास्तव में एक मुश्किल काम है। इसलिए आपदा को परिभाषित करने के किसी भी प्रयास को या तो बहुत व्यापक या बहुत संकीर्ण होने की आलोचना का डर रहता है। आपदाएं अक्सर प्राकृतिक, अप्रत्याशित, गंभीर और मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और भावनात्मक का नतीजा होती हैं।[3]

आपदा का अर्थ-

आपदा प्रबंधन (Disater Management) आपदा का अर्थ है, अचानक होने वाली एक विध्वंसकारी घटना जिससे व्यापक भौतिक क्षति होती है, जान-माल का नुकसान होता है। यह वह प्रतिकूल स्थिति है जो मानवीय, भौतिक, पर्यावरणीय एवं सामाजिक कार्यकरण को व्यापक तौर पर प्रभावित करती है।

आपदा को उस विषम स्थिति या घटनाओं से जोड़कर देखा जा सकता है जो विनाशक दशाओं को जन्म देती है और भौतिक पर्यावरण और सामाजिक स्थिति को प्रभावित करती है। आपदायें प्रभावित लोगों के जीवन और संपत्ति, आधारभूत ढांचे और विकास प्रक्रिया में बाधा पहुंचाती है। आपदाओं से निपटने में होने वाला खर्च इतना अधिक होता है कि इससे विकास प्रक्रिया या जनहित के कार्यों में लगने वाले संसाधन, आपदाओं के प्रबंधन में लगाये जाते हैं, जिससे सामान्य जिंदगी अवरोधित होती है।

आपदा को अंग्रेजी में डिजास्टर (disater) कहा जाता है। इस शब्द की उत्पत्ति फ्रेंच शब्द 'दीजास्त्र' (Desatre) से हुई है जो दो शब्दों से मिल कर बना है- 'कमे' जिसका अर्थ है अशुभ और 'astre' जिसका अर्थ है सितारा। इस प्रकार, अक्षरशः, डिजास्टर का अर्थ होता है अशुभ-सितारा। इस परिभाषा में एक अलौकिक तत्त्व सन्निहित है जो आज तक दुनिया भर में आपदाओं की घटनाओं के साथ जुड़ा हुआ है। हालांकि, कई अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों और आधिकारिक दस्तावेजो ने इस शब्द को अपने-अपने विशिष्ट तरीके से परिभाषित किया है। संयुक्त राष्ट्र आपदा को आकस्मिक या बड़ी आफत के रूप में परिभाषित करता है जो समाज या समुदाय की मूलभूत संरचना और सामान्य कामकाज को तितर-बितर कर देती है।[4]

आपदा वर्गीकरण एवं प्रकार-

1. जल एवं जलवायु से जुड़ी आपदाएं: चक्रवात, बवंडर एवं तूफान, ओलावृष्टि, बादल फटना, लू व शीतलहर, हिमस्खलन, सूखा, समुद्ररक्षण, मेघगर्जन व बिजली का कड़कना।
2. भूमि संबंधी आपता: भूस्खलन एवं कीचड़ का बहाव, भूकंप, बांध का टूटना, खदान में आग।
3. दुर्घटना संबंधी आपदाएं: जंगलों में आग लगना, शहरों में आग लगना, खदानों में पानी भरना, तेल का फैलाव, प्रमुख इमारतों का ढहना, एक साथ कई बम विस्फोट, बिजली से आग लगना, हवाई, सड़क एवं रेल दुर्घटनाएं।
4. जैविक आपदाएं: महामारियां, कीटों का हमला, पशुओं की महामारियां, जहरीला भोजन।
5. रासायनिक, औद्योगिक एवं परमाणु संबंधी आपदाएं: रासायनिक गैस का रिसाव, परमाणु बम गिरना।

उपरोक्त आपदाओं को हम निम्नलिखित प्रकारों में भी विभाजित कर सकते है।

- प्राकृतिक आपदा: इसके कुछ उदाहरण हैं चक्रवात, बवंडर एवं तूफान, ओलावृष्टि, बादल फटना, लू व शीतलहर, हिमस्खलन, सूखा, समुद्ररक्षण, मेघगर्जन व बिजली का कड़कना, भूस्खलन एवं कीचड़ का बहाव और भूकंप इत्यादि।
- मानवजनित आपदा: इसके कुछ उदाहरण हैं बांध का टूटना, खदान में आग, शहरों में आग लगना, खादानों में पानी भरना, तेल का फैलाव, प्रमुख इमारतों का ढहना, एक साथ कई बम विस्फोट, बिजली से आग लगना, हवाई, सड़क एवं रेल दुर्घटनाएं इत्यादि।[5]

मानवकृत आपदाए- मानवकृत आपदाओं का संक्षिप्त विश्लेषण इस प्रकार है -

परमाणु दुर्घटना -

फुकुशीमा (2011), चेर्नोबिल (1986) तथा थ्री माइल द्वीप (1979) में क्रमश: परमाणु दुर्घटनाएं हुई और ये तीनों परमाणु आपदाएं पिछले कुछ दशकों में सामने आनी वाली परमाणु दुर्घटनाओं में सबसे भयानक थीं। इसका गवाह वही मावनीय समुदाय बना, जिसने विश्वभर के राष्ट्रों द्वारा परमाणु से बिजली पैदा करने की कोशिश का अब तक गवाह रहा है। अब तक विश्व समुदाय द्वारा सामना किये गए मनुष्यकृत आपदाओं में परमाणु आपदा सर्वाधिक दीर्घकालिक प्रभाव वाली रही है। पर्यावरण को क्षति पहुंचाने वाली तथा विभिन्न रूपों में अनुवर्ती आपदाएं निश्चित रूप से उन आपदाओं में शामिल हैं, जिन्होंने सही अर्थों में लंबे समय के लिए लोगों के बीच भय पैदा किया है तथा मनुष्य जाति को नुकसान पहुंचाया है।

हालांकि परमाणु आपदाएं कई तरह के हैं तथा इनसे होने वाले नुकसान न सिर्फ मौजूदा पीढ़ी को भुगतना पढ़ रहा है, बल्कि आने वाली पीढ़ियां भी इससे दुष्प्रभावित होने वाली है। परमाणु आपदा से पर्यावरण भी प्रदूषित होता है।[6]

रासायनिक और औद्योगिक दुर्घटनाएँ -

रासायनिक और दुर्घटनाएं का मानवकृत दुर्घटनाओं में महत्वपूर्ण स्थान है। औद्योगिक घटनाएं विकास के साथ-साथ इन दुर्घटनाओं ने विकराल रूप धारण कर लिया है। विश्व के किसी न किसी भाग में रासायनिक एवं औद्योगिक घटनाएं होती रहती है। इनके मुख्य कारण उद्योगों का अत्यन्त व्यवस्थित विकास उचित प्रबन्ध की कमी तथा सुरक्षा के उपायों का अभाव है। भोपाल गैस त्रासदी 2-3 दिसम्बर 1984 को भोपाल में एक तकनीकी दुर्घटना हुई, जब यूनियन कार्बाइड कीटनाशक फैक्टरी में से 45 टन बहुत विषैली मिशाइल आइसोसाइनेट (MIC) गैस तथा हाइड्रोजन साइनाइड एवं अन्य गैस रिसने लगी, यह रिसाव आधी रात लगभग 12:30 बजे शुरू हुआ। बहुत से लोगों का तो नींद में ही दम घुट गया, अनेक लोगों की नेत्रज्योति चली गई और वे अन्धे हो गये। इससे कहीं अधिक लोग घायल हुए सरकारी आंकड़ों के अनुसार 1989 में 3598 लोगों की मृत्यु हो गयी थी। रासायनिक दुर्घटनाएं न केवल मनुष्यों को, बल्कि इनके साथ प्रकृति व संपत्ति को भी प्रभावित करती हैं।वर्तमान वैज्ञानिक युग में जिस कदर उद्योगों में घातक रसायनों का प्रयोग बढ़ा है, उससे यहां कार्य करने वाले लाखों कर्मियों पर जान का खतरा मंडरा रहा है। साथ ही आसपास की मानवीय बस्तियां और प्रकृति भी दुर्घटनाओं की जद में आ गई हैं। औद्योगिक इकाइयों में इस्तेमाल में आने वाले विस्फोटक रसायनों का भंडारण व परिवहन पर्यावरण में इनके रिसाव की आशंका को बढ़ाता

है। इकाइयों में हुई जरा सी चूक बड़ी रासायनिक आपदा को सहज ही आमंत्रण देती है। थोड़ी सी सूझबूझ और संपूर्ण जानकारी की मदद से घातक रासायनिक दुर्घटनाओं से विश्व को बचाया जा सकता है।

जनसंख्या विस्फोट -

भारत जिन मानव-निर्मित आपदाओं से जूझ रहा है उनमें बड़ी आपदा तेजी से बढ़ती जनसंख्या है। आर्थिक सर्वेक्षण 2004 के अनुसार, भारत संसार की सबसे बड़ी जनसंख्या वाले देश के रूप में चीन को जल्द ही पीछे छोड़ देगा। जनसंख्या विस्फोट के कारण जन्म-दर मृत्यु दर और निरपेक्ष वृद्धि-दर के आंकड़े देकर संसार के अन्य राष्ट्रों से भारत की तुलना की गई है।

2011 के अनुसार जनगणना-

चीन की जनसंख्या- 1.351 अरब

भारत की जनसंख्या- 1.237 अरब

अमेरिका की जनसंख्या- 313.9 लाख

जनसंख्या विस्फोट के कारण मानव जनित आपदाएं होती है। आपदाओं का वितरण और सहसंबध इसमें आतंकवाद और नागरिकों के आपसी संघर्ष भी वर्तमान भी शामिल है जो इन दिनों आए दिन घटित होते रहते है। सहसम्बंध से अभिप्राय एक वस्तु पर दूसरी वस्तु के प्रभाव या निर्भरता से है, अक्सर इसे संवेदनशीलता कहा जाता है। प्राय: इसका तात्पर्य यह होता है कि किसी व्यक्ति अथवा पूरे के पेरे समुदाय या क्षेत्र केलिए विपत्ति या खतरे की सम्भावना है।

वायुयान दुर्घटनाएं -

आज के युग में वायु परिवहन सबसे तेज तथा सबसे महंगा परिवहन हैं। इसमें जोखिम भी सबसे अधिक है क्योंकि एक पक्षी के टकरा जाने से भी वायुयान को भारी क्षति हो सकती है। वायुयान में यात्रियों की सुरक्षा कई कारकों पर निर्भर करती है। मुख्य कारक तकनीकी समस्याएं आग, वायुयान के उतरते समय की परिस्थितियां, पर्यावरणीय स्थल (पहाड़, तूफान आदि)। हवाई पर अपहरण अथवा बम जैसी घटनाओं के संदर्भ में सुरक्षा व्यवस्था में कमी आदि है।

लम्बे समय तक आपदाओं का कारण प्राकृतिक बलों का परिणाम माना जाता था, किन्तु अधुनातन साहित्य में आपदाओं की उत्पत्ति का सम्बन्ध मानवीय क्रियाकलापेा से भी है। कुछ मानवीय गतिविधियां प्रत्यक्ष रूप से आपदाओं के लिये उत्तरदायी है। जलवायु परिवर्तन, वैश्विक तपन या या अन्य प्रकार के परमाणु त्रासदी इसके उदाहरण हैं। इस प्रकार आपदा प्राकृतिक खतरे और मानवीय कार्रवाइयों को मिलाकर बनती है। यह सबको पता है कि पृथ्वी के अस्तित्व से ही इंसान प्रकृति के प्रकोप का शिकार रहा है। कई बार भूकंप जैसी आपदा के बार-बार आने से जीवन के सभी क्षेत्रों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है और फिर वो मानव जीवन को बहुत क्षति पहुंचाते हैं और इसके साथ ही इतना बड़ा गैप छोड़कर चला जाता है जिसे भरना बहुत मुश्किल होता है। आपदाएं वैश्विक स्तर पर हो रही हैं। प्राकृतिक और मानव निर्मित आपदाओं के भीषण नतीजों के चलते विकसित और विकासशील देश बुरी तरह से प्रभावित होते हैं।

निष्कर्ष -

यह भी सर्वमान्य तथ्य है कि कुछ वर्षों में मानव उत्पेररित अपदाओं की संख्या और परिणाम दोनों में वृद्धि हुई है। मानवकृत आपदाओं का निवारण सम्भव है किन्तु प्राकृतिक आपदाओं पर रोक लगानाकठिन है इसलिये सबसे अच्छा तरीका इसके असर को कम करना और उनका बेहतर प्रबन्धन करना है। संयुक्त राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय आपदा षमन रणनीति के अद्यतन आँकड़े के अनुसार प्राकृतिक आपदाओं की दृष्टि से भारत का दूसरा स्थान है। भारत अनेक प्रकार के प्राकृतिक आपदाओं का शिकार होता है। देश का 60 प्रतिषत भू-भाग भूकम्प की संभावना वाला क्षेत्र है तथा 60 प्रतिशत भाग में कभी कम तो कभी भीषण सूखा पड़ता रहता है जबकि 4 करोड़ हेक्टेयर से अधिक क्षेत्र में बाढ़ की संभावना बनी रहती है। इससे न केवल जीवन की क्षति होती है बल्कि भारी मात्रा में निजी, सामुदायिक और सार्वजनिक परिसम्पत्तियों की क्षति पहुँचती है।[7]

यद्यपि वैज्ञानिक और भौतिक रूप से देश में भारी प्रगति हुई है लेकिन आपदाओं के कारण जन-धन की क्षति में कमी होती नहीं दिखाई देती। भारत सरकार ने अपने आपदा प्रबंधन दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन किया है। यह नीति अब केवल राहत पहुंचाने तक सीमित नहीं है बल्कि आपदाओं से निपटने की तैयारियों, उनके शमन और बचाव पर ज्यादा जोर दिया जा

रहा है। दृष्टिकोण में यह परिवर्तन इन धारणाओं के फलस्वरूप आया है कि विकास प्रक्रिया में जब तक आपदा-शमन को उचित स्थान नहीं दिया जाता, विकास की प्रक्रिया लंबे समय तक जारी नहीं रखी जा सकती। सरकार के नये दृष्टिकोण का एक महत्वपूर्ण पहलू यह भी है कि आपदा-शमन के उपाय विकास से संबंधित सभी क्षेत्रों में अपनाए जाने चाहिए। आपदा प्रबंधन का नीतिगत ढांचे में एक महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि निर्धन और वंचित लोग ही प्राकृतिक आपदाओं से सबसे अधिक प्रभावित होते हैं।

आपदा प्रबंधन एक बहुआयामी क्षेत्र है। इसमें मौसम पूर्वानुमान, चेतावनी, बचाव, राहत, पुनर्निर्माण और पुनर्वास शामिल हैं। प्रशासक, वैज्ञानिक, योजनाकार, स्वयंसेवक और समुदाय सभी इस बहुआयामी प्रयास में हाथ बंटाते हैं। उनकी भूमिकाएं और गतिविधियां आपदा के पहले, आपदा के दौरान और आपदा बाद महत्वपूर्ण होती हैं। ये सभी गतिविधियां एक-दूसरे की, पूरक और सहायक होती हैं और इसलिए इन गतिविधियों में समन्वय नितांत आवश्यक है।[8]

संदर्भ

1. वर्ल्ड फोकस, अगस्त 2016, पृ0 47
2. योजना, जनवरी 2017, पृ0 25
3. वर्ल्ड फोकस, अगस्त 2016, पृ0 32
4. वर्ल्ड फोकस, अगस्त 2014, पृ0 12
5. योजना, जनवरी 2017, पृ0 33
6. वर्ल्ड फोकस, अगस्त 2016, पृ0 86
7. वर्ल्ड फोकस, अगस्त 2016, पृ0 42
8. योजना, मार्च 2012, पृ0 5

नेपाल - चीन का गठजोड़ का भारतीय सुरक्षा पर प्रभाव

डॉ० अरविन्द नेत्र पाण्डेय

प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, सतीश चन्द्र कालेज, बलिया (उत्तर प्रदेश)

मोहम्मद जुनैद बक्श

शोधकर्ता- रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, सतीश चन्द्र कालेज, बलिया (उत्तर प्रदेश)

प्रस्तावना-

छठे दशक में चीन और भारत के मध्य सीमा विवाद उग्र हो उठा था और दोनों ही देशों के लिए नेपाल का अनायास बढ़ गया और अपने राष्ट्रीय हितों को देखते हुए, यदि भारत नेपाल को सन्तुष्ट और प्रसन्न बनाए रखने के लिए सचेष्ट था तो दूसरी ओर भारत के विरुद्ध नेपाल को प्रभावित करने की चेष्टा चीन भी कर रहा था।[1] चीन और नेपाल का संबद्ध सर्वप्रथम सातवीं शताब्दी में स्थापित हुआ और तिब्बत के महान शासक शांगत्सेन-गैम्पो ने अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार करते हुए एक ओर नेपाल एवं भारत तथा दूसरी ओर मंगोलिया तथा चीन के 'तांग' शासकों से राजनीतिक संबंधों की स्थापना की। इस प्रकार भारत, तिब्बत और चीन के मध्य नेपाल व्यापार, वाणिज्य, संस्कृति, धर्म और सभ्यता का प्रमुख केन्द्र बन गया।[2]

नेपाल- चीन का गठजोड़-

भारत-नेपाल संबंधों के निर्धारण में, चीन, हमेशा से ही निर्णायक कारक रहा है। चीन की भूमिका के बिना, भारत, नेपाल सम्बन्धों के बारे में अध्ययन नहीं किया जा सकता है क्योंकि चीन हमेशा से ही, भारत और नेपाल के मधुर सम्बन्धों में बाधक रहा है। नेपाल ने, भारत के साथ अपने सम्बन्धों को, बहुमुखी बनाने के लिये, चीन का प्रयोग एक दबाव के रूप में किया है। 42 प्रतिशत गरीबी रेखा से नीचे की जनसंख्या वाला नेपाल, दुनिया का अल्पविकसित देशों में से एक है। नेपाल दुनिया के छोटे देशों में से एक होने के बाद भी, दक्षिण एशिया में इसका भू-राजनीतिक महत्व है, क्योंकि इसकी सीमा, एशिया के दो सबसे बड़े राष्ट्रों चीन और भारत के साथ लगती है। नेपाल, भारत और चीन, दोनों के लिए महत्वपूर्ण स्त्रातेजिक मूल्य रखता है।[3]

बीजिंग के अनुसार, नेपाल, चीन के आंतरिक सुरक्षा घेरे का महत्वपूर्ण हिस्सा है। वह नहीं चाहता कि कोई भी वैश्विक या क्षेत्रीय शक्ति इस सुरक्षा घेरे को तोड़े। 1950 में चीन द्वारा तिब्बत के अधिग्रहण के कारण, उसके लिये, नेपाल का स्त्रातेजिक महत्व बढ़ गया है। नेपाल, चीनी विद्रोहियों एवं तिब्बती मुद्दे पर उदासीन बनाना, चीनी विद्रोहियों एवं तिब्बती गतिविधियों के केन्द्र बनने से रोकना तथा शीतयुद्ध के बाद नेपाल में पश्चिमी देशों विशेषकर अमेरिका की आर्थिक, राजनैतिक सहायता के रूप में उपस्थिति को रोकना भी एक महत्वपूर्ण उद्देश्य बन गया है। अमेरिका के प्रभाव को कम करना तथा अपनी सुरक्षा को सुदृढ़ करने के लिए भी नेपाल चीन के लिए महत्वपूर्ण है।[4]

चीन की नीति, हमेशा से ही, भारत-नेपाल सुरक्षा संबंधों से प्रभावित रही है, जोकि 1950 के शांति और मित्रता संधि से दृढ़ है। चीन हमेशा से ही अपने विरोध में भारत और अमेरिका के गठबन्धन को लेकर चिन्तित रहा है। चीन और नेपाल के बीच पहली बार 1955 में कूटनीतिक संबंध स्थापित हुये।चीन इस बात के लिये सहमत हो गया कि वह नेपाल के साथ कोई भी संबंध, नई दिल्ली में स्थित नेपाली दूतावासके माध्यम से स्थापित करेगा। इसके बाद चीन ने, नेपाल को आर्थिक सहायता देकर अपने संबंधों को बढ़ाना शुरू किया। चीन 1959 में नेपाली पुलिस के साथ, गुप्त संयुक्त अभियान के द्वारा, नेपाल से, चीनी विद्रोही तिब्बतियों को निकालने में सफल हुआ।

नेपाल के प्रति चीनी नीति में, उस समय एक महत्वपूर्ण मोड़ देखा गया, जब 1959 में चीनी सेनाएँ नेपाल-तिब्बत सीमा पर आ डटीं। बीजिंग ने नेपाल के क्षेत्र को अपना क्षेत्र दिखाते हुए मानचित्र प्रकाशित किये और माउंट एवरेस्ट पर अपना दावा

किया तथा इस समस्या को हल करने के लिये दृढ़ रवैया अपनाया। उसी समय भारत और चीन के मध्य भी सीमा विवाद बढ़ता जा रहा था, परन्तु 1960 में नेपाली प्रधानमंत्री बी0 पी0 कोइराला का चीनी दौरा हुआ और दोनों के बीच शांति एवं मित्रता की संधि हुई।

हालॉकि चीन का प्रयास था कि नेपाल के साथ आक्रमण सन्धि हो तथा काठमाण्डू और ल्हासा के बीच सड़क का निर्माण हो सके,5 परन्तु नेपाल द्वारा भारत के साथ संबंधों को प्रभावित होने का हवाला देकर ऐसा सम्भव न हो सका। 1960 में चीन नेपाल में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिये, चीनी-नेपाली सीमा मतभेदों को सुलझाने के लिये एक संयुक्त सीमा समिति गठित करने पर सहमत हो गया। चीनी झुकाव वाले राजा महेन्द्र द्वारा भारत की तुलना में, अपनी स्थिति सुदृढ़ करने का मौका मिल गया। चीन ने खुलकर राजा का समर्थन किया, जबकि भारत का जनतांत्रिक बलों को समर्थन था। चीन ने नेपाल के साथ सीमा विवाद को हल करने तथा आर्थिक सहायता देने का प्रस्ताव दिया।

वन बेल्ट वन रोड (OBOR) पर भारत की चिंता India's concern on One Belt One Road (OBOR)[6]-

- भारत ने वन बेल्ट वन रोड (OBOR) को सम्मान और संदेह की नजर से देखा है। भारत ने संप्रभुता, प्रक्रियात्मक और नेतृत्व संबंधी चिंताओं का हवाला देते हुए ओबीओआर से बाहर होने का विकल्प चुना है। भारत की गैर-भागीदारी का प्रमुख कारण सीपीईसी है जो पाकिस्तान के कब्जे वाले कश्मीर (पीओके) से होकर गुजरता है। चीन को PoK पर भारत के दावों के प्रति संवेदनशील माना जाता है।
- भारत ने बुनियादी ढांचा परियोजनाओं और ऋण चुकौती प्रणालियों पर खुले समझौतों को लेकर भी चिंता जताई है। "अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की एक नई शैली" की शुरुआत करने और गठजोड़ के बजाय साझेदारी की तलाश करने का चीन का वादा पैंतरेबाजी के लिए जगह बनाता है।
- कुछ निर्णय जिनका भारत पर प्रभाव पड़ता है और जिनकी व्याख्या चीन की आधिपत्य के लिए निर्विवाद महत्वाकांक्षा के रूप में की जाती है, उनमें श्रीलंका के साथ एक समुद्री समझौते पर हस्ताक्षर करना, पाकिस्तान को आठ पनडुब्बियों की बिक्री, ग्वादर बंदरगाह पर सुविधाओं का विस्तार और जिबूती में एक आधार का निर्माण शामिल है।
- भारत को एक ऐसे प्रयास के बारे में आपत्ति है जो कागज पर काफी शानदार प्रतीत होता है। बीआरआई फंडिंग ज्यादातर अज्ञात बनी हुई है, जबकि चीनी विदेशी बैंक जैसे कि एक्जिम बैंक ऑफ चाइना और चाइना डेवलपमेंट बैंक अब डिफॉल्ट के लिए तैयार हैं, जब कुछ देशों ने खुद को आर्थिक रूप से बढ़ा दिया है।
- यह एक तरह का यूटोपियन आदर्श भी लगता है क्योंकि इसमें सरकारों, कंपनियों और नागरिक समाज के बीच सहयोग की आवश्यकता होती है। चूंकि रिटर्न की दरें अभी भी अज्ञात हैं। इसलिए चीनी वित्तीय संस्थान जोखिम लेने से हिचकिचा सकते हैं।
- भारत की प्रमुख चिंतां हैं चीन में शिनजियांग और बलूचिस्तान में ग्वादर को पीओके और गिलगित-बाल्टिस्तान से जोड़ने वाली एक प्रमुख ओबीओआर परियोजना सीपीईसी पर है। यह अपने आप में एक चीनी पहल है। भारत इसे अपनी संप्रभुता पर हमले के रूप में भी देखता है। भारत क्षेत्रीय सहयोग का पक्षधर है लेकिन वह आधिपत्य की आकांक्षा भी रखता है।
- यह चिंता का विषय है कि ग्वादर चीनी नौसैनिक स्टेशन बन जाएगा। भारत को उम्मीद है कि चीन सभी देशों और संगठनों को रचनात्मक रूप से भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करेगा।
- भारत के सामने तिब्बत, नेपाल, भूटान और बांग्लादेश के साथ अपनी सीमाओं तक सक्षम चीनी निर्मित बुनियादी ढांचे जैसी अन्य चुनौतियां भी हैं।

भारतीय सुरक्षा पर प्रभाव -

नेपाल-चीन की सैन्य गठजोड, इस समय चिन्ता का विषय है। सुस्ता में अतिक्रमण की घटना ने नेपाल के प्रति भारत के गठजोड़ को तो खत्म किया है, साथ में नेपाल ने चीन के साथ सैन्य गठजोड़ करके, भारत को एकदम से स्तब्ध कर डाला।

निश्चय ही भारत की सुरक्षा की दृष्टि से यह गठजोड़ चिन्ता का विषय है। नेपाल में चीन ने परोक्ष रूप से सैनिक हस्तक्षेप शुरू कर दिया है। नेपाल में चीन का सैन्य सहयोग नेपाल के लिए कितना गम्भीर होगा?, भारत पर माओवादी ताण्डव की दुश्छाया ने भी नेपाल में माओवादी आन्दोलन की जड़ो को मजबूत कर दिया है क्योंकि इन माओवादियों के निशाने पर भारतीय मूल के नेपाली लोग ज्यादा हैं और इनके संबंध सीमावर्ती भारतीय क्षेत्र के निवासियों से भी हैं, इसलिए सीमावर्ती क्षेत्रों में रह रहे लोगों का इन माओवादी ताण्डव की दुष्छाया से प्रभावित होना स्वाभाविक है।7 नेपाल की खुली सीमा से ही भारत में तस्करी का सुगम मार्ग है, चूँकि खुली सीमा होने के नाते, यहाँ पर्याप्त चौकसी की व्यवस्था नहीं हो पाती है। इसलिए इसका लाभ तस्कर अकसर उठाते रहते हैं।

तस्करी के इन सामानों में विस्फोटक पदार्थ, हथियार जाली नोट, मादक पदार्थ आदि तक शामिल होते हैं। पाक खुफिया एजेंसी आईएसआई सहित अन्य राष्ट्र विरोधी तत्वों की भारत-नेपाल सीमा पर सक्रियता, अब देश के समक्ष चुनौती बनती जा रही है। भारत को अपनी सीमावर्ती क्षेत्रों की सुरक्षा व्यवस्था को लेकर अभी माओवादियों की गुरिल्ला शैली से ही परेशानी थी। अब इनकी परेशानी और भी बढ़ गई है क्योंकि माओवादियों ने पीपुल्स लिबरेशन आर्मी का गठन कर डाला है। माओवादियों द्वारा सेना के गठन का काम लगभग पूरा हो गया है। पूरी तरह से प्रशिक्षित सेना में तीन डिवीजन नौ ब्रिगेड, 29 बटालियन के अलावा एक लाख मिलिटेंट रखे गये हैं। पड़ोसी मुल्क नेपाल में शांति की बजाय महासंग्राम की तैयारी चल रही है।

भारत-नेपाल के मध्य अन्तर्राष्ट्रीय सीमा खुली होने का लाभ पाकिस्तान उठा रहा है। पाकिस्तान अपनी खुफिया एजेंसी आईएसआई की जड़ें, नेपाल में मजबूत करने में लगा है। इस सीमा से भारत में सरलता से प्रवेश करने के बाद आतंकवादी गतिविधियों को आसानी से अंजाम दिया जा सकता है। नेपाल एक निर्धन राष्ट्र है और चीन से लगे होने के कारण पाकिस्तान को यह ऐसा माध्यम मिला है, जहाँ से वह अपने भारत विरोधी मकसद को चीनी सहयोग से पूरा कर सकता है।

भारत की रणनीति नेपाल में चीन के प्रभाव को संतुलित करने की है जिसके लिए प्रभावी निर्णय लिए जा रहे है। नेपाल में चीन केंद्रित चुनौतियों को नियंत्रित करने के लिए भारत ने चीन पोषित पनबिजली परियोजनाओ से बिजली क्रय नहीं करने का निर्णय लिया है वही दूसरी ओर चीन को अपनी निमार्णाधीन बड़ी परियोजनाओं को पूरा करने के लिए प्रतिवर्ष लगभग 4000 टन विस्फोटक की आवश्यकता है जो पूर्व में भारत से उपलब्ध हो जाता था लेकिन भारत ने नियमों में परिवर्तन कर केवल चीनी कंपनियों को इससे वंचित कर दिया है। भारत ने नेपाल में चीन की परियोजनाओ का अप्रत्यक्ष रूप से बहिष्कार कर दिया है जिसका प्रभाव पोखरा हवाईअड्डे समेत बिजली परियोजनाओ पर दिख रहा है। चीन को दृष्टिगत रखते हुए भारत द्वारा लिए जा रहे निर्णय नेपाल में चीन की परियोजनाओं को अव्यवहारिक बना रही है तथा भारत के इस प्रकार के निर्णय ने नेपाल को भी चीन की परियोजनाओं के प्रति नकारात्मक होने के लिए विवश किया है।

विस्तारवादी चीन, दक्षिण चीन सागर से भारत-तिब्बत सीमा तक अपनी आक्रामकता दिखा रहा है। नेपाल में स्थित दुनिया की सबसे ऊँची चोटी सागरमाथा (माउंट एवरेस्ट) पर चीन की सरकारी मीडिया अपना दावा निश्चित समयांतराल पर जताती रहती है। यह विस्तारवाद माओ के उस विचार से प्रेरित है जिसमें उन्होंने कहा था कि तिब्बत वह हथेली है, जिस पर हमें कब्जा करना चाहिए। फिर हम पाँचों उंगलियों के पीछे जाएँगे। पहली उंगली लद्दाख की है और अन्य चार नेपाल, भूटान, सिक्किम और अरुणाचल प्रदेश हैं। नेपाल के संदर्भ में देखा जाए तो आज तिब्बत चीन के कब्जे में है तथा नेपाल को भारी मात्रा में बेल्ट एंड रोड परियोजना के तहत ऋण देकर डेब्ट ट्रैप करना उसका अगला कदम है।

निष्कर्ष -

नेपाल का चीन प्रेम व नेपाल की घरेलू राजनीति में चीन का हस्तक्षेप बेहद चिंतनीय है। इससे नेपाल की सम्प्रभुता तथा भारत-नेपाल संबंध प्रभावित हो रहा है। भारत ने अपनी विकास परियोजनाओं के माध्यम से नेपाल के विकास में सबसे अधिक योगदान दिया है और आगे भी देता रहेगा भारत, नेपाल का केवल पड़ोसी ही नहीं अपितु अभिन्न मित्र है जिसकी बुनियाद साझी संस्कृति है। नेपाल में बढ़ रहे चीनी प्रभाव ने भारतीय हितों के समक्ष चुनौतियाँ उत्पन्न की है परंतु भारत-नेपाल संबंध को ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की नजर से देखने पर सभी प्रकार के विवाद अल्पकालिक और समाधान योग्य नजर आते है।

संदर्भ

1. रमाकान्त, नेपाल-चाइना एण्ड इण्डिया, अभिनव प्रकाशन, नई दिल्ली, 1979, पृ0 6
2. एच0 गेज, रीजनलिज्म एण्ड नेशलन यूनिटी इन नेपाल, 1976, पृ0 2
3. BBC, NEWS, 18 Nov. 2019.
4. दमाडे, मनीष एण्ड पंथ, हर्ष वी0 - ''कापिंग विथ चौलेंज टू सोबरन्टी: साइनों इण्डिया रायबलरी एण्ड नेपाल फॉरेन पॉलिसी'', कन्टेपरी साउथ एशिया, वॉल्यूम 13, 2, जून 2007, पृ0 - 159।
5. चतुर्वेदी, एस0 के0 - ''भारत-नेपाल सम्बन्ध'', डी0 के0 पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1990, पृ0 15।
6. https://testbook.com 23 january 2024
7. नेहरू, जवाहर लाल -इंडियाज फॉरेन पालिसी: स्लोकिटड स्पीचिज, पृ0 - 436।

पर्यावरण संरक्षण में यूएनईपी की भूमिका

कौशल किशोर

राजनीति विज्ञान विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

डॉ० राजीव कुमार

सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, बी.डी. कॉलेज, पटना

सारांशः-

सामान्य शब्दों में कहा जाए तो पर्यावरण का स्वस्थ होना हमारे समस्त विश्व के लिए महत्वपूर्ण हैं। हमारे जीवन को प्रभावित करने वाले सभी जैविक और अजैविक तत्वों, तथ्यों, प्रक्रियाओं तथा घटनाओं के समुच्चय से निर्मित इकाई है। पर्यावरण हमारे चारों ओर है और हमारे जीवन की प्रत्येक घटनाओं का केन्द्रबिंदु है! मानव समाज अपने समस्त जीवन क्रियाओं से इस पर्यावरण को प्रभावित करते हैं। पर्यावरण में सभी प्रकार के जीव जंतु, मनुष्य, कीड़े-मकौड़े, पेड़-पौधे, हवा, जल, समुद्र, हिमालय, पर्वत, जलवायु और सभी प्रकार की जैव क्रियाओं और अजैव क्रियाओं का समावेश है। पर्यावरण संरक्षण आज के समय की सबसे बड़ी माँग है। इसके संरक्षण और संवर्धन के यूएनईपी द्वारा अथक प्रयास भी किए जा रहे हैं। यूएनईपी एक ऐसी ईकाई है, जिसके अंतरर्गत पर्यावरणीय समस्याओं का समावेश देखने को मिलता है! संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूएनईपी) पर्यावरण पर अग्रणी वैश्विक प्राधिकरण है। यूएनईपी का मिशन, राष्ट्रों और मानव जीवन को आनेवाली पीढ़ियों के जीवन स्तर से समझौता किए बिना उनके जीवन की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए प्रेरित करता है और सुनिश्चित करता है ताकि इसे सक्षम बनाया जा सके।

50 से अधिक वर्षों से यूएनईपी ने मानव जगत की सबसे गंभीर समस्या पर्यावरणीय चुनौतियां का समाधान करने के लिए सरकारों, मानव समाज, निजी क्षेत्र और संयुक्त राष्ट्र संस्थाओं के साथ मिल कर काम किया है। ओजोन परत को बहाल करने से लेकर दुनिया के समुद्रों की रक्षा करने तक और हरित, समावेशी अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने तक निरंतर प्रयासरत दिखाई पड़ती है। आज जरूरत है कि मानव समाज भी यूएनईपी के साथ सहयोग कर उनके कार्यक्रमों में तत्परता दिखाएं एवं साथ मिल कर काम करें जिससे पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना यिका जा सके और सम्पूर्ण विश्व में पर्यावरणीय अराजकता से निजात पाया जा सके। यूएनईपी जलवायु परिवर्तन, प्रकृति और जैव विविधता की हानि और प्रदूषण जैसे समस्याओं को कम कर इसके मूल कारणों का पता लगा कर परिवर्तनकारी बदलाव ला सके।

प्रस्तावना

मानव जगत के लिए पर्यावरण का संरक्षण अति आवश्यक प्रतीत होता है। जीवन को सुचारू रूप से व्यतीत करने में प्रकृति ही अहम भूमिका निभाती आ रही है। आज के दौर में जिस प्रकार प्रकृति का दोहन होता दिखाई पड़ रहा है उससे मानव ही नहीं जीव-जन्तु के जीवन पर भी नकारात्मक प्रभाव देखने को मिलता है। आज के इस आधुनिक जीवन में लोग अपने आवश्यकता को पूरा करने के लिए अनावश्यक तरीके से प्रकृति और पर्यावरण के साथ छेड़छाड़ कर रहे जिसका परिणाम है कि मानव जीवनशैली में बदलाव देखने को मिल रह हैं। पर्यावरण का संरक्षण समाजिक विकास के और इसके विस्तार के लिए बहुत आवश्यक है। पेड़ों की कटाई से पर्यावरण में तापमान का बढ़ना और जीव-जंतु के विलुप्त होने की घटना को छिपाया नहीं जा सकता। पर्यावरण का संरक्षण एवं इसका संवर्धन करना मानव जगत की नैतिक जिम्मेदारी होनी चाहिए जिससे पर्यावरण को अनुकूल रखा जा सके। पर्यावरण अधिनियम की धारा 2 (क) के अनुसार पर्यावरण में वायु, जल, भूमि, मानव, जीव-जन्तु, पेड़-पौधे और इनके पारस्परिक संबंध निहित है। मनुष्य को जीवित रहने के लिए स्वशन क्रिया करते हैं जिसमें हम ऑक्सीजन लेते हैं और ऑक्सीजन हमें प्रकृति से प्राप्त होता है। वनस्पति का संबंध सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पर्यावरण से है। पर्यावरण में दो श्रेणियाँ देखी जा सकती है- भौतिक और दूसरा जैविक। आज में जरूरत है पर्यावरण संरक्षण के प्रति खुद को जागरूक करने की और समाज में जागरूकता संदेश के माध्यम से मानव विकास हेतु उचित कदम उठाने

की जिससे पर्यावरण के संरक्षण को गति प्रदान की जा सके और इसके संवर्धन के भी प्रयास को सकारात्मक रूप दिया जा सके। पर्यावरण के प्रति लोगों को जागरूक बनाने के लिए प्रतिवर्ष 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस और 26 नवम्बर को विश्व पर्यावरण संरक्षण दिवस मनाया जाता है और प्रतिवर्ष इसकी एक थीम बनाई जाती है जो लोगों में जागरूकता फैलाने का कार्य करती है।

साहित्य समीक्षा

- शर्मा, श्याम सुन्दर (2022) ने अपनी पुस्तक 'ग्लोबल वार्मिंग कारण और निराकरन' प्रस्तुत पुस्तक के द्वारा जलवायु परिवर्तन के प्राकृतिक और मानवजन्य कारणों की वैज्ञानिक विवेचना है, उसके दुष्प्रभावों का वर्णन है और निराकरण के उपायों के बारे में जानकारियाँ दी गई है। ग्रीनहाउस गैसों, जिनके वायुमंडल में बढ़ते सांद्रण के फलस्वरूप जलवायु परिवर्तन हो रहा है। इसमें भौतिक रासायनिक गुणों की भी चर्चा की गई है।
- यादव, कृष्ण कुमार (2021) ने अपनी पुस्तक 'नई शिक्षा नीति, पर्यावरण संवर्धन एवं सतत् विकास' के माध्यम से लेखक ने नई शिक्षा नीति के अंतर्गत पर्यावरण संवर्धन को लेकर बात की गई है। पर्यावरण संवर्धन को सुनिश्चित करने हेतु हमें सतत् विकास पर विशेष बल दिए जाने की आवश्यकता है। पर्यावरण के संवर्धन हेतु इसे बनाएगए कानूनों का सहारा लेना होगा जिससे इसका संवर्धन किया जा सके और सतत् विकास पर ध्यान केन्द्रित किया जा सके।
- कुजूर, ममता (2021) ने अपनी प्रस्तुत पुस्तक 'पर्यावण अध्ययन' में पर्यावरण अर्थशास्त्र को पारिस्थितिकीय अर्थशास्त्र से अलग किया गया है, उस पारिस्थितिकीय अर्थशास्त्र ने अर्थव्यवस्था को प्राकृतिक पूंजी को संरक्षित करने पर ध्यान केंद्रित करने के साथ पारिस्थितिक तंत्र के उपप्रणाली के रूप में जोर दिया गया है। लेखक ने लिखा है कि प्राकृतिक पूंजी मानव निर्मित पूंजी द्वारा प्रतिस्थापित की जा सकती है।

यूएनईपी

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूएनईपी) पर्यावरण पर अग्रणी वैश्विक प्राधिकरण है। यूएनईपी का मिशन राष्ट्रों के लोगों को और उनके आने वाली पीढ़ियों के जीवन स्तर को गुणवत्तापूर्ण बनाना और वर्तमान समय में जागरूक और प्रेरित करना, सूचित करना और उसे सक्षम बनाना है। देखा जाए तो यूएनईपी ने 52 वर्षों से मानव जगत के भलाई के लिए पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना और इसके समाधान करने हेतु सरकारों, मानव समाज, निजि क्षेत्रों और संयुक्त राष्ट्रसंस्थाओं के साथ आज तक कार्य कर रही है। जिससे मानव जीवन शैली को अनुकूल और व्यवस्थित बनाए रखा जाए। यूएनईपी ने हरित बहाल करने से लेकर, ओजोन परत, समुद्री रक्षा और अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने के लिए निरंतर प्रयासरत है। यह कानून और राजनीति के प्रगतिशील विकास और इसके प्रचार के लिए यथासंभव कार्य कर रही है। यूएनईपी ने प्रदूषण जैसे त्रिग्रहीय संकट जलवायु परिवर्तन, प्रकृति और जैव-विविधता की हानि को देखते हुए और इसका पता लगाकर परिवर्तनकारी बदलाव लाने का प्रयास कर रही है। जिससे मानव जीवन शैली में या आने वाली भावी पीढ़ियों को एक बेहतर भविष्य और अच्छा पर्यावरण प्रदान किया जा सके। यूएनईपी का कार्य है कि वह देशों को कम से कम कार्बन और संसाधन के अनुकूल अर्थव्यवस्थाओं में परिवर्तन करने में सहायता करना, पर्यावरणीय शासन और कानून को मजबूती प्रदान करना, पारिस्थितिकी तंत्र की सुरक्षा करने और नीतिगत निर्णयों के लिए साक्ष्य-आधारित आँकड़े उपलब्ध कराने पर ध्यान केंद्रित करता है। यूएनईपी अपने 193 देशों के साथ सतत् विकास लक्ष्यों को सुचारू रूप से क्रियान्वित करने के लिए अग्रसर है और प्रकृति के साथ सद्भाव में रहने में सहायता प्रदान कर रहा है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) में अगर कुल देशों की बात की जाए तो वे 193 की संख्या में हैं। यूएनईपी के कुछ नियम कानून भी हैं जिसके माध्यम से वे सम्पूर्ण विश्व में मानव हित में जागरूकता और पर्यावरण संरक्षण को लेकर सकारात्मक संदेश देने का प्रयास कर रहे हैं। हालांकि यह एक वैश्विक पर्यावरण प्राधिकरण है जो वैश्विक पर्यावरण एजेंडा और लक्ष्य, कार्यक्रम, नीतियाँ और कार्य योजनाओं को निर्धारित करता है जिससे समूचे मानव समाज, जीव-जन्तु, वनस्पतियों, जल, हिमालय, समुद्रों का विकास कर सके। 1972 में इस संगठन की स्थापना की गई जिसका लक्ष्य संयुक्त राष्ट्रों के लिए और क्षेत्रीय स्तर पर पर्यावरण संबंधित मुद्दों पर विचार विमर्श करे और इसके संवर्धन के लिए निरंतर प्रयासरत रहे। यूएनईपी के क्रियान्वयन के लिए नितियों और कानूनों का बनाया जाना जिसके तहत निम्न संसाधनों का प्रयोग कर बेहतर विकास राष्ट्र हित में संभव हो सके। इस मिशन के तहत मानव गुणवत्ता में सुधार किया जाए और इसे सक्षम बनाया जाए जिससे समुचित समाज को नई दिशा प्रदान की जा सके। यूएनईपी की एकाग्रता के 6 क्षेत्र हैं जिसमें हैं:-

1. जलवायु परिवर्तन
2. संघर्ष-पश्चात् और आपदा प्रबंधन
3. पारिस्थितिकी तंग के प्रबंधन
4. पर्यावरणीय शासन (क्षेत्रीय और वैश्विक स्तर पर)
5. हानिकारक पदार्थ
6. संसाधन दक्षता

अपने इस मिशन को पूरा करने के लिए यूएनईपी के द्वारा तीन बिंदुओं की बात कही है-

- वैश्विक, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरणीय स्थितियों और रूझानों का भी आकलन करता है।
- अंतर्राष्ट्रीय समझौते और राष्ट्रीय पर्यावरण उपकरण विकसित करने का भी प्रयास करता है।
- बुद्धिमान पर्यावरण प्रबंधन के लिए संस्थाओं को मजबूती भी प्रदान करता है।

मार्च- 2022: पाँचवा संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण सभा का विषय ''सतत विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रकृति के कार्यो को मजबूत करना'' था।

देखा जाए तो कोविड महामारी के कारण सम्मेलन को दो सत्रों में विभाजित भी किया गया था। माह फरवरी 2021 में दुनिया भर से प्रतिनिधिमंडल पहले सत्र यूएनईपी-5.1 के लिए इकटठ्ा हुए थे। जो तत्काल और प्रक्रियात्मक निर्णयों के सुव्यवस्थित एजेंडों पर केंद्रित था। सदस्य सभी देशों ने 2022-2025 के लिए यूएनईपी की आधी अवधि की रणनीति और 2022-2023 के लिए कार्य और बजट के लिए एक कार्यक्रम पारित किया गया। कुछ महत्वपूर्ण विषयों पर गहन बातचीत के लिए यूएनईपी 5.2 के लिए स्थगित भी किया गया। जो बाद में चलकर फरवरी-मार्च के माह में नैरोबी, केन्या में आयोजित किया गया।

ईपीए ने यूएनईपी-5 में अमेरिका इंटरएजेंसी टीम के एक अभिन्न अंग के रूप में नेतृत्व भी किया और एक अहम भूमिका निभाते हुए 14 प्रस्तावों और अन्य प्रमुख परिणामों को भी अपनाया गया, जिसमें एक कानूनी रूप से बाध्यकारी उपकरण विकसित करने हेतु एक अंतर सरकारी वार्ता समिति शुरू की गई। आने वाले समय में समुद्री पर्यावरण सहित प्लास्टिक प्रदूषण पर 2014 के अंत तक बातचीत की संभावना भी बनाई गई। यूएनईपी में नागरिक समाज की सहभागिता भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इनके प्रमुख समूहों और अन्य हितधारकों को साझेदार के रूप में शामिल के महत्व को यूएनईपी भली-भाँति अवगत प्रतीत होता है। उनके द्वारा प्रस्तुत दृष्टिकोण और मानव समाज के द्वारा किए महत्वपूर्ण शोध और वकालत कार्यों और यूएनईपी के मिशन के लिए दीर्घकालिक, व्यापक आधारित समर्थन को भी बढ़ावा देने का प्रयास करता है। निजी क्षेत्र नवोन्मेषी और तकनीकी समाधान तैयार करने के साथ ही हमारी विश्वस्तरीय पर्यावरणीय चुनौतियाँ से निपटने के लिए संसाधन उपलब्ध कराने में भी बेहद महत्वपूर्ण है। यूएनईपी एक वैश्विक पर्यावरण प्राधिकरण है जो वैश्विक पर्यावरण एजेंडों को निर्धारित करता है, संयुक्त राष्ट्र प्रणाली के अंदर सतत विकास के माध्यम से पर्यावरण के आयामों के कार्यान्वयन को बढ़ाता है तथा वैश्विक पर्यावरण केक लिए एक अधिकारिक वक्ता के रूप में भी कार्य करता है। यूएनईपी के तहत सतत विकास लक्ष्यों को बनाए रखने के लिए 17 एडीजी गोल्स को निर्धारित करता है और इसके माध्यम से यूएनईपीा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. मानव समाज का प्रकृति के साथ सामंजस्य को बढ़ावा देना है।
2. पर्यावरण संरक्षण के लिए यूएनईपी के सामने आने वाली चुनौतियों की समीक्षा करना।
3. यूएनईपी के द्वारा 17 सतत् विकास लक्ष्यों का अध्ययन करना तथा संपूर्ण विश्व में इसके लिए जन-मानस को जागरूक करना।

निष्कर्ष:

यूँ कहा जाए तो पर्यावरण संरक्षण केवल एक जिम्मेदारी मात्र है, बल्कि यह हमारे ग्रह और आने वाली पीढ़ी की भालाई के लिए अतिआवश्यक है। जलवायु परिवर्तन को कम से कम करना पारिस्थितिकी तंत्र को मजबूती देना आज के समय में बहुत ही चुनौती पूर्ण होता जा रहा है। हमारी जवाबदेही होनी चाहिए कि हम किस प्रकार अपने पर्यावरण के नाजुक संकुलन को सुनिश्चित करें? मानव समाज का यह दायित्व होना चाहिए कि हम हमारे पर्यावरण को नई दिशा दे ना कि उसकी दशा

बिगाड़े। यूएनईपी द्वारा जो कार्य किए जा रहे हैं वे अति सराहनीय है क्योंकि यह मानव समाज के हित वाली संस्था है इस संगठन केक माध्यम से जैव विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र को संरक्षित कर और उसे पुनः स्थापित करने के लिए बड़े पैमाने पर तत्काल रूप से निवेश किए जा रहे हैं जिससे वैश्विक संतुलन बनाए रखा जा सके। प्रकृति के साथ मानव समाज का व्यवहार संतोषजनक तो प्रतीत नहीं दिखाई पड़ता है किंतु इससे निपटने के लिए यूएनईपी अथक प्रयास करती दिख रही है?

यूएनईपी सतत विकास के लक्ष्यों के लिए निरंतर प्रयासरत है और 17 को हर संभव प्रयास कर रही। मानव समाज के स्वस्थ स्वरूप को बनाना भी यूएनईपी का महत्वपूर्ण लक्ष्य है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम प्रकृति के साथ हमारे संबंधों को बदलने तथा हमारे सामने आ रहे जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए कर संभव प्रयास कर रही है इसके लिए जागरूकता अभियान भी चलाए जाते रहे हैं और उम्मीद है कि आने वाले समय में बेहतर परिणाम निकलकर आए जिससे समूचे मानव समाज, जीव-जन्तु, वनस्पतियों का विकास संभव हो सके।

संदर्भ सूचीः

1. कुमार, समीर, पर्यावरण संरक्षण, नोशन प्रेस, पृष्ठ संख्या 12।
2. शर्मा, योगेन्द्र, (2020). पर्यावरण संरक्षण, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-03।
3. पाठक, अरूण कुमार, पर्यावरण अध्ययन, सिल्वर लाइन पब्लिकेशन, पृष्ठ संख्या- 55।
4. यादव, कृष्ण कुमार, (2021), नई शिक्षा नीति, पर्यावरण संवर्धन एवं सतत् विकास, वायकिंग बुक्स, पृष्ठ 73।
5. शर्मा, श्याम सुन्दर, (2022), ग्लोबल वार्मिंगः कारण और निराकरन', शिलालेख प्रकाशन, पृष्ठ 122।
6. कुमार, डॉ0 अजय, (2018). पर्यावरण एवं समाज, विवेक प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-132।
7. www.unep.org
8. www.un.org
9. www.vivaceama.com
10. http://egreenwatch.nic.in/
11. en.wikipedia.org

भारत में सामाजिक समरसता के व्यक्तिगत प्रयास विशेषः भारतीय संतो के संदर्भ में एक ऐतिहासिक अध्ययन

कौशल किशोर

शोधार्थी, इतिहास विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

शोध सारः-

भारत की आध्यात्मिक परम्परा बहुत प्राचीन और विलक्षण रही है। इसकी गहराई महासागर के समान है। समय-समय पर आने वाली सामाजिक विकृतियों व चुनौतियों का इस देश ने आध्यात्मिक परम्परा तथा भक्ति का सहारा लेकर सामना किया है। भारतीय समाज के अन्दर स्वयं को परिष्कृत करने की विलक्षण क्षमता है। भारतीय समाज के मौलिक सिद्धान्त, समाज में उत्पन्न होने वाली विकृतियों के विरुद्ध स्वाभाविक रूप से संघर्ष करने लगते हैं। जातिगत भेदभाव तथा छुआछूत जैसी परम्पराओं को कभी सैद्धान्तिक स्वीकृति नहीं मिली बल्कि इस प्रकार की बुराईयों के विरूद्ध स्वयं भारतीय समाज के ही प्रेरित लोग खड़े हो गये। भारतीय समाज की सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध लड़ने की धार्मिक परम्परा छठी शताब्दी ई.पू. ही प्रारम्भ हो गयी थी।

मूल शब्दः- समाज, परम्परागत, आन्दोलन, समन्वय, एकता, समुदाय।

प्रस्तावनाः-

भारतीय समाज की एकता और अखण्डता को बचाने के लिए भारतीय समाज में अनेक आन्दोलन हुये जिनमें भक्ति आन्दोलन सर्वाधिक प्रभावशाली तथा देशव्यापी आन्दोलन रहा। इस भक्ति आन्दोलन ने सम्पूर्ण भारतीय रामाज को प्रभावित किया। सन्तों और भक्तों ने समाज में व्याप्त बुराइयों से अपने देश और समाज को बचाने के लिए इस आन्दोलन को जन-जन तक पहुंचाने का कार्य किया। इस भारतीय समाज के आध्यात्मिक आन्दोलन में सभी जाति तथा सभी वर्ण के लोगों ने भाग लिया। यहां तक शूद्र कही जाने वाली जातियों में भी महान सन्तों का उद्‌भव हुआ। इन भारतीय सन्तों के श्रेष्ठ चरित्र तथा व्यवहार के आगे उच्च वर्ण के लोग भी नतमस्तक हो गये तथा उनका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। ये सन्त इस समय की संत परम्परा के बहुधा परम्परागत अर्थों में पढ़े नहीं थे, क्योंकि इनको वेद पठन-पाठन की सामाजिक मान्यता प्राप्त नही थी। वह राम नाम तो ले सकते थे किन्तु इनका मन्दिरों में प्रवेश वर्जित था।

भारतीय सामाजिक सुधार की प्रथम लहर का प्रारम्भ दक्षिण भारत के आलवार तथा नायनार संतो के द्वारा हुआ है। आलवारों में अनेक अन्त्यज जाति के सन्त थे। इन भक्तों ने शुद्ध हृदय से भक्ति का प्रचार किया तथा जन भाषा को अपना माध्यम बनाया।

प्राचीन काल में महात्मा बुद्ध ने भी हिन्दू समाज में व्याप्त बुराईयों को दूर करने के लिए व्यापक जन आन्दोलन चलाया जिसका मूल आधार दया, करुणा और अहिंसा थी। बौद्ध सिद्धान्तों ने लम्बे समय तक भारतीय समाज में व्याप्त बुराइयों का जम कर विरोध किया।

दक्षिण भारत में दो महान विभूतियाँ आद्य गुरु शंकराचार्य तथा रामानुजाचार्य का प्रादुर्भाव हुआ। इन दोनों विलक्षण महापुरुषों ने अपने ज्ञान, दर्शन, आध्यात्म तथा ओज से सम्पूर्ण भारतीय समाज को प्रकाशित किया। शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन ने तथा रामानुज की भक्ति ने भारतीय समाज को स्थायी रूप से प्रभावित किया तथा सामाजिक विखण्डन की गति को स्थिर किया। स्वामी रामानन्द के नेतृत्व में यह भक्ति आन्दोलन सम्पूर्ण भारतीय समाज को अवलोकित करने लगा। संत रामानन्द संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान हो कर भी जन भाषा के समर्थक थे। उनका मानना था कि समाज में जन भाषा के माध्यम से ही एकरसता उत्पन्न की जा सकती है। स्वामी रामानन्द ने कहा-

"जाति पांति पूंछे नही कोई, हरि को भजै से हरि को हाई''

13वीं सदी का यह उद्घोष जाति-पांति के भेदभाव से जीर्ण, जर्जर हुये भारतीय समाज में ऊर्जा संचार का स्रोत सिद्ध हुआ।

यही वह समय था जब भारतीय समाज को इस्लाम धर्म ने अपने प्रभाव में लेना प्रारम्भ किया। कई भारतीय हिन्दू शासकों ने इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया। ऐसे समय में इन सन्त समाज को अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। उन्होंने राजाओं की स्तुति की अपेक्षा राम-कृष्ण का गुणगान करना अधिक श्रेष्ठ समझा। जब उन्हें मन्दिरों में प्रवेश करने से वंचित किया तो उन्होंने निर्गुण राम की शरण ले ली और निर्जुन भक्ति धारा को प्रवाहित किया। भारतीय संत समाज ने समाज में व्याप्त आडम्बरों की कटु आलोचना की साथ ही अत्याचारी शासको के विरुद्ध संघर्ष भी किया। यह सन्त समाज सर्वत्र स्वतन्त्र था। किन्तु भारतीय सन्त समाज ने धर्मान्तरण का घोर विरोध किया। संत रैदास ने मन की पवित्रता पर बल देते हुये-

'मन चंगा तो कठौती में गंगा।'

कह कर गंगा के प्रति अपनी भक्ति भावना को दृढ़ता से प्रकट किया। वही बाबा तुलसी दास जी ने तो स्वयं को मनसबदारी से मुक्त रखा।

कबीर दास जी ने तो स्वयं को "राम की कुला" कहा।

इस काल में भारतीय समाज में धीरे धीरे व्याप्त हो रही अकर्मण्ता का इन सन्तों ने विरोध किया। इस समय के भारतीय सन्त समुदाय का एक बड़ा हिस्सा श्रमजीवी सन्तों का था। इनमें कोई कपड़ा बुनता था, कोई दर्जी का काम करता था, कोई बाल काटता था और कुछ लोग जूता बनाने का काम करते थे। इन सन्तों ने अत्याधिक कठिन ईश्वर-जीव के दार्शनिक प्रसंगों को जन भाषा के माध्यम से जन-जन तक पहुंचाया। भारतीय सन्तों ने अपना सम्पूर्ण जीवन परोपकार तथा सामाजिक सुधार में लगा दिया। उनका जीवन अत्याधिक सादा-सरल था। इसके कारण यह सन्त समुदाय अध्यात्म की गहराइयों में डूबा हुआ था।

भारतीय सन्त समुदाय का मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर ईश्वर का दर्शन समभाव से करना चाहिए। भक्ति भाव मन में लेकर ममता और प्रेम का सन्देश घर-घर पहुंचाने का कार्य भी यह सन्त परम्परा कर रही थी। भारतीय सन्त समुदाय ने सभी प्रकार के जातिगत भेदभाव, ढोंग, पाखण्ड आदि का कठोरता पूर्वक विरोध किया।

तत्कालीन देश के प्रत्येक प्रान्त में इस सन्त समुदाय का प्रादुर्भाव हुआ किन्तु हर सन्त की भाषा अलग थी, क्षेत्र अलग था किन्तु फिर भी मक्ति ने सम्पूर्ण सन्त समाज को एक धागे (सूत्र) में बांध कर रखा। सुदूर दक्षिण भारत से लेकर कश्मीर तक के क्षेत्र को सन्त समुदाय ने अपने प्रेम, करूणा, दया आदि परोपकारी गुणों से सिंचित किया।

संत समाज की भाषा तथा साधना विधि पृथक-पृथक होने के बाद भी उन्होंने सम्पूर्ण भारतीय समाज में भक्तिभाव को प्रसारित किया। यह भक्ति एक सम्पूर्ण भारतीय समाज में समरसता तथा एकता स्थापित कर रही थी। वहीं दूसरी ओर मनुष्य जीवन के उपयोगी गुणों का आवाहन भी कर रही थी। इस भक्ति ने हजारों वर्षों से भारतीय समाज को बांध कर रखा है। भक्ति, मानव के बीच उपस्थित सभी प्रकार के भेदों को अस्वीकार करती है, सामाजिक दूरियों को समाप्त करती है तथा सामाजिक समरसता का सन्देश देती है।

भारतीय सन्त समुदाय में हिन्दू और मुस्लिम दोनों सन्त थे। मुसलमानों का एक बड़ा वर्ग इन भारतीय सन्तों की भक्ति तथा आध्यात्मिक ज्ञान से प्रभावित होकर हिन्दू समाज में समरस होने को आतुर दिखाई देता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है हँसते-हँसते किसी भी कठिन कार्य को कर जाने वाला व्यक्ति भी लम्बे एकान्त वास को सहन नहीं कर सकता। एक व्यक्ति से अधिक व्यक्तियों का साथ अधिक फलदायी होता है तथा सुरक्षा भी प्रदान करता है। इसलिए प्राचीन काल से मनुष्यों ने अपने-अपने समाज बनाये। जगत के जीवन व्यवहार के अनुभव से यह एक मान्यता बन गयी कि वहीं व्यक्ति, समाज, देश सुखी सुरक्षित तथा प्रतिष्ठित हो सकता है जिसमें सम्बद्धता तथा एकता स्थापित हो।

व्यक्ति के व्यक्तिगत स्वार्थों पर सामाजिक समरसता तथा सामाजिक एकता स्थापित नहीं हो सकती। समता का अविर्भाव समानता के बिना नहीं हो सकता और इसलिए भारतीय समाज में 'समान शीलेषु व्यसनस्य सख्यम' की उक्ति प्रचलित है। समानता स्थापित करने के लिए व्यक्तिगत स्वार्थों की तिलांजलि परम आवश्यक है बिना इसके सामाजिक एकता स्थापित नहीं की जा सकती। भारतीय सन्त समुदाय ने इस को चरित्रार्थ करते हुये सामाजिक एकता तथा समरसता स्थापित करने का प्रयास किया है।

"जिस आन्तरिक आत्मीयता के भरोसे अपनी व्यक्तिगत आशा, आकांक्षा तथा स्वार्थ के बलिदान के लिए व्यक्ति प्रतिबद्ध रहता है अपने समाज तथा बन्धु-बान्धव के हितों की संवेदना जिस आन्तरिक संस्कार के कारण व्यक्तियों के हृदय को झकझोर देती है, उसी को समरसता कहते है।"

समरसता जैसी भावना के आधार पर ही विविधताओं से भरा हमारा देश भारतवर्ष व उसका हिन्दू समाज अपने एकरस जीवन का निर्वाह प्राचीन समय से कर रहा है। जब-जब भारत में सामाजिक एकता तथा समरसता की पूर्णता देखी गयी है, तब-तब उसके वैभव, सामर्थ्य तथा प्रतिष्ठा की जगत में पराकाष्ठा होती गयी। जब-जब किसी दोष, दुर्बलता तथा बाह्य कारणों से समरसता का क्षय हुआ है तब-तब हमारा देश, हमारा समाज श्रीहीन, विद्याहीन तथा दुर्बल होकर विदेशी आक्रान्ताओं द्वारा खंडित हुआ है।

भारत के आन्तरिक एकता की आधारभूत इस समरसता को जगाने तथा विषमता और उसके कारणों को हटाने के भागीरथ प्रयास अनेक सन्तों द्वारा किये गये और आज भी कम या अधिक मात्रा में चल रहे है। ऐसे ही अनेक महामुनियों व सन्तों के सतत् प्रयास के कारण ही विदेशी दासता से भारत को मुक्ति प्राप्त हुयी। स्वतन्त्र भारत के परमवैभव की प्राप्ति के लिए सामाजिक समरसता के प्रयास अधिक दृढ़ व व्यापक रूप से सर्वत्र होने की परम आवश्यकता है।

भारतीय संत समाज पर देश में प्रचलित अनेक मतों का भी प्रभाव देखा जा सकता है किन्तु सभी विचारों को एकसूत्र बांधने का कार्य संत समाज द्वारा किया गया। सूफी, अद्वैत, इस्लाम (एकेश्वरवाद) आदि विचार धाराओं को एकसूत्र में बांधकर समाज को तुच्छ विचारधारा से ऊपर उठाने का कार्य संत समाज ने किया। भारतीय संतों द्वारा प्रचलित विचार इस प्रकार के है जिन्हें हिन्दू-मुसलमान या अन्य कोई भी धर्म जाति का व्यक्ति स्वीकार कर सकता है। "मूर्तिपूजा, विविध प्रकार के कर्मकाण्ड आदि का उन्होंने खण्डन किया, माया के बन्धन से मुक्त होने का उपदेश दिया और योग को ईश्वरानुभूति का साधन बताया। अद्वैतवाद और सूफीमत के मिश्रण से कबीर के रहस्य वाद का उदय हुआ।"

ब्रह्म-जीव की एकता पर जोर देने वाला संत समाज तथा उनकी विचारधारा सामाजिक कुरीतियों से मुक्त समाज की कल्पना करते है। समाज में अनेक प्रकार की व्याप्त प्रज्वलित समस्याएँ जैसे जातिगत भेदभाव, अस्पृश्यता तथा ऊँच-नीच के विरूद्ध संत समाज ने आवाज उठाई तथा समाज को एकता तथा समरसता का प्रेम पूर्ण सन्देश दिया। संतों की इसी आवाज ने ईश्वर तथा मनुष्य के मध्य एक संबंध स्थापित करने का कार्य किया।

संत समाज ने अपने विचारों की मूल प्रवृत्ति आध्यात्मिक ज्ञान को बनाया जो उनका दार्शनिक पक्ष है तथा व्यवहारिक रूप से उन्होंने समाज सुधारक तथा जीवन पथप्रदर्शक के रूप में कार्य किया। भारतीय संत समाज ने भारतीय आध्यात्मिक दर्शन को एक नया स्वरूप प्रदान किया और जन सामान्य को उस आध्यात्मिक जीवन से जोड़ने का प्रयास किया। मध्यकालीन भारतीय समाज के अधिकांश संत निम्न वर्ग से तथा अशिक्षित थे। इस संत समुदाय ने आदि काल से प्रचलित सहज भक्ति मार्ग को स्वीकार किया तथा आत्मसिद्ध अनुभूतियों के द्वारा समाज के सामान्य वर्ग को उससे जोड़ने का प्रयास किया।

भारतीय संत समाज की मूल प्रवृत्ति आध्यात्मिक है किन्तु सामाजिक जीवन से उनका सीधा संबंध रहा। संत समाज ने कभी अपना विशेषीकरण नहीं किया। भारतीय संत समाज ने 'कथनी की अपेक्षा करनी पर विशेष बल दिया है। संत समाज ने अपने विचारों को भक्ति मार्ग से प्रवाहित किया जो अधिकांशता निर्गुण ब्रह्म पर आधारित था। संत समाज ने 'सहज योग' तथा 'नाम स्मरण आदि से अपने मन, शरीर को पवित्र कर ईश्वर प्राप्ति की बात कही है। उनका मानना है कि मनुष्य का मन तथा आत्मा पवित्र होनी चाहिए जो भक्ति मार्ग द्वारा सहजता से प्राप्त किया जा सकता है।

निष्कर्ष:-

संत समाज ने बाह्याडम्बर की घोर निन्दा की है। उनका मानना था कि अखण्ड विश्व स्वरुप परमात्मा की अनुभूति करने के लिए जप, तप, यज्ञ आदि करने की कोई आवश्यकता नहीं है। एक पवित्र और निश्छल मन के द्वारा उसे सहजता से प्राप्त किया जा सकता है। संत समाज का मानना है कि पवित्र मन के गुरू की परम आवश्यकता होती है। बिना सतगुरू की कृपा के यह संभव नहीं है। "आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति तो एक जटिल कर्म पद्धति है इसलिए इस जटिल कर्म पद्धति के लिए सद्गुरू के बिना जगत के चाहे ओर सभी व्यापार हो जावें परन्तु यह जटिल साधना नहीं हो सकती।" संत समाज ने अपने विचारों तथा वाणी में लोक कल्याण की भावना को केन्द्र में स्थान दिया। उन्होंने अपने आध्यात्मिक आत्मानुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए सहज तथा सरल लोक भाषा का प्रयोग किया उन्होंने विशिष्ट जनों की मानी जाने वाली संस्कृत भाषा का त्याग

किया तथा लोक भाषा के माध्यम से भारतीय समाज को एक सूत्र में पिरोने का प्रयास किया। भारतीय संत समाज ने सभी मत, पंथ, धर्मों के मानवीय गुणों को स्वीकार किया। सूफी संतों ने प्रेम का संदेश दिया तो वहीं वैष्णव संतों ने भक्ति की धारा को प्रवाहित किया। "जनता की आशा-आकांक्षा, हर्ष-विषाद, भूख-प्यास, रूदन गायन के दोनों तटों को स्पर्श किया।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ. षडश्वाल, पीताम्बरा: हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय- पृ. 274
2. डॉ. पाण्डे, राजवली, प्राचीन भारत, पृ. 469
3. डॉ. गोपाल, कृष्ण, भारत की संत परम्परा और सामाजिक समरसता, विद्या भारती सिविल लाइन्स, प्रयाग 2004, 7-6
4. डॉ. चौरसिया, केसनी प्रसाद, मध्यकालीन हिन्दी संत विचार-साधना, पृ. 16
5. शुक्ल, दिनेश चन्द्र एवं सिंह, ओंकार नारायण: राजस्थान की भक्ति परम्परा एवं संस्कृति, राजस्थानी ग्रन्थागार, सोजती गेट, जोधपुर, राजस्थान, प्रथम संस्करण, वर्ष 1992, पृ.16
6. डॉ. गोपाल कृष्ण: भारत की संत परम्परा और सामाजिक समरसता, विद्या भारती सिविल लाइन्स, प्रयाग 2004, पृ. 8
7. शुक्ल, दिनेश चन्द्र एवं सिंह, ओंकार नारायण: राजस्थान की भक्ति परम्परा एवं संस्कृति, राजस्थानी ग्रन्थागार, सोजती गेट, जोधपुर, राजस्थान, प्रथम संस्करण, वर्ष 1992, पृ.17
8. डॉ. गोपाल, कृष्ण: भारत की संत परम्परा और सामाजिक समरसता. विद्या भारती सिविल लाइन्स, प्रयाग 2004, पृ.7
9. डा. गोपाल. कृष्ण भारत की संत परम्परा और सामाजिक समरसता, विद्या भारती सिविल लाइन्स, प्रयाग 2004, पृ. 7
10. भगवतगीता: अध्याय 10, श्लोक 21
11. डॉ. श्रीवास्तव, के. सी., प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, प्रयाग, पृ. 17
12. ऋग्वेद 10. 191, 34
13. डॉ. श्रीवास्तव, के. सी. प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, पृ. 18
14. डॉ. गोपाल, कृष्ण, भारत की संत परम्परा और सामाजिक समरसता, विद्या भारती सिविल लाइन्स, प्रयाग 2004, पृ.8
15. डॉ. श्रीवास्तव, के. सी.. प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, प्रयाग, पृ. 17
16. डॉ. गोपाल, कृष्ण, भारत की संत परम्परा और सामाजिक समरसता,

कुटीर उद्योग में गृह विज्ञान की संभावनाओं का अध्ययन

मोनिका

शोद्यार्थी, गृह विज्ञान विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

प्रो० (डॉ) अंजु श्रीवास्तवा

स्नातकोतर गृह विज्ञान विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

सारः एक सशक्त महिला स्वंय, परिवार, समाज, देश- सभी के लिए मूल्यवान होती है। महिला रोजगार का महिला सशक्तिकरण के साथ आंतरिक संबंध है। रोजगार सृजन में कुटीर उद्योग एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। बिहार में महिलाएं कुटीर उद्योग में अच्छी संख्या में विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत है। गृह विज्ञान विषय में भी रोजगार की अपार सम्भावनाएं है, कुटीर उद्योग के परिप्रेक्षय में। प्रस्तुत शोध में इसी को जानने का प्रयास किया गया। बिहार राज्य के 30 जिलों (कोटा प्रतिचयन) से 300 महिला उद्यमियों (उद्देश्यानुसार प्रतिचयन) को प्रतिदर्श के रूप में चयन करने के बाद साक्षात्कार अनूसूची द्वारा आंकड़ो का संग्रहण किया गया तथा प्राप्त आंकड़ो का विश्लेषण प्रतिशत में किया गया। परिणाम बताते है कि गृह विज्ञान के पांचो शाखाओंः आहार एवं पोषण, वस्त्र एवं परिधान, गृह प्रबंधन, मानव विकास एवं प्रसार शिक्षा में से कई क्षेत्रों में महिलाएं कुटीर उद्योग चलाकर्र आिर्थक रूप से सशक्त हो रही है। लेकिन अभी भी कई क्षेत्र अछूते है जिसमें रोजगार सृजन हो सकता है। इसकी शुरूआत गृह विज्ञान औपचारिक रूप से स्कूल/कॉलेज में शिक्षा व प्रशिक्षण देकर किया जा सकता है। कुटीर उद्योग वैसे तो गांव/ग्रामीण क्षेत्रों में ज्यादा होते है लेकिन अब अर्द्ध शहरी व शहरी क्षेत्रों में भी इनकी पहुँच हो गई/ हो रही है और गृह विज्ञान की कुटीर उद्योग में अपार संभावनाएं भी बढ़ रही है।

शब्द कुंजीः कुटीर उद्योग, गृह विज्ञान के क्षेत्र, स्वरोजगार।

परिचयः शिक्षा और आर्थिक विकास के बीच का संबंध बहुआयामी है और एक-दूसरे पर निर्भर है। शिक्षा न केवल व्यक्ति के बौद्धिक और सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, बल्कि यह आर्थिक विकास के लिए भी एक प्रमुख साधन है। शिक्षित व्यक्ति अधिक कौशल और ज्ञान के साथ होते हैं, जिससे उन्हें बेहतर रोजगार और अधिक आय के अवसर मिलते हैं। इससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होता है। शिक्षा रोजगार के अवसरों को बढ़ाती है। शिक्षित लोग विभिन्न क्षेत्रों में काम कर सकते हैं, जबकि अशिक्षित लोगों के पास सीमित अवसर होते हैं। शिक्षा उद्यमिता को प्रोत्साहित करती है। शिक्षित व्यक्ति नए विचारों और तकनीकों को अपनाने में सक्षम होते हैं, जिससे नए व्यवसायों का निर्माण होता है और आर्थिक विकास को बढ़ावा मिलता है।

आर्थिक विकास और सामाजिक स्थिरता के लिए रोजगार एक महत्वपूर्ण घटक है। रोजगार के विभिन्न रूप, जैसे कि स्वरोजगार (स्वतंत्र व्यवसाय) और अन्य रोजगार (नौकरी, ठेकेदारी, आदि), समाज के आर्थिक ताने-बाने को समृद्ध करते हैं। स्वरोजगार और अन्य रोजगार दोनों के अपने- अपने आर्थिक लाभ और महत्व हैं। स्वरोजगार व्यक्ति को स्वतंत्रता और नवाचार के अवसर प्रदान करता है, जबकि अन्य रोजगार स्थिरता और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करते हैं। दोनों ही रूप समाज के आर्थिक विकास और स्थिरता के लिए आवश्यक हैं और एक-दूसरे को पूरक करते हैं। इसलिए, एक संतुलित अर्थव्यवस्था के लिए दोनों प्रकार के रोजगार को प्रोत्साहित करना आवश्यक है। किंतु जब स्वरोजगार की बात आती है तो इसकी कुछ अपनी ही विशेषताएं है- स्वरोजगार व्यक्ति को आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान करता है। वे अपने व्यवसाय के माध्यम से अपनी आय के स्रोत को नियंत्रित कर सकते हैं। स्वरोजगार उद्यमिता को प्रोत्साहित करता है। नए व्यवसाय शुरू करने से न केवल व्यक्ति को लाभ होता है, बल्कि यह समाज के लिए नए रोजगार के अवसर भी पैदा करता है। यह रोजगार अक्सर स्थानीय संसाधनों और बाजारों पर आधारित होता है, जो स्थानीय अर्थव्यवस्था को मजबूत करता है। स्वरोजगार नवाचार और विकास के अवसर प्रदान करता है, क्योंकि लोग नए विचारों और प्रौद्योगिकियों को लागू करने के लिए प्रेरित होते हैं।

स्वरोजगार और गृह विज्ञान के बीच एक गहरा और महत्वपूर्ण संबंध है। गृह विज्ञान, जो कि घर और परिवार के प्रबंधन से संबंधित है, न केवल व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन को समृद्ध करता है, बल्कि स्वरोजगार के कई अवसर भी प्रदान करता है। गृह विज्ञान न केवल व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन को समृद्ध बनाने में सहायक है, बल्कि यह स्वरोजगार के असीमित अवसर भी प्रदान करता है। खाद्य और पोषण, परिधान, गृह प्रबंधन, बाल विकास, इंटीरियर डिजाइनिंग, और स्वास्थ्य जैसे विभिन्न क्षेत्रों में गृह विज्ञान का ज्ञान स्वरोजगार के लिए मजबूत आधार प्रदान करता है। इस प्रकार, गृह विज्ञान और स्वरोजगार का संबंध समाज में आर्थिक स्वतंत्रता और सशक्तिकरण को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसी संदर्भ में शर्मा० ए० (2018) में ''गृह विज्ञान और कुटीर उद्योग: ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण में योगदान" गृह विज्ञान के विभिन्न पहलुओं जैसे कि पोषण, वस्त्र विज्ञान, और गृह प्रबंधन का ग्रामीण महिलाओं के कुटीर उद्योगों में सशक्तिकरण के संदर्भ में अध्ययन किया है। उन्होंने पाया कि गृह विज्ञान के ज्ञान से महिलाओं को बेहतर प्रबंधन और उत्पादन तकनीकों का प्रशिक्षण प्राप्त हुआ, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ।

इसी प्रकार कुमार० एस० (2020) ने अपने शोध ''कुटीर उद्योगों में खाद्य प्रसंस्करण: गृह विज्ञान की भूमिका" में खाद्य प्रसंस्करण कुटीर उद्योगों में गृह विज्ञान की भूमिका का विश्लेषण किया है। उन्होंने पाया कि गृह विज्ञान के तहत खाद्य सुरक्षा, पौष्टिकता और प्रसंस्करण की आधुनिक विधियों का उपयोग करके कुटीर उद्योगों के उत्पादों की गुणवत्ता और विपणन में सुधार हुआ है। इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान हुआ है।

अध्ययन के उद्देश्य:

1) कुटीर उद्योग में गृह विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों की संभावनाओं का अध्ययन करना।

अध्ययन विधि:

प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिए बिहार राज्य के जिलों से कुटीर उद्योगों का चयन में किया गया। अध्ययन के लिए 30 जिलों से कुटीर उद्योग एवं 300 महिला उद्यमियों का चयन किया गया। कोटा प्रतिचयन से कुटीर उद्योगों का तथा उद्देश्यानुसार प्रतिचयन से महिला उद्यमियो का चयन किया गया। आकाड़ों के संग्रहण साक्षात्कार अनुसूची के द्वारा किया गया। परिणामों का विश्लेषण प्रतिशत में किया गया।

परिणाम एवं परिचर्चा:

बिहार राज्य में कुटीर उद्योग के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी का आकलन

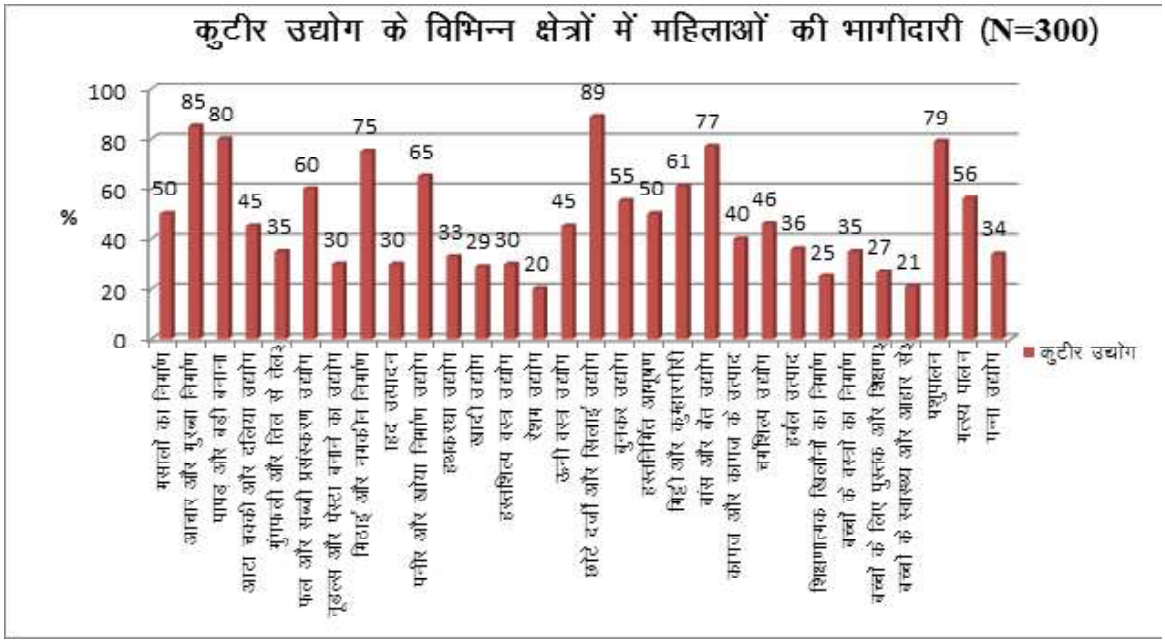

ग्राफ 1: बिहार राज्य में कुटीर उद्योग के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी का आकलन

ग्राफ 1 में विभिन्न कुटीर उद्योगों में महिलाओं की भागीदारी का प्रतिशत दिखाया गया है। महिलाओं की भागीदारी विभिन्न कुटीर उद्योगों में भिन्न- भिन्न है। सिलाई- कढ़ाई, बुनाई, आचार- मुरब्बा, और अगरबत्ती उद्योगों में महिलाओं की भागीदारी अत्यधिक है। वहीं दूसरी ओर, चिकनाई उत्पादन, पुष्पकला, और फल- सब्जी प्रसंस्करण जैसे उद्योगों में महिलाओं की भागीदारी अपेक्षाकृत कम है। यह ग्राफ दिखाता है कि महिलाओं की भागीदारी कुटीर उद्योग के विभिन्न क्षेत्रों में कितनी विविध और महत्वपूर्ण है। इसी संदर्भ में में Verma, A. (2019). Impact of Cottage Industries on Rural Womens Economic Development. ठस अध्ययन में ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक विकास में कुटीर उद्योग की भूमिका पर केंद्रित था। इसमें सिलाई- कढ़ाई, बुनाई, और कृषि जैसे क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी का विश्लेषण किया गया। जिसमें पाया गया कि ग्रामीण महिलाएं सिलाई- कढ़ाई, बुनाई में ज्यादा गतिशील थी। इस प्रकार, कहा जा सकता है कि कुछ विशेष कुटीर उद्योगों में महिलाओं की भागीदारी अधिक है और वे इन उद्योगों में प्रमुख भूमिका निभा रही हैं।

निष्कर्षतः गृह विज्ञान के पांच शाखाओं के अंर्तगत आहार एवं पोषण जैसे- खाद्य प्रसंस्करण और घरेलू उद्योग में अचार, पापड़, मसाले, और अन्य प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों का निर्माण तथा वस्त्र विज्ञान में जैसे हस्तकला और हथकरघा उद्योग में कढ़ाई, बुनाई, और रंगाई, परंपरागत वस्त्र और फैशन डिजाइनों का निर्माण इसके बाद मानव विकास में जैसे शैक्षिक खिलौनों और शैक्षिक सामग्रियों का निर्माण आदि में महिलाएं ज्यादातर स्वरोजगार में भागीदार थी। इन सब के अलावे ओर भी, गृह विज्ञान की कुछ शाखाओं में कुटीर उद्योग की संभावनाओं का अभी भी पूरा उपयोग नहीं हो रहा है, उदाहरण स्वरूपः परिवार संसाधन प्रबंधन में कई संभावनाएं होते हुए भी इस क्षेत्र में नवाचार की कमी है तथा प्रसार शिक्षा के अंतर्गत ग्रामीण और दूरस्थ क्षेत्रों में कुटीर उद्योगों के प्रति जागरूकता और प्रशिक्षण की कमी है।

इस आधार पर इन शाखाओं में नवाचार और उद्यमिता को बढ़ावा देकर कुटीर उद्योगों को सशक्त बनाया जा सकता है। इसके लिए गृह विज्ञान के औपचारिक पाठ्यक्रम में कुटीर उद्योग संबंधी तथ्य को प्रायोगिक एवं सापेक्षिक दोनो में शामिल करने की आवश्यकता है साथ ही स्कूल/कॉलेज में शिक्षा व प्रशिक्षण देने की जरूरत है। जिससे ग्रामीण एवं शहरी महिलाएं स्वरोजगार में सशक्त होगी तथा अर्थव्यवस्था को मजबूती मिलेगी और रोजगार के नए अवसर उत्पन्न होंगे।

सन्दर्भ सूचीः

1 Agarwal, R. (2019). Challenges and opportunities in cottage industries for women empowerment. International Journal of Social Sciences, 14(3), 67-82

2 Sharma, S. (2020). Role of home science in empowering women through cottage industries. Journal of Home Science and Cottage Industry, 15(3), 45-60.

3 Verma, A. (2019). Impact of cottage industries on rural women's economic development. International Journal of Rural Development, 12(2), 78-92.

4 Jain, R. (2020). Training and skill development in cottage industries through home science. Indian Journal of Skill Development, 6(2), 120-135.

5 Khanna, A. (2021). Marketing strategies for cottage industry products by women entrepreneurs. Journal of Women Entrepreneurship, 5(1), 40-58.

''नई शिक्षा नीति 2020 के अन्तर्गत शिक्षण-अभ्यास के दौरान बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों के शिक्षण व्यवहार एवं शिक्षण प्रभावशीलता के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन''

ओमप्रकाश

पी-एच.डी. (छात्रा), पैसिफिक यूनिवर्सिटी, उदयपुर (राज०)

डॉ० कौशिक वी. पण्डया

शोध निर्देशक, पैसिफिक यूनिवर्सिटी, उदयपुर (राज०)

शोध आलेख सार-

नई शिक्षा नीति 2020 में इस तथ्य की भी संस्तुतियां की गई है कि शिक्षकों के लिए सार्थक एवं आवश्यकता आधारित कौशलों के विकास हेतु नवीन प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रारम्भ किए जाए, ताकि अध्यापकों की प्रभावशीलता, शिक्षण व्यवहार एवं कार्यदबाव का स्तर अधिकतम हो सके। नई शिक्षा नीति 2020 में इसी तथ्य को दोहराते हुये कहा गया है कि ''शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों की सार्थकता उसकी विषयवस्तु तथा ज्ञान के सतत् विकास पर निर्भर करेगी।''

मूल शब्द- शिक्षा नीति, शिक्षण अभ्यास, शिक्षण व्यवहार एवं शिक्षण प्रभावशीलता।

प्रस्तावना-

परिवर्तित ज्ञान की अवधारणा सम्पूर्ण विश्व में बलवती होती जा रही है। यह सर्वसिद्ध तथ्य है कि ज्ञान एक विकासात्मक अवधारणा है। सत्य व शुद्ध तथ्यों के मापदण्ड में दिन-प्रतिदिन बदलाव आ रहे हैं। इस दृष्टि से किसी भी क्षेत्र के ज्ञान में पूर्णता के सम्बन्ध में अन्तिम सीमा रेखा नहीं खीची जा सकती उसके विकास का छोर सदैव खुला रहता है। उपर्युक्त चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में आज शिक्षा, शिक्षक एवं शिक्षण कार्यक्रमों में भी गत्यात्मकता, अद्यनता एवं विकासात्मकता जैसी धारणाओं का समावेश व बदलते वैश्वीकरण परिवेश के कारण यह एक आवश्यकता आधारित कार्यक्रम बन गया है। समय-समय पर बदलती हुई परिस्थितियों के आधार पर अध्यापन वृत्ति के कार्यक्रमों में भी नई शैक्षिक मांगों का उदय हुआ है। अतः आज के अध्यापक की प्रमुख समस्या वर्तमान गतिशील समाज की आकांक्षाओं व मापदण्डों के अनुकूल स्वयं की वृत्ति को निर्धारित करना है। इसलिए नई शिक्षा नीति 2020 में स्पष्ट रूप से सिफारिश की गई है कि ''अध्यापक शिक्षा एक सतत् प्रक्रिया है जो सेवा से पूर्व व सेवा के उपरान्त अनवरत आवश्यक तथा प्रेरणादायी होनी चाहिए। अपने प्रथम कदम में सम्पूर्ण अध्यापक शिक्षा तन्त्र एवं शिक्षण प्रक्रिया सदैव समाज की व्यापक व नवीन आवश्यकताओं के अनुकूल होनी चाहिए।''

अखिल भारतीय स्तर पर शिक्षा महाविद्यालयों में प्रवेश हेतु विभिन्न आधार हैं। राजस्थान राज्य में सन् 1987 से पूर्व शिक्षा महाविद्यालयों में प्रवेश स्नातक स्तर पर प्राप्त अंकों के आधार पर वरीयता निर्धारण कर दी जाता था। लेकिन सन् 1987 के पश्चात प्रवेश का आधार ''प्री-टीचर एज्यूकेशन टेस्ट (पी.टी.ई.टी) बना दिया गया। प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्रवेश पाने हेतु विद्यार्थी को बी.एड. प्रवेश परीक्षा (पी.टी.ई.टी.) उत्तीर्ण करना अति आवश्यक है। बी.एड. प्रवेश परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थियों को प्रशिक्षण हेतु शिक्षा महाविद्यालयों मे प्रवेश दिया जाता है। जहाँ उन्हें अध्यापन का प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षण के दौरान बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों को शिक्षण का अभ्यास करवाया जाता है जिससे उनकी शिक्षण प्रभावशीलता में बढ़ोतरी होती है तथा उनका शिक्षण व्यवहार भी प्रभावित होता है।

शिक्षक को समाज व देश का नियामक माना जा सकता हैं क्योंकि विभिन्न क्षेत्रों में जो भी साधारण और असाधारण प्रतिभा वाले लोग काम करते है उन सबको तैयार करने का काम शिक्षक ही करता है। ऐसे में अगर शिक्षक के द्वारा अपनी भूमिका का सही निर्वहन नहीं किया जायेगा तो उस स्थिति में देश को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ेगा क्योंकि ऐसे में जब

देश को अच्छे कर्णधार नहीं मिलेंगे तो देश की शासन व्यवस्था सुचारू व अच्छे ढ़ंग से नहीं चल पायेगी। इसको अच्छे ढ़ंग से चलाने का काम सुयोग्य नागरिक ही कर सकते हैं और ये सुयोग्य नागरिक शिक्षक ही तैयार करते हैं। बदलते परिवेश को ध्यान में रखते हुए आज शिक्षक की भूमिका और भी ज्यादा बढ़ गई है। तकनीकी एवं विज्ञान के इस युग में भी शिक्षक की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता।

इस शोध के माध्यम से यह स्पष्ट किया जाना कि शिक्षण एक भरण पोषण आजीविका नहीं है, बल्कि समाज के प्रति दायित्वों से भरी वृत्ति है। समाज के मार्गदर्शन की जिम्मेदारी शिक्षकों की है, अत: उनके सन्दर्भ में कोई भी घोषणा महत्त्वहीन हो ही नहीं सकती क्योंकि इसका सम्बन्ध शिक्षा एवं शिक्षकों से है। किसी भी राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था व शिक्षा की गुणवत्ता शिक्षकों के स्तर से उपर नहीं उठ सकती।

अध्ययन का महत्व:-

हाल ही में प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी द्वारा नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति लाई गई जिसे सभी के परामर्श से तैयार किया गया है। इसे लाने के साथ ही देश में शिक्षा पर व्यापक चर्चा प्रारम्भ हो गई है। शिक्षा के संबंध में गांधीजी का तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से है। इसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द जी का कहना था कि मनुष्य की अंर्तनिहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। इन्हीं सब चर्चाओं के मध्य हम देखेंगे कि पहले की शिक्षा नीति में ऐसी क्या कमियाँ रह गई थी जिन्हें दूर करने के लिए नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति को लाने की आवश्यकता पड़ी। साथ ही क्या यह नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति उन उद्देश्यों को पूरा करने में सक्षम होगी जिसका स्वप्न महात्मा गांधी और स्वामी विवेकानन्द ने देखा था?

शिक्षा का शाब्दिक अर्थ होता है सीखने एवं सिखाने की क्रिया। मगर केन्द्र सरकार द्वारा 1986 की शिक्षा नीति के अंदर ना तो कोई सीखने को मिला और ना ही कोई सिखाने वाली वस्तु केवल उस नीति के अंदर बच्चे में रहने का ज्ञान लिया और कक्षा उतीर्ण करने के डर लगा रहता था। शिक्षा के शाब्दिक अर्थ को सार्थक करते हुए और बच्चे के सर्वांगीण विकास वाली नई शिक्षा नीति 2020 को केन्द्र सरकार ने मंजूरी दी है। पहले की शिक्षा नीति 1986 मूल रूप में परिणाम देने पर ही केन्द्रित थी, मतलब कि विद्यार्थियों का आंकलन उनके द्वारा अर्जित अंकों के आधार पर किया जाता था जो कि एक एकल दिशा दृश्टिकोण है। नई शिक्षा नीति 2020 ठीक इसके विपरीत है यानि बहुत दिशा दृश्टिकोण पर केन्द्रित है जिसके द्वारा विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास होगा और यही इस नीति का उद्देश्य है।

''शिक्षक प्रभावशीलता'' अवधारणा का सम्बन्ध शिक्षक के शिक्षण की प्रभावशीलता से है, अर्थात् एक शिक्षक अपने अध्यापन कार्य से अपने शिष्यों को किस प्रकार संतुष्ट कर पाता है? वह स्तर शिक्षक की प्रभावशीलता का द्योतक है। किसी भी शिक्षक की प्रभावशीलता का मापक उसकी शिक्षण प्रक्रिया से प्राप्त विद्यार्थी संतुष्टि स्तर, शिक्षार्थियों की सफलता का स्तर एवं विशिष्ट एवं शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति के स्तर होते हैं। इस प्रकार अध्यापक प्रभावशीलता का सम्बन्ध उसकी शिक्षण निष्पादन क्षमता से है जिसे वह अपने शिक्षण कौशलों व अर्जित ज्ञान के माध्यम से शिष्यों को कक्षा में पढ़ाते हुए अर्जित करता है।

उपर्युक्त शोध में इन्हीं विचारों व भावों पर आधारित शिक्षण प्रभावशीलता को स्वीकारा गया है। अत: किसी शिक्षक के शिक्षण प्रक्रिया निर्धारित मानक, आवश्यक कौशल एवं आवश्यक पर्यावरण से समन्वित होकर जो शिक्षण उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं। यदि वे निर्धारित मानकों तथा आन्तरिक एवं बाह्य संदर्भों के अनुकूल है तो शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावशाली तथा उस शिक्षक को प्रभावशील शिक्षक कहा जाएगा। समन्वित व संज्ञा स्वरूप अध्यापक प्रभावशीलता के नाम से जाना जाएगा।

समस्या कथन:-

''नई शिक्षा नीति 2020 के अन्तर्गत शिक्षण-अभ्यास के दौरान बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों के शिक्षण व्यवहार एवं शिक्षण प्रभावशीलता के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन''

अध्ययन के उद्देश्य:-

1. ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों की शिक्षण-अभ्यास के दौरान शिक्षण प्रभावशीलता एवं शिक्षण व्यवहार में पारस्परिक सह-सम्बन्ध ज्ञात करना।

अध्ययन की परिकल्पनाः-

1. ग्रामीण क्षेत्र के बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों की शिक्षण-अभ्यास के दौरान शिक्षण प्रभावशीलता एवं शिक्षण व्यवहार में कोई पारस्परिक सहसम्बन्ध नहीं है।
2. शहरी क्षेत्र के बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों की शिक्षण-अभ्यास के दौरान शिक्षण प्रभावशीलता एवं शिक्षण व्यवहार में कोई पारस्परिक सहसम्बन्ध नहीं है।

परिसीमनः-

1. प्रस्तुत अध्ययन में राजस्थान राज्य के भरतपुर जिले को सम्मिलित किया गया है।
2. अध्ययन के लिये भरतपुर जिले में संचालित बी.एड. महाविद्यालयों के कुल 800 प्रशिक्षणार्थियों को सम्मिलित किया गया है।
3. शोध अध्ययन में भरतपुर जिले के 20 बी.एड. महाविद्यालयों के 400 शहरी (200 छात्र + 200 छात्राएँ) एवं 400 ग्रामीण (200 छात्र + 200 छात्राएँ) प्रशिक्षणार्थियों को न्यादर्श के रूप में लिया गया है।

शोधविधिः-

प्रस्तुत शोध में उद्देश्य एवं परिकल्पनाओं को ध्यान में रखते हुए शोधकर्त्री द्वारा दत्त संकलन हेतु सर्वेक्षणात्मक शोध विधि का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन में प्रयुक्त उपकरणः-

अध्यापक प्रभावशीलता मापनीः-

प्रस्तुत शोधकार्य में शोधकर्त्री द्वारा डॉ. (श्रीमती) उम्मे कुलसूम द्वारा निर्मित मापनी को आधार माना गया है।

अध्ययन में प्रयुक्त सांख्यिकीः-

प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्रयुक्त सांख्यिकी मध्यमान, प्रमाणिक विचलन एवं सहसम्बन्ध की गणना की गई है।

समंकों का सारणीयन एवं विश्लेशणः-

प्रस्तुत शोधकार्य में अनुसंधानकर्त्री ने संकलित एवं व्यवस्थित आंकड़ों का विश्लेशण जिस प्रकार किया है, उसका परिकल्पनानुसार विवरण निम्न प्रकार है-

तालिका संख्या-1: ग्रामीण क्षेत्र के बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों में शिक्षण-अभ्यास के दौरान शिक्षण-प्रभावशीलता और शिक्षण व्यवहार में परस्पर सहसम्बन्ध की गणना।

ष्शिक्षण व्यवहार		ष्शिक्षण–प्रभावष्शीलता		
वर्ग–अन्तराल	बारम्बारता	वर्ग–अन्तराल	बारम्बारता	
100.109	1	400.419	3	
110.119	3	420.439	4	
120.129	8	440.459	6	
130.139	23	460.479	16	
140.149	79	480.499	95	
150.159	107	500.519	118	
160.169	97	520.539	81	
170.179	55	540.559	47	
180.189	23	560.579	20	
190.199	4	580.599	6	
		600.619	4	**(r)=** .0.056
योग	**400**	योग	**400**	

(df=N-2=400-2=398)

विश्लेष्ण: उपर्युक्त तालिका में ग्रामीण क्षेत्र के बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों में शिक्षण-अभ्यास के दौरान शिक्षण-प्रभावशीलता और शिक्षण व्यवहार के प्राप्तांकों के मध्य परस्पर सहसम्बन्ध का प्रदर्शन किया है। कार्ल-पिर्यसन के घुणन-आघुन सह-सम्बन्ध गुणांक विधि से सह-सम्बन्ध ज्ञात करने पर सहसम्बन्ध (r)= .0.056 प्राप्त हुआ। 398 (df) स्वतंत्रता के अंश पर .05 स्तर पर सार्थकता का मान 0.113 तथा .01 स्तर पर सार्थकता का मान 0.148 सहसम्बन्ध की सारणी में दिया गया है। गणना द्वारा प्राप्त सहसम्बन्ध का मान इन दोनों सार्थकता स्तर के मान से कम है। अत: यहाँ निर्धारित शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है और निश्कर्शत: कहा जा सकता है कि ग्रामीण क्षेत्र के बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों में शिक्षण-अभ्यास के दौरान शिक्षण-प्रभावशीलता और शिक्षण व्यवहार में परस्पर कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं पाया गया।

आरेख संख्या- 1

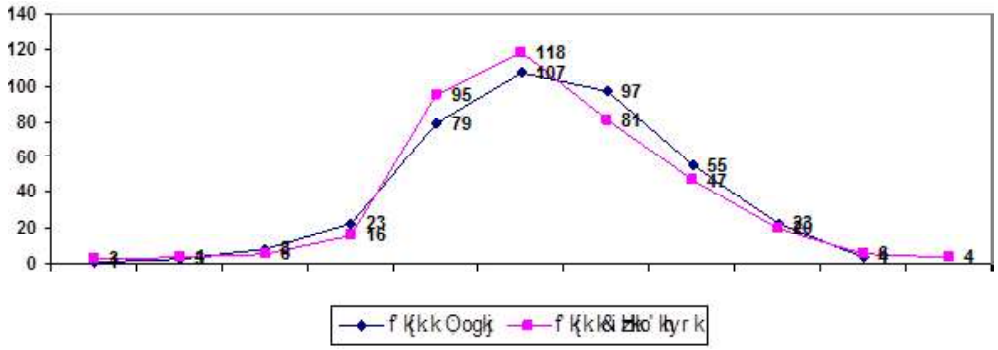

तालिका संख्या-2

शहरी क्षेत्र के बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों में शिक्षण-अभ्यास के दौरान शिक्षण-प्रभावशीलता और शिक्षण व्यवहार में परस्पर सहसम्बन्ध की गणना।

शिक्षण व्यवहार		शिक्षण–प्रभावषीलता		
वर्ग–अन्तराल	बारम्बारता	वर्ग–अन्तराल	बारम्बारता	
100.109	3	451.464	0	
110.119	9	465.479	8	
120.129	19	480.494	23	
130.139	39	495.509	79	
140.149	78	510.524	114	
150.159	99	525.539	88	
160.169	83	540.554	50	
170.179	44	555.569	29	
180.189	20	570.584	9	
190.199	6	585.599	0	**(r)=** 0.054
योग	**400**	**योग**	**400**	

(df=N-2=400-2=398)

विश्लेषण: उपर्युक्त तालिका में शहरी क्षेत्र के बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों में शिक्षण-अभ्यास के दौरान शिक्षण-प्रभावशीलता और शिक्षण व्यवहार के प्राप्तांकों के मध्य परस्पर सहसम्बन्ध का प्रदर्शन किया है। कार्ल-पिर्यसन के घुणन-आघुन सह-सम्बन्ध गुणांक विधि से सह-सम्बन्ध ज्ञात करने पर सहसम्बन्ध (r)= 0.054 प्राप्त हुआ। 398 (df) स्वतंत्रता के अंश पर .05 स्तर पर सार्थकता का मान 0.113 तथा .01 स्तर पर सार्थकता का मान 0.148 सहसम्बन्ध की सारणी में दिया गया है। गणना द्वारा प्राप्त सहसम्बन्ध का मान इन दोनों सार्थकता स्तर के मान से कम है। अत: यहाँ निर्धारित शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है और निश्कर्शत: कहा जा सकता है कि शहरी क्षेत्र के बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों में शिक्षण-अभ्यास के दौरान शिक्षण-प्रभावशीलता और शिक्षण व्यवहार में परस्पर कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं पाया गया।

आरेख संख्या- 2

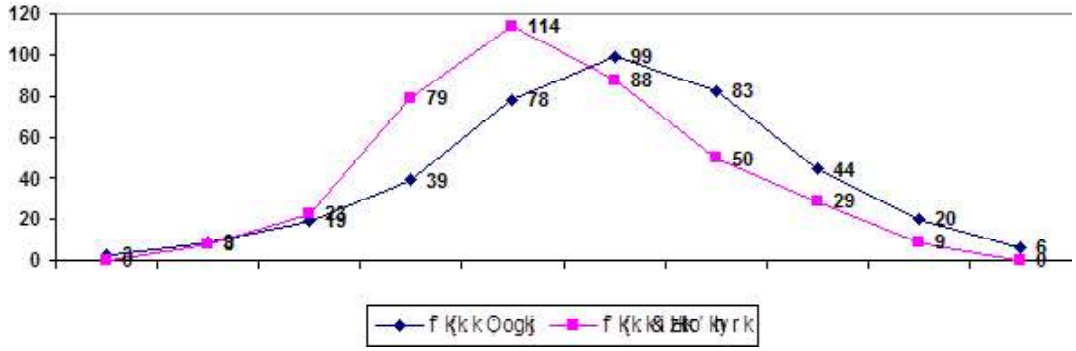

निश्कर्श निरूपण-

1. ग्रामीण क्षेत्र के बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों में शिक्षण अभ्यास के दौरान शिक्षण-प्रभावशीलता एवं शिक्षण व्यवहार में कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं पाया गया।
2. शहरी क्षेत्र के बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों में शिक्षण अभ्यास के दौरान शिक्षण-प्रभावशीलता एवं शिक्षण व्यवहार में परस्पर सार्थक सहसम्बन्ध नहीं पाया गया।

हिन्दी संदर्भ साहित्य

माथुर, एस.एस. (2008) : ''शिक्षा मनोविज्ञान'' अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा, पृश्ठ संख्या-55,76,421.425

मित्तल, एम. एन. (2005) : "शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार'', इन्टरनेशल पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ, पृ. स.- 293-296

मेहता, वी.आर (2006) : ''उभरते भारतीय समाज में अध्यापक एवं शिक्षा'' बी.ई. प्रथम कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा पृष्ठ संख्या-71

मेहता, वी.आर.(2006) : ''अध्ययन पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति'' मूल्यपरक शिक्षा, कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा, पृश्ठ संख्या-70

मोहन्ती जगन्नाथ (2006) : ''अध्यापक, शिक्षा दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-229

राय, पी.एन.(1981) : ''अनुसंधान परिचय'' चतुर्थ संस्करण, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, पृश्ठ संख्या-63

शर्मा, आर.एस.(2004) : शिक्षा अनुसंधान, आर.लाल बुक डिपो मेरठ पे. 145-213

शर्मा, वन्दना एवं राजकुमारी (2006) : ''शिक्षा मनोविज्ञान एवं मापन'' राधा प्रकाशन आगरा पृश्ठ संख्या-92

उच्च प्राथमिक स्तर पर कार्यरत टी०ई०टी० एवं गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों की एनईपी-2020 के प्रति जागरूकता का अध्ययन

अमित सिंह कुशवाहा

शोध छात्र, शिक्षा संकाय, कमला नेहरू भौतिक एवं सामाजिक विज्ञान संस्थान, सुल्तानपुर, उ0प्र0

डॉ० दिनेश प्रसाद मिश्रा

प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, कमला नेहरू भौतिक एवं सामाजिक विज्ञान संस्थान, सुल्तानपुर, उ0प्र0

सार- एनईपी-2020 में एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था की संकल्पना की गई है, जिसमें सभी भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक पृष्टभूमि के छात्रों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुलभ हो। नीति में शिक्षकों की भूमिका के महत्व पर जोर दिया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 मे भी इस बात पर बल दिया गया है कि "शिक्षक वास्तव में हमारे बच्चों के सुनहरे भविष्य तथा उनके द्वारा राष्ट्र के भविष्य को आकार देते हैं।'' प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधकर्ता ने उच्च प्राथमिक स्तर पर कार्यरत टी०ई०टी० एवं गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों (पुरुष/महिला) की एनईपी-2020 के प्रति जागरूकता का अध्ययन किया है। शोध में सर्वेक्षण विधि, स्वनिर्मित जागरूकता प्रश्नावली का प्रयोग किया गया एवं न्यादर्श में 200 शिक्षकों (पुरुष/महिला) का चयन समान्य यादृच्छिक प्रतिचयन के द्वारा लाटरी विधि से किया गया। इस शोध के परिणाम में यह पाया गया कि टी०ई०टी० शिक्षकों मे एनईपी-2020 के प्रति जागरूकता, गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों से अधिक पायी गयी है।

मुख्य शब्द- उच्च प्राथमिक स्तर, टी०ई०टी० शिक्षक, गैर-टी०ई०टी० शिक्षक, एनईपी-2020 एवं जागरूकता।

प्रस्तावना- मानव के सर्वांगीण विकास का मूल साधन शिक्षा है समाज में शिक्षा उतनी ही पुरातन है, जितना की स्वयं मानवता का अस्तित्व। भारतीय समाज हमेशा से 'विश्वबंधुत्व' की भावना से प्रेरित रहा है। प्राचीन काल से ही भारतीय वांग्मय में 'वसुधैव कुटुम्बकम' की ध्वनि गूंजती रही है। एनईपी-2020 प्राचीन और सनातन भारतीय ज्ञान और विचार की समृद्ध परंपरा के परिप्रेक्ष्य में तैयार की गई है। यह सभी छात्रों की विशिष्ट क्षमताओं की पहचान कर उन्हें मान्यता और प्रोत्साहन देने पर बल देती है। एनईपी-2020 में राष्ट्रीय शिक्षा का विजन भारतीय मूल्यों से विकसित शिक्षा प्रणाली से है, जो सभी को उच्चतर गुणवत्ता शिक्षा उपलब्ध कराके और भारत को वैश्विक ज्ञान महाशक्ति बनाकर भारत को एक जीवंत और न्यायसंगत ज्ञान समाज में बदलने के लिए प्रत्यक्ष रूप से योगदान करेगी।

एनईपी-2020 शिक्षा में ज्यादा-से-ज्यादा अंतरराष्ट्रीयकरण का पक्षधर है। इसमें ऐसे अवसर पैदा करने की बात कही गयी है जिनसे बड़ी संख्या में अंतरराष्ट्रीय छात्र अध्ययन के लिये भारत आ सकें। इसमें विदेश में अध्ययन के इच्छुक भारतीय छात्रों को इसके लिये अवसर उपलब्ध कराने का प्रस्ताव भी किया गया है (सिंह 2022)। इस नीति में यह संकल्पना की गयी है कि रटंत विद्या और परीक्षाओं के लिये अध्ययन के बजाय विषय की समझ विकसित करने पर जोर दिया जाय तथा शिक्षा प्रणाली में लचीलापन लाया जाय, जिससे कि छात्र अपनी प्रतिभाओं और रुचियों के अनुसार जीवन का रास्ता चुन सकें। अत: एनईपी-2020 में निम्न तथ्यों पर बल दिया गया है-

1. इस लक्ष्य को सर्वोच्च प्राथमिकता देना कि सभी छात्र तीसरी कक्षा तक बुनियादी साक्षरता और अंक ज्ञान हासिल कर लें।
2. कला और विज्ञान, पाठ्यक्रम और पाठ्यक्रमेतर गतिविधियों तथा व्यावसायिक और औपचारिक शिक्षा के बीच कठोर विभाजन नहीं।
3. विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, कला, मानविकी और खेलों के बीच बहुविषयक और समग्र शिक्षा।

4. तार्किक निर्णय लेने की क्षमता और नवोन्मेष को बढ़ावा देने के लिये रचनात्मक और आलोचनात्मक चिंतन का विकास करना।
5. नैतिकता तथा मानवीय और सांवैधानिक मूल्यों को प्रोत्साहन।
6. शिक्षण और ज्ञानार्जन में बहुभाषावाद और भाषा क्षमता को बढ़ावा देना।
7. संचार, सहयोग, सामूहिक कार्य और लचीलापन जैसे जीवन-कौशलों का विकास करना।
8. ज्ञानार्जन के लिये नियमित रचनात्मक मूल्यांकन पर बल देना।
9. शिक्षण और ज्ञानार्जन में प्रौद्योगिकी के विस्तृत उपयोग, भाषा के अवरोधों को दूर करने तथा दिव्यांग छात्रों के लिये पहुंच बढ़ाने पर जोर।
10. विविधता और स्थानीय संदर्भों का सम्मान करना।
11. सभी शैक्षिक फैसलों में पूर्ण न्यायसंगतता एवं समावेशन लाना।
12. शुरुआती बाल्यावस्था देखभाल से लेकर स्कूली और उच्चतर शिक्षा तक सभी स्तरों पर पाठ्यक्रम में तालमेल को बढ़ावा देना।
13. ज्ञानार्जन प्रक्रिया के केंद्र में शिक्षक और संकाय लाना।
14. आसान मगर सुसंगठित नियामक ढांचा जिससे शैक्षिक प्रणाली में ईमानदारी, पारदर्शिता और संसाधन कुशलता सुनिश्चित की जा सके।
15. उत्कृष्ट शिक्षा और विकास के लिये विशिष्ट शोध।
16. सतत शोध के आधार पर प्रगति की लगातार समीक्षा।
17. शिक्षा भारत और उसकी समृद्ध, विविध, प्राचीन और आधुनिक संस्कृति तथा ज्ञान प्रणालियों और परंपराओं पर आधारित हो जो देश के लिये गौरव का भाव पैदा करे।
18. शिक्षा एक लोक सेवा है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुंच हर बच्चे का बुनियादी अधिकार।
19. सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली में पर्याप्त निवेश पर जोर। साथ ही सही मायनों में लोकोपकारी निजी और सामुदायिक भागीदारी को प्रोत्साहन देने और सुगम बनाने का सुझाव (एनईपी-2020, पृष्ठ 5-6)।

वस्तुतः नीति का विजन छात्रों में भारतीय होने का गर्व न केवल विचार में बल्कि व्यवहार, बुद्धि और कार्यों में भी और साथ ही ज्ञान, कौशल, मूल्यों और सोच में भी होना चाहिए जो मानवाधिकारों, स्थायी विकास और जीवनयापन तथा वैश्विक कल्याण के लिए प्रतिबद्ध हो, ताकि वे सही मायने में वैश्विक नागरिक बन सकें।

अध्ययन की आवश्यकता- एनईपी-2020 में कहा गया है कि किसी भी राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान शिक्षक का होता है। शिक्षकों को तैयार करना एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके लिए बहु-विषयक दृष्टिकोण और ज्ञान की आवश्यकता के साथ ही साथ, बेहतरीन मेंटरों के निर्देशन में मान्यताओं और मूल्यों के निर्माण के साथ ही साथ उनके अभ्यास की भी आवश्यकता होती है। एनईपी-2020 में शिक्षकों के लिए विभिन्न कौशल प्रशिक्षण, विविध प्रौद्योगिकी संसाधनों में कुशलता, ऑनलाईन शिक्षा साधनों एवं टूल्स का उपयोग करने की सिफारिस की गयी है। उसमें यह भी सुनिश्चित किया गया है कि शिक्षक, शिक्षा और शिक्षण प्रक्रियाओं से संबंधित अद्यतन प्रगति के साथ ही साथ भारतीय मूल्यों, भाषाओं, ज्ञान, लोकाचार, और परंपराओं जनजातीय परंपराओं सहित के प्रति भी जागरूक रहें।

प्रायः ऐसा पाया जाता है कि व्यक्ति बेरोजगारी, दबाव, प्रत्यासा, संघर्ष, तनाव, अप्रत्याशित आकांक्षा आदि के कारण अपने व्यक्तित्व, अभिक्षमता, रूचि एवं योग्यता के प्रतिकूल व्यवसाय का चयन कर लेता है। जिससे बाद में चलकर उसकी कार्यक्षमता, प्रभावशीलता, समायोजन, कार्य संतुष्टि आदि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जिसके फलस्वरूप व्यवसाय की गुणवत्ता प्रभावित होती है। उच्च प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षक, बी०टी०सी० एवं विशिष्ट बी०टी०सी० प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात नियुक्त होते हैं। जिनके लिए टी०ई०टी० पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण करना अपरिहार्य है। परन्तु पुराने नियमित कार्यरत शिक्षक जो कि टी०ई०टी० पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण नहीं है, वे भी कार्यरत हैं। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि टी०ई०टी० एवं गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों की एनईपी-2020 के प्रति जागरुकता पर सम्पूर्ण रूप से विचार किया जाय। इस संदर्भ में शोध

कर्ता ने यह महसूस किया है कि उच्च प्राथमिक स्तर पर टी०ई०टी० एवं गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों की एनईपी-2020 के प्रति जागरुकता में क्या अन्तर है? इसका अध्ययन किया जाय।

समस्या का कथन- उच्च प्राथमिक स्तर पर कार्यरत टी०ई०टी० एवं गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों की एनईपी-2020 के प्रति जागरूकता का अध्ययन।

प्रयुक्त पदों की संक्रियात्मक परिभाषा-

उच्च प्राथमिक स्तर- उच्च प्राथमिक स्तर से तात्पर्य उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद के अधीन संचालित सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों से है, जिनमें कक्षा एक से आठ तक की शिक्षा दी जाती है।

टी०ई०टी० शिक्षक- उच्च प्राथमिक स्तर पर शिक्षकों की नियुक्ति हेतु सी०बी०एस०सी० द्वारा सी०टी०ई०टी० का आयोजन किया जा रहा है वहीं राज्य स्तर पर माध्यमिक शिक्षा परिषद, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद द्वारा यू०पी० टी०ई०टी० का आयोजन किया जा रहा है। प्रस्तुत शोध में टी०ई०टी० शिक्षक से तात्पर्य उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद के उच्च प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत उन सभी नियमित शिक्षकों से है, जो यू०पी० टी०ई०टी० एवं सी०टी०ई०टी० उत्तीर्ण हैं।

गैर-टी०ई०टी० शिक्षक-

गैर-टी०ई०टी० शिक्षक से आशय उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद के उच्च प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत उन सभी नियमित शिक्षकों से है, जो यू०पी० टी०ई०टी० एवं सी०टी०ई०टी० उत्तीर्ण नहीं हैं।

जागरूकता-

प्रस्तुत शोध में जागरूकता से तात्पर्य जागरूकता प्रश्नावली के प्राप्त आंकड़ो से है, जिनका मापन इस शोध कार्य में प्रयुक्त जागरूकता प्रश्नावली द्वारा किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य-

1. उच्च प्राथमिक स्तर पर कार्यरत टी०ई०टी० शिक्षकों (पुरुष/महिला) की एनईपी-2020 के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना।
2. उच्च प्राथमिक स्तर पर कार्यरत गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों (पुरुष/महिला) की एनईपी-2020 के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना।

अवधारणाएँ- उच्च प्राथमिक स्तर के समस्त टी०ई०टी० एवं गैर-टी०ई०टी० शिक्षक (पुरुष/महिला) एनईपी-2020 के प्रति जानकारी रखते हैं एवं पर्याप्त जागरूक हैं।

शोध का परिसीमन- प्रस्तुत अध्ययन में गाजीपुर जनपद में संचालित परिषदीय उच्च प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापनरत 100 टी०ई०टी० शिक्षकों (पुरुष/महिला) एवं 100 गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों (पुरुष/महिला) को शामिल किया गया है।

शोध विधि- शोध का उद्देश्य उच्च प्राथमिक स्तर पर टी०ई०टी० एवं गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों (पुरुष/महिला) में एनईपी-2020 के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना है। इसलिए शोधकर्ता द्वारा सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया।

जनसंख्या व न्यादर्श- उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जनपद में संचालित परिषदीय उच्च प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापनरत समस्त टी०ई०टी० शिक्षकों (पुरुष/महिला) एवं गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों (पुरुष/महिला) को प्रस्तुत शोध कार्य की जनसंख्या के रूप में परिभाषित किया गया है।

गाजीपुर जनपद में स्थित सभी परिषदीय उच्च प्राथमिक विद्यालयों की सूची में से 100 उच्च प्राथमिक विद्यालयों का चयन यादृच्छिक विधि से किया गया। इस प्रकार उक्त चयनित उच्च प्राथमिक विद्यालयों में से 200 शिक्षकों (100 टी०ई०टी०शिक्षक (पुरुष/महिला) एवं 100 गैर-टी०ई०टी० शिक्षक (पुरुष/महिला)) का चयन समान्य यादृच्छिक प्रतिचयन के तहत लाटरी विधि से किया गया।

शोध-उपकरण- प्रस्तुत शोध में प्रदत्तों के संकलन हेतु शोधकर्ता द्वारा स्वनिर्मित एनईपी-2020 के प्रति जागरूकता प्रश्नावली का प्रयोग किया गया।

परिणाम-

प्रश्न सं० 01- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार केंद्र सरकार द्वारा सकल घरेलू उत्पाद का कितना प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करेगी?

(अ) 07

(ब) 06

(स) 05

(द) इनमें से कोई नहीं

उत्तर- (अ) 07

व्याख्या- सही उत्तर की जानकारी रखने वाले टी०ई०टी० व गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों का प्रतिशत-

टी०ई०टी० शिक्षक			गैर-टी०ई०टी० शिक्षक		योग	जागरूकता (प्रतिशत में)
शिक्षकों की संख्या	पुरुष	महिला	पुरुष	महिला		
	48	52	54	46	200	65% जागरूकता हैं।
सही उत्तरदाताओं की संख्या	35	32	29	34	130	35% जागरूकता नही हैं।

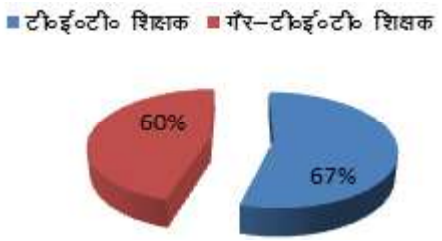

प्रश्न सं० 02- एनईपी-2020 मुख्यत: किस स्तर तक शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा या स्थानीय भाषा के प्रयोग का प्रस्ताव करता है-

(अ) कक्षा 3

(ब) कक्षा 4

(स) कक्षा 5

(द) कक्षा 6

उत्तर- (स) कक्षा 5

व्याख्या- सही उत्तर की जानकारी रखने वाले टी०ई०टी० व गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों का प्रतिशत-

टी०ई०टी० शिक्षक			गैर-टी०ई०टी० शिक्षक		योग	जागरूकता (प्रतिशत में)
शिक्षकों की संख्या	पुरुष	महिला	पुरुष	महिला		
	48	52	54	46	200	68.5% जागरूकता हैं।
सही उत्तरदाताओं की संख्या	40	38	31	28	137	31.5% जागरूकता नही हैं।

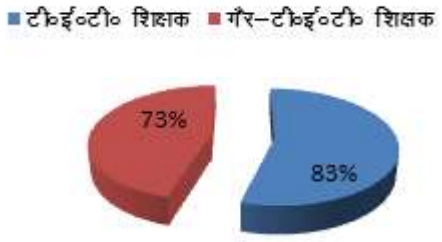

प्रश्न सं० 03- राष्ट्रीय शिक्षा निति- 2020 में लैंगिक समावेशन कोष (GIF) किसके लिए है ?

(अ) अन्य पिछड़ा वर्ग समुदाय की लड़कियों के लिए

(ब) अनुसूचित जाति समुदाय की लड़कियों के लिए

(स) अनुसूचित जनजाति समुदाय की लड़कियों के लिए

(द) सभी समुदायों की लड़कियों के लिए

उत्तर- (द) सभी समुदायों की लड़कियों के लिए

व्याख्या- सही उत्तर की जानकारी रखने वाले टी०ई०टी० व गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों का प्रतिशत-

टी०ई०टी० शिक्षक			गैर–टी०ई०टी० शिक्षक		योग	जागरूकता (प्रतिशत में)
शिक्षकों की संख्या	पुरुष	महिला	पुरुष	महिला		
	48	52	54	46	200	68% जागरूकता हैं।
सही उत्तरदाताओं की संख्या	38	35	35	28	136	32% जागरूकता नही हैं।

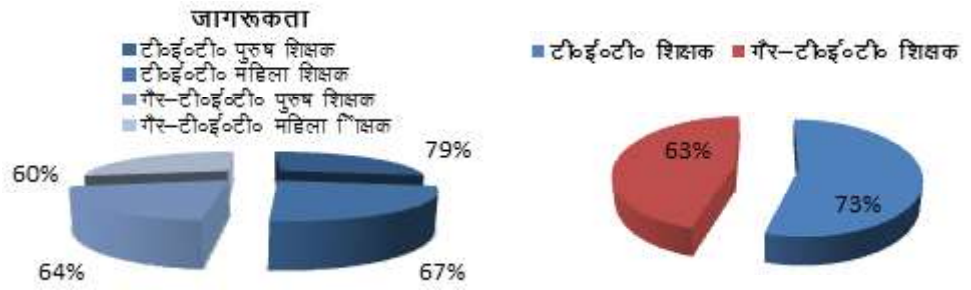

प्रश्न सं० 04- राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 का मार्गदर्शक क्या है ?

(अ) भारतीय सूफी परंपरा की समृद्ध विरासत

(ब) भारतीय शास्त्रीय संगीत और कला की समृद्ध विरासत

(स) प्राचीन और आधुनिक भारत के समृद्ध विरासत

(द) प्राचीन और शाश्वत भारतीय ज्ञान की समृद्ध विरासत

उत्तर- (द) प्राचीन और शाश्वत भारतीय ज्ञान की समृद्ध विरासत

व्याख्या- सही उत्तर की जानकारी रखने वाले टी०ई०टी० व गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों का प्रतिशत-

टी०ई०टी० शिक्षक			गैर–टी०ई०टी० शिक्षक		योग	जागरूकता (प्रतिशत में)
शिक्षकों की संख्या	पुरुष	महिला	पुरुष	महिला	200	69.5% जागरूकता हैं।
	48	52	54	46		30.5% जागरूकता नही हैं।
सही उत्तरदाताओं की संख्या	39	38	32	30	139	

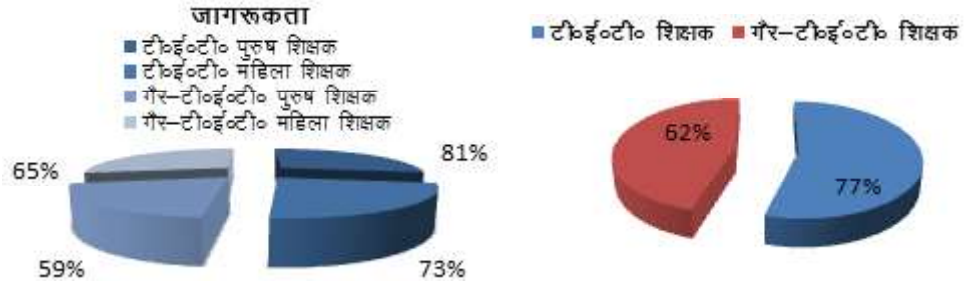

प्रश्न सं० 05- राष्ट्रीय शिक्षा निति-2020 के अनुसार अध्ययन आधारित होना चाहिए -

(अ) पाठ्यपुस्तक उन्मुख

(ब) शिक्षक उन्मुख

(स) अनुभवात्मक उन्मुख

(द) इनमें से कोई नही

उत्तर- (स) अनुभवात्मक उन्मुख

व्याख्या- सही उत्तर की जानकारी रखने वाले टी०ई०टी० व गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों का प्रतिशत-

टी०ई०टी० शिक्षक			गैर-टी०ई०टी० शिक्षक		योग	जागरूकता (प्रतिशत में)
शिक्षकों की संख्या	पुरुष	महिला	पुरुष	महिला		
	48	52	54	46	200	71.5% जागरूकता हैं।
सही उत्तरदाताओं की संख्या	37	43	34	29	143	28.5% जागरूकता नही हैं।

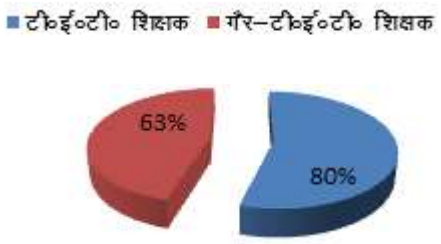

प्रश्न सं० 06- राष्ट्रीय शिक्षा निति-2020 के अनुसार ए०बी०सी० का पूर्ण रूप क्या है ?

(अ) अकादमिक बैंक ऑफ क्रेडिट

(ब) अकादमिक मूल प्रमाणपत्र

(स) वार्षिक मूल प्रमाण पत्र

(द) वार्षिक बैंक ऑफ क्रेडिट

उत्तर- (अ) अकादमिक बैंक ऑफ क्रेडिट

व्याख्या- सही उत्तर की जानकारी रखने वाले टी०ई०टी० व गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों का प्रतिशत-

टी०ई०टी० शिक्षक			गैर-टी०ई०टी० शिक्षक		योग	जागरूकता (प्रतिशत में)
शिक्षकों की संख्या	पुरुष	महिला	पुरुष	महिला		
	48	52	54	46	200	61% जागरूकता हैं।
सही उत्तरदाताओं की संख्या	32	37	26	28	123	39% जागरूकता नही हैं।

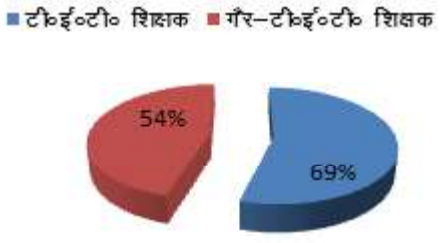

प्रश्न सं० 07- एनईपी-2020 के अनुसार, ईसीसीई पाठ्यक्रम की जिम्मेदारी किसके साथ होगी ?

(अ) सीबीएसई

(ब) एमओई

(स) एनसीईआरटी

(द) उपरोक्त कोई नही

उत्तर- (ब) एमओई

व्याख्या- सही उत्तर की जानकारी रखने वाले टी०ई०टी० व गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों का प्रतिशत-

टी०ई०टी० शिक्षक			गैर–टी०ई०टी० शिक्षक		योग	जागरूकता (प्रतिशत में)
शिक्षकों की संख्या	पुरुष	महिला	पुरुष	महिला		65% जागरूकता हैं।
	48	52	54	46	200	35% जागरूकता नही हैं।
सही उत्तरदाताओं की संख्या	40	41	27	22	130	

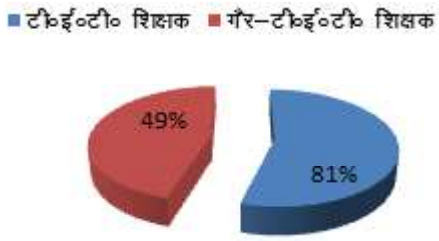

प्रश्न सं० 08- राष्ट्रीय शिक्षा निति-2020 किस पर विशेष ध्यान देने के साथ नई तकनीक को अपनाने पर जोर देता है ?

(अ) छात्र क्या सीखते हैं

(ब) छात्र किसके लिए सीखते हैं

(स) छात्र कैसे सीखते हैं

(द) छात्र क्यों सीखते हैं

उत्तर- (स) छात्र कैसे सीखते हैं

व्याख्या- सही उत्तर की जानकारी रखने वाले टी०ई०टी० व गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों का प्रतिशत-

टी०ई०टी० शिक्षक			गैर–टी०ई०टी० शिक्षक		योग	जागरूकता (प्रतिशत में)
शिक्षकों की संख्या	पुरुष	महिला	पुरुष	महिला		
	48	52	54	46	200	67% जागरूकता हैं।
सही उत्तरदाताओं की संख्या	34	37	23	21	134	33% जागरूकता नही हैं।

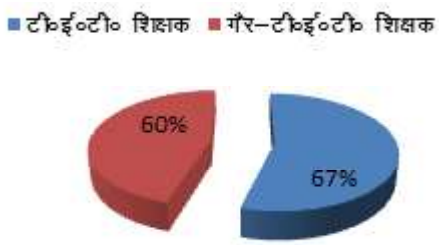

प्रश्न सं० 09- एनईपी-2020 के अनुसार, शिक्षा प्रणाली में मौलिक स्तंभ कौन हैं ?

(अ) माता-पिता

(ब) समुदाय

(स) शिक्षक

(द) उपरोक्त सभी

उत्तर- (स) शिक्षक

व्याख्या- सही उत्तर की जानकारी रखने वाले टी०ई०टी० व गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों का प्रतिशत-

टी०ई०टी० शिक्षक			गैर-टी०ई०टी० शिक्षक		योग	जागरूकता (प्रतिशत में)
शिक्षकों की संख्या	पुरुष	महिला	पुरुष	महिला		74% जागरूकता हैं। 26% जागरूकता नही हैं।
	48	52	54	46	200	
सही उत्तरदाताओं की संख्या	43	45	26	34	148	

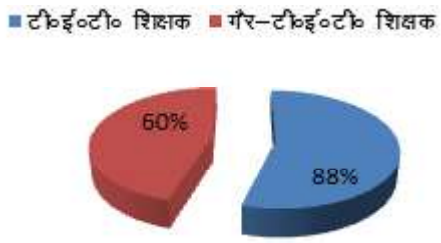

प्रश्न सं० 10- पिछली राष्ट्रीय शिक्षा नीति के लगभग कितने वर्षों के बाद भारत सरकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 लेकर आई है?

(अ) 34 वर्ष

(ब) 30 वर्ष

(स) 25 वर्ष

(द) उपरोक्त में से कोई नहीं

उत्तर-(अ) 34 वर्ष

व्याख्या- सही उत्तर की जानकारी रखने वाले टी०ई०टी० व गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों का प्रतिशत-

टी०ई०टी० शिक्षक			गैर-टी०ई०टी० शिक्षक		योग	जागरूकता (प्रतिशत में)
शिक्षकों की संख्या	पुरुष	महिला	पुरुष	महिला		59% जागरूकता हैं। 41% जागरूकता नही हैं।
	48	52	54	46	200	
सही उत्तरदाताओं की संख्या	41	29	25	23	118	

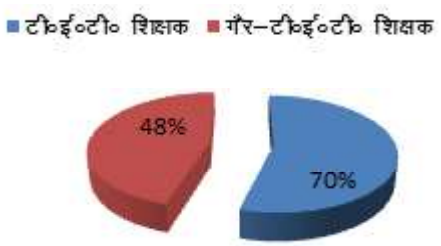

निष्कर्ष-

1. गैर-टी०ई०टी० पुरुष व महिला शिक्षकों की तुलना में 19% टी०ई०टी० पुरुष शिक्षकों व 2% टी०ई०टी० महिला शिक्षकों की जागरूकता अधिक हैं जबकि 65% टी०ई०टी० व गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों को जानकारी है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार केंद्र सरकार द्वारा सकल घरेलू उत्पाद का कितना प्रतिशत शिक्षा पर खर्च होगा तथा 35% शिक्षकों को जानकारी नहीं है।
2. गैर-टी०ई०टी० पुरुष व महिला शिक्षकों की तुलना में 26% टी०ई०टी० पुरुष शिक्षकों व 12.2% टी०ई०टी० महिला शिक्षकों की जागरूकता अधिक हैं जबकि 68.5% टी०ई०टी० व गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों को जानकारी है कि एनईपी-2020 मुख्यत: किस स्तर तक शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा या स्थानीय भाषा के प्रयोग का प्रस्ताव करता है तथा 31.5% शिक्षकों को जानकारी नहीं है।
3. गैर-टी०ई०टी० पुरुष व महिला शिक्षको की तुलना में 15% टी०ई०टी० पुरुष शिक्षकों व 7% टी०ई०टी० महिला शिक्षकों की जागरूकता अधिक हैं जबकि 68% टी०ई०टी० व गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों को जानकारी है कि राष्ट्रीय शिक्षा निति-2020 में लैंगिक समावेशन कोष (GIF) किसके लिए है तथा 32% शिक्षकों को जानकारी नहीं है।
4. गैर-टी०ई०टी० पुरुष व महिला शिक्षको की तुलना में 22% टी०ई०टी० पुरुष शिक्षकों व 8% टी०ई०टी० महिला शिक्षकों की जागरूकता अधिक हैं जबकि 69.5% टी०ई०टी० व गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों को जानकारी है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 का मार्गदर्शक क्या है तथा 30.5% शिक्षकों को जानकारी नहीं है।
5. गैर-टी०ई०टी० पुरुष व महिला शिक्षको की तुलना में 14.1% टी०ई०टी० पुरुष शिक्षकों व 19% टी०ई०टी० महिला शिक्षकों की जागरूकता अधिक हैं जबकि 71.5% टी०ई०टी० व गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों को जानकारी है कि राष्ट्रीय शिक्षा निति-2020 के अनुसार अध्ययन अनुभवात्मक उन्मुख आधारित होना चाहिए तथा 28.5% शिक्षकों को जानकारी नहीं है।
6. गैर-टी०ई०टी० पुरुष व महिला शिक्षको की तुलना में 18% टी०ई०टी० पुरुष शिक्षकों व 11% टी०ई०टी० महिला शिक्षकों की जागरूकता अधिक हैं जबकि 61% टी०ई०टी० व गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों को जानकारी है कि राष्ट्रीय शिक्षा निति-2020 के अनुसार ए०बी०सी० का पूर्ण रूप क्या है तथा 39% शिक्षकों को जानकारी नहीं है।
7. गैर-टी०ई०टी० पुरुष व महिला शिक्षको की तुलना में 33% टी०ई०टी० पुरुष शिक्षकों व 31% टी०ई०टी० महिला शिक्षकों की जागरूकता अधिक हैं जबकि 65% टी०ई०टी० व गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों को जानकारी है कि एनईपी-2020 के अनुसार, ईसीसीई पाठ्यक्रम की जिम्मेदारी किसके साथ होगी तथा 35% शिक्षकों को जानकारी नहीं है।
8. गैर-टी०ई०टी० पुरुष व महिला शिक्षको की तुलना में 28% टी०ई०टी० पुरुष शिक्षकों व 26% टी०ई०टी० महिला शिक्षकों की जागरूकता अधिक हैं जबकि 67% टी०ई०टी० व गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों को जानकारी है कि राष्ट्रीय शिक्षा निति-2020 किस पर विशेष ध्यान देने के साथ नई तकनीक को अपनाने पर जोर देता है तथा 33% शिक्षकों को जानकारी नहीं है।
9. गैर-टी०ई०टी० पुरुष व महिला शिक्षको की तुलना में 41% टी०ई०टी० पुरुष शिक्षकों व 13% टी०ई०टी० महिला शिक्षकों की जागरूकता अधिक हैं जबकि 74% टी०ई०टी० व गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों को जानकारी है कि एनईपी-2020 के अनुसार, शिक्षा प्रणाली में मौलिक स्तंभ कौन हैं तथा 26% शिक्षकों को जानकारी नहीं है।
10. गैर-टी०ई०टी० पुरुष व महिला शिक्षको की तुलना में 39% टी०ई०टी० पुरुष शिक्षकों व 5% टी०ई०टी० महिला शिक्षकों की जागरूकता अधिक हैं जबकि 59% टी०ई०टी० व गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों को जानकारी है कि पिछली राष्ट्रीय शिक्षा नीति के लगभग कितने वर्षों के बाद भारत सरकार एनईपी-2020 लेकर आयी है तथा 41% शिक्षकों को जानकारी नहीं है।

टी०ई०टी० व गैर-टी०ई०टी० शिक्षकों की प्रतिक्रियाओं के आधार पर किए गए अंकन और शिक्षकों के स्कोर के आधार पर निष्कर्ष यह है कि-

1. कुल 200 शिक्षकों मे से 61 शिक्षकों का स्कोर 4 से कम है अर्थात 30.5 प्रतिशत शिक्षक जागरूकता के निम्न स्तर पर हैं।
2. कुल 200 शिक्षकों मे से 135 शिक्षकों का स्कोर 4 से 6 के बीच है अर्थात 67.5 प्रतिशत शिक्षक मध्यम स्तर की जागरूकता रखते हैं।
3. कुल 200 शिक्षकों मे से 4 शिक्षकों का स्कोर 7 से 9 के बीच है अर्थात 2 प्रतिशत शिक्षक उच्च स्तर की जागरूकता रखते हैं।

शिक्षकों में जागरूकता बढ़ाने के उपाय-

- शिक्षा में एनईपी-2020 के अनुसार अंत:विषयी उपागम को अपनाने पर बल दिया जाए।
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के प्रति शिक्षकों को जागरूक करने के लिए जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों में प्रतिवर्ष एनईपी-2020 विषयक विविध कार्यशाला, सेमिनार, प्रतियोगिता आदि का आयोजन किया जाना चाहिए।
- एनईपी-2020 के प्रति जागरुकता हेतु शिक्षकों के प्रशिक्षण में बहुमाध्यम उपागमों का प्रयोग किया जाए।
- शिक्षकों में कौशल प्रशिक्षण, विविध प्रौद्योगिकी संसाधनों, ऑनलाईन शिक्षा साधनों एवं टूल्स के माध्यम से राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के प्रति जागरूकता लायी जाए।
- सरकार द्वारा अनिवार्य नीति बनाकर राष्ट्रीय शिक्षा निति-2020 के पाठ्यक्रम को शिक्षा सभी स्तरों पर लागू की जाए।

संदर्भ-

- मानव संसाधन विकास मंत्रालय, 2020, नयी दिल्ली।
- दैनिक जागरण विशेषांक 14 september 2021

ख योजना, 2022: राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, नयी दिल्ली।

- एनईपी-2020, खण्ड 10, पैरा 10.06
- एनईपी-2020, पृष्ठ 3-4
- एनईपी-2020, पृष्ठ 16-19
- एनईपी-2020, पृष्ठ 38-42
- एनईपी-2020, पृष्ठ 67-68
- सिंह, कुमार अविनाश, 2022: राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, योजना, फरवरी 2022, नयी दिल्ली, पृष्ठ 6-9

भारत तथा ईरान का द्विपक्षीय सम्बन्ध

डॉ० सच्चिदा नन्द राम

प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन, विभाग, कुँवर सिंह पी0जी0 कालेज, बलिया

प्रस्तावना-

भारत तथा ईरान का द्विपक्षीय सम्बन्ध पहेली की तरह है। भौगोलिक निकटता, राजनीतिक भिन्नता, आर्थिक सापेक्षिता की दृष्टि से अलग और सांस्कृतिक एकरूपता होने के बाद भी दोनों पड़ोसी किन्हीं कारणों से अपने सम्बन्धों का सतत निर्वहन नहीं कर पाते है। इसके पीछे द्विपक्षीय संबंधों को लेकर जो संस्थागत तथा राजनीतिक इतिहास को लेकर जो गलतफहमी बनी है उसमें अब सुधार अपेक्षित है। प्रस्तुत लेख का उद्देश्य उन बिन्दुओं की तलाश करना है जिससे दोनों देशों के द्विपक्षीय सम्बन्ध मजबूत बन सकें।

विश्व व्यवस्था में सम्प्रभु राज्यों का अभिन्न सम्बन्ध है, अन्तर्राष्ट्रीय मापदण्डों का महत्व है, ऐसी संस्थाए भी आवश्यक है जिनके वजह से दुबारा पिछली सदी की तरह दो विश्वयुद्ध (जुलाई 1914 से नवम्बर 1918 तक प्रथम विश्वयुद्ध) तथा (सितम्बर 1939 से सितम्बर 1945 तक द्वितीय विश्वयुद्ध) न होने पाए। संयुक्त राष्ट्र के प्रत्येक सदस्यों को सामुहिक निर्णय करने की प्रक्रिया में आवश्यक मुद्दों पर वाद-विवाद करने तथा कार्यवाई करने का अधिकार प्राप्त है। भारत तथा ईरान अपने को इस स्थिति में कहां पाते हैं।

15 मार्च 1950 को भारत तथा ईरान ने मित्रता की संधि पर हस्ताक्षर किया ''दोनों देशों के बीच शताब्दियों से चले आ रहे प्राचीन संबंधों को स्वीकार किया गया।'' और दोनों ने ''पारस्परिक आकांक्षाओं को प्राप्त करने के लिए दोनों देश शांतिपूर्ण तरीके स समान हित व समान विकास के लिए ाथ मिलकर काम करेंगे।'' यह समझौता राजदूत सैय्यद अली जहीर और डॉ0 अली अईलान के बीच हुआ। शीत युद्ध के पहले दशक यह संधि की गई। दशकों के बीच दोनों देशों के बीच का सम्बन्ध 'उल्टेगियर' में काम कर रहा हैं।

फरवरी-मार्च 1956 में दोनों देशों के बीच उच्च स्तरीय यात्राएं सम्पन्न हुई, ईरान के शाह भारत की यात्रा पर आये। सितम्बर 1959 में भारत के प्रधानमंत्री नेहरू ईरान की यात्रा पर गये। अप्रैल 1974 में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी वहां की यात्रा पर गयी। जून 1977 में मोरारजी देसाई ईरान की यात्रा पर गए। इस यात्रा के कुछ समय बाद ही शाह को वहां के विपक्ष का जोरदार सामना करना पड़ा और धार्मिक राजनीत का प्रभाव शुरू हो गया। अय्यातुल्लाह खुमैनी को अपना सत्ता देकर शाह को इजिप्ट भागना पड़ा। इस ईरानी क्रांति के कारण द्विपक्षीय सम्बन्धों के ऊपर प्रभाव पड़ा। 1980 में ईरान-इराक युद्ध शुरू हो गया और भारत को अपने राष्ट्रीय हितों तथा घरेलू राजनीति को ध्यान में रखते हुए इन देशों के साथ अपने द्विपक्षीय संबंधों को आगे बढ़ाया गया।

भारत के प्रधानमंत्री पी0वी0 नरसिम्हा राव ने 1991 भारत के आर्थिक सुधार शुरू किया और 1993 में अपनी तेहरान यात्रा को सम्पन्न किया। अप्रैल 1995 में ईरान के राष्ट्रपति अली अकबर हाशमी रफसंजानी ने भारत की यात्रा की। 2001 में प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने ईरान की यात्रा की। 2003 में ईरान के राष्ट्रपति सैय्यद मोहम्मद खातमी ने भारत के गणतंत्र दिवस समारोह में मुख्य अतिथि की भूमिका निभाई। अप्रैल 2008 में ईरान के राष्ट्रपति मोहम्मद अहमदीनेजाद ने द्विपक्षीय संबंधों को बढ़ावादेने के लिए उच्च स्तरीय यात्रा सम्पन्न की। इस उच्च स्तरीय यात्राओं से दोनों देशों में घनिष्टता के साथ-साथ संबंधों में निकटता भी सामने दिखाई दी।

भारत-ईरान के मध्य भागीदारी का महत्व-

मध्य-पूर्वी क्षेत्रों में गतिशील एवम् चपल भू-राजनीति के मद्देनजर और विश्व पटल पर महाशक्ति बनने का लोभ संवरण करते हुए भारत ने भी अपनी 'पश्चिम की तरफ देखों' नीति के तहत सुदूर पड़ोसी देशों से संबंध गांठने की भरपूर कोशिश की। चूंकि ईरान की प्रमुखता भी क्षेत्र के भू-राजनीति में उभर कर सामने आ रही है, इसलिए भारत भी अपनी रणनीति के तहत ईरान के साथ संबंध सुधार में जुटा रहा।

जहां तक विदेश नीति का प्रश्न है, यह राष्ट्र के निजी हितों की प्रासंगिकता या महत्व को दूसरे देशों के साथ जोड़कर अपने हित साधन का मार्ग तलाशती है। ईरान और भारत दोनों एक दूसरे के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारत के लिए ईरान और ईरान के लिए भारत कई कारणों से महत्वपूर्ण है। पहला तो इनके बीच विविध इण्टरनेशनल ट्रांसपोर्ट कोरिडोर है। इन सभी में 'इण्टरनेशनल नॉर्थ साऊथ ट्रांसपोर्ट कोरिडोर (आईएन0एस0टी0सी0) एक ऐसा महत्वपूर्ण कोरिडोर है जो हमारा ध्यान आकृष्ट करती है।[1] आई0एन0एस0टी0सी0 भारतीय सागर को फारस की खाड़ी से जोड़ती है जो ईरान होते हुए कैस्पियन सागर तक ले जाती है। इससे भारत को भी अफगानिस्तान से संपर्क साधने में आसानी हो जाती है। यहां तक कि केन्द्रीय एशिया और यूरोप से भी संपर्क साधा जा सकता है। 'आई0एन0एस0टी0सी0' समझौते पर भारत, ईरान और रूस के बीच 12 सितंर, सन् 2000 को हस्ताक्षर किया गया जो 16 मई, सन् 2000 से प्रभावी है।

दूसरी बात यह है कि भारत और ईरान 'इंटरनेशनल नॉर्थ साऊथ कोरिडोर' को चाबहार से जोड़ने पर विचार कर रहे है। चाबहार पोर्ट एक ऐसा पोर्ट है जो कई इंटरनेशनल ट्रांसपोर्ट कोरिडोर से जुड़ा हुआ है। यह न केवल अफगानिस्तान और दक्षिण एशियाई या कॉमनवेल्थ ऑफ इंडिपेंडेंट स्टेट्स (सी0आई0एस0) को जोड़ता है, बल्कि पाकिस्तान में स्थित ग्वादर बंदरगाह के लिए भी रणनीति लिहाज से काफी महत्वपूर्ण है। इस ग्वादर बंदरगाह पर चीन की मजबूत पकड़ है। भारत ने भी एक सड़क का निर्माण किया है जो पश्चिमी अफगानिस्तान में जरांजी को डेलाराम से जोड़ता है। इस प्रकार अफगानिस्तान से ईरान का संपर्क कायम हो जाता है। भारत के लिए भी सुगम मार्ग उपलब्ध हो जाता है।

तीसरी बात यह है कि भारत ऊर्जा पर निर्भर रहने वाला देश है और इसीलिए ऊर्जा की आपूर्ति होती रहती है। ईरान ऊर्जा का 'सुपर पॉवर' देश है। यहाँ ऊर्जा का अक्षय भंडार है। ऊर्जा एक ऐसे ईंधन के रूप में जाना जाता है जो आर्थिक विकास का एक पहिया है। यदि सशक्त रूप से भारत और ईरान की भागीदारी हो जॉय तो भारत ऊर्जा के रूप में सुरक्षित हो जाएगा और आर्थिक ताकत के रूप में उभरेगा।

चौथा तथ्य यह है कि आतंकवाद एक सर्वनिष्ठ रूप से दोनों देशों के बीच समान रूप से खतरा है और सन् 1990 के दशक से दोनों देशों के बीच सौहार्द्र की भावना विकसित है जो अफगानिस्तान में नॉदर्न एलायेंस को समर्थन देगी और तालिबान के खिलाफ मदद करेगी।

वर्तमान में अमेरिका और भारत के बीच संबंधों की पृष्ठभूमि में भी ईरान भारत को आशाभरी नजरों से देख रहा है। ईरान के लिए भारत के दिल में जगह है क्योंकि ईरान के दृष्टिकोण से ईरान के भारत जैसे देशों के साथ रिश्ते रखना वाकई में फलदायी है, क्योंकि ईरान अलग-थलग होने के दंश से उबर जाता है। भारत भी रक्षा परिसज्जा के लिए महत्वपूर्ण स्रोत बन सकता है, यह ईरान भली भांति समझता है।

भारत तथा ईरान की नजदीकिया

भारत तथा ईरान को नजदीक लाने में सहायता की है दोनों देशों ने तालिबान के विरूद्ध खड़े उत्तरी गठजोड़ का समर्थन किया है।[2] दोनों देशों के बीच शताब्दियों पुराने सम्बन्धों से कई तरह के अन्तर्राष्ट्रीय समस्यों को हल करने में सहायता मिली है। इस सदी में दोनों देशों के बीच कई रक्षा समझौते किये गये हैं। भारत ईरान के नाभिकीय योजना का समर्थन नहीं करता लेकिन दोनों समान आधार पर तालिबान का विरोध करते है।[3] दोनों देशों के बीच उच्च स्तरीय यात्राएं संतोषजनक रही हैं लेकिन सबसे उल्लेखनीय 'तेहरान घोषणा' रही है जिसमें 2001 में प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ईरान जाकर द्विपक्षीय सहयोग के लिए कई समझौते किए। इसके दो वर्ष बाद 'नई दिल्ली घोषणा' पर दोनों देशों ने हस्ताक्षर किया जिससे रणनीतिक सहकारिता के नए द्वार खुले। 2016 में भी दोनों देशों के बीच ट्रांजिट व यातायात को लेकर समझौते किए गए। अफगानिस्तान, भारत, तथा ईरान के बीच त्रिपक्षीय सम्मेलन 2018 में हुआ जिसमें आर्थिक सहयोग, चाबहार, आतंक को रोकने के उपाय, शांति व संबंध सुधार की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने पर विचार किया गया। अक्टूबर 2018 में चाबहार समझौता किया गया जिसमें चाबहार के लिए त्रिपक्षीय सहयोग के द्वारा इस क्षेत्र में व अफगानिस्तान में सम्पर्क को बढ़ावा तथा आर्थिक विकास पर जोर देने की बात की गयी। इसी वर्ष के दिसम्बर माह में बंदरगाहों के शहर चाबहार में एक कमेटी की बैठक हुयी।[4]

ईरान की लागत से बनने वाला बंदरगाह भारत के लिए एक प्रमुख व्यापारिक सम्पर्क का माध्यम बन पायेगा, जो अफगानिस्तान जाने के लिए भी एक वैकल्पिक मार्ग प्रस्तुत करेगा। इससे चीन द्वारा बन रहे पाकिस्तान के ग्वादर बंदरगाह के मार्ग को भी चुनौती मिलेगी। रेल परियोजना भारत को एक स्वतंत्र गलियारा अफगानिस्तान, मध्य एशिया और रूस से जोड़ने

के लिए मिलेगा। विभिन्न देशों की कूटनीति से ईरान भारत के साथ संबंध मजबूत बनाना चाहता है। ईरान के ऊपर लगे प्रतिबंध इसके बंदरगाह परियोजना में विलम्ब कर रहे है।[5] प्रतिबंधों के बावजूद भारत बन्दरगाह निर्माण में लगा हुआ है लेकिन पैसा संयुक्त राज्य, ईरान के प्रति चाहता है वैसा भारत अभी नहीं कर रहा है। हाल ही में ईरान ने घोषणा की है कि वह रेलवे का निर्माण अपने संसाधनों से करेगा। भारत ने बंदरगाह निर्माण में अपना योगदान बनाए रखा है लेकिन कम्पनियों को संयुक्त राज्य के साथ व्यापार करने में कठिनाई आ रही है। संयुक्त राज्य के दबाव में भारत का ईरान से तेल आयात शून्य तक पहुंच गया है तथा द्विपक्षीय व्यापार भी बुरी तरह से प्रभावित हुआ है। ईरानी गैस का विकासा कार्य भी जो ओ0एन0जी0सी0 (विदेश) है, वह भी निष्प्रभावी है। चीन के साथ एक लम्बे समय के लिए साझेदारी पर हस्ताक्षर किया गया है। चीन व ईरान मिलकर 'आधारभूत ढांचे का निर्माण तथा ऊर्जा संसाधनों का निर्माण' करेंगे।[6] चाबहार भारत के लिए एक वैकल्पिक वाणिज्य मार्ग उपलब्ध करायेगा जिससे अफगानिस्तान तथा मध्य एशिया से संपर्क बढ़ेगा और रेलवे परियोजना लागू होने के बिना ही वह हो सकेगा। लेकिन ऐसा लगता है कि भारत संयुक्त राज्य के दबाव में है और चीन, ईरान के साथ मिलकर समझौते कर रहा है।[7] हालांकि भारत अफगानिस्तान की शांति प्रक्रिया में ईरान को सम्मिलित करने का समर्थन देता है क्योंकि इससे पारस्परिक संबंधों में शांति के द्वार खोलने में मदद मिलेगी।

निष्कर्ष-

भारत और ईरान के रिश्ते हमेशा कसौटी पर कसे जाते रहे हैं। भारत और ईरान के बीच रिश्तें में ठंडक होने के पीछे कारण यही है कि ईरान की हमेशा अमेरिका से दुश्मनी रही। कुछेक समीक्षकों का यही मानना है कि पिछले कुछ दशकों से भारत की ईरान के प्रति नीति हमेशा से बाहरी कारकों से ही प्रभावित रही। लेकिन हमें यह ध्यान रखना होगा कि अलग-थलग रहने से कोई भी विदेशनीति निर्मित नहीं हो सकती है। लेकिन इतना तो जरूर ही कहा जा सकता है कि हमें पारस्परिक संबंधों में उतार चढ़ाव को भी सकारात्मक नजरिए से देखा जाना चाहिए। भारत और ईरान के रिश्ते नदी के मानिंद हैं जो पहाड़ों, के टेढ़े मेढ़े रास्तों से होकर भी मंजिल तक पहुंचते हैं, लेकिन कभी बाधाओं के सामने झुकते नहीं है। भारत और ईरान के रिश्ते सामान्य हो सकते हैं लेकिन ट्रंप प्रशासन की अनिश्चितता ने रिश्तों को परवान पर नहीं चढ़ने दिया।

संदर्भ

1. Singh Roy, M. (2012). Iran: India's Gateway to Central Asia. Strategic Analysis, 36(6), 957-975. doi: 10.1080/09700161.2012.728862.
2. Among other reasons Iran's support to Pakistan and India's support to Iraq during the Iran- Iraq war had created fissure in centuries old relationship between the two countries.
3. The Haqqani network , the military arm of Taliban reportedly is linked to the Pakistani army and other terrorist groups which might disrupt sustainable peace.https://iasbaba.com/2020/10/where-india-stands-on-peace-in-afghanistan #:~:text=For%20peace%20in%20Afghanistan%2C%20there%20should%20be%20an,the%20Pakistan%20army%2C%20and%20other%20like-minded%20terrorist%20groups.
4. India has its Embassy in Tehran and two consulates one in Bandar Abbas and another in Zahedan. India Ports Global Limited Company (IGPL)opened its office to operationalise the construction activity.
5. "Chabahar , enduring symbol of India –Iran friendship could become collateral damage in a larger proxy war between the US and China"https://www.thehindu.com/news/international/the-hindu-explains-why-is-india-out-of-the-chabahar-rail-project/article32126361.ece.
6. zeenews.india.com/world/chinas-multi-billion-dollar-deal-with-iran-may-pose-thr.
7. India's exclusion from the railway project is more due to opposition from the US, Israel and Saudi Arabia.

कक्षा 10वीं में अध्ययनरत् सी.जी. एवं सी.बी.एस.ई. के विद्यार्थियों में व्यवसायिक रूचि का अध्ययन

डॉ० समीना कुरैशी

असिस्टेंट प्रोफेसर, जे ई एस कॉलेज ऑफ एजुकेशन, बिलासपुर, छत्तीसगढ़

संक्षेपीकरण (Abstract):- वर्तमान समय में व्यवसाय चयन एक महत्वपूर्ण विषय है, व्यवसाय ही व्यक्ति की आदि स्थिति को निर्धारित करता है व समाज व राष्ट्र के विकास में योगदान देता है। जीवन को सुचारू रूप से चलाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति कोई न कोई व्यवसाय अपनाना होता है, ये जरूरी नहीं है, कि प्रत्येक व्यक्ति की व्यवसायिक रूचि भिन्न होती है, इस बात का प्रमाण भिन्न व्यक्तियों का विभिन्न व्यवसायों से जुड़ा होना है।

व्यक्ति की किसी कार्य में सफलता उसके व्यवसायिक रूचि के अनुरूप होती है, यदि व्यक्ति के द्वारा चयनित कार्य उसके रूचि का हो, तो वह उसमें अधिक सफलता प्राप्त करता है। अर्थात् रूचि व्यक्ति की योग्यता, क्षमता के अनुसार कार्य करने के ढंग को निर्धारित करती है।

महत्वपूर्ण शब्द (Key Words):- कक्षा 10वीं, सी-जी- एवं सी-बी-एस-ई-, विद्यार्थी, व्यवसायिक रूचि।

1. परिचय (Introduction):- प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह कोई भी शिक्षा ग्रहण कर किसी भी व्यवसाय को अपनाये, किन्तु विभिन्न सामाजिक, साँस्कृतिक और व्यक्तित्व कारक व्यवसायिक रूचि को प्रभावित करते हैं जो निम्न है-

(1) बुद्धि:- व्यवसायिक रूचि पर बुद्धि का प्रभाव पड़ता है। जिस पर व्यक्ति का व्यवहार बौद्धिक क्षमताओं पर आधारित होता है। उसी प्रकार व्यक्ति के किसी व्यवसाय संबंधी भी उसकी बुद्धि के अनुरूप व्यवहार पर आधारित होता है।

(2) उपलब्धि:- व्यक्ति की उपलब्धि और व्यवसायिक रूचि के मध्य घनिष्ठ संबंध है, यदि व्यक्ति की उपलब्धि अधिक है, तो उनके व्यवसायिक रूचि का स्तर भी उच्च होगा।

(3) समायोजन:- जहाँ बालक के रूचि का स्तर निम्न प्रकार का होता है, वहाँ बालक निराधार से ग्रसित होते हैं। अत: रूचि व समायोजन का घनिष्ठ संबंध होता है।

2. संबंधित साहित्य की समीक्षा (Review Related Literature)- संबंधित साहित्य के विश्लेषणात्मक अध्ययन के बिना शोधकर्ता अंधकार में भटकता रहेगा और संभवत: जो कार्य हो चुके हैं, उन्हें व्यर्थ में दुहरायेगा। अतएव समय, ऊर्जा तथा साधनों की बचत के लिये आवश्यक है कि सभी उपलब्ध साहित्य का विस्तृत व गहन अध्ययन किया जाए।

- हाकिर तथा बेगम (1963)- द्वारा वयस्क पुरूषों के व्यवसायिक चयन के लिये व्यक्तिगत तथा सामाजिक मूल्यों के एक प्रक्षेपण परीक्षा की रचना की, इसके पद कथनों तथा शब्दों के रूप में है, व्यक्तिगत मूल्यों के अंतर्गत इच्छायें, साहस, निश्चय, प्रसिद्ध आश्चर्य, धैर्य शक्ति, धन तथा सामाजिक मूल्यों के अन्तर्गत प्रेम, सहानुभूति, सहनशीलता, शांति, सेवा, सहयोग तथा गंभीरता निहित है। इसकी समय सीमा निश्चित नहीं है। इसकी समान्तर प्रारूप विश्वसनीयता गुणांक 0-89 से 1-34 तक ज्ञात की गई। लड़के-लड़कियों पर अलग मानक ज्ञात किए गए।
- ग्रेवल व मान (197)- द्वारा गणित के उच्च उपलब्धक और निम्न उपलब्ध की व्यवसायिक रूचि पर अध्ययन में निम्न परिणाम प्राप्त किया गया।

गणित में उच्च स्तरीय उपलबिध के अनुरूप ही व्यवसायिक रूप का स्तर ऊँचा है। कम उपलब्धि के व्यवसायिक रूचि का स्तर निम्न हैं, ये अल्प निजी धारणा प्रेरणा और अन्य चरों के कारण हो सकता है, जो कि पाठ्यक्रम के विशिष्ट क्षेत्र में कम उपलब्धि को प्रकट करता है, व्यवसायिक रूचि कम स्तर का एक कारण हो सकती है।

3. उद्देश्य एवं परिकल्पनाएँ (Objective And Hypothesis):-

अध्ययन का उद्देश्य (Objective of the Study):- लघुशोध प्रबन्ध हेतु चयन को समस्या में निम्नलिखित महत्वपूर्ण उद्देश्य की पूर्ति अपेक्षित है। प्रस्तुत अध्ययन हेतु निम्न उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं-

- कक्षा 10वीं में अध्ययनरत् सी-जी- एवं सी-बी-एस-ई- के विद्यार्थियों में व्यवसायिक रूचि के मध्य अंतर ज्ञात करना।
- कक्षा 10वीं में अध्ययनरत् सी-जी- छात्र-छात्राओं की व्यवसायिक रूचि के मध्य अंतर ज्ञात करना।
- कक्षा 10वीं में अध्ययनरत् सी-बी-एस-ई- छात्र-छात्राओं की व्यवसायिक रूचि के मध्य अंतर ज्ञात करना।

अध्ययन की परिकल्पना (Hypothesis of the Study):-

H_1- कक्षा 10वीं में अध्ययनरत् सी-जी- एवं सी-बी-एस-ई- के विद्यार्थियों में व्यवसायिक रूचि में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

H_2- कक्षा 10वीं में अध्ययनरत् सी-जी- छात्र-छात्राओं की व्यवसायिक रूचि में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

H_3- कक्षा 10वीं में अध्ययनरत् सी-बी-एस-ई- छात्र-छात्राओं की व्यवसायिक रूचि में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

4. प्रणाली एवं प्रक्रिया (Methodology And Procedure):-

विधि (Method):- प्रस्तुत शोध अध्ययन में कक्षा 10वीं के छात्र-छात्राओं का चयन उद्देशीय न्यादर्श विधि द्वारा किया गया है।

जनसंख्या (Population):- इस शोध अध्ययन के लिए शोधकर्ता ने दुर्ग-भिलाई शहर के कक्षा 10वीं के सी-जी- तथा सी-बी-एस-ई- विद्यार्थियों का चयन किया है।

न्यादर्श (Sampling):- प्रस्तुत शोध अध्ययन में उद्देशीय न्यादर्श विधि द्वारा कक्षा 10वीं में अध्ययनरत् 60 सी-जी- तथा 60 सी-बी-एस-ई- विद्यार्थियों का चयन किया गया है।

विस्तार एवं सीमांकन (Scope And Delimitation):- प्रस्तुत अध्ययन में केवल दुर्ग व भिलाई शहर तक ही सीमित हैं। प्रस्तुत अध्ययन में 8 शालाओं को लिया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में कक्षा 10वीं के विद्यार्थियों को लिया गया है।

उपकरण (Tools):- प्रस्तुत शोध में विद्यार्थियों की व्यवसायिक रूचि को जानने हेतु डॉ- एस-पी- कुलश्रेष्ठ द्वारा निर्मित व्यवसायिक रूचि प्रपत्र का चयन किया गया है।

सांख्यिकीय प्रविधि (Statistical Techniques):- इस अध्ययन में मध्यमान, प्रमाणिक विचलन एवं 'टी' मूल्य का प्रयोग किया गया है।

5. विश्लेषण एवं चर्चा (Analysis and Discussion):-

प्रमाणित कल्पनाएँ (Verification of Hypothesis):-

H_1- कक्षा 10वीं में अध्ययनरत् सी-जी- एवं सी-बी-एस-ई- के विद्यार्थियों की व्यवसायिक रूचि के मध्य सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

निष्कर्ष:- कक्षा 10वीं में अध्ययनरत् सी-जी- एवं सी-बी-एस-ई- के विद्यार्थियों की व्यवसायिक रूचि के साहित्य के संदर्भ में गणना की गई एवं 'टी' मूल्य प्राप्त हुआ जो (df- 118) 0-05 पर सार्थक पाया गया। अत: परिकल्पना H_1 साहित्य के संदर्भ में अस्वीकृत की जाती है।

कक्षा 10वीं में अध्ययनरत् सी-जी- एवं सी-बी-एस-ई- के विद्यार्थियों की व्यवसायिक रूचि के विज्ञान के संदर्भ में गणना की गई एवं 'टी' मूल्य प्राप्त हुआ जो (df- 118) 0-05 पर सार्थक नहीं पाया गया। अत: परिकल्पना H_1 विज्ञान के संदर्भ में स्वीकृत की जाती है।

कक्षा 10वीं में अध्ययनरत् सी-जी- एवं सी-बी-एस-ई- के विद्यार्थियों की व्यवसायिक रूचि के अधिकारी के संदर्भ में गणना की गई एवं 'टी' मूल्य प्राप्त हुआ जो (df- 118) 0-05 पर सार्थक नहीं पाया गया। अत: परिकल्पना H_1 अधिकारी के संदर्भ में स्वीकृत की जाती है।

कक्षा 10वीं में अध्ययनरत् सी-जी- एवं सी-बी-एस-ई- के विद्यार्थियों की व्यवसायिक रूचि के वाणिज्य के संदर्भ में गणना की गई एवं 'टी' मूल्य प्राप्त हुआ जो (df- 118) 0-05 पर सार्थक नहीं पाया गया। अत: परिकल्पना H_1 वाणिज्य के संदर्भ में स्वीकृत की जाती है।

H_2- कक्षा 10वीं में अध्ययनरत् सी-जी- छात्रों व छात्राओं की व्यवसायिक रूचि के मध्य सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

निष्कर्ष:- कक्षा 10वीं में अध्ययनरत् सी-जी- के छात्र व छात्राओं की व्यवसायिक रूचि के साहित्य के संदर्भ में गणना की गई एवं 'टी' मूल्य 4 प्राप्त हुआ जो (df- 58) 0-01 पर सार्थक पाया गया। अत: परिकल्पना H_2 साहित्य के संदर्भ में अस्वीकृत की जाती है।

कक्षा 10वीं में अध्ययनरत् सी-जी- के छात्र व छात्राओं की व्यवसायिक रूचि के विज्ञान के संदर्भ में गणना की गई एवं 'टी' मूल्य 2-53 प्राप्त हुआ जो ((df- 58) 0-05 पर सार्थक अंतर नहीं पाया गया। अत: परिकल्पना H_2 विज्ञान के संदर्भ में स्वीकृत की जाती है।

कक्षा 10वीं में अध्ययनरत् सी-जी- के छात्र व छात्राओं की व्यवसायिक रूचि के अधिकारी के संदर्भ में गणना की गई एवं 'टी' मूल्य 1-00 प्राप्त हुआ जो (df- 58) 0-05 पर सार्थक अंतर नहीं पाया गया। अत: परिकल्पना H_2 अधिकारी के संदर्भ में स्वीकृत की जाती है।

कक्षा 10वीं में अध्ययनरत् सी-जी- के छात्र व छात्राओं की व्यवसायिक रूचि के वाणिज्य के संदर्भ में गणना की गई एवं 'टी' मूल्य 0-45 प्राप्त हुआ जो (df- 58) 0-05 पर सार्थक अंतर नहीं पाया गया। अत: परिकल्पना H_2 वाणिज्य के संदर्भ में स्वीकृत की जाती है।

H_3- कक्षा 10वीं में अध्ययनरत् सी-बी-एस-ई- के छात्र व छात्राओं की व्यवसायिक रूचि के मध्य सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

निष्कर्ष:- कक्षा 10वीं में अध्ययनरत् सी-बी-एस-ई- के छात्र व छात्राओं की व्यवसायिक रूचि के साहित्य के संदर्भ में गणना की गई एवं 'टी' मूल्य 1-89 प्राप्त हुआ जो (df- 58) 0-01 पर सार्थक अंतर नहीं पाया गया। अत: परिकल्पना H_3 साहित्य के संदर्भ में स्वीकृत की जाती है।

कक्षा 10वीं में अध्ययनरत् सी-बी-एस-ई- के छात्र व छात्राओं की व्यवसायिक रूचि के विज्ञान के संदर्भ में गणना की गई एवं 'टी' मूल्य 2-61 प्राप्त हुआ जो (df- 58) 0-05 पर सार्थक पाया गया। अत: परिकल्पना H_3 विज्ञान के संदर्भ में अस्वीकृत की जाती है।

कक्षा 10वीं में अध्ययनरत् सी-बी-एस-ई- के छात्र व छात्राओं की व्यवसायिक रूचि के अधिकारी के संदर्भ में गणना की गई एवं 'टी' मूल्य 0-98 प्राप्त हुआ जो (df- 58) 0-05 पर सार्थक अंतर नहीं पाया गया। अत: परिकल्पना H_3 अधिकारी के संदर्भ में स्वीकृत की जाती है।

कक्षा 10वीं में अध्ययनरत् सी-बी-एस-ई- के छात्र व छात्राओं की व्यवसायिक रूचि के वाणिज्य के संदर्भ में गणना की गई एवं 'टी' मूल्य 0-24 प्राप्त हुआ, जो (df- 58) 0-05 पर सार्थक अंतर नहीं पाया गया। अत: परिकल्पना H_3 वाणिज्य के संदर्भ में स्वीकृत की जाती है।

संदर्भित ग्रन्थ (References)

1. कपिल, एच-के- (1978)- सांख्यिकी के मूल तत्व, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पेज नं- 676-711।
2. माथुर, एस-एस- (1967)- शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पेज नं- 18-22।
3. ग्रेवाल, जे-एम- (1973)- व्यवसायिक प्रतिष्ठा एक तुलनात्मक अध्ययन, इंडियन एप्लाइन सायक्लॉजी।
4. ए-बी-वी-जे-ओ- (1970)- नाईजीरियन किशोरों की शैक्षणिक व्यवसायिक रूचि का अध्ययन। जरनल ऑफ एण्ड एजुकेशन एण्ड वोकेशनल मेजरमेंट, अगस्त वाल्यूम-4, पृष्ठ 55-67।
5. बुच, एम-बी- (1972-78)- सेकेण्ड सर्वे ऑफ रिसर्च एण्ड एजुकेशन।
6. कृष्णन, बी- एवं कूप्पूस्वामी (1976)- उच्चतर माध्यमिक शाला के विद्यार्थियों के शैक्षिक एवं व्यवसायिक रूचि का अध्ययन। जरनल साइकोलॉजिकल रिसर्च, मैसूर विश्व विद्यालय, पृष्ठ नं- 20-28।

सामाजिक विकास और किशोरावस्थाः एक अवलोकन

पूनम कुमारी

(शोध प्रज्ञा) गृह विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

डॉ० शबनम तिवारी

(शोध पर्यवेक्षक) गृह विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

शोध आलेख का सारतत्त्वः

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। शिशु परिवार में जन्म लेते ही समझ में प्रवेश करता है और अपने जन्मजात शक्तियों को सामाजिक वातावरण मे ही विकसित करता है। जन्म के समय शिशु न तो सामाजिक होता है, न ही सामाजिक। वह पराश्रित और दूसरों पर निर्भर होता है। वह अकेले जीवन नहीं बिता सकता है. इसलिए वह समूह का निर्माण करता है। मानव का सामाजिक बनना एक लम्बी प्रक्रिया है। सामाजीकरण एक लम्बी प्रक्रिया है, जिसमें विभिन्न प्रकार की उपक्रिया शामिल होती हैं। ये उपक्रियाएँ जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त अनवरत चलती रहती है और मानव को सामाजिक बनाने में योगदान देती है। व्यक्ति शैशवावस्था से ही मानव समाज में चली आ रही मान्यताएँ, रीति-रिवाज तथा परम्पराएँ, आकांक्षाएँ, सामाजिक उघ्द्देश्यों एवं संस्कृति के साथ जुड़ जाता है। साथ ही उसके प्रभाव को स्वीकार कर, उसी के अनुरूप व्यवहार करने लगता है। वह इस सामाजीकरण की प्रक्रिया में नैतिकता, धर्म, व्यक्तिगत रहन-सहन और सामाजिक आचरण को ग्रहण करके वैसे ही कार्य और व्यवहार करना शुरू करता है, जो समाज द्वारा मान्य होते है। समाज घ्द्वारा मान्य व्यवहारों के करने से व्यक्ति की प्रशंसा होती है और उसे सामाजिक स्वीकृति प्राप्त होती है। इस प्रकार समाज के विविध अंग व्यक्ति को सामाजिक आचरण करने का अवसर देते है और उसे सामाजिक बनाने में सहयोग देते हैं। यही प्रस्तुत शोध आलेख का केंद्रीय विषय है।

प्रमुख शब्दावलीः सामाजिक आचरण, किशोरावस्था, रीति रिवाज, जिज्ञासा, सामाजिक समायोजन, सहयोग और सहानुभूति, सामाजिक विकास के आयाम, मैत्री भावना, सामाजिक परिपक्वता, शारीरिक- मानसिक विकास आदि।

प्रस्तावनाः

सामाजिक विकास की अवधारणा अनवरत व्यक्ति के बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक चलता रहता है, लेकिन किशोरावस्था में यह बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। किशोरावस्था में व्यक्ति सामाजिक विकास की बहुत कारकों व मान्यताओं को स्वीकृत तथा और अस्वीकृत भी करता है। व्यक्ति की आयु जैसे-जैसे बढती जाती है, उसके सामाजीकरण की गति धीमी होती जाती है। परन्तु क्षेत्र विस्तार अधिक होता जाता है। वहीं शैशवास्था में बाल्यकाल तथा किशोरावस्था में सामाजिक विकास की गति तेज रहती है। सामाजिक वातावरण में व्याप्त विविध प्रकार की जीवन शैली प्रारम्भिक अवस्था में व्यक्ति के लिए नवीन होती है, जिसे सीखने के लिए में व्यक्ति में जिज्ञासा अधिक होती है और यह जिज्ञासा समय के साथ धीरे-धीरे कम होने लगती है। इसके परिणामस्वरूप सामाजीकरण की गति भी धीमी हो जाती है। सभी बच्चों में एक सा सामाजीकरण नहीं होता है, क्योंकि विभिन्न समाज की संस्कृतियों अलग-अलग होती है। अपने परिवार के सदस्यों, अपने समूह के साथियों, अपने समाज की संस्थाओं और परम्पराओं एवं अपनी स्वयं की रुचियों और इच्छाओं से प्रभावित होकर वह अपने सामाजिक व्यवहार का निर्माण और अपना सामाजिक विकास करता है। सामाजिक व्यवहार में स्थिरता न होकर परिवर्तशीलता होती है। अत समय एवं परिस्थितिर्मा के अनुसार उसमें परिवर्तन होता रहता है और सामाजिक विकास एक निश्चित दिशा की और बढ़ता जाता है। इस प्रकार सामाजिक विकास की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। सैरे व टेलफोर्ड ने लिखा है- ष्सामाजिकरण की प्रक्रिया दूसरे व्यक्तियों के साथ शिशु के प्रथम सम्पर्क से आरम्भ होती है और आजीवन चलती रहती है। सामाजिक आदशी, परम्पराओं एवं रुढ़ियों के अनुसार समाज के अन्य लोगों के सहयोग से जो व्यवहार किया जाता है, उसे सामाजिक विकास के अन्तर्गत रखा

जाता है। विद्वानों ने सामाजिक विकास की प्रक्रिया निम्नलिखित प्रकार से दी है- हरलॉक के अनुसार ष्सामाजिक विकास का अर्थ सामाजिक सम्बन्धों में परिपक्वता प्राप्त करना है। "सोरेनसन के अनुसार" सामाजिक अभिवृद्धि और विकास का अर्थ है अपनी और दूसरों की उन्नति के लिए योग्यता की वृद्धि करना। रॉस के अनुसार "सहयोग करने वालों में हम की भावना का विकास और उनके साथ कार्य करने की क्षमता का विकास तथा संकल्प सामाजीकरण कहलाता है।" किम्बाल यंग के अनुसार, "सामाजीकरण व्यक्ति का सामाजिक और सांस्कृतिक संसार में परिचय कराने में, उसे समाज तथा उसके विभिन्न समूहों में एक सहभागी सदस्य बनाने तथा उस समाज के आदर्श नियमों तथा मूल्यों को स्वीकार करने को प्रेरित करने वाली प्रक्रिया है। सामाजीकरण निश्चित रूप से एक प्रकार का सीखना है, न कि जैविक विरासत। "वाटसन के अनुसार, "सामाजीकरण एक सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है।" हरलॉक के अनुसार सामाजीकरण की प्रक्रिया में निम्नलिखित तीन उप क्रियाएँ शामिल होती हैं:

1. उचित व्यवहार करना: शिशु जब जन्म लेता है तो वह न तो सामाजिक होता है और न ही असामाजिक ही, वह परिपक्वता के साथ-साथ समाज के द्वारा स्वीकृत नियर्मा का पालन करना भी सीख जाता है। प्रत्येक समाज की अपनी नियमावली होती है। समाज के साथ समायोजन के लिए इस नियमावली को अपनाना होता है जिससे समाज में समायोजन संभव हो पाता है। यही सामाजिक विकास के नाम से जाना जाता है।
2. स्वीकृत सामाजिक प्रकार्यों को करना: समाज द्वारा स्वीकृत प्रकार्यों को करने का तात्पर्य यह है कि किशोरावस्था की समाप्ति पर गृहस्थ जीवन में प्रवेष कर समाज द्वारा बनाये गये सभी कार्यों का सम्पादन, जो उस विशेष समाज के साथ जुड़े हुए है, जिसे वह समाज में रहकर ही प्राप्त किया जा सकता है। ओटावे का मत है कि "यह प्रकार्य आयु के साथ बढ़ते रहते है व समाजीकृत व्यक्ति वहीं है जो स्थिति एवं प्रकार्यों के बीच सन्तुलन बनाएं रखता है।"
3. समाजिक अभिवृद्धि का विकास: बालक के शारीरिक विकास के साथ-साथ सामाजिक विकास भी बढ़ता है जो उसके व्यवहार में दिखाई देता है। इस व्यवहार परिवर्तन को ही सीखना कहा गया है जिससे अभिवृद्धि का निमार्ण होता है और समाज में व्यक्ति की एक अपनी छाप बनती है जिसके कारण ही उस व्यक्ति की पहचान होती है। वहीं उसका व्यक्तित्व भी है।

सामाजिकरण की प्रमुख विशेषताएँ या लक्षण निम्नलिखित हैं:

1. समाजिक परिपक्वता: बालक अपने उम्र के साथ-साथ समाज के नियमों और संस्कृतियों को अपनाता है तथा सामाजिक रीति-रिवाजों, परम्पराओं और नियमों का पालन करता है। एक समय समाज के नियमों का पालन करते हुए उसे आनन्द की अनुभूति होती है और मन में किसी तरह का कोई तनाव नहीं होता है। उनमें संतोष की भावना उत्पन्न होती है तो कहा जा सकता है कि सामाजिक परिपक्वता है। सामाजिक परिपक्वता सामाजिक विकास को भी दर्शाता है जिससे ज्ञात होता है कि व्यक्ति सामाजिक रूप से जिम्मेदार हो गया है।
2. सामाजिक अनुरूपता: सामाजिक विकास के अन्तर्गत बालक समाज के अनुरूप ही सभी नियमों, परम्पराओं, सामाजिक आदर्शों और सामाजिक मूल्यों के अनुसार व्यवहार करता है। जिससे व्यक्ति समाज के साथ सहजता से सामंजस्य स्थपित कर सकने में सक्षम होता है और समाज के एक सम्मानित व्यक्ति के रूप में अपनी छवि बनाता है जिससे सुख प्राप्त करता है।
3. समाजिक समायोजन: कोई भी व्यक्ति सामाजिक तभी कहलाता है बज सह समाज के साथ समायोजन करने में सक्षम होता है, जिसके अन्तर्गत व्यक्ति को एक-दूसरे का सहयोग, सहानुभूति, त्याग, सहकारिता, करुणा, स्नेह आदि के माध्यम से तालमेल स्थापित करना होता है कजसे सामाजिक समायोजन की सजा दी गई है। सामाजिक समायोजन सामाजिक विकास का सूचक है।
4. समाजिक गतिविधियों में भाग लेना: सामाजिक कार्यों की कोई निश्चित सीमा नहीं होती है, जिसमें व्यक्ति अपनी योग्यता, क्षमता, आयु के आधार पर भाग ले सकता है। सामाजिक गतिविधियों में भागीदारी करने से बालक की सामाजीकरण की प्रक्रिया में तीव्रता आ जाती है। सामाजिक गतिविधियों में भागीदारी सामाजिक विकास का लक्षण कहा जाता है। इस कारण व्यक्ति समाज के विभिन्न प्रकार के गतिविधियों में सहभागिता दिखाता है। यह सामाजिक विकास की मुख्य विषेषता भी है।

5. समाजिक अन्त: क्रियाएँ: समाज में रहते हुए व्यक्ति एक-दूसरे से मिलते हैं और एक-दूसरे को प्रभावित करते है जिससे समाज के नियमों और संस्कृतियों को प्राप्त करने का मौका मिलता है। समाज में रहकर ही व्यक्ति सामाजिक बनता है। इसलिए अलग-अलग समाज के लोगों का व्यवहार अलग-अलग होता है, क्योंकि समाज की अपनी एक नियमावली होती है, जिसके अनुरूप ही व्यक्ति परस्पर कार्यों को सम्पादित करते हैं।

अत: कहा जा सकता है कि प्रत्येक समाज के किशोरों में उपरोक्त सभी विशेषताओं को अपनाने की क्षमता होनी चाहिए। इन विशेषताओं से परिपूर्ण व्यक्ति सामाजिक जीवन व्यतित करने में सक्षम होता है। इन विशेषताओं के अभाव में व्यक्ति असामाजिक हो जाता है।समाज में प्रेम, सहयोग व सहानुभूति का वातावरण पाया जाता है, जिसे बालक जाने-अनजाने में इन गुणों को समझता है व इन्हें अपने व्यक्तित्व में ढालने का प्रयास करता है। सामाजीकरण हेतु यह भी आवश्यक है कि हम देश की संस्कृति को समझे व उसके प्रति आदर का भाव व्यक्त करे और परिवार का इसके प्रति महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। इन जिम्मेदारी का निर्वाह परिवार को तीन रूपों में करना होता है- पहला, परिवार अपनी निजी संस्कृति का ज्ञान बच्चों को कराये, दूसरा, अपने समुदाय के संस्कृति का जान देना तथा तीसरा, अपने समाज की संस्कृति का ज्ञान की जानकारी कराना। परिवार का वातावरण भी सांस्कृतिक होना चाहिए, जिससे व्यक्ति असका पालन करते हुए अपने व्यक्तित्व के सांस्कृतिक पक्ष का समुचित विकास कर सके। प्रसिद्ध विचारक वेलार्ड का मत है कि "परिवार प्रारम्भिक सामाजिक संस्था है। जिसमें से अन्य संस्थाओं का विकास हुआ है। विद्वान परिवार को लघु समाज की सजा देते है, क्योंकि जो मूल्य, परम्पराएँ और आदर्श हमारे वृहद समाज के होते है, उनके प्रशिक्षण का अवसर परिवारिक वातावरण में ही प्राप्त होता है। परिवार में जहाँ एक ओर बालक अपने माता-पिता तथा अन्य परिवार के सदस्यों के प्रति प्रेम, लगाव का भाव विकसित होता हैं वहीं दूसरी ओर परिवार में आने वाले सदस्यों के प्रति प्रेम और सौहार्द का भाव व्यक्त करता है। इसके साथ ही साथ वह स्वयं भी अन्य व्यक्तियों के घर जाता है और सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करता है और सामाजिक अन्त: क्रिया के अवसर प्राप्त करता है। जिससे किशोर अपने व्यक्तित्व के सामाजिक पक्ष को विकसित करता है। अन्त:क्रिया एक द्विपक्षीय प्रक्रिया है, बालक और सामाज के बीच अन्त: क्रिया होती है। किम्बल यंग ने भी कहा है कि "सामाज में सामाजीकरण के जितने भी साधन है, उसमें परिवार का स्थान महत्वपूर्ण है।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि बालक जिस प्रकार के परिवार में रहेगा उसका व्यक्तित्व वैसा ही होगा क्योंकि परिवार ही वह पाठशाला है जहाँ बालक अपना पाँच वर्ष बिताता हैं और सामाजीकरण की नींव डालता है। इन पाँच वर्ष में परिवार बालक का परवरिश अपने-अपने तरीके से करता है जिसका प्रभाव बालक के व्यवहार में पड़ता है। कहा भी गया है कि ष्बालक परिवार का दपर्ण होता है, क्योंकि बालक अपना प्रथम पाठ माँ के चुम्बन और पिता के प्यार से ही सीखता है। वस्तुत: परिवार ही बालक की प्रथम पाठशाला है। जहाँ परिजनों की छाया तले बैठकर अपनी सुसुप्त क्षमता और प्रतिभा को उजागर करता है। अत: माता-पिता तथा परिवारी जनों को अपने कार्य व्यवहार से बालक का उचित पोषण करना चाहिए। सामाजिक प्राणी होने के कारण बालक में उन क्षमताओं का अविर्भाव होना चाहिए जो एक सामाजिक व्यक्तित्व के लिए आवश्यक है। परिवार में ही बालक कर्तव्य पालन का भाव सीखता है वहीं उसके नैतिक गुणों का भी विकास होता है। बाल्यवस्था से ही बालक की बतिविधियों, वृतियों और आदतों का आकलन करते हुए उसे सही दिशा में अग्रसर करना माता-पिता का उत्तरदायित्व है। यहीं बालक के व्यक्तित्व में झलकता है। आज का बालक कल का पिता (नागरिक) होता है। अत: एक उत्तम कोटि का नागरिक बनने के लिए सहयोग की वृति, सहिष्णुता, नैतिकता, उदारता, सदस्यता, अनुशासन, श्रमनिष्ठा तथा सम्मान की भावना और अन्य मानवीय मूल्यों को जीवन का आधार बनाना हांता है। इन सभी संस्कारों का समावेष माता-पिता के दिशा-निर्देशन तथा क्रियाकलापों पर निर्भर करता है। जहाँ बालक देखकर और सुनकर सीखता है। भारतीय परिवार प्रणाली में पुरातन काल से ही दादा-दादी के गोद में बैठकर आदर्श नीति कथाओं का श्रवण करते हुए ज्ञान अर्जित करते आया है। आज भी संयुक्त परिवार में यह प्रथा प्रचलित है। बालक परिवार में रहकर बड़ों की सेवा, परिजनों की आज्ञापालन, गृहकार्य में सहयोग, माता-पिता का सम्मान, कार्य व्यवहार में शालीनता, श्रम कार्य में भागीदारी तथा के अवसर प्राप्त कर जीवन में उपयोगी आदर्शों का अनुपालन जीवन भसर करता रहता है। यहीं उसको उत्तम नागरिक की दिशा में अग्रसर होने की स्थिति में माता-पिता का नियंत्रण ही औषध स्वरूप बन जाता है। बालक के निजी समस्याओं के सामाधान हेतु माता-पिता जागरूक और संवेदनशील रहे तथा बालक को निकट से समझने के लिए उसके पास रहे; पास बैठने का समय निकाले। बालक पर अनावश्यक दबाव, षोषण तथा धिक्कारना, पिटना और भयभीत करना उसके साहस व उत्साह को कुण्ठित करता है। उसे परिवारिक परिस्थितियों से अवगत कराते हुए मार्गदर्शन देना चाहिए। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार ष्आपके बच्चों के पास

अच्छी वृद्धि है, बस इस बात से संतोष नहीं करना चाहिए, अपितु उसे वुद्धि के साथ अच्छे संस्कारों से सीख जाते है। चाह कर भी आप अपने पैर बच्चों से नहीं हुआ सकते हैं। इसके लिए पहले आप स्वयं को अपने माता-पिता के पैर प्रतिदिन छूने होगें। जो बाज जीभ से कही जाती है उसका प्रभाव कम पड़ता है जो सीख जीवन में करके दी जाती है उसका प्रभाव ज्यादा होता है। अच्छी बाते केवल चर्चा का विषय नहीं हो, अपितु आचरण का विषय होना चाहिए। अपने बच्चों को केवल जीविका निर्वाह की शिक्षा मत देना, अच्छा जीवन जीने की शिक्षा भी देना। एक श्रेष्ठ बालक का निर्माण मंदिर बनाने जैसा है। बालक स्वास्थ्य के प्रति रुचिकर हो, मधुर बोलने जैसा है। बालक स्वाध्यय के प्रति रुचिशील हो, मधुर बोलना, मन में उचित विचार करना, सबसे सघ्द्वयवहार, परिश्रम में उत्साह, स्वच्छता, सादगी, व्यसनों से मुक्ति, शिष्टाचार आदि गुणों का बीजारोपन माता-पिता के उचित संरक्षण में संभव है। परिवारिक परिवेष में ही बालक के चरित्र का निर्माण संभव है। शरीर और मन बलवान बनते है; बुद्धि बढ़ती है और बालक आत्म निर्भर बनता है।

किशोरावस्था को बाल जीवन की अंतिम अवस्था माना गया है। यह अवस्था 13-14 वर्ष से लगभग 21-22 वर्ष तक की अवस्था होती है। बालक का व्यक्तित्व सामाजिक पर्यावरण में विकसित होता है। जन्म के समय बालक इतना संवेदनशील होता है कि वह समाज और परिवार के सहयोग के बिना मानव प्राणी के रूप में विकसित नहीं हो सकता। अत: शिशु का पालन-पोषण प्रत्येक समाज अपनी विशेषताओं के अनुसार करता है जिसका प्रभाव किशोर के व्यवहार में दिखाई देता है। इसे ही बालक का सामाजिक विकास कहते है। किशोरावस्था मानवीय जीवन की जटिल अवस्था होती है। अत: सामाजिक विकास पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। किशोरावस्था में किशोर एवं किशोरियों का सामाजिक परिवेष बहुत विस्तृत हो जाता है। शारीरिक, मानसिक संवेगात्मक परिवर्तनों के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तनों तथा बदलते सामाजिक संबंधों के परिणामस्वरूप किशोर-किशोरियों नये तरीके से सामाजिक वातावरण में अपने-आप को सामायोजित करने का प्रयास करते हैं। क्रो और क्रो के अनुसार "जब बालक 13 या 14 वर्ष की आयु में प्रवेश करता है तब उसके प्रति दूसरों के और दूसरों के प्रति उसके दृष्टिकोण, न केवल उसके अनुभवों में, वरन् उसके सामाजिक संबंधों में भी परिवर्तन करने लगते हैं।'

किशोरावस्था में किशोर और किशोरियाँ अपने-अपने समूह का निर्माण मुख्य रूप से मनोरंजन के उघ्देश्य से किया जाता है। जैसे डांस पार्टी, पर्यटन, पिकनिक, नृत्य, संगीत आदि। कुछ किशोर और किशोरियाँ किसी भी समूह के सदस्य नहीं होते वे उनसे अलग रहकर अपने या विभिन्न लिंग के व्यक्ति से घनिष्ठता स्थापित कर लेते है और उसी के साथ अपना समय व्यतीत करते है। किशोरों में अपने समूह के प्रति अत्यधिक आकर्षण होता है। वे उसके द्वारा स्वीकृत वेश-भूषा, आचार, व्यवहार, नियम आदि को अपना आदर्श मानते है। समूह की सदस्यता के कारण उनमें नेतृत्व, उत्साह, सहानुभूति, सद्भावना आदि सामाजिक गुणों का विकास होता है। साथ ही उनकी आदतों, रूचियों और जीवन-दर्शन का निमार्ण होता है। इस अवस्था में किशोर और किशोरियों का किसी न किसी बात पर मतभेद या झगड़ा हो जाता है। यदि माता-पिता उनकी स्वतंत्रता का दमन करके उनके जीवन को अपने आदशों के साँचे में ढालने का प्रयास करते हैं या उनके समक्ष नैतिक आदर्श प्रस्तुत करके उनके अनुकरण किये जाने पर बल देते है तो नये खून में विद्रोह की भावना उत्पन्न हो सकती है। सामाजिक दायरे के साथ ही शारीरिक विकास के कारण किशोर भावी व्यवसाय का चुनाव करने के लिए सदैव चिंतित रहता है। इस कार्य में उसकी सफलता या असफलता उसके सामाजिक विकास को निश्चित रूप से प्रभावित करती है। इस प्रकार वे प्राय: किसी न किसी चिन्ता या समस्या में उलझे रहते हैं, जैसे- धन, प्रेम, विवाह, कक्षा में प्रगति, नौकरी तथा परिवारिक जीवन आदि। ये समस्याएँ अनेक सामाजिक विकास की गति को तीव्र या मंद, उचित या अन्नुचित दिशा प्रदान करती है। किशोर एवं किशोरियों में एक-दूसरे के प्रति आकशेण इसी अवस्था में उत्पन्न होता है। इसलिए वे इस अवस्था में अपनी सर्वोतम वेश-भूषा, श्रृंगार और सजावट में अपने को एक-दूसरे के समक्ष उपस्थित करते है। इस अवस्था में दिखावे की भावना भी प्रबल होती है।

निष्कर्ष:

प्रस्तुत शोध आलेख के अब तक विवेचन से स्पष्ट है सामाजिक विकास की प्रक्रिया अनवरत स्वत: संचालित होती रहती है। इसकी अतिरिक्त सामाजिककरण की प्रक्रिया के कई कारक और परिस्थितियों होती हैं। व्यक्ति अपने जीवन के प्रत्येक काल और अवधि में इन सामाजिक विकास और प्रवृत्तियों से प्रभावित होता रहता है। किशोरावस्था में चाहे वह किशोरों और किशोरियों का दूसरे से प्रभावित होना या समाजीकरण की प्रक्रिया से प्रभावित होना अधिक स्वाभाविक है। किशोरावस्था में सामाजिक विकास के स्वरूप को कई कारक प्रभावित करते हैं। किशोरावस्था में मैत्री की भावना जाग्त हो जाती है। प्रारम्भिक किशोरावस्था में समलिंगी मित्रता होती है जैसे कि किशोर- किशोरों से और किशोरियों किशोरियों के मित्र बनते है। उत्तर

किशोरावस्था में किशोर और किशोरियों में परस्पर आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। वे अपनी सर्वोतम वेशभूषा, श्रृंगार व सजधज कर एक-दूसरे के समक्ष उपस्थित होते हैं। आधुनिक जीवन शैली की अंतर्गत यह प्रवृत्ति कुछ अधिक ही देखी जा रही है। शाहरुख में रखा जा सकता है कि सामाजिक विकास और किशोरावस्था में आधिकारिक संबद्धता हैं।

संदर्भ ग्रन्थः

1. डॉ. सुधेश, सहज कविता की भूमिका, अनुभव प्रकाशन, गाजियाबाद, 2008.
2. इमैनुएल जी. मेस्थनी, फिलॉसफी ऑफ टेकनोलॉजीः द टेकनोलॉजीकल कन्डीशनः एन एन्थ्रोलॉजी, ब्लैकवेल, 2003.
3. स्टेलीक, थॉमस, एजुकेशनल फिलॉसफी फॉर 21 सेन्टुअरी टीचर, स्प्रीन्गर, 2018.
4. केम्प, एचवी, जी. स्टेनली हॉल और क्लार्क स्कूल ऑफ रिलिजियस साइकोलॉजी, अमेरिकी मनोवैज्ञानिक, 1992.
5. एलिजाबेथ बी. हरलॉक, चाइल्ड डेवलपमेन्ट, मैक्ग्राहिल एजुकेशन, 2017.
6. मिल्लर टी. डब्ल्यू, ऑगिल्वी, बी. एण्ड एडमस, जे., स्पॉर्ट्स साइकोलॉजीः इश्यू फॉर कन्सलटेन्ट, कन्सल्टिंग जनरलः प्रैक्टिस एण्ड रिसर्च, 2000.
7. अमिताभ श्रीवास्तव, "डॉ. के.के. अग्रवालः ए मैन केवोटेड टू पब्लिक वेलफेया एण्ड हेल्थ अवेयरनेस; व्याण्ड लेफ्ट वाई हिम वन्ट वी इजी टू फिल, नेशनल हेराल्र्ड 24 मई, 2021.
8. रोविन शर्मा, द 5 ए.एम. क्लबः ऑन योर मोर्निंग, इलेवेट योर लाइफ पेपरबैक, जैको पब्लिशिंग हाउस, 2018.
9. महात्मा गांधी, "सत्य के प्रयोग" आत्मकथा, हिन्दी पॉकेट बुक, 2015.
10. लॉग, ए. ए., "सुकरात इन लेटर ग्रीक फिलॉसफी", इन डोनाल्ड आर. मॉरीशन (सं.) कम्पेन टू सुकरात, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2011.
11. स्टैन्डर्ड IX टेक्टबुक- स्टेप टू इंगलिश चौपटर 13, शहनाई मेइस्ट्रो बिसमिल्ला खान, नेशनल कॉन्सिल फॉर एजुकेशन रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग, सितम्बर, 2020.
12. मोडरैक डेबोराह, "ड्रीम्स एण्ड मेथड इन अरिस्टोटल" स्केपसीसः जनरल फॉर फिलॉसफी एण्ड इन्टरडिसीप्लीनरी रिसर्च 2009.

राजनीतिक आधुनिकीकरण: अर्थ और आयाम का सामान्य अवलोकन

प्रकाश नारायण

(शोध प्रज्ञ), राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

प्रो० (डॉ०) अनिल कुमार सिंह

(शोध पर्यवेक्षक) डीन, सामाजिक विज्ञान, राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

शोध आलेख का सारतत्त्व:

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद विश्व राजनीति में व्यापक परिवर्तन हुआ तथा तथा विश्व क मानचित्र पर अनेक नवोदित लोकतांत्रिक देशों का आगमन हुआ। इन्हीं नवोदित देश के अध्ययन के परिपेक्ष्य में आधुनिक राजनीति विज्ञान के अंतर्गत अनेक नवीन अवधारणाओं का भी प्रतिपादन हुआ है, जिनमें एक 'राजनीतिक आधुनिकीकरण की अवधारणा है। राजनीतिक आधुनिकीकरण की अवधारणा राजनीतिक व्यवस्था के साथ-साथ मानव जीवन के सभी पक्षों में सकारात्मक रूप में परिवर्तन का सूचक है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को जब राजनीतिक व्यवस्था से संबंद्द किया जाता है, तो वह राजनीतिक आधुनिकरण होता है। राजनीतिक आधुनिकीकरण के कई आयाम महत्वपूर्ण हैं। आधुनिक राजनीति विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र में राजनीतिक आधुनिकीकरण का विकास एक नवीन अवधारणा के रूप में हुआ है। यह सामाजिक-राजनीतिक संदर्भों में रचनात्मक परिवर्तन का द्योतक है। आधुनिकीकरण प्रगतिशीलता की ओर उन्मुख प्रक्रिया है। इसका अभिप्राय है कि उन परंपरागत धारणाओं और पद्धतियों के ऊपर, जो समयानुसार, नहीं होने के कारण निष्प्रभावी हो गयी है, नये दृष्टिकोणों को स्थापित करके उसे परिवर्तित रूप प्रदान किया है। इसके माध्यम से सामाजिक, आर्थिक एवं सास्कृतिक प्रगति के विवेचन के साथ ही राजनीतिक व्यवहार को समझने के प्रयत्न और संदर्भ को अधिक व्यापक बनाने का प्रयास किया जाता है।

प्रमुख शब्दावली:

प्रस्तावना :

राजनीतिक आधुनिकीकरण की संकल्पना उन अनेक वस्तुओं को राजनीतिक परिधि में सम्मिलित कर लेती है, जिन्हें सामान्यतया राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान के क्षेत्रों में समाहित माना जाता है। इसका सम्बन्ध आधुनिकीकरण के परिणामस्वरूप राजनीतिक संस्कृति तथा राजनीतिक संस्थाओं में होने वाले परिवर्तनों से भी है। आधुनिकीकरण संपूर्ण समाज एवं व्यवस्था को प्रभावित एवं परिचालित करने वाली प्रक्रिया है। भारत में भी राजनीतिक आधुनिकरण का उद्भव विकासोन्मुख सामाजिक गतिशीलता तथा राजनीतिक एवं आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप होता है। राजनीतिक आधुनिकीकरण का विचार राजनीतिक विकास की संकल्पना के साथ निकट से जुड़ा है। राजनीतिक आधुनिकीकरण की अवधारणा से संपूर्ण व्यवस्था तथा आधारभूत सरचना में रचनात्मक परिवर्तन का आभास होता है। समसामयिक संदर्भों में यह स्पष्ट हो गया है कि राजनीतिक आधुनिकीकरण लौकिक-बौद्धिक एकीकरण प्रधान प्रक्रिया है। पुराने मूल्यों, रीति-रिवाजों, मानकों आदि का स्थान नवीन मूल्यों एवं आदर्शों द्वारा ले लिया जाता है। इसमें समस्त समाज एवं उसकी इकाइयों में उथल-पुथल, उद्वेलन, अस्थायित्व और असंतुलन आ जाता है। राजनीतिक आधुनिकीकरण का अर्थ राजनीतिक समस्याओं को विवेक तथा तर्क-वितर्क द्वारा समझना और हल करना होता है, परम्परागत समाज में राज्य और सरकार का आधार विवेक से अधिक विश्वास होता है, परन्तु क्रमशः मनुष्य के मानसिक विकास के परिणामस्वरूप राजनीतिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए जिनमें राज्य के कार्यक्षेत्र का विस्तार, सामाजिक सेवाओं की वृद्धि, राज्य के प्रति नागरिकों के दायित्वों का बढ़ना और राजनीति में विश्व व्यापकता तथा समानता के तत्वों का प्रवेश आदि उल्लेखनीय हैं।भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का आरंभ शिक्षा, उपागमों और प्रशासन के माध्यम से हुआ और इन सभी पर ब्रिटिश शासन का पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है। भारतीय चिन्तन परंपरा

ने अपने आदर्श के अनुरूप सदैव हर परिस्थिति के साथ सामंजस्य करने का प्रयास किया है। पश्चिम की आधुनिक सभ्यता ने भी भारतीयता के प्रति नयी चेतना को जागृत किया है। इसके साथ ही साथ लोकतांत्रिक व्यवस्था से आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गति मिली है।

राजनीतिक आधुनिकीकरण की अवधारणा के तात्पर्य को स्पष्ट किया जायें। हटिंगटन के अनुसार, "राजनीतिक आधुनिकीकरण, मानव चिंतन तथा गतिविधि के समस्त क्षेत्रों में परिवर्तन लाने वाली बहुमुखी प्रक्रिया है।" राजनीतिक आधुनिकीकरण की वर्तमान अवस्था पर प्रकाश डालते हुए एफ. डब्ब्लू. रिग्स ने मत व्यक्त किया है कि "राजनीतिक आधुनिकीकरण उस प्रक्रिया का नाम है जिसके माध्यम से सांस्कृतिक दृष्टिकोण से कम विकसित देश अधिक विकसित देशों की विशेषताओं को प्राप्त करने के लिए प्रतिस्पर्द्धा करते हैं।" क्लॉड ई० वेल्स, जूनियर ने इसे "राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया माना है, जो साधनों के विवेकसम्मत प्रयोग पर आधारित है तथा जिसका लक्ष्य आधुनिक समाज की स्थापना करना है।" बेंजामिन स्वाट्र्ज की दृष्टि में, षविभिन्न मानवीय प्रयोजनों की सिद्धि हेतु मानव की शक्ति सामर्थ्य, एवं क्षमता के व्यवस्थित, निरन्तर एवं शक्तिशाली प्रयोग के द्वारा मानव के भौतिक एवं सामाजिक पर्यावरण को नियंत्रित करने का प्रयास ही आधुनिकीकरण हैं। "साइरिल ब्लैक ने भी आधुनिकीकरण का प्रमुख तत्व प्राकृतिक शक्तियों पर व्यक्ति के तीव्र गति से बढ़ते हुए नियंत्रण को माना है। डेविड ऐप्टर ने राजनीतिक आधुनिकीकरण का सम्बन्ध चयन करने की योग्यता एवं अन्वेषण तथा प्रश्नात्मक धारणाओं से जोड़ा है। ऐप्टर के अनुसार, "आधुनिकीकरण वह प्रक्रिया है जो मुख्यत: गैर-औद्यौगिक समाजों में घटित होती है जहाँ इसे कुछ भूमिकाओं यथा व्यवसायगत, तकनीकी, प्रशासनिक तथा इन भूमिकाओं को समर्थन देने वाली संस्थाओं यथा चिकित्सालय, स्कूल, विश्वविद्यालय, नौकरशाही आदि की स्थानापत्ति के रूप में वर्णित किया जा सकता है। कोलमैन ने राजनीतिक आधुनिकीकरण को संक्रांतिकालीन समाजों की राजनीतिक व्यवस्थाओं में होने वाले संरचनात्मक तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों का समूह माना है। उनके अनुसार, 'आधुनिकीकरण के लिए नगरीकरण, व्यापक साक्षरता, प्रतिव्यक्ति आय की अधिकता, विकसित भौगोलिक तथा सामाजिक गतिशीलता, अर्थव्यवस्था में औद्योगिकीकरण तथा वाणिज्यीकरण में समृद्धि, जनसंचार साधनों का विस्तार आदि पूर्वापेक्षाएं हैं।" कभी-कभी आधुनिकीकरण की व्याख्या का आधार सहभागिता तथा साधन संग्रह को माना जाता है। कार्ल ड्यूश का मत है कि "आधुनिकीकरण राजनीतिक प्रणाली में बढ़ती हुई राजनीतिक विकेन्द्रीकरण की योजना में जनता की व्यापक सहभागिता पर निर्भर करती है।" इसका सम्बन्ध सामाजिक संस्कृति के परिवर्तन से भी स्थापित किया जाता है। डेविस एवं लेविस का विचार है कि राजनीतिक आधुनिकीकरण सामाजिक एवं भौतिक परिवेशों के परिवर्तन के प्रत्युत्तर में सामाजिक संस्कृति के परिवर्तन का द्योतक है। "आमण्ड एवं पॉवेल ने राजनीतिक आधुनिकीकरण तथा राजनीतिक विकास को समानार्थी माना है, जबकि हटिंगटन राजनीतिक आधुनिकीकरण को राजनीतिक विकास का आवश्यक तत्व मानते हैं। स्मिथ ने स्पष्ट किया है कि आधुनिकता ध्येय न होकर एक प्रक्रिया है। वह अपनाने के बजाय भाग लेने की वस्तु है। स्मिथ की दृष्टि में यह एक मूल्य भारित धारणा है।वस्तुत: राजनीतिक आधुनिकीकरण आधुनिक मूल्यों के अनुकूल राजनीतिक व्यवस्था या राजनीतिक संस्थाओं का समग्र रूपान्तरण है। जेम्स सी० कोलमैन की मान्यता है कि राजनीतिक आधुनिकीकरण के संप्रत्यय का प्रयोग तीन संदर्भों-ऐतिहासिक, प्रारूपिक और उद्विकासीय संदर्भों में किया जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से, इसे 16वीं एवं 17वीं शताब्दी में पश्चिमी यूरोप के देशों की राजनीतिक संरचना एवं संस्कृति में परिवर्तनों के रूप में, जो कालान्तर में अनियमित एवं अपूर्ण रूप से संसार के अन्य देशों में फैले देखा गया है। प्रारूपिक दृष्टि से, राजनीतिक आधुनिकीकरण को परंपरागत अथवा पूर्व आधुनिक राज्य व्यवस्था के आधुनिक राज्य-व्यवस्था में रूपान्तरण की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है. जबकि इसका एक आशय व्यक्ति की राजनीतिक समस्याओं के समाधान या उनका सामना करने के लिए संरचनाओं का मुक्त विकास करने, निरन्तर परिवर्तन से अनुकूलन करने या परिवर्तनों को आत्मसात् करने की क्षमताओं में वृद्धि करने से है। समसामयिक संदर्भों में यह स्पष्ट हो गया है कि राजनीतिक आधुनिकीकरण 'लौकिक-बौद्धिक एकीकरण प्रधान प्रक्रिया' है। पुराने मूल्यों, रीति-रिवाजों, मानकों आदि का स्थान नवीन मूल्यों एवं आदर्शों द्वारा ले लिया जाता है। इसमें समस्त समाज एवं उसकी इकाइयों में उथल-पुथल, उद्वेलन, अस्थायित्व और असंतुलन आ जाता है। यह उल्लेखनीय है कि मनुष्य के मानसिक विकास के परिणामस्वरूप राजनीतिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, जिनमें राज्य के कार्यक्षेत्र का विस्तार, सामाजिक सेवाओं की वृद्धि, राज्य के प्रति नागरिकों के दायित्वों का बढ़ना और राजनीति में विश्व्यापकता तथा समानता के तत्वों का प्रवेश आदि भी उल्लेखनीय हैं।

राजनीतिक आधुनिकीकरण व्यापक आधुनिकीकरण की गत्यात्मक प्रक्रिया का अंश है। इससे सतत् नवीनीकरण तथा साथ ही समसामयिक परिस्थितियों एवं अपेक्षाओं के अनुरूप अनुकूलन की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है। आधुनिकीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जैसा कि क्लॉड केल्ब का मत है, जो साधनों के विवेकपूर्ण उपयोग पर आधारित होती है एवं आधुनिक समाज की स्थापना के उद्देश्य से युक्त होती है। राजनीतिक आधुनिकीकरण की सामान्य पहचान यही है कि राज्य-व्यवस्था के हाथों

में सत्ता अधिकाधिक संकेन्द्रित हो, उसकी समाज के प्रत्येक क्षेत्र तक पहुँच हो, केन्द्र एवं राज्यों (संघों अथवा प्रशासनिक इकाइयों) के मध्य अधिकाधिक अन्त: क्रिया हो तथा राजनीतिक संरचनाओं में बढ़ता हुआ विभिन्नीकरण एवं विशेषीकरण पाया जाय। इस प्रक्रिया में एक ओर परम्परागत सत्ता स्रोत प्रभावहीन हो जाते हैं तथा जन- सहभागिता बढ़ती है। व्यक्तियों की निष्ठा संपूर्ण व्यवस्था के प्रति बढ़ जाती है। नौकरशाही का स्वरूप बड़ा तथा सर्वव्यापक होता जाता है। इस तरह राजनीतिक आधुनिकीकरण विकास की समग्र विधाओं का परिचायक है। यद्यपि राजनीतिक आधुनिकीकरण का सहजतापूर्वक आभास हो जाता है तथापि इसके सर्वमान्य लक्षणों का निर्धारण नहीं हो सका है। इस संदर्भ में राजनीतिक विचारक एकमत नहीं हैं। लूसियन पाई ने निम्नलिखित रूप में इसके चार लक्षणों का उल्लेख किया है:

1. राजनीतिक कार्यों की विविधीकरण तथा विशेषीकरण: यह राजनीतिक आधुनिकीकरण का अनिवार्य लक्षण है जो संरचना, संस्था एवं कार्यों को विशेषीकरण एवं श्रम विभाजन के आधार पर स्तरीकृत करता है। इसका तात्पर्य राजनीतिक व्यवस्था का विखण्डन नहीं है वरन् यह एकीकरण के लिए एक व्यवस्थित प्रयास है ताकि लक्षणों को कुशलतापूर्वक प्राप्त किया जा सके। इसका सम्बन्ध संस्थाओं की स्वायत्तता से है, जिससे कि वे अपना कार्य अधिकतम कार्यकुशलता से कर सकें
2. समानता: इसे राजनीतिक आधुनिकीकरण की आत्मा कहा जाता है।इसका आशय सबको विकास के लिए समान अवसर उपलब्ध होने से है। इसका निहितार्थ है कि समाज में और व्यवस्था के अंतर्गत भर्ती, चयन, प्रशासकीय एवं राजनीतिक भूमिकाएं सौंपने में जाति, प्रजाति, रंग, धर्म, लिंग एवं प्रादेशिकता के आधार पर किसी भी प्रकार का भेद-भाव नहीं किया जाता। इस तरह समानता के प्रति सामान्य अभिवृत्ति राजनीति में भाग लेने के अवसर की समानता तथा सरकारी पद के लिए प्रतियोगिता की अनुमति देती है।
3. राजनीतिक प्रक्रिया का लौकिकीकरण: इसका आशय है कि राजनीतिक का ध्येय है लोक कल्याण। इस ध्येय की प्राप्ति के लिए राजनीति को धार्मिक एवं अन्य प्रभावों से अलग रखना अपेक्षित एवं आवश्यक है। राज्य की विधियां राज्यान्तर्गत सभी व्यक्तियों पर एक समान लागू होती हैं; विधि के सम्मुख सभी व्यक्ति एक समान होते हैं और सभी को विधि का एक समान संरक्षण मिलता है। इसी से व्यवस्था की सार्वभौमिकता का बोध होता है।
4. परिवर्तन की क्षमता: राजनीतिक प्रणाली के पास अपने निर्णयों को सामाजिक एवं आर्थिक हित में व्यवहृत करने, नीति-निर्माण तथा उन्हें क्रियान्वित करने के लिए पर्याप्त शक्ति का होना अनिवार्य है। राजनीतिक आधुनिकीकरण के लिए व्यवस्था में इस प्रकार की क्षमता होना अनिवार्य है जिससे कि वह प्रगति एवं जनकल्याण की उपेक्षा किये बिना आर्थिक विकास एवं सामाजिक परिवर्तन की शक्तियों को उत्पन्न कर सके। राजनीतिक अवधारणाएं एवं प्रवृतियां। इन चारों लक्षणों का लोकतांत्रिक व्यवस्था के लक्षणों से साम्य होने के कारण राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया लोकतंत्र में अधिक स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। लेकिन यथार्थ यह है कि राजनीतिक आधुनिकीकरण के लिए सराकर के स्वरूप का कोई विशेष महत्व नहीं होता। सभी शासन प्रणालियों में राजनीतिक आधुनिकीकरण के माध्यम से ही लक्ष्योन्मुख विकास किया जाता है।

आधुनिकीकरण एक बहुमुखी प्रक्रिया है। इसके कारण अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक परिवेश में व्यापक परिवर्तन हुए हैं। प्रत्येक राष्ट्र राजनीतिक आधुनिकीकरण के माध्यम से ही अपने लिए निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर अग्रसर है। राजनीतिक आधुनिकीकरण का सम्बन्ध ऐसी राजनीतिक व्यवस्था के विकास से है जो इतनी लचीली हो कि हर प्रकार की मांग को प्रस्तुत होने के अवसर प्रदान कर सके, साथ ही वह इतनी सशक्त भी हो कि हर प्रकार की मांग का समुचित ढंग से मुकाबला कर सके और अनुचित मांग को दृढ़ता-पूर्वक ठुकरा सके। आधुनिकीकरण राष्ट्र, समाज और वैयक्तिक जीवन में उच्चता का द्योतक है। राजनीतिक आधुनिकीकरण की संकल्पना के अनेक आयाम हैं क्योंकि इसका स्वरूप एकरस नहीं होता। इसके अनेक पक्ष, क्षेत्र, स्तर या रूप होते हैं। संभव है कि किसी एक स्तर पर आधुनिकीकरण अधिक मात्रा में आ गया हो जबकि अन्य स्तरों पर स्थिति यथावत बनी हुई हो। राजनीतिक आधुनिकीकरण के पांच आयाम या स्तर परिलक्षित होते हैं; जो अग्रलिखित हैं:(1.) मनोसांस्कृतिक स्तर इस स्तर पर यह संकल्पना लोगों के मूल्यों मानदण्डों, अभिवृत्तियों, प्रवृत्तियों, प्रत्याशाओं एवं आकांक्षाओं में परिवर्तन को संलिप्त करती है, फलत: व्यक्ति उदारवादी हो जाता है। (2.) बौद्धिक स्तर इस स्तर पर यह संकल्पना अपने परिवेश के प्रति मानव के ज्ञान तथा शिक्षा के विस्तार एवं जन संचार के माध्यम से इस ज्ञान के संपूर्ण समाज में विसरण को संलिप्त करती है। इस स्थिति में व्यक्ति का अपने पर्यावरण के विषय मे ज्ञान बढ़ जाता है। यह भाग्याधीन रहने के स्थान पर भाग्य-निर्माता बनने का प्रयत्न करता है। उसकी रुचि शिक्षा, संगठन, सहयोग, विचार-विनिमय आदि की ओर बढ़ने लगती है। (3.) सामाजिक स्तर इस स्तर पर यह संकल्पना व्यक्ति की निष्ठा का केन्द्र परिवार तथा अन्य प्राथमिक समूहों से हटाकर स्वैच्छिक संगठित गौण संघों की ओर परिवर्तन की प्रवृत्ति की द्योतक है। अर्थात इस स्तर पर व्यक्ति श्व्यक्तिश बन जाता है।

उसकी परिवार, जन, जाति, वर्ग या ग्राम के प्रति निष्ठा नहीं रह जाती। वह निजी तौर पर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ में सोचने लगता है। वह आत्मपरक हो जाता है। (4.) आर्थिक स्तर इस स्तर पर इस संकल्पना में बाजार एवं कृषि का विकास, कृषि की कीमत पर वाणिज्य में सुधार, औद्योगिकीकरण का विकास तथा आर्थिक गतिविधि का विस्तार संलिप्त है। इसमें समाज कृषि से व्यापार और उद्योग की ओर बढ़ने लगता है। आर्थिक गतिविधियों का विस्तार हो जाता है और अधिकाधिक मात्रा में मशीनों, बिजली और वैज्ञानीकरण का प्रयोग होने लगता है। (5.) जनसांख्यिकीय स्तर इस सतर पर व्यक्तियों के स्वास्थ्य आयु व्यवसाय के प्रकार एवं स्वरूप में परिवर्तन दृष्टिगत होता है। लोग भौगोलिक दृष्टि से अधिक गतिमान हो जाते हैं। आबादी गांवों से शहरों की ओर जाने और बसने लगती है। अनेक गांव नवीन उद्योग स्थापित हो जाने के पश्चात् शहर बन जाते हैं। अर्थात् राजनीतिक आधुनिकीकरण की संकल्पना का निहितार्थ है जीवन स्तर में सुधार तथा लोगों की गतिशीलता एवं नागरीकरण की दिशा में प्रगति।

राजनीतिक आधुनिकीकरण की संकल्पना में राजनीतिक परिवर्तन एवं लक्ष्योन्मुख समन्वित तथा समग्र विकास की प्रवृत्तियां निहित हैं। एस० एन० आइजेन्स्टेड के अनुसार, "ऐतिहासिक दृष्टि से पश्चिमी यूरोप तथा उत्तरी अमेरिका में सत्रहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी तक होने वाले सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्थाओं में हुए परिवर्तन की प्रक्रिया को आधुनिकीकरण कहा जाता है। विलियम फीललैण्ड की मान्यता है कि यह समाज की वह क्षमता एवं योग्यता है जो उसे परिवर्तन की आवश्यकता के प्रति जागरूक बनाती है। इस दृष्टि से प्रत्येक देश या तो आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से गुजर रहा है या उसकी तैयारी कर रहा है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत अनेक गतिविधियां हो रही हैं। इन गतिविधियों को आधुनिकीकरण की विशेषताओं के रूप में देखा जा सकता है। यथा-(1) पर्यावरण एवं प्रकृति पर बढ़ता हुआ नियंत्रण; (ii) इस नियंत्रण के परिणामस्वरूप प्राकृतिक एवं भौतिक साधनों का अधिकतम उपयोग अर्थात् यन्त्रों तथा तकनीक का प्रयोग; (iii) औद्योगिकीकरण; (iv) शहरीकरण; (v) व्यापक साक्षरता; (vi) बढ़ती हुई राष्ट्रीय एवं व्यक्तिगत आय; (vii) शासन के कार्यों में अधिकाधिक सहभागिता: (viii) जन- संचार की प्रविधियों एवं साधनों का विकास तथा विस्तार: (ix) सामाजिक गतिशीलता: (x) राष्ट्रीय एकता के प्रति निष्ठा: तथा (xi) समानता के सिद्धान्त में आस्था। इससे स्पष्ट है कि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया अतिशय व्यापक है। इससे प्रभावित होकर व्यक्ति अपने निजी, सामाजिक, नैतिक एवं राजनीतिक स्तर पर चयन का स्वरूप बदल लेता है और तद्नुरूप व्यवहार करता है।

आइजेन्स्टेड ने राजनीतिक आधुनिकीकरण की अग्रलिखित विशेषताएं स्पष्ट की हैं: (1.) राजनीतिक व्यक्ति कार्यों और संस्थाओं में उच्च मात्रा का विभिन्त्रीकरण तथा एक केन्द्रीयकृत एवं एकीकृत शासन व्यवस्था का विकास। (2.) केन्द्रीय प्रशासनिक एवं राजनीतिक संगठनों की गतिविधियों का विस्तार तथा उनकी समस्त सामाजिक क्षेत्रों में क्रमिक व्याप्ति। (3.)समाज की अन्तर्निहित शक्ति का अधिकाधिक समूहों तथा वयस्क नागरिकों तक फैलाव।

कॉर्ल डायस तथा आमण्ड-पॉवेल के अनुसार राजनीतिक आधुनिकीकरण की विशेषताएं इस प्रकार हैं: (1.) राज्य की लौकिक राजनीतिक सत्ता की वृद्धि तथा शक्ति का बढ़ता हुआ केन्द्रीयकरण। (2.) विशिष्ट एवं स्वशासी उपव्यवस्थाओं, संरचनाओं एवं व्यक्ति कार्यों की अधिकाधिक रचना अर्थात् संरचनात्मक विभिन्त्रीकरण। (3.) राजनीति में नागरिकों की बढ़ती हुई सहभागिता तथा संपूर्ण शासन व्यवस्था में आस्था। (4.) नवीन, सामाजिक संघटन जिसमें पुरानी निष्ठाएं विलीन होती जाती हैं तथा मनुष्य शिक्षा, निवास, नगर, व्यवसाय आदि के आधुनिक प्रतीकों के प्रति आकर्षित होता जाता है। (5.) विशिष्ट कार्यों से सम्बद्ध अनेक संगठनों का निर्माण: ये प्राय: गुण, उपलब्धि, स्वेच्छा, तकनीकी ज्ञान, नियमों आदि के आधार पर काम करते हैं। (6.)आधुनिकीकरण में अभिरूचि रखने वाले अनेक अभिजन-वर्गों की उपस्थिति। (7.) सभी को समान रूप से राजनीतिक व्यवस्था में सहभागित का अवसर, और (8.) हित समूहों, राजनीतिक दलों, प्रेस, सम्मेलनों एवं वार्ताओं के माध्यम से राजनीतिक मांगों तथा गतिविधियों का हित स्वरूपण।

राबर्ट ई० वार्ड तथा डी० ए० रस्तोव के अनुसार राजनीतिक आधुनिकीकरण की निम्नलिखित विशेषताएं हैं:

1. परम्परावादी समाज में एक ही व्यक्ति कई पदों का दायित्व एक साथ ग्रहण कर सकता है, जबकि राजनीतिक दृष्टि से आधुनिकीकृत समाज में कार्यात्मक संदर्भ में अत्यधिक विभेदीकृत शासकीय संगठनों की व्यवस्था की जाती है। राज्यों के उद्देश्यों में विस्तार होने के फलस्वरूप सरकार के कार्यों में वृद्धि होती जाती है। इन बढ़ते हुए कार्यों का संपादन अलग-अलग व्यक्तियों एवं संस्थाओं द्वारा किया जाता है।
2. आधुनिकीकृत व्यवस्था में शासकीय संरचनाओं में अत्यधिक एकीकरण पाया जाता है। इसका आशय है कि यद्यपि सरकार के विभिन्न अंग, संस्थाएं तथा पदाधिकारी पृथक् हैं और अपने विशिष्ट कार्यों का निर्वहन करते हैं तथापि उनके बीच सामंजस्य तथा एकीकरण पाया जाता है।

3. राजनीतिक आधुनिकीकरण के अंतर्गत धर्मनिरपेक्ष प्रक्रिया तथा तर्कसंगत तरीकों को अपनाया जाता है। आधुनिकीकृत राजनीतिक व्यवस्था में जो भी निर्णय लिए जाते हैं वे तर्क-वितर्क से उद्‌भूत होते हैं और उनका कोई धार्मिक आधार नहीं होता।
4. इसमें व्यक्ति की निष्ठा अति विस्तृत होती है। परंपरागत समाज में व्यक्ति की निष्ठा अति संकीर्ण होती है, जबकि आधुनिकीकृत समाज में व्यक्ति की निष्ठा का आयाम कम से कम राष्ट्रीय और कभी-कभी तो अंतर्राष्ट्रीय भी होता है।
5. समस्त आधुनिक राजनीतिक व्यवस्थाओं में राजनीतिक सत्ता का अंतिम स्रोत जनसाधारण को माना जाता है इसी कारण राजनीति में जनसाधारण की सक्रिय सहभागिता होती है।
6. क्षमता तथा योग्यताओं के आधार पर भूमिकाओं का वितरण राजनीतिक आधुनिकीकरण की अति महत्वपूर्ण विशेषता है। आधुनिकीकृत समाज एवं राज्य- व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को समान समझा जाता है और उसकी सामाजिक स्थिति में निर्धारण इस बात से नहीं होता कि वह किस परिवार, जाति या वंश में पैदा हुआ है. बल्कि उसकी क्षमता एवं योग्यता ही व्यवस्था में उसकी भूमिका का निर्धारण करती है।
7. आधुनिकीकृत समाज में राजनीतिक शक्ति एवं सत्ता के परंपरागत आधार यथा धर्म, जाति, वर्ग आदि का कोई महत्व नहीं होता। विधि के समक्ष समानता एवं विधि का समान संरक्षण आधुनिकीकृत व्यवस्था की मौलिक विशेषता मानी जाती है।

जहाँ तक विशेषताओं का प्रश्न है, राजनीतिक आधुनिकीकरण अन्य समकालीन संकल्पनाओं की तुलना में अधिक व्यापकता लिए हुए है। प्रत्येक व्यवस्था इससे प्रभावित है और प्रत्येक व्यवस्था इसके माध्यम से ही अपने प्रभाव में वृद्धि करती है।

निष्कषः

राजनीतिक आधुनिकीकरण की अवधारणा विकासशील देशों के संदर्भ में महत्वपूर्ण है। दुनिया के सभी विकासशील देशों की शासकीय प्रतिमान, स्वरूप और परिवर्तन सभी पक्षों को स्पष्ट करता है। यह स्वयं में एक व्यापक अवधारणा है, इसलिए गतिशील और बहुआयामी है। विकासशील देशों के परिवर्तन के स्वरूप को राजनीतिक आधुनिकीकरण के संदर्भ में समझा जा सकता है। राजनीति विज्ञान के अध्ययन के अंतर्गत राजनीतिक आधुनिककीरण की अवधारणा को महत्वपूर्ण माना जाता था तथा आधुनिक राजनीति विज्ञान की एक महत्वपूर्ण अवधारणा के रूप में प्रत्यस्थापित हो चुका है। दूसरे शब्दों में, राजनीतिक आधुनिकीकरण अपने अर्थ और आयाम में विशिष्ट ,महत्वपूर्ण और परिवर्तनशील है।

संदर्भ ग्रन्थः

1. वर्मा एस. पी.. मॉडर्न पॉलीटिकल थ्योरी, वर्ष 1987, नई दिल्ली।
2. कुमार, डॉ० अशोक (2010-11) राजनीतिक सिद्धान्त, नोवेल्टी एण्ड कम्पनी, प्रथम संस्करण, पटना।
3. सिंह, डॉ० पी०पी० एवं सिंह ए०के० (2007) राजनीति विज्ञान, आलोक भारती प्रकाशन, पटना।
4. बाबेल. डॉ० बसन्ती लाल (2014) भारत का संविधान, सेन्ट्रल लि० पब्लिकेशन्स, तेरहवाँ सस्करण, प्रयागराज।
5. रिग्स, एफ० डब्ल्यू० (1965), मॉडर्ननाइजेशन एंड पोलिटिकल प्रॉब्लम्स. यू.एस.ए.।
6. लुसियान पाई (1972), एस्पेक्ट्स ऑफ पॉलीटिकल डेवलपमेंट, न्यूयॉर्क।
7. आपटर डेविड (1992): द पॉलिटिक्स ऑफ मॉडर्नाइजेशन, न्यूयॉर्क।
8. कुमार, डॉ० अशोक (2020) राजनीति विज्ञान, उपकार प्रकाशन, बुक कोड-2258, चतुर्थ संस्करण, आगरा।
9. सौरभ एवं राहुल गुप्ता. (2022) भारतीय राज व्यवस्था एवं प्रशासन, अरिहन्त पब्लिकेशन्स (इंडिया) लिमिटेड, मेरठ, यू०पी०
10. कटारिया, डॉ. सुरेन्द्र (2010) पंचायती राज संस्थाएँ अतीत, वर्तमान और भविष्य, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।

भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का विकास: एक अवलोकन

अनुराग प्रताप सिंह

(शोध प्रज्ञ) राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

प्रो० (डॉ०) अनिल कुमार सिंह

(शोध पर्यवेक्षक) डीन, सामाजिक विज्ञान, राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

शोध आलेख का सारतत्त्व:

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को राष्ट्रवाद का एक विशेष स्वरूप माना जाता है, जो नागरिक राष्ट्रवाद के समीप होकर भी प्रकृति, उद्देश्य तथा आधारभूत विशेषताओं के सन्दर्भ में विशिष्ट होता है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद परम्पराओं एवं ऐतिहासिक धरोहर को सुरक्षित रखने के साथ-साथ राष्ट्र की एकता व अखण्डता को बनाये रखने से सम्बन्धित्त है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद साझा संस्कृति से सम्बद्ध एक उदारवादी अवधारणा है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद राष्ट्र की इतिहास का वास्तविक पुनर्स्थापना है, स्वदेशी व स्व संस्कृति के अति प्रतिबद्धता व समर्पण है, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद राष्ट्र में एकत्व की भावना की स्थापना है, यह मानव धर्म और सौहार्द का विचार है। भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद हिन्दुत्व का समर्थन करता है, जो मजहबी नहीं है, बल्कि संस्कृति मूलक है। भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद श्अखण्ड भारत की प्राप्ति के प्रति प्रतिबद्धता है, यह राष्ट्र को भगवती स्वरूपा यानी मों के समान मानने की एक धार्मिक मान्यता व विश्वास तथा राष्ट्र के प्रति समर्पण का नाम है। यह व्यक्ति के जीवन को समाज, राष्ट्र तथा राष्ट्रीय इतिहास से जोड़ने का नाम है। वस्तुत: भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद 'अखण्ड भारत' की परिकल्पना पर आधारित है जो सकारात्मक, संस्कृतिमूलक, सात्त्विक, निष्पक्ष तथा वैश्विक शांति व विकास से सम्बद्ध है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद उत्सव धर्मी है, क्योंकि यह भारत की सनातन संस्कृति को स्वीकार करता है। भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद सनातन एवं हिन्दू संस्कृति के सम्बद्ध होने के बाद भी मजहबी नहीं है, बल्कि निष्पक्षता के साथ-साथ श्रद्धा, समर्पण एवं विश्वास का नाम है। स्पष्टत: यह श्बसुधैव कुटुम्बकम अर्थात् विश्व कल्याण एवं सौहार्द की धारणा पर आधारित है।

प्रमुख शब्दावली: राष्ट्रवाद, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, पुनर्जागरण, धर्म सुधार आंदोलन, आधुनिकीकरण, पश्चिमीकरण, धार्मिक सहिष्णुता, सात्विकता; संविधानवाद, धर्मनिरपेक्षता, पंथनिरपेक्षता, वसुधवे कुटुंबकम आदि।

प्रस्तावना:

भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक परन्तु इसकी पुनर्स्थापना एवं पुनर्जागरण की दिशा में सशक्त प्रयास नवीन है। भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पृथ्वीराज चौहान, वीर शिवाजी, महाराणा प्रताप, राणा कुम्मा की राष्ट्रवादी धारणा व योगदान पर आधारित हैं। वर्तमान में भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद शोध आलेख हेतु उपयुक्त प्रतीत होता है। मानवीय संगठनों में राष्ट्रवाद की झलक दृष्टिगोचर होती रही है। मानव स्वभावत समुदा ने कता है, इसलिए प्रारम्भ से ही यह कुटुम्ब के रूप में संगठित था तथा ऐसे कुटुम्ब एवं आवास की तलाश में एक जगह से दूसरी जगह भटकते रहते थे। इस अवस्था में प्रगति हुई तथा लोगों ने एक स्थान पर निवास करना आरम्भ किया। एक वृद्ध व्यक्ति कुटुम्ब का प्रधान बना: सभी लोग उसकी छत्रछाया में रहने लगे। उस अवस्था में भी राष्ट्रीयता दृष्टिगोचर होती है जैसे कुटुम्ब के प्रति प्रेम, प्रधान की आज्ञाओं का पालन, भूमि से प्रेम, नम्न की रक्षा आदि क्षेत्रों में इस दिशा में प्रगति हुई। बाद में छोटे-छोटे नगर-राज्यों की रात्रि रूप में स्थापना हुई। इनकी अपनी-अपनी शासन व्यवस्था थी। ऐसे राज्य अपने को देश मानते थे तथा इनके बीच कभी-कभी युद्ध भी होता था। राज्य की अपनी विशिष्ट शासन पद्धति, भाषा-साहित्य एवं संस्कृति का विकास हुआ। इस प्रकार की अवस्था विशेष रूप से यूनान में देखने को मिलती है, परन्तु बाद में रोमनों के यूनान विजय के बाद संकुचित यूनानी राष्ट्रीयता का अन्त हो गया। यह उल्लेखनीय है कि रोमन लोगों का लक्ष्य साम्राज्यवाद या इसलिए उनमें भी राष्ट्रीयता की भावना का विकास नहीं हुआ। स्पष्टत:

रोमन साम्राज्य राष्ट्रीयता के विकास को बाधित कर दिया। मध्य युग में सामन्तवाद का अत्यधिक प्रभाव था। सामन्त आपस में लड़ते-झगड़ते रहते थे तथा प्रायः सम्राट् एवं पोप के बीच भी विवाद होता रहता था। इस प्रकार की परिस्थिति में राष्ट्रीयता की भावना का उत्पन्न होना असंभव था, परन्तु समय के साथ यूरोप की परिस्थिति में परिवर्तन हुआ। कई विद्वानों की रचनाओं से देशवासियों के दिल में मातृभाषा के प्रति श्रद्धा एवं रुचि उत्पन्न हुई। इटली में मैकियावेली द्वारा राष्ट्रवाद का पूर्ण प्रचार किया गया। 15वीं शताब्दी में अंग्रेजों एवं फ्रांसीसियों के बीच 100 वर्षीय युद्ध से उनमें राष्ट्रीयता की भावना का पूर्ण विकास हुआ। धार्मिक युद्धों के परिणामस्वरूप स्पेन में राष्ट्रीयता की भावना को प्रोत्साहन मिला। यह उल्लेखनीय है कि श्जॉन आर्क को फ्रांस की राष्ट्रीयता का जन्मदाता कहा जाता है।

आधुनिक अर्थ में राष्ट्रीयता का विकास पुनर्जागरण एवं सुधार के रूप से आरम्भ माना जाता है। पुनर्जागरण के द्वारा यूरोप में राष्ट्रीय संस्कृति का विकास समव हुआ एवं सुधार द्वारा राष्ट्रीय धर्म का विकास हुआ। 'वेस्टफेलिया की संधि' जो 1648 में सम्पन्न हुई, उसके द्वारा राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना हुई। 1772 में पोलैण्ड ने जर्मनी में राष्ट्रीयता की लहर पैदा कर दिया, परन्तु राष्ट्रीयता को उत्तेजित करने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका फ्रांसीसी राज्य क्रान्ति की थी। इसके बाद नेपोलियन के युद्धों तथा औद्योगिक क्रान्ति द्वारा राष्ट्रवाद को प्रोत्साहन मिला। इन घटनाओं का इटली एवं जर्मनी पर विशेष प्रभाव पड़ा। ऐसे देश उन्नीसवीं शताब्दी में संगठित होकर शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में सामने आए। यह उल्लेखनीय है कि यही देश पहले छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित थे। जर्मनी में हीगेल (Hegel), फिक्टे (Fichte) तथा इटली में मैजनी (Mazzini) का नाम विशेष रूप से राष्ट्रीय भावना को उत्तेजित करने वाले राजनीतिक दार्शनिकों के रूप में उल्लेखनीय है। इटली में कैवर (Cavour) तथा जर्मनी में ओटो वान विस्मार्क (Otto Von Bismarck) ने इनके विचारों को व्यावहारिक रूप प्रदान किया। प्रथम विश्वयुद्ध ने भी राष्ट्रीय राज्यों के विकास को गहरे रूप से प्रभावित किया। युद्ध की समाप्ति के बाद कुछ राज्यों का उदय हुआ और कुछ राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन भी हुआ। रोमानिया, युगोस्लाविया, चेकोस्लोवाकिया का निर्माण राष्ट्रीयता के आधार पर ही हुआ। 1919 में सम्पन्न बर्साय की संधि के प्रतिक्रिया स्वरूप प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्ध के मध्य जर्मनी में राष्ट्रीयता की भावना चरम सीमा पर स्थापित हो गई। तुर्की में मुस्तफा कमालपाशा (Mustafha Kamalpasha) द्वारा श्राष्ट्रीय राज्य की स्थापना की गई तथा उन्होंने एक देश, एक भाषा एवं एक साहित्य को जन्म दिया। एशियाई देशों में विशेषत जापान में 18वीं सदी के मध्य से राष्ट्रीयता का भाव उत्पन्न होने लगा। यह उल्लेखनीय है कि आज राष्ट्रीय राज्य के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण के रूप में जापान को प्रस्तुत किया जाता है। चीन और भारत जैसे विशाल देशों जहाँ आमतौर पर राष्ट्रीयता का अभाव देखा गया, वहीं स्वाधीनता संग्राम के फलस्वरूप राष्ट्रीय भावना जागृत एवं विकसित हुई।

राष्ट्रवाद, राष्ट्रीयता की भावना को प्रकट करता है तथा इसी भावना को संगठित कर उसको भावात्मक शक्ति रूप प्रदान करता है। ग्रीस ने राष्ट्रवाद को परिभाषित करते हुए कहा है कि राष्ट्रवाद एक प्रकार की सामूहिक भावना है. जिसका आधार विभिन्न प्रकार की एकता या समानताएँ है और जिसका सम्बन्ध मुख्यतः राजनीतिक शक्ति अथवा विकास से होता है।ष दूसरे शब्दों में, राष्ट्रवाद को राष्ट्रीयता की भावना को संगठित रूप से प्रकट करने का भावात्मक माध्यम भी कहा जा सकता है। राष्ट्रवाद के द्वारा राष्ट्रीयता को एक राष्ट्र के रूप में संगठित करने हेतु प्रोत्साहन एवं प्रेरणा प्रदान किया जाता है। दूसरी ओर राष्ट्रीयता की उत्पत्ति एवं विकास में जातीय एकता, सांस्कृतिक एकता, भाषायी एकता, धार्मिक एकता, भौगोलिक एकता, ऐतिहासिक घटनाओं की एकता, राजनीतिक प्रेरणाओं की एकता, समान आर्थिक हित, सार्वजनिक इच्छा, राष्ट्रीय सेवाएँ, राष्ट्रीय धरोहर आदि को आवश्यक तत्त्व बताया जा सकता है।

भारतीय राष्ट्रवाद उपनिवेश-विरोधी राष्ट्रवाद की श्रेणी में आता है। भारतीय राष्ट्रवाद की उत्पत्ति और विकास में सामाजिक-सांस्कृतिक पुनर्जागरण की उपस्थिति व भूमिका गहत्वपूर्ण रही है। राजा राम मोहन राय की बहह्म समाज (1828 ई.) तथा दयानन्द सरस्वती की आर्य समाज (1875 ई.) की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण रही है। राम कृष्ण मिशन के प्रमुख प्रतिनिधि के रूप में स्वामी विवेकानन्द ने भारत के विश्व विजयी के रूप में उद्घोषणा सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का उद्घोष ही था। थियोसोफिकल सोसाइटी की श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने धर्म को राष्ट्रवाद का आधार बताया। भारत में पाश्चात्य संस्कृति ने मध्यकालीन मुस्लिम संस्कृति के प्रभुत्व के विरोध में राष्ट्रवाद के सांस्कृतिक आयाम को विस्तृत करने में सहयोग दिया। अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरूद्ध भारतीय राष्ट्रवाद सशक्त रूप में सामने आया तथा कुछ विदेशी घटनाओं जैसे वर्ष 1896 में अबसीनिया के हाथों इटली की पराजय व 1904 में जापान की रूस पर विजय ने भारतीय राष्ट्रवाद को उग्र व आक्रामक दृष्टिकोण प्रदान किया। भारत में राष्ट्रीय काग्रेस की स्थापना दिसम्बर, 1885 में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की सुरक्षा में हुई, जिससे भारतीय राष्ट्रवाद

की तीन प्रमुख स्वरूप दृष्टिगोचर होती है भारत में उदारवादी राष्ट्रबाद (वर्ष 1885 से 1905 ई. तक), उग्रवादी राष्ट्रवाद (वर्ष 1906 से 1918 ई. तक) तथा गाँधीवादी राष्ट्रवादी प्रवृत्ति (वर्ष 1919 से 1947 ई. तक)। भारतीय राष्ट्रवाद अतिप्राचीन है। इसका मूल आधार हिंदू संस्कृति है। संप्रति हिंदू राष्ट्र पर: विमर्श है। हिंदू संस्कृति के कारण यह हिंदू राष्ट्र है। कुछ लोग भारत को हिंदू राष्ट्र पोषित करने की मांग कर रहे हैं। उनका मंतव्य स्पष्ट नहीं है। राष्ट्र राजनीतिक इकाई नहीं है। यह सास्कृतिक अनुभूति है। विराट विश्व हिंदू सरकृति में एक परिवार है। पृथ्वी ब्रांड की एक इकाई है. हिंदू संस्कृति में यह माता है तथा आकाश पिता है। हिंदू संस्कृति में वनस्पतिया अग्नि, वायु और जल भी देवता है। पूर्वजों में प्रकृति के प्रति आत्मीय भाव था। इसी संस्कृति से हिंदू राष्ट्र बना। राष्ट्र और राज्य भिन्न है। पं दीनदयाल उपाध्याय ने लिखा है, संयुक्त राष्ट्र वस्तुत: राष्ट्रों का संगठन नहीं है। राष्ट्रों के प्रतिनिधि के नाते उसमें राज्य ही प्रतिनिधित्व करते हैं। इसीलिए राज्य के विकारग्रस्त होते ही राष्ट्र अपने प्रतिनिधि बदल देता है। शासन पद्धति राज्य को राष्ट्र के हित में उपयोगी बनाने वाला तंत्र मात्र है. लेकिन कोई भी शासन पद्धति अपने राष्ट्र को नहीं बदल सकती। राष्ट्र स्थायी सत्ता है।

हिंदू राष्ट्र संस्कृति सत्य है। तर्क प्रतितर्क और वाद-विवाद हिंदू संस्कृति की विशेषता है। कुछ विद्वान हिंदू को मुसलमानों द्वारा दिया गया शब्द मानते रहे हैं। यह सही नहीं है। हिंदू शब्द का उल्लेख ईरानी श्अवेस्ता में है, जो इस्लाम के उद्भव से सैकड़ों वर्ष पुराना है। जेरियस (522-485 ईसा पूर्व) के शिलालेख में भी शहिंदूश शब्द का उल्लेख है। उच्चतम न्यायालय ने 1976 में हिदुत्व को संस्कृति बताया। 1995 में भी सर्वोच्च न्यायालय की न्यायपीठ ने हिंदुत्व को पथ-मजहब नहीं जीवन शैली बताया। उससे प्रतीत होता है कि हिंदू राष्ट्र घोषित करने की माँग का अर्थ संभवत: हिंदू राज्य से है, हिंदू राष्ट्र से नहीं। हिंदू संस्कृति प्राधीनतम है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद एवं रामायण-महाभारत से लेकर आज तक सास्कृतिक निरंतरता लिए है। मार्क्सवादी विद्वान डी.डी. कोसंबी ने प्राचीन भारत की संस्कृति और सम्यत्ता में लिखा, मिश्र की महान संस्कृति में वैसी निरंतरता देखने को नहीं मिलती जैसी हम भारत में पिछले 3000 या उससे भी अधिक वर्षों में देखते हैं। मिश्र और मेसोपोटामियाई संस्कृतियों का अत्तीत अरबी संस्कृति के पीछे नहीं जाता।श सास्कृतिक निरंतरता महत्वपूर्ण है। प्राबीन काल से ही भारत में राष्ट्र संस्था सांस्कृतिक प्रवाह में थी। अथर्ववेद में सामाजिक सास्कृतिक विकास के सूत्र हैं श्पहले वह शक्ति विराट थी, अव्यवस्थित थी। फिर परिवार संस्था का निर्माण हुआ। परिवारों ने जीवन को सामूहिक बनाया: सामूहिक विचार-विमर्श से समा एवं समिति का विकास हुआ, लोककल्याण के इच्छुक ऋषियों ने तप किया, दीक्षा आदि नियमों का पालन किया। इससे राष्ट्र तथा राष्ट्र के बल का जन्म हुआ। राष्ट्र सांस्कृतिक अवधारणा है और उसके गठन का आधार राजनीतिक प्रक्रिया नहीं। गारतीय वित्तन में ब्रह्मांड को एक जाना गया है। विविधता में एकता भारतीय संस्कृति की विशेषता है। भूमि, जन और सस्कृति की त्रयी भावात्मक रूप में राष्ट्र होती है। लोगों में साथ-साथ साते हुए भूमि के प्रति श्रद्धा विकसित होती है। संस्कृति नेतृत्व करती है और राष्ट्र बराता है। संस्कृति का मुख्य घटक भाषा है। संविधान में सामासिक संस्कृति शब्द प्रयोग हुआ है। सर्वोच्च न्यायालय ने 1994 में कहा, सामासिक संस्कृति का आधार संस्कृत भाषा और साहित्य है। इस देश के लोगों में अनेक भिन्नताएं हैं। में गर्व करते हैं कि वे एक विरासत के सहभागी है। यह विरासत और कोई नहीं संस्कृति की विरासत है।

मार्क्सवादी विचारक डॉ. रामविलास शर्मा ने भी लिखा है कि 'अथर्ववेद और महाभारत में अनेक पंथी के राष्ट्र का जैसा वर्णन है, वैसा अन्यत्र नहीं मिलता। भारत वैदिक काल के पूर्वी ही हिंदू राष्ट्र है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरकार्यवाह दत्तात्रेय होसबाले ने सहीं कहा है कि भारत पहले से ही हिंदू राष्ट्र है। हिंदू राष्ट्र सांस्कृतिक अवधारणा है। हम वर्षों से कह रहे हैं कि भारत हिंदू राष्ट्र है। इसे आर्यन, हिंदू या सनातन राष्ट्र भी कहा जा सकता है। राष्ट्र की मूलाधार संरकृति को वैभवशाली बनाना चाहिए: सबके अधिकार समान हों. आजीविका और उपलब्धियों के अवसर समान ही न कोई अल्पसंख्यक हो और न विशेष सुविधाए। इसी से हिंदू राष्ट्र परम वैभवशाली होगा।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद इस मान्यता पर आधारित है कि सांस्कृतिक परम्पराओं तथा समान भाषा: पर राष्ट्रवाद आधारित है. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद राष्ट्र की एक साझी संस्कृति है. सास्कृतिक राष्ट्रयाद राष्ट्र की संस्कृति, परम्परा और इतिहास की पुनर्स्थापना है: सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के जनक जॉन गॉटफ्राइड ने इसे जैविक ईकाइ के रूप में प्रतिपादित किया है: सांस्कृतिक राष्ट्रवाद राष्ट्र को भगवती स्वरूपा यानी मी के समान मानने की एक धार्मिक मान्यता व राष्ट्र के प्रति समर्पण का नाम है, यह अखण्ड भारत की धारणा और उसकी प्राप्ति के प्रति प्रतिबद्धता का नाम भी है. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद धार्मिक निरपेक्षता का नाम है, फिर भी यह विज्ञान और धर्म में संघर्ष नहीं, बल्कि इनके बीच सह-सम्बन्ध का नाम है तथा भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद तो पडित दीनदयाल उपाध्याय के शब्दों में समतावाद और नारीवाद से सम्बद्ध दृष्टिकोण भी है। भारत में राष्ट्रवाद की अवधारणा

विधर्मीवाद और तुष्टीकरण का विरोध करता है तथा हिन्दू राष्ट्रवाद की बात करता है। हिन्दू राष्ट्रवाद कही से भी मजहबी नहीं है, क्योंकि यह हिन्दूत्य की बात करता है। हिन्दूव एक संस्कृति का नाम है, जो वास्तविक रूप में धर्मनिरपेक्ष है। भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पृथ्वी राज चौहान, शिवाजी महाराज तथा महाराणा प्रताप की राष्ट्रवादी धारणा व योगदान पर आधारित रहा है।सांस्कृतिक राष्ट्रवाद देश को एक संस्कृति और संरक्षण में जोड़ना चाहता है तथा व्यक्ति के जीवन व कार्य को राष्ट्रीय तथा सामाजिक सरोकार से भी जोड़ना चाहता है। भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रघ्वाद की बुनियाद अति प्राचीन है तथा प्रभु श्रीराम को इसका प्रतिपादन तक बताया जाता है, जबकि विश्व इतिहास में राष्ट्रवाद की अवधारणा को आधुनिक बताया जाता हैं।

भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद अखण्ड भारत की परिकल्पना पर आधारित है, जो हिन्दू राष्ट्रवाद की मूल मान्यता को स्वीकार करता है। भारत का आधार धार्मिक तथा भगवती स्वरुपा है. जो उत्तर में वैष्णदेवी, पूरब में कामाख्या और त्रिपुरा सुन्दरी (त्रिपुरा), पश्चिम में केश्वरी (ढाका, बांग्लादेश) तथा हिंगराज माता (ब्लूबचिस्तान, पाकिस्तान), दक्षिण में कन्याकुमारी तथा मध्य में विन्धवासिनी (विंध्याचल) तक विस्तृत है। भारत में अखण्ड राष्ट्र का आधार राजनीति से सनातन धर्म को जोड़ता है जो सकारात्मक व संस्कृतिमूलक है। सास्कृतिक राष्ट्रवाद आध्यात्मिक, सात्विक, निष्पक्ष तथा वैश्विक शांति व विकास की परिकल्पना करता है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद में शासन का आधार धर्म या मजहब नहीं, बल्कि श्रद्धा समर्पण एवं विश्वास है: यह बसुधैव कुटुम्बकम अर्थात् विश्व कल्याण की सकारात्मक अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की बात करता है, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद में विज्ञान और धर्म में गौलिक सरोकार है। गहर्षि अरविन्द ने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की धारणा को सार्थक बताते हुए भविष्य में अखण्ड भारत की भविष्यवाणी किया है। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ भी भारत को देवताओं द्वारा निर्मित क्षेत्र बत्ताता है तथा अखण्ड भारत का समर्थन करता है। हाल के दिनों में मोहन भागवत ने तो कह दिया है कि आगामी 10 से 15 वर्षो में अखण्ड भारत की अवधारणा सार्थक होगी। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद उत्सव धर्मी है, क्योंकि यह हिन्दू संस्कृति पर आधारित है। हिन्दू सरकृति में जन्म से लेकर मृत्यु तक की सभी संस्कारों को उत्सव के रूप में मनाता है। सास्कृतिक राष्ट्रवाद शिक्षा, चिकित्सा, विज्ञान और धर्म को वास्तविक व नवनिर्माण के परिप्रेक्ष्य में समायोजन से सम्बन्धित है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने भी शिक्षा और चिकित्सा को एक-दूसरे का पूरक बताया है।

भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के पुनर्जागरण में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का योगदान सबसे महत्वपूर्ण रहा है। वर्ष 2014 में नरेन्द्र मोदी के भारत के प्रधानमंत्री बनने के बाद से सास्कृतिक राष्ट्रवाद को राजनीतिक विमर्श का विषय बनाया गया है। वर्ष 2014 में नरेन्द्र मोदी के प्रधानमंत्री बनने के बाद राम जन्मभूमि मामले की सुनवाई सर्वोच्च न्यायालय में तेज हुई तथा सास्कृतिक राष्ट्रवाद के पक्ष में निर्णय आया तथा अयोध्या में राम मंदिर का शिलान्यास किया गया। इतना ही नहीं, नरेन्द्र मोदी की सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को सोंच को मजबूती प्रदान करने के लिए उत्तर प्रदेश के यशस्वी मुख्यमंत्री आदित्य नाथ योगी ने फैजाबाद का नाम परिवर्तित कर के अयोध्या जिला कर दिया। वस्तुत: राष्ट्र की मौलिक स्वरूप को इतिहास के किसी भी काल खण्ड में बदला गया है, उसे सुधारना और वास्तविक परम्पराओं के अनुरूप बालना भी सास्कृतिक राष्ट्रवाद है। आज चित्रकूट, काशी, मथुरा, कुशीनगर, कपिलवस्तु, श्रीवास्ती सहित सभी धार्मिक स्थलों का पर्यटन व धार्मिक सन्दर्भ में विकास किया जा रहा है. जो सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के लिए आवश्यक है तथा इसमें नरेन्द्र मोदी की कार्य योगदान केन्द्रीय एवं निर्णायक है। काशी कॉरिडोर का विकास, राम जानकी कॉकिडोर, चार तीर्थस्थलों (यमुनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ और बद्रीनाथ) को जोडने वाले आधुनिक सड़क नेटवर्क का निर्माण, बुद्ध सर्किट का विकास आदि में नरेन्द्र मोदी की सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की धारणा ही कार्य कर रही है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 25 अगस्त, 2019 को बहरीन के मनामा में 200 साल पुराने भगवान श्री कृष्ण मंदिर के पुनर्विकास परियोजना का शुभारंभ किया तथा इसके लिए 42 लाख डॉलर दिया। वर्ष 2018 में मोदी ने अबूधाबी में हिन्दू मंदिर का आधारशिला रखा था, जिसका उदघाटन 14 फरवरी, 2024 में उन्होंने किया। भारतीय इतिहास और संस्कृति की वास्तविक व वैज्ञानिक विवेचन की बात नरेन्द्र मोदी तथा योगी आदित्य नाथ के द्वारा की जा रही है, जिससे सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को बल मिल रहा है।वर्ष 2024 के लोकसभा चुनाव में नरेंद्र मोदी सरकार की कमजोर स्थिति के कारण भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की तेजी में थोड़ी सी कमी दिख रही है। इसके बाद भी विगत एक दशक से भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की गति तुलनात्मक रूप में प्राचीन इतिहास और मध्यकालीन इतिहास से बहुत आगे की ओर अग्रसर है।

निष्कर्ष:

भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के विकास के ऐतिहासिक अवलोकन से बिल्कुल स्पष्ट हो जा रहा है कि इसकी बुनियाद ऐतिहासिक है तथा इसका स्वरूप भी आत्मक व व्यापक है। भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का स्वरूप कहीं से भी किसी धर्म

विशेष के विरोध में न होकर मजबूत राष्ट्र की स्थापना के साथ-साथ वैश्विक शांति और सौहार्द की स्थापना से संबंधित है । यह धार्मिक कट्टरता को खत्म करने से संबंधित है । भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का आधुनिक समय में आधिकाधिक विकास हुआ है। यह भी सही है कि वर्ष 2014 में नरेंद्र मोदी सरकार के आने के बाद भारत में साथ की सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की गति में तेजी आई है। आज दक्षिण एशिया में जिस रूप में सांप्रदायिक शक्तियाँ आतंकी गतिविधियों को बढ़ावा दे रही है, ऐसी स्थिति में भारत का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद भारत ही नहीं, बल्कि दक्षिण एशिया सहित सम्पूर्ण विश्व के लिए भी लाभदायक है ,क्योंकि यह वैश्विक शांति और सौहार्द की स्थापना से संबंधित है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि भारत का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष समर्थन करता हुआ प्रतीत होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डा. एस पी. वर्मा, आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त, विन्स प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 1987
2. एच. कोहन, द आईडिया ऑफ नेशनलिग्म ए स्टडी ऑन इट्स ओरिजन एण्ड बैकग्राउड, मैकमिलन, लंदन, वर्ष 1944
3. डा.डी डी पटनायक, कल्वरल नेशनलिज्म इन इंडियन पर्सपेक्टिक, सीरियल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016
4. रुडोल्फ रॉकर, नेशनलिज्म एण्ड कल्वर, सीविसी फ्राइड, न्यूयॉक, यू.एस.ए. वर्ष 1937
5. क्रिस्टिन सुरक, मेकिंग टी मेकिंग जापान, स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, यूके, 2012
6. वनिका सत्कार, हिन्दू वाइफ हिन्दू नेशन, इंडियाना यूनिवर्सिटी प्रेस, यू एस. 2001
7. यिंगजी गु ओ, कल्चरल नेशनलिजम इन कंटेम्प्रोरी चाइना, पहला संस्करण, राउटलेग, यू 4 2003
8. कोसाकू योशिनो, कल्चरल नेशनलिजम इन कंटेम्प्रोरी जापान, राउटलेग, यूके., 1992
9. बीबरान, एकेमी जापानीज कल्चरल नेशनलिजम ऐट होम एण्ड इन द एशिया पेसिफिक, ग्लोबल ओरिएण्टल, यूके, 2004
10. केथरीन इ. पॉल, फासिस्ट डाइरेक्टिभ इजरा पाउंड एण्ड इटालीयन कल्वर नेशनलिजम, क्लेगसन यूनिवर्सिटी प्रेस, यू एस., 2016

भारतीय संघवाद का परिवर्तित स्वरूपः एक अवलोकन

प्रफुल्ल राज पाण्डेय

(शोध प्रज्ञ) राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

डॉ० धनंजय यादव

(शोध पर्यवेक्षक) सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, डी .ए.वी. कॉलेज, सिवान, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

शोध आलेख का सारतत्त्वः

संघवाद एक आधुनिक लोकतांत्रिक शासकीय प्रतिमान है, जिसे दुनिया के अनेक लोकतांत्रिक देशों ने अपनाया है। भारत, अमेरिका, स्विट्जरलैंड, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, पाकिस्तान, मैक्सिको सिटी, इथोपिया तथा नेपाल जैसे देशों में संघात्मक शासन प्रणाली को अपनाया गया है। संघात्मक शासन प्रणाली की महत्वपूर्ण विशेषताओं में दोहरी सरकार, उनके बीच शक्तियों का विभाजन, लिखित – निर्मित संविधान तथा न्यायिक सर्वोच्चता की स्थिति दृष्टिगोचर होती है। संघवादी व्यवस्था के अंतर्गत द्वितीयक विशेषता के रूप में संघीय विधायिका के द्वितीय सदन में राज्यों की भागीदारी तथा दोहरी नागरिकता के सिद्धांत का भी सामान्य तौर पर अनुपालन होता है। भारत में संघवाद की अवधारणा भारतीय संविधान और शासन की बुनियादी अवधारणा है तथा अब विशेष भारतीय संविधान की मूल ढांचा भी माना जा सकता है। भारतीय संघवाद पर संरचना के रूप में अमेरिका तथा प्रक्रिया के रूप में कनाडा की संघवादी व्यवस्था का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसके बाद भी भारतीय संघवाद को किसी देश का नकल या कार्बन कॉपी नहीं कहा जा सकता है, बल्कि अपने आप में विशिष्ट है। भारतीय संघवाद वर्ष1950 में संविधान लागू होने के बाद से लेकर वर्तमान तक परिवर्तनशील रहा है, जिसकी कई प्रवृत्तियाँ समय, काल, परिस्थिति और राजनीतिक व्यवस्था से प्रभावित होकर परिवर्तित होती रही है।

प्रमुख शब्दावलीः संघवाद, राज्यों का संघ, केंद्रीयकरण, विकेंद्रीकरण, संविधान, संविधानवाद, न्यायपालिका की सर्वोच्चता, न्यायिक पुनरावलोकन, गणतंत्र न्यायिक सक्रियता आदि।

प्रस्तावनाः

संघात्मक शासन व्यवस्था के अन्तर्गत राष्ट्र की विभिन्न इकाइयों कुछ क्षेत्रों में स्वतंत्र रहते हुए अपने को एक केन्द्रीय सत्ता में विलीन कर देती हैं। प्रो. गिलक्रिस्ट के अनुसार, श्संघवाद का मतलब संधि अथवा अनुबंध है।" दरअसल, 'संघवाद लैटिन शब्द फोएडता (Foedus) से बना है, जिसका तात्पर्य ही संधि या अनुबंध है। भारतीय संविधान के प्रथम भाग के प्रथम अनुच्छेद में भारत को राज्यों का संघ घोषित किया गया है। इंडिया अर्थात् भारत राज्यों का संघ है। इसी कारण विद्वानों के बीच विवाद बना हुआ है। सच तो यही है कि संविधान में कहीं भी संघ के अंग्रेजी पर्याय Federation शब्द का प्रयोग ही नहीं है। डॉ. अम्बेडकर का कहना है कि श्भारत को राज्यों का यूनियन कहने के दो कारण हैं- प्रथम तो यह है कि भारतीय राज्य पारस्परिक समझौते का परिणाम नहीं है और इन्हें दूसरे अवयवी घटकों को संघ से सम्बन्ध विच्छेद करने की स्वतंत्रता भी नहीं है अर्थात् यूनियन शब्द शक्तिशाली केन्द्र का सूचक है।

संघवाद की अवधारणा को नवीन माना जाता है, क्योंकि इसकी शुरूआत सिद्धान्त और व्यवहार रूप में 1787 ई. से अमरीका में शुरू मानी जाती है। अमरीका में राज्यों की सरकारों का एक लचीला संगठन 'परिसंघमण्डल' (Confederation) बना, जो बाद में व्यवस्थित एवं मजबूत रूप में संघवाद के रूप में स्थापित हुआ। स्विट्जरलैण्ड, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा भारत में संघवाद को विशेष पर्यावरणीय सन्दर्भ में अपनाया गया है, परन्तु उनकी विशेषताएँ कमोबेश अमरीकी संघवादी व्यवस्था से मिलती-जुलती है। भारतीय संघवाद के स्वरूप एवं कार्यकरण के विवेचना से पूर्व संघवाद की सामान्य विशेषताओं के सम्बन्ध में जानकारी आवश्यक है। भारतीय संघवाद की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता संघ तथा राज्यों की सरकार यानी दोहरी सरकार

का होना है इसका तात्पर्य यह हुआ कि शासकीय व्यवस्था के अन्तर्गत संघ तथा राज्य की सरकार होती है तथा राज्यों की अपनी अलग- अलग सरकारें होती हैं। राज्यों की सरकारें विधि या संशोधन द्वारा निर्धारित कार्य-क्षेत्र के अन्तर्गत ही काम करती है तथ्स उसके कार्यों के सम्पादन से केन्द्र वा संघ सरकार के कार्य-निष्पादन में किसी प्रकार का गतिरोध उत्पन्न नहीं होता है।संघवाद की दूसरी विशेषता संघ एवं राज्य सरकारों के बीच शक्तियों का विभाजन होता है। संविधान के अन्तर्गत ही यह अभिनिर्धारित होता है कि संघ एवं राज्य सरकारें किन विषयों पर विधि-निर्माण तथा उनका क्रियान्वयन करेंगी?

संघवाद की एक विशेषता लिखित और निर्मित संविधान का होना है। अमरीकी संघवाद में केन्द्र एवं राज्यों को भी अपनी-अपनी संविधान हैं तथा वह लिखित है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि राज्य सरकारें अपनी आवश्यकता तथा परिस्थिति के सन्दर्भ में संविधान में संशोधन तो कर सकती है, परन्तु उनका संशोधन संघवादी मान्याताओं के विपरीत नहीं हो सकता है।संघवाद की एक विशेषता न्यायपालिका की सर्वोच्चता है। इसका तात्पर्य यह है कि न्यायपालिका के द्वारा सरकार के अन्य दो अंगों कार्यपालिका और विधायिका के कार्यों का निरीक्षण किया जा सकता है। न्यायपालिका अपने इस अधिकार का प्रयोग जिस सिद्धान्त के माध्यम से करती है, उस सिद्धान्त को 'न्यायिक पुनरावलोकन' का सिद्धान्त कहते हैं। अमरीकी सर्वोच्च न्यायलय को 'न्यायिक पुनराविलोकन' का अधिकार (Power of Judicial Review) प्राप्त है, जिसे 'कानून को उचित प्रक्रिया' (Due Process of Law) पर आधारित किया गया है। जानकारी के लिए यहाँ स्पष्ट कर दें कि अमरीको न्यायपालिका के समान भारत की न्यायपालिका शक्तिशाली नहीं है, जबकि दोनों को ही न्यायिक पुनराविलोकन का अधिकार प्राप्त है। यहाँ अन्तर है कि अमरीकी न्यायपालिका को न्यायिक पुनराविलोकन का अधिकार कानून की उचिन प्रक्रिया पर आधारित है, जबकि भारतीय न्यायपालिका को प्राप्त न्यायिक पुनर्निलाकन का अधिकार, संविधान तथा कानून द्वारा स्थापित मान्यताओं पर आधारित (Process established by Law or Constitution) है। अमरीकी संघवाद की एक विशेषता राज्य में दोहरी नागरिकता को लागू करना है अर्थात् अमरीका में व्यक्ति राज्य का भी नागरिक होता है तथा संघ का भी नागरिक होता है। भारतीय संघवाद की सम्पूर्ण विवेचना के पूर्व ही यहाँ इस बात को स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि अमरीकी संघवाद की इस मान्यता को भारतीय संविधान के अन्तर्गत स्वीकार नहीं किया गया है। भारत का संविधान मुख्यत: संघात्मक है, क्योंकि इसमें संघ सरकार के प्राय: सभी लक्षण विद्यमान है। सर्वप्रथम, इसके द्वारा केन्द्रीय सरकार तथा राज्यों की सरकार से मिश्रित एक द्वैध शासन पद्धति की स्थापना की गई है. जिसमें एक अपने अस्तित्व के लिए दूसरे पर अवलम्बित नहीं है। द्वितीय, संविधान द्वारा केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों का स्पष्ट वितरण किया गया है. इसके लिए तीन सूचियाँ बनाई गई हैं केन्द्र सूची, राज्य सूची तथा समवर्ती सूची। तृतीय, संविधान का संरक्षण एक स्वतंत्र न्यायपालिका में निहित है, जिसके शीर्ष पर सर्वोच्च न्यायालय है, जो संघ सरकार तथा राज्य सरकारों के बीच संतुलन रखता है तथा संविधान की व्याख्या करता है। चतुर्थ, संविधान लिखित, सर्वोच्च्च, निश्चित एवं स्पष्ट है। बहुत से मामलों में यह अपरिवर्तनशील है। इस प्रकार, भारतीय संविधान द्वारा संघात्मक शासन पद्धति की सभी महत्वपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।

भारत का संघीय व्यवस्था मूलत: 1935 के अधिनियम पर आधारित है। यह इतना समन्वित स्वरूप का रहा है कि समय के साथ उभरती हुई माँगों के अनुरूप ढल सके और परम्पराओं एवं विश्वासों के अनुसार कार्यरूप में चल सके। आरम्भ में राज्यों को एक संतोष था कि उनके लिए एक निश्चित विधायी सूची है, जिस पर वे कानून बना सकते हैं। इसके अतिरिक्त इस संघवाद को लोकतंत्रीय वातावरण में काम करना था। ऐसा अनुभव किया गया कि लोगों के प्रति अपने उत्तरदायित्व व जवाबदेही को देखते हुए कोई भी उनकी इच्छाओं के विपरीत जाने का साहस नहीं करेगा। 1956 में भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के बाद यह विश्वास और भी पक्का हो गया। स्वतन्त्रता के बाद जिस विशिष्ट वर्ग ने सत्ता ग्रहण की, वह शक्तिशाली केंद्र के पक्ष में था। वह न केवल अपनी नीतियों को लागू करने के लिए ऐसा चाहते थे, अपितु शासक विशिष्ट वर्ग की स्थिति को भी श्रेष्ठ बनाये रखना चाहते थे। इस उद्देश्य के लिए राज्यपाल के पद व राष्ट्रपति की शक्तियों के प्रयोग तथा दलीय ढांचे के प्रयोग सहित अनेक संवैधानिक व गैर-संविधानिक साधनों का प्रयोग किया गया। वर्ष 1952 में पहले ही चुनावों में जब कांग्रेस की स्थिति ट्रावनकोर, कोचीन, मद्रास व पैप्सु जैसे क्षेत्रों में अल्मपत में हो गई, तो केंद्र सरकार ने अपनी सत्ता का प्रयोग राज्यपालों व राजप्रमुखों द्वारा इस प्रकार से किया कि या तो वहाँ गैर-कांग्रेसी सरकार बन ही न सकें और यदि बन जायें उन्हें भंग कर दिया जाये, जैसे पैप्सु में किया गया। इसी तरह 1957 में जब केरल में गैर-कांग्रेसी सरकार बनी तो केंद्र के हस्तक्षेप से उसे भी भंग कर दिया गया।

वर्ष 1957 में उड़ीसा में भी कुछ ऐसी ही स्थिति बनी, जब कांग्रेस सबसे अधिक सदस्यों वाला एकल दल था, किन्तु उसका बहुमत नहीं था। कांग्रेस ने झारखंड पार्टी व छ: स्वतंत्र विधायकों की मदद से सरकार बनाई। कुल मिलाकर कांग्रेस की स्थिति मजबूत करने हेतु गणतंत्र पार्टी के आठ सदस्य और एक साम्यवादी सदस्य कांग्रेस में शामिल हो गये, परन्तु दल बदल के कारण

मन्त्रिमंडल को मजबूरन त्यागपत्र देना पड़ा। राज्यपाल ने त्यागपत्र को स्वीकार नहीं किया और कांग्रेस की सरकार बनी रही। इस के उपरान्त मंत्रिमंडल की विधानसभा में पराजय हुई, पर उसने त्यागपत्र नहीं दिया। यह मंत्रिमंडलीय अस्थिरता तब समाप्त हुई, जब कई तरीकों के जोड़ तोड़ के बाद अप्रैल-मई, 1959 में कांग्रेस-गणतंत्र परिषद के गठबंधन ने सत्ता सम्भाली। वर्ष 1967 के चुनावों में कांग्रेस की पराजय के कारण, 1967 व 1972 में भारतीय संघवाद को अधिकतम दवाव में काम करना पड़ा। अनेक राज्यों में कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। कांग्रेस का लोकसभा में बहुमत होने का अर्थ यह लिया गया कि असली चुनौती अब क्षेत्रीय दलों से थी, जो राष्ट्रीय स्तर पर विकल्प दल के रूप में मोर्चा नहीं बना पा रहे थे। इस स्थिति का कांग्रेस ने पूरा लाभ उठाया, राष्ट्रीय विकल्प की अनुपस्थिति में राज्यों में गैर-कांग्रेसी सरकारों को बार-बार अपदस्थ करना और उस के स्थान पर कांग्रेस की सरकार बनाना सामान्य बात बन गई। केवल तमिलनाडु में गैर-कांग्रेसी सरकार (डी.एम. के.) जीवित रह पाई। इस उद्देश्य के लिये राज्यपाल के पद का प्रयोग या यूं कहें कि दुरूपयोग किया गया। एक या दो राज्यपालों को छोड़ कर अन्य सभी कांग्रेस के पूर्व सदस्य थे जो या तो चुनावों में पराजित हो चुके थे अथवा राजनीतिक स्तर के कारण उन्नति कर रहे थे। वर्ष 1971-72 में चुनाव जीतने के उपरान्त इन्दिरा गांधी ने एक नई राजनीतिक प्रक्रिया प्रारम्भ की. जिसमें एक शक्तिशाली केंद्र की पुर्नस्थापना की गई। इस प्रक्रिया में केंद्र राज्य सम्बन्धों में परिवर्तन किया गया तथा केंद्र व राज्यों की राजनैतिक व्यवस्थाओं को विशिष्टता को समाप्त करने का प्रयत्न किया गया। केंद्र ने राज्यों में हस्तक्षेपी नीति को अपनाया। श्रीमति गाँधी ने जिस नई राजनीतिक प्रक्रिया का निर्माण किया, वह नेहरू काल से भी अधिक केन्द्रीकृत व व्यक्तिनिष्ठ थी। इससे संस्थाओं का महत्व कम हुआ। 1975 में घोषित आपात् स्थिति का संघीय स्वरूप पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इससे केंद्रीय सरकार इतनी शक्तिशाली बन गई कि श्रीमति गांधी ने अपने दल के भीतर और बाहर विरोधियों का सफाया ही नहीं किया, बल्कि जिन राज्यों में राजकीय सरकारों ने अपनी स्थिति को मजबूत किया था, उन्हें अपदस्थ कर दिया। संविधान में दो ऐसे (संविधान संशोधन 38 वीं व 42 वीं) संशोधन किये गये, जिनका संधीय स्वरूप पर काफी गहरा प्रभाव पड़ा। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि संविधान के तीसरे पांचवे, सातवें, तेहरवें और बाईसवें संशोधनों के परिणामस्वरूप केंद्र पहले ही शक्तिशाली बन गया था। 38 वें संशोधन द्वारा आपात स्थिति की उघ्द्घोषणा से सम्बन्धित सभी कार्यकारियों को न्यायिक पुर्नवालोकन से अलग कर दिया गया। 42वें संशोधन द्वारा अनुच्छेद 352 के अधीन उद्घ्घोषित आपात् काल के प्रभाव को और विस्तृत बना दिया गया, अब यह देश के किसी भाग, किसी राज्य विशेष या राज्यों के समूह पर लागू की जा सकती थी। वर्ष 1977 में सम्पन्न चुनावों में राजनीतिक शक्तियों के नवीन समीकरण से जनता पार्टी का जन्म व कांग्रेस का विभाजन हुआ। केंद्र व राज्यों में एक दलीय प्रभुत्व का अचानक अन्त हो गया, हालांकि मौखिक रूप से जनता पार्टी के नेता विकेंद्रीकरण के समर्थक होने के बाद भी व्यवहार में जब उन्हें अवसर मिला, तो उन्होंने उसी केंद्रीकृत शासन को लागू किया, जिसे अंग्रेजों ने भारत में प्रारम्भ किया था और स्वाधीनता के बाद कांग्रेस ने उसे मजबूत किया था। जनता दल नेताओं का एक शक्तिशाली वर्ग उस केन्द्रीकृत भारत को उचित ठहराने लगा जो मौर्य, गुप्त तथा मुगल साम्राज्य में मौजूद था। उनके विचार में उस स्वर्णिम काल को पुर्नस्थापित करना राष्ट्रीय आन्दोलन का एक पुण्य उद्देश्य था। जनता पार्टी परस्पर झगड़ों में उलझी रही। यह ज्यादा समय तक नहीं टिक पाई तथा न ही यह कोई स्वस्थ राजनैतिक परम्परा का निर्माण कर पाई। वर्ष 1980 में श्रीमति गाँधी पुनः शक्तिशाली नेता के रूप में उभरी, दल को नया रूप देने का प्रयास किया और संघीय नियंत्रण नई ऊचाईयों को छूने लगा। मुख्यमंत्री का चुनाव भी राज्य विधानसभा में पार्टी द्वारा न हो कर दल के नेता का एकाधिकार बन गया। उन्हें अपने सहयोगी चुनने की छूट भी नहीं थी। जहाँ तक गैर-कांग्रेसी दलों द्वारा शासित राज्यों का सम्बन्ध है, केंद्र सरकार ने प्रशासनिक व दलीय अर्थात दोनों स्तरों पर उनकी आलोचना करनी आरम्भ कर दी थी।

केंद्र व राज्यों सम्बन्धी विवाद, जो 1967 से चल रहा था, ने राजीव गाँधी के शासन काल में एक नये चरण में प्रवेश किया। दिसम्बर, 1987 में उन्होंने भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से जिला मजिस्ट्रेटों व जिला अधिकारियों के सम्मेलन बुलाना प्रारम्भ कर दिया। यह प्रयास वास्तव में उस व्यवस्था में लौटने का था, जिसमें जिला अधिकारी प्रशासन का सर्वेसर्वा होता था। इन कार्यशालाओं में न तो मुख्यमंत्री और न ही राज्य सरकार के किसी अन्य व्यक्ति को शामिल किया गया। इसके उपरान्त पंचायती राज को मजबूत करने स्थानीय निकायों के सुनाय करवाने और विकेंद्रीकरण सम्बन्धी निरन्तर उद्घोषणाएं की गई, गैर-कांग्रेसी राज्य सरकारों की आलोचना की गई, पर साथ ही कांग्रेस- शासित राज्य सरकारों को भी नहीं छोड़ा गया।वर्ष 1989 के चुनावों के पूर्व राष्ट्रीय मोर्चे ने अपने 71 सूत्री कार्यक्रम में विकेंद्रीयकरण व राज्यों की स्वायत्तता के प्रति निष्ठा प्रकट किया था। सत्ता में आने के उपरान्त राष्ट्रीय मोर्चे ने निस्सन्देह अन्तर्राज्यीय परिषद का गठन किया तथा राष्ट्रीय विकास परिषद का विस्तार किया, किन्तु राज्यपालों की नियुक्ति तथा भूमिका के बारे में मोर्चे ने भी चुप्पी साध ली। आन्तरिक कलहों व अन्य चुनौतियों से घिरा मोर्चा ज्यादा समय तक नहीं टिक सका और न ही संधीय प्रक्रिया में कोई सुधार करने हेतु अधिक समय निकाल सका।वर्ष 1991 में जब नरसिंह राव के प्रधानमंत्रित्व में कांग्रेस फिर सत्ता में आई तो इसने फिर से केंद्र की स्थिति को मजबूत

करने का प्रयास किया। राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप करना, राज्यपाल के पद का दुरूपयोग करना और राष्ट्रपति शासन लागू करना सामान्य निर्णय बन गई थी। इस प्रकार केंद्र की प्रवृत्ति राज्य के क्षेत्राधिकार, विशेषकर आर्थिक क्षेत्र में प्रवेश करने की रही है। भले ही केंद्र में सरकारें बदलती रहीं है, किन्तु संघवाद में केंद्रीयकरण की प्रवृत्ति में कोई कमी नहीं आई। वर्ष 1967-71 को छोड़कर, केन्द्र तथा राज्यों में भिन्न राजनीतिक दलों की सरकार थी तथा केन्द्रीय स्तर पर सरकार कमजोर तथा गुटबन्दी से ग्रस्त थी। भारत में केंद्रीयकरणश की प्रवृत्ति ही रही है। 1996 के चुनावों में जब केंद्र में किसी राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला तो क्षेत्रीय दलों ने न केवल अनेक राज्यों में सरकारें बनायी, बल्कि केंद्र में भी सरकार के अस्तित्व में इनकी भूमिका तथा हस्तक्षेप काफी बढ़ गया। भारत की संघीय पद्धति ने एक नवीन चरण में प्रवेश किया है, जिसे ष्सौदेबाजी का संघवादष की संज्ञा देना उचित होगा।ष 16 मई 1996 को अटल बिहारी बाजपेयी ने प्रधानमंत्री के रूप में शपथ लिया था जिनकी सरकार 13 दिन ही अस्तित्व में रही। 1 जनू, 1996 को जनता दल के नेता एचडी देवगौड़ा ने संयुक्त मोर्चा गठबंधन की सरकार गठित किया। फिर 18 महीने के बाद इन्द्र कुमार गुजराल 21 अप्रैल, 1997 को प्रधानमंत्री बने। पुनः 1998 में भाजपा के अटल बिहारी के नेतृत्व में गठबन्धन की सरकार बनी। वर्ष 1998 में वाजपेयी तीसरी बार प्रधानमंत्री बने। वर्ष 2004 में डा. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में कांग्रेस की कई राजनीतिक दलों के सहयोग से बनी, जिसमें पांच वर्षों के कार्यकाल से 2014 तक डा. मनमोहन सिंह (कांग्रेस) की अन्य राजनीतिक दलों की सरकार जरूर रहीं. परन्तु हमेशा से दुर्बल स्थिति का सामना करती रही। वर्ष 2014 में नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा की सरकार अन्य राजनीतिक दलों के साथ बनी जो 2019 में भी अस्तित्व में आई। इस काल में केन्द्र-राज्य के सम्बन्ध लगभग ठीक ही रहें तथा सहकारी संघवाद की बात की जाती रही। गठबन्धन की सरकार में विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति कायम रही है. हालांकि वर्ष 2019 के बाद भारत की संघवाद में केन्द्रीकरण बनाम सहकारी संघवादी प्रवृत्ति की चर्चा हो रही है। स्पष्टतः प्रारम्भ से ही भारतीय संघवाद का कार्यकरण परिवर्तित होता रहा है तथा नवीन प्रवृत्तियाँ भी दृष्टिगोचर होती रही हैं।

निष्कर्षः

प्रस्तुत शोध आलेख के अब तक के विवेचन से यह बिल्कुल स्पष्ट हो जा रहा है कि भारतीय संघवाद का स्वरूप परिवर्तित होता रहा है। भारत की राजनीतिक व्यवस्था तथा उनके कार्यकरण से संघवाद के स्वरूप में परिवर्तन आया है। भारतीय संविधान में भी अनेक ऐसे प्रावधान हैं, जिनमें संघ सरकार की स्थिति मजबूत होती रही है तथा राज्य सरकारों की स्थिति दुर्बल होती रही है। इसी कारण कई विद्वानों ने भारत में संपूर्ण में संघवाद स्वरूप को लेकर मतभेद दिखता हैं। भारतीय संविधान के विशेषज्ञ और 'भारतीय संविधानः एक परिचय' नाम की पुस्तक के लेखक डी.डी. बसु के द्वारा भारत में संघात्मकता और एकात्मकता का समीकरण बताया गया हैं। भारतीय संघवाद के कार्यकरण से एक बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि शुरू से ही इसमें केंद्रीकरण की प्रवृत्ति रही है, हालांकि वर्ष 1989 -90 के बाद बहुदलीय व्यवस्था में एक दलीय प्रभुत्व के स्थिति लगभग समाप्त हो गई है। भारत में गठबंधन की राजनीति और गठबंधन सरकार के सिलसिला में संघवाद के अंतर्गत सहकारी संघवाद की अपेक्षा की जा रही है। वर्ष 2014 में नरेंद्र मोदी के प्रधानमंत्री बनने के बाद भारत में राष्ट्रपति शासन यानी अनुच्छेद 356 के प्रयोग में कमी आई है। योजना आयोग को समाप्त करके नीति आयोग लाया गया है, जिसमें राज्यों को भी सदस्य बनाया गया है। स्पष्टतः भारतीय संघवाद सहकारी संघवाद की दिशा में धीरे-धीरे अग्रसर हो रही है।

ग्रंथ सूचीः

1. राओ के. सी. 1965, पार्लियामेंटरी डेमोक्रेसी ऑफ इंडिया अ क्रिटिकल कमेट्री, ड वर्ल्ड प्रेस, कलकत्ता।
2. व्हेयर के. सी., 1971, फेडरल गवर्नमेंट ऑक्फोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन।
3. बासु डी. डी. 1995, कस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया, प्रेंटिस हॉल ऑफ इंडिया दिल्ली।
4. प्रो. वैगना, डब्लू, टी., 1969, फेडरल स्टेटस एण्ड देयर जुडिसियरी, मोल्टन एण्ड कंपनी. यू. एस. ए।
5. कश्यप सुभाष त्ती., 1997, बिल्डिंग द फेडरल यूनियन, हमदर्द यूनिवर्सिटी मिनिओ।
6. ऑस्टिन जी. 1999, द इंडियन कस्टीट्यूशन, कॉर्नरस्टोन ऑफ अ नेशन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।
7. पायली एम. वी., 1997, भारतीय संविधान, यूनाइटेड बुक हाऊस, दिल्ली।
8. शर्मा हरिशचंद्र, 1982 भारत में राज्यों की राजनीति, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
9. नारंग ए. एस. 2021 भारतीय शासन और राजनीति, गीताञ्जली पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
10. जैन डा० पुखराज, 2022. भारतीये शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन, आगरा।
11. चक्रवर्ती विद्युत, 1990, सेंटर स्टेट रिलेशन इन इंडिया, सेगमेंट, दिल्ली।
12. गनी एच. ए.. 1990, सेंटर स्टेट रिलेशन एण्ड सरकारिया कमिशन, दीप एण्ड दीप, दिल्ली।

कार्ल मार्क्स के विचारों की प्रासंगिकता: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

महंथ माँझी

(शोध प्रज्ञ) राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

प्रो० (डॉ०) श्याम शंकर प्रसाद

(शोध पर्यवेक्षक) राजनीति विज्ञान विभाग, राजा सिंह कॉलेज, सिवान, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

शोध आलेख का सारतत्त्व:

समाजवाद एक आधुनिक, प्रगतिशील विचारधारा और व्यवस्था है, जिसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान कार्ल मार्क का है। कार्ल मार्क्स के पहले भी समाजवाद के अंतर्गत सेंड साइमन, थॉमस मूर, राबोट ओवन और हेनरी द रुबोय जैसे विचारकों का नाम लिया जा सकता है। कार्ल मार्क्स के बाद भी लेनिन, स्टालिन, माओ, ख्रुचचेव हैबरभास, एरिक फ्रॉम एंटोनियो ग्रामसी जैसे विचारकों का नाम समाजवादी सिद्धान्त के समर्थकों में लिया जा सकता हैं। स्पष्ट है कि समाजवाद की अवधारणा कार्ल मार्क्स से पहले तथा कार्ल मार्क्स बाद भी उपस्थित रहा है, तभी तो समाजवाद के कई रूप हैं: काल्पनिक समाजवाद, वैज्ञानिक समाजवाद, आधुनिक समाजवाद, लेनिनवाद, राज्य समाजवाद, श्रमिक संघवाद, यूरोपीय साम्यवाद, लोकतांत्रिक समाजवाद, नव मार्क्सवाद, माओवाद आदि। उसके बाद भी कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक समाजवाद ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है अथवा समाजवाद का बुनियादी सिद्धांत है। यह उल्लेखनीय है कि पूँजीवादी-उदारवादी विचारधारा और व्यवस्था के विरोध में कार्ल मार्क्स ने वैज्ञानिक समाजवाद का प्रतिपादन किया है. जिसका लक्ष्य व उद्देश्य एक तरफ शोषणकारी और विषमतामूलक समाज को समाप्त करना है तथा दूसरी तरफ शोषणविहीन, धर्मविहीन, राज्यविहीन व वर्गविहीन समाज को स्थापित करना है। कार्ल मार्क्स ने वैज्ञानिक समाजवाद के अन्तर्गत कई महत्वपूर्ण सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया है, जिनमें द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, ऐतिहासिक भौतिकवाद, वर्ग-संघर्ष सिद्धान्त, अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त, राज्य व शासन विषयक सिद्धान्तों को शामिल किया गया है। कार्ल मार्क्स ने अपने मित्र एंजिल्स के साथ मिलकर 1848 ई० में 'साम्यवादी घोषणा-पत्र को लिखा, उसी समय से पूँजीवादी प्रचार माध्यमों के द्वारा प्रासंगिकता को लेकर प्रश्न खड़ा किया जाता रहा है। वर्ष 1990-91 में पूर्व सोवियत संघ की साम्यवादी व्यवस्था के विघटनोपरान्त तो मार्क्सवादी विचारधारा तथा कार्ल मार्क्स के विचारों को अप्रासंगिक बताने का एक उदार-पूँजीवादी प्रयास ही चल रहा है।

प्रमुख शब्दावली: समाजवाद, काल्पनिक समाजवाद, आधुनिक समाजवाद, विकासवादी समाजवाद, समसामयिक समाजवाद, मार्क्सवाद, लोकतांत्रिक समाजवाद, यूरोपीय साम्यवाद, फेबियनवाद, श्रमिक संघवाद, नव मार्क्सवाद, सापेक्ष समानता, सामाजिक न्याय, प्राकृतिक न्याय, उदारवाद आदि।

प्रस्तावना:

कार्ल मार्क्स के विचारों की प्रासंगिकता अप्रासंगिकता के विश्लेषण से पूर्व संक्षिप्त रूप में उनके विचारों का प्रस्तुतीकरण अनिवार्य प्रतीत होता है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद कार्ल मार्क्स के दर्शन का आधार है। द्वन्द्ववाद का अंग्रेजी रूपान्तरण 'डायलेक्टिसिज्म' है, जो यूनानी भाषा के डायलोज से बना है। द्वन्द्ववाद का अर्थ होता है-बाद-विवाद करना। चूंकि वाद-विवाद में एक-दूसरे का विरोध होता है. इसलिए इसे द्वन्द्व का नाम दिया जाता है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद दो शब्दों के मेल से बना है- द्वन्द्वात्मक + भौतिकवाद। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का पहला शब्द 'द्वन्द्वात्मक' प्रक्रिया से सम्बन्धित है, जिससे सृष्टि की रचना होती है और दूसरा शब्द 'भौतिकवाद सृष्टि का मूल तत्त्व है। स्पष्ट है कि सृष्टि के मूल तत्त्व (भौतिक पदार्थ) को समझने के बाद ही द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया को समझा जा सकता है। कार्ल मार्क्स कहते हैं कि इस सृष्टि का मूल तत्त्व पदार्थ है, जो मूर्त है। इसी पदार्थ को मानने वाले सिद्धान्त को भौतिकवाद कहा जाता है। चूँकि भौतिक पदार्थ हमें दिखाई देते हैं. इसलिए

यह सत्य है, जो चीज हमें दिखाई नहीं देती, वह असत्य है। कार्ल मार्क्स द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की सहायता से समाजवाद को वैज्ञानिकत्ता प्रदान करते हैं और उसी की सहायता से इतिहास एवं सामाजिक विकास की वैज्ञानिक व्याख्या करता है, इसी को ऐतिहासिक भौतिकवाद या इतिहास की भौतिक व्याख्या का नाम दिया जाता है। ऐतिहासिक भौतिकवाद का अर्थ यह है कि तर्क द्वारा समझाये गये भौतिकवाद के सिद्धान्तों को समाज में लागू किया जाये।

आर्थिक नियतिवाद ऐतिहासिक भौतिकवाद का प्रमुख तत्त्व है। मनुष्य के तमाम कार्यों के पीछे आर्थिक तत्त्व मौजूद होते हैं। इतिहास की तमाम घटनाओं का निर्माण निश्चित रूप से उत्पादन प्रणाली के द्वारा निर्धारित होता है। कार्ल मार्क्स का मानना है कि इतिहास में जो भी परिवर्तन हुए हैं। उसके पीछे मनुष्य के आर्थिक क्रियाकलाप हैं तथा प्रत्येक देश की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व्यवस्थाएँ उत्पादन के साधनों द्वारा नियन्त्रित होती हैं। कार्ल मार्क्स के मतानुसार, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की तरह इतिहास की प्रत्येक अवस्था वर्ग संघर्ष का परिणाम है। इतिहास की प्रत्येक घटना एवं परिवर्तन का मूल आर्थिक शक्तियाँ हैं। उत्पादन प्रणाली के प्रत्येक परिवर्तन के साथ सामाजिक संगठन में भी परिवर्तन हुआ है। इतिहास की आर्थिक व्याख्या के आधार पर कार्ल मार्क्स कहते हैं कि समाज में सदा ही विरोधी वर्गों का अस्तित्व रहा है। एक वर्ग सर्वहारा होता है जिसके पास प्राइवेट प्रोपर्टी नहीं होती और न ही जीवनयापन के लिए निम्नतम साधन होते हैं। सर्वहारा वर्ग की संख्या समाज में बहुत ज्यादा होती है और यह वर्ग मेहनत के बल पर दो सूखी रोटी की जुगाड करता है। समाज में एक दूसरा वर्ग भी होता है जिसे कार्ल मार्क्स बुर्जुआ वर्ग कहते हैं। इसकी संख्या बहुत कम होती है और यह शारीरिक श्रम नहीं करने के बाद भी अय्याशी करता है। इस वर्ग का महान् गुण यह है कि यह दूसरे का शोषण करता है और अपनी प्राइवेट प्रोपर्टी को बढ़ाने के लिए तथा गरीबों की क्रान्ति दबाने के लिए विभिन्न प्रकार के षडयन्त्र करता है। दो वर्गों का अर्थ यह नहीं कि दोनों में युद्ध हो जाये। इसका व्यापक आशय है असन्तोष एवं रोष। ये असन्तोष की भावनाएँ धीरे-धीरे बढती जाती है, एक समय ऐसा आता है कि ये खूनी क्रान्ति का रूप भी धारण कर लेती हैं। कार्ल मार्क्स के अनुसार, विश्व का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास रहा है। वर्गों के स्वरूप में भले ही अन्तर हो, किन्तु एक वर्ग श्रेष्ठ होता है और दूसरा वर्ग भिन्न। एक वर्ग खून-पसीना एक करके मेहनत करता है और दूसरा वर्ग बगैर मेहनत किये हुए मुनाफा उठाता है। अब तक का सम्पूर्ण इतिहास गरीब और धनी, कुलीन और नीच, राजा और प्रजा, शोषक और शोषित अर्थात् दो विरोधी आर्थिक वर्गों का इतिहास रहा है।

कार्ल मार्क्स अपने अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त का प्रतिपादन करके यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि कैसे पूँजीवादी व्यवस्था में श्रमिकों का शोषण किया जाता है? कार्ल मार्क्स के अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त आवश्यकता, खर्च और माँग पर निर्भर करता है। कार्ल मार्क्स कहते हैं कि पूँजीवादी व्यवस्था में मजदूरों की मजदूरी इतनी कम होती है कि उससे उनका पेट नहीं भरता। इसलिए अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए उन्हें अतिरिक्त श्रम करना पड़ता है। इस तरह अतिरिक्त समय में श्रम करने से काम के घण्टे बढ़ जाते हैं। अतएव जितने अधिक समय तक मजदूर काम करते हैं. उनका लाभ पूँजीपतियों को मिलता जाता है और पूँजीपतियों की जेब भरती जाती है। कार्ल मार्क्स अपनी रचना टंसनम. च्तपबम दंक च्तवपिज में कहते हैं कि किसी वस्तु की कीमत उसमें लगने वाले श्रम के कारण होती है। जिस वस्तु पर जितना कम श्रम लगेगा, वह सस्ती होगी तथा जिस पर जितना अधिक श्रम लगेगा, वह महँगी होगी। दूसरे शब्दों में, वस्तु का मूल्य उसे प्राप्त करने के परिश्रम पर निर्भर करता है। माँग पर वस्तु का मूल्य निर्भर करता है। यदि वस्तु की माँग ज्यादा और पूर्ति कम होगी तो मूल्य का बढ़ना स्वाभाविक है। यदि वस्तु की माँग और पूर्ति बराबर होती है, तो उसका भी अतिरिक्त मूल्य निकलता है। इसी अतिरिक्त मूल्य को पूँजीपति हड़प लेता है। श्रभिक का श्रम तथा जिस कीमत पर वस्तु को बेचा जाता है. उसमें बहुत अन्तर होता है। इसी अन्तर को कार्ल मार्क्स आंतरिक्त मूल्य का नाम देते हैं। कार्ल मार्क्स के अनुसार, अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त इतिहास की आर्थिक व्याख्या के लिए धुरी की कील है, जो यह प्रदर्शित करता है कि किस तरह धन का वितरण सामाजिक ढाँचे को निश्चित करता है? इस अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त द्वारा कार्ल मार्क्स ने यह बताया है कि किस तरह श्रमिकों द्वारा पैसा पैदा किया जाता है और मालिक उन पैसों को कैसे चुराते हैं?

राज्य के परम्परागत सिद्धान्त का मानना है कि राज्य, व्यक्ति और समाज के लिए अनिवार्य है, इसके बगैर व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास असम्भव है और व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास का सम्बन्ध समाज से है। ऐसी स्थिति में पूरे समाज के विकास के लिए राज्य अनिवार्य संगठन है। परम्परागत सिद्धान्त के विपरीत कार्ल मार्क्स अपने राज्य सम्बन्धी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। कार्ल मार्क्स राज्य को पूँजीवादी षडयन्त्र का हथियार मानते हैं। कार्ल मार्क्स कहते हैं कि राज्य बुर्जुआ समाज का संगठन है जो सर्वहारा के अहित में और पूँजीपतियों के हित में काम करता है। राज्य के कार्य पक्षपातपूर्ण है, राज्य सर्वहारा

की आवाज को दबाता है। राज्य के इस विषमतापूर्ण व पक्षपातपूर्ण कार्यों के कारण कार्ल मार्क्स इसकी समाप्ति चाहते हैं। कार्ल मार्क्स के लिए राज्य एक स्वाभाविक समुदाय नहीं है, जैसा कि अरस्तू मानते हैं। कार्ल मार्क्स के अनुसार, राज्य का जन्म इतिहास की उस प्रक्रिया में होता है, जब समाज दो विरोधी गुटों में बँटा था, जिसके हित कभी परस्पर विरोधी होते हैं। दोनों गुटों के स्वार्थों में न कभी समन्वय हुआ है और न होगा।

कार्ल मार्क्स क्रान्ति एवं परिवर्तन सम्बन्धी सिद्धान्त का भी प्रतिपादन करते हैं। कार्ल मार्क्स का कहना है कि पूँजीवादी व्यवस्था का अन्त और साम्यवादी व्यवस्था का आगमन सुनिश्चित है। पूँजीवादी व्यवस्था में जितनी विषमताओं का समावेश होगा, गरीबों पर जितना अत्याचार होगा, साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना उतनी ही तेज गति से होगी। कार्ल मार्क्स का कहना है कि यह परिवर्तन शान्तिपूर्ण एवं क्रमिक न होकर एकाएक एवं हिंसक ढंग से होगा, जिसमें बहुत से लोग मारे जायेंगे। क्रान्ति के प्रथम चरण में भले ही मजदूर वर्ग को ज्यादा हानि हो, लेकिन उनकी विजय सुनिश्चित है। यहाँ कार्ल मार्क्स के कथन को दोहराया जा सकता है कि 'साम्यवादियों को अपने विचारों और उद्देश्यों को छिपाने से घृणा है, वे खुले तौर पर घोषणा करते हैं।"

कार्ल मार्क्स अपने वैज्ञानिक सिद्धान्त के प्रतिपादन के क्रम में नैतिक विचार श्अलगाव पर भी व्यापक चर्चा अपनी पुस्तक 'Das Capital' के अन्तर्गत "Faticism of Commoditics and Money" शीर्षक के अन्तर्गत करते हैं। कार्ल मार्क्स की अलगाव सम्बन्धी धारणा भी कम वैज्ञानिक नहीं है। उनके शब्दों में, "अलगाव स्वयं से, व्यक्ति से और समाज से, मानसिक रूप से अलग होने का नाम है। इसमें एक मजदूर काम तो शारीरिक रूप में करता है, पर मानसिक तौर पर अपने आप को उससे जोड़ नहीं पाता है। एक पूँजीपति सतही तौर पर कहने के लिए सम्पत्ति का मालिक होता है, लेकिन वास्तव में वह मानसिक तौर पर सम्पत्ति का गुलाम होता है। यह सम्पत्ति के लिए जीता है और सम्पत्ति के लिए मरता है, सम्पत्ति उसके व्यक्तित्व विकास के लिए नहीं होती। वह बगैर किसी लक्ष्य एवं उद्देश्य के सम्पत्ति का संग्रह करता जाता है, वह इसलिए जीता है कि सम्पत्ति सग्रह करें, न कि उसका सही उपयोग। स्पष्टत: कार्ल मार्क्स यह कहना चाहते हैं कि अलगाव एक बीमारी है जो अमीर-गरीब सबको हो सकती है। यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें व्यक्ति अपने आपको समाज से ही नहीं, बल्कि स्वयं से भी जोड नहीं पाता है। दूसरे शब्दों में, व्यक्ति के मन का शरीर से अलग हो जाना, व्यक्ति का समाज से अलग हो जाना ही अलगाव है। कार्ल मार्क्स के अलगाव सिद्धान्त को मानवीय धारणा के आधार पर समझा जा सकता है।

कार्ल मार्क्स के विचारों के संक्षिप्त अवलोकन से इनके प्रासंगिकता तथा अप्रासंगिकता के पक्ष दृष्टिगोचर होते हैं। कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक समाजवाद पदार्थ एवं यथार्थ पर आधारित है, जो स्वयं में विज्ञान है। विज्ञान की विशेषता होती है कि उसके महत्व में भले ही कमी आ सकती है, परन्तु वह समाप्त अथवा अप्रासंगिक नहीं हो सकता है। स्पष्ट है कि मार्क्स की प्रासंगिकता में कमी जरूर आई है, परन्तु विज्ञान पर आधारित होने के कारण उनकी प्रासंगिकता समाप्त नहीं हुई है। कार्ल मार्क्स का वैज्ञानिक द्वन्द्ववाद आज भी समाज के विश्लेषण का यथार्थपूर्ण व प्रासंगिक पद्धति है। ऐतिहासिक भौतिकवाद यानी इतिहास की आर्थिक व्याख्या का सिद्धान्त अन्य सभी प्रकार के सिद्धान्तों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। वर्ग-संघर्ष ही वर्तमान दुनिया की वास्तविकता है, भले ही वह जातिवादी नस्लवादी, क्षेत्रवादी, सम्प्रदायवादी तथा अन्य प्रकार के संघर्ष के रूप में दिख रहा है। मार्क्स के विचारों का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव ही कहा जायेगा कि राष्ट्रीय राजनीति में समानता, न्याय और कल्याण की बात कही जाती है। वस्तुत: लोक कल्याणकारी राज्य के अस्तित्व व कार्यकरण की पृष्ठभूमि में मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव परिलक्षित होता है। इतना ही नहीं, कार्ल मार्क्स के विवारों की प्रासंगिकता राज्य व समाज के वास्तविक स्वरूप के विश्लेषण भी दृष्टिगोचर होता है।

निष्कर्ष:

कार्ल मार्क्स के विचारों की प्रासंगिकता विशेषत: वर्ष 1990 के बाद का विश्लेषणात्मक अध्ययन शैक्षणिक दृष्टिकोण से ही नहीं. इतिहास सहित वर्तमान के यथार्थवादी अध्ययन के लिए भी अनिवार्य प्रतीत होता है। वर्ष 1990-91 में पूर्व सोवियत संघ की साम्यवादी व्यवस्था का अन्त हो गया. जिसे मार्क्सवादी विचारधारा का अन्त मान लिया गया तथा पूँजीवादी प्रचार माध्यमों में कार्ल मार्क्स के विचारों की प्रासंगिकता पर प्रश्न चिन्ह खड़ा कर दिया है। इसका स्पष्टीकरण और निष्पक्ष विश्लेषण आवश्यक प्रतीत होता है। इसलिए भी प्रस्तुत शीर्षक पर शोध आलेख अनिवार्य प्रतीत होता है। प्रस्तुत शोध आलेख का औचित्य आज उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण में मार्क्स के विचारों के यथार्थ अवलोकन तथा प्रासंगिकता अप्रासंगिकता के स्पष्टीकरण के परिप्रेक्ष्य में भी अनिवार्य प्रतीत होता है। आजकल कार्ल मार्क्स के विचारों का प्रभाव है कि दुनिया के देशों

में सामाजिक न्याय पर बल दिया जा रहा हैं तथा गरीब लोगों के एकजुटता से पूंजीवादी व्यवस्था कहीं ना कहीं अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष रूप में भयभीत दिखती है।

ग्रन्थ सूची:

1. सेबाइन जी० एच० 1973 ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटिकल थ्योरी, 4जी एडिशन, ऑक्सफोर्ड एण्ड एल० बी० एच, पब्लिशिंग, नई दिल्ली।
2. मैक्सी चेस्टर सी० रीप्रिन्ट 2021, पोलिटिकल फिलॉसफी, सुरजीत प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. डेविड मैक्लेवन, 2006. कार्ल मार्क्स ए बायोग्राफी (चौथा संस्करण हैम्पशायर, पालग्रेव मैकमिलन
4. मार्क्स कार्ले, 1848 कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो यू० एस० ए० पेंगुइन क्लासिक्स
5. मार्क्स कार्ल एण्ड फ्रेंडरिच एंगल्स, 1848 कम्युनिस्ट घोषणा पत्र, चार्ल्स एच कैर एण्ड कम्पनी, शिकागो, यू०एस०ए०।
6. ओलमैन बी०, 1991, मार्क्सवाद एक सामान्य परिचय, स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
7. गावा ओम प्रकाश, 2019 (नवीन संस्करण) पाश्चात्य राजनीति विचारक, नॉएडा, मयूर पेपर बैक्स।
8. मेहता जीवन, 2003, राजनीतिक चिन्तन का इतिहास, आगरा, साहित्य भवन पी०एण्ड०डी०।
9. मुखर्जी प्रो० सुब्रत एण्ड रामास्वामी डॉ० सुशीला, 1999, समाजवादी चिन्तन का इतिहास, नई दिल्ली, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।
10. परमार शुभ्रा 2019 आधुनिक राजनीतिक दर्शन, हैदराबाद (तेलंगाना) ओरियंट

डॉ० राम मनोहर लोहिया के राजनीतिक विचार: एक अवलोकन

राज कुमार

(शोध प्रज्ञ), राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

डॉ० अमृतंजय कुमार

(शोध पर्यवेक्षक) सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, महेंद्र महिला कॉलेज, गोपालगंज, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

शोध आलेख का सारतत्त्व :

डॉ. राम मनोहर लोहिया राजनीतिज्ञ, समाजवादी चिन्तक तथा राष्ट्रवादी नेता रहे हैं. जिन्होंने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया है तथा नेपाल और गोवा की स्वतंत्रता आन्दोलन में भी अपना योगदान दिया है। भारतीय राजनीति एवं समाज में सामाजिक न्याय के सशक्त प्रवक्ता के रूप में लोहिया का नाम अग्रणी है। लोहिया का समाजवाद भारतीय राजनीति को व्यवहारिक मार्गदर्शन करता रहा है।भारतीय समाज और राजनीति में व्याप्त सामाजिक विषमताओं ने डॉ. लोहिया के चिन्तन को बहुत ही प्रभावित किया। उनका समाजवादी चिन्तन देश-प्रेम तथा जन-कल्याण की भावनाओं से ओत-प्रोत है। वह न तो मार्क्स से पूर्णत: सहमत थे और न ही गांधी से। उनके दर्शन में एक प्रकार की ऐसी मौलिकता है जिसमें निर्भीकता एवं ईमानदारी की सोच मिलती है। उन्होंने भारत की दलित तथा पिछड़ी जातियों की स्थिति को भली-भाँति देखा तथा उनकी पीड़ाओं को महसूस किया तथा वह उनके कल्याण के प्रति प्रतिबद्ध हो गये। यही कारण है कि डॉ. लोहिया का समाजवादी चिन्तन, उनके मानववादी दृष्टिकोण की एक सशक्त अभिव्यक्ति हैं। डॉ. राम मनोहर लोहिया के राजनीतिक विचार महत्वपूर्ण है, जिनका प्रस्तुत शोध आलेख में एक अवलोकन अपेक्षित है।

प्रमुख शब्दावली: समाजवाद, जातिवाद, मानवतावाद, सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक उत्थान, राष्ट्रवाद, समाजीकरण, ध र्मनिरपेक्षता वामपंथी चिंतन आदि।

प्रस्तावना :

समाजवादी चिन्तन में आर्थिक तत्त्व सर्वाधिक प्रभावशाली होता है, पर डॉ. लोहिया के समाजवादी दर्शन में सामाजिक सांस्कृतिक एवं राजनीतिक तत्व भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। डॉ. लोहिया एक ऐसे समाज का निर्माण चाहते थे जो वर्ग-विहीन एवं वर्ण-विहीन हो। जाति-व्यवस्था के तो वह कार विरोधी थे। उन्होंने व्यक्ति के सांस्कृतिक उत्थान को भी आवश्यक बतलाया। उनके अनुसार, व्यक्ति और समाज परस्पर आश्रित होते हैं। व्यक्ति का उन्नयन सांस्कृतिक परिवर्तन के लिए आवश्यक है। डॉ. लोहिया का राजनीतिक चिन्तन बड़ा ही व्यापक है जिसमें व्यक्ति और समा: से संबंधित सभी पहलुओं पर विचार किया गया है। उनका राजनीतिक चिन्तन उनके समाजवादी दर्शन से ही उद्भुत हुआ है। उनके राजनीतिक चिन्तन के प्रमुख तत्त्व है- राजनीतिक इतिहास की समाजवादी व्याख्या, चौखम्भा-योजना, वाणी स्वतंत्रता एवं कर्म नियंत्रण, सविनय अवज्ञा (सिविल नाफरमानी) और व्यक्ति एवं समाज के परस्पर संबंध।

डॉ. लोहिया की दृष्टि से राजनीतिक इतिहास को गति देने वाले कुछ मौलिक सिद्धान्त होते हैं जिनमें तीन प्रमुख हैं- (1) देशों का उत्थान व पतन होता है, वैभव, घन का स्थान बदलता रहता है। देश के बाहरी संबंधों में उतार-चढ़ाव होता रहता है; (2) देश के अन्दर वर्ग- वर्ण का झूला झूलता रहता है; और (3) सभी देश शारीरिक एवं सांस्कृतिक ढंग से मिलन भी किया करते हैं। डॉ. लोहिया का इतिहास के चक्र-सिद्धान्त में विश्वास था। उन्होंने 'इतिहास- चक्र' नाम की पुस्तक भी लिखो। उनके अनुसार, इतिहास अबाध रूप से चक्रवत् गतिशील रहता है। उनकी मान्यता थी कि षविश्व के इतिहास को प्राचीन, मध्य और आधुनिक युगों में बांटना, उनमें एक अबाध या एक-एक कर हुआ उत्थान बताना एक सांस्कृतिक बर्बरता है जो किसी

प्रकार भी दिलचस्प नहीं है। "वैसे यह देखा जाता है कि समस्त सभ्यताओं में भाषा तथा आचरण और जीवन के ढंग एवं उद्देश्य बुनियादी तौर पर एक ही ढंग से विकसित एवं परिपक्व होते हैं, पर उनमें अनेक आर्थिक, सामाजिक तथा भौगोलिक कारणों से ऐसे बदलाव आते हैं, जिनसे उनके उत्थान-पतन की स्थितियाँ भिन्न हो जाती हैं। डॉ. लोहिया का विचार था कि ष्ऐतिहासिक समूहों के बारे में और मानव सभ्यता तथा उसके सांस्कृतिक क्रमों के लिए, यदि यह सच है कि 'जो जन्मा है वह मरेगा अवश्य', तो यह भी उतना ही सच है कि 'जो मरता है वह फिर पैदा होगा'।" अतः यह कहना उचित ही है कि राष्ट्रों और सभ्यताओं का उत्थान- पतन सदा होता रहता है जैसा कि हमें भारत में गुप्त साम्राज्य, रोमन साम्राज्य, ब्रिटिश साम्राज्य आदि के उत्थान-पतन से ज्ञात होता है।

राजनीतिक इतिहास की समाजवादी व्याख्या से डॉ. लोहिया का तात्पर्य यह था कि इतिहास-चक्र में सभी देशों का समान रूप में उत्थान-पतन होता है, चाहे कोई भी देश कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो। कोई देश हमेशा के लिए न तो वैभव, शक्ति और धनवान् होता है और न हमेशा के लिए उनसे रहित। भारत, रोम, चीन और अरब देश उच्चतम श्रेणी में रह चुके हैं, पर उनका भी पतन हुआ और पश्चिम योरोप ने शिखर स्थान को प्राप्त किया और यह महाद्वीपों में श्रेष्ठ गिना जाने लगा। इसलिए डॉ. लोहिया ने कहा था कि "शक्ति और समृद्धि हर युग में बराबर एक क्षेत्र से दूसरे में बदलती रही है। कोई भी सदा इतिहास की उच्चतम चोटी पर नहीं बैठा रहा। अब तक का समस्त मानव इतिहास वर्ग और वर्ण के आन्तरिक बदलाव और शक्ति तथा समृद्धि के एक क्षेत्र से दूसरे में बाह्य परिवर्तन का इतिहास रहा है।

डॉ. लोहिया की राजनीतिक इतिहास की समाजवादी व्याख्या में वर्ग और वर्ण का झूला भी झूलता रहता है। उन्होंने यह माना कि ये दोनों ही वर्ग तथा वर्ण सभी समाजों की विशेषताएँ हैं जो सभी जगह मिलती हैं। उन्होंने कहा कि "जन्मजात वर्गीकरण या धर्म द्वारा उसकी मान्यता वर्षों का आवश्यक गुण नहीं है। वर्ग से वर्ण की मित्रता उस स्थिरता से होती है जो वर्ग-संबंधों में आ जाती है, कोई व्यक्ति अपने से ऊँचे वर्ग में नहीं जा सकता और कोई भी वर्ण अपनी सामाजिक स्थिति और आमदनी में ऊपर नहीं उठ सकता। अस्थिर वर्ण को वर्ग कहते हैं। स्थायी वर्ग वर्ण कहलाते हैं। हर समाज या सभ्यता में वर्ग से वर्ण और वर्ण से वर्ग का बदलाव हुआ है। यही बदलाव लगभग सभी आन्तरिक घटनाओं को जड़ में होता है। यह करीब-करीब हमेशा ही न्याय और बराबरी की माँगों से प्रेरित होता है।" डॉ. लोहिया की दृष्टि में न्याय, समानता आदि की माँगें शून्य से उत्पन्न न होकर, वर्ग व वर्ण-संघर्ष के परिणाम हैं।

डॉ. लोहिया के अनुसार, भारत में भी वर्ग एवं वर्ण के बीच बदलाव, उतार-चढ़ाव की कथा अनवरत चलती रही। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि "आन्तरिक वर्ण-निर्माण और बाह्य अधःपतन साथ-साथ चलता है, चाहे दोनों के बीच काल का जो भी अन्तर रहे। पूरे समाज का बढ़ता कौशल निश्चित रूप से विभिन्न वर्गों के भीतरी हरकत व उतार-चढ़ाव के साथ जुड़ा हुआ है।" उन्होंने माना कि देश-काल की परिस्थिति के अनुसार वर्ग और वर्ण दोनों अपने स्वरूप एवं उद्देश्य में भिन्न होते हैं। विभिन्न देशों के वर्ण-निर्माण में भी अन्तर होता है। भारत में वर्ण-व्यवस्था का आधार प्रारम्भ में गुण-कर्म था और कालान्तर में इसका आधार जन्म हो गया। "भारत इतने समय तक वर्ण-व्यवस्था के फलस्वरूप तन्द्रा और सड़न की स्थिति में रहा कि उसकी नई प्राप्त शक्ति वर्षों को ढीला करके वर्गों में बदल रही है और आन्तरिक असमानता को समाप्त करने का संघर्ष प्रारम्भ हो गया है।" डॉ. लोहिया ने यह आशा व्यक्त की कि एक अन्य प्रकार की वर्ण-व्यवस्था पैदा हो सकती है जिसमें राजनीतिक दल, प्रबंधक वर्ग और स्वतंत्र-पेशा वर्ग सभी अपने उच्चतम स्थानों पर स्थिर हो जाएँ और बाकी बची आबादी निम्न स्तर के द्विज वर्षों में बंट जाये। नये वर्षों का निर्माण तो सदैव चलता रहता है। इस प्रकार डॉ. लोहिया का निष्कर्ष यह है- "अब तक का समस्त मानवीय इतिहास वर्गों और वर्षों के बीच आन्तरिक बदलाव, वर्गों की जकड़ से वर्ण बनाने और वर्षों के ढीले पड़ने से वर्ग बनने का ही इतिहास रहा है।

डॉ. लोहिया के राजनीतिक चिन्तन में चौखम्भा योजना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने न केवल आर्थिक, अपितु राजनीतिक विकेन्द्रीकरण को प्रमुख स्थान दिया। राजनीतिक विकेन्द्रीकरण राजनीतिक समता एवं सम्पन्नता का द्योतक है। वह राजनीतिक केन्द्रीकरण के विरुद्ध थे, क्योंकि ऐसी व्यवस्था में शासक, सेठ और सरकारी अधिकारियों के त्रिकोण का आधिपत्य हो जाता है। सामान्य व्यक्ति उत्पीड़न का शिकार होता रहता है। डॉ. लोहिया ने स्पष्टतः कहा कि राजनीतिक केन्द्रीकरण के कारण दिमाग जकड़ गये हैं। विचारों का स्थान प्रचारों ने ले लिया है..... आज विचार, शक्ति का गुलाम बन गया है। केन्द्रित शक्ति के कारण आम जनता शक्ति के हाथ में कठपुतली मात्र रहकर अपंग हो जाती है, जिससे प्रजातांत्रिक व्यवस्था का मूल उद्देश्य ही ध्वस्त हो जाता है। दो खम्भों केन्द्र एवं प्रान्त-वाली संघात्मक व्यवस्था को डॉ. लोहिया अपर्याप्त मानते थे। उनके अनुसार, "बड़ी

राजनीति देश के कूड़े को मुहारती है, छोटी राजनीति मोहल्ले अथवा गाँव के कूड़े को इसलिए उन्होंने अपनी चौखण्या-योजना के अन्तर्गत ग्राम, मण्डल, प्रान्त और केन्द्र इन चार समान प्रतिभा और सम्मान वाले खम्भों में शक्ति के विकेन्द्रीकरण का सुझाव दिया। यह केवल प्रशासन की व्यवस्था नहीं है, अपितु इनमें उत्पादन, स्वामित्व, व्यवस्था, कृषि-सुधार योजना, विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि का प्रबंधन भी सम्मिलित होगा। ये चारों स्तर स्वतंत्र एक दूसरे से संबंधित होंगे। डॉ. लोहिया ने कहा, "चौखम्भा राज्य की कल्पना में स्वावलम्बी गाँव ही नहीं, वरन् समझदार और जीवित गाँव की धारणा है। यद्यपि दोनों विचार अनेक स्थानों पर एक दूसरे से मिल जाते हैं। इस प्रकार डॉ. लोहिया चाहते कि देश में राजनीतिक एवं आर्थिक विकेन्द्रीकरण द्वारा ही नागरिकों को अपना स्थानीय शासन करने और संसाधन जुटाने से ही देश का उत्थान किया जा सकता है। विकेन्द्रीकरण से ही सभी नागरिक अपने भाग्य के निर्माता बन सकते हैं। चौखम्भा राज्य में ही सभी नागरिकों को प्रजातांत्रिक भागीदारी सम्भव हो सकेगी। 'वाणी-स्वतंत्रता और कर्म-नियंत्रण' का सिद्धान्त भी डॉ. लोहिया के राजनीति चिन्तन का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। यह प्रजातंत्र का आधार और व्यक्ति की प्रगति एवं स्वच्छन्दता का मार्ग है। उनके अनुसार, वाणी-स्वतंत्रता बिल्कुल स्वच्छन्द रहे, पर कर्मों को नियंत्रण में रखना आवश्यक है। उन्होंने कहा, "बोली की तो लम्बी बांह होनी चाहिए, खूब स्वतंत्र हो, जो भी बोलो, लेकिन जब कर्म करो तो बंधी हुई, संगठित, अनुशासित मुट्ठी होनी चाहिए। राजनीतिक दलों को, व्यक्तियों और समितियों को बोलने का पूर्ण अधिकार होना चाहिए, भले ही वे कुछ गलत बातें करें। बहुमत को चाहिए कि वह अल्पमत की बातें सुनें, उनके सुझावों की ओर ध्यान दे। केवल कार्यों के ऊपर ही प्रतिबंध रहना चाहिए, भाषण पर नहीं। वाणी की स्वतंत्रता का सशक्त प्रतिपादन करते हुए डॉ. लोहिया ने जनतांत्रिक देशों से आग्रह किया कि वे व्यक्ति को भाषण और अभिव्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता दें। ऐसा साम्यवादी देशों में संभव नहीं हो सकता, क्योंकि वहाँ सर्वहारा वर्ग की तानाशाही होती है। स्वतंत्रता के साथ-साथ डॉ. लोहिया ने कर्म-नियंत्रण की बात कही, वह महत्त्वपूर्ण है। कर्म-नियंत्रण को उन्होंने दो प्रकार से बतलाया-एक तो सिद्धान्त और विधान वर्जित कामों को न करें, और दूसरा सम्मेलन विधान द्वारा आदेशित कामों को करें। उनका यह भी कहना था कि झूठ और सच का निर्णय एक व्यक्ति या संस्था अथवा सरकार नहीं कर सकती। वह तो झूठ और सत्य के संघर्ष से और परस्पर आवागमन से निखरता है। उनके अनुसार, "झूठ बोलने का भी अधिकार है, क्योंकि झूठ क्या है, सच क्या है, इसका फैसला अगर कोई कार्य-कारिणी या सरकार करने बैठ जायेगी, तब तो फिर वाणी की स्वतंत्रता बिल्कुल खत्म हो जायेगी। "डॉ. लोहिया ने वाणी-स्वतंत्रता को दबाना एक जघन्य अपराध माना, हालांकि उन्होंने कर्मों पर नियंत्रण की बात को प्रजातांत्रिक प्रक्रिया का अनिवार्य अंग बताया। संक्षेप में डॉ. लोहिया ने वाणी-स्वतंत्रतां में प्रेस की स्वतंत्रता, भाषण की स्वतंत्रता, निजी भाषा की स्वतंत्रता आदि क्रियात्मक रूप से प्रयोग करने पर बल दिया। इन विचारों के अतिरिक्त डॉ. लोहिया के राजनीतिक चिन्तन में जन-शक्ति, सविनय अवज्ञा, व्यक्ति-समाज का परस्पर संबंध, धर्म तथा राजनीति और धर्म निरपेक्ष जैसे समसामयिक विचार भी सम्मिलित हैं जिनका यहाँ संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है-

डॉ. लोहिया प्रजातांत्रिक समाजवाद के एक सशक्त प्रवक्ता थे। यही कारण है कि उन्होंने जन-शक्ति का प्रबल समर्थन किया। जन-शक्ति से उनका तात्पर्य जन-इच्छा से था। यह वह जन- इच्छा है जो डॉ. लोहिया द्वारा अपनी पुस्तक 'सात क्रान्तियाँ' (1966) में प्रस्तावित सात क्रान्तियों से व्यक्त होती है अर्थात् यदि जन-इच्छा जागृत हो, तो इन सात क्रान्तियों का सूत्रपात हो सकता है:- नर-नारी की समानता के लिए, चमड़ी रंग पर रची असमानताओं के विरुद्ध; जन्मजात तथा जाति-प्रथा के खिलाफ; परदेशी गुलामी के खिलाफ एवं विश्व-लोक राज्य के लिए; निजी पूँजी को विषमताओं के खिलाफ तथा योजनाओं द्वारा उत्पादन बढ़ाने के लिए; निजी जीवन में अन्यायी हस्तक्षेप के खिलाफ; और अस्त्र-शस्त्र के खिलाफ तथा सत्याग्रह के लिए। डॉ. लोहिया के विचार से, राज्य को आन्तरिक एवं बाह्य दोनों मामलों में अपनी शक्ति का इस्तेमाल हमेशा जन-इच्छा की दृष्टि से विकास के हित में करना चाहिए, न कि उसका दमन करने के लिए। जन-शक्ति का समर्थन राजनीतिक सफलता की धुरी है। व्यवस्थापिका जन-इच्छा के दर्पण के रूप में काम करे और साथ ही, सम्पूर्ण कार्यों का उद्देश्य जनता की इच्छा को संगठित और अभिव्यक्त करना तथा यथासंभव राष्ट्रीय जीवन का पुनर्निर्माण होना चाहिए।

डॉ. लोहिया ने सविनय अवज्ञा (सिविल नाफरमानी) के सिद्धान्त का समर्थन किया। अन्याय का प्रतिकार दो रूपों- हिंसात्मक और अहिंसात्मक में सम्भव है। अन्याय के विरोध का अहिंसात्मक ढंग ही सत्याग्रह है। सविनय अवज्ञा इसका एक विशेष अंग है, जिसे डॉ. लोहिया ने 'सिविल नाफरमानी' का सिद्धान्त कहा है। इसका अर्थ है कि अन्यायी के प्रति सबल विरोध

, न कि उसके समक्ष झुकना । सिविल नाफरमानी करने वाला व्यक्ति न तो कमजोर होता है और न ही हिंसक। इसका अर्थ "मामूली इंसान की मामूली वीरता के साथ काम चलाना" है। अपने विचार को और स्पष्ट करते हुए, डॉ. लोहिया ने कहा, "सिविल नाफरमानी अथवा अन्याय से शान्तिपूर्वक लड़ना अपने आप में एक कर्तव्य है। कर्तव्य में आगा-पोछा या नफा-नुकसान नहीं देखा जाता....."। उनकी दृष्टि से, सविनय अवज्ञा का लक्ष्य मात्र अन्यायी के हृदय को ही परिवर्तित करना नहीं है, बल्कि असंख्य जन-समूह का हृदय बदलना भी उसका परम लक्ष्य है। कमजोर एवं असमर्थ व्यक्तियों को समर्थ बनाकर अन्याय, शोषण तथा दमन का मुकाबला करना, सविनय अवज्ञा का मूल आधार है। यह किसी को मारने का सिद्धान्त नहीं है। "मरेंगे मगर मानेंगे नहीं", "मारो अगर मार सकते हो लेकिन हम तो अपने हक पर अड़े रहेंगे", यह डॉ. लोहिया ने कहा उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि षसिविल नाफरमानी की सबसे बुनियादी बात यह है कि सच्चाई करोड़ों लोगों के अन्दर बैठने के लिए तपस्या और तकलीफ का सहारा ले। अन्य शब्दों में, डॉ. लोहिया के सिविल नाफरमानी अन्याय के प्रति लड़ने के लिए एक शाश्वत सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त तर्क और हथियार दोनों से सुसज्जित है। "सिविल नाफरमानी में तर्क और हथियार दोनों का मिश्रण है। इसमें एक ओर तो तर्क का माधुर्य है, दूसरी ओर हथियार का बल भी।" इस दृष्टि से, यह सिद्धान्त सर्वव्यापक है, जिसे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय अन्यायों को समाप्त करने के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है। भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान सिविल नाफरमानी का व्यापक इस्तेमाल किया गया था।

डॉ. लोहिया के राजनीतिक चिन्तन में व्यक्ति और समाज के संबंध का भी विवेचन मिलता है, पदार्थ तथा चौतन्य, सगुण एवं निर्गुण, धर्म तथा राजनीति, व्यक्ति और समाज को उन्होंने समदृष्टि से देखा, न कि द्वन्द्व के रूप में। उनकी दृष्टि में, विषय एवं प्रवृत्ति, व्यक्ति तथा समाज, रोटी और संस्कृति आदि के बीच माने गये अन्तर्निहित विरोधाभास नकली और अस्वाभाविक हैं। व्यक्ति और समाज में घनिष्ठ संबंध है। डॉ. लोहिया ने तो व्यक्ति और समाज को एक ही माना है। उन्होंने स्पष्ट किया कि व्यक्ति समाज से जन्मा है और समाज भी व्यक्ति से जन्मा है। जिस प्रकार व्यक्ति का विकास समाज द्वारा होता है, उसी प्रकार समाज का विकास व्यक्ति द्वारा होता है। व्यक्ति और समाज के रूप में मानव साध्य तथा साधन दोनों है जैसा कि डॉ. लोहिया ने कहा, "व्यक्ति एक साध्य और एक साधन दोनों है; एक साध्य के रूप में वह सबके प्रति प्रेम को अभिव्यक्ति करता है; एक साधन के रूप में, वह अन्याय (दमन) के विरुद्ध, क्रान्तिकारी क्रोध का उपकरण है।" इस प्रकार डॉ. लोहिया ने व्यक्ति और समाज के संबंध को इन्द्र के रूप में नहीं लिया, अपितु एक संतुलित सम्पूर्क रूप में समझा। उनका यह विचार उनके मानववादी चिन्तन से मेल खाता है।

धर्म और राजनीति का संबंध जितना ही प्राचीन है, उतना ही वह आधुनिक भी है। आज भारत में तो यह संबंध एक व्यापक चर्चा का विषय बना हुआ है। इस विषय पर डॉ. लोहिया के विचार बड़े ही रोचक और विस्मरणीय हैं। इन्हें स्पष्ट करने के लिए यहाँ उनके ईश्वर, धर्म तथा धर्म-निरपेक्ष राज्य संबंधी विचारों का विवेचन आवश्यक है। डॉ. लोहिया ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते थे। उनका विचार था कि मन्दिर एक ढकोसला है और उसमें विराजमान मूर्ति भी नकली है। उनकी दृष्टि में, ईश्वर ने मनुष्य को नहीं, अपितु मनुष्य ने ईश्वर को बनाया है और उसे एक प्रतीक के रूप में खड़ा कर दिया है। 58 यद्यपि वह ईश्वर को नहीं मानते थे, पर ब्रह्मज्ञान और अद्वैत जैसे नामों को उन्होंने अपने ही ढंग से स्वीकार किया। सब में अपनेपन की प्रतीति हो उनका ब्रह्मज्ञान और संसार की एकता एवं समता ही उनका अद्वैतवाद था। प्रत्येक कर्म में निष्ठा और ईमानदारी बरतना डॉ. लोहिया का कर्मकाण्ड था। स्पष्टत: वह ईश्वर, पूजा- पाठ, तीर्थ-स्थान, नरक स्वर्ग, मोक्ष आदि में विश्वास नहीं करते थे। उनके अनुसार, ये धर्म के विषय नहीं हैं। गिरे हुओं को उठाना, प्यासे को पानी देना, भूखे को रोटी और गृहहीन को निवास स्थान देना ही सच्चा धर्म है। विभिन्न मजहबों को उन्होंने धर्म नहीं माना, क्योंकि इन्होंने लोगों को हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई आदि में बांट दिया है। इनसे ऊपर उठकर अपनी दृष्टि को व्यापक बनाना चाहिए और निर्भय होकर मानव धर्म के सच्चे उपासक बनना चाहिए। डॉ. लोहिया की दृष्टि में, धर्म नैतिक गुणों का पर्यायवाची होना चाहिए, इससे अधिक कुछ नहीं। इसी अर्थ में वह केवल मानव धर्मानुयायी थे। डॉ. लोहिया, अपने तात्विक एवं धर्म संबंधी विचारों के अनुकूल, धर्म निरपेक्ष राज्य के समर्थक थे। वह इस बात से सहमत थे कि धर्म निरपेक्ष राज्य न धार्मिक होता है, न अधार्मिक और न धर्म का विरोधी। उन्होंने धार्मिक मामलों में निष्पक्षता और नागरिकों की धर्म प्रचार, विश्वास, पूजा आदि संबंधी स्वतंत्रता पर बल देते हुए कहा था, "राजनीति एक आश्वासन जरूर दे कि वह आस्तिकत्ता अथवा नास्तिकता के प्रचार में दण्ड का इस्तेमाल नहीं करेगी। डॉ. लोहिया ने मुस्लिम धर्म के नाम पर भारत-विभाजन का कड़ा विरोध किया था, क्योंकि वह धर्म निरपेक्ष राज्य की स्थापना के प्रबल समर्थक थे। भारत और पाकिस्तान-दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को उन्होंने कभी हृदय से स्वीकार नहीं किया।

निश्चय ही, डॉ. लोहिया मजहबों की लड़ाई और राजनीति से सहमत नहीं थे, क्यों इनसे साम्प्रदायिकता जैसी सामाजिक विषमता फैलती है और राजनीतिक कटुता पैदा होती है, जिनसे देश की प्रजातांत्रिक व्यवस्था का ह्रास होता है।

डॉ. लोहिया की दृष्टि से, धर्म मुख्यत: चार कार्य करता है- यह भिन्न धर्मों के बीच झगड़े और कभी-कभी रक्त-रंजित झगड़े उत्पन्न करता है; वह अपने-अपने धर्मानुसार प्रतिष्ठित सम्पत्ति, जाति तथा नारी संबंधी व्यवस्थाओं को यथावत् बनाये रखता है, फलत: शोषण एवं विषमता को स्थायित्व मिलता है। धर्म अच्चो व्यवहार के लिए नैतिक एवं सामाजिक प्रशिक्षण देता है। और अहिंसा, सत्य, दयालुता, न्याय, त्याग आदि के अभ्यास के द्वारा व्यक्ति को संयत और अनुशासित करने में वह महत्वपूर्ण योगदान देता है। डॉ. लोहिया ने धर्म के प्रथम दो कार्यों को हेय एवं त्याज्य बताया क्योंकि उनसे राजनीतिक कटुता, धर्मान्धता, साम्प्रदायिकता जैसी बातें बढ़घ्ती हैं और अन्तिम दो धर्म के काम मानवता के लिए अच्छे हैं। ये अत्यधिक लाभकारी हैं है डॉ. लोहिया की दृष्टि में, धर्म के इन दो प्रकार के कार्यों को राजनीति से जोड़ा जाना चाहिए। कोई समाजवादी, चाहे आस्तिक हो या नास्तिक, धर्म के इस पक्ष को अवश्य अपनायेगा। केवल उसी धर्म को राजनीति से जोड़ा जा सकता जो मानव कल्याण का मार्ग प्रशस्त करे। वह मानव धर्म हो हो सकता है जो राजनीति को बुराई एवं अन्याय से लड़ने के लिए प्रोत्साहित करे।

डॉ. लोहिया के विचार में धर्म एवं राजनीति में घनिष्ठ संबंध है। उन्होंने कहा कि धर्म का कार्य अच्छाई को करना है और राजनीति का कार्य बुराई से लड़ना है। धर्म सकारात्मक एवं दीर्घकालीन होता है, पर राजनीति नकारात्मक तथा अल्पकालीन होती है। धर्म का स्वरूप शान्त होता है, जबकि राजनीति का रौद्र। धर्म एवं राजनीति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अत: वे एक दूसरे को परिपक्व और पूर्ण बनाते हैं। डॉ. लोहिया की दृष्टि में धर्म आन्तरिक, सूक्ष्म एवं सच्चा है। दोनों अपृथक् हैं। इसी कारण उन्होंने धर्म को 'दीर्घकालीन राजनीति' और राजनीति को 'अल्पकालीन धर्म' कहा है। डॉ. लोहिया के अनुसार, अच्छाई करने और बुराई से लड़ने में अन्तर है। जब अधिक अन्तर बढ़ जाये तो वातावरण विषाक्त चन जाता है। प्रत्येक ध र्म राजनीति के बिना निर्जीव हो जाता है, क्योंकि बुराई से न लड़ने पर उसकी अच्छाई टिक नहीं पाती। इसी तरह बिना ध र्म के राजनीति झगड़ालू तथा कलहपूर्ण हो जाती है, क्योंकि अच्छाई न करने पर बुराई से लड़ना केवल कलह का कारण बनता है। डॉ. लोहिया के विचार से धर्म और राजनीति निष्ठा एवं ईमानदारी से मिलकर काम करें अर्थात् यदि एक अच्छाई करे और दूसरा बुराई से लड़े, तो मानव-कल्याण की गति एवं प्रगति अत्यधिक संतोषजनक होगी। इसलिए डॉ. लोहिया ने सचेत किया कि "धर्म और राजनीति के अविवेकी मिलन से दोनों भ्रष्ट होते हैं। संक्षेप में, धर्म एवं राजनीति दोनों एक दूसरे को अच्छाई करने और बुराई से लड़ने को सम्प्रेरित करते हैं।

डॉ. लोहिया के समाजबादी चिन्तन और सामाजिक तथा राजनीतिक विचारों की कड़ी में मौलिक अधिकारों का भी विशेष महत्त्व है। वह आदमी को केवल 'पेटू पशु' नहीं मानते थे। उसके मन और हृदय भी होता है। मानव के जीवन को सुसंस्कृत एवं गौरवमय बनाने के लिए, डॉ. लोहिया ने उन मौलिक अधिकारों का अनुमोदन किया जो लोकतांत्रिक समाजवादी जीवन के अनिवार्य अंग हैं। वह जीवन पर्यन्त इन अधिकारों के लिए संघर्ष करते रहे। राज्य मौलिक अधिकारों को जन्म नहीं देता, राज्य तो केवल इन अधिकारों को वास्तविकता और औचित्य प्रदान करता है। वे मानव के मूल स्वरूप से ही उद्भूत होते हैं। यहाँ उन मौलिक अधिकारों का एक संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है जिनका डॉ. लोहिया ने सबल समर्थन किया।सर्वप्रथम डॉ. लोहिया ने बौद्धिक स्वातंत्र्य के अधिकार का समर्थन किया। वह चिन्तन एवं अभिव्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता के पक्ष में थे। उन्होंने कहा, "इतना मैं साफ कह देना चाहता हूँ कि समाजवादी हिन्दुस्तान में किसी भी व्यक्ति की साहित्य या कला को अभिव्यक्ति किसों भी हालत में अपराध नहीं रहेगी और जिसे अश्लील वगैरह कहते हैं, उसके बारे में भी यही कहना चाहता हूँ। डॉ. लोहिया समाजवादी होते हुए, बौद्धिक स्वातंत्र्य पर साम्बवादो देशों द्वारा लगाए गये अंकुश के कट्टर आलोचक थे। साम्यवादी व्यवस्था इन्सान को मौलिक अधिग्रारों से बंचित रखती है। यह सम्पूर्ण मानव जाति के पतन का द्योतक है। संक्षेप में, डॉ. लोहिया ने श्वाणी-स्वतंत्रता और कर्म-नियंत्रण के सिद्धान्त द्वारा बौद्धिक स्वातंत्र्य के अधिकार का व्यापक अनुमोदन किया ।

डॉ. लोहिया अहिंसा तथा बौद्धिक स्वातंत्र्य दोनों में विश्वास करते थे। उनकी मान्यता थी कि किसी भी सरकार द्वारा निर्मित आत्याचारी एवं अन्यायी कानूनों का प्रतिरोध करने का अधिकार सभी नागरिकों को प्राप्त होना चाहिए। लेकिन ऐसा अहिंसात्मक तथा शान्तमय ढंग से होना चाहिए। यही कारण है कि डॉ. लोहिया ने सिविल नाफरमानी अथवा सविनय अवज्ञा के अधिकार का समर्थन किया। वह इसे मौलिक अधिकार मानते थे। साथ ही, उन्होंने एक ओर प्राण-दण्ड देने का विरोध किया, तो दूसरी

'आत्म हत्या' के अधिकार का समर्थन किया। कुछ लोग समाज पर अभिशप्त भार होते हैं, उन्हें जानबूझकर खत्म न किया जाये, बल्कि मानवीयता के आधार समाज स्वयं उन्हें मौन सधन्यवाद आत्म हत्या की अनुमति प्रदान करे। लेकिन डॉ. लोहिया ने प्राण-दण्ड देने का कड़ा विरोध किया, क्योंकि यह व्यक्तिगत जीवन की स्वतंत्रता के विरुद्ध है। वह किसी के व्यक्तिगत जीवन में कोई भी दखल पसन्द नहीं करते थे। उनकी मान्यता थी कि "हर व्यक्ति को एक हद तक अपने जीवन को अपने मन के मुताबिक चलाने का अधिकार होना चाहिए। उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता में अगाध आस्था थी।" जीवन में कुछ दायरे होने चाहिए कि जिनमें राज्य का, सरकार का, संगठन का, गिरोह का दखल न हो। बौद्धिक स्वतंत्र्य तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अनुरूप, डॉ. लोहिया ने धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार का भी समर्थन किया। वह जानते थे कि मजहबों के नाम पर परस्पर झगड़े-फसाद होते हैं, फिर भी नागरिकों को मंदिर-मस्जिद जाने, पूजा-पाठ करने और अन्त:करण की स्वतंत्रता होनी चाहिए। डॉ. लोहिया ईश्वर को नहीं मानते थे, मंदिर-मस्जिद में नहीं जाते थे और धर्माधारित साम्प्रदायिकता की आलोचना करते थे, फिर भी उन्होंने सभी नागरिकों की धार्मिक स्वतंत्रता का समर्थन किया। वह धर्म निरपेक्ष राज्य के पक्षधर थे। लेकिन नागरिकों के सम्पत्ति के अधिकार पर वह अंकुश तथा सीमा चाहते थे। यदि व्यक्तिगत सम्पत्ति शोषण एवं अन्याय का साधन बने, तो उसको सीमित कर देना ही अच्छा है। अपने नये एवं सच्चे समाजवाद की रूपरेखा में उन्होंने यह कल्पना की कि वह एक ओर तो कायदे-कानून ऐसे बनायेगा कि जिसमें सम्पत्ति लोगों की व्यक्तिगत न हो और दूसरी ओर इस तरह समाज के ढाँचे को बनायेगा, नाटक, किस्से या खेल-कूद या दर्शन या किताबें या उपन्यास ऐसे चलायेगा और बचपन से ही ऐसी शिक्षा देगा कि सम्पत्ति का मोह आदमी को न हो। वैसे सम्पत्ति रखने का मौलिक अधिकार सर्वमान्य है, पर डॉ. लोहिया ने सम्पत्ति द्वारा शोषण, अन्याय तथा भ्रष्टाचार होने वाली ज्यादतियों पर अंकुश लगाने के लिए उसे कानून द्वारा सीमित करने और स्वेच्छा से उसके प्रति स्वार्थ एवं मोह को समाप्त करने पर बल दिया। समता के अधिकार को डॉ. लोहिया ने सर्वाधिक महत्त्व दिया। भारतीय समाज में व्याप्त विषमताओं को समाप्त करने के लिए समता की भावना और व्यवहार को सर्वक्षेत्रीय बनाने में उन्होंने भारी योगदान किया। डॉ. लोहिया ने नर-नारी समता, जाति-उन्मूलन, रंग-भेद और छुआछूत की समाप्ति के लिए न केवल सिद्धान्त तथा कर्म प्रस्तुत किये, बल्कि व्यापक रूप में स्वयं संघर्ष भी किया। उन्होंने वैधानिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा ध ार्मिक सभी क्षेत्रों में समता के अधिकार का समर्थन किया। वह वैधानिक समता के अन्तर्गत विधि के समक्ष समानता, राजनीतिक समता के अन्तर्गत भेद-भाव रहित सार्वभौमिक मताधिकार, आर्थिक समता के अन्तर्गत समाजवाद की स्थापना और धार्मिक समता के लिए सहिष्णुता तथा धर्म-निरपेक्षता चाहते थे। उन्होंने स्पष्टत: कहा था कि "समता उसके सभी चार अर्थों में ग्रहण करनी चाहिए। समता का आदर्श भले ही कल्पना मात्र लगे, पर डॉ. लोहिया ने हृदय और मन से उसके लिए व्यापक संघर्ष किया और कहा कि ष्लोग पागलपन के काम करेंगे, यदि समता के लिए उनकी भूख शान्त नहीं की जाती है।श्श्मानव स्वातंत्र्य और उसके मूल अधिकारों को उन्होंने एकता को बुनियाद बतलाया। इसलिए उनका स्पष्ट कहना था कि ष्इसके अतिरिक्त, मानव अधिकारों का आनन्द, जो समस्त समता के आधार हैं, विक्षब्ध नहीं होना चाहिए।श्श इस प्रकार डॉ. लोहिया ने न केवल मौलिक अधिकारों, अपितु समस्त मानवाधिकारों को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक विकास के लिए अनिवार्य बतलाया। इन्हीं की प्राप्ति से व्यक्ति एवं समाज का जीवन उच्च और समृद्ध हो पायेगा।

डॉ. लोहिया भारत के ही नहीं, अपितु विश्व के मौलिक सामाजिक एवं राजनीतिक विचारकों में अपना प्रतिष्ठित स्थान रखते हैं। वह आधुनिक भारत के अग्रणी निर्माताओं की श्रेणी में आते हैं। वह अपने को देश-काल की सीमाओं से परे एक विश्व-नागरिक मानते थे। उनके समाजवादी दर्शन का स्वरूप विश्वव्यापी है। उनका चरित्र अन्तर्राष्ट्रीय है। इसका मुख्य कारण है कि डॉ. लोहिया ने एक सम्यक एवं व्यापक दृष्टिकोण अपनाया। उन्होंने मार्क्स या गांधी की नकल नहीं की, बल्कि स्वयं के स्वतंत्र चिन्तन से अपने कर्मठ व्यक्तित्त्व, सशक्त विचार और निष्ठायुक्त आचरण का निर्माण किया। वह राष्ट्रीय स्तर से ऊपर उठकर विश्व-व्यवस्था के विचार और संगठन को महत्त्व देते थे। अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में डॉ. लोहिया जिन सिद्धान्तों को प्रतिष्ठित करना चाहते थे, वे हैं- विश्व समाजवाद का नव-दर्शन, संयुक्त राष्ट्र संघ के पुनर्गठन का नया आधार अन्तर्राष्ट्रीय जाति-प्रथा का उन्मूलन, विश्व विकास समिति की पहल, विश्व-सरकार का स्वप्न, नि:शस्त्रीकरण का सशक्त प्रतिपादन, साक्षात्कार का सिद्धान्त और अन्तर्राष्ट्रीयवाद। डॉ. लोहिया ने जब यह देखा कि पूँजीवादी देशों के कारण समाजवाद की अन्तर्राष्ट्रीयता बिखर गई है, तब उन्होंने कहा कि योरोप का समाजवाद बहस तथा आँकड़ों तक सीमित है और वह किन्हीं बड़े आदर्शों की व्यावहारिकता के लिए प्रोत्साहित नहीं करता। इधर एशिया का समाजवाद आदर्शवादी एवं उत्साही है, पर उसमें ठोसपन का अभाव है। समाजवाद को साम्यवाद या पूँजीवाद का अंग नहीं बनने देना चाहिए। उन्होंने यह माना कि विश्व व्यवस्था की स्थापना के लिए साम्यवाद और पूँजीवाद दोनों ही अपर्याप्त हैं। ये दोनों ही आर्थिक एवं राजनीतिक केन्द्रीकरण के प्रतीक हैं।

डॉ. लोहिया के अनुसार "पूँजीवादी और साम्यवादी, दोनों ही व्यवस्थाओं में जन-संस्कृति स्थूल और रूढ़िग्रस्त होती जाती है, और जन-जीवन को एक भद्दापन घेर लेता है। उन्होंने यह स्पष्ट कहा कि "सारे मानवों को पेटभर अन्न", "मन की आजादी की प्यास" और "युद्धबन्दी" की तीन प्रमुख समस्याओं का समाधान न सोवियत गुट दे सकता है और न अमरीकी गुट। डॉ. लोहिया ने अपने विश्व-समाजवाद के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में समता, सम्पन्नता और विश्व-परिवार के विचार प्रस्तुत किये। वह विभिन्न गुटों के हानिकारक द्वन्द्वों को समाप्त कर 'अधिकतम कौशल' की जगह 'सम्पूर्ण कौशल' की सभ्यता को लाना चाहते थे, ताकि लोगों का जीवन स्तर मात्र राष्ट्रीय सीमाओं के अन्दर न बढ़कर, सभी राष्ट्रों में एक अच्छा जीवन स्तर हो। यह नयी सभ्यता मानव प्राणियों की समीपता स्थापित करेगी, और वर्ण, वर्ग तथा क्षेत्रीय विषमता का अन्त करने का प्रयत्न करेगी। विकेन्द्रित संस्थाएँ शासन चलायेंगी। मनुष्य समूह में और व्यक्तिगत रूप में अन्याय के विरुद्ध सविनय अवज्ञा का प्रयोग कर सकेगा। विश्व- व्यवस्था के अन्तर्गत सार्वभौमिक नागरिकता, मानवाधिकारों का संरक्षण, प्रजातांत्रिक प्रतिनिधित्व, श्रम की प्रतिष्ठा, समता और सम्मान सभी को सुलभ होंगे। विश्व की समाजवादी व्यवस्था में सच्चे समाजवादी की भूमिका को स्पष्ट करते हुए डॉ. लोहिया ने कहा था, "कोई भी समाजवादी नहीं है, जब तक कि वह समानत: सभी राष्ट्रों और सभी चमड़ीवालों के साथ स्वतंत्र, स्पष्ट और दोस्ताना नहीं है।

डॉ. लोहिया तीसरे खेमे, तृतीय सभ्यता अथवा नव-समाजवादी दर्शन के समर्थक थे। वह 'तटस्थ गुट' को मानते थे, जिसकी वास्तविकता समदृष्टि पर आधारित है। तटस्थ राज्यों की भूमिका, जैसा कि डॉ. लोहिया चाहते थे, निष्क्रिय, खोखली, सिद्धान्तहीन तथा भयातुर न होकर ठोस, सक्रिय, निर्भीक और सम्पूर्ण कौशल से युक्त होनी चाहिए। तटस्थ राष्ट्रों का मतलब रूसी और अमेरिकी खेमों के बीच झूलते रहना नहीं है, अपितु वे निस्वार्थ ढंग से अन्तर्राष्ट्रीय समता के व्यावहारिक दर्शन पर आधारित होगा, जिसे डॉ. लोहिया ने नव-समाजवादी दर्शन कहा और यह आशा प्रकट की कि साम्यवादी और पूँजीवादी गुट अपने द्वन्द्व भूलकर संभवत: उसी में समाहित हो जायेंगे। इसी से शक्तिपूर्ण संयुक्त राष्ट्रों के संघ का निर्माण होगा। अपने विश्व-समाजवादी विचार के अनुकूल ही, डॉ. लोहिया ने संयुक्त राष्ट्रसंघ के पुनर्गठन के आधार सुझाये। वह चाहते थे कि संयुक्त राष्ट्रसंघ राजनीति का अखाड़ा, जाति-प्रथा कागढ़, रंग-भेद का मंदिर, दवाव एवं दमन का केन्द्र न बने। उसका संगठन समता और द्वन्द्वरहित व्यवहार पर आधारित हो, सभी मानव जाति के दिल व दिमाग को स्वीकार्य हो, और वह राष्ट्रों के मध्य व्याप्त आर्थिक और सैनिक विषमताओं को समाप्त करे। साथ ही, डॉ. लोहिया ने यह कहा कि संयुक्त राष्ट्र संघ अन्तराष्ट्रीय जाति-प्रथा अर्थात् रंग-भेद और विशेषाधिकारों की नीति को समाप्त करने के लिए सम्यक् दृष्टि और विवेक बुद्धि से काम करने का प्रयास करे। इसका मुख्य लाभ यह होगा कि जाति-रंग-भेद की समाप्ति कर के मानव एकता और समता को बल मिलेगा। इसी क्रम में डा. लोहिया ने विश्व विकास समितियों की स्थापना पर बल दिया जो सहयोग और सद्भाव से काम करें, ताकि सभी राष्ट्रों की आर्थिक विपन्नता समाप्त हो सके। इसी प्रकार विश्व सरकार की स्थापना के स्वप्न को साकार बनाने के लिए उन्होंने राष्ट्रों में मतैक्य को आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने नि:शस्त्रीकरण का सशक्त समर्थन किया, ताकि विभिन्न देशों के बीच युद्ध न हों। अपने विश्व-व्यवस्था के चिन्तन के अन्तर्गत, डॉ. लोहिया ने श्साक्षात्कार के सिद्धान्तश का महत्त्व बतलाया और कहा कि इसकी दृष्टि से ष्हर काम का औचित्य स्वयं उसी में होता है और यहाँ अभी जो काम किया जाता है, उसका औचित्य सिद्ध करने के लिए बाद के किसी काम का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं।श्साक्षात्कार पद्धति के अनुसार, सभी के सामान्य लक्ष्य हों, परस्पर सहयोग और समझ हो, तो सभी कार्यों तथा परिणामों का औचित्य स्पष्ट हो सकेगा। अत: निरंकुशता, स्वेच्छाचारिता और अराजकता की स्थिति नहीं आ पायेगी।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि डॉ. लोहिया का विश्व-समाजवादी चिन्तने अन्तर्राष्ट्रीयवाद की भावना से ओतप्रोत है। इसका अर्थ है व्यक्ति अपने राष्ट्र के साथ-साथ अन्य राष्ट्रों से भी प्रेम करें। अन्तर्राष्ट्रीयवाद की भावना विश्व के राष्ट्रों के बीच शान्तिपूर्ण सहयोग और परस्पर सद्भाव की वृद्धि करती है। डॉ. लोहिया ने अन्तर्राष्ट्रीयवाद की भावना को समृद्ध बनाने के लिए, नवीन विश्व-व्यवस्था के सृजन हेतु, चार सूत्री योजना प्रस्तुत की- (1) एक देश की जो पूँजी आर्थिक शोषण के लिए लगी है उसे जब्त करना; (2) विश्व भर के लोगों को संसार में कहीं भी जाने और बसने का अधिकार हो; (3) विश्व के सभी राष्ट्रों की स्वतंत्रता कायम रहे; और (4) विश्व-नागरिकता का प्रावधान सबको सुलभ हो । साथ ही, डॉ. लोहिया ने अपने अन्तर्राष्ट्रीयवाद के विचार को साकार बनाने के लिए राष्ट्रों की सर्वांगीण समानता, जाति-प्रथा का उन्मूलन, रंग-भेद की नीति की समाप्ति और विश्व सरकार पर अत्यधिक बल दिया। उनकी दृष्टि से, ऐसी सम्पूर्ण विश्व व्यवस्था ग्राम, मण्डल,

प्रान्त, राष्ट्र और विश्व जैसे पाँच खम्भों पर निर्मित होगी। प्रत्येक स्तर के अधिकार एवं प्रतिनिधि समान रूप से काम करेंगे। विश्व-व्यवस्था की अपनी एक विश्व-संसद् दो सदनों वाली होगी जिसके अधीन प्रत्येक राष्ट्र की सेना पर अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण स्थापित किया जायेगा। डॉ. लोहिया के अन्तर्राष्ट्रीयवाद का स्वरूप सकारात्मक होगा और नि:शस्त्रीकरण का अनिवार्यत: पालन किया जायेगा। संक्षेप में, उनका अन्तर्राष्ट्रीयवाद सम्यक् दृष्टि, शान्ति और आशावाद का प्रतीक है।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. इन्दुमति केलकर, लोहिया: सिद्धान्त और कर्म, (नवहिन्द, हैदराबाद, 1963)।
2. राम मनोहर लोहिया, इतिहास-चक्र, (लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1990)।
3. ताराचन्द दीक्षित, डॉ. लोहिया का समाजवादी दर्शन, (लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1976)।
4. राम मनोहर लोहिया, द कास्ट सिस्टम (नवहिन्द, हैदराबाद, 1964)।
5. राजेन्द्र मोहन भटनागर, समग्र लोहिया, (किताब घर, दिल्ली, 1982)।
6. राम मनोहर लोहिया, मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, (नवहिन्द, हैदराबाद, 1963)।
7. राम मनोहर लोहिया, धर्म पर एक दृष्टि, (नवहिन्द हैदराबाद, 1966)।
8. रोम मनोहर लोहिया, कांचन-मुक्ति, (नवहिन्द, हैदराबाद, 1956)।
9. सोशलिस्ट पार्टी, सिद्धान्त और कार्यक्रम, जनवरी 1956।
10. राम मनोहर लोहिया, गिल्टी मैन ऑफ इन्डियाश ज पार्टीशन, (समता न्यास प्रकाशन, हैदराबाद, 1970)।
11. राम मनोहर लोहिया, सम-लक्ष्य समबोध, (समता न्यास प्रकाशन, हैदराबाद, 1969।

भारतीय संविधान की विशेषताएं: एक अवलोकन

प्रकाश जयंत

(शोध प्रज्ञ), राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

प्रो. (डॉ.) श्याम शंकर प्रसाद

(शोध पर्यवेक्षक) राजनीति विज्ञान विभाग, राजा सिंह कॉलेज, सिवान, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

शोध आलेख का सारतत्त्व :

भारत की राजनीतिक व्यवस्था और प्रशासनिक व्यवस्था एक - दूसरे से संबंधित है। भारतीय संविधान यहां की राजनीतिक प्रशासनिक व्यवस्था का संचालक है अर्थात इसी के प्रावधानों की अनुरूप भारत की राजनीतिक- प्रशासनिक ही नहीं, सम्पूर्ण व्यवस्था संचालित परिचालित, अनुशाषित, नियमित एवं नियंत्रित होती है। इसलिए भारतीय संविधान की सामान्य विशेषताओं का अवलोकन अनिवार्य प्रतीत होता है। इस विषय को शोध आलेख का महत्वपूर्ण विषय बनाया है।

प्रमुख शब्दावली: संविधान, प्रशासन, शासकीय अंग, संघवाद समाजवाद, लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, पंथनिरपेक्षता, न्यायिक पुनरावलोकन, संविधान संशोधन, न्यायिक सर्वोच्चता, संसदीय सर्वोच्चता आदि।

प्रस्तावना :

भारतीय संविधान का निर्माण एक विशेष संविधान सभा के द्वारा किया गया है और इस संविधान की अधिकांश बातें लिखित रूप में हैं। इस दृष्टिकोण से भारतीय संविधान, अमरीकी संविधान के समतुल्य है, जबकि ब्रिटेन और इजरायल का संविधान अलिखित है। भारतीय संविधान केवल एक संविधान नहीं है, वरन् देश की संवैधानिक और प्रशासनिक पद्धति के महत्त्वपूर्ण पहलुओं से संबंधित एक विस्तृत वैज्ञानिक संहिता भी है। भारतीय संविधान विश्व का सर्वाधिक व्यापक संविधान है, जो संविधान की संरचनात्मक विशेषता है। भारत के मूल संविधान में कुल 395 अनुच्छेद थे जो 22 भागों में विभाजित थे और इसमें 8 अनुसूचियाँ थीं। वर्तमान में बहुत से उपबंधों का निरसन करने के पश्चात् भी अनेक उपखण्डों के साथ 395 अनुच्छेद तथा 12 अनुसूचियाँ भी हैं। 1950-2014 के बीच की अवधि में बहुत से अनुच्छेदों का लोप कर दिया गया है। संविधान में कई अनुच्छेद और अनुसूचियाँ जोड़ी गई हैं अर्थात् अनुच्छेद 31 क-317, 35क, 39, 43क, 48, 51क, 131क, 134क, 139क, 144क, 224क, 233, 239, 239क, 239ख, 243क से 243 चछ तक, 244क, 257, 258, 290, 300क, 312क, 323क, 223ख, 350क, 350ख, 361ख, 361, 363क, 371-371झ, 372क, 378क, 349क; जबकि अमरीकी संविधान में केवल 7, कनाडा के संविधान में 147, अस्ट्रेलिया के संविधान में 128 और दक्षिण अफ्रीका के संविधान में 253 अनुच्छेद ही हैं।संविधान सभा द्वारा लगभग तीन वर्षों में निर्मित भारत का संविधान वर्तमान सदी की एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक घटना है। देश के संस्थापकों ने अनेक राजनीतिक अवरोधों को पार कर इस महान् कार्य का शुभारम्भ 9 दिसम्बर, 1946 को किया। "हम भारत के लोग" द्वारा निर्मित इस महान् अनुष्ठान की दो विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं। प्रथम, यह अनेकत्ता में एकता का प्रतीक है। "यद्यपि हमारा देश अनेक जातियों, प्रजातियों, भाषाओं, धमों और संस्कृतियों का संग्रहालय रहा है, इस ऐतिहासिक तथ्य के बावजूद इसमें विभिन्नता में एकता रही है। यहाँ राजनीतिक विभेदों के मध्य भी सामाजिक व सांस्कृतिक एकता रही है तथा इस राजनीतिक विभेदों ने एकता को कभी क्षति नहीं पहुँचायी है।" द्वितीय, भारतीय संविधान सभा एकमात्र आधार यन्त्र थी जो आत्म निर्णय के सिद्धान्त के अन्तर्गत ब्रिटिश व भारतीय जनता दोनों को मान्य थी। यह इस सिद्धान्त पर आधारित है कि संविधान भारतीय विचारधारा के अनुकूल, भारतीयों के लिए, भारतीयों द्वारा बनना चाहिए।

भारतीय संविधान की एक आधारभूत मान्यता धर्मनिरपेक्षता है। भारत प्रजातांत्रिक तथा धर्मनिरपेक्ष राज्य है। 42वें संविधान संशोधन, 1976 के द्वारा संविधान की प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा को प्रभावी बनाने के लिए पंथनिरपेक्षता शब्द का प्रयोग किया गया। धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा को भारतीय संविधान में बेहतर रूप में समझा जाए, उसके पूर्व इसके तात्पर्य को स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है। 'धर्म निरपेक्ष' (secular) शब्द का अर्थ उससे है, जो 'आध्यात्म से विलग हो,

धार्मिक या आध्यात्मिक विषयों से असम्बद्ध हो या कोई भी ऐसी वस्तु हो जो धार्मिक वस्तुओं से पृथक् हो या आध्यात्मिक या धर्म संबंधी मामलों के विपरीत सांसारिक हो।' ऐरिक एस० वाटरहाऊस के अनुसार, "धर्मनिरपेक्षवाद (Secularism) ध र्म द्वारा प्रस्तुत धारणाओं के विपरीत, जीवन व आचरण की धारणा का दर्शन है।" एक इंग्लिश शब्दकोश (A New English Dictionary) के अनुसार, 'धर्म निरपेक्षता से आशय धर्म के साथ किसी भी प्रकार के संबंधों से अभाव है।' धर्म निरपेक्ष साहित्य का तात्पर्य ऐसे साहित्य से है, जो धार्मिक उपासना से असंबंधित अथवा उसके प्रति असमर्पित हो, इसी प्रकार ध र्मनिरपेक्ष शिक्षा से तात्पर्य ऐसे पाठ्यक्रम से है, जिसमें धार्मिक शिक्षा न हो, और एक धर्म निरपेक्ष दृष्टिकोण वह है जहाँ सामान्य जन-जीवन के प्रमुख क्षेत्रों से धर्म को पृथक् करने की प्रगतिशील चेष्टा हो। सरल व सहज शब्दों में, "धर्मनिरपेक्षता का अभिप्राय राज्य व धर्म का पृथक्करण है।" स्पष्ट रूप में "यह विचार अपनी प्रवृत्ति से भौतिकवादी है और यह प्रतिपादित करता है कि मानव का विकास केवल भौतिक साधनों द्वारा संभव है।" स्मिथ ने इसको यह परिभाषा दी है, "धर्मनिरपेक्ष राज्य ऐसा राज्य है जो व्यक्तिगत व सामूहिक रूप से धर्म स्वतन्त्रता की सुरक्षा करता है, व्यक्ति को किसी धार्मिक भेदभाव के बिना एक नागरिक के रूप में देखता है, संवैधानिक दृष्टि से किसी धर्म विशेष से असंयुक्त रहता है। यह किसी धर्म के प्रसार में सहायक या बाधक नहीं होता। सूक्ष्म परीक्षण से यह देखा जा सकता है कि धर्मनिरपेक्ष राज्य की धारणा में तीन विभिन्न, परन्तु अन्त: सम्बन्धित सम्बन्धों के स्तर राज्य, धर्म एवं व्यक्ति निहित है।" धर्मनिरपेक्षवाद का विचार संविधान की आधार संरचना में देखा जा सकता है, जिसके प्राथमिक प्रमाण हमें प्रस्तावना में जिसका विस्तृत दिग्दर्शन समानता व धर्म संबंधी विभिन्न मौलिक अधिकारों के प्रावधानों में मिलता है। भारतीय संविधान में निहित धर्मनिरपेक्षवाद की धारणा उन सिद्धान्तों पर आध ारित है जिनका गाँधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस दल ने दृढ़ता से वरण किया। यह स्थिति दिखाती है कि भारतीय संविधान ने देश को विभाजित करने वाले जिन्ना के द्विराष्ट्रीय सिद्धान्त के पाप को धोने का सुन्दर आदर्श प्रस्तुत किया है। अस्तु, एक वरिष्ठ सदस्य अनन्तसायनम आयंगार ने 7 दिसम्बर, 1948 को संविधान सभा में कहा, श्हम राज्य को धर्मनिरपेक्ष बनाने के लिए कृत संकल्पित हैं। मेरा 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द से तात्पर्य किसी भी धर्म को न मानने और दैनिक जीवन में उससे कोई सम्बन्ध न रखने से नहीं है। इसका अर्थ केवल यह है कि राज्य या सरकार किसी भी धर्म की सहायता नहीं करेगी या किसी धर्म को अन्य वर्गों के विरुद्ध प्राथमिकता नहीं देगी। अत: शासन अपनी प्रकृति से पूर्णतया धर्मनरिपेक्ष ही रहेगा।'

संविधान की धर्मनिरपेक्षता के प्रमाण अग्रलिखित उपबन्धों में दृष्टिगोचर होते हैं: (1.) प्रस्तावना में कहा गया है कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है तथा यह सभी नागरिकों की विभिन्न स्वतन्त्रताओं (जैसे विश्वास, आस्था एवं उपासना की स्वतन्त्रता) के बारे में प्रतिभूत करता है। (2.) भारतीय संविधान के अनु० 14 के अनुसार, राज्य भारत की सीमाओं के अन्तर्गत किसी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता तथा कानून के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा। (3.) भारतीय संविधान के अनु० 15 के अनुसार, राज्य किसी व्यक्ति के साथ उसकी नस्ल, धर्म व जाति के आधार पर विभेद नहीं करेगा। आगे यह प्रावध ान भी किया गया है कि धर्म, जाति व नस्ल आदि के आधारों पर किसी भी नागरिक को दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, जलपानगृहों, मनोरंजन स्थलों आदि में प्रवेश करने पर या राज्य के कोष द्वारा आंशिक या पूर्ण रूप से सहायता प्राप्त, कुओं, तालाबों, सड़कों व सार्वजनिक विश्रामस्थलों के उपयोग पर कोई बाध्यता या अयोग्यता लागू नहीं की जा सकेगी। (4.) भारतीय संविधान के अनु० 16 के अनुसार किसी नागरिक को धर्म, जाति या नस्ल के आधार पर सार्वजनिक सेवाओं के लिए आयोग्य व अपात्र घोषित नहीं किया जाएगा और नहीं राज्य द्वारा आंशिक या पूर्ण रूप से सहायता प्राप्त किसी शैक्षिक संस्था में प्रवेश से वंचित किया जाएगा। (5.) भारतीय संविधान के अनु०-17 के अनुसार, छुआछूत समाप्त कर दी गई है और किसी भी रूप में इसका पालन वर्जित है। अस्पृश्यता के आधार पर किसी प्रकार की अयोग्यता को लागू करना कानून के अन्तर्गत दण्डनीय अपराध होगा। (6.) भारतीय संविधान के अनु० 25 के अनुसार, सभी व्यक्ति समान तौर से विश्वास या धर्म की स्वतंत्रता के अधिकारी हैं और उन्हें अपनी पसंद के किसी धर्म के पालन, आचरण, व शान्तिपूर्ण तरीकों से उसका प्रचार करने का अधि कार है। (7.)भारतीय संविधान के अनु० 26 के अनुसार, प्रत्येक श्रार्मिक समुदाय व उसका कोई सम्प्रदाय धर्म व कल्यण संबंध ी कार्यों के लिए अपनी संस्थाओं की स्थापना व संचालन करने का अधिकारी है व धार्मिक कार्यों को स्वयं संचालित करने, उसकी चल व अचल सम्पत्ति के स्वामित्व व अधिग्रहण करने तथा कानून के अनुसार अधिशासित करने के अधिकारी है। (8.) भारतीय संविधान के अनु० 27 के अनुसार, कोई व्यक्ति ऐसे करों का भुगतान करने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा जिनसे प्राप्त आय किसी विशेष धर्म या सम्प्रदाय की उन्नति या पोषण में व्यय करने के लिए विनियुक्त है। (9.) भारतीय संविधान अनु० 28 के अनुसार, राज्य द्वारा आंशिक या पूर्णरूप से सहायता प्राप्त किसी भी शिक्षा संस्थानों में धार्मिक शिक्षा अनिवार्य रूप से नहीं दी जाएगी। (10.) भारतीय संविधान के अनु० 29 के अनुसार, राज्य किसी समुदाय या सम्प्रदाय की

संस्तुति के अतिरिक्त उस पर अन्य संस्कृति नहीं थोपेगा और सभी समुदायों या सम्प्रदायों को स्वेच्छा से अपनी शिक्षण संस्था स्थापित करने व उन्हें संचालित करने का अधिकार होगा। शैक्षिक संस्थानों को अनुदान देने में राज्य किसी विद्यालय के प्रति इस आधार पर भेद नहीं करेगा कि वह संस्था किसी अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा चलाई जा रही है व किसों धार्मिक सम्प्रदाय के प्रबन्ध के अन्तर्गत है।भारतीय संविधान के इन सभी प्रावधान दृढ़तापूर्वक यह घोषित करते हैं कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है।

राजनीति के धर्म से ज्ञानत: विलग होने के सिद्धान्त पर भारतीय धर्मनिरपेक्षवाद आधारित है, फिर भी, गहन अध्ययन करने पर इसकी तीन महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती है: (1.) यह उदारवादी है, जबकि भारत एक मुख्यत: हिन्दू देश है, संविधान द्वारा सभी लोगों को न केवल धार्मिक स्वतंत्रता और समानता प्रदान की गई है, वरन् विभिन्न अल्पसंख्यक समुदायों के आवश्यक अधिकारों और विशेषाधिकारों को भी संरक्षित किया गया है। उदाहरण के लिए, अनु०-25 में यह कहा गया है कि व्यक्ति किसी धर्म का पालन या आचरण व उसका प्रचार कर सकता है। ईसाई समाज के लिए श्प्रचारश शब्द का बहुत महत्त्व है जो इसमें विश्वास रखते हैं। धर्मान्तरण के लिए मिशन द्वारा चलाए जाने वाले आन्दोलन राज्य द्वारा बाधित नहीं होंगे। अत: संविधान में यह स्वीकार कर लिया गया है कि जब तक धर्म, धर्म है, अपनी अन्तरात्मा की आवाज से धर्मान्तरण करने की मान्यता भी है।" इसी प्रकार, कृपाण का धारण करना व साथ रखना सिख धर्म के पालन का एक अंग माना जाएगा। (2.) भारतीय धर्मनिरपेक्षवाद निर्बाध नहीं है। धार्मिक स्वतंत्रता सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और जन स्वास्थ्य की दृष्टि से परिसीमित की जा सकती है। अनु०-25 के अनुसार, "सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता तथा जन-स्वास्थ्य के नियमों के अधीन रहते हुए सभी नागरिकों को अन्त:करण तथा धर्म को अबाध मानने, आचरण तथा प्रचार करने की पूर्ण स्वतन्त्र होगी।" अर्थात् भारतीय धर्म निरपेक्षवाद के सिद्धान्त में लोगों की बढ़ती सामाजिक व नैतिक जागरूकता के अनुसार परिवर्तन होना चाहिए। दूसरी ओर, यह निर्धारित करने का अधिकार न्यायपालिका पर छोड़ दिया गया है कि वह देखे कि राज्य द्वारा अनु०-25 के अनुसार आत्मा की स्वतंत्रता पर जो प्रतिबन्ध लगाए हैं वे संविधान में निहित धर्मनिरपेक्ष धारणा के अनुकूल है अथवा नहीं। भारतीय धर्मनिरपेक्षवाद धर्म को राज्य के क्षेत्र से पृथक् ही नहीं करता, वरन् साम्प्रदायिकता से मुकाबला करने के लिए वह आगे भी बढ़ा है। इसीलिए, भारतीय संविधान के अनु०17 द्वारा किसी भी प्रकार से अस्पृश्यता के आचरण पर पाबन्दी लगी है। इस उपलब्धि को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए 1955 में सरकार द्वारा अस्पृश्यता अपराध अधिनियम (Untouchability Offences Act) बनाया गया। यद्यपि संविधान या किसी अधिनियम में कहीं भी 'अस्पृश्यता' शब्द की व्याख्या नहीं की गई है, फिर भी सामान्य तौर पर इस शब्द का आशय ऐसी सामाजिक परम्परा से हैं, जिनमें कुछ दलित वगों को उनके जन्म के आधार पर नीचा देखा जाता है और उन्हें तथाकथित ऊँची जातियों या वगों से किसी प्रकार के सम्बन्ध रखने से वंचित किया जाता है।" इस अधिनियम के अन्तर्गत अस्पृश्यता का व्यवहार अग्रलिखित स्थितियों में माना जाता है, जैसे सार्वजनिक संस्थाओं में किसी के प्रवेश पर निषेध, सार्वजनिक पूजागृहों में पूजा या प्रार्थना करने से किसी को रोकना, और किसी व्यक्ति को किसी दुकान, सार्वजनिक भोजनालय, होटल या मनोरंजन केन्द्र में जाने से रोकना। इस कानून के अनुसार, अस्पृश्यता को एक दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया गया है। इस गतिशील धर्मनिरपेक्षतावादी व्यवस्था के कारण भारत में न केवल सार्वजनिक संस्थाओं के प्रवेश में पिछड़े व दलित वर्गों के लोगों के लिए विशेष स्थानों को सुरक्षित रखा जाता है, वरन् सार्वजनिक नौकरियों व निर्वाचन में भी स्थान सुरक्षित कर दिए जाते हैं। भारत में कमजोर वर्गों के विकास के लिए विशेष सुविधायें दी जाती है। केन्द्रीय व राज्यों के मन्त्रिमण्डलों में अल्पसंख्यक समुदाय को उचित प्रतिनिधित्व दिया जाता है। हमारे देश की व्यवस्थापिका सभाओं व न्यायिक संस्थाओं में भी इसी प्रवृत्ति का पालन होता है। भारतीय धर्म-निरपेक्षवाद का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि हमारे धर्मनिरपेक्षवाद का नमुना मध्य युग में पाए जाने वाले सनातनी नमूने से भिन्न है अर्थात् हमारी व्यवस्था किसी ऐसे नमूने से बहुत भिन्न है जिसमें राज्य सभी धर्मों के प्रति पूर्णतया तटस्थता व निष्पक्षता का दृष्टिकोण रखता है। पुराने विचारों के अनुसार, एक धर्मनिरपेक्ष राज्य इस विचार पर अधारित है कि 'व्यक्ति और भगवान का संबंध व्यक्तिगत अन्तरात्मा का मामला है।' पाश्चात्य विचारक जो धर्मनिरपेक्षवाद को मध्यकालीन चश्मे से देखते हैं, भारतीय धर्मनिरपेक्षवाद की वास्तविक प्रकृति को समझने में असफल रहे हैं। इसलिए, वे भारत को 'एक विशुद्ध धर्मनिरपेक्ष राज्य नहीं मानते हैं। अन्त में, भारतीय धर्मनिरपेक्षवाद प्रगतिशील राष्ट्र की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए एक गतिशील व्यवस्था है। यह सामान्य काल में, न केवल धर्म और राजनीति को एक दूसरे से विलग रखती है, बल्कि असाधारण परिस्थितियों में सामाजिक सुधारों की आवश्यकता के लिए घर्म को राजनीति के आधीन भी बना देती है। संविधान साम्प्रदायिकता का हर स्तर पर, चाहे वह धार्मिक, जातिगत या प्रजातिगत या अन्य किसी रूप में हो, मुकाबला करने में सक्षम है। भारत की धर्मनिरपेक्षता के प्रगतिशील व

गतिशील रुझान के प्रति सदस्यों द्वारा व्यक्त संदेह व भय को निराधार बताते हुए डॉ० अम्बेडकर ने संविधान सभा में बड़ी स्पष्टता से कहा कि ष्यह किसी के लिए सोचना असंभव है कि किसी सम्प्रदाय के निजी कानून राज्य के अधिकारक्षेत्र से बाहर होंगे। अतः राज्य का कोई समुदाय यह न सोचे कि वह संसद की सम्प्रभु सत्ता की सीमा से बाहर है।"

भारतीय संविधान की एक प्रमुख संरचनात्मक एवं प्रक्रियात्मक विशेषता संविधान संशोधन है, जो भाग 20, अनुच्छेद 368 में उपबंधित है तथा संविधान को जीवंत बनाए रखने के लिए आवश्यक है। भारत के संविधान-निर्माता भी लार्ड मैकाले के इस सिद्धान्त से अनुप्रेरित थे कि संविधान इतना लचीला होना चाहिए कि वह समय के अनुरूप परिवर्तित हो सके, न कि वह इतना कठोर हो कि क्रांति द्वारा अपने विध्वंस को बुलावा दे। उपर्युक्त धारणा डॉ० पी०एस० देशमुख के इन शब्दों में भली भांति अभिव्यक्त हुई है, "यदि आप हवा या तूफान को निकालने के लिए उपयुक्त निकास या सुरक्षा यन्त्र नहीं बनाएँगे तो संभव है कि पूरा जहाज ही नष्ट हो जाए।" संविधान-निर्माताओं के सामने यह समस्या थी कि एक और वे संविधान संशोधन की ऐसी प्रक्रिया निर्धारित करना चाहते थे जिससे संविधान के संघीय उपबन्धों को तुलनात्मक स्थायित्व मिल सके और दूसरी ओर वे यह भी चाहते थे कि संविधान में नई परिस्थितियों के अनुरूप सुधार व विकास की संभावनाएँ बनी रहें।" संविधान निर्माताओं की वास्तविक चिन्ता एक सजीव व लचीली संघीय व्यवस्था की संरचना के अनुरूप एक ऐसे वैज्ञानिक फार्मूला को बनाने की थी जो एक सावयवी जनता के जीवन के विकास में बाधक न बन सके। इसी कारण भारतीय संविधान एकात्मक और संघात्मक राज्यों के व्यावहारिक सम्मिश्रण का प्रतिनिधित्व करता है। जब इसका प्रयोग संवैधानिक संशोधनों के सन्दर्भ में किया जाता है, तो इसका अर्थ बहुत अंशों में प्राविधिक के साथ-साथ विस्तृत भी हो जाता है। अतः, संशोधन करने वाला कोई प्रयास परिवर्द्धन या सूक्ष्मीकरण का रूप ले सकता है। संविधान के सन्दर्भ में संशोधन शब्द का श्प्रयोग विभिन्न आशयों की अभिव्यक्ति करता है, जैसे संविधान के उपबन्धों में परिवर्तन, पुनर्विचार, निरसन, परिवर्द्धन, अनेकीकरण या निष्कासन आदि।" पारम्परिक दृष्टि से संविधान में संशोधन प्रक्रिया से लिया जाने वाला प्रत्येक परिवर्तन संशोधन ही माना जाता है। ष्यह यथासंभव विस्तृत अर्थों में प्रयोग किया जाता है। "एक विख्यात अंग्रेज लेखक ने तो यहाँ तक कहा है कि संशोधन का तात्पर्य, विघटन और पुनर्निर्माण से है।" 'संविधान के संशोधन' शब्द का आशय वृहद् व संकीर्ण दोनों रूपों में लिया जा सकता है, इसका आशय प्राविधिक एवं सामान्य अर्थ से भी है। निःसंदेह 'संशोधन' शब्द की उपयुक्त व सार्वभौम मान्य परिभाषा करना एक दुष्कर कार्य है, क्योंकि एक राजनीतिक विचारक या संवैधानिक न्यायविद का मस्तिष्क कानून व न्याय की विभिन्न प्रतिरोध ी शक्तियों से परिचालित होता है। इन बाधाओं को दृष्टिगत रखते हुए एक न्यायविद् ने कहा है कि 'संशोधन' शब्द किसी कला की अवधारणा नहीं है। इसने कोई उपयुक्त व निश्चित वैधानिक अर्थ नहीं पाया है। यह एक जटिल पदबंध है तथा लचीले अर्थों वाला शब्द भी है।" पालकीवाला ने 'संशोधन' शब्द के तीन प्रमुख लक्ष्य बताये हैं (i) पहले से उत्तम या विकसित करना या भूलों का परिमार्जन करना, (ii) ऐसा परिवर्तन जिनसे आलेख में चाहे आवश्यक परिवर्तन न हो, परन्तु इससे आलेख के आधार लक्षणों में विघटन नहीं होता हो: या (iii) कोई भी आवश्यकतानुसार परिवर्तन। राजनीतिक विचारकों का एक समूह यह मानता है कि संविधान के संशोधन करने का अधिकार सीमित होना चाहिए, जिससे सत्ताधारी लोग देश की विधि से खिलवाड़ न कर सकें। संविधान एक पवित्र आलेख है और सरकार को उसकी संरचना में मनचाहे परिवर्तन करने का अधि कार नहीं होना चाहिए। अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार, "संविधान एक अस्थायी कानूनों की संहिता नहीं है, वरन् वह सरकार की संरचना और आधार सिद्धान्तों का मूर्तरूप है। संशोधन से किसी संविधान के उद्देश्यों व स्वरूपों को पूर्णतया परिवर्तित नहीं होना चाहिए; उसके दोषों का परिहार हो सकता है पर संविधान का मूल स्वरूप बना रहना चाहिए।" भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने भी बहुचर्चित गोलकनाथ विवाद, 1967 ई० में इसी विचार का समर्थन किया कि जहाँ तक तृतीय भाग का सम्बन्ध है, "संसद मौलिक अधिकारों के क्षेत्र को प्रतिबन्धित अथवा समाप्त करने के लिए कोई परिवर्तन नहीं कर सकती।" मुख्य न्यायाधीश के० सुच्चाराव के अनुसार, "संसद संशोधन के माध्यम से संविधान की आधार संरचना को नष्ट नहीं कर सकती।" "वर्ष 1973 में सर्वोच्च न्यायालय ने मौलिक अधिकारों वाले विवादों (Fundamental Rights Cases) में यह निर्णय दिया कि संसद कोई ऐसा संशोधन नहीं कर सकती, जिनसे संविधान की आधार संरचना (Basic Structure of the Constitution) ही नष्ट हो जाए। भारतीय संविधान में संवैधानिक संशोधनों की प्रक्रिया का सूक्ष्म अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उसमें प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से कुछ प्रतिबन्ध लगाए गए हैं। कुछ स्पष्ट प्रतिबन्धों का वर्णन तो संविधान में ही कर दिया जाता है, जैसे फ्रांस के पंचम गणराज्य के संविधान (1958) में यह स्पष्ट तौर से वर्णित है कि शासन के गणतंत्रात्मक स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता (अनु०-98) या जब देश की क्षेत्रीय अखण्डता वाह्य आक्रमण के खतरे से प्रभावित हो तो संविधान संशोधन का विधेयक प्रस्तुत नहीं किया जा सकता (अन०-79)। भारत के संविधान में भी अनु० 368 के

अनुसार, संविधान में किसी परिवर्तन के लिए संशोधन की एक निश्चित प्रक्रिया की व्यवस्था है। इसी प्रकार, अनु० 13 (2) की भाषा बहुत स्पष्ट है कि राज्य ऐसा कानून नहीं बना सकता जो मौलिक अधिकारों के विरुद्ध हो। इस स्पष्ट संवैधानिक व्यवस्था के अतिरिक्त संविधान के विशेष उपबन्धों में कुछ स्वाभाविक प्रतिबंध निहित हैं। उदाहरण के लिए, राज्य कानून की सत्ता द्वारा किसी भी व्यक्तिगत सम्पत्ति का अनिवार्य अधिग्रहण, सार्वजनिक हित के उद्देश्य से वह मुआवजे के स्पष्ट प्रावधानों के पालन के साथ कर सकता है। स्पष्टतः राज्य संशोधन के नाम पर संविधान के साथ धोखाधड़ी नहीं कर सकता। इतना ही नहीं, संविधान एक पूर्ण सावयव इकाई है तथा उसके एक भाग में परिवर्तन अनिवार्य रूप से उसके दूसरे भाग को प्रभावित करता है। अतः राज्य को संविधान के किसी भाग को उस सीमा तक परिवर्तित करने का अधिकार नहीं है कि संविधान अपनी विशिष्ट स्थिति ही खो दे।" संवैधानिक संशोधन का क्षेत्र कुछ उपलक्षित एवं निहित सीमाओं या प्रतिबन्धों से युक्त होता है। इस संबंध में पालकीवाला ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि एक निहित प्रतिबन्ध (inherent limitation) वह है जो सत्ता के एक स्थायी व अभिन्न अंग के रूप में अवस्थित है और जो उस सत्ता के स्वभाव व संगठन में से उपजता है जिसे शक्तियाँ दी गई हैं। एक उपलक्षित प्रतिबन्ध (implied limitation) वह है, जो सत्ता के अभिन्न अंग के रूप में किसी योजना में अन्तर्निहित है। संविधान संशोधन की अभिव्यक्ति और निहित शक्ति को ध्यान में रखते हुए पालकीवाला ने 'नियंत्रित' संविधान के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, जबकि अनियंत्रित संविधान (uncontrolled constitution) संसद को संविधान के किसी भी भाग को संशोधित करने का असीमित अधिकार देता है, नियन्त्रित संविधान (controlled constitution) में संसद जो स्वयं संविधान द्वारा निर्मित है, को संविधान की सर्वोच्चता पर अपना प्राधिकार लादने का अधिकार नहीं है। इस संवैधानिक न्यायविद् के अनुसार, भारतीय संविधान के कुछ आवश्यक तत्त्व हैं, जिन्हें संसद संशोधन के बहाने परिवर्तित अथवा नष्ट नहीं कर सकती। यह तत्त्व हैं-संविधान की सर्वोच्चता, भारत की सम्प्रभुत्ता, देश की अखण्डता, शासन का गणतन्त्रीय स्वरूप, प्रजातान्त्रिक जीवन पद्धति, धर्म निरपेक्षता, स्वतन्त्र और स्वायत न्यायपालिका, केन्द्रीकरण एवं विकेन्द्रीकरण के समन्वय, भारत संघ व राज्यों की द्वैध संरचना, सरकार के तीनों अंगों में संतुलन तथा अनु०-368 के अन्तर्गत संविधान की संशोधन प्रक्रिया।

उपर्युक्त आधार पर पालकीवाला ने यह निष्कर्ष निकाला है कि शतार्किक दृष्टि से, संविधान में संशोधन करने की अधिकार सीमा यह होनी चाहिए कि इस संशोधन प्रक्रिया के माध्यम से संविधान का स्वरूप ही नष्ट हो जाए। भारतीय संविधान संशोधन की प्रक्रिया, जो कई महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में अधूरी है, संघात्मक या एकात्मक राज्य के शास्त्रीय सिद्धान्तों के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए नहीं बनाई गई, वरन् वह भारत की तत्कालीन राजनीतिक व सामाजिक परिस्थितियों तथा भारतीय जनता की सामान्य आकांक्षाओं के अनुकूल बनाई गई है। संविधान के जनक इस धारणा से निर्देशित थे कि संविधान जैसे मौलिक आलेख को इतना मूलभूत व तीव्र परिवर्तनकारी नहीं होना चाहिए कि सामान्य जन की आस्था खण्डित हो जाए और न ही उसका कोई भाग इतना विघ्न डालने वाला हो, जो समय के दबाव के कारण अपने ही नाश का कारण बन जाए। जहाँ तक औपचारिक संघात्मक संरचना का सम्बन्ध है, इन्हीं उपर्युक्त कारणों से संविधान को एक लचीली प्रकृति दी गई है, जिसमें कहीं-कहीं कठोर संविधान के भी स्पर्श हैं। डॉ० अम्बेडकर ने कहा कि, "संविधान संशोधन की इससे ज्यादा सरल पद्धति सोचना बहुत दुष्कर होगा।" स्पष्टतः अम्बेदकर का कहना सही प्रतीत हो रहा है। अतः भारतीय संविधान पर कठोरता का आरोप उचित नहीं है। भारतीय संविधान की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता एकल नागरिकता है। भारतीय संविधान संघीय है और इसने दोहरी शासन पद्धति (केन्द्र एवं राज्य) को अपनाया है, लेकिन इसमें केवल एकल नागरिकता की व्यवस्था की गई है अर्थात् भारतीय नागरिकता। यहाँ राज्यों के लिए कोई पृथक् नागरिकता की व्यवस्था नहीं है। अन्य संघीय राज्यों, जैसे अमरीका एवं स्विट्जरलैंड में दोहरी नागरिकता व्यवस्था को अपनाया गया है। अमरीका में प्रत्येक व्यक्ति न केवल अमरीका का नागरिक है, वरन् उस राज्य विशेष नागरिक है जहाँ वह रहता है। इस तरह उसे दोहरी नागरिकता प्राप्त है और इसी संदर्भ में उसे राष्ट्रीय सरकार एवं राज्य सरकार के दोहरे अधिकार प्राप्त हैं। यह व्यवस्था भेदभाव की समस्या पैदा कर सकती है। जैसा कि राज्य अपने नागरिकों के प्रति भेदभाव कर सकता है। यह भेदभाव मताधिकार, सार्वजनिक। पदों, व्यवसाय आदि को लेकर हो सकता है। ऐसी समस्या को दूर करने के लिए ही भारत में एकल नागरिकता की व्यवस्था को अपनाया गया है। भारत में एकल नागरिकता के पीछे राष्ट्रीय एकीकरण तथा ब्रिटिश प्रभाव को उत्तरदायी बताया जा सकता है। भारत में सभी नागरिकों को, चाहे उनका जन्म कहीं और निवास कहीं और हो, पूरे देश में समान नागरिक अधिकार प्राप्त होते हैं। उनके बीच किसी तरह का भेदभाव नहीं किया जा सकता, हालाँकि भेदभाव रहित इस व्यवस्था में कुछ अपवाद भी है।"

भारत का संविधान, कनाडा की तरह एकल नागरिकता का उपबंध करता है और एकीकृत अधिकार (कुछ मामलों को छोड़कर) प्रदान करता है। यह व्यवस्था भाई चारे और लोगों के बीच एकता बनाए रखने के लिए की गई, ताकि एक

शक्तिशाली भारतीय राष्ट्र की स्थापना हो सके। इसके बावजूद भारत में सांप्रदायिक दंगे, वर्ग संघर्ष, जातीय युद्ध, भाषायी विवाद आदि होते रहे हैं। इस तरह संविधान निर्माताओं का एक एकीकृत भारतीय राष्ट्र-निर्माण का लक्ष्य पूरा नहीं किया जा सका है। संविधान के भाग-II में अनुच्छेद 5 से 11 तक में नागरिकता के बारे में चर्चा की गई है। इस संबंध में इसमें स्थायी और विस्तृत उपबंध नहीं हैं, यह सिर्फ उन लोगों की पहचान करता है, जो संविधान लागू होने के समय (अर्थात् 26 जनवरी, 1950) भारत के नागरिक बने। इसमें न तो इनके अधिग्रहण एवं न ही नागरिकता की हानि की चर्चा की गई है। यह संसद को इस बात का अधिकार देता है कि वह नागरिकता से संबंधित मामलों की व्यवस्था करने के लिए कानून बनाए। इसी प्रकार संसद ने नागरिकता अधिनियम, 1955 को लागू किया, जिसका 1986, 1992, 2003 और 2005 में संशोधन किया गया।

भारतीय संविधान को एक महत्त्वपूर्ण विशेषता एकल न्यायपालिका का होना है। भारत में संघात्मक व्यवस्था को अपनाने के बाद भी न्यायिक संरचना को संघात्मक नहीं बनाया गया है, भले ही स्थिति व प्रक्रिया में न्यायपालिका संघात्मक व्यवस्था के अनुरूप कार्य करती है। संघवाद दोहरी न्यायपालिका की माँग करता है, क्योंकि संघवाद की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता दोहरी सरकार का होना है। एकल न्यायिक व्यवस्था के बाद भी भारत में संघात्मक व्यवस्था के अनुरूप न्यायिक पुनरावलोकन के सिद्धांत को अपनाया गया है। वस्तुतः भारतीय संविधान की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता इस तथ्य में खोजनी चाहिए कि जबकि हमारी संसद ब्रिटिश संसद की भांति सर्वोच्च विधि-निर्माणक संस्था नहीं है, अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय की भांति हमारा सर्वोच्च न्यायालय न्यायिक अधिनायकवाद का यन्त्र नहीं बन सकता। इसी कारण, हमारी संवैधानिक व्यवस्था में "अमरीकी व्यवस्था की न्यायिक सर्वोच्चता और ब्रिटिश सिद्धान्त की संसदीय प्रभुता का मध्य मार्ग अपनाया गया है।" अमरीका की संवैधानिक प्रणाली के विपरीत, हमारे यहाँ अनु० 13 (2) के अनुसार, सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों की शक्तियों से न्यायिक पुनर्विचार (Judicial Review) के अंकुर रखे हुए हैं जिनके अनुसार वे संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों के सन्दर्भ में केन्द्र व राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा निर्मित कानूनों की वैधता के बारे में निर्णय कर सकते हैं अर्थात् न्यायिक पुनर्विचार की शक्ति का अस्तित्व हमारी राजनीतिक व्यवस्था में विधि-निर्माण करने वाली संस्थाओं पर आरोपित प्रतिबन्धों की दुनिया में रखा हुआ है। जैसा न्यायाधीश एच०एल० कानिया ने कहा, "भारतीय संसद और ब्रिटिश संसद के बीच अन्तर का प्रमुख तत्त्व यह है कि भारतीय संसद संविधान की सृष्टि है और संसद के अधिकार, उसकी शक्तियाँ, विशेषाधिकार और दायित्व भारतीय संविधान की धाराओं में ढूंढे जा सकते हैं। यह कोई सम्प्रभुता सम्पन्न संस्था नहीं है और न ही यह अपरिमित शक्तियों के साथ अनियन्त्रित है। संविधान ने भारतीय संसद को केवल उन मामलों में विधि-निर्माण की शक्ति प्रदान की है जो उपयुक्त स्थानों या अनुसूचियों में दी गई है तथा उसके अधिकारों व शक्तियों में किन्हीं अन्य अनुच्छेदों के अन्तर्गत, विशेषतया मौलिक अधिकारों से सम्बन्धित तृतीय भाग में, कमी भी की गई है।" न्यायिक पुनर्विचार का अर्थ न्यायालय की उस शक्ति से है, जिसके अन्तर्गत वह किसी कानून या सरकारी कार्य को, जिसे वह मूल कानून या संविधान के विरुद्ध समझता है, असंवैधानिक घोषित कर सके। प्रो० हेनरी जे० अब्राहम के अनुसार, "न्यायालय के हाथों में किसी कानून या उस पर आधारित सरकारी क्रिया या किसी सरकारी अधिकारी के कार्य को असंवैधानिक या न लागू हो सकने वाला घोषित करने की वह शक्ति है जिसे वह मूल कानूनों के विपरीत समझता है।" (अमरीका में न्यायिक पुनर्विचार के संस्थापक माने जाने वाले न्यायाधीश मार्शल के अनुसार, "यह निश्चित रूप में, न्याय विभाग का कार्य व क्षेत्र है कि वह बताए कि कानून क्या है। अगर न्यायालयों को संविधान का सम्मान करना है और संविधान किसी व्यवस्थापिका के सामान्य कानून से उच्च है, तो सामान्य कानून की अपेक्षा संविधान को ही उस मामले में निर्णायक भूमिका का निर्वाह करना पड़ेगा जिस पर ये दोनों लागू होते हैं।" भारत के सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनर्विचार की शक्ति प्रदान की गई है, लेकिन अमरीका की सर्वोच्च न्यायपालिका की भाँति इसे निर्वाध सर्वोच्चता प्राप्त नहीं है। 1950 में सर्वोच्च न्यायालय ने गोपालन के मामले से न्यायिक पुनर्विचार के अधिकार का उपयोग प्रारम्भ कर दिया। न्यायालय ने यह व्यवस्था भी दी कि यद्यपि व्यवस्थापिका अनु० 13(2) के प्रतिकूल किसी कानून का निर्माण नहीं कर सकती, न्यायालय भी संविधान की स्पष्ट व्यवस्थाओं से परिसीमित है।" उदाहरणार्थ, न्यायालय कानून की उचित प्रक्रिया (due process of law) के अमरीकन सिद्धान्त का आह्वान नहीं कर सकते, क्योंकि भारतीय संविधान के अनु० 21 में विधि-सम्मत प्रक्रिया (procedure established by law) की शर्ते स्पष्ट रूप में वर्णित है। इसी प्रकार, वी०जी०रो बनाम मद्रास राज्य के मामले में कहा गया कि व्यवस्थापिकायें मौलिक अधिकारों के उपयोग या उपभोग पर तर्कसंगत प्रतिबन्ध आरोपित कर सकती है, किन्तु न्यायालय इस बात का निरीक्षण कर सकता है कि आरोपित प्रतिबन्ध तर्कसंगत है या नहीं। न्यायालय आत्म-आरोपित प्रतिबन्धों के सिद्धान्त भी प्रतिपादित कर सकता है। इस निर्णय के अनुसार जबकि तर्कसंगत प्रतिवन्धों की धारा न्यायिक पुनर्विचार के अधीन है, फिर भी इन भ्रामक कारकों का मूल्यांकन करते हुए न्यायालय का मार्ग दर्शन किन्हीं सिद्धान्तों द्वारा ही होना चाहिए।"

भारत में न्यायिक पुनर्विचार की शक्तियों को संविधान के उपबन्धों तथा स्वयं आरोपित प्रतिबन्धों के सिद्धान्तों से परिसीमित कर दिया गया है, जिनका विकास कई मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने ही किया है और इन्हें पूर्वन्याय (res judicata), प्रमाद (laches), गोपनीय प्रक्रियाओं (proceeding in camera), स्थायी अनुदेश (standing order), अधित्याग (waiver) आदि में ढूंढा जा सकता है। इस प्रकार, भारत का संविधान अवरोधों व संतुलनों के सिद्धान्त की स्थापना करता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जबकि अमेरीका के सर्वोच्च न्यायालय ने पुनर्विचार की शक्ति का आविष्कार करके इसे निर्वाध बनाकर अवरोध व सन्तुलन की प्रणाली में निहित संविधान के आवश्यक लक्षणों का विघटन कर दिया है, भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान की व्यवस्थाओं को उपयुक्त मान्यता प्रदान करके न्यायिक पुनर्विचार की शक्ति के अन्तर्गत स्वयं आरोपित प्रतिबन्ध ों के सिद्धान्त का विकास किया है।

भारतीय संविधान का सबसे विवादास्पद विशेषता उसका संघात्मक स्वरूप है। ऐसा संविधान के प्रथम अनुच्छेद से ही विदित हो जाता है, जिसमें भारत को 'राज्यों का संघ' (Union of States) कहा गया है। कुछ न्यायविद् व राजनीति सिद्धान्त शास्त्री व टिप्णीकार इसे संघात्मक, कुछ इसे एकात्मक (unitary) तथा कुछ विचारक मध्यमार्ग का अनुसारण करते हुये अर्द्ध-संघात्मक (quasifederal) कहते हैं। यह इस कारण है कि संविधान के प्रथम भाग में भारतीय संघ और उसके प्रदेश के उपबन्ध, ग्यारहवें भाग में वर्णित केन्द्र व राज्यों में विभाजित विधायी व प्रशासकीय शक्तियों, बारहवें भाग में केन्द्रीय तथा राज्यों की सरकारों के मध्य वित्तीय सम्बन्धों का निर्धारण तथा शक्तियों के वितरण की तीन सूचियों वाली अनुसूची-VII आदि हमारी गैर-एकात्मक शासन प्रणाली के ज्वलन्त प्रमाण हैं। कुछ आलोचक डॉ० के०सी० व्हेयर के इस कथन का भी सहारा लेते हैं कि, "भारत एक अर्द्ध-संघीय राज्य है। संघीय संसद को राज्यों की सीमाओं को बदलने का एकपक्षीय अधिकार, केन्द्र द्वारा एक समन्वयकारी और मानपरक सत्ता के रूप में स्वायत्तशासी राज्यों के क्षेत्रों के किन्हीं खण्डों में हस्तक्षेप, और आपातकाल में संघीय सम्बन्धों के पूर्णतया दमन करने के बारे में केन्द्र की व्यापक सत्ता इसी के प्रमाण हैं।" केन्द्रीय व क्षेत्रीय सरकारों के मध्य शक्तियों के वितरण और एकीकरण के सन्दर्भ में विश्व की विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं को मुख्यत: दो भागों में बाँटा जाता है- एकात्मक और संघात्मक। जबकि एकात्मक व्यवस्था में एक प्रत्यक्ष सम्प्रभु शक्ति के हाथों में राज्य की सत्ता केन्द्रीकृत होती है, संघात्मक व्यवस्था में संविधान द्वारा स्थापित तथा नियंत्रित राज्य की विभिन्न इकाइयों के बीच शक्ति का वितरण होता है। गार्नर ने संघात्मक शासन की शास्त्रीय परिभाषा देते हुए कहा है कि, ष्एकात्मक शासन के विपरीत, संघात्मक शासन एक ऐसी पद्धति है जहाँ राष्ट्रीय संविधान या संसद के सावयवी कानूनों द्वारा शासन की सम्पूर्ण सत्ता का विभाजन एवं वितरण किया जाता है। इस प्रकार केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों या क्षेत्रीय उपविभागों में शक्तियों का वितरण किया जाता है, जिनसे संघ का गठन होता है। अत:, एक संघात्मक राज्य 'विभिन्न राज्यों का अपने सामान्य हित के लिए एक राज्य में सम्मिलित होना है जिसमें राज्य की विभिन्न इकाइयाँ अन्य मामलों में अपने क्षेत्र में स्वायत्तता का उपभोग करती है। उपर्युक्त संघटक राज्य संघीय राज्य के मात्र प्रतिनिधि या अभिकर्ता नहीं होते वरन् दोनों ही सरकारें (संघ व राज्य) अपनी सत्ता एक ही स्त्रोत-देश के संविधान से प्राप्त करती हैं व उससे नियन्त्रित होती है।" सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थितियों में होने वाले परिवर्तनों से संघवाद के पुराने अर्थों में कायाकल्प हुआ है। केन्द्रीय सरकारों की शक्तियों में अधिक अभिवृद्धि हो रही है और इकाईयों की शक्तियों का पतन होता जा रहा है। इससे विश्व की हरेक संघात्मक प्रणाली में केन्द्रीकरण की निश्चित प्रवृत्ति उभरने लगी है। परिणामस्वरूप, राष्ट्रीय व क्षेत्रीय सरकारें, यद्यपि काफी हद तक स्वायत्त व सहभागी होती हैं, अब एक ऐसी एकल व्यवस्था का गठन करने लगी है जिनके अन्तर्गत कई उपव्यवस्थायें परस्पर व्याप्त हो जाती है।" इसी कारण, आधुनिक संघात्मक शासन एकात्मक शासन तथा प्रभुत्ता सम्पन्न राज्य के शिथिल संघ के मध्य में कहीं स्थित है। यह परिसंघ (confederation) नमूने से मूलत: भिन्न है और एकात्मक शासन से मात्रा में भिन्न है। अत: आधुनिक संघात्मक शासन के विकास के परिप्रेक्ष्य में भारतीय संघीय शासन के गतिशील अर्थों और विशिष्ट लक्षणों की विवेचना उपयोगी होगी।

भारतीय संघ इस रूप में लचीला (सिम०पइसम) है कि वह विशेषत: संकटकाल में एकात्मक स्वरूप में सहजता से बदला जा सकता है। इसके लिए किसी संवैधानिक संशोधन की आवश्यकता नहीं है। राष्ट्रपति की घोषणा मात्र ही देश की स्वतंत्रता व प्रदेश की अखण्डता को आसन्न खतरे से बचाने के लिए संविधान की संरचना को बदल सकती है। साथ ही, संवैधानिक संशोधन की योजना इस प्रकार बनाई गई है कि राज्यों की पुष्टीकरण वाली भूमिका केवल संघीय संरचना से संबंधित विषयों तक सीमित है। इस प्रकार, हमारे संविधान के अधिकांश उपबन्ध में केवल संसद द्वारा संशोधित किए जा सकते हैं। किन्हीं परिस्थितियों में, राष्ट्रपति भी संघ व राज्यों के मध्य शक्ति वितरण से संबंधित संवैधानिक उपबन्धों में परिवर्तन कर सकता है। सामान्यकाल में भी, राष्ट्रीय योजनाओं के रूप में केन्द्र की सुदृढ़ स्थिति केन्द्रवाद की नई प्रवृत्ति के रूप में उभर कर आयी

है जिसे एक लेखक ने 'उर्ध्वाधर संघवाद' (vertical federalism) कहा है। योजना आयोग के सुझावों के अनुसार, राज्यों को केन्द्रीय मन्त्रालय के माध्यम से अनुदान सहायता दी जाती है। परिणामस्वरूप, केन्द्र के सभी मन्त्रालय राज्यों के समान मन्त्रालयों को अनुदेश देने व मनवाने की स्थिति में हो गए हैं।ष्भारतीय संघ व्यवस्था इस रूप में सहकारी (cooperative) है कि वह सामान्य हितों के मामले में केन्द्र व राज्यों से सहयोग की अपेक्षा करती है। यहाँ राज्य के राज्यपालों व मुख्य मन्त्रियों के नई दिल्ली में होने वाले वार्षिक सम्मेलन, क्षेत्रीय परिषदें, अन्तः राज्य परिषदों की व्यवस्था, और राष्ट्रीय विकास परिषद् की स्थापना को, उदाहरण के लिए उद्धृत किया जा सकता है। पहली पंच वर्षीय योजना के प्रारूप में कहा गया था कि, ष्भारत जैसे विशाल देश में जहाँ राज्य संविधान के अन्तर्गत अपने अपने कर्तव्य में पूर्ण स्वरूपता रखते हैं, यह आवश्यक है कि एक राष्ट्रीय विकास परिषद् (National Development Council) जैसा मंच हो जहाँ समय-समय पर भारत का प्रधानमन्त्री और राज्य के मुख्य मन्त्रीगण योजना के विविध पक्षों पर समीक्षा कर सकें।ष राष्ट्रीय विकास परिषद् का उदाहरण यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि यह दोतरफा प्रभावों का आन्दोलन है तथा यह भी सुनिश्चित करता है कि राज्य सरकारें किनारे पर नहीं है।ष और फिर जैसा मोरिस-जोन्स ने कहा है कि, "न तो केन्द्र और न ही राज्य एक दूसरे पर अपने निर्णय थोप सकते हैं।"

भारत का संविधान संघात्मक है, परन्तु फिर भी इसमें एकात्मक तत्त्वों की प्रधानता है। राज्य सरकारों की शक्तियों को आपात तथा शान्ति के समय में भी सीमित किया जा सकता है। जब देश में शान्ति हो तब राज्य सभा, अनुच्छेद के अनुसार प्रस्ताव पास करके राज्य सूची के, किसी भी विषय को एक वर्ष के लिए समवर्ती सूची में परिवर्तित कर सकती है। ऐसा करने के पश्चात् संसद का उस विषय पर कानून बनाने का अधिकार मिल जाता है। असाधारण समय में अनुच्छेद 356 के अधीन राज्य में संवैधानिक मशीनरी के विफल होने की घोषणा की जा सकती है और जब देश में आपात हो तब अनुच्छेद 352 के अध ीन आपात थी घोषणा की जा सकती है। आपातकाल की घोषणा के पश्चात् संविधान एकात्मक बन जाता है। राज्यों के राज्यपालों की नियुक्ति भी राष्ट्रपति द्वारा की जाती है और वह किसी भी राज्यपाल को किसी भी समय पद से हटा सकता है। जब राज्यपाल द्वारा कोई भी विधेयक राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रखा जाता है तो वह तब तक कानून नहीं बन सकता जब तक राष्ट्रपति उसे अनुमति नहीं दे देता। राज्यपाल राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश भी कर सकता है। राष्ट्रपति शासन राज्यपाल की सिफारिश के बिना भी किसी भी राज्य में लागू किया जा सकता है। यहाँ तक की वित्तीय मामलों में भी राज्य केन्द्रीय सरकार की सहायता पर निर्भर है तथा राज्यों की सीमाओं में सिवाय कश्मीर को छोड़कर, संसद विधेयक पास करके किसी भी समय परिवर्तन कर सकती है। इस वर्णन से यह स्पष्टतया सिद्ध हो जाता है कि हमारे संविध ान में एकात्मक तत्त्व है।

भारतीय संविधान की एक प्रमुख विशेषता संसदीय प्रजातंत्र है। भारत का संविधान भारत के लिए संसदीय प्रणाली की शासन व्यवस्था का प्रावधान करता है, हालाँकि भारत एक गणराज्य है और उसका अध्यक्ष राष्ट्रपति होता है, किन्तु यह मान्यता है कि अमरीकी राष्ट्रपति के विपरीत भारतीय राष्ट्रपति कार्यपालिका का केवल नाममात्र का या संवैधानिक अध्यक्ष होता है। वह यथार्थ राजनीतिक कार्यपालिका यानी मंत्रिपरिषद् की सहायता तथा उसके परामर्श से ही कार्य करता है। भारत के लोगों को 1919 और 1935 के भारतीय शासन अधिनियमों के अन्तर्गत संसदीय शासन का अनुभव था और फिर अध्यक्षीय शासन प्रणाली में इस बात का भी डर था कि कहीं कार्यपालिका अपनी निश्चित पदावधि के कारण निरंकुश न हो जाए। अतः संविधान सभा ने विचार-विमर्श करके यह निर्णय लिया कि भारत के लिए अमरीका के समान अध्यक्षीय शासन प्रणाली के स्थान पर ब्रिटिश मॉडल की संसदीय शासन प्रणाली अपनाना उपयुक्त रहेगा। संसदीय प्रणाली में कार्यपालिका, विधायिका के प्रति उत्तरदायी रहती है तथा उसका विश्वास खो देने पर कायम नहीं रह सकती, किंतु, यह कहना समीचीन नहीं होगा कि भारत में ब्रिटिश संसदीय प्रणाली को पूर्णरूपेण अपना लिया गया है। दोनों में अनेक मूलभूत भिन्नताएँ हैं। उदाहरण के लिए ब्रिटेन का संविधान एकात्मक है, जबकि भारत निर्वाचित राष्ट्रपति वाला गणराज्य है। ब्रिटेन के विपरीत, भारतीय संविधान एक लिखित संविधान है। इसलिए भारत की संसद प्रभुत्व संपन्न नहीं है तथा इसके द्वारा पारित विधान का न्यायिक पुनरीक्षण हो सकता है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 74(1) यह निर्दिष्ट करता है कि कार्य संचालन में राष्ट्रपति की सहायता करने तथा उसे परामर्श देने के लिए प्रधानमंत्री के नेतृत्व में एक मंत्रिपरिषद् होगी तथा राष्ट्रपति प्रधानमंत्री के परामर्श से ही कार्य करेगा।

भारतीय संविधान की विशेषता समाजवादी मान्यताओं की स्वीकृति भी है। भारतीय संविधान के अन्तर्गत समाजवादी मूल्यों को अपनाया गया था, परन्तु प्रस्तावना के अन्तर्गत समाजवाद का उल्लेख नहीं था। 42वें संविधान संशोधन के द्वारा समाजवाद शब्द जोड़ा गया। भारतीय संविधान में जो निहित समझा जाता था, 42वें संविधान संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा दो नए शब्दों 'समाजवादी' व 'धर्मनिरपेक्ष' के प्राक्कथन में जुड़ जाने से प्रयत्क्ष हो गया है 'राष्ट्र की एकता' के साथ 'राष्ट्र की

अखण्डता' को जोड़ दिया गया है। एक अंग्रेजी शब्दकोष (Oñford Dictionary) के अनुसार, समाजवाद श्सामाजिक संगठन का ऐसा सिद्धान्त या नीति है जो उत्पादन के साधनों, पूँजी, जमीन, सम्पत्ति आदि का सम्पूर्ण समुदाय द्वारा नियंत्रण व स्वामित्व का समर्थन करता है व सभी के हितों हेतु वितरण व प्रशासन की व्यवस्था करता है।

भारतीय संविधान की एक विशेषता संविधान के अन्तर्गत व्यापक रूप से मौलिक अधिकारों का उपबन्ध होना है। संविधान के भाग-III, अनु० 12 से 35 के बीच मौलिक अधिकारों का उपबन्ध है। भारत में मौलिक अधिकार की माँग सबसे पहले 1895 में की गई थी। भारतीयों ने अंग्रेजों के बराबर अधिकारों की माँग किया। इसके पश्चात् ऐनी बेसेन्ट ने कॉमनवेल्थ ऑफ इण्डिया बिल 1925 में तथा मोतीलाल नेहरू कमेटी रिपोर्ट 1928 में भी यह माँग की गई कि भारतीयों को भी मौलिक अधि कार दिए जाएँ। इसके पश्चात् 1930 के करांची अधिवेशन में भी कांग्रेस पार्टी ने इस माँग को दोहराया था और दूसरी गोलमेज कांफ्रेंस में महात्मा गाँधी ने भी यह माँग को दोहराया था और दूसरी गोलमेज कांफ्रेंस में महात्मा गाँधी ने भी यह माँग उठायी थी, परन्तु 1934 में संयुक्त संसदीय समिति ने इस माँग की स्वीकार करने से इनकार कर दिया था। इसी कारण मौलिक अधि कारों को भारत सरकार के 1935 के अधिनियम में इनके लिए कोई भी व्यवस्था नहीं की गई। भारतीय संविधान की महत्त्वपूर्ण विशेषता इसका लोकतांत्रिक स्वीकार है। संविधान द्वारा भारत में एक लोकतंत्रात्मक गणराज्य की स्थापना की गई है। श्लोकतंत्रात्मकश शब्द का अभिप्राय यह है कि सरकार की शक्ति का स्त्रोत जनता में निहित है, क्योंकि लोकतंत्रात्मक सरकार जनता की, जनता के लिए, जनता द्वारा स्थापित होती है। सरकार की स्थापना जनता के प्रतिनिधियों द्वारा होती है और प्रतिनिधि यों का चुनाव जनता संविधान द्वारा प्रदत्त वयस्क मताधिकार द्वारा करती है। गणराज्य से तात्पर्य ऐसे राज्य से हैं, जहाँ शासनाध्यक्ष वंशानुगत न होकर जनता द्वारा एक निश्चित अवधि के लिए चुना जाता है। अमरीका जैसे विश्व के कुछ ऐसे लोकतंत्रात्मक राज्य होने के साथ-साथ एक गणराज्य भी है। भारतीय संविधान की विशेषता इसका गणतंत्रात्मक स्वरूप होना भी है। भारतीय संविधान द्वारा सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार, एवं समयबद्ध स्वतंत्र व निष्पक्ष निर्वाचन की व्यवस्था करके प्रतिनिधिमूलक प्रजातंत्र (representative democracy) की स्थापना की गई हैं। जिन्हें संविधान का महत्त्वपूर्ण विशेषता माना जा सकता है। उसमें कानून के शासन और न्यायिक स्वतंत्रता की भी व्यवस्था की गई है। राज्य को धार्मिक, प्रजातीय, रंग, आवास, लिंग आदि के आधार पर किसी भी प्रकार का विभेद करने से रोका गया है। यद्यपि संविधान के अन्तर्गत हर प्रकार से हमारा देश प्रजातांत्रिक है, फिर भी प्रत्यक्ष या विशुद्ध प्रजातंत्र के उपबन्धों जैसे उपक्रम (initiative), जनमत निर्णय (referendum), प्रत्यावर्तन (recall) और लोक-निर्णय (plebiscite) आदि का अभाव है। चाहे केन्द्र हो या राज्य या हमारे राजनीतिक संगठन की स्थानीय इकाई, शासन चलाने की समस्त सत्ता जनता द्वारा प्रजातांत्रिक ढंग से चुने प्रतिनिधियों के पास है। इस तरह, ब्रिटिश शासन की भाँति हमारी शासन प्रणाली अप्रत्यक्ष व प्रतिनिधिमूलक है। संक्षेप में, "इस देश का निर्वाचक समूह देश की राजनीतिक सत्ता में भागीदार है लेकिन निर्वाचकों को स्वयं राजनीतिक कार्यवाही में प्रत्यक्ष भाग लेने की शक्ति नहीं दी गई है। वे केवल अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से ही भाग ले सकते हैं। केवल मन्त्रियों के परामर्श से आम चुनावों में निर्वाचित जनता के प्रतिनिधि ही विधायी कार्य करेंगे तथा प्रशासन चलाया जाएगा जो अपने कार्यों के लिए विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी होंगे।

भारत के संविधान की एक विशेषता यह भी है कि संविधान निर्माताओं ने दूसरे देशों के संविधानों का अध्ययन करने के पश्चात् उन संविधानों के वे तत्त्व, जो हमारे देश की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए संविधान में अन्तः स्थापित किए जा सकते थे, उन्हें संविधान में शामिल कर दिया गया है। डॉ० बी०एन० राव ने जो संविधान सभा के संवैधानिक सलाहकार थे, उन्होंने अन्य देशों के संविधानों का अध्ययन करने के पश्चात् इस सम्बन्ध में अपने सुझाव दिए। संविधान के लगभग 250 अनुच्छेद तो ऐसे हैं जो हमने अक्षरशः या उनमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन करने के पश्चात् गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1935 से प्राप्त किया है। उदाहरण के तौर पर संघात्मक ढाँचा, सरकार की संसदात्मक प्रणाली, राज्यपाल का पद, आपातकालीन शक्तियाँ, द्विसदनात्मक विधानपालिका, संघीय न्यायपालिका, संघ तथा राज्यों के बीच शक्तियों के बंटवारे से सम्बन्धित ऐसे अनुछेद हैं जो गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1935 से लिये गये हैं। संसदीय सरकार की प्रणाली, संसदीय विशेषाधिकार, कानून बनाने की प्रक्रिया, अध्यक्ष का पद, अखिल भारतीय सेवाएँ, इकहरी नागरिकता, न्यायपालिका का ढाँचा हमने ग्रेट ब्रिटेन के संविधान से लिया है। इसके अतिरिक्त संघात्मक प्रणाली, संसद के स्थान पर संविधान की सर्वोच्चता, स्वतंत्र न्यायपालिका, न्यायिक पुनर्विलोकन, राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिए निर्वाचकगण, राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाने की प्रक्रिया, उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को पद से हटाने की प्रक्रिया, मौलिक अधिकार, संविधान में संशोधन करने की प्रक्रिया हमने अमरीका के संविधान से ली है। राज्य की नीति के निदेशक तत्त्व, राष्ट्रपति के चुनाव की पद्धति (राष्ट्रपति का चुनाव

आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा होगा), राज्य सभा में कुछ सदस्यों का राष्ट्रपति द्वारा नामांकन किया जाना हमने आयरलैंड के संविधान से प्राप्त किया है। संविधान के कुछ अनुच्छेद, जैसे भारत राज्यों का संघ होगा, अवशिष्ट विधायी शक्तियों का संसद को दिया जाना हमने कनाडा के संविधान से लिया है। समवर्ती सूची का विचार हमने आस्ट्रेलिया के संविधान से तथा किसी भी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं, हमने जापान के संविधान से लिया है। इसलिए यह कहा जाता है कि भारत का संविधान दूसरे संविधानों की नकल (Bag of borrowing) है हालाँकि ऐसा कहना उचित नहीं है, क्योंकि भारतीय संविध ान निर्माताओं ने अन्य देशों के संविधान से अक्षरस: सामग्री प्राप्त नहीं किया है तथा अनेक प्रावधान नवीन भी है।

निष्कर्ष : भारतीय संविधान की विशेषताओं की अवलोकन से बिल्कुल स्पष्ट है कि अपने आप में यह महत्वपूर्ण संविध ान है भारतीय संविधान के द्वारा संविधानवादी मान्यताओं को बहुत अधिक महत्व दिया गया है। संविधान संशोधन के प्रावध ान से इसे जीवंत संविधान बनाया गया है।

ग्रन्थ सूची :

1. डॉ० अवस्थी, अमरेश्वर एवं अवस्थी, ए०पी० भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा (वर्ष 2021 नवीन संस्करण)।
2. माहेश्वरी, श्रीराम भारतीय प्रशासन, ओरियंट् ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड, आन्ध्र प्रदेश, प्रथम संस्करण, 2001
3. दुबे, आर० के०, आधुनिक लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, 1992 द्य
4. कश्यप, सुभाष : भारतीय संवैधानिक विकास और स्वाधीनता संघर्ष, रिसर्च प्रकाशन, नई दिल्ली, 1972 ।
5. फड़िया, बी० एल० भारत में लोक प्रकाशन, साहित्य भवन, आगरा, 1993।
6. अड़ोरा, आर०के० पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, ओसवाल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021 द्य
7. फर्स्ट एनुअल रिपोर्ट ऑफ ओ० एण्ड एम०, नई दिल्ली, कैबिनेट सेकटेरियट, 1954-55 द्य
8. भारत, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के कई महत्वपूर्ण अंक।
9. फड़िया एवं जैन भारतीय शासन और राजनीति, साहित्य भवन, आगरा, 2016
10. बसु, डी०डी० : भारतीय संविधान, बधवा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2020 (नवीन संस्करण)।

''भारतीय संघवाद और राज्यों की स्वायत्तता''

डॉ० पंकज चौधरी

असि० प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कांधला- शामली, (उ०प्र०)

सारांश-

संघात्मक शासन प्रणाली एक लचीली व्यवस्था है, जिसमें केन्द्र तथा राज्यों में सत्ता का विभाजन होता है और इसका मूल उद्देश्य अनेकता में एकता, सत्ता का निक्षेपण तथा शासन का विकेन्द्रीकरण है। संघवाद में विभिन्न राज्यों के संयोजन से एक ऐसे समन्वित राज्य की संरचना होती है जिसमें केन्द्रीय सरकार की स्थिति पृथक और सुव्यक्त रहती है। केन्द्र तथा राज्यों की सरकारें समान आधार पर सत्ता में भागीदार होती हैं, परन्तु सत्ता के इस विभाजन का कोई विशेष नियम नहीं है। इसलिए सत्ता के विभाजन की यह प्रक्रिया अलग-अलग देशों में भिन्न-भिन्न है। उदाहरण स्वरूप संयुक्त राज्य अमेरिका, स्विट्जरलैण्ड, कनाडा, आस्ट्रेलिया, जर्मनी और भारत जैसे देशों में संघात्मक व्यवस्था तो है परन्तु इसका स्वरूप भिन्न है। इसलिए यह एक लचीली शासन प्रणाली है। जहां तक भारत का प्रश्न है यह जातीय, भाषाई, धार्मिक तथा सांस्कृतिक विविधता वाला देश है, इसलिए संविधान निर्माता इन विशेषताओं की उपेक्षा नहीं कर सकते थे। अतएव नवीन, एकीकृत स्वतंत्र भारत का संविधान बनाते समय उन्होंने संघवाद को अपनाया ताकि इस विशाल देश में रची बसी विविधता में एकता को सुरक्षित रखा जा सके। साथ ही उन्होंने इस बात का भी ध्यान रखा कि यदि भविष्य में कभी एकता और अनेकता में संघर्श हो जाये तो एकता और अखण्डता बनी रहे, इसलिए देश के हितों को ध्यान में रखते हुए भारत की एकता और अखण्डता का प्रभावित करने वाले अनेक विषयों में उन्होंने राज्यों की अपेक्षा केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बनाया।

भारतीय संघवाद का स्वरूप- भारत की संघात्मक व्यवस्था विलक्षण प्रकृति की है। यहां कनाडा के संविधान के आदर्श को अपनाते हुए भारतीय संघ के लिए 'यूनियन' शब्द का प्रयोग किया गया है तथा संघ व इकाईयों के बीच शक्तियों के बंटवारे में अवशिष्ट शक्तियां इकाईयों को न देकर केन्द्र को प्रदान की गयी हैं। संविधान के अनुच्छेद एक में ही स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि 'इण्डिया अर्थात भारत राज्यों का एक संघ' होगा। ''राज्यों के संघ'' शब्द की व्याख्या करते हुए डा0 भीमराव अम्बेडकर का कहना था कि इसमें दो बातें निहित हैं- प्रथम यह कि भारतीय संघ इन इकाईयों के बीच हुए किसी समझौते का परिणाम नहीं है और दूसरी यह कि इन इकाईयों को संघ से पृथक होने की स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है।

संवधिान द्वारा शासन की शक्तियों को एक ही स्थान पर केन्द्रित न रखते हुए इसे केन्द्र एवं राज्य सरकारों के बीच विभाजित किया गया है और दोनों ही अपने-अपने क्षेत्रों में स्वतंत्र शक्ति का प्रयोग करते हैं। लिखित एवं कठोर संविधान, संविधान की सर्वोच्चता, स्वतंत्र न्यायपालिका, जैसी संघात्मक शासन की विशेषताएं भी संविधान में विद्यमान हैं, परन्तु जैसा कि डा0 भीमराव अम्बेडकर ने संविधान सभा में स्वीकार किया था, ''संविधान की संघात्मकता को तंग ढांचे में नहीं ढाला गया है'' इस कथन का उद्देश्य यह बताना था कि संविधान में कुछ ऐसे प्रावधान भी विद्यमान हैं जो एकात्मकता के लक्षण प्रतीत होते हैं। उदाहरण स्वरूप इकहरी नागरिकता, एकल न्यायपालिका, अखिल भारतीय सेवाएं, राष्ट्रपति द्वारा राज्यों के राज्यपालों की नियुक्ति आदि। इसके अतिरिक्त संविधान के अनुच्छेद दो में कहा गया है कि भारत की संसद को यह अधिकार है कि अपने विवेकानुसार उपयुक्त शर्तो पर वह किसी भी नये राज्य को संघ में सम्मिलित कर सकती है या नये राज्य की स्थापना कर सकती है। संसद किसी राज्य से कोई क्षेत्र पृथक करके या दो या दो से अधिक राज्यों अथवा उनके कुछ भागों को मिलाकर नये राज्यों का निर्माण भी कर सकती है। इस प्रक्रिया में वह किसी राज्य के क्षेत्र को बढ़ा भी सकती है और कम भी कर सकती है, उसकी सीमाओं और नामों में परिवर्तन कर सकती है। संसद का यह अधिकार एकान्तिक है, परन्तु साथ ही राज्यों के विधान मण्डलों को इस विषय पर अपनी सहमति प्रकट करने का भी अधिकार है।

उपरोक्त विलक्षणों को ध्यान में रखते हुए ही डा0 के0सी0 व्हीयर ने भारत के संविधान को 'अर्द्ध संघात्मक कहा, तो डा0 डी0डी0 बसु ने इसे 'एक नवीन प्रकार का संघ' कहा। संभवत: यही कारण है कि भारत को ''राज्यों का संघ'' घोषित किये जाने के बाद से ही भारतीय संविधान की संघात्मकता की प्रकृति को संदेह की दृष्टि से देखा जाता रहा है और केन्द्र की विस्तृत शक्तियां व राज्यों की सीमित शक्तियों को देखते हुए जहां कुछ संविधान विशेषज्ञ उसे संघात्मक व्यवस्था मानने के लिए तैयार

ही नहीं हैं, जैसे पी0टी0चाको, पी0एस0देशमुख, डा0 कृष्णा पी0 मुखर्जी, वहीं दूसरी ओर राज्य सरकारों द्वारा समय-समय पर केन्द्र पर भेदभाव का आरोप लगाया जाता रहा है और चौथे आम चुनाव, सन् 1967 के बाद से तो समय-समय पर राज्यों द्वारा स्वायत्ता की मांग उठायी जाती रही है और कभी-कभी यह मांग उग्र रूप धारण करती रही है। नये राज्यों के गठन की मांग के पीछे भी अप्रत्यक्ष रूप से स्वायत्ता की भावना ही काम कर रही है। प्रस्तुत

शोध पत्र में राज्यों द्वारा स्वायत्ता की मांग के प्रमुख विन्दु एवं उनके औचित्य पर प्रकाश डाला गया है।

जहां तक राज्यों की स्वायत्ता का प्रश्न है, इसका तात्पर्य न तो राज्यों की स्वतंत्रता से है और न ही सम्प्रभुता से, अपितु यह एक ऐसी मांग है जिसमें कुछ विशेष क्षेत्रों में राज्यों को पूर्ण स्वतंत्रता एवं कम से कम केन्द्रीय हस्तक्षेप की अपेक्षा की जाती है। राज्य अपने एक निश्चित क्षेत्र में स्वतंत्रता पूर्वक कार्य करने के अधिकार के साथ ही यह भी चाहते हैं कि राज्यों के आन्तरिक मामलों में केन्द्रीय सरकार की दखलदांजी कम हो और संविधान द्वारा प्रदत्त विषयों पर उन्हें निरपेक्ष सत्ता का प्रयोग करने का अधिकार हो। राज्यों को अपने कार्य क्षेत्र में पूर्ण स्वायत्त बनाया जाय ताकि ये जनकल्याण के कार्यों को अपनी योजनाओं के अनुसार स्वतंत्रतापूर्वक कर सकें।

राज्यों द्वारा स्वायत्ता की मांग के पीछे संविधान के कुछ उपबन्ध हैं जो राज्यों की दुर्बल स्थिति को तथा संघ की सशक्त स्थिति को व्यक्त करते हैं जैसे आपातकालीन स्थितियों में अनुच्छेद 353, 354 तथा 357 के अनुसार संघ की विधायी शक्ति का विस्तार राज्य सूची के विषयों तक भी हो जाता है। इसके साथ ही संघ को यह अधिकार भी दिया गया है कि वह सामान्य स्थिति में भी राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखते हुए राज्य सूची के विषयों पर भी कानून बना सकता है। अनुच्छेद 249 के अनुसार यदि राज्य सभा को तिहाई बहुमत से यह संकल्प पारित कर दे कि राष्ट्रहित में संघ को राज्य सूची में सम्मिलित किसी विषय पर कानून बनाना चाहिए, तो ऐसा करने के लिए संघ अधिकृत हो जाता है। अनुच्छेद 256, 257 के अनुसार संघ अपने कानूनों तथा प्रशासनिक कार्यवाहियों का उचित अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए राज्य सरकारों को जरूरी निर्देश दे सकता है और इन निर्देशों का पालन न करने पर अनुच्छेद 356 के अनुसार केन्द्र सरकार राज्य को बर्खास्त कर सकता है।

सर्वाधिक विवादास्पद अनुच्छेद 356 रहा है, जिसके तहत यदि किसी भी तरह राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाय कि किसी राज्य में संवैधानिक उपबन्धों का समुचित पालन नहीं हो रहा है तो वह उस राज्य के प्रशासन को हस्तगत कर सकता है। ज्ञातव्य है कि इस विश्वास का आधार केवल सम्बन्धित राज्य के राज्यपाल का प्रतिवेदन ही नहीं, अपितु राष्ट्रपति को किसी भी स्रोत से यह विश्वास बनाने की छूट है। इसका आशय यह है कि यह अनुच्छेद पूरी तरह से संघ को राज्य के भाग्य का विधाता बना देता है। इसके अतिरिक्त प्रशासनिक, न्यायिक एवं वित्तीय व्यवस्था भी राज्यों पर संघ का वर्चस्व ही सुनिश्चित करती है। यही कारण है कि अतीत में कई बार कुछ राज्य सरकारों द्वारा केन्द्र पर अनावश्यक तानाशाही का आरोप लगाते हुए अतिरिक्त स्वायत्ता की मांग की गयी है और केन्द्र को मात्र प्रतिरक्षा, विदेशी मामले, मुद्रा एवं संचार व्यवस्था तक ही सीमित रखने की सलाह दी गयी है। इन राज्यों में प्रमुख है पश्चिम बंगाल, पंजाब, तमिलनाडु और जम्मू कश्मीर। इसका कारण यह है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ वर्षो बाद भारत का राजनीतिक परिवेश दूषित होता गया और राजनेताओं का प्रमुख लक्ष्य अपनी प्रतिष्ठा एवं अपनी पार्टी की शक्ति में बृद्धि हो गया तथा राष्ट्रहित गौण हो गया। अधिकांश मामलों में अनुच्छेद 356 का प्रयोग केन्द्र सरकार द्वारा जनहित में नहीं बल्कि स्वहित, दलहित एवं व्यक्ति हित में किया गया। ऐसे राजनीतिक परिदृश्य में राज्यों द्वारा संघ के वर्चस्व को सीमित किये जाने की मांग अनुचित प्रतीत नहीं होती क्योंकि संघ सरकार द्वारा अपनी शक्तियों के दुरूपयोग को रोकने के लिए कोई न कोई व्यवस्था आवश्यक है।

राज्यों द्वारा स्वायत्ता की मांग के प्रमुख बिन्दु- अक्टूबर 1978 में तमिलनाडु की अगुवाई में सभी गैर कांग्रेसी दलों ने एकजुट होकर राज्यों के लिए अधिक स्वायत्ता की मांग उठायी तो उनका तर्क यह था कि ऐसा होने पर ही वे सातवीं अनुसूची की द्वितीय सूची में वर्णित विकास कार्यक्रमों को समुचित रूप से चला सकेंगे। उस समय मोरारजी देसाई सरकार में 'आर्थिक सहायता' के रूप में कुछ अनुदान देकर राज्यों को शान्त कर दिया, परन्तु केन्द्र सरकार के बीच स्पष्ट वित्तीय व्यवस्था हेतु मार्च 1983 में उच्चतम न्यायालय के न्यायधीश श्री आर0एम0 सरकारिया की अध्यक्षता में आयोग गठित किया गया, जिसने सन् 1988 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। रिपोर्ट में केन्द्र राज्य सम्बन्धों में कटुता को दूर करने के लिए एक अन्तर्राज्यीय परिषद के गठन का सुझाव दिया। फलतः 1990 में इसका गठन कर दिया गया। सरकारिया आयोग में सबसे ज्यादा वित्तीय संशाधनों के वितरण के प्रश्न पर विचार किया और राज्यों के लिए अधिक वित्तीय साधन उपलब्ध किये जाने की सिफारिश भी की।

सन् 1990 के बाद भूमण्डलीकरण अर्थात् वैश्वीकरण एवं उदारीकरण का जो दौर शुरू हुआ उसने न केवल अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य को अपितु राष्ट्रीय परिदृश्य को भी प्रभावित किया है। अब राज्य अपने संशाधनों का स्वत: सम्पूर्ण उपभोग करना चाहते हैं। अपने विकास का मार्ग स्वयं चुनना चाहते हैं। दूसरी ओर बहुदलीय व्यवस्था में गठबन्धन की राजनीति का युग आरम्भ हो चुका है जिससे राष्ट्रीय दलों की शक्ति में ह्रास हुआ है और क्षेत्रीय दलों के सहयोग के बिना उसका सरकार बना पाना असंभव हो गया है। ऐसी स्थिति में राज्यों की सहभागिता अनिवार्य हो गयी है और क्षेत्रीय व स्थानीय मुद्दे अधिक प्रभावशाली हो गये हैं। मिली-जुली सरकार के युग में अनुच्छेद 356 का दुरूपयोग भी नि:सन्देह कम हुआ है। फिर भी अब राज्यों के पुर्नगठन की मांग, अन्तर्राज्यीय परिषद की सक्रियता तथा सौदेबाजी संघीय प्रवृति में क्षेत्रीय दलों की क्षमता व भूमिका दोनों बढ़ गयी है। राज्यों में निवेश के अवसर बढ़े हैं। जहां एक ओर आरक्षण, महिला सुरक्षा व सशक्तिकरण, क्षेत्रवाद, जातिवाद, भाषावाद का बोलबाला है, वहीं मतदाताओं में भी जागरूकता बढ़ी है, जो पिछले चुनावों में बढ़े हुए मतदान प्रतिशत को देखकर समझाा जा सकता है। अत: अब भारतीय राजनीति अच्छे शासन की स्थापना की ओर उन्मुख है और ऐसे में राज्यों को संघीय ढांचे के भीतर रहते हुए स्वायत्ता दिया जाना स्वाभाविक है। आवश्यकता इस बात की है कि न तो केन्द्र को कमजोर बनाया जाय और न ही राज्यों को आज्ञाकारी शिशु की भांति रखा जाय। अपितु जनहित को ध्यान में रखते हुए दोनों परस्पर सहयोग के आधार पर कार्य करें।

राज्यों द्वारा स्वायत्ता की मांग के औचित्य के समर्थन में प्रमुख विचारणीय विन्दु इस प्रकार हैं:-

1. राज्यों के दिन-प्रतिदिन बढ़ते हुए कार्यों को देखते हुए उन्हें आर्थिक स्वायत्ता मिलनी चाहिए, ताकि वे स्वयं अपने लिये आर्थिक संसाधनों की व्यवस्था कर सकें, अपना विकास कार्य चला सकें।
2. स्वायत्ता मिलने से आर्थिक नियोजन व ग्रामीण विकास सम्बन्धी कार्यों के लिए राज्यों को वित्तीय क्षेत्र में संघ पर आश्रित नहीं रहना पड़ेगा और वे आत्मनिर्भर बनेंगे।
3. राज्यों के द्वारा स्वायत्ता की मांग संघीय ढांचे के अन्तर्गत ही की जा रही है इसलिए इससे संविधान के संघात्मक स्वरूप पर प्रभाव नहीं पड़ेगा और संवैधानिक प्रावधान पूर्ववत बने रहेंगे।
4. राज्य अपनी आय के अधिकतम स्रोत स्वयं ढूंढ सकेंगे और उनका समुचित उपभोग करेंगे। इससे उन्हें विकास कार्यों के लिए केन्द्र के अनुदान पर आश्रित नहीं रहना पड़ेगा।
5. राज्यों के अपने योजना मण्डल होंगे जो उन्हें परामर्श देने का कार्य करेंगे और वे अपनी आर्थिक योजनाएं सुचारू रूप से कार्यान्वित कर सकेंगे।
6. प्राय: राज्य शिकायत करते हैं कि राज्यों को अनुदान देते समय केन्द्र सरकारें सौतेला व्यवहार करती हैं। गैर दलीय राज्यों को अनुदान नहीं देतीं। स्वायत्ता देने पर वे आत्मनिर्भर बनेंगे और स्वयं अपने विकास के मार्ग ढूंढेंगे।

अत: इस शोध पत्र के निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि केन्द्र को मजबूत रखते हुए भी राज्यों को इतनी वित्तीय शक्ति प्रदान की जानी चाहिए जिससे वे साधनों के अभाव में स्वयं को असहाय या अप्रभावशाली महसूस न करें तथा संघ के सहयोगी, सहभागी के रूप में कार्य करें, न कि प्रतिद्वन्द्वी के रूप में, और यह तभी संभव है जब राज्यों को स्वायत्ता दी जाएगी। सन् 1990 के बाद आये उदारीकरण, वैष्वीकरण, विकेन्द्रीकरण तथा बाजारोन्मुखी अर्थव्यवस्था के दौर में राज्यों में निवेश के आसार बढ़े हैं। स्वायत्ता मिलने पर भी बहुराश्ट्रीय कम्पनियों के सहयोग से अपना सर्वांगीण विकास कर सकेंगे और क्षेत्रीय विषमता दूर होगी। अधिकतर केन्द्र द्वारा राज्यों के साथ सौतेला व्यवहार करने की शिकायत उन्हीं राज्यों के द्वारा की जाती है जहां केन्द्र से भिन्न दलों की सरकारें होती हैं, जबकि केन्द्रीय सरकारें ऐसे राज्यों पर यह आरोप लगाती हैं कि उन्हें पर्याप्त मात्रा में आर्थिक अनुदान दिये जा रहे हैं, परन्तु उस धनराशि का सही उपभोग राज्यों द्वारा नहीं किया जा रहा है। राज्यों को स्वायत्ता दिये जाने से ऐसे आरोप-प्रत्यारोप का दौर समाप्त होगा तथा राज्य अपने संसाधन स्वंय जुटाकर उनका उपभोग कर पायेंगे। ऐसी स्थिति में 'सहयोगी संघवाद' के लिए मार्ग प्रशस्त होगा तथा संघ एवं उसकी इकाईयां एक-दूसरे की प्रतिद्वन्द्वी नहीं, पूरक बनेंगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रहमत बेगम: भारतीय संघ और राज्यों की स्वायत्ता, लोकतंत्र समीक्षा (नई दिल्ली), जनवरी-मार्च, 1977, पृ0 91-93
2. राजस्थान पत्रिका (उदयपुर): 9 अक्टूबर, 1985, पृ0एक।

3. डी0सी0गुप्ता: 'इण्डियन गवर्नमेन्ट एण्ड पॉलिटिक्स (नई दिल्ली, विकास, 1972) पृ0 121
4. डॉ0 श्यामलाल मांडावत: ''राज्यों की आर्थिक स्वायत्ता कहां तक?'' राजस्थान पत्रिका (जयपुर) 23 अगस्त, 1978, पृ0 5-6
5. दिनमान, 25 दिसम्बर से 31 दिसम्बर, 1977, पृ0 21-22
6. नन्द किशोर त्रिखा: ''संघ और राज्य-एक और गोष्ठी: नतीजा कुछ नहीं'', दि नवभारत टाइम्स, 23 दिसम्बर, 1978, पृ0 4
7. डॉ0 बाबूलाल फड़िया एवं श्रीपाल जैन: भारतीय संघ व्यवस्था (कैलाश पुस्तक सदन, ग्वालियर, 1982), पृ0 203
8. रजनी कोठारी: भारत में राजनीति, पृ0 137
9. ओ0पी0गोयल: 'इण्डिया: गवर्नमेन्ट एण्ड पॉलिटिक्स' नई दिल्ली, 1977), पृ0 96
10. अशोक चन्दा: 'फेडरलिज्म् इन इण्डिया', पृ0 196
11. एम0वी0पायली: 'कन्स्टीट्यूशलन गवर्नमेन्ट इन इण्डिया', एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1977, पृ0 678
12. मॉरिस जोंस, '' गवर्नमेन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया, 1971, पृ0 150
13. ग्रेनविल ऑस्टिन: दि इण्डियन कॉन्स्टीट्यूशन, पृ0 185
14. एस0पी0अय्यर: ''एक अधिक पूर्ण संघ के विषय में विचार", शकधर: संविधान और संसद-1976पृ0 22
15. डॉ0 सुभाश कश्यप: संविधान की आत्मा: पृ0 76-77
16. प्रो0 एम0वी0पायली, ''भारतीय संविधान: एक परिचय'' विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ0 29, 57-5811. एम0वी0पायली: 'कन्स्टीट्यूशलन गवर्नमेन्ट इन इण्डिया', एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1977, पृ0 678
17. 12. मॉरिस जोंस, ''गवर्नमेन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया, 1971, पृ0 150
18. 13. ग्रेनविल ऑस्टिन: दि इण्डियन कॉन्स्टीट्यूशन, पृ0 185
19. 14. एस0पी0अय्यर: 'एक अधिक पूर्ण संघ के विषय में विचार', शकधर: संविधान और संसद-1976, पृ0 22
20. डॉ0 सुभाश कश्यप: संविधान की आत्मा: पृ0 76-77
21. प्रो0 एम0वी0पायली, ''भारतीय संविधान: एक परिचय'' विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ0 29, 57-58

भारत इजरायल सम्बन्धः एक दृष्टि

डॉ० पुष्कर पाण्डेय

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, डी.ए-वी. कॉलेज, कानपुर

इजरायल, पश्चिम एशिया में भूमध्य सागर के तट पर स्थित एक यहूदी राज्य है। यहाँ संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था को अपनाया गया है। इजरायल की जनसंख्या 85 लाख है। भारत द्वारा अरब राष्ट्रवाद और फिलिस्तीन का समर्थन किया गया तथा फिलिस्तीन के विभाजन को पश्चिमी देशों की शक्ति राजनीति का परिणाम माना। फिलिस्तीन के विभाजन का विरोध मिस्र द्वारा किया गया और भारत मिस्र का प्रमुख सहयोगी था। भारत और मिस्र गुटनिरपेक्ष आंदोलन के संस्थापक सदस्यों में शामिल थे। भारत के द्वारा फिलिस्तीन का समर्थन किया गया और फिलिस्तीन अरब राष्ट्रवाद का प्रतीक था तथा यह साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद विरोध का भी सांकेतिक मुद्दा था। वर्ष 1948 में भारत ने इजरायल को मान्यता प्रदान कर दी लेकिन इजरायल के साथ भारत ने कूटनीतिक संबंधों की स्थापना नहीं की तथा भारत ने इजरायल को अलग-थलग करने का प्रयत्न किया। इसके विपरीत इजरायल ने वर्ष 1962 में भारत चीन के युद्ध तथा वर्ष 1965 के भारत पाकिस्तान के युद्ध में भारत का समर्थन किया। इजरायल के अनुसार कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है। यह बिंदु उल्लेखनीय है कि सभी अरब राज्यों ने कश्मीर मामले पर भारत का समर्थन नहीं किया लेकिन भारत ने अरब राज्यों का फिलिस्तीन के मुद्दे पर सदैव समर्थन किया। भारत ने गुटनिरपेक्ष विदेश नीति का पालन किया, जबकि इजरायल अमेरिकी गुट का प्रमुख सदस्य था। शीत युद्ध की विश्व राजनीति में भारत, इराक और सीरिया के मध्य संबंध निर्मित हुए जबकि इजरायल के साथ दूरी बनी रही। वर्ष 1971 में भारत-सोवियत संघ मित्रता एवं शांति के बाद भारत, इजरायल के बीच दूरी बनना स्वाभाविक था क्योंकि इजरायल, अमेरिका के सबसे बेहतर मित्रों में से एक था। वर्ष 1978 में अमेरिका और मिस्र के बीच मित्रतापूर्ण संबंधों से अरब राष्ट्रवाद की एकता टूट गई एवं इसी के बाद इजरायल और मिस्र के बीच संबंध सामान्य हो गए। वर्ष 1978 में कैंप डेविड वार्ता आयोजित हुई तथा इसके द्वारा मिस्र और इजरायल के बीच शांति का समझौता हुआ। पश्चिम एशिया में भारत के संबंध सीरिया, इराक और लीबिया के साथ बेहतर थे, जबकि इजरायल इन देशों को शत्रु मानता था।

सोवियत संघ के विघटन के बाद भारत अमेरिकी संबंधों में निकटता कायम हुई, परिणामस्वरूप भारत इजरायल के संबंध भी सुधरे। वर्ष 1991 में चीन ने भी इजरायल के साथ कूटनीतिक संबंधों को बहाल कर दिया। वर्ष 1988 में संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए फिलिस्तीनी मुक्ति संगठन (पी0एल0ओ0) ने द्वि-राष्ट्रवाद के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया जिससे फिलिस्तीन समस्या का शांतिपूर्ण समाधान संभव प्रतीत होने लगा। भारत ने इजरायल के प्रति अपनी परंपरागत नीति पर पुनर्विचार किया। वर्ष 1990 के बाद रूस ने भी अरब राष्ट्रवाद को समर्थन देने के साथ इजरायल से संबंध सुधारने का प्रयत्न किया। शीत युद्ध के दौरान अरब देशों ने अनेक मुद्दों पर भारतीय विदेश नीति का समर्थन नहीं किया तथा अंतरराष्ट्रीय इस्लामी संगठन के मंच पर इस्लामी राष्ट्रों ने सदैव पाकिस्तान का साथ दिया। सोवियत संघ के विघटन के पश्चात रक्षा आपूर्ति के लिए भारत ने इजरायल के महत्व को स्वीकार किया क्योंकि इजरायल रक्षा सामग्री का एक महत्वपूर्ण निर्यातक देश है इसलिए विदेश नीति में समान दूरी का सिद्धांत नीति को अपनाया गया। फिलिस्तीन मुद्दे पर समर्थन देने के साथ भारत ने इजरायल के साथ भी पहली बार कूटनीतिक संबंध स्थापित किए। भारत इजरायल संबंधों को फिलिस्तीन विरोधी मानना तार्किक नहीं है, बल्कि विचारकों ने तो यहाँ तक कहा है कि इजरायल के साथ बेहतर संबंधों के द्वारा भारत फिलिस्तीन समस्या के शांतिपूर्ण समाधान में योगदान दे सकता है।

सहयोग के क्षेत्र-

- सैन्य आधुनिकीकरण।
- कृषि अनुसंधान और विकास।
- इजरायल का भारत में निवेश।
- आतंकवाद विरोधी रणनीति में सहयोग।
- राजनीतिक, सांस्कृतिक और तकनीकी क्षेत्र में सहयोग।

शीत युद्ध के बाद विश्व में इजरायल के साथ संबंधों में उल्लेखनीय प्रगति हुई। वर्ष 1998 के पोखरण परमाणु परीक्षण की निंदा इजरायल ने नहीं की। वर्ष 1999 में कारगिल संघर्ष के समय इजरायल ने भारत को महत्वपूर्ण सैन्य सामग्री की आपूर्ति की तथा इजरायल भारत को सैन्य आपूर्ति करने वाला एक प्रमुख देश बन गया है। रूस के बाद इजरायल से सबसे बड़ी मात्रा में हथियारों का आयात होने लगा। कश्मीर मुद्दे पर इजरायल ने सदैव भारत का समर्थन किया।

एन0डी0ए0 सरकार के द्वारा भारत इजरायल संबंधों को और सशक्त किया गया। आलोचकों के अनुसार एन0डी0ए0 सरकार ने इजरायल के साथ संबंधों को विशेष महत्व दिया और जिसका कारण भाजपा की हिंदूवादी नीतियां रही थीं। लेकिन यह आलोचना पूर्णत: अतार्किक है क्योंकि एनडीए सरकार ने इस्लामी राष्ट्रों के साथ सम्बन्धों को भी उतना ही महत्व दिया, क्योंकि विदेश नीति राष्ट्रीय हित द्वारा निर्धारित होती है। इसलिए किसी सरकार विशेष के कारण संबंध पूर्णत: परिवर्तित हो जाएगा, यह कहना कठिन है। वर्तमान समय में भारत इजरायल के बीच मुक्त व्यापार के समझौते पर विचार-विमर्श किया जा रहा है। भारत इजरायल के बीच वर्तमान समय (2017) में 4.7 बिलियन डॉलर का व्यापार हो रहा है। इसके अतिरिक्त दोनों देशों के बीच लोगों का आदान-प्रदान बढ़ाया जा रहा है तथा वर्ष 2010 में 50 हजार इजरायली पर्यटकों ने भारत की यात्रा की। इजरायल के अनुसार, भारत के साथ उसके संबंध अमेरिका के बाद सबसे महत्वपूर्ण हैं। वर्ष 2011 में सब्जियों के लिए भारत इजरायल उत्कृष्टता केंद्र की स्थापना हरियाणा में की गई तथा भविष्य में आंध्र प्रदेश के चित्तूर में एशिया की सबसे बड़ी डेरी की स्थापना पर विचार किया जा रहा है।

इजरायल, आधुनिक हथियारों को बेचने वाला प्रमुख राष्ट्र है तथा इजरायल का रक्षा उद्योग निर्यात पर निर्भर है। वर्ष 1989 में तियानमेन चौक की घटना के बाद अमेरिका ने चीन पर हथियारों के निर्यात पर प्रतिबंध लगा दिया है। अत: इजरायल को हथियारों के नए बाजार की आवश्यकता थी, जबकि सोवियत संघ के विघटन के बाद भारत ने हथियारों की आपूर्ति के लिए इजरायल के साथ संबंधों को प्रगाढ़ किया। वर्तमान समय में इजरायल के हथियारों का भारत सबसे बड़ा खरीददार है। वर्ष 2006 से दोनों देशों के मध्य नए पीढ़ी के प्रक्षेपास्त्र की संयुक्त परियोजना पर समझौता हुआ तथा वर्ष 2007 में बराक प्रक्षेपास्त्र के संयुक्त उत्पादन पर भी समझौता हुआ। इससे यह प्रतीत होता है कि दोनों देशों के मध्य के संबंध केवल खरीदने-बेचने वाले संबंध नहीं हैं। वर्ष 2000 में जसवंत सिंह पहले भारतीय विदेश मंत्री थे, जिन्होंने इजरायल की यात्रा की। सन् 2003 में तत्कालीन इजरायली राष्ट्रपति एरियल शेरोन भारत की यात्रा पर आये थे, ऐसा करने वाले वे पहले इजरायली प्रधानमंत्री थे, इसके बाद वर्ष 2012 में एस.एम. कृष्णा ने इजरायल की यात्रा की तथा इजरायल ने भारत को प्राकृतिक मित्र की उपमा दी। दोनों देशों के बीच खुफिया जानकारी के मुद्दे पर भी सहयोग हो रहा है और विदेश मंत्री की यात्रा के दौरान दोनों देशों के बीच प्रत्यर्पण संधि भी हुई।

भारत-इजरायल मध्य सशक्त सामरिक संबंधों का विकास किया गया तथा वर्ष 1997 से 2000 के बीच भारत ने इजरायल से 500 मिलियन डॉलर की रक्षा खरीद की, जिसमें मानव रहित विमान एवं अवॉक्स रडार प्रणाली का आयात किया गया। इसके अतिरिक्त बराक मिसाइलरोधी प्रणाली अत्यधिक उल्लेखनीय है। भारतीय विदेश नीति का मूल उद्देश्य इजरायल के साथ दीर्घकालिक संबंध स्थापित करना है, जिसके कारण निम्नलिखित है

(i) कश्मीर में सीमापार आतंकवाद।
(ii) उत्तरी-पूर्वी राज्यों में आतंकवाद।
(iii) आंतरिक सुरक्षा की गंभीर स्थिति।

भारत-इजरायल के मध्य सीमा सुरक्षा प्रबंध की तकनीकी और आतंकवाद का सामना करने की तकनीकी पर विशेष सहयोग हो रहा है। इजरायल को हमास और हिजबुल्ला से सीधा खतरा है तथा पाकिस्तान के द्वारा ईरान को चोरी छिपे परमाणु सामग्री प्रदान करने से समूची क्षेत्रीय सुरक्षा के लिए गंभीर चुनौती उत्पन्न हो रही है। दोनों देश मिलकर हिंद महासागर क्षेत्र में समुद्री सुरक्षा के मुद्दे पर भी सहयोग कर रहे हैं। भारत-इजरायल के बीच संबंधों का पहला दौर वर्ष 1992-97 में आरंभ हुआ। एन. डी.ए. सरकार ने इन संबंधों को अत्यधिक प्रगाढ़ और मधुर बनाया। विशेषकर सितंबर, 2001 के बाद भारत-इजरायल के मध्य आतंकवाद के मुद्दे पर प्रभाव सहयोग हुआ। भारत-इजरायल-अमेरिका के त्रिकोण रूपी सामरिक संबंध स्थापित हुए। वर्ष 2003 में पहली बार इजरायल के प्रधानमंत्री ने भारत की। यात्रा को वर्ष 2004 के बाद भारत-इजरायल के संबंध प्रगाढ़ हैं, लेकिन भारत द्वारा इजरायल की भी अनेक मुद्दों पर आलोचना की गई। वर्ष 2006 में इजरायल द्वारा लेबनान पर हमले की भारतीय संसद द्वारा निंदा की गई। विचारकों के अनुसार, कांग्रेस सरकार मुसलमान वोट बैंक का ध्यान रखती है, इसके अतिरिक्त भारत में वामपंथी संबंधो को साम्राज्यवादी देश के संबंध मानते हैं।

यह उल्लेखनीय है कि वर्ष 2011 की अरब स्प्रिंग के बाद ज्यादातर मुस्लिम राज्यों में इस्लामी दल सत्ता में आ रहे हैं। इसलिए फिलिस्तीन मुद्दे पर इजरायल पर दबाव बन रहा है। वर्तमान समय में सीरिया के विरुद्ध अमेरिका ने प्रतिबंध बढ़ा दिया है। इजरायल भी सीरिया के शासक बसर-अल-असद का विरोधी है, क्योंकि इजरायल का आरोप है कि सीरिया हमास को समर्थन प्रदान करता है, जबकि भारत किसी भी देश में बलपूर्वक शासन परिवर्तन का विरोधी है। जुलाई 2017 में पहली बार भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने इजरायल की यात्रा की। जनवरी 2018 में इजराइल के प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतान्याहू भारत की यात्रा पर आये इससे दोनों देशों के सम्बन्ध और अधिक प्रगाढ़ हुए। इससे यह स्पष्ट है कि भारत-पश्चिमी एशियाई देशों के साथ संबंधों को भी प्रगाढ़ कर रहा है। अतः भारत, इजरायल और पश्चिमी एशियाई देशों के साथ संबंधों का विकास कर रहा है।

वर्ष 1992 से कूटनयिक संबंध स्थापित होने के बाद दोनों के मध्य द्विपक्षीय व्यापार में तीव्र वृद्धि हुई। भारत का बड़ा उभरता बाजार इजरायल के लिए महत्त्वपूर्ण है, जबकि भारत को इजरायल से बेहतर तकनीकी प्राप्त हो सकती है और निवेश की भी संभावना है। व्यापारिक गतिविधियों को बढ़ाने के लिए वर्ष 1993 में 'संयुक्त वाणिज्यिक परिषद' की स्थापना हुई, जिसका मूल उद्देश्य व्यापार, निवेश, तकनीकी हस्तांतरण, सेवा और औद्योगिक क्षेत्रों में सहयोग बढ़ाना है। दोनों देशों के मध्य व्यापार और आर्थिक सहयोग की संधि हुई तथा दोनों देशों ने एक-दूसरे को सर्वाधिक राष्ट्र (MFN) का दर्जा दिया और दोहरे करारोपण को समाप्त करने का समझौता हुआ तथा भारत-इजरायल के मध्य द्विपक्षीय व्यापार तेजी से बढ़ रहा है। वर्ष 1992 व्यापार में द्विपक्षीय 200 मिलियन डॉलर हो गया, जो वर्ष 2011 तक बढ़कर लगभग 5 बिलियन डॉलर हो गया एवं दोनों के मध्य मुक्त व्यापार के समझौते के मुद्दे पर भी बातचीत हो रही है। जनवरी, 2012 में इजरायल की यात्रा के दौरान भारतीय विदेश मंत्री एस.एम. कृष्णा ने इजरायल के साथ व्यापार को और बेहतर बनाने की प्रतिबद्धता को व्यक्त किया, जिसको प्रधानमंत्री मोदी ने अपनी 2017 की इजरायल यात्रा में जारी रखा।

इजरायल, तकनीकी प्रधान राष्ट्र है और भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रभावी विकास के लिए इजरायल का तकनीकी सहयोग अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। यह कृषि, पर्यावरण, स्वास्थ्य संचार और सूचना क्षेत्र में देखा जा सकता है। वर्ष 1993 में 'विज्ञान और तकनीकी कोष' की स्थापना हुई। वर्ष 2002 तक मानव जैविकी से संबंधित छह (6) संयुक्त परियोजनाओं को क्रियान्वित किया गया। भारत में कृषि क्षेत्र का अल्पविकास भारतीय अर्थव्यवस्था की सबसे बड़ी चुनौती है, क्योंकि भारत खाद्यान्नों का आयातक देश बन चुका है। अतः भारत में बढ़ती जनसंख्या को खाद्य सुरक्षा के लिए एक नई हरित क्रांति की आवश्यकता है। परिणामस्वरूप 'पूसा स्थित कृषि अनुसंधान केंद्र' में भारत-इजरायल शोध एवं विकास संगठन स्थापित किया गया है। राजस्थान एवं उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में इजरायल की मरुस्थलीय कृषि तकनीकी अत्यधिक प्रभावी हो सकती है।

भारत पिछले कुछ दशकों से सीमापार आतंकवाद से प्रभावित है तथा आंतरिक सुरक्षा के लिए आतंकवाद एवं उग्रवाद एक बड़ी चुनौती बनकर उभर रहा है। भारत में सीमा पार से होने वाली अवैध घुसपैठ को रोकने के लिए इजरायल से सहायता ली जा रही है। इजरायल भी आतंकवाद से पीड़ित है और वर्तमान में आतंकवादी संगठनों के संबंध पूरी दुनिया में फैले हुए हैं। इसलिए इजरायल के साथ खुफिया सूचनाओं का आदान-प्रदान किया जा रहा है तथा भारत को आंतरिक सुरक्षा बेहतर करने के लिए पुलिस बल और सुरक्षा एजेंसियों के प्रशिक्षण में भी इजरायल की सहायता ली जा रही है। आतंकवाद की समस्या का समाधान करने हेतु दोनों देशो के मध्य एक संयुक्त कार्यदल की स्थापना हुई, जिसके द्वारा दोनों देशों के मध्य प्रशिक्षण, सूचना और हथियारों के आदान-प्रदान में भी सहयोग किया जा रहा है। भारत और इजरायल दोनों आतंकवाद से पीड़ित राष्ट्र हैं, लेकिन दोनों देशों के मुद्दे या समस्याएं अलग-अलग हैं-

(i) फिलिस्तीन मुद्दा, जम्मू एवं कश्मीर से पूर्णतया भिन्न है, क्योंकि इजरायल ने फिलिस्तीन भू-भाग पर कब्जा कर लिया है, जबकि पाकिस्तान ने अनाधिकृत रूप में भारत के जम्मू एवं कश्मीर के कुछ भाग पर अपना नियंत्रण बना लिया है।

(ii) इजरायल के अनुसार, आतंकवाद का मूल केंद्र ईरान है, जबकि भारत की मान्यतानुसार, आतंकवाद का मूल केंद्र पाकिस्तान है।

इजरायल के चीन के साथ भी बेहतर संबंध है तथा वह पाकिस्तान के साथ भी बेहतर संबंध बनाने का इच्छुक है इसलिए यह सोचना कि इजरायल आतंकवाद से लड़ने में भारत को सीधी मदद करेगा, अतार्किक है। यह सत्य है कि दोनों देशों के मध्य सहयोग हो रहे हैं और यह सहयोग भविष्य में और बेहतर होंगे। परंतु आतंकवाद के विरुद्ध भारत को स्वयं लड़ना होगा। दूसरी ओर, आतंकवाद के विरुद्ध लड़ाई में अन्य पश्चिमी एशियाई देशों का समर्थन भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो सकता है,

क्योंकि सऊदी अरब द्वारा पाकिस्तान पर सीमापार आतंकवाद समाप्त करने के लिए दबाव बनाया जा सकता है, क्योंकि वह पाकिस्तान को वित्तीय सहायता देने वाला प्रमुख राज्य है। भारत में आतंकवादी गतिविधियों में लिप्त आतंकवादी सऊदी अरब और संयुक्त अरब अमीरात जैसे देशों में शरण लेते हैं। इसलिए इन देशों के साथ संबंध सुधार कर आतंकवाद पर लगाम कसी जा सकती है।

वर्ष 2006 मानवाधिकार के हनन को प्रतिबंधित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ मानवाधिकार परिषद का गठन किया गया। इसमें 47 सदस्य हैं, जो विश्व के प्रत्येक महाद्वीपों से जनसंख्या के अनुसार महासभा के द्वारा निर्वाचित होते हैं। परिषद के द्वारा उन देशों के विरुद्ध प्रस्ताव पारित किया जाता है, जो मानवाधिकार का उल्लंघन करते हैं। परिषद ने इजरायल के विरुद्ध अनेक बार प्रस्ताव पारित किए हैं। इसी क्रम में जून, 2015 में परिषद के द्वारा इजरायल के विरुद्ध प्रस्ताव लाया गया, जिसमें भारत अनुपस्थित रहा। अमेरिका के द्वारा प्रस्ताव का विरोध किया गया, जबकि रूस-चीन के द्वारा प्रस्ताव का समर्थन किया गया। यह पहला अवसर है जब भारत के द्वारा इजरायल के विरुद्ध किसी प्रस्ताव में भारत ने इजरायल के विरुद्ध मतदान नहीं किया। इसे वर्तमान मोदी सरकार की विदेश नीति में बड़ा परिवर्तन माना जा रहा है। भारत के अनुसार, इस प्रस्ताव में इजरायल के द्वारा आक्रमण की अंतर्राष्ट्रीय आपराधिक न्यायालय से जांच कराने की मांग की गई थी और भारत इस न्यायालय का सदस्य नहीं है, इसलिए भारत अनुपस्थित हो गया। इजरायल द्वारा भारत के इस दृष्टिकोण की प्रशंसा की गई।

शीत युद्धोत्तर विश्व में भारत-इजरायल संबंधो को यथार्थवादी दृष्टिकोण से देखना होगा, वैचारिक और दलीय आधारों पर देखना उचित नहीं है। पश्चिम एशिया में भारत और ईरान के बीच अत्यधिक मित्रतापूर्ण संबंध हैं, जबकि इजरायल और ईरान परस्पर शत्रु हैं और ईरान ने अभी भी इजरायल की मान्यता प्रदान नहीं की है। वर्ष 2012 में इजरायली दूतावास के कर्मचारी पर भारत में हमला हुआ, जिसमें ईरान के संलग्न होने का आरोप है। अतः भारत-इजरायल के संबंध ईरान से प्रभावित हो रहे हैं। इजरायल, हथियार निर्यातक देश है। इसलिए वह चीन को भी हथियार निर्यात करने का प्रयास कर रहा है और पाकिस्तान भी इजरायल से हथियार प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा है। यह उल्लेखनीय है कि पाकिस्तान ने अभी भी इजरायल की मान्यता प्रदान नहीं की है। भविष्य में इजरायल और पाकिस्तान के मध्य बेहतर संबंध होने की संभावना है। वर्ष 2012 में संयुक्त राष्ट्र संघ में फिलिस्तीन को गैर-राज्य पर्यवेक्षक का दर्जा देने के पक्ष में भारत ने मतदान किया तथा भारत के साथ रूस और चीन से भी फिलिस्तीन के पक्ष में मत दिया, जबकि इजरायल ने फिलिस्तीन के विरोध में मत दिया इसलिए फिलिस्तीन मुद्दा भी भारत-इजरायल संबंधों में बड़ी चुनौती है। भारत, अभी भी यह मानता है कि वर्ष 1967 के पहले के भू-भाग के आधार पर फिलिस्तीन राज्य का निर्माण होना चाहिए, जबकि इजरायल के अनुसार, फिलिस्तीनी समस्या को हल करने के लिए वर्ष 1967 को आधार बनाना तार्किक नहीं है, क्योंकि वर्तमान समय पहले से बदल चुका है।

डीलिंकिंग नीति के अंतर्गत वर्तमान सरकार के द्वारा इजरायल एवं फिलिस्तीन के लिए अलग-अलग एवं पृथक यात्राओं का निर्धारण किया गया है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी फिलिस्तीन जाने वाले पहल भारतीय प्रधानमंत्री हैं। वर्तमान समय में भारत सरकार द्वारा खुले तौर पर इजरायल से संबंधों को आगे बढ़ाया जा रहा है। स्वतंत्रता के बाद वर्ष 2017 में प्रधानमंत्री मोदी ने अपनी इजरायल की यात्रा के दौरान रक्षा, स्पेस टेक्नोलॉजी, कृषि, जल संरक्षण आदि से संबंधित महत्त्वपूर्ण समझौते पर हस्ताक्षर किए। साथ दोनों देशों में वैश्विक मुझे पर भी चर्चा की। दोनों मिलकर लड़ने तथा अनुभवों को साझा करने पर सहमत हुए। इससे यह स्पष्ट हो गया कि अब भारतीय विदेश नीति यथार्थवादी तथा परिपक्व है। सरकार ने स्पष्ट किया कि भारत अब भी फिलिस्तीन के मुद्दे पर फिलिस्तीन का समर्थन करता है। अतः इजरायल-भारत संबंध को फिलिस्तीन को केंद्र में रखकर न देखा जाए। भारत ने अब इजरायल संबंधों को लेकर मध्यम मार्ग का पालन किया है। भारत के लिए इजरायल एवं फिलिस्तीन दोनों के संबंधों को पृथक रूप में देखा जा रहा है।

वर्ष 1987 के युद्ध में इजरायल ने समूचे येरूसलम पर नियंत्रण कर लिया। परंतु संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा इस समस्या के समाधान के लिए द्विराष्ट्रवाद का सिद्धांत दिया गया, जिसके अनुसार फिलिस्तीन को पश्चिमी किनारा गाजा एवं पूर्वी येरूसलम दिया गया, जबकि अन्य क्षेत्र एवं पश्चिमी येरूसलम पर इजरायल का नियंत्रण होगा। वर्तमान में अमेरिका के द्वारा यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि उसका दूतावास येरूसलम के किस क्षेत्र में होगा। इसलिए इस पर विवाद उत्पन्न हो गया है। परंतु भारत के द्वारा अमेरिका के इस दृष्टिकोण का समर्थन नहीं किया गया है। इजरायल लंबे समय से येरूसलम को अपनी राजधानी घोषित करने का प्रयास कर रहा है येरूसलम ईसाई, इस्लाम तथा यहूदी तीनों धर्मों का महत्वपूर्ण धार्मिक स्थल है तथा पूर्वी येरूसलम में मुसलमानों का बाहुल्य है जबकि पश्चिमी येरूसलम में यहूदी रहते हैं। ताजा घटनाक्रम में अमेरिकी राष्ट्रपति

डोनाल्ड ट्रम्प ने समूचे येरूसलम को इजरायल की राजधानी घोषित करते हुए अपने दूतावास को वहां स्थानांतरित करने की घोषणा की, जिसके परिणामस्वरूप अरब तथा अन्य इस्लामिक देशों ने अमेरिका के इस कदम का विरोध किया। भारत ने अमेरिका के इस दृष्टिकोण का समर्थन नहीं किया।

वर्तमान इजरायल और गाजा विवाद (7 अक्टूबर 2023 से अब तक)-

इजरायल और हमास के नेतृत्वाधीन फिलीस्तीनीय संग्रामी समूहों के बीच 7 अक्टूबर से मुख्यत: गाजा पट्टी और उसके आसपास सशस्त्र संघर्ष चल रहा है, साथ ही पश्चिमी तट और इजरायल-लेबनान सीमा पर भी संघर्ष हो रहा है। युद्ध तब शुरू हुआ जब हमास के नेतृत्व वाले आतंकवादी समूहों ने 7 अक्टूबर को इजरायल पर एक आश्चर्यजनक हमला किया, जिसमें कुछ सैकड़ों की संख्या में हमास के आतंकवादियों ने गाजा-इजरायल की बाधा को तोड़ दिया और इजरायली नागरिक समुदायों और सैन्य ठिकानों पर हमला किया। इस हमले के दौरान 1139 इजरायली और विदेशी नागरिक मारे गये, इसके अतिरिक्त 250 से अधिक इजरायली और विदेशी नागरिकों को बंधक बना लिया गया, जिसका घोषित लक्ष्य इजरायल को फिलिस्तीनी कैदियों को रिहा करने के लिए मजबूर करना था। जिसके जवाब में इजरायल ने आधुनिक इतिहास के सबसे विनाशकारी बमबारी अभियानों में से एक शुरू किया और 27 अक्टूबर को हमास को नष्ट करने और बंधकों को मुक्त कराने के घोषित उद्देश्यों के साथ गाजा पर आक्रमण जारी किया।

हमास को बचाने के लिए उसके सहयोगी संगठन हूती और हिजबुल्ला ने भी इजरायल पर घातक हमले शुरू किये जिसका जवाब इजरायल हूती और हिजबुल्ला के आतंकवादी संगठन को निरन्तर दे रहा है। वर्तमान में युद्ध अभी तक (2024) जारी है।

निष्कर्ष-

फिलिस्तीन विवाद के समाधान के लिए भारत द्विराष्ट्रवाद के सिद्धांत का समर्थक है। इजरायल-भारत संबंध सर्वाधिक तीव्र गति से बढ़ते हुए संबंध है, परंतु फिलिस्तीन एवं पश्चिमी एशियाई देशों के साथ मधुर, मित्रतापूर्ण संबंधों के विकास पर समानांतर बल दिया जा रहा है।

संदर्भ सूची-

1. अंतर्राष्ट्रीय संबंध- तपन बिस्वाल, प्रकाशक-ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड, संस्करण 2016
2. भारत की विदेश नीति चुनौती और रणनीति- राजीव सीकरी, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड, संस्करण 2017
3. भारतीय विदेश नीति भूमंडलीकरण के दौर में- राजेश मिश्रा, प्रकाशक-ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड, संस्करण 2018
4. भारत की विदेश नीति पुनरावलोकन एवं संभावनाएं- संपादक सुमित गाँगुली, प्रकाशक- ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2/11 भूतल, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण-2018
5. भारत की विदेश नीति कल, आज और कल- प्रो0 जगत एस मेहता, नेशनल पब्लिशिंग हाउस 2/35 अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली-110002,
6. भारतीय विदेश नीति (21वीं सदी में निर्णायक मोड़ पर)- पंकज के. सिंह, प्रकाशक- प्रकाशन संस्थान नयी दिल्ली-110002
7. भारतीय विदेश नीति- जे.एन. दीक्षित, प्रकाशक- प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002
8. भारत में राजनीति कल और आज- रजनी कोठारी, संपादक अभय कुमार दुबे, प्रकाशक वाणी प्रकाशन 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
9. भारत की राजनीति- बिमल जालान, प्रकाशक पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया प्रा.लि. डी.एल.एफ. साइबर सिटी, गुड़गांव, हरियाणा-122002
10. http://jagran.com>world
11. http://nytimes.com>israel-hamas

वैदिक भूगोल के आलोक में संसाधन संरक्षण की संकल्पना की विवेचना

उदयन कुमार

शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, रामचन्द्र चन्द्रवंशी विश्वविद्यालय, विश्रामपुर, पलामू, झारखण्ड

सारांश

संपोषणीय आर्थिक विकास हेतु संसाधन संरक्षण वर्तमान समय की अनिवार्य आवश्यकता है। संसाधन संरक्षण की यह अवधारणा भारतीय संस्कृति में नवीन नहीं है। प्राचीन भारतीय वैदिक भूगोल में संसाधन संरक्षण की इस संकल्पना पर व्यापक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। प्रकृति द्वारा प्रदान किए गए नि:शुल्क संसाधनों के दीर्घकालीन उपभोग के लिए उनका विवेकपूर्ण उपयोग अनिवार्य है ताकि प्रकृति की स्वत: नियामक प्रणाली ध्वस्त न हो। यह तभी सम्भव है जब तक मानव प्रकृति मध्य अन्तर्सम्बन्ध अनुकूलतम स्थापित न हो। वेदों में भावात्मक संबंधों द्वारा प्रकृति प्रदत्त संसाधन को संरक्षित तथा मानवीय उपभोग के प्रतिरूप को संतुलित करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य वेदों में वर्णित संसाधन संरक्षण की संकल्पना का वर्तमान प्रासंगिकता के अनुसार विशद विवेचन है। यह अध्ययन द्वितीयक सूचनाओं के संग्रहण पर आधारित है। सूचनाओं के संग्रहण के हेतु त्रिस्तरीय प्रणाली का प्रयोग किया गया जिसके अंतर्गत प्रथम स्तर पर आधारभूत वेद को तथा द्वितीय स्तर पर आधारभूत वेदों से सम्बन्धित प्रकाशित तथा अप्रकाशित अध्ययन सामग्री को तथा तृतीय स्तर पर विषय विशेषज्ञ के संरचित साक्षात्कार को सम्मिलित किया गया। प्राप्त सूचनाओं के विवेचन हेतु वर्णनात्मक अभिकल्प का प्रयोग किया गया। अध्ययनोपरान्त पाया गया कि संपोषणीय आर्थिक विकास का लक्ष्य वेदों की ओर लौटकर ही सम्भव है।

उल्लेखनीय पारिभाषिक शब्दावली : संपोषणीय आर्थिक विकास, संसाधन संरक्षण, मानव प्रकृति अंतर्सम्बन्ध, स्वत: नियामक प्रणाली।

1. रूपरेखा- प्रकृति ने पृथ्वी, जल, वायु, सूर्य, अग्नि, जीव-जंतु आदि विविध रूपों में मानव जीवन उपयोगी को नि:शुल्क भेटें प्रदान की हैं जिन्हें संसाधन के नाम से जाना जाता हैं। प्रकृति द्वारा संसाधन रूप में प्रदान की गई या निशुल्क भेटें न सिर्फ आर्थिक विकास के वाहक हैं अपितु मानव अस्तित्व का मूलाधार भी है। अत: प्रकृति द्वारा प्रदान की गई संसाधन रुपी नि:शुल्क भेटों के दीर्घकालीन उपभोग के लिए विवेकपूर्ण मानवीय उपयोग ही एकमात्र मार्ग है जिस पर चलकर संपोषणीय आर्थिक विकास का लक्ष्य पाया जा सकता है। वैदिक भूगोल में संसाधन संरक्षण की इस संकल्पना को एक भावात्मक आधार प्रदान किया गया है। वेदों ने पृथ्वी को माता के रूप में प्रतिष्ठित किया अर्थात् पृथ्वी रूपी माता मानव का पालन पोषण अत्यंत धैर्य पूर्वक करती है। प्राचीन भारतीय भूगोल की इसी भावात्मक संकल्पना को 20 वीं शताब्दी में सैंपल (1911, पृ 1) ने इन शब्दों में व्यक्त किया कि "मानव भूतल की उपज हैं।" भौगोलिक जगत में सैंपल का कथन मानव प्रख्रति सम्बन्धों को वातावरण निश्चयवाद के रूप में प्रतिष्ठित करता है परंतु इस भावात्मक संकल्पना का मूलाधार वेद ही हैं जिन्होंने *"माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:"* की संकल्पना दी। मानव प्रकृति सम्बन्ध सदैव अनुकूलतम रहें, इसके लिए मानव द्वारा निरन्तर उपभोग किए जा रहे संसाधनों का उपभोग एक निश्चित सीमा तक ही होना चाहिए ताकि प्रख्रति स्वयं की पुनर्भण्डारण, पुनर्चक्रण और पुनर्शोधन की प्रक्रिया पूर्ण कर सके और प्रकृति की यह स्वत: नियामक प्रणाली निरन्तर क्रियाशील बनी रहें।

2. शोध के उद्देश्य- प्राचीन वैदिक भौगोलिक विचारों में से संसाधन संरक्षण की विषयवस्तु के अध्ययन सम्बन्धी अधोलिखित उद्देश्यों का निर्धारण किया गया हैं:-

i. वेदों में वर्णित विभिन्न संसाधनों एवं मानव के मध्य भावात्मक अन्तर्सम्बन्ध का विश्लेषण करना।
ii. वेदों में वर्णित प्राकृतिक संसाधनों का वर्णन एवं संरक्षण सम्बन्धी विवेचन प्रस्तुत करना।
iii. वेदों में वर्णित मानवीय संसाधन का वर्णन एवं संरक्षण सम्बन्धी विवेचन प्रस्तुत करना।

3. पूर्व साहित्य का पुनरावलोकन- प्राचीन वैदिक भौगोलिक ज्ञान सदैव से ही भूगोलवेत्ताओं को आकृष्ट करता रहा है इसीलिए वैदिक भूगोल के विभिन्न आयामों पर शोध अध्ययन समय-समय पर होते रहे हैं। संसाधन संरक्षण की वैदिक संकल्पना के आधारभूत पुरातन अध्ययनों में शर्मा, राजीव लोचन का अध्ययन विशेष रुप से उल्लेखनीय है हांलांकि यह अध्ययन एक पाठ्य पुस्तक के रूप में प्रस्तुत किया गया हैं परंतु इसमें विभिन्न संसाधनों के संरक्षण की वैदिक पृष्ठभूमि भी प्रस्तुत की गई। नवीन शोध कार्यों में कुमार, शशिप्रभा (2005) ने वैदिक साहित्य सम्बन्धी विविध आयामों का अध्ययन किया। संसाधन संरक्षण के संदर्भ में प्राकृतिक संसाधन के संरक्षण में समाज की भूमिका का अध्ययन उपाध्याय, रानू (2015) द्वारा किया गया। घई, पूनम (2015) ने संदर्भ में मानव और प्रकृति से संबंधित वैदिक चिंतन का अध्ययन किया। रानी, उमा (2015) द्वारा भी पर्यावरण संरक्षण के संदर्भ में वेदों का गहन अध्ययन किया। शर्मा, राकेश कुमार और सहगल, महेश कुमार (2016) में वैदिक काल में जल प्रबंधन का अध्ययन किया। शर्मा, अमित (2017) द्वारा एक महत्वपूर्ण अध्ययन भूमि संरक्षण की वैदिक अवधारणा के संदर्भ में किया गया।

4. विधितंत्र- प्रस्तुत शोध पत्र द्वितीयक सूचना स्रोतों के संग्रहण पर आधारित हैं। द्वितीयक सूचनाओं के संग्रहण हेतु त्रिस्तरीय प्रणाली का प्रयोग किया गया हैं। प्रथम स्तर के अंतर्गत आधारभूत प्रकाशित सूचना स्रोतों को सम्मिलित किया गया जिसके अंतर्गत मूलभूत रूप से ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद को ही प्रमुखता दी गई हैं। द्वितीय स्तर के अंतर्गत, प्रथम स्तर पर चयनित वेदों की विवेचना प्रस्तुत करने वाले प्रकाषित तथा अप्रकाशित सूचना स्रोतों को सम्मिलित किया गया। तृतीय स्तर पर चयनित वैदिक ऋचाओं की सार्थक विवेचना हेतु विषय विशेषज्ञ का अर्द्धसंरचित साक्षात्कार लिया गया जिसमें विषय विशेषज्ञ को विषयानुकूल अन्य सूचनाओं को प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता भी दी गई। प्रस्तुत शोधपत्र में प्राप्त सूचनाओं का विश्लेषण वर्णनात्मक अभिकल्प द्वारा किया गया।

5. विवेचना- वेदों में वर्णित संसाधन संरक्षण की संकल्पना का मूलभूत आधार विभिन्न संसाधनों को निःशुल्क प्रदान करने वाली प्रकृति तथा विभिन्न संसाधनों का उपभोग करने वाले मानव के मध्य भावात्मक अन्तर्सम्बन्ध है जिस आधार पर विभिन्न संसाधनों जैसे की भूमि एवं खनिज, जल, वायु, वन एवं वन्य जीव, ऊर्जा तथा मानव इत्यादि संसाधनों में एक स्वतः संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया है।

5.1 वेदों में वर्णित विभिन्न संसाधनों एवं मानव के मध्य भावात्मक अन्तर्सम्बन्ध- अथर्ववेद के 'पृथिवीसूक्त' में पृथ्वी को माता, स्वयं को उसका पुत्र बतलाया गया है तथा पर्जन्य को पिता के समान स्थापित किया गया है। अथर्ववेद के बारहवें काण्ड, प्रथम सूक्त की बारहवीं ऋचा द्रष्टव्य हैं:-

यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु(12)
(अथर्ववेद, 12/1/12)

वेदों में पालन पोशण एवं संरक्षण प्रदान करने वाले विभिन्न प्राकृतिक तत्वों कों माता, पिता की उपमा दी गई है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल, 164 वें सूक्त की 33 वीं ऋचा में कि सूर्य से पिता, पृथ्वी से माता और किरण-समूह से बन्धु का सम्बन्ध स्थापित किया गया है। उल्लेखित ऋचा द्रष्टव्य हैं:-

द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्
उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् (33)
(ऋग्वेद, 1/164/33)

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल, प्रथम सूक्त की 9 वीं ऋचा के माध्यम से अग्नि को पिता के समान कल्याणकारी, हितकारी, पालक और संरक्षक बताया गया हैं। उल्लेखित ऋचा द्रष्टव्य हैं:-

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये (9)
(ऋग्वेद, 1/1/9)

ऋग्वेद के दशम मण्डल, 186 वें सूक्त की द्वितीय ऋचा में वायु को पिता के समान पालक, भ्राता के भांति समान धारक और मित्र के समान सुखदायक बताया है। उल्लेखित ऋचा द्रष्टव्य हैं:-

उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा।
स नो जीवातवे कृधि (2)
(ऋग्वेद, 10/186/2)

अथर्ववेद में जल को वैद्यों का वैद्य तथा औशधियुक्त वनस्पति एवं वृक्षों को माता कहकर सम्बन्ध स्थापित किया गया है। यजुर्वेद (36/18) "मित्रस्याहं चक्षुशा सर्वाणि भूतानि समीक्षे" के आधार पर समस्त प्राणियों के प्रति सहृदयता का सम्बन्ध स्थापित कर संरक्षण को भावात्मक रूप में प्रतिष्ठित किया है।

5.2 वेदों में वर्णित प्राकृतिक संसाधनों का वर्णन एवं विवेचन- वेदों में भूमि तथा खनिज संसाधन, जल संसाधन, वायु संसाधन, वन एवं वन्य जीव संसाधन, ऊर्जा संसाधन के रूप में प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की संकल्पना का वर्णन प्राप्त होता है जिसका क्रमबद्ध विवेचन अधोलिखित प्रस्तुत किया जा रहा है:-

5.2.1 भूमि तथा खनिज संसाधन संरक्षण- भूमि संसाधन तथा खनिज संसाधन संरक्षण के सन्दर्भ में अथर्ववेद का पृथ्वी सूक्त विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पृथ्वी सूक्त की 63 ऋचाएं पृथ्वी संसाधन के दीर्घकालीन उपयोग पर केन्द्रित हैं। अर्थववेद के 12 वें काण्ड प्रथम सूक्त की छठी और सातवीं ऋचा में स्पष्ट रूप से कहा गया हैं कि पृथ्वी सार्वभौमिक मां है, धन की उत्पत्ति करने वाली, सुवर्ण को धारण करने वाली, निवास का आधार, विश्व की वह आश्रयस्थली तथा वैश्वानर अग्नि धारण करने वाली पृथ्वी मानव को द्रव्य प्रदान करें। महिमा और प्रतिभा से युक्त पृथ्वी जिसका संरक्षण देवता करते हैं, मानव को प्रिय, मधुर धनों तथा वर्चस्व से युक्त करें। उल्लेखित ऋचाएं अधोलिखित हैं:-

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋशभा द्रविणे नो दधातु (6)
यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा (7)
(अथर्ववेद, 12/1/6से 12/1/7)

अर्थववेद के एक अन्य सन्दर्भ में कहा गया हैं कि निधियों को धारण करने वाली पृथ्वी निवास, मणि, सुवर्ण आदि दें, वह धन प्रदान करने वाली हम पर प्रसन्न होती हुई वरदायिनी बनें। अर्थववेद के 12 वें काण्ड प्रथम सूक्त की 44 वीं ऋचा विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं:-

निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना (44)
(अथर्ववेद, 12/1/44)

5.2.2 जल संसाधन संरक्षण- ऋग्वेद ने जल की महत्ता को स्वीकार को जल को आपो: देवता कहकर सम्बोधित किया हैं, इस सम्बन्ध में ऋग्वेद के सप्तम मण्डल के 47 और 49 सूक्त विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ऋग्वेद में जल संरक्षण सम्बन्धी चेतना का जो प्रवाह विद्यमान हैं, वही चेतना प्रवाह अथर्ववेद में भी स्पष्ट रूप से मिलता हैं इसीलिए अथर्ववेद में जल को वैद्यों का वैद्य कहकर सम्बोधित किया गया हैं (अथर्ववेद 19/2/3)। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 23 वें सूक्त की 19 वीं ऋचा से 21 वीं ऋचा तक सुस्पष्ट रूप से जल के अमृत समान अनुपम औशधीय गुणों को स्वीकार किया गया हैं। साथ ही यह भी उद्घाटित किया गया है कि समस्त जीवन रक्षक औशधियां जल समूह में ही समाहित हैं, जल ही में समस्त प्राणियों को सुख देने वाला अग्नि तत्व भी समाहित हैं। जल के ही माध्यम से जल के औशधीय प्रभाव मानव शरीर में समाहित होकर निरोग जीवन प्रदान करते हैं ताकि मानव चिरकाल तक सूर्यदेव दर्शन प्राप्त करता रहें। सम्बन्धित ऋचा अधोलिखित हैं:-

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेशजमपामुत प्रशस्तये।
देवा भवत वाजिनः (19)
अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेशजा।
अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेशजीः (20)

आपः पृणीत भेशजं वरूथं तन्वे मम।
ज्योक्च सूर्यं कृशे (21)
(ऋग्वेद, 1/23/19 से 1/23/21)

यजुर्वेद में "मापो मौशर्धी हिसीः" कहकर जल को प्रदूषित करने वाली प्रत्येक मानवीय क्रियाओं का निषेध किया गया है (शुक्ल यजुर्वेद, 6/22) साथ ही साथ ऋग्वेद भी स्पष्ट रूप से "यदर्णसं मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः" (ऋग्वेद, 5/54/6) कहकर जल स्रोत के समीप अवस्थित वृक्षों को काटने का प्रतिबंध आदेशित करता हैं। इस प्रकार ऋग्वेद, अथर्ववेद और यजुर्वेद में जल संसाधन की महत्ता एवं संरक्षण का व्यापक विवेचन प्राप्त होता हैं।

5.2.3 वायु संसाधन संरक्षण- वेदों ने वायु को सुरक्षा कवच की तरह स्वीकारा है, ऋग्वेद (दषम मण्डल/ 158 वें सूक्त/प्रथम ऋचा) में वायु संसाधन की महत्ता स्वीकार करते हुए वायु को अंतरिक्ष के विकारों से रक्षा करने वाला बताया गया हैं। उल्लेखित ऋचा निम्नवत हैंः-

सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात्।
अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः (1)
(ऋग्वेद, 10/158/1)

अथर्ववेद (काण्ड11/सूक्त 6/ऋचा 15) में वायु को "वातो ह प्राण उच्यते प्राण" या प्राणवायु कहकर उच्चारित किया गया हैं जो सबमें प्रतिष्ठित हैं अतः वायु से प्रार्थना करते हुए कहा गया हैं कि अपने स्वच्छ, शुद्ध, प्रदूषण रहित प्रवाह से मानव को समस्त रोग विकार मुक्त कर दो। वायु के हितकारी गुणों को विश्व के लिए वैद्य के समान हितकारी और देवदूत के समान दिव्यता रखने वाला बतला कर संरक्षण की संकल्पना को पुष्ट किया गया हैं। सम्बन्धित ऋचा अधोलिखित हैंः-

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे (3)
(ऋग्वेद, 10/137/3)

5.2.4 वन एवं वन्य जीव संसाधन संरक्षण- वेदों में वृक्षों के संरक्षण की अवधारणा का भी व्यापक विवेचन मिलता हैं। ऋग्वेद के शष्ठं मण्डल के 48 वें सूक्त के 17 वीं ऋचा के माध्यम से वनों को काटने को मना किया गया हैं। सम्बन्धित ऋचा निम्नवत हैंः-

मा काकम्बीरमुद्वहो वनस्पतिमशस्तीर्वि हि नीनशः।
मोत सूरो अह एवा चन ग्रीवा आदधते वेः (17)
(ऋग्वेद, 6/48/17)

वेदों में स्थान स्थान पर वनस्पति को नमन किया गया हैं, यजुर्वेद के 16 वें अध्याय के 17 वीं ऋचा में "नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः" कहकर तथा इसी अध्याय की 19 वीं ऋचा में "वृक्षाणां पतये नमो" कहकर वनस्पतियों के आदर और संरक्षण भाव ही प्रस्तुत किया हैं क्योंकि वृक्ष मानव जीवन हेतु अत्यन्त उपयोगी है। अथर्ववेद में अजशृंगी नामक वृक्ष से प्रार्थना की गई हैं कि अपनी गंध से वायु और जल को प्रदूषण को नष्ट करने की कृपा कीजिए। सम्बन्धित ऋचा ख्रष्टव्य हैंः-

त्वया वयमप्सरसो गन्धर्वास्चातयामहे।
अजशृंग्यज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय (2)
(अथर्ववेद, 4/37/2)

सच हैं वेदों में गाय को अघन्या (यजुर्वेद, 8/43) कह गौ-संरक्षण किया गया हैं परन्तु यह संरक्षण सिर्फ गाय तक ही सीमित नही हैं। अथर्ववेद सुस्पष्ट रूप से आदेशित करता हैं कि जहाँ मानवीय क्रियायें स्व-अनुशासित होकर प्रख्रति निर्मित परिधियों का पालन करती हैं वहां गाय, घोड़ा, पुरुष और पशु निश्चिन्त होकर जीवित रहते हैं। सम्बन्धित ऋचा निम्नलिखित हैंः-

सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम् (25)
(अथर्ववेद, 8/2/25)

5.2.5 ऊर्जा संसाधन संरक्षण- वेदों ऊर्जा संसाधन के रूप में अग्नि को स्वीकार हैं। ऋग्वेद में सर्वप्रथम "च अग्निमीले" संबोधन के साथ अग्नि की स्तुति की गई है तथा इसी सूक्त की चतुर्थ ऋचा में अग्नि को विश्वरक्षण में समर्थ बतलाया गया हैं, सम्बन्धित ऋचा निम्नलिखित हैं:-

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि।
स इद्देवेशु गच्छति (4)
(ऋग्वेद, 1/1/4)

वैदिक चिन्तन पार्थिव, अन्तरिक्ष तथा द्यौस्थानीय अग्नि प्रकारों की उल्लेख करता हैं। पार्थिव अग्नि पृथ्वी से, विद्युत शक्ति अन्तरिक्ष से और सौर शक्ति द्यौस्थानीय अग्नि से सम्बंधित हैं। यजुर्वेद (अध्याय 3/ऋचा 3से 5) में भी अग्नि के सतत स्थायित्व का वर्णन इस प्रकार है कि "हे सदा तरुण रहने वाली अग्नि, हे सदैव प्रदीप्तमान अग्नि, तुम पृथ्वीलोक से अन्तरिक्षलोक तक सर्वत्र ही विद्यमान हो अतः तुम्हें समिधाओं और घृत आहुतियों द्वारा प्रबुद्ध करते हैं।" उल्लेखनीय बिन्दु है कि पृथ्वी से सम्बन्धित अग्नि का एक वर्तमान रूप प्राख्रतिक गैस और पेट्रोलियम भी हैं परन्तु पर्यावरण संरक्षण के ख्रष्टिकोण से सौर शक्ति को विशेष महत्त्व दिया गया हैं इसीलिये अथर्ववेद के 13 वें काण्ड प्रथम सूक्त की प्रथम ऋचा में सूर्य ऊर्जा का वह उत्पादक स्रोत बतलाया गया हैं जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से समस्त प्रजा में विद्यमान हैं, विश्व की उत्त्पति का मूल सूर्य ही हैं अतः ऐसे पोशक सूर्य प्रदत्त ऊर्जा शक्ति राष्ट्रहित में धारण करना चाहिए। सम्बन्धित ऋचा द्रष्टव्य हैं:-

उदेहि वाजिन् यो अप्स्वन्तरिदं राष्ट्रं प्र विश सूनृतावत्।
यो रोहितो विश्वमिदं जजान स त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु (1)
(अथर्ववेद, 13/1/1)

5.3 वेदों में वर्णित मानव संसाधन का वर्णन एवं विवेचन- वेदों ने मानव को निश्क्रिय रूप में प्रस्तुत न करते हुए, प्रौद्योगिकीयुक्त, सम्भावनाओं से युक्त, क्षमतावान अद्भुत संसाधन के रूप में प्रस्तुत किया हैं हांलाकि उसकी क्रियाओं का कार्यक्षेत्र परमशक्ति प्रख्रति द्वारा सुनिश्चित की गयी परिधि के अन्दर ही निश्चित किया गया हैं। अश्विनी कुमारों द्वारा राजा भुज्यु को निवास स्थान तक पहुंचाने हेतु सौ पतवारों की नाव द्वारा की गई सामुद्रिक यात्रा मानव के अदम्य साहस का ही परिचायक हैं (ऋग्वेद, 1/116/5)। वेदों में सिर्फ साहसिक सामुद्रिक यात्रा का ही विवरण नहीं मिलता अपितु लोकों के पार जाने हेतु विमान प्रौद्योगिकी जैसे दिव्यरथ का विवरण "रजसो विमानं सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम्" (ऋग्वेद, 2/40/3) के रूप में और आकाशीय यात्रा हेतु आकाशीय नौका का विवरण "तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः" (ऋग्वेद, 1/116/3) के रूप में प्राप्त होता हैं। वेदों में चित्रित मानव की क्षमताएँ भी भिन्न भिन्न हैं तदनुसार ही मानव अपने व्यवसाय का चयन का करता हैं यथा कोई शिल्पकार हैं, कोई वैद्य हैं, कोई संगीतकार हैं (ऋग्वेद, 9/112/1 और 3)। वेदों के अनुसार मानव रुपी संसाधन में सम्भावनाओं और क्षमताओं की पराकाष्ठा यह हैं कि मानव के इस अस्तित्व में परमशक्ति प्रख्रति प्रतिबिम्बित हो उठती हैं जब वह नैसर्गिक रूप से अपने स्व का विलय परमशक्ति प्रकृति में कर देता हैं, यही यजुर्वेद के बृहदरण्यकोपनिशद से उद्धत "अहं ब्रह्मास्मि" (यजुर्वेद, 1/4/10) का मूल सार हैं।

6. उपसंहार- सतत आर्थिक विकास हेतु संसाधनों का अनुकूलतम विवेकपूर्ण वर्तमान विश्व की महती आवश्यकता हैं। संसाधनों पर निरतर बढ़ता दबाव स्वयं में एक गम्भीर समस्या हैं और अन्य अवनयन सम्बन्धी समस्याओं की भी जननी हैं जिसका समाधान वेदों अर्थात प्रकृति रुपी परम शक्ति की ओर लौट कर ही सम्भव हैं। परमशक्ति प्रकृति द्वारा निर्धारित परिधियों को नैसर्गिक रूप से अंगीकार करने वाला मानव परमशक्ति के समान अनंत क्षमताओं एवं सामर्थ्य से युक्त होकर मानव कल्याणपरक सतत विकास का मार्ग प्रशस्त कर सकता हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

अथर्ववेद।

उपाध्याय, रानू (2015). प्राकृतिक संसाधन के संरक्षण में समाज की भूमिका, *ग्रंथालय,* अंक 3, पृष्ठ संख्या 1-3।

ऋग्वेद।

कुमार, शशिप्रभा (2005). वैदिक संस्कृति के विविध आयाम, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, भारत।

घई, पूनम (2015). मानव और प्रकृति पर संबंधित वैदिक चिंतन- आधुनिक संदर्भ, *वेद विद्या,* अंक 25, पृष्ठ संख्या 139-150।

यजुर्वेद।

रानी, उमा (2015). वेद विहित पर्यावरण संरक्षणभिधायी विवेचना, *वेद विद्या,* अंक 26, पृष्ठ संख्या 142-151।

शर्मा, अमित (2017). भूमि संरक्षण की वैदिक अवधारणा, *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ अडवांस एजुकेशनल रिसर्च,* अंक 2, संस्करण 3, पृष्ठ संख्या 147-148।

शर्मा, राजीव लोचन (1997). संसाधन संरक्षण भूगोल, किताब घर प्रकाशन, कानपुर, भारत।

शर्मा, राकेश कुमार एवं सहगल, महेश कुमार (2016). वैदिक काल में जल प्रबंधन, *देव संस्कृति,* अंक 8, पृष्ठ संख्या 1-7।

Semple, E.C.(1911). Influences of Geographic Environment, Henry Holt & Company, New York.

पर्यावरणीय स्वच्छता

डॉ० अमरेश कुमार अमर

(एम. ए. गोल्ड मेडलिस्ट) पीएचडी, अर्थशास्त्र विभाग, बी. एन. एम. यू, मधेपुरा

सारांश: स्वच्छता के वे सभी प्रावधान सुविधा जो मानव के मलमूत्र एवं कचरा अपशिष्ट पदार्थ आदि का निष्कासन करने में जो भूमिका अदा करते हैं यही प्रक्रिया स्वच्छता कहलाती है। सभी प्रकार की गंदगी को दूर कर स्वच्छ समाज और स्वस्थ एवं तंदुरुस्त जीवन जीना ही स्वच्छता का परिचायक है। इसे वैश्विक स्तर पर भी एक प्रमुख मानक के रूप में माना जाता है। वहीं पर्यावरण स्वच्छता का मतलब हमारे आसपास की सफाई और व्यवस्था से है जिससे वातावरण स्वच्छ बना रहे यह मानव स्वास्थ्य की रक्षा से लेकर परिस्थितिकी की स्थिरता को बढ़ावा देता है जो आज की दुनिया में बहुत महत्वपूर्ण है। वास्तव में स्वच्छ वातावरण ही स्वच्छ पर्यावरण को जन्म देता है जो समस्त आर्थिक विकास के मार्ग को प्रशस्त करता है। स्वच्छता और पर्यावरण का प्रत्येक संबंध है तथा स्वच्छता व पर्यावरण सामाजिक आयाम है जो समाज को प्रभावित करता है। स्वच्छता केवल किसी बीमारी से मुक्त रहना ही नहीं बल्कि शारीरिक और मानसिक तौर से निरोग व तंदुरुस्त जीवन जीना ही वास्तविक स्वास्थ्य की परिभाषा है। स्वच्छता के कारण मानव की रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है जिससे मानव में सकारात्मक ऊर्जा उत्पन्न होती है। स्वच्छ वातावरण से पर्यावरण दशाएं अनुकूल बनी रहती है। किसी भी प्रकार का पर्यावरण प्रदूषण स्वच्छता से नियंत्रित हो जाता है तथा मानव जीवन के स्वस्थ होने से बौद्धिक समाज में स्वस्थ मानव जीवन के लिए स्वच्छता महत्वपूर्ण स्थान रखता है, यूं कह तो मानव जीवन मूल में एक मूल स्वच्छ रहना भी शामिल है स्वच्छता भारतीय संस्कृति का प्रतीक है। भारतीय दर्शन में भी शरीर आत्मा मन बुद्धि तथा पर्यावरण को शुद्ध रखना मानव जीवन के लिए महत्वपूर्ण बताया गया है।

कुंजी: पर्यावरण, वातावरण, स्वास्थ्य, स्वच्छता, ऊर्जा।

प्रस्तावना: लेकिन वर्तमान में तेजी से बढ़ते शहरीकरण हुआ औद्योगिक करण की प्रक्रिया से तथा लोग व्यक्तिगत स्वार्थ और समाज कल्याण संबंधित क्रियाकलाप को नजरअंदाज कर लोग खुद चकाचक करने में दौड़ लगाए हुए हैं, जिसके कारण कचरा अपशिष्ट पदार्थ मल मूत्र का और नियंत्रित अव्यवस्थित और गलत तरीके से प्रयोग करना जो अपशिष्ट पदार्थों को बढ़ावा दिया है। इसके चलते मानवीय अस्तित्व दिन प्रतिदिन खतरे में पड़ता जा रहा है तथा अस्वच्छ वातावरण से पर्यावरण अस्वस्थ हो जाता है और यह मानवीय संसाधन को आसमान स्थिति पर पहुंचा देता है। इससे सामाजिक आर्थिक विकास की बात तो छोड़िए इसके कारण समस्त क्रियाकलापि अवरोध हो जाता है। इसलिए स्वस्थ समाज के लिए मानव द्वारा सभी क्रियाकलाप जो मानव के मलमूत्र अन्य कचरा अपशिष्ट पदार्थ का निष्कासन उचित जगह पर व्यवस्थित ढंग से उपयोग करना चाहिए। खुद को भी हानिकारक तत्वों से बचाना और अपने परिवार समाज गांव शहर का स्वच्छ वातावरण का होना समस्त मानव प्राणी जगत के लिए हितकर है। इस प्रकार स्वच्छता विकास और सामाजिक परिवर्तन तीनों का आपस में काफी घनिष्ठ संबंध है। एक विकसित समाज की पहचान का संकेतक समाज में अच्छे स्वास्थ्य और स्वच्छता का स्तर है। कोई भी समाज जहां के लोग गंदगी में रहते हैं और स्वास्थ्य के स्तर पर कमजोर हो उन्हें विकसित या सभ्य नहीं कहा जा सकता। स्वास्थ्य का संबंध अनिवार्य रूप से स्वच्छता से जुड़ा हुआ है इसलिए जहां स्वच्छता है वहीं स्वास्थ्य है। साथ ही साथ जहां स्वास्थ्य है वहीं सामाजिक आर्थिक विकास और प्रगति भी है। क्योंकि एक स्वस्थ समाज में रहना-सहना ही एक बेहतर मानव संसाधन हो सकते हैं और वही राष्ट्र के विकास में सहयोगी। अगर समाज में स्वास्थ्य का स्तर बेहतर नहीं रहता तो स्वास्थ्य सुविधाओं पर राजस्व का एक बड़ा हिस्सा खर्च करना पड़ता है अर्थात एक मानव के विकास का निर्धारण उसके स्वस्थ जीवन जीने के आधार पर किया जाता है।

वस्तुत स्वच्छता एक सामाजिक मूल्य है लेकिन आज भारत सहित विश्व के कई देश साफ सफाई के संकट से जूझ रहे हैं। स्वच्छता के अभाव में कई तरह की समस्याएं और बीमारियां भी उत्पन्न हो रही है। स्वच्छता के लिए भारत में भी व्यापार प्रयास किया जा रहे हैं इसके बावजूद भी आज लगभग 40 से 45 प्रतिशत लोग साफ सफाई के संकट से जूझ रहे है जो इस समाज के लिए बहुत बड़ी चुनौती है। इसलिए ऐसी स्थिति से निपटने में सरकार के अलावे हमारे समाज की भी बहुत बड़ी भूमिका होगी। क्योंकि सफाई के प्रति समाज में जागरूकता में कमी की वजह है जिसके कारण देश की इतनी अधिक आबादी इस संकट में जी रही है। पता नहीं इतने लंबे समय तक स्वच्छता पहलू पर कार्य किया जा रहा है फिर भी यह समस्या बनी

हुई है। यह भारत की एक बहुत बड़ी सामाजिक समस्या ही नहीं बल्कि व्यक्तिगत पारिवारिक संस्कृतिक और राजनीतिक समस्या के रूप में आज मौजूद है। इसलिए इसे व्यापार स्तर पर देखने और समझने की आवश्यकता है जातिगत वर्ग संप्रदाय और समूहगत जो जटिलताएं गांव या शहरों में मौजूद है इसके कहीं ना कहीं विचारों और मान्यताओं का भी इसमें बहुत बड़ी भूमिका है। जाति वर्ग और संप्रदाय से जहां लोगों की पहचान जोड़ी जाती है वहां पर स्वच्छता और साफ सफाई की भला कहने सामूहिकता एवं सामाजिकता से जोड़ कर देखने की कोशिश होनी होगी। उदाहरण स्वरूप किसी विशेष जाति या संप्रदाय के घर या द्वार के सामने अधिक कुरागंद किया महिला पड़ा है तो कोई भी अनजान व्यक्ति झट से यह कह देगा कि अरे यह लोग तो इस जाति के होंगे उस जाति के होंगे यानि इस जाति के लोग गंदे ही रहते हैं और यही लोग गंदगी करते हैं। परंतु वे इन लोगों के पीछे की समस्या और अन्य पशुओं पर ध्यान नहीं देगा कि मानव होने के कारण इसके प्रति उसका क्या कर्तव्य बनता है। इसलिए सबसे पहले उन लोगों को भी उनके प्रति सोचने की नजरिया धारणा को बदल कर ऐसे कार्य पर लोगों को जागरूक करें और उसे उनके अनुसार ही देखने की आवश्यकता है। लेकिन भारत में स्वच्छता के प्रति लोगों की इतनी घटिया मानसिकता का उदाहरण एक नहीं अनेक है। यही कारण है ब्रिक्स देश में स्वच्छता के मामले में भारत सबसे फिसड्डी है। शहरों में तो आमतौर पर स्वच्छता का मापदन केवल और केवल घर की गंदा पानी,कचरा अपशिष्ट प्रदार्थ जो भी हो उसे गली या पार्क में फेंक दिया जाता है जैसे मानो सड़क गली पार्क गंदगी,कचरा उसे फेंकने तक ही जिम्मेदारी है, बाकी का कार्य शासन प्रशासन द्वारा लगाए गए कर्मचारियों का है। स्वच्छता के प्रति हमारे लापरवाही गज जिम्मेदारी नजरिया और अपने कर्तव्यों का संकुचित दृष्टिकोण का परिणाम यह देखने को मिल रहा है कि देश की पवित्र नदियां नहरे और जिले सभी प्रदूषित हो गई है। यहां पानी पीने लायक की बात तो छोड़िए यह स्नान करने के लायक नहीं है। वास्तव में यह ऐसी सामाजिक समस्या है जिसे गहराई से समझने की आवश्यकता है। गांव में आज भी चाय धनी व्यक्ति हो या फिर निर्धन स्वच्छता को प्राथमिकता के रूप में नहीं देखा शहरों में भी स्वच्छता प्राथमिकता नहीं के बराबर है जो है वह भी चार दिवारी के अंदर है।

स्वच्छता का सबसे जीता जागता उदाहरण वर्तमान में कोविड-19 महामारी से सीखा जा सकता है। ऐसी भयानक महामारी भारत ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया को धाराशाही कर दिया है। इस संक्रमण का इलाज करने के लिए बड़े से बड़े डॉक्टर ने भी हाथ पैर हाथ धरे चुप बैठे आखिर इसका निदान कैसे किया जाए। सिर्फ व सिर्फ इससे बचने के लिए लोग खुद को स्वच्छता प्रक्रिया अपनाना शुरू कर दिया। लोग अपने जीवन में कई बदलाव किया जैसे हम अपने हाथों को सफाई बार-बार धोना सैनिटाइजर का प्रयोग करने लगा। पुराने जमाने में लोग भोजन के पहले हाथ पैर धोकर ही भोजन करते थे जिन्हें हम नजरअंदाज किया जा रहे थे वह आज फिर करने लगे हैं। स्वास्थ्य के प्रति कितना सजक रहना है इस बात को कोविड-19 महामारी ने लोगों को समझा दिया है। साफ सफाई व स्वच्छता लोगों के सेहत पर कितना प्रभाव डालती है इस बात से अब लोग रूबरू हो चुके हैं कि उन्हें उचित समय पर हाथ धोना साफ-सफाई करना चाहिए।

इतना ही नहीं आज तो लोगों द्वारा बढ़ते गए सावधानियां के कारण आज पर्यावरण साफ और स्वच्छ दिखाई दे रहा है जो चीजें नजदीक से नहीं दिख रहे थे वो अब दूर से ही पहाड़ियों की ऊंची चोटी दिखाई दे रही है। यह इनकी परहेज और सावधानियां का परिणाम है। इस तरह स्वच्छता एक क्रिया है जिससे हमारा शरीर दिमाग और घर के आसपास तथा कार्य क्षेत्र साफ सफाई शुद्ध रहते हैं। हमारे मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए साफ सफाई बेहद जरूरी है अपने आसपास के क्षेत्र और पर्यावरणीय स्वच्छता सामाजिक और बौद्धिक स्वास्थ्य के लिए बहुत जरूरी है। यह तब संभव है जब सामाजिक मूल्य को समझेंगे क्योंकि सामाजिक वे आदर्श है जो सामाजिक जीवन में अच्छा या बुरा उचित या अनुचित वांछित या अवांछित पहलुओं और आचरण में अभिव्यक्त होते हैं।

-: संदर्भ सूची:-

1 डॉ. एम. एल. झींगन, विकास एवं आयोजन, वृंदा पब्लिकेशन प्रा. लि.।
2 डॉ. जे.पी. मिश्रा, आर्थिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन।
3 डॉ. आर. एल. पाटनी।
4 जी.एल. शर्मा, सामाजिक मुद्दे, रावत पब्लिशिंग नई दिल्ली।
5 बी.के. बक्शी, व्यवहारिक जीवन विज्ञान एवं मानव स्वास्थ्य।
6 डॉ अभय सिंह एवं सुरेंद्र सिंह, पर्यावरण एवं समाज।
7 इरफान हबीब, मनुष्य और पर्यावरण, राजकमल प्रकाशन।

गृहणियों में रसोई सुरक्षा एवं स्वच्छता संबंधी ज्ञान का अध्ययन

डॉ० स्नेह लता

अतिथि सहायक प्राध्यापक, गृह विज्ञान विभाग, वैशाली महिला कॉलेज, हाजीपुर, बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार: रसोई घर वह स्थान है जहां भोजन तैयार किया जाता है और इसका स्वच्छ और सुरक्षित होना अत्यंत महत्वपूर्ण है ताकि परिवार के सदस्यों को खाद्य जनित बीमारियों से बचाया जा सके। इस अध्ययन का उद्देश्य गृहणियों में रसोई सुरक्षा और स्वच्छता के संबंध में उनके ज्ञान और व्यवहार का मूल्यांकन करना है। महिलाएं रसोई सुरक्षा और स्वच्छता के संबंध अच्छी तरह से जागरूक नही है। गृह विज्ञान विषय के माध्यम से उन्हे जागरूक किया जा सकता है। प्रस्तुत शोध में इसी को जानने का प्रयास किया गया। बिहार राज्य के 10 जिलों (कोटा प्रतिचयन) से 100 गृहिणियों उद्देश्यानुसार प्रतिचयन को प्रतिदर्श के रूप में चयन करने के बाद साक्षात्कार अनूसूची द्वारा आंकड़ो का संग्रहण किया गया तथा प्राप्त आंकड़ो का विश्लेषण प्रतिशत में किया गया। परिणाम बताते है कि महिलाएं रसोई में जरूरत से ज्यादा समय बिताने के बावजूद जानकारी में अभी भी काफी पीछे है। उनमें जागरूकता का अभाव है। रसोई संबंधी ज्ञान वैसे तो सभी को होना आवश्यक है लेकिन जब महिलाओं की बात आती है तो उन्हें और भी जागरूक एवं जानकार बनाने हेतु शिक्षण एवं प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है।

शब्द कुंजी: रसोईघर, गृह विज्ञान सुरक्षा, स्वच्छता, जागरूकता।

परिचय: रसोई घर की स्वच्छता और सुरक्षा न केवल स्वास्थ्य के लिए बल्कि समग्र जीवनशैली के लिए भी महत्वपूर्ण है। अशुद्ध भोजन और अस्वच्छ रसोई का उपयोग खाद्य जनित रोगों के प्रमुख कारण हो सकते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि गृहणियां रसोई की स्वच्छता और सुरक्षा के मानकों का पालन करें। रसोई सुरक्षा और स्वच्छता का महत्व आज के समय में अत्यधिक बढ़ गया है। स्वास्थ्य और स्वच्छता को बनाए रखने के लिए रसोई की सफाई और सुरक्षा बेहद जरूरी है। गृहणियों का इस संबंध में ज्ञान और उनकी भूमिका पर शोध करना महत्वपूर्ण है ताकि वे अपने परिवार की सेहत को बनाए रख सकें। रसोई सुरक्षा के महत्वपूर्ण पहलू:- आग से सुरक्षा रसोई में अक्सर गैस बिजली के उपकरण और गर्म तेल का इस्तेमाल होता है। जिससे आग लगने का खतरा बना रहता है। गृहणियों को गैस लीक की पहचानए आग बुझाने के उपकरणों का प्रयोग और आग लगने की स्थिति में प्राथमिक उपचार का ज्ञान होना चाहिए। खतरनाक पदार्थो का सही प्रबंधन रसोई में कई प्रकार के खतरनाक पदार्थ होते हैं। जैसे कि तेजाब सफाई करने वाले केमिकल्स आदि। इनका सही तरीके से उपयोग और भंडारण करना आवश्यक है ताकि बच्चों और पालतू जानवरों की सुरक्षा सुनिश्चित हो

सके। बिजली के उपकरणों का सुरक्षित उपयोग रसोई में मिक्सर टोस्टर माइक्रोवेव आदि कई उपकरण होते हैं। इनका सही उपयोग नियमित निरीक्षण और समय-समय पर मरम्मत करना आवश्यक है ताकि शॉर्ट सर्किट या बिजली के झटके से बचा जा सके। रसोई स्वच्छता के महत्वपूर्ण पहलू:-व्यक्तिगत स्वच्छता खाना बनाने से पहले और बाद में हाथों को साबुन से धोना बालों को बांधकर रखना और स्वच्छ कपड़े पहनना अपने नाखूनों को छोटा और साफ रखना आवश्यक है ताकि खाने में किसी प्रकार के बैक्टीरिया या गंदगी न मिल सके। रसोई उपकरणों की सफाई बर्तनों चाकू कटिंग बोर्ड आदि की नियमित सफाई करनी चाहिए। खासकर उन बर्तनों की जो कच्चे मांस या मछली के संपर्क में आते हैं क्योंकि इनमें बैक्टीरिया पनप सकते हैं। खाद्य पदार्थो का सुरक्षित भंडारण खाद्य पदार्थो को सही तापमान पर और सही कंटेनरों में रखना चाहिए। बासी खाने को फेंक देना चाहिए और फ्रीजको नियमित साफ करना चाहिए। कचरे का निपटान रसोई में कचरे को सही तरीके से अलग-अलग करना और समय-समय पर निपटाना आवश्यक है ताकि घर में बदबू और कीट-पतंगे न आएं।

महत्व:- रसोई घर में सुरक्षा और स्वच्छता के महत्व को नकारा नहीं जा सकता, क्योंकि स्वच्छता बनाए रखने से विभिन्न खाद्य जनित बीमारियों पर काबू पाने में मदद मिल सकती है। स्वच्छता की कमी के कारण रसोई में ई.कोली., लिस्टेरिया और साल्मोनेला जैसे हानिकारक बैक्टीरिया पनप सकते हैं।

रसोई में सुरक्षा और स्वच्छता महत्वपूर्ण क्यों है, इसके कारण है:-

- यह सुनिश्चित करता है कि भोजन उपभोग के लिए सुरक्षित है।
- खाद्य पदार्थों में कीटाणु को बढ़ने से रोकता है। इसके परिणामस्वरूप खाद्य विषाक्तता उत्पन्न नहीं होती।
- क्रॉस-संदूषण को रोकने में मदद करता है।
- यह हमें गैस्ट्रोएटेराइटिस, लिस्टेरियोसिस हिपेटाइटिस ए. आदि जैसी गंभीर स्वास्थ्य स्थितियों से बचाता है।
- स्वस्थ जीवन को बढ़ावा देता है।
- बिजली उपकरणों, गैस आग खतरनाक पदार्थों तथा तेजधार वाले उपकरणों से होने वाली दुर्घटनाओं से बचाता है।

इस अध्ययन से यह पता चल सकेगा कि गृहणियों को रसोई सुरक्षा और स्वच्छता के बारे में कितना ज्ञान है और किन क्षेत्रों में सुधार की आवश्यकता है। इससे स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ेगी और बीमारियों के फैलाव को रोका जा सकेगा।

इसी संदर्भ में शर्मा० ए० (2018) में "गृहणियों का संबंध रसोई से व स्वच्छता में योगदान" गृहणियों का बहुत ही घनिष्ठ संबंध होता है रसोई एवं घर के सभी सदस्यों के स्वास्थय के विषय में इसी संदर्भ में अध्ययन किया है। उन्होंने पाया कि गृहणियों के ज्ञान से रसोई के स्वच्छता को बेहतर प्रबंधन किया जा सकता है। जिससे परिवार के स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार हुआ।

अध्ययन के उद्देश्य:

(1) गृहणियों में रसोई सुरक्षा व स्वच्छता के ज्ञान का अध्ययन करना।

(2) गृहणियों को रसोई सुरक्षा व स्वच्छता के प्रति जागरूकता पैदा करना

अध्ययन विधि:

प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिए बिहार राज्य के जिलों से घरों का चयन में किया गया। अध्ययन के लिए 10 जिलों यथा पटना, वैशाली, मुजफ्फरपुर, नालंदा, गया, रोहतास, बेगुसराय, मधुबनी, समस्तीपुर एवं बाँका से घरों एवं 100 महिला गृहणियों का चयन किया गया। कोटा प्रतिचयन से घरों का तथा उद्देश्यानुसार प्रतिचयन से महिला गृहणियों का चयन किया गया। आकाड़ों के संग्रहण साक्षात्कार अनुसूची के द्वारा किया गया। परिणामों का विश्लेषण प्रतिशत में किया गया।

परिणाम एवं परिचर्चा:

गृहणियों में रसोई स्वच्छता के ज्ञान का आकलन

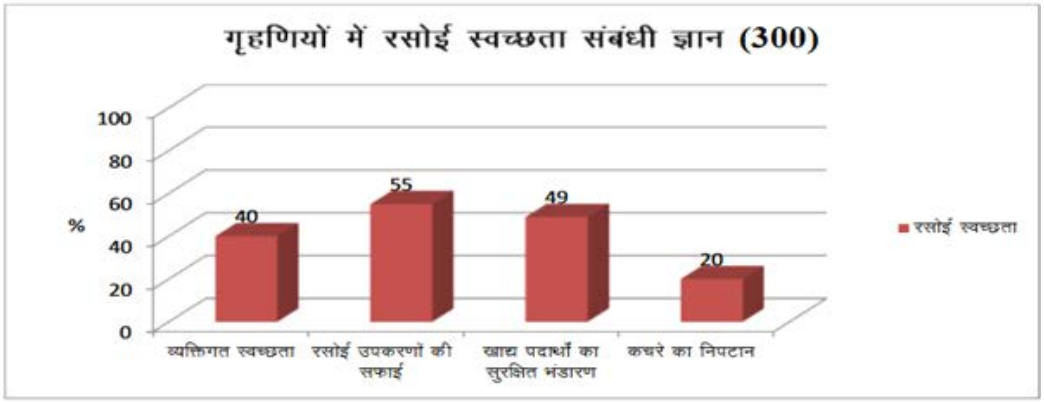

ग्राफ 1: गृहणियों में रसोई स्वच्छता के ज्ञान का आकलन

ग्राफ 1 में अधिकांश गृहणियों में रसोई सुरक्षा के बुनियादी ज्ञान का अभाव पाया गया। आग से सुरक्षा और खतरनाक पदार्थों के प्रबंधन के बारे में जागरूकता कम थी। बिजली के उपकरणों के सुरक्षित उपयोग के बारे में मध्यम स्तर का ज्ञान पाया गया। आग से सुरक्षा और खतरनाक पदार्थों के प्रबंधन में जागरूकता बढ़ाने की आवश्यकता है। रसोई उपकरणों की सफाई और खाद्य पदार्थों के सुरक्षित भंडारण में सुधार की आवश्यकता है।

गृहणियों में रसोई सुरक्षा के ज्ञान का आकलन

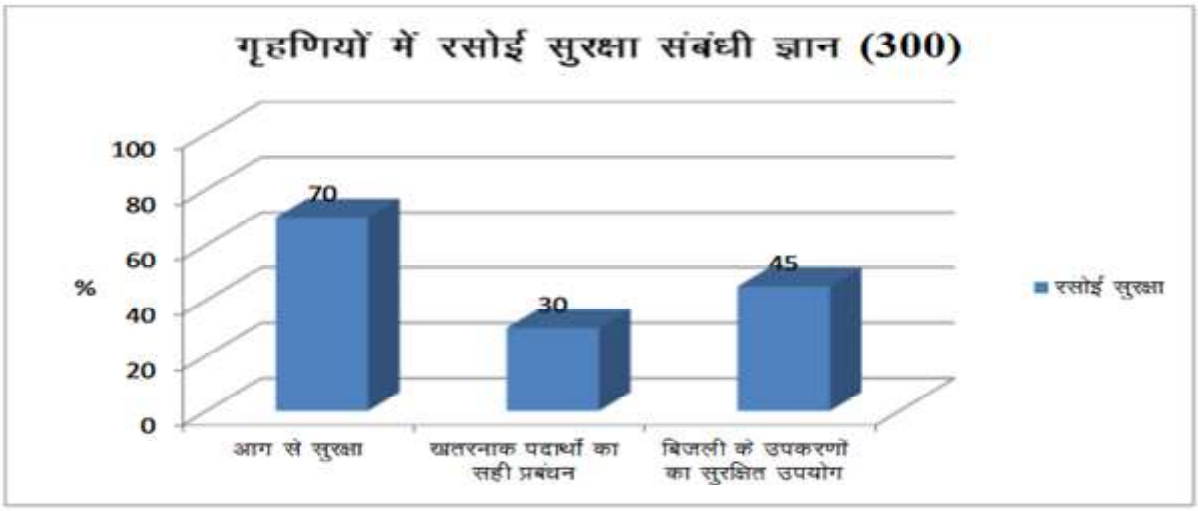

ग्राफ 1: गृहणियों में रसोई स्वच्छता के ज्ञान का आकलन

ग्राफ 2 में अधिकांश गृहणियां व्यक्तिगत स्वच्छता का पालन करती हैं लेकिन उपकरणों की सफाई और खाद्य पदार्थों के भंडारण में सुधार की आवश्यकता है। कचरे के निपटान के तरीके अक्सर असमान और अपर्याप्त पाए गए। रसोई उपकरणों की सफाई और खाद्य पदार्थों के सुरक्षित भंडारण में सुधार की आवश्यकता है।

निष्कर्षः- प्रस्तुत शोध परिणाम के आधार पर निष्कर्ष के रूप में स्पष्ट है कि अधिकांश गृहणियों में रसोई सुरक्षा के बुनियादी ज्ञान का अभाव है। आग सुरक्षा खतरनाक पदार्थों के उचित प्रबंधन के बारे में जागरूकता कम है। व्यक्तिगत तथा रसोई स्वच्छता का पालन भी पर्याप्त नहीं है।

रसोई किसी भी घर केंद्र होती है। इसलिए इसे साफ रखना और स्वच्छता के नियमों का पालन करना जरूरी है। खाना पकाते समय सुरक्षा और स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिए ताकि स्वास्थ्य संबंधी बीमारियों तथा रसोई में आग जनित तथा बिजली जनित दुर्घटनाओं से बचा जा सके।

सुझावः- निष्कर्षतः अध्ययन में पाया गया कि रसोई सुरक्षा और स्वच्छता के बारे में जागरूकता और ज्ञान में सुधार की आवश्यकता है। इससे गृहणियों को सुरक्षा और स्वास्थ्य संबंधी जोखिमों से बचने में मदद मिलेगी और उनके परिवारों की स्वास्थ्य स्थिति में सुधार होगा। इसके लिए समुदाय-आधारित जागरूकता कार्यक्रम और शिक्षा अभियान आवश्यक हैं। गृहविज्ञान विषय के द्वारा विद्यालय तथा महाविद्यालय में छात्रों को शिक्षित और जागरूक करना चाहिए। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि अभी भी गृहणियों रसोई के सभी पहलूओं से अवगत होना बाकी है इसके लिए जरूरी है कि सामुदायिक केंद्रों में प्रशिक्षण कार्यक्रम और कार्यशालाएं आयोजित की जानी चाहिए। रसोई सुरक्षा और स्वच्छता के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए स्थानीय मीडिया और सोशल मीडिया का उपयोग किया जा सकता है। गृहणियों को संसाधन और उपकरण उपलब्ध कराने के लिए सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों के साथ साझेदारी की जा सकती है।

सन्दर्भ सूचीः-

1. Brown, L. M., & Green, K. A. (2022). Evaluating kitchen safety knowledge among homemakers. Journal of Home Health Studies, 15(2), 45&60. https://doi.org/10.1234/jhhs.v1512.5678
2. Smith, J. (2020). Kitchen safety and hygiene for homemakers. HomePress.
3. U.S. Department of Health and Human Services. (2021). Home kitchen hygiene and safety practices (Report No. HHS&2021&45). https://doi.org/10.5678/hhs2021.45
4. National Kitchen Safety Association. (2023, April 10). Kitchen safety tips for homemakers. NKS Association. https://www.nksa.org/kitchen&safety&tips
5. Gupta, R. (2023). Assessment of kitchen hygiene practices among urban homemaker's unpublished master's thesis). University of Delhi.
6. Kumar, P. (2022, March 15). Enhancing kitchen safety education for homemakers. In R. Singh (Chair), Advancements in home health education. Symposium conducted at the meeting of the Indian Health Organization, New Delhi, India.
7. https://lead.academy.org> blog Health, Safety and hygiene rules to be followed in the kitchen.

डूंगजी जवाहरजी का स्वतंत्रता आन्दोलन में योगदान

डॉ० भगवान सिंह शेखावत

सहायक आचार्य, इतिहास विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

राजस्थान की धरती सूरों और रणबांकुरों की जन्म भूमि रही है। यहाँ ऐसे वीरों ने जन्म लिया जिन्होंने अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए अपने प्राण न्यौद्दावर कर दिये। महाराणा प्रताप, दुर्गादास राठौड़ आदि वीरों ने मातृभूमि को आजाद रखने के लिए दुश्मनों के आगे घुटने नहीं टेके। दूसरी ओर यहाँ ऐसे भी कई वीर हुए जिन्होंने अंग्रेजी सत्ता के अन्याय के खिलाफ घमासान मचा दिया। उन्होंने जगह-जगह अंग्रेजों की छावनियां लूटी और वह धन गरीब जनता में बांटा। ऐसे वीरों को अंग्रेज इतिहासकारों ने डकैत, धाड़ायती और लुटेरा माना। परन्तु लोक मानस ने उनकी वन्दना की। ऐसे वीरों में डूंगजी-जवाहरजी का नाम प्रमुख माना जाता है। वे ऊँचे दर्जे के मातृभूमि प्रेमी वीर थे। उनकी गुमेज गाथा आज भी राजस्थान की जनता की जुबान पर है। राजस्थान के इतिहासकारों राष्ट्रीय कवियों और लोक कवियों ने मुक्त कंठ से उनके यश का बखान किया है। दोहा, सोरठा, गीत, कवित्त और छावलियों में उनकी वीरता का सांगोपांग वर्णन मिलता है।

ठाकुर डूंगर सिंह और ठाकुर जवाहर सिंह का जन्म शेखावाटी में बठोठ पाटोदा में हुआ। वे आपस में चचेरे भाई थे।1 बठोठ पाटोदा में इनका बड़ा ही वर्चस्व था। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए डूंगरसिंह जवाहरसिंह का विद्रोहात्मक संघर्ष बड़ा संगठित, सशक्त और अंग्रेज सत्ता को आतंकित कर देने वाला था। ठाकुर जवाहर सिंह और ठाकुर डूंगरसिंह के साथ शेखावाटी के खीरोड़ा, मोहनवाड़ी मझाऊ, खड़ब तथा देवता ग्रामों के सल्हदीसिंहोत ठाकुर सम्पतसिंह के नेतृत्व में आमिले थे। यह अंग्रेज विरोधी संघर्ष केवल ठाकुर जागीरदारों तक ही सीमित नहीं था अपितु जाट, मीणा, गूजर, लुहार, सेन आदि जातियों के जाग्रत लोगों के सक्रिय सहयोग से आरम्भ हुआ था। सांवता मीना, लोटिया, जाट, बालिया नाई, करणिया मीना आदि के उल्लेख से यह तथ्य स्पष्ट ही सत्य प्रतीत होता हैं। इस संगठित अभियान की कमान ठाकुर जवाहर सिंह के हाथ में थी।[2]

संवत् 1895 वि. में ठाकुर डूंगरसिंह, ठाकुर जवाहरसिंह, ठाकुर खुमान सिंह बीदावत लोढसर, हरिसिंह बीदावत, अन्नजी बीदावत भोजोलाई और करणसिंह बीदावत रूपेली आदि ने बीकानेर के लिछमीसर आदि अनेक गांव लूटे और बीकानेर से जोधपुर किशनगढ होते हुए अजमेर मेरवाड़ा की तरफ चले गये।[3] ठाकुर डूंगरसिंह अपने ससुराल झड़वासा में विश्राम के लिए जा ठहरा। इस घटना से अंग्रेज सत्ता बहुत आतंकित होकर उत्तेजित हो गई और स्वतंत्रता संग्राम के सक्रिय योद्धाओं को पकड़ने के लिए सभी तरह के उपाय करने लगी। झड़वासे का भैरवसिंह गौड़ डूंगरसिंह का सम्बन्धी था। अंग्रेजों ने उसको भय, आतंक और लोभ दिखाकर डूंगरसिंह को पकड़ने के लिए राजी कर लिया। भैरवसिंह ने डूंगरसिंह के साथ दिखावटी आत्मीयता प्रकट करके उसे गोठ (भोज) दी और छल से इतनी शराब पिलाई कि वह अपनी सुध-बुध खो बैठा। उसने उस तरफ गुप्त रूप से अजमेर नसीराबाद में सूचना दे दी। अजमेर और नसीराबाद की छावनी की अंग्रेज सेना युद्ध सज्जा से सज-धनकर झड़वासे में विश्राम करते हुए उस स्वतंत्रता संग्राम का प्रमुख माना जाने वाला योद्धा डूंगरसिंह को अचानक जा घेरा। भैरवसिंह गौड़ ने उसके शस्त्र पहले ही अपने कब्जे मं कर लिये थे। ऐसी अर्द्धचेतन अवस्था में उस नर सार्दूल डूंगरसिंह को अंग्रेजों ने बन्दी बनाकर सुरक्षा की दृष्टि से आगरे के लाल किले में बंद कर दिया। इस घलागात से शेखावत और डूंगरसिंह के सहयोगियों में बहुत रोस भड़क उठा। वे आगरे के लाल किले पर आक्रमण करके डूंगरसिंह ने कैद से छुड़ाने के लिए तैयार हो गये।[4]

ठाकुर जवाहर सिंघ ने आगरे के किले पर आक्रमण करके डूंगरसिंह और उसी की तरह पकड़े हुए दूसरे कुछ अंग्रेज राज विरोधी स्वतंत्रता सेनानियों को आजाद करवाने की योजना बनाई। इस योजना की सफलता के लिए अपने गांव बठोठ के नीगरवाल गौत्र के जाट लोटिया और मीणा जाति के योद्धा सांवता को आगरा भेजा और वहाँ की अन्दर की और बाहर की जानकारी मंगाई। सारी जानकारी लेकर वि.सं. 1903 में ठाकुर जवाहरसिंह, ठाकुर भोपालसिंह, ठाकुर बखतावरसिंह, श्यामसिंहोत, ठाकुर खुमानसिंह बीदावत लोढसर, मानसिंह लाडखानी, लोटिया जाट, सांवता मीणा, बालू नाई आदि कोई चार सौ वीर बरात का बहाना बनाकर आगरा की तरफ कूच किया। अवसर की तोह में दूल्हा के मामा की मृत्यु का कारण बनाकर

पन्द्रह दिन तक आगरा में ठहरे हुए रहे। तत्पश्चात् मोहर्रम के ताजिया के दिन अचानक निसरनी लगाकर किले में कूद पड़े। किले के किलेदारों, रखवालों आदि को मार काटकर डूंगरसिंह समेत सभी बंदियों को आजाद कर निकाल दिया। बलिदानी योद्धाओं के गुणगीत देश भर में गूंजने लगे।

ठाकुर जवाहर सिंह के प्रयास से भारत की आजादी के दीवाने डूंगरसिंह आदि ने आगरा से कूच करके भरतपुर और अलवर राज्य के पहाड़ी इलाके को तेजी से पार करते हुए भिवानी के पास बड़बड़ मुवाणा गांव के निकट जंगल में विश्राम लिया। तत्पश्चात् बठोठ पाटोदा में पहुँचकर राजपूताना से अंग्रेजों के पैर उखाड़ने की योजना बनाई। बाद में रामगढ़ के धनाढ्य सेठों से पन्द्रह हजार की नकद रकम लेकर ऊँट, घोड़ा और अस्त्र-शस्त्र की खरीद की। तत्पश्चात् अजमेर के पास वाली छावनी नसीराबाद पर आक्रमण करके राज का खजाना लूटा। इस आक्रमण में अंग्रेजों के होंसले पस्त हो गये। वे किसी भी तरीके से डूंगरसिंह एवं जवाहरसिंह को कैद करना चाहते थे। इस हेतु अंग्रेजों ने आजादी के दीवाने ठाकुर जवाहरसिंह और ठाकुर डूंगरसिंह को कैद करने की योजना बनाई। अंग्रेजों ने यह काम बीकानेर नरेश रतनसिंह को सौंपा। महाराजा रतनसिंह ने साह केसरीमल को डूंगरसिंह को पकड़ने के लिए सेना देकर भेजा। पूंगल और बरसलपुर के पास दोनों पक्षों में जबरदस्त मुठभेड़ हुई जिसमें कुछ विद्रोही पकड़े गये और कुछ सेना को चीरते हुए भाग गये।[5]

नसीराबाद की छावनी और राज के खजाने की लूट से अंग्रेजों के क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। उस और स्वतंत्रता के पुजारी जनमानस में असीम गौरव का संचार हुआ। कवियों और विरूद वाचकों के कंठों पर डूंगरसिंहघ जवाहरसिंह के नाम नृत्य करने लगे। वे जनमानस के कण्ठहार बन गये, यथा -

जुवार डूंग दीधी जरू, रिपुवां इण विध रेस।
रेणव ओ इचरज रयो, सुण जुध वात महेस।।
रीझां देवण जुधकरण, मै न सुणै जग मांय।
जुंवार डूंग दोनूं जिसा, नर जनमें फिर नांय।।
भूप अनम्मी भाळवां, घणरिपु करण संहारा।
अे कूरम इळ पर उभै, जनम्या डूंग जंवार।।
काका में पण नह कमी, निडर भतीजा न्हार।
अे कूरम रहसी अखी, जुग-जुग डूंग जुहार।।
आंठ पहर देवै अजां, साराई दाद संसार।
इळ जनम्या माटी उभै, जबरा डूंग जुहार।।[6]

कर्नल जेम्स सदरलैंड ने राजपूताने के राजाओं को डूंगरसिंह जवाहरसिंह को पकड़ने के लिए कड़े आदेश भेजे। उसने कप्तान डिक्सन, मेजर फास्तर, कप्तान सां और बीकानेर के सेनापति ठाकुर हरनाथसिंह नारणोत अघरासर के नेतृत्व में सेना भेजी। जोधपुर के महाराजा तखतसिंह ने मेहता विजयसिंह, कुशलराज सिंघवी और किलेदार औनाड़सिंह के नेतृत्व में राज्य की सेना भेजी और जोधपुर राज्य के जागीरदारों को अपनी सेना के साथ इनकी सहायता के लिए शामिल होने का आदेश दिया। महाराजा तखतसिंह का आदेश मानकर जोधपुर राज्य के जागीरदार रियासती सेना में कप्तान हार्डकसल भी डीडवाना पहुँचकर दलबल के साथ उनसे जा मिले। घड़सीसर गांव में दोनों पक्षों में आमना-सामना हुआ। दोनों तरफ से जमकर लड़ाई हुई। स्वतंत्रता सेनानी वीरता से मुकाबला करते हुए राज की सेना के घेरे में फंस गये। ठाकुर हरनाथसिंह और कप्तान सां के विश्वास, आग्रह और नम्रता के बर्ताव से आश्वस्त होकर ठाकुर जवाहरसिंह ने आत्मसमर्पण कर दिया। ठाकुर जवाहरसिंह को बाद में बीकानेर ले गये जहाँ महाराजा रतनसिंह ने उसे बहुत सम्मान के साथ अपने यहाँ रखा। अंग्रेजों ने उसे महाराजा से मांगा परन्तु महाराजा ने ठाकुर जवाहर सिंह को अंग्रेजों के हाथों में नहीं सौंपा।

ठाकुर डूंगरसिंघ घड़सीसर के सैनिक घेरे से निकलकर जैसलमेर राज्य की तरफ चला गया। जैसलमेर के गिरदड़े गांव के पास मेड़ी में हुकमसिंह और मुकुंदसिंह भी उससे जा मिले। राज की सेना ने उनको जा घेरा। दिन भर की लड़ाई के पश्चात् ठाकुर प्रेमसिंह लेड़ी और नींबी के ठाकुर आदि के प्रयासों से मरने की प्रतिज्ञा छोड़कर ठाकुर डूंगरसिंह ने आत्म समर्पण कर दिया।

ठाकुर डूंगरसिंह को जोधपुर के किले में ताजीमी सरदारों की तरह नजर कैद की सजा मिली और उसी अवस्था में उनका स्वर्गवास हुआ। ठाकुर जवाहरसिंह बीकानेर नरेश के पास रहे। जब रावराजा भैरवसिंह सीकर राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए तब वि.सं. 1907 के पश्चात् ठाकुर जवाहर सिंह को बीकानेर नरेश और ब्रिटिश सरकार से आग्रह करके नजरबंदी से छुड़वाकर सीकर ले आये। तत्पश्चात् उनका सीकर के राजकीय सेवाकाल में अपने ठिकाने बठोठ में स्वर्गवास हुआ। परन्तु मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए कष्ट उठाने वाले कभी भी नहीं मरते हैं। उनकी कीर्ति काया हमेशा संसार में अमर रहती है। कवि उदयराज उजळ ने कहा है, यथा-

''मरै नहीं भड़ मारका, धरती बेड़ी धार।
गायीजै जस गीतड़ा, जग में डूंग जंवार।।[7]
छंद मोतीदाम ठाकुर जुवारसिंघ सेखावत रो
भिड़ियौ इम ज्वार लिया भड़ संग।
इसौ फिर ईस सुण्यौ नह जंग।।
दीघी खग झाट पराक्रम आण।
घणां गढ छोड भगा फिरंगांण।।
मुड़या नह केक तज्यौ नह मांण।
रह्या वे पूरबिया रड़रांण।।
तठै भड़ ज्वार तणा पैंतीस।
रया जंग जूट धिखंतां रीस।।
सेखावत रांण खलां भंज खेल।
पाछी सब दीघ पलट्टण ठेल।।
सबै नर आखत झोक अभंग।
रिपु बहु जुवार हंण्या बिच जंग।।
करै जुघ जंग'र ताळा काट।
जठै सब भेद लगायो जाट।।
दूहो
इण विध भेळयौ आगरौ, सघर किलो जिम सेज।
संककछवाहां सूं सुणौ, गयौ भाग अंगरेज।।[8]
लिखमीदान ऊजळ रो कहलौ

निष्कर्षतः इन स्वतंत्रता सेनानियों का उद्देश्य अंग्रेजों का प्रभाव नष्ट करना था। यही कारण है कि साहित्यकारों एवं लोककवियों ने भी उनके संघर्ष का स्वागत किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पं. झाबर मल शर्मा- सीकर का इतिहास, पृ. 34
2. स्वतंत्रता सेनानी डूंगजी-जवाहरजी (सं. सौभाग्य सिंह शेखावत), प्रकाशक-राजस्थानी शोध संस्थान, चौ.जोध. भूमिका, पृ.1 प्र.सं. 1973
3. गौरीशंकर हीराचंद ओझा-बीकानेर राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ. 426
4. स्वतंत्रता सेनानी डूंगजी जवाहरजी (सं. सौभाग्यसिंह शेखावत) भूमि, पृ. 4 प्रकाशक-राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर प्रथम संस्करण 1973
5. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा - बीकानेर राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ. 334-335
6. स्वतंत्रता सेनानी डूंगजी जवाहरजी (सं. सौभाग्य सिंह शेखावत), भूमिका, पृ. 7
7. वही, पृ. 37

चम्पारण आंदोलन का महत्त्व और स्वरूप

अविनाश कुमार

शोधार्थी, इतिहास विभाग, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

शोध आलेख का सार

भारत में राष्ट्रीय आंदोलन सतत प्रतिक्रिया और क्रमिक घटनाओं का परिणाम है। प्रत्येक घटनाओं ने कमोबेश अपने ढंग से स्वतंत्रता आंदोलन पर छाप छोड़ा; पर चंपारण सत्याग्रह ने राष्ट्रीय आंदोलन की रूपरेखा एवं कार्यशैली पर विशेष रूप से अपना प्रभाव डाला। भारत में सत्याग्रह का प्रथम प्रयोग था। 'चम्पारण सत्याग्रह' राष्ट्रीय आंदोलन के दरम्यान वो अचूक अस्त्र साबित हुआ जिसके नक्से कदम पर चलकर भारत को आजादी मिली। उसकी नीति-रणनीति, पद्धति, प्रक्रिया और परिणाम के संदर्भ में अब तक जो अध्ययन हुए हैं वे इस मायने में आंशिक कहे जाएंगे कि इनके आधार पर (इनके आशय को निष्कर्ष या कसौटी मानकर) चम्पारण सत्याग्रह' और दक्षिण अफ्रीका में गांधी द्वारा सत्याग्रह शास्त्र के आविष्कार एवं प्रथम प्रयोग के बीच के संबंध के साथ फर्क, भौगोलिक सहित सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक कारणों की - समग्र पहचान करना आज भी मुश्किल जान पड़ता है। ये अध्ययन इस मायने में भी अधूरे दीखते हैं कि इनके जरिये चम्पारण सत्याग्रह के बाद स्वयं गांधी के नेतृत्व में हुए नमक सत्याग्रह, बारदोली सत्याग्रह, अगस्त क्रांति को - उनकी सफलता, विफलता और प्रभाव को - चम्पारण-प्रयोग के विविध सोपानों या विविध अभ्यास के रूप में रेखांकित किया जाना संभव नहीं दिखता। 1917 के बाद तेजी से बदली राजनीतिक परिस्थितियों में 1920-22 से 1942 के बीच हुए उन विविध संघर्षों की अंत: सूत्रता की पहचान भी मुश्किल है। हालांकि ऐसे कुछ अध्ययन हुए हैं, लेकिन उनमें विविध संघर्षों के अंतरसंबंधों के मुख्य सूत्र के रूप में 'गांधी' के नेतृत्व के महत्व की पहचान और व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। यह उन अध्ययनों का मुख्य उद्देश्य भी रहा होगा और मर्यादा भी कि उनमें गांधी के जीवन-दर्शन को मुख्य अंत:सूत्र के रूप में प्रस्तुत किया गया, लेकिन उस 'सत्याग्रह-दर्शन' को रेखांकित नहीं किया गया, जिसे उन संघर्षों में शामिल राजनीतिक खिलाडियों एवं आम से लेकर अंतिम जन तक ने समझा, ग्रहण किया।[1]

भूमिका

चम्पारण-सत्याग्रह' की प्रक्रिया, गति और उससे संभावित परिवर्तन और सफलता में 'कानून' और 'राज्य' के हस्तक्षेप - विरोध और सहयोग, इन सब का प्रभाव राष्ट्रीय आंदोलन में विशेष महत्त्व दिखा। चम्पारण भारत के भूगोल का सिर्फ अंश नहीं, बल्कि भारतीय राष्ट्र की समस्त आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक दूसरे शब्दों में कहे तो यथार्थ एवं कल्पना का हिस्सा है। इसे दृष्टिगत रखते हुए गांधी-युग में चम्पारण का अपने अतीत से मुठभेढ़ एवं आंतरिक द्वंद्व, सत्याग्रह में शामिल होकर अपने आपको बदलने की तैयारी और उसकी ऐतिहासिक भूमिका आदि से संबंधित सामग्री है, उदासीनता क्या चम्पारण सत्याग्रह की प्रासंगिकता की सीमा है। गांधी के सहकर्मियों में बहुत कम ही लोग आज जीवित हैं। चम्पारण सत्याग्रह में शामिल उन सहकर्मियों के परिवारों के ऐसे सदस्य जो गांधी-युग में बच्चे थे और बाद में उनके विचारों से अनुप्राणित सामाजिक-राजनीतिक आंदोलनों में सक्रिय रहे और आज भी ऐसे कार्यों में वैचारिक या नैतिक स्तर पर या नेतृत्व के स्तर पर हस्तक्षेप करते हैं, ऐसे लोगों की संख्या भी अब सार्वजनिक जीवन में कम है। चम्पारण में भी गांधी के सत्याग्रह के दौर में जो लोग बच्चे थे और आज जीवित हैं, वे वयोवृद्ध हो चुके होंगे। उनसे या उनके बच्चें, जो अब वयस्क हैं, से सम्पर्क-सम्वाद के जरिये 'सत्याग्रह' के गांधी-रूट मैप की जानकारियां, जो कथा-कहानियों, घटनाओं, किवदंतियों के रूप में भी हैं, प्राप्त की जा सकती हैं। उन अनुभवों- मौखिक इतिहास- की कसौटी पर 'गांधी' एवं 'सत्याग्रह' की उत्तरजीविता और प्रासंगिकता का सम्यक आकलन किया जा सकता है। लेकिन आज के राजनीतिक नेतृत्व और नयी पीढ़ी की दृष्टि और दिशा क्या इस ओर इशारा करती नहीं दिखती कि इस तरह के अकादमिक कसरत की आवश्यकता और उपयोगिता कितनी रह गयी है, चम्पारण-प्रयोग में गांधी अपनी इस मान्यता को साकार और सिद्ध करने की कोशिश करते दिखाते हैं कि अंतिम तौर पर अन्याय एवं शोषण के खिलाफ अहिंसक संगठन, अनुशासन और बलिदान की शक्ति ही जनता के वास्तविक रक्षा दुर्ग का निर्माण करती है, न कि विधायी कागजात, वीरतापूर्ण शब्द और जोशीले भाषण। आज नयी पीढ़ी की भटकन, बेचौनी और उत्तेजना में निहित नकारात्मकता

और लोकतांत्रिक व्यवस्था के तहत आम जन की असहाय याचक जैसी छवि का संकेत यह है कि एक सवाल लगभग अनुत्तरित जैसा है। वह यह कि आजादी के बाद देश में गांधी के नाम पर, 'सत्याग्रह' शास्त्र के आधार पर और उसे शस्त्र रूप में धारण करने के दावे के साथ उनके अनुयायियों और उत्तराधिकारियों द्वारा जो अभियान-आंदोलन छेड़े गये, और विभिन्न किंचित परस्पर विरोधी भी! राजनीतिक-सामाजिक शक्तियों के शांतिपूर्ण आंदोलन, सामूहिक अनशन, व्यक्तिगत उपवास, आदि का जो सिलसिला आज भी जारी है, उसे किस हद तक गांधी प्रणीत सत्याग्रह के इतिहास की अगली कड़ी के रूप में स्वीकार किया जाए? उनमें 'गांधी' और 'सत्याग्रह' को किस रूप में स्वीकार किया गया? प्रेरणा के रूप में? मजबूरी के रूप में? या मुखौटा और मोहरा के रूप में। चम्पारण में और उसके बाद देश के अन्य क्षेत्र में 'सत्याग्रह' जिस तरह परिभाषित हुआ, प्रकट हुआ, क्या उसे, आजादी के बाद देश के नवनिर्माण के लिए चले और आज भी जारी विभिन्न अभियान, आंदोलन और संघर्षों का आधारपाठ माना जा सकता है।[2]

इन्हीं महत्त्व के लिए गांधी ने, चम्पारण के लिए विशेषरूप से, एक बात कही थी- 'सविनय अवज्ञा और असहयोग उनके लिए गढ़े गये हैं, जो जमीन जोतने वाले हैं, जिनके पास कोई राजनीतिक आधार नहीं है। लेकिन जैसे ही उन्हें राजनीतिक अधिकार प्राप्त हो जाते हैं, उनकी तमाम शक्तियों का निपटारा विधायी माध्यमों से किया जाएगा। लेकिन शायद आप कहेंगे कि उनके पास इतनी राजनीतिक शक्ति नहीं है। मेरा उत्तर है कि स्वराज जनता के उपायों से प्राप्त किया जाता है और इसे अवश्य ही अहिंसा के माध्यम से प्राप्त किया जाना चाहिए और उनकी आवाज सबसे अधिक सुनी जानी चाहिए। लेकिन यदि ऐसा नहीं होता है और सीमित मताधिकार के आधार पर जनता और सरकार के बीच कोई व्यावहारिक समझौता होता है, तो जमीन जोतने वालों के हितों से सर्वणी ख्याल रखा जाए। यदि वैधानिक प्रक्रिया से किसानों के हितों की रक्षा नहीं होती है, तो किसानों के पास हमेशा सविनय अवज्ञा और असहयोग आंदोलन का सर्वोच्च रास्ता अख्तियार करने का विकल्प मौजूद है।''[3]

1917 का चम्पारण सत्याग्रह मुख्यत: भूमि संघर्ष था। आजादी के पहले और बाद देश में किसानों और भूमि से जुड़े भूमि संघर्ष हुए। उनमें कई शांतिमय अथवा अंहिसक जन-संघर्ष के रूप में चर्चित हुए। कई आज भी हो रहे हैं। लेकिन चम्पारण भूमि-सत्याग्रह के सिलसिले में, संभवत: अब तक की एकमात्र अध्ययन-रिपोर्ट - लोहिया जांच आयोग रिपोर्ट-1950 - जो उपलब्ध है, आजाद देश में गठित प्रथम गैरसरकारी जांच आयोग की रिपोर्ट है। उस रिपोर्ट के अनुसार, चम्पारण का परिवर्ती इतिहास नये बंधनों की उत्पत्ति का इतिहास है। लोहिया आयोग की जांच रिपोर्ट का मुख्य शीर्षक तो जैसे चम्पारण के 'वर्तमान' का पूर्ण सत्य है - निलहे गये, मिलहे आए। उस रिपोर्ट में दर्ज है कि गांधी ने चम्पारण में संघर्ष छेड़ा, उनके कारण 'सत्याग्रह' का असर हुआ, जनता में भी तथा सत्ता संचालकों और नियंत्रकों पर भी। लेकिन रिपोर्ट में व्यापक सर्वेक्षण पर आधारित निष्कर्ष और सिफारिशों के साथ गांधीजी की चिंता और चेतावनी को भी इन शब्दों में रेखांकित किया गया "गांधीजी की चिंता जायज साबित हुई। उन्होंने कहा इस कारण हम रैयतों के लिए कुछ राहत हासिल करने में सफल हो भी जाएं, तो भी वे इसका पूरा लाभ नहीं ले पाएंगे और वे नए बंधनों में जकड़ जाएंगे। ... गुलाम हिन्दोस्तान में चम्पारण ने स्वतांर्त्र युग का उद्घाटन किया, लेकिन आजाद भारत में 'आजादी और समता' के युग का पथ-प्रदर्शक नहीं बना। राजनीतिक आजादी आकांक्षा तो पूरी हुई, लेकिन सामाजिक न्याय और यहां तक कि न्यूनतम जीवन का की भूख भी शांत नहीं हुई...।''[4] इसके साथ ही यह उम्मीद जाहिर की गयी कि' भारत में समता और प्राचुर्य के युग का पथ-प्रदर्शक, खासकर किसानों के लिए चम्पारण ही होगा!"।[5]

चम्पारण सत्याग्रह के सफल प्रयोग के बाद गाँधीजी बिहार के लिए और बिहार गाँधीजी के लिए अपने हो चुके थे। बिहारवासियों के बीच उन्होंने एक अजीब आत्म-विश्वास पैदा कर दिया था। जब देश की राजनीति और स्वतंत्रता संग्राम में गाँधी युग की शुरूआत हुई तो गाँधीजी के आह्वान पर बिहार ने सबसे ज्यादा उत्साह दिखाया। चम्पारण सत्याग्रह के मध्य मौलाना मजहरूलहक, बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, तथा डॉ० अनुग्रह नारायण सिंह आदि जैसे कर्मठ देशभक्त सहयोगी उन्हें मिले और अपने अनुभव से वह इस नतीजे पर पहुँचे थे कि वे लोग भविष्य में स्वतंत्रता संग्राम की कठिन परीक्षाओं में भी उनकी आकांक्षाओं पर पूरा उतरेंगे।[6] बिहार के भविष्य के इन निर्माताओं ने गाँधीजी को निराश नही किया और जब जब देश और गाँधीजी को उनकी जरूरत पड़ी उन लोगों ने अपने त्याग और निष्ठा से देश को गौरवान्वित किया साथ ही गाँधीजी को उनकी योजनाओं को सफल बनाने का मजबूत आधार भी दिया। जिस दिन से गाँधीजी भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय हुए उसी समय से यह स्पष्ट हो गया कि वे एक अलग ही मिट्टी के बने हुए हैं क्योंकि, 'होनहार बिरवा के होते चिकने पात', भविष्य पर नजर रखने वालों ने भांप लिया था कि एक दिन गाँधीजी देश की तकदीर को बनाने में

महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायेंगे और बहुत जल्द ही यह दृष्टिगोचर होने लगा। सन् 1920 में ही गाँधीजी ने देश की राजनीति की बागडोर संभाला और 30 जनवरी, 1948 तक राजनीति पर छाये ही नहीं रहे बल्कि भारतीयों के दिलों में अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान भी बना लिया। 1920 से पहले देश की सबसे बड़ी राजनैतिक पार्टी अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं के सामने देश के भविष्य का कोई स्पष्ट चित्र नहीं था। अभी तक काँग्रेस का अस्तित्व भी ऊपरी वर्ग से ही जुड़ा हुआ था। बड़े-बड़े नामी वकील, बैरिस्टर, लेखक, पत्रकार और साहित्यकार हर साल एक जगह पर मिलते और सरकार से कुछ रियायतों, सहूलियतों की मांग का प्रस्ताव पास करते और उसे सरकार तक पहुँचाते। कांग्रेस ने अभी तक व्यापकता की सीमाओं को छुआ तक नहीं था। जन-साधारण से तो उसका परिचय भी भली भांति नहीं हुआ था। पर गाँधीजी के सक्रिय होते ही एक अजीब वातावरण पैदा हुआ।[7] चम्पारण और खेड़ा सत्याग्रहों के तजुरूबों के माध्यम ही गाँधीजी ने उस असली भारत को पहचान लिया था जो उसके सात लाख गाँवों में बसता था। गाँधीजी ने बहुत नजदीक से देखा था कि आम भारतीय किस तरह अंग्रेजी साम्राज्यवादी परपंचों के शिकार थे। किस तरह विदेशी उनका तरह तरह से शोषण कर रहे थे और यहाँ की गरीबी, अज्ञानता और आपसी एकता की कमी जैसी कमजोरियों से किस तरह अंग्रेज पूरा लाभ उठा रहे थे। ऐसी शिक्षा पद्धति अपनाई गई थी जिसके कारण यहाँ की नई पीढ़ी को अपनी प्रतिभाओं को उभारने का अवसर ही कहां मिलता था। जो शासन प्रणाली थी वहाँ गरीबों की मुश्किल से सुनवाई होती थी और आम लोगों को कदम-कदम पर लज्जित होना पड़ता था, उसके आत्मसम्मान को सरेआम नीलाम किया जाता था और इन अत्याचारों के वाहक अधिकतर हिन्दुस्तानी ही थे, जो अंग्रेज परस्त थे और अंग्रेजों की खुशामद में हिन्दुस्तानियों को तरह तरह से अपमानित कर रहे थे। चम्पारण सत्याग्रह के दौरान किसानों को निलहे साहबों और उनसे मिलीभगत रखने वाले स्थानीय जमींदारों के अत्याचारों से छुटकारा दिलवाने का प्रयास तो हुआ ही, गाँव के लोगों को शिक्षा और सफाई के साथ स्वतंत्रता की लड़ाई के आयोजनों से भी परिचित कराया गया था। उसका असर यह पड़ा था कि चम्पारण के गरीब और बांगड़ कहे जाने वाले भूमिहीन मजदूर और किसान अपनी बुनियादी कमजोरियों से अवगत हुए और एक सम्मानित जीवन जीने का उत्साह उनके अन्दर उत्पन्न हुआ। अपनी दशा को सुधारने और बइन्साफी के खिलाफ न सिर्फ बोलने, बल्कि उठ खड़े होने की हिम्मत उनके अन्दर पैदा हुई। बेइंसाफी की बुनियाद पर दिये गये हुक्मों को न पालन करने की हिम्मत आई और व्यवस्था के खिलाफ उनके दिलों में बगावत की चिंगारियों को पैदा किया जो बाद में ज्वाला के रूप में प्रकट हुई। गाँधीजी और उनके सहयोगियों ने चम्पारण के गांवों में शिक्षा और सफाई का भी प्रबंध किया था और उसी समय बिहार के नेताओं की एक सोच बनी थी कि पूना की शैक्षणिक संस्थाओं जैसी शैक्षणिक संस्था की स्थापना यहाँ हो जिससे आम बिहारियों को शिक्षा से लाभ मिले और निरक्षरता के कारण जो खामियाँ उनके अन्दर पनप रही थी उनसे छुटकारा मिले। चम्पारण के कई गाँवों में जो स्कूल खोले गये उनमें बिहार के बाहर के शिक्षक और शिक्षिकाओं को लगाया गया था और गरीबों के बीच अज्ञानता के अभिशाप से छुटकारे की कोशिश की शुरूआत हो चुकी थी। स्थानीय लोगों ने बड़े उत्साह से उन कार्यक्रमों का स्वागत किया जिसका परिणाम यह हुआ कि जागरूकता की एक लहर चम्पारण से चली, उसने बिहार ही नहीं पूरे देश पर अपना असर डाला।[8]

गाँधीजी ने अत्याचार के प्रतिकार के रूप में जिस अहिंसक शस्त्र का प्रयोग किया था और जिन लोगों के सहयोग से जमींदारों के अत्याचारों से आम गरीबों को छुटकारा दिलवाया था, आम लोगों के दिलों में आशा की जो किरण जगाई थी, उनके अन्दर आत्म विश्वास पैदा किया था, उसने बहुत जल्द अपेक्षित वातावरण बनाने में बहुमूल्य योगदान दिया और स्वतंत्रता आन्दोलन को अच्छे और निष्ठावान कार्यकर्ताओं की खेप की खेप मुहैय्या कीं। बिहार और बिहारवासियों ने चम्पारण सत्याग्रह के बीच गाँधीजी को जो सहयोग दिया था गाँधीजी ने उसे हमेशा याद रखा और बिहार से उन्हें उम्मीद थी कि यहाँ से उनके द्वारा उठाये कदमों को पूरा सहयोग मिलेगा। उनका यह विश्वास भी ठीक निकला क्योंकि जब जब गाँधीजी ने कोई कार्यक्रम आरम्भ किया बिहार ने आगे बढ़कर उसमें भाग लिया और देश के स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास के पन्नों पर अपना चिन्ह छोड़ा। अभी कांग्रेस ने असहयोग आन्दोलन को सक्रियता से उठाने का तय भी नहीं किया था, बिहार में खिलाफत आन्दोलन के माध्यम से असहयोग की भूमिका तैयार हो. चुकी थी और मौलाना मजहरूल हक, श्री ब्रजकिशोर प्रसाद, बाबू गोरख प्रसाद, मुहम्मद शफी, बाबू धरणीधर प्रसाद, और डॉ० राजेन्द्र प्रसाद आदि नेताओं ने कौंसिल के चुनाव में भाग नहीं लेने का एलान कर दिया था। 19 सितम्बर, 1920 को मौलाना मजहरूल हक का स्थानीय सर्चलाइट में एक पत्र छपा जिसमें उन्होंने कलकत्ता काँग्रेस के असहयोग-प्रस्ताव की रोशनी में लोगों से कौन्सिल के चुनाव का बहिष्कार कर एकजुटता व्यक्त करने की अपील की थी।[9] खिलाफत के प्रश्न पर पूरे देश में मुसलमानों के अन्दर बड़ी बेचौनी थी और अंग्रेजी साम्राज्यवाद के खिलाफ माहौल बना हुआ था। कांग्रेस ने खिलाफत के प्रश्न को जब स्वतंत्रता आन्दोलन का एक मुद्दा बना लिया, तो परिस्थिति और गंभीर

हो गई। वातावरण में अजीब तनाव पैदा हो गया, शासन के प्रति विद्रोह हर दिल में पनपने लगा और असहयोग आन्दोलन के लिए माहौल पूरी तरह तैयार हो गया। 5 अक्टूबर, 1920 को प्रदेश कांग्रेस कमिटी की बैठक में मौलाना मजहरूल हक, बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, श्री महम्मद शफी श्री धरणीधर प्रसाद, श्री कृष्ण प्रकाश सिंह, प्रो० अब्दुल बारी और श्री रामविनोद सिंह की एक उप-समिति गठित की गई और उसे बिहार के असहयोग आन्दोलन की रणनीति तैयार करने और उसके संचालन की जिम्मेदारी सौंपी गई। इस प्रकार बहुत ही कम समय में बिहार की जमीन आन्दोलन के लिए तैयार हो गई।[10]

निष्कर्ष

चम्पारन सत्याग्रह ने देश और खासकर बिहारियों के लिए सार्वजनिक जीवन का एक प्रकार से एक अद्‌भुत पाठ पढ़ने का मौका मिला। इस संदर्भ में प्रमख बिहारी नेता "होमरूल के आन्दोलन में भाग न लेना कभी-कभी हममें से कुछ को बहुत अखरता था, पर हमने बड़ी सावधानी और संयम के साथ गांधीजी के आदेश का पालन किया-जिस काम में लगे थे, लगे रहे। हमने यह भी देखा कि गांधीजी किस तरह नीलवरों को बहुत बड़ी हानि पहुंचाकर भी उनके मित्र बने रहे। उनमें से कितनों ही के साथ गांधीजी का व्यवहार बहुत अच्छा रहा। वे लोग उनको अपने बंगले पर बुलाया भी करते थे। हां, कुछ ऐसे अवश्य थे, जिन्होंने उनका जबरदस्त विरोध किया। पर यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि अन्त में गांधीजी से उनका सम्बन्ध कड़वा नहीं हुआ। जब कमीशन का काम पूरा हो गया, गांधीजी ने जगह-जगह स्कूल खोलने का विचार किया, नीलवरों से मदद भी मांगी। नीलवरों ने, एक के सिवा, किसी प्रकार की बाधा नहीं डाली। कमीशन में जो बाते सुलह से तय हुई वह रैयतों की मांग से बहुत कम थीं। मगर इस सारे आन्दोलन का यह नतीजा हुआ कि चम्पारन से नीलवरों का रोब उठ गया। अब उनमें वह शक्ति नहीं रह गई कि जुल्म कर सकें। रैयतों में हिम्मत और जान आ गई। अब वे चुपचाप जुल्म बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं थे और, जुल्म के बिना चम्पारन का कारबार मुनाफा नहीं दे सकता था। वह जुल्म अब बन्द हो गया। नीलवरों ने यह बात जल्द समझ ली। तीन-चार बरसों के अन्दर सबने अपनी जमीन और कोठी बेच डाली जो कुछ मिला, लेकर चले गये उनकी जमीन रैयतों के हाथ आ गई। अब वे उसको आबाद कर रहे हैं। जहां नीलवरों के सुन्दर बगीचे और बंगले थे, वहां आज रैयतों के मवेशी बांधे जा रहे हैं। उन सत्तर-पचहत्तर कोठियों में से इक्की-दुक्की आज भी खड़ी हैं। वहां अब जुल्म नहीं हो सकता। वे उस सांप की तरह अपने दिन बिता रही हैं, जिसके दांत तोड़ दिये गए हैं, जो अब भी कुछ फुफकार तो सकता है, पर किसी को काट नहीं सकता![11]

वस्तुतः 1919 से जो गांधीवादी दौर शुरू होता है और आजादी मिलने तक (15 अगस्त, 1947) जारी रहता है; गांधी को राष्ट्रीय रंगमंच में निर्विवाद रूप से प्रथम पद हासिल होता है, चंपारण आंदोलन का इसमें महती भूमिका थी। बिहार में प्राय पहली पंक्ति नेताओं सहित सभी स्तर के नेतृत्व एवं आंदोलनकारियों के लिए प्रेरणादाई घटना के रूप में चंपारण आंदोलन अपना प्रभाव डाला।

संदर्भ सूची:

1. चम्पारण सत्याग्रह शताब्दी वर्ष - 2017 गाँधी का चम्पारण: चम्पारण का गांधी सर्वेक्षण के आइने में, संवाद, रांची, पृ0. 7
2. वही, पृ. 8 - 9
3. यंग इंडिया, 15/12/2001.
4. लोहिया जांच आयोग रिपोर्ट-1950
5. वही
6. राजेन्द्र प्रसाद, सत्याग्रह इन चम्पारण, पृ0 209.
7. वही
8. सर्चलाइट, 19/09/1920.
9. वही.
10. अक्टूबर, 1920 बिहार प्रदेश कांग्रेस कमिटी का रिर्पोट.
11. राजेन्द्र प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ0 214-15

बिहार के ग्रामीण महिलाओं पर आधुनिकीकरण का सामाजिक-आर्थिक प्रभावः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (सहरसा जिले के संदर्भ में)

अनु प्रिया

शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, बी० एन० एम० यू० मधेपुरा

डॉ० राणा सुनील कुमार सिंह

शोध निदेशक, एसोसिएट प्रोफेसर सह विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, बी० एन० एम० यू० मधेपुरा

शोध-सार :

इस अध्ययन का उद्देश्य बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में आधुनिकीकरण के प्रभाव को विशेष रूप से महिलाओं के संदर्भ में समझना है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के साथ ग्रामीण समाज में विभिन्न सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन देखे जा रहे हैं, जिससे महिलाओं की जीवनशैली, उनके अधिकार, और उनके आर्थिक अवसरों को प्रभावित कर रहे हैं। अध्ययन में सहरसा जिला को केंद्रित किया गया है, जहां आधुनिकीकरण ने महिलाओं की पारंपरिक भूमिकाओं में महत्वपूर्ण बदलाव किया है। शहरीकरण, तकनीकी प्रगति, और शिक्षा के प्रसार के परिणामस्वरूप, महिलाएं अब अधिक स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता, और समाजिक भागीदारी का अनुभव कर रही हैं। आधुनिकीकरण ने सहरसा जिले की ग्रामीण महिलाओं के जीवन में महत्वपूर्ण सुधार किए हैं, लेकिन इसके साथ ही कुछ चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। सामाजिक मान्यताओं, परंपराओं और पारिवारिक ढांचे में परिवर्तन ने महिलाओं को नई संभावनाओं और भूमिकाओं का सामना कराया है। इस अध्ययन के परिणाम, नीति निर्माताओं और सामाजिक संगठनों के लिए महत्वपूर्ण संकेतक हो सकते हैं, जिससे महिलाओं की स्थिति सुधारने और उन्हें सशक्त बनाने के प्रयासों को सटीक दिशा प्रदान कर सकते हैं।

मुख्य बिन्दुः आधुनिकीकरण, आत्मनिर्भरता, नीति निर्माण, स्वतंत्रता, सामाजिक भागीदारी

परिचय

बिहार के सहरसा जिला में ग्रामीण महिलाओं पर आधुनिकीकरण का सामाजिक-आर्थिक प्रभाव एक महत्वपूर्ण और दिलचस्प विषय है। इस अध्ययन को बेहतर ढंग से समझने के लिए हमें विभिन्न पहलुओं पर ध्यान देना होगा। परंपरागत भूमिकाओं में परिवर्तन आधुनिकीकरण के साथ, महिलाओं की पारंपरिक भूमिकाओं में बदलाव आ रहा है। वे अब शिक्षा, रोजगार, और समाज में सक्रिय भागीदारी में रुचि रखती हैं, जो पहले केवल पारंपरिक घरेलू भूमिकाओं तक सीमित थी। स्वतंत्रता और निर्णय लेने की क्षमताः आधुनिकरण के प्रभाव से महिलाओं को अधिक स्वतंत्रता और निर्णय लेने की क्षमता प्राप्त हो रही है। वे अब परिवार के फैसलों में भाग ले रही हैं और अपने भविष्य को नियंत्रित करने के लिए प्रयासरत हैं। आधुनिकीकरण के चलते, सामाजिक मान्यताओं और प्रथाओं में परिवर्तन हो रहा है। कुछ प्राचीन परंपराएं और रीति-रिवाज अब बदल रहे हैं, जो महिलाओं के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण को सुधारने में मदद कर रहे हैं। आय और रोजगार के अवसर आधुनिकीकरण के कारण, ग्रामीण महिलाओं के लिए नई रोजगार संभावनाएं और आर्थिक अवसर उत्पन्न हुए हैं। वे अब विभिन्न स्वरोजगार, सरकारी योजनाओं, और निजी क्षेत्र में काम कर रही हैं, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हो रहा है। स्वतंत्रता में वृद्धि आर्थिक स्वतंत्रता के साथ, महिलाओं की जीवनशैली में भी बदलाव आ रहा है। वे अपनी आय का उपयोग परिवार की जरूरतों और अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं के लिए कर रही हैं। उत्पादकता और कौशल विकास आधुनिकीकरण से महिलाएं नई तकनीकों और कौशलों को सीख रही हैं, जिससे उनकी उत्पादकता में वृद्धि हो रही है। यह न केवल उनके व्यक्तिगत विकास में सहायक है, बल्कि समाज के आर्थिक विकास में भी योगदान करता है।

सामाजिक-आर्थिक प्रभावों का संक्षिप्त विश्लेषण

शिक्षा और स्वास्थ्य आधुनिकीकरण के चलते शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता में सुधार हुआ है, जो महिलाओं के सामाजिक और आर्थिक विकास में सहायक है। शिक्षा के माध्यम से वे बेहतर रोजगार प्राप्त कर रही हैं और स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता से उनकी जीवन गुणवत्ता में सुधार हुआ है। परिवार और सामाजिक ढांचा परिवार और समाज में महिलाओं की भूमिका में बदलाव आया है। वे अब पारंपरिक भूमिकाओं से बाहर जाकर समाज के विभिन्न पहलुओं में सक्रिय रूप से भाग ले रही हैं। संस्कृतिक परिवर्तन आधुनिकीकरण के प्रभाव से कुछ सांस्कृतिक प्रथाएं और परंपराएं बदल रही हैं जो महिलाओं के लिए नए अवसर और चुनौतियां प्रस्तुत करती हैं। इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सहरसा जिला में ग्रामीण महिलाओं पर आधुनिकीकरण का प्रभाव मिश्रित है। जहाँ एक ओर यह सामाजिक और आर्थिक अवसर प्रदान करता है वहीं दूसरी ओर पारंपरिक मान्यताओं और प्रथाओं के प्रति कुछ विरोध भी उत्पन्न करता है। बिहार भारत के पूर्वी हिस्से में स्थित एक राज्य है। जिसकी ग्रामीण जनसंख्या काफी अधिक है। यहाँ की महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति एक महत्वपूर्ण शोध का विषय है। आधुनिकीकरण एक प्रक्रिया है जो पारंपरिक समाज को आधुनिकता की ओर ले जाती है। आधुनिकीकरण बिहार के ग्रामीण इलाकों में गहराई से प्रभाव डाल रही है। इस लेख में, हम देखेंगे कि कैसे आधुनिकीकरण ने बिहार की ग्रामीण महिलाओं की जिंदगी को बदल दिया है और सामाजिक ढांचे पर क्या प्रभाव पड़ा है। आधुनिकीकरण से समाज में आर्थिक दृष्टिकोण से क्या परिवर्तन आए हैं।

अनुसंधान की आवश्यकता:-

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का प्रभाव ग्रामीण समाज पर व्यापक और जटिल होता है। बिहार में जहाँ पारंपरिक मान्यताएँ और सामाजिक ढांचे अभी भी मजबूत हैं वही आधुनिकीकरण के प्रभावों का विश्लेषण करना आवश्यक है। ताकि समझा जा सके कि यह प्रक्रिया महिलाओं के जीवन में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह के बदलाव ला रही है।

आधुनिकीकरण और ग्रामीण समाज:-

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया

आधुनिकीकरण को सामान्यत: तकनीकी उन्नति, आर्थिक विकास, और सामाजिक परिवर्तनों के रूप में परिभाषित किया जाता है। इसमें शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं, संचार और परिवहन के क्षेत्रों में सुधार शामिल हैं। भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में भी अपनी छाप छोड़ी है, जहां अब नई तकनीकों और सुविधाओं की शुरुआत हो रही है।

ग्रामीण समाज में परिवर्तन:-

पारंपरिक ग्रामीण समाज में कई बदलाव आए हैं। पारिवारिक संरचना, सामाजिक मान्यताएँ और जीवनशैली में परिवर्तन हुए हैं। आधुनिकता के आगमन के साथ कई पारंपरिक प्रथाएँ और रीति-रिवाज अब चुनौतीपूर्ण हो रहे हैं। महिलाओं की भूमिकाओं में भी बदलाव आया है जो आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का एक प्रमुख पहलू है।

सामाजिक प्रभाव:-

शिक्षा

महिलाओं की शिक्षा में वृद्धि ने ग्रामीण इलाकों में सामाजिक बदलाव लाया है। शिक्षा की पहुंच और गुणवत्ता में सुधार ने महिलाओं को नई अवसरों की दिशा में अग्रसर किया है। पढ़ाई के साथ-साथ महिलाओं की सामाजिक स्थिति और आत्म-सम्मान में भी वृद्धि हुई है।

स्वास्थ्य

स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता और जागरूकता में सुधार हुआ है। सरकारी योजनाओं और एनजीओ द्वारा चलाए गए कार्यक्रमों ने महिलाओं के स्वास्थ्य में सुधार किया है। नियमित स्वास्थ्य जांच, टीकाकरण और स्वच्छता अभियान ने ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य को बेहतर बनाया है।

महिला सशक्तिकरण

स्वयं सहायता समूह और अन्य सशक्तिकरण पहलों ने महिलाओं को आर्थिक और सामाजिक रूप से मजबूत किया है। इन समूहों ने महिलाओं को निर्णय लेने की शक्ति और आत्मनिर्भरता प्रदान की है। इसके अलावा महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है जो समाज में उनकी स्थिति को सशक्त बनाती है।

संस्कृति और परंपराएँ

आधुनिकीकरण ने कई पारंपरिक प्रथाओं को चुनौती दी है। आधुनिक विचारधारा और वैश्विक प्रभाव ने ग्रामीण संस्कृति और परंपराओं पर असर डाला है। महिलाएँ अब अधिक खुलापन और स्वतंत्रता महसूस कर रही हैं जो पारंपरिक मान्यताओं के खिलाफ है।

आर्थिक प्रभाव

आधुनिकीकरण ने रोजगार के नए अवसर उत्पन्न किए हैं। कृषि और कारीगरी के पारंपरिक कार्यों के अलावा अब महिलाएँ विभिन्न क्षेत्रों में काम कर रही हैं। माइक्रोफाइनेंस और छोटे उद्यमों ने महिलाओं की आय में वृद्धि की है और आर्थिक स्थिरता प्रदान की है।

वित्तीय साक्षरता और प्रबंधन

महिला उद्यमिता को बढ़ावा देने वाले कार्यक्रम और वित्तीय साक्षरता के प्रशिक्षण ने महिलाओं को आर्थिक निर्णय लेने की क्षमता प्रदान की है। महिलाओं ने छोटे व्यवसाय शुरू किए हैं और इससे उनकी आर्थिक स्वतंत्रता में वृद्धि हुई है।

ग्रामीण विकास

विकास योजनाओं और परियोजनाओं ने ग्रामीण अवसंरचना में सुधार किया है। सड़कें, बिजली और जल आपूर्ति में सुधार ने ग्रामीण इलाकों की जीवन गुणवत्ता को बढ़ाया है। यह विकास महिलाओं के जीवन में भी सकारात्मक प्रभाव डाल रहा है।

चुनौतियाँ और समस्याएँ:-

सामाजिक बाधाएँ

जातिगत और लैंगिक भेदभाव अभी भी ग्रामीण समाज में मौजूद हैं। आधुनिकीकरण के बावजूद पारंपरिक सोच और सामाजिक मान्यताएँ महिलाओं की प्रगति में बाधक बनती हैं।

आर्थिक असमानता

ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच आर्थिक विषमताएँ बनी हुई हैं। महिलाओं को अपनी पूरी क्षमता तक पहुँचने के लिए अभी भी कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

आधिकारिक नीतियाँ और योजनाएँ

सरकारी योजनाओं और नीतियों का प्रभाव वास्तविकता में कितनी प्रभावी होता है यह एक बड़ा सवाल है। नीति क्रियान्वयन में बाधाएँ और प्रशासनिक ढाँचे की समस्याएँ महिलाओं के लाभ को सीमित कर सकती हैं।

भविष्य की दिशा :-

आगे के अनुसंधान की आवश्यकता

भविष्य में और अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है ताकि आधुनिकीकरण के प्रभावों की पूरी समझ प्राप्त की जा सके। इससे नीति-निर्माण में सुधार हो सकता है और महिलाओं की भलाई के लिए बेहतर उपाय किए जा सकते हैं।

नीतिगत सिफारिशें

नीति सुधार और नई योजनाओं की सिफारिश की जाती है जो महिलाओं की विशेष जरूरतों को पूरा कर सकें। अधिक प्रभावी क्रियान्वयन और निगरानी की आवश्यकता है ताकि योजनाओं का लाभ ग्रामीण महिलाओं तक सही ढंग से पहुँच सकें।

आधुनिकीकरण ने बिहार की ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में कई महत्वपूर्ण बदलाव किए हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, और आर्थिक अवसरों में सुधार हुआ है लेकिन साथ ही कई चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को अधिक समावेशी और प्रभावी बनाने के लिए निरंतर प्रयास की आवश्यकता है। महिलाओं के सशक्तिकरण और ग्रामीण विकास में सुधार की दिशा में ठोस कदम उठाने से ही हम एक बेहतर और व्यवस्थित समाज की दिशा में बढ़ सकते हैं।

शोध का उद्देश्य -

- ख नगरीकरण, औद्योगीकरण, मशीनीकरण तथा श्रमविभाजन आदि के कारण महिलायें पर क्या प्रभाव पड़ा है इसका अध्ययन करना।
- ख सहरसा जिले की महिलाओं के सामाजिक जीवन में आधुनिक परिवर्तनों के प्रभावों का ज्ञान प्राप्त करना।
- ख सहरसा जिले की महिलाओं के पारिवारिक, वैवाहिक स्वरूपों, परम्परात्मक प्रतिमानों तथा नियोजित परिवर्तनों का इनके जीवन में पड़ने वाले प्रभावों का ज्ञान प्राप्त करना।
- ख सहरसा जिले की महिलाओं में शिक्षा का उनके जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों एवं स्वास्थ्य की वर्तमान स्थिति का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना।
- ख धार्मिक विश्वासों, मान्यताओं, प्रमुख संस्कारों एवं मनोरंजन के साधनों पर आने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करना।

अध्ययन का महत्वः-

सहरसा जिला की महिलाओं में आधुनिकीकरण के प्रभाव को उनकी आकांक्षाओं, समस्याओं, सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक, पारिवारिक, वैवाहिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि विभिन्नताओं के साथ राष्ट्रीय विकास नीति में उनके जुड़ते सरोकारों को देखा गया है। मानव समाज की प्रकृति परिवर्तनशील है। जैसे युग परिवर्तन होता है। ठीक वैसे ही मानव की प्रकृति भी परिवर्तित होती है। आधुनिक युग प्रौद्योगिक युग है। इस युग में व्यक्ति का जीवन प्रायः भौतिकवादी हो गया है। और वह भौतिक सुख-साधनों की प्राप्ति में निरंतर व्यस्त रहता है। पश्चिमी सभ्यता के परिणामस्वरूप व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक पल में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए है। मशीनीकरण श्रम विभाजन से महिलाओं के परिवार की भूमिका में भी परिवर्तन होता गया है।

अध्ययन पद्धति एवं उपकरणः-

प्रस्तुत शोध -पत्र को तैयार करने के लिए अध्ययन हेतु वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया गया है जिसके अन्तर्गत उद्देश्य पूर्ण निर्दशन अवलोकन पद्धति, साक्षात्कार अनुसूची पद्धति के माध्यम से अध्ययन किया गया है। उद्देश्य पूर्ण निदर्शन विधि के माध्यम से 50 परिवारों को अध्ययन के लिए चुना गया है। जो समस्त का प्रतिनिधव्त करती है। सामान्यतः आधुनिकीकरण का प्रभाव प्रायः समाज के सभी क्षेत्रों पर पड़ा है। अवलोकन द्वारा अध्ययन क्षेत्र से विषय का अध्ययन किया गया है। साक्षात्कार अनुसूची पद्धति के माध्यम से चयनित परिवारों से यह जानने का प्रयास किया गया है कि आधुनिकीकरण के माध्यम से ग्रामीण समाज पर क्या-क्या बदलाव आए हैं, अनुनिकीकरण का प्रभाव किन-किन क्षेत्रों पर पड़ा साथही आधुनिकीकरण के क्या-क्या कारण रहे इस बारे में प्रश्न पूछे गए और विषय से सम्बन्धित तथ्य संकलित किये गये है।

संबंधित साहित्य का अध्ययनः-

भारतीय समाजशास्त्रियों ने भारत में विकसित हुई आधुनिकता का विश्लेषण करते हुए अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं प्रो0 एम0एन0 श्रीनिवास ने अपनी कृति आधुनिक भारत में सामयिक परिवर्तन नामक पुस्तक के माध्यम से ष्पश्चिमीकरण द्वारा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में आधुनिकता के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तनों को इंगित करने का प्रयास किया है।ष प्रो0 योगेन्द्र सिंह की पुस्तक 'मार्डनाइजेशन ऑफ इण्डियन ट्रेडिशन 1972 आधुनिकता के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। जिसमें उन्होंने सैद्धान्तिक विश्लेषण किया है।

शिक्षा की जागरूकता पर प्रभावः-

शिक्षा एक ऐसा सशक्त माध्यम है जिसने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। शहरी क्षेत्रों में शिक्षा प्रचार-प्रसार व विस्तार तो है साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में भी शिक्षा का प्रचार-प्रसार व विस्तार हो रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में भी शिक्षा के प्रति

लोगों में जागरूकता बढ़ी है। शासन स्तर पर भी शिक्षा के प्रचार-प्रसार व जगरूकता के लिए प्रयास किए जा रहे हैं। अभिभावक भी बच्चों की शिक्षा के प्रति जागरूक हुए है। एक बड़ा प्रतिशत अर्थात् 90 प्रतिशत लोगो का मानना है कि, आधुनिकीकरण के फलस्वरूप शिक्षा के प्रति लोगों में रूझान बढ़ा है। 10 प्रतिशत उत्तरदाताओं का यह भी मानना है कि व्यवहारिक ज्ञान होना चाहिए इसके लिए पुस्तकीय ज्ञान आवश्यक नहीं है निम्नलिखित तालिका इस बात को स्पष्ट भी करती है।

परिवार के स्वरूप पर प्रभावः-

भारतीय समाज के प्रमुख आधारो में संयुक्त परिवार एक प्रमुख आधार रहा है जो कि ग्रामीण समाज की देन है। परिवार को प्राथमिक जीवन की प्रथम पाठशाला कहा गया है यही पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। जहॉ वह समाजीकरण के माध्यम से बहुत कुछ सीखता है। संयुक्त परिवार में रहकर व्यक्ति कर्तव्यों अधिकारों व दायित्वों को समझता व निर्वहन करता है। प्रस्तुत तालिका यह दर्शाती है कि "आधुनिकीकरण व नगरीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप परिवार की संयुक्तता में परिवर्तन हुआ है। मात्र 38 प्रतिशत परिवार ही संयुक्त रूप में पाये गए। विस्तारित पारिवार का तात्पर्य यह है कि वर्तमान समय में परिवारों से तो जुड़े है लेकिन बच्चों की पढ़ाई-लिखाई रोजगार की तालश आदि कारणों से गॉवों से नगरों की ओर पलायन कर रहें है। ऐसे परिवारों की संख्या 10 प्रतिशत पाई गई है।

एकांकी परिवार वे परिवार कहे जाते है जिसमें पति पत्नी व उनके अविवाहित बच्चे होते है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप ऐसे परिवारों की संख्या बढ़ी है। इनका कुल प्रतिशत 52 रहा है। इस प्रकार देखने में यह आया है कि आधुनिकीकरण वह प्रमुख कारण है जिसने परिवारों के स्वरूपों को परिवर्तित किया है। महिलाओं की अर्थव्यवस्था शिक्षित होकर शासकीय कार्य करके अथवा स्वयं के व्यवसाय तथा सरकार तथा सरकार द्वारा प्राप्त ऋण से अपने इच्छानुसार व्यवसाय जैसे दुग्ध उत्पादन हेतु पशुपालन सिलाई उद्योग, गृह उद्योग धन्धों के माध्यम से आर्थिक कमी की पूर्ति करती है। तथा कुछ महिलायें श्रम के माध्यम से श्रमिक का कार्य करके अपनी अर्थ-व्यवस्था को सृदृढ़ बनाकर आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। अध्ययन की गयी महिलाओं के व्यवसाय से सम्बंधित जानकारी व्यवसाय के रूप में निम्नानुसार है। जिसको तालिका में दर्शाया गया है।

निष्कर्ष एवं सुझावः-

21वीं शताब्दी की महिलाओं में आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा व्यावसायिक आकांक्षा बहुत प्रबल हो गयी है वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना चाहती है। इससे उसमें आत्मविश्वास बढ़ेगा और वह प्रगति की सीढ़ी पर चढ़ती जायेगी एवं समाज में फैली बुराई रूपी अन्धकार को दूर कर सकेगी। नारियों के लिये आत्म अभिव्यक्ति और आत्म सन्तुष्ट के अवसर अनुचित रूप से सीमित रखे गये हैं। मशीनीयुग ने घर से बाहर ही वस्तु उत्पादन इतना अधिक बढ़ा दिया है। कि अंशतः आर्थिक आवश्यकता के चलते महिलायें अब घर से बाहर काम करने लगी हैं।

- उपरोक्त अध्ययन के उपरान्त निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि आधुनिकीकरण के फलस्वरूप, शिक्षा के प्रति लोगों में जागरूकता बढ़ी है। 90 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस बात को सत्यापित भी किया है।
- आधुनिकीकरण के फलस्वरूप परिवारों के स्वरूपों में परिवर्तन को स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। 38 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह स्वीकार किया है कि नगरीकरण और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप संयुकत परिवार परिवर्तित हो रहे है।
- वर्तमान में 37 प्रतिशत महिलायें सरकारी नौकरी, 23 प्रतिशत महिलायें अशासकीय नौकरी तथा 18 प्रतिशत महिलायें मजदूरी, 10.0 प्रतिशत व्यवसाय पर, 7 प्रतिशत महिलायें पशुपालन और 5 प्रतिशत महिलायें अन्य कार्य करके आय की प्राप्ति करती है तथा आर्थिक कमी को पूरा करके आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति करती थीं। बचत के रूप में भी कुछ रकम किसी बैंक में रखती है और उससे प्राप्त व्याज का उपयोग और उपभोग परिवार के लिएकरती है।
- महिलाएँ समाज की 'धुरी' है। पूरा समाज व 'परिवार' उन्हीं के ईद-गिर्द घूमता है। परिवर्तन व विकास के इस दौर में महिलाए भी इससे अछूती नहीं है। 62 प्रतिशत महिलाओं ने यह बताया है कि आधुनिकीकरण के फलस्वरूप महिलाओं की स्थिति में बदलाव आया है।

- आधुनिकता के इस खर्चीले युग में अगर महिलाएँ रोजगार शून्य रह जाती तो उनकी स्थिति पर सुधार संभव न हो पाता। 42 प्रतिशत महिलाएँ मानती है कि अगर वे रोजगार से न जुड़ती तो उन्हें किसी भी कार्य संपादन में बाधा पहुँचती। वही 34 प्रतिशत महिलाओं ने इस स्थिति में मानसिक तनाव की बात कही।
- उत्तरदाता यह मानते है कि आधुनिकीकरण नगरीकरण, औद्योगीकरण के फलस्वरूप संकीर्ण विचारधारा में परिवर्तन हुआ है तथा उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है।

सुझावः-

1. आधुनिकीकरण के कारण मनुष्य की प्रतियोगिता की अंधी दौड़ में आगे बढ़ रहा है। जहॉ व्यक्तिगत संबंध और रिश्ते पिछड़ रहे हैं। अंधी दौड़ और समाज के बीच संतुलन बनाए रखना आवश्यक है।
2. आधुनिकीकरण ने भौतिकता को बढ़ावा दिया है अतः अधिकाधिक आवश्यकता पूर्ति ने नैतिकता का ह्रास किया है और अपराधो को बढ़ावा दिया है। मानव पर सही दिशा निर्देश के साथ अपराध नियंत्रण की आवश्यकता है।
3. आधुनिकीकरण उपरोक्तावादी संस्कृति की जन्मदाता है। उपभोक्तावाद ने हम के स्थान पर मै को बढ़ावा दिया है सामाजिक संबंधों में दृढ़ता को स्थान दिया जाय।
4. आधुनिकीकरण को स्वीकार करना चाहिए ताकि, आधुनिकता का प्रसार हो सके

संदर्भ-सूची

1. डॉ. डी.एस. बघेल, भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र पृष्ठ 314-320, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल
2. प्रो. घनश्याम धर त्रिपाठी श्रीमती आराधना सक्सेना, भारतीय समाज पृष्ठ 226 आस्था प्रकाशन जयपुर
3. डॉ. जी0आर0मदन परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र पृ.क्र. 184 विवेक प्रकाशन जवाहर नगर दिल्ली 2005
4. डॉ. डी.एस. बघेल परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र कैलाश पुस्तक सदन हमीदिया मार्ग भोपाल
5. डॉ. एम.एन. शर्मा विकास एवं परिवर्तन का समाजशास्त्र पृ.क्र. 102 राजीव प्रकाशन लालकुर्ती मेरठ कैन्ट
6. डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव, 21वीं सदी का महिला सशक्तिकरणः मिथक एवं यथार्थ, ओमेगा पब्लिकेशन नई दिल्ली।
7. मानचन्द्र खंडेला, महिला सशक्तिकरण सिद्धांत एवं व्यवहार, अविष्कार पब्लिशर्स जयपुर पृष्ठ क्र. 100, 101, 102, 10.3।
8. डॉ. सुभाषचन्द्र गुप्ता, कार्यशील महिलायें एवं भारतीय समाज, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली पृष्ठ क्र. 198-199.

संत गरीबदास के साहित्य में चित्रित सामाजिक संदर्भ

सोमबीर सिंह

शोधार्थी, पीएच.डी. (हिन्दी), हिंदी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

डॉ० बाबू राम

शोध निर्देशक, प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

मानव समाज की महत्वपूर्ण इकाई है और समाज में रहकर ही मनुष्य का विकास संभव है। समाज की प्रथम संस्था परिवार है, जिसमें बालक जन्म से ही संस्कारों की शिक्षा ग्रहण करता हुआ आगे चलकर देश के भविष्य का निर्माता बनता है। समाज निरंतर प्रगति के पथ पर चलता है और उस पथ पर सफलताओं के साथ-साथ बाधाएँ एवं विकृतियों आती रहती है। इस विकृतियों को दूर करने हेतु कुछ समाज सुधारक अथवा संत महात्मा जन्म लेते हैं जो अपने उपदेशों एवं नैतिक आचरण से समाज को गति प्रदान करते हैं। मध्यकाल में जब समाज के विकास में ऐसी विकृतियाँ उत्पन्न हुई तो अनेक समाज सुधारकों एवं संतों ने समाज के विकास में अपनी अहम भूमिका का योगदान दिया। इस संतों में संत गरीबदास प्रमुख थे जिन्होंने तत्कालीन समाज को नई दिशा दी।

समाज का अर्थ स्वरूप एवं परिभाषा

समाज से अभिप्राय व्यक्तियों का सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर इक्ट्ठा रहना होता है अर्थात् जहाँ व्यक्ति एक स्थान पर एक ही सूत्र में बंधे हुए रहते हैं। 'समाज' शब्द को स्पष्ट करने के लिए कुछ विद्वानों की परिभाषाओं को जान लेना उचित होगा। प्रसिद्ध समाजशास्त्री आर० एम० मैकाइवर ने लिखा है "समाज का अर्थ समानता है।"[1]

समाज पर अपनी विचारधारा व्यक्त करते हुए प्रसिद्ध विद्वान् गिडिंग्स ने लिखा है। "समाज समान मानसिक चेतना युक्त व्यक्तियों का समूह है जो अपनी समान मानसिकता से परिचित है तथा इसमें आनन्द महसूस करते हैं। इसलिए सम्मिलित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु मिलकर काम करते हैं।"[2]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि समान विचारधारा रखते हुए कुछ व्यक्ति आपस में मिलजुलकर रहते है। आपसी प्यार की अनुभूति करते हुए अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जीवन निर्वाह करते हैं उसे समाज कहा जाता है।

समाज की भूमिका का वर्णन करते हुए डॉ० रामविलास शर्मा लिखते हैं- "मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण और विकास समाज में होता है। जिन परिस्थितियों में उसका विकास होता है वे उसके व्यक्तित्व के निर्माण में विशेष रूप से भागीदार होती है। साहित्यकार भी समाज का अंग है। उसका चिन्तन किसी न किसी रूप में अपने युग के परिवेश व परिस्थितियों का परिणाम होता है। साहित्यकार अपने युग की ऐतिहासिक सीमाओं को लांघ नही सकता है।"[3]

इसी प्रकार की विचारधारा डॉ० विनिता कुमारी ने भी व्यक्त की है- "साहित्यकार के व्यक्तित्व का निर्माण समाज में होता है। उसके अनुभवों का स्त्रोत भी समाज ही होता है। अपनी कृति द्वारा जिन अनुभवों को वह अभिव्यक्ति प्रदान करता है। उसका मुख्य आधार समाज ही होता है।"[4]

संत कबीरदास जी, तुलसीदास, सूरदास तथा अन्य भक्त कवियों की रचनाओं में समाज को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। संत गरीबदास अपने समय के प्रसिद्ध संत एवं समाज सुधारक हुए हैं। इसलिए उनकी वाणी में भी तत्कालीन समाज की झांकी परिलक्षित होती है। सतं जी कहते हैं "गरीब रचनहार रचना रची, सुरति, सृष्टिलयोलीन"[5]

वस्तुत स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि साहित्य में समाज की रूपरेखा परिलक्षित होती है, जिसमें यर्थाथ को चित्रित किया जाता है।

1. पारिवारिक सम्बन्ध

भारत में संयुक्त परिवार परम्परा सदियों से चली आ रही है। मध्यकालीन समाज में भी यही परम्परा रही है। घर में दादी-दादा, माता-पिता, भाई-बहन सभी इक्ट्ठे रहते थे तथा आपसी संबंध बहुत सुदृढ़ थे। सुख-दुख सब के साझे होते थे। संत गरीबदास ने अपनी वाणी में इन से पारिवारिक संबंधों को दर्शाया है। उन्होंने इन सभी को आध्यात्मिक से जोड़कर दिखाया है। संत की वाणी में अलग से परिवार, रिश्ते नाते को नहीं दिखाया गया है। उन्होंने संसार में जीव की नश्वरता का वर्णन करके इन रिश्तों को बताया है। संत जी कहते हैं कि सदैव कोई नहीं रहा है चाहे वह राजा हो या रंक। एक दिन सबकी मृत्यु होनी निश्चित है। जब वह जाता है तो कोई भी उसके साथ नहीं चलता ये रिश्ते-नाते सभी इसी संसार में रह जाते हैं, जब जीव इस संसार से चला जाता है। उदाहरण स्वरूप निम्न वाक्याशों को देखा जा सकता है।

"राजा न रैयत रहेगा न कोई, रहेगा चिदानन्द उपज्या न सोय।
भाई भतीजे रु जो रू जमाल। देखेंगे लड़के जु होगा हवाल।
दादी रू फूफी बहन रोवेगी रूह। जम आन पकड़ेगा दुबरदूह।
मौसी रु मामा अलामा जहान। शुकदे कुं पूछो जू विरक्त प्रवान।।"[6]

संत गरीबदास जी ने पारिवारिक संबंधों में पति पत्नी के संबंधों को आध्यात्मिकता के माध्यम से दर्शाया गया है कि जब आत्मा रुपी दुलहिन का परमात्मा रूपी पति से मिलन होता है। यह खुशी से झूम उठती है। संत जी की पंक्तियों से स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

"संत समागम सार कि ब्रह्मा रची।
शून्य मंडल सतलोक पीय मेरे चौरी रची।
चित चंदन छिड़कत मलागीर बेग धंसी।
चढ़त पिय की सेज कि दुलहिन हर्ष हंसी।"[7]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संत जी के समय में पारिवारिक संबंधों में स्नेह, आपसी विश्वास बहुत अधिक था। प्रेम के धरातल पर संबंध गहरी आस्था के साथ खड़े थे।

2. वर्ग व जाति व्यवस्था का चित्रण

संत गरीबदास के समय समाज मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त था- हिन्दू व मुस्लिम। हिन्दू समाज में जाति व्यवस्था पूरी तरह घर कर चुकी थी। प्रायः हिन्दू धर्म के चारों वर्ग- क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र, मुस्लिम शासकों के अत्याचारों का शिकार अधिक बनते थे। दूसरी ओर हिन्दू धर्म से कुछ लोग मुस्लिम धर्म में जाते तो इसलिए कि शासक वर्ग के अत्याचार से बच सके, परन्तु उन्हें वहां पर उसी पीड़ा का सामना करना पड़ा। डॉ० राजदेव सिंह मध्यकालीन समाज में व्याप्त वर्णव्यवस्था का वर्णन इस प्रकार करते हैं- "भारतीय अछूत जातियों के अछूतपन के अनेक कारण हैं और सभी किसी न किसी रूप में संतों को पूर्ववर्ती-परवर्ती स्थिति को स्वरूप देने में सहायक रहे हैं। उनकी हीन सामाजिक मर्यादा का इससे घना संबंध है। अवैदिक मूल की अनेक जातियों को विवश होकर इस्लाम कबूल करना पड़ा। किन्तु वहां भी इनकी स्थिति दयनीय रही।"[8]

समाज में व्याप्त हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव को संत गरीबदास अपनी वाणी में दर्शाते हुए हिन्दू व मुस्लिम को समझाते हुए कहते हैं कि हिन्दू वास्तविक हिन्दू वह है जो प्रभु भक्ति के लिए सभी हदे तोड़ दे।

उदाहरण- "हिन्दु सो जो हद कुं तोरे, परमधाम सो चश्में जोरे।
मुल्ला जो मसिजद नहीं पूजे, राम रहिम एक कर बूझे।"[9]

अर्थात् हिन्दू व मुसलमान को अपने वास्तविक कर्म भक्ति की ओर प्रेरित करते हैं कि हिन्दू को अपनी मर्यादा से अधिक भगवान की भक्ति पर ध्यान देना चाहिए और मुसलमान को मस्जिद ना पूजकर राम-रहिम को एक समझना चाहिए। मुस्लिम समाज में भी जाति प्रभाव देखने को मिलता है।

"तुरक सोई जो पांचों तरके अलह नूर में पांचों गरके।
दरवेश सोई जो दूतर मारे, अनहद सींगी सुन्न आधारे।।"[10]

ब्राह्मण जाति के मूल को बताते हुए संत जी कहते हैं जो मनुष्य ब्रह्म का वास कण-कण में मानता है वही ब्राह्मण कहलाता है।

"ब्राह्मण सो जो ब्रह्म पिछाने, सोह, हंसा सब घट जाने नट जाति जो विभिन्न क्रीड़ाओं द्वारा लोगों का मनोरंजन करती है। संत गरीबदास जी ने उनके विषय में भी बताया- "नर सोई जो नाटिक जीते, निर्गुण खेल अमरपुर जीते''[12]

इसका जीवन का उद्देश्य मूल रूप से भगवान की उपासना करना है और वास्तविक रूप में वही नर होते हें जो अपने जीवन के उद्देश्य को पहचान लेते हैं इस प्रकार संत गरीबदास ने तत्कालीन समाज की जाति व्यवस्था का बखूबी वर्णन किया है। उन्होंने हिन्दू समाज के साथ-साथ मुस्लिम समाज की जाति व्यवस्था पर भी करारा व्यंग्य किया है।

3. अंधविश्वासों और आडम्बरों का विरोध

मध्यकालीन समाज में जनता अंधविश्वासों के गर्त में डूबी हुई थी। संत गरीबदास ने समाज को अंधविश्वासों से निकालने का भरपूर प्रयास किया।

"गरीब सो ठाकुर टांकी घडया लगे हथौडे शीश।
तिस कुं हम पूजें नहीं, पीपल का जगदींश।।''[13]

संत जी आगे कहते हैं कि परमात्मा तो हर जीव में समाया है जिसे विरले भक्त ही पहचान पाते हैं। पत्थर की मूर्ति को पूजना तो सतगुरू-व्यर्थ बताते हुए कहते हैं-

"जाके अहरन लगे हथौडे घडयां, टांकी चित बनाया
है पत्थर की झूठी पूजा, यौं सतगुरू फरमाया।
श्मता राम धाम दिल अन्दर शब्द अतीत समाना।
दास गरीब कहे रे साधो यौह पद विरल्यों जाना।।''[14]

मूर्ति पूजा पर करारा व्यंग्य किया

"गरीब सो ठाकुर किस काम का, सेवक स्यों नही बात।
नाच कूद सेवक मरे बोले दिवस न रात।।
गरीब यौह ठाकुर पूंजु नहीं, पत्थर पीपल घात।
इष्ट भ्रष्ट है तास का यम छालत है घात।।''[15]

वस्तुतः संत गरीबदास ने अपनी वाणी में अंधविश्वास व बाह्याडम्बरों से ग्रस्त समाज को उभारने का उपदेश दिया है।

4. नारी विषयक दृष्टि

नारी की दशा का चित्रण संत गरीबदास जी ने अपनी वाणियों के माध्यम से दिखाया है कि किस प्रकार उस समय नारी की दयनीय दशा हो गई थी। पतिव्रता स्त्री की गणना गुणवंती स्त्री एवं परम् ब्रह्म के रूप में होती है। संत गरीबदास ने अपनी वाणी में पतिव्रता का अंग में नारी की खूब प्रशंसा करी।

"गरीब पतिव्रता सो जानिये, मानें पीव की बात।
पीव भावे कोई करे, बिन आज्ञा नहीं खान।।''[16]
"गरीब पतिव्रता के चरण की शिर पर रजले डार।
अठसढितीरथ सब कीये, गंगान्हान कि दार।।''[17]

नारी के बारे में गरीबदास जी आगे कहते हैं कि नारी तो बाधिन से भी विकराल रूप वाली होती है यह तो नागिन की तरह मनुष्य को डस लेती है।

"गरीब सब जग नाहीं नाहरी, बाधिन है विकराल।
नागनि सब जग डस लिया, ताहि भुवगंम चल।।''[18]

संत जी कहते हैं कि केवल बुराई नही करना क्योंकि नारी से ही पूरा संसार चलता है। नारी की महिमा का भी गुणगान किया और कामिनी नारी की निंदा की और पतिव्रता नारी का खुले मन से प्रशंसा भी की।

5. मानवतावाद

संत कवियों का विश्वास था कि मानवतावाद के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा समाज में व्याप्त बुराईयों और आडम्बर है। इनकी समप्ति के बिना समाज का कल्याण नहीं हो सकता है। इसी विचारधारा के अन्तर्गत संतों ने धार्मिक कुरीतियों एवं अंधविश्वासों के प्रति तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की है। संत गरीबदास अठारहवीं शताब्दी के महान संत हुए हैं। संत जी सच्चे साधक व महात्मा पुरूष थे। संत जी कहते हैं कि संसार में कोई धर्म, जाति आदि नहीं है। इसी बात को स्पष्ट करते हुए संत जी कहते हैं कि रोजा, नमाज में कुछ नहीं रखा है न ही मृग छाला करने में रखा है। संत जी इसको निरर्थक बताते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा है–

"रोजा नेम नमाज न जाना, ना कोई तसबीह माला।
गीता तिलक नहीं हम कर है, दर्पण ध्यान न छोती।
कागज कलम नहीं कोई हमरे, ना पत्ता ना पोथी''[20]

6. सम्प्रदाय विहीन समाज

संत गरीबदास सम्प्रदाय विहीन समाज की सिफारिश करते हैं। वे ऐसे समाज की कल्पना करते है जहाँ हिन्दू–मुस्लिम, जाति–पाति, छुआछूत, ऊँच–नीच आदि विषय न हो। हिन्दू–मुस्लिम सभी को मिलजुल कर रहने का संदेश देते हुए संत जी कहते हैं।

"मुल्ला से पंडित भये, पंडित भये मुल्ल।
गरीबदास तज वैर भाव, कीजे सुल्लम सुल्ल।।''[21]

संत जी कहते हैं कि मनुष्य को सच्चे संतों की भांति सम्प्रदाय विहिन विचारधारा रखनी चाहिए और उस परमात्मा की भक्ति करनी चाहिए–

"अवधु अनहद हमरारास बोलिये, राग अचल अनुरानी।
सन्त हमारी संप्रदा बोलिये, ब्रह्मद्वार बैरागी।।''[22]

7. मानवीय मूल्य

संत गरीबदास की वाणी सत्य अहिंसा, करूणा, समानता, एकता, वर्णव्यवस्था का विरोध वैचारिक स्वतन्त्रता, अंधविश्वास व रूढ़िवादिता का खण्डन आदि मूल्य से समृद्ध है। संतों की विचारधारा में मानवीय मूल्यों की बड़ी स्पष्ट व्याख्या मिलती है जो समाज कल्याण के लिए अति आवश्यक है। संतों की इसी विचारधारा को बताते हुए राजसजन पाण्डेय लिखते हैं– भक्तिकालीन हिन्दी के निर्गुण कवियों ने आत्मा की एकता के अनेक पक्षों को उद्घाटित किया है। उन्होंने इस तथ्य का स्पष्ट भावन कर लिया था कि मानवीय एकता की स्थापना आत्मा की एकता के माध्यम से ही हो सकती है और मानवता की सच्ची सेवा पर पीड़ा का निवारण है, यहीं पर पीड़ा का निवारण ही वास्तविक मानवता है।

संत गरीबदास अंहिसावादी थे, अहिंसा ही उनकी विचारधारा थी। महापुरूष कोमल हृदय के होते हैं और दूसरों का कष्ट देखकर उनका हृदय तत्काल पसीज जाता है। हिन्दुओं के बलि चढ़ाने पर संत जी करारा व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि जो मनुष्य पशुओं की बलि चढ़ाते हैं ये साधुजन नहीं होते उनके तो दर्शन भी नरक के समान होते हैं।

"काटे शीश नहीं दिल करूणा, जग में साधु कहावै है।
जो नर थाके दर्शन जाहीं, तिस कुंभी नरक पठावें है।''[23]

8. समानता का भाव

संत गरीबदास ने सामाजिक एकता की स्थापना में धार्मिक व सामाजिक विषमता को मुख्य विरोधक तत्व माना है। इसलिए संत जी ने वाणी में इस विषमता का विरोध किया है। उपदेश हुए संत जी फरमाते हैं कि समाज में एकरूपता तभी आती है जब समाज में सभी को समान माना जाता है।

"गरीब साधु–साधु एक है इनमें कुछ न भ्रांति।
निरबैरी निर्भय सदा, एक जाति एक पांति।।''[24]

सामाजिक एकता स्थापित करने के लिए संत जी ने निरंतर प्राणियों को परस्पर प्रेम से मिलकर रहने का संदेश दिया है। अपनी ओर से किसी को कष्ट नहीं देना चाहिए और परमात्मा स्वरूप मानकर प्रत्येक प्राणी से प्रेम करना चाहिए। अपने पर कष्ट झेलकर अपनी शक्तिनुसार दूसरों के कष्टों का निवारण करना चाहिए क्योंकि भले का सदैव भला ही होता है। वर्तमान समय के जातिगत व्यवस्था राजनेताओं के हाथों में खेल रही है। राजनेता अपने थोड़े से स्वार्थ के लिए वोट की राजनीति को भोले भाले लोगों के साथ में खिलवाड़ करके उनके वोटो को प्राप्त करने के लिए उनके भोलेपन का लाभ उठाया जाता है और वह अपना स्वार्थ सिद्ध करने में सफल हो जाते हैं और समाज के अंदर असमानता का भाव भी फैलने लगता है

वहीं संत गरीबदास जी ने समझाने का प्रयास किया है कि सभी अपने कर्तव्यों का पालन करें और समाज के अंदर समानता के भाव को व्याप्त करने में एक दूसरे का सहयोग करें।

पौराणिक विश्वास

पुराण हमारी संस्कृति के संवाहक है तथा हमारी समृद्ध धरोहर भी है। पुराणों की संख्या अठारह बताई जाती है। अवतारवाद पुराणों का प्रमुख अंग रहा है। ब्रह्माण्ड पुराण, स्कन्द पुराण, शिव पुराण, मार्कण्डेय पुराण, विष्णु पुराण, गुरुड पुराण, भागवत पुराण आदि प्रमुख पुराण है। वाल्मीकि कृत रामायण भी पुराणों के अन्तर्गत ही आता है। पुराण एक तरह से इतिहास ग्रन्थ ही होते हैं जिनमें महत्वपूर्ण घटनाओं राजाओं, ऋषियों-योगियों, देवताओं-असुरों आदि की कथाएँ होती है। किसी समाज की संस्कृति को समझने के लिए पुराणों का ज्ञान होना आवश्यक है तथा यह ज्ञान हमें पौराणिक संदर्भों से मिलता है। संत गरीबदास की वाणी 'ग्रन्थ साहिल' के दूसरे भाग 'पद भाग' में पौराणिक कथाओं का वर्णन है। संत जी पौराणिक संदर्भों के माध्यम से प्रमाण और तर्क सहित आम जनता को भक्ति का महत्व समझाते हैं।

खामी चेतनदास जी महाराज ने पौराणिक विश्वास के विषय में बताया है-

"संत गरीबदास ने बहुत सी पौराणिक गाथायें भी अपनी वाणी में उद्घृत की है जिस विषय के प्रकरण में उक्त गाथाओं का उदाहरण दिया गया है। केवल उस विषय की पुष्टि निमित ही ऐसा प्रयास किया गया है क्योंकि जनता के लिए कथा द्वारा उस विषय को समझना सुगम हो जाता है। साधारण रूप से किसी दोष का निषेध एवं गुण का विधान कर देने मात्र से जनता के हृदय पर उस कथन का उतना प्रभाव नहीं होता, जितना कि एक दृष्टान्त द्वारा होता है।"[25]

निष्कर्ष

संत गरीबदास की वाणी में सामाजिक संदर्भ में यही निष्कर्ष निकलता है कि तत्कालीन समाज जर्जर अवस्था में था। हिन्दू धर्म वर्ण व्यवस्था व मुस्लिम धर्म उंच नीच के भेद भाव से ग्रस्त था। दोनों धर्मों में जातिगत विभाजन भी अपनी जड़े फैला चुका था। समाज धनी व निर्धन वर्ग में विभाजित हो चुका था। धनी लोग शासकों की चापलूसी करके उनसे जागीरे व ऐश्वर्य के अन्य साधन ऐंठते रहते थे। वस्तुतः संत जी ऐसे समाज की कल्पना करते हैं जहां सत्य विचार, शालीनता, विवेकशीलता, सम्प्रदाय विहीनता, धैर्य सहिष्णुता, करूणा, मानवीय एकता एवं स्वतन्त्रता आदि मानवीय मूल्य है जिससे सुखद, कल्याणकारी एवं आदर्श समाज की स्थापना की जा सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आर० एम० मैकाइवर, दि एलिमैन्टस ऑफ सोशल सांइस, पृ० 1
2. एफ० एम० गिडिंग्स, दि प्रिंसीपलज ऑफ सोशियालोजी, पृ० 6
3. डॉ० रामविलास शर्मा, भाषा साहित्य और संस्कृति, पृ० 141
4. डॉ० विनिता कुमारी, हिंदी संत साहित्य के स्त्रोत, पृ० 340
5. ग्रन्थ साहिब, वाणी की उपादेयता, पृ० 36
6. ग्रन्थ साहिब, अथ अर्जनामा, पृ० 372
7. ग्रन्थ साहिब, अथ रग चौरी, पृ० 798
8. डॉ० राजदेव सिंह, संत साहित्य-पुनर्मूल्यांकन, पृ० 108
9. वही, पृ० 109
10. ग्रंथ साहिब, कौम छतीस का ग्रंथ, पृ० 452

11. ग्रंथ साहिब, अथ कौम छतीस का ग्रंथ, पृ० 145
12. ग्रंथ साहिब, अथ कौम छतीस का ग्रंथ, पृ० 454
13. ग्रंथ साहिब, भ्रम विधूसन का अंग, पृ० 159
14. ग्रंथ साहिब, शब्दी, पृ० 467
15. ग्रंथ साहिब, भ्रम विधूसन का अंग, पृ० 159
16. ग्रंथ साहिब, अथ पतिव्रता का अंग, पृ० 23
17. वही, पृ० 24
18. ग्रंथ साहिब, कामी नर का अंग, पृ० 113
19. ग्रंथ साहिब, एकता उपजन का अंग, पृ० 463
20. वही, पृ० 463
21. ग्रंथ साहिब, भूमिका, पृ० 59
22. ग्रंथ साहिब, ज्ञान तिलक, पृ० 417
23. ग्रंथ साहिब, भूमिका, पृ० 20
24. ग्रंथ साहिब, सच का अंग, पृ० 119
25. स्वामी चेतनदास जी, ग्रंथ साहिब, वाणी की उपादेयता, पृ० 67

शंकर शेष के नाटकों में समाज एवं पारिवारिक स्थिति

कुसुम लता

शोधार्थी, पीएच.डी. (हिन्दी), हिंदी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

डॉ० आशा सहारन

शोध निर्देशिका, प्रोफेसर, हिंदी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

समाज का स्वरूप एंव क्रमिक विकास

समाज का अर्थ हम कह सकते है कि लोगों का ऐसा समूह जो आपसी क्रियाकलाप करते है व्यावहारिक तौर पर। समाज शब्द को किसी के लिए इस प्रकार प्रयोग कहते है- हरिजन समाज, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, छात्र समाज, किन्नर समाज, किसान समाज, हिन्दू समाज आदि किसी विशेष समूह के लिए कार्य करते है। उदाहरण के लिए जब जब हम किसान को समाज कहते है तो हमारे दिमाग में 'किसानों का एक समूह' हमारे सामने आ जाता हैं। परन्तु इस से भी समाज की परिभाषा परिभाषित नहीं हुई। विभिन्न समाजशास्त्रियो ने यह भी कहा है कि समाज तभी जीवित रहता है जब असके लोगो का संमूह एक-दूसरे को जाने तथा समझे तथा विचारों का आदान प्रदान करें। उदाहरण के लिए कहा जा सकता है कि जब दो व्यक्ति बस की एक ही सीट पर पास बैठे हो उस स्थिति को हम समाज नहीं कह सकते। परन्तु जैसे वे एक दूसरे से बातचीत के द्वारा विचार विनिमय करते है तभी समाज की स्थिति पनपती है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री जॉर्ज सीभेल भी इसी तरफ इशारा करते हुए कहते है कि ''समाज उन व्यक्तियों का समूह माना है जो अन्तः क्रिया द्वारा संम्बन्धित है।"[1]

समाज के प्रकार

सामाजिक सम्बन्धों के कारण एक दूजे के साथ रहने वाले तथा विचारों का आदान प्रदान करने वाले लोगों के समूह को समाज कहते हैं। ये एक-दूसरे के साथ निर्भर होकर सामाजिक बदलावों के अनुरूप स्वयं को ढालकर एक सामूहिक जीवन जीते हैं। प्रत्येक समाज की अपनी खूबियां होती है जो उसकी पहचान बनाती हैं। विद्वानों ने मुख्य रूप से समाज को चार प्रमुख प्रकारों में बाँटा हैं-

- जनजातीय समाज
- कृषक समाज
- ओद्यौगिक समाज
- आधुनिक समाज

जनजातीय समाजः

जनजातीय शब्द के लिए हम आदिम, आदिवासी, वनवासी अनुसूचित जनजाति तथा गिरिजन आदि भी प्रयोग किए जाते हैं। इसे आदिवासी इसलिए कहा जाता है कि भारत के प्राचीन निवासी हैं। इसकी अपनी भूमि, भाषा, नाम, संस्कृति, राजनीतिक संगठन आदि होते है। यह समाज आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होते हैं। इनके खान-पान, वेशभूषा रीति-रिवाज, विवाह पद्धति, अनुष्ठान, व्यावसायिक जीवन, राजनीतिक व्यवस्था धार्मिक मान्यताएँ तथा दार्शनिक विचार लगभग अन्य किसी जनजाति से पृथक होती है। जनजाति शब्द का अर्थ है वन्य जाति व आदिवासी अर्थात् जनजाति ऐसे मानव समूह के लिए प्रयोग किए जाते है जो समान भाषण, सामाजिक व्यवस्था एव समान तरीके के रीतिरिवाज होते।

मानवशास्त्री इ. ए. हवेल ने अपनी परिभाषा में इस प्रकार से परिभाषित किया है। ''एक जनजाति एक सामाजिक समूह हैं जो एक विशेष भाषा बोलते है तथा एक विशेष संस्कृति रखता है जो उन्हें दूसरे जनजाति समूहों से पृथक करती है। यह

अनिवार्य रूप से राजनीतिक संगठन नहीं है। जनजातिय समाज एक क्षेत्रीय मानव समूह हैं जिसमें सामूहिक क्रियाकलाप, आपसी लेन देन, समान भाषा व्यवहार एवं सामान्य संस्कृति देखने को मिलती है। वे आत्मनिर्भर होते हैं और राजनीतिक रूम से संगठित होते है। इस समाज में रहने वाले पठन पाठन की स्कूली व्यवस्था से अनभिज्ञ होते है परन्तु ज्ञान के क्षेत्र सामाजिकता को समझने के लिए सबसे पहले 'समाज' शब्द के अर्थ को समझना आवश्यक हैं। 'समाज' शब्द व्यक्तियों के समूह को कहा गया है। 'समाज' व्यक्ति के लिए अति आवश्यक हैं। व्यक्ति समाज के बिना जीवित नहीं रह सकता। समाजशास्त्र में समाज का अर्थ विशेष अर्थ में किय गया है। वास्तव में व्यक्ति एक-दूसरे के साथ सामाजिक तौर पर बंधा हुआ हैं। मेकईवर और फेज ने समाज शब्द को समाजशास्त्र के संदर्भ में इस प्रकार परिभाषित किया है।

" Society is a system of usages and proce procedures of authority and mutual aid of many groupings human and divisions of controls of human behaviour and of liberties. This ever changi Complex system we call society"[2]

अर्थात् समाज रीतियों एवं कार्य, प्रणालियो अधिसत्ता एवं पारस्परिक सहयोग, अनेक समूहों, एवं विभाजनों, मानव, व्यवहार के नियम एवं स्वतंत्रताओं की व्यवस्था है। वह सतत् परिवर्तनशील जटिल व्यवस्था है जिसे हम समाज कहते है। यह सामाजिक सम्बन्धों को ढाल है यह निरंतर परिवर्तनशील हैं।

समाज से क्या अभिप्रायः है? समाज क्या है? इसका जवाब देना बड़ा ही मुश्किल कार्य हैं समाज कोई जड़ अथवा शिथिल वस्तु का नहीं है, वरन यह लगातार गतिमान जनसमूह का सूचक है। अपने-अपने विद्वानों अपने-अपने ढ़ग से समाज को परिभाषित किया है। जो इस प्रकार से हैं

तलकोत्त परसौन्स के अनुसारः ''समाज को उन मानवीय संबंधों की संपूर्ण जटिलता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो साधन-साध्य संबन्धों के रूप में क्रिया करने में उत्पन्न हुए हो, चाहे ये यथार्थ हो या प्रतिकात्मक।"[3]

रेउतर के अनुसार - ''(समाज) एक अमूर्त धारता हैं जो कि एक समूह के सदस्यों के बीच पाये जाने वाले पारस्परिक अंतसंबधों की जटिलता का बोध कराती है।"[4]

लापिएर के अनुसार - ''समाज मनुष्यों के एक समूह का नाम नहीं है वरन यह ऐसी जटिल अंतक्रियाओं का प्रतिमान है जो मनुष्यों के बीच उत्पन्न होती है।"[5]

अलग-अलग विद्वानों ने समाज की अलग-अलग परिभाषा दी है। जैसे समाज क्या हैं? समाज से क्या अभिप्राय है? इसका जवाब देना बड़ा ही मुश्किल कार्य हैं। समाज कोई जड़ अथवा शिथिल वस्तु का नहीं है। वरन यह लगातार गतिमान जनसमूह का सूचक है। अलग-अलग विद्वानों ने अपने-अपने ढ़ग से समाज को परिभाषित किया हैं। जो इस प्रकार है-

तलकोत्त परसोन्स के अनुसारः ''समाज को उन मानवीय संबंधों की संपूर्ण जटिलतओं के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो साधन-साध्य संबंधों के रूप में क्रिया करने में उत्पन्न हुए हो, चाहे ये यथार्थ हों या प्रतिकात्मक।"[6]

रेउतर के अनुसार- ''(समाज) एक अमूर्त धारणा हैं जो कि एक समूह के सदस्यों के बीच पाये जाने वाले पारस्परिक अंतसंबधों की जटिलता का बोध कराती है।"[7]

लापिएर के अनुसार- ''समाज मनुष्यों के एक समूह का नाम नहीं है वरन यह ऐसी जटिल अंतक्रियाओं का प्रतिमान है जो मनुष्यों के बीच उत्पन्न होती है।"[8]

अलग-अलग विद्वानों ने समाज की अलग-अलग परिभाषा देना चाहा। मगर कोई सही स्पष्ट परिभाषा नही दे पाया। समाज शब्द एक अत्यधिक अस्पष्ट एवं सामान्य शब्द है। समाजशास्त्रियों ने व्यक्तियों के समूह मात्र हो ही केवल समाज नही कहा बल्कि ज्यादातर विद्धानों ने सामाजिक संबंधों की एक व्यवस्था, जाल अथवा ताना बाना माना हैं। समाज की निर्माण केवल व्यक्तियों की संख्या मात्र नहीं है बल्कि उनमें सामाजिक संबंधों का होना अनिवार्य हैं।

समाज का निर्माण इन अलग-अलग प्रकार की सामाजिक गतिविधियों से होता है। जैसे -आर्थिक, राजनीति, धार्मिक, पारिवारिक संबंधो इत्यादि की पूर्ति के लिए उनमें आपसी अर्थपूर्ण व्यवहार होता है। परस्पर एक दूसरे से प्रभावित होता है। परस्पर एक दूसरे के साथ व्यवहार करना, और सामाजिक रिश्तों का जाल बंध जाना समाजशास्त्र या समाज कहलाता हैं।

मैं वे किसी तथाकथित पढ़े लिखे समाज में रहने वाले लोगों से पीछे नहीं है। ज्ञान की इनमें अपार सम्पदा होती है ओर व्यवस्थित सामाजिक जीवन में सक्षम होते है।

कृषक समाज

कृषि के कार्यों पर निर्भर रहने वाले लोगों का समाज कृषक समाज कहलाता हैं। सभ्यता के विकासक्रम की शुरूआत से मनुष्य ने कृषि करने के कार्य को अपनाया। धीरे-धीरे मानव ने जीविकोपार्जन के लिए खेती करना आरम्भ कर दिया। प्राचीन काल में कृषि अपने परिवार वालों के पेट भरने के लिए की जाती थी। जैसे-जैसे समय आगे बढ़ा कृषि आर्थिक उत्पादन का क्षेत्र भी बनने लगा। किसान अब कृषि की छोटी ईकाई को छोड़कर एक बड़े पैमाने पर खेती करने लगा। इससे प्राप्त धन से अपनी जरूरतों को की अन्य सामग्रियों को पूरा करने लगे। औद्योगिक क्रान्ति के बाद आधुनिक मशीन भी उपयोग में लाई जाने लगी। इस प्रकार कृषि प्रधान समाज विकसित हुआ।

मानव शास्त्री रोबर्ट रेडफिल्ड -'कृषक समाज' को इस प्रकार परिभाषित करते हुए लिखते है - ''वे ग्रामीण लोग जो जीवन निर्वाह के लिए अपनी भूमि पर नियंत्रण बनाये रखते है और उसे जोतते हैं तथा कृषि जिनके जीवन के परपंरांगत तरीके का एक भाग है और जो कुलीन वर्ग या नगरीय लोगों की ओर देखते है और उनसे प्रभावित होते हैं। जिनके जीवन का ढ़ग उन्हीं के समान है लेकिन कुछ अधिक सूक्ष्म प्रकार का"[9]

औद्योगिक समाज:

औद्योगिक समाज से अभिप्राय जहाँ औधोगिक प्रोद्योगिक उन्नति व विकास पाया जाता है। इस समाज के लोगों ने अपने जीवन को सक्षम बना लिया है। खेतो में काम करने के लिए इस समाज ने अत्याधुनिक औजारों को उपयोग में लाया हैं।

औधोगिक समाज ने आज के समाज की रूपरेखा बदल कर रख दी हैं। इस समाज में मशीनों का बहुत अधिक प्रयोग हुआ है। ओद्योगिक समाज में जनसंख्या क्षेत्र एवं सामाजिक सम्पर्क चारों और फैला हुआ था। इस तरह इसकी सामाजिक कार्य व्यापारों में साहित्य, कला, एंव विज्ञान का विशेष महत्व रहा हैं।

इस समाज में परिवार, नातेदारी, रिति-रिवाज, परंपरा धर्म का कम महत्व है। इस प्रकार इस समाज के आते-आते भावनात्मक रिश्ते कम हो गए और आवश्यकता जनित ज्यादा होने लगे। अत: ऐसे समाज को जटिल समाज कहते है।

आधुनिक समाज

इस समाज में महानगरों का अत्यधिक विकास हुआ। महानगरों के अधिक विकास से प्रौद्योगिकी का प्रयोग बढ़ने लगा। समाज मे प्राद्योगिकी के विकास से पूँजीपतियों के वर्ग अधिक विकास हुआ। समाज में पूंजीपति वर्ग के आगमन से श्रम विभाजन जटिलता आ गई। जनजातिय और किसान समाज में लोगों के पास खुद की खेती बाड़ी और जमीन थी। इसलिए वे अपनी भूमि के खुद स्वामी थे। परंतु आधुनिक समाज में पूंजिपतियों के अधीन रहने से उनका स्वामीत्व खत्म हो गया। वे पूँजीपतियों के लिए केवल काम करने लगे और उन्हें काम के बदले केवल मजदूरी मिलने लगी। श्रम विभाजन के कारण समाज में प्रतिरोधी संस्कृतियां विकसित हुई। प्राय: इस समाज में वर्ग संघर्ष अधिक होने लगा। वे पूँजीपतियों के लिए केवल काम करने लगे और उन्हे काम के बदले केवल मजदूरी मिलने लगी। श्रम विभाजन के कारण समाज मे प्रतिरोधी संस्कृतियां विकसित हुई। प्राय: इस समाज में वर्ग संघर्ष अधिक होने लगा।

सामाजिकता का तात्पर्य

जब व्यक्ति एक दूसरे के साथ सामाजिक रिश्ते स्थापित करते है। सामाजिक आदर्शो के लिए प्रतिबद्ध होते है तो उसे सामाजिकता कहते हैं। सामाजिक रिश्तों का निर्माण तभी होता है जब एक से अधिक व्यक्ति आपस में सम्पर्क स्थापित करते हैं तथा एक दूसरे से अंतक्रिया स्थापित करते है। यह सामाजिक संबंध कई प्रकार के होते है। जैसे - पति-पत्नी, का माता-पिता का संतान का भाई-बहन का, अध्यापक और शिष्य का। और दुकानदार का ग्राहक से, समूह का समितियों आदि का। कुछ सामाजिक संबंध आर्थिक प्रकार के, कुछ राजनीतिक प्रकार के, कुछ धार्मिक और कुछ वैज्ञानिक प्रकार के होत हैं।

इस प्रकार व्यक्ति असंख्य सामाजिक बंधनों में बंधा हुआ है, वह अकेला होते हुए भी इन सामाजिक संबंधों के कारण अकेला नहीं है। व्यक्ति सामाजिक रिश्तों की स्थापना मूल रूप से अपनी विविध प्रकार की जरूरतों की प्रक्रिया में करता है क्योंकि सामाजिक संबंध अमूर्त होते है। अत: समाज को भी अमूर्त माना गया है अर्थात् इसका कोई निश्चित रूप नही है।

सामाजिक संबंधों के लिए यह भी कहा जा सकता है कि व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक दूसरे से सम्बधित होते है। अकेले व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं है। अपने अस्तित्व को सार्थक बनाने के लिए समाज का गठन किया है।

इस विषय में समाजशास्त्री ताल्कोट पारसेस ने अपनी समाज की परिभाषा - ''ऐसी क्रिया के परिणामस्वरूप उत्पन्न संबंधों को ही सामाजिक संबंध और इन सामाजिक या मानवीय संबंधों से बनने वाली सम्पूर्ण जटिलता या व्यवस्था को समाज कहा गया है।"[10]

पारिवारिक स्थिति

डॉ० शंकर शेष आधुनिक हिन्दी नाट्य रचनाकारों में अहम् भूमिका रखते हैं। उन्होने नाटकों का निर्माण ही नहीं किया बल्कि नाटकों को प्रतिष्ठित करने का भी प्रयास किया।

डॉ० शंकर शेष ने जयशंकर प्रसाद की तरह पुरानी कथाबीजों के नये आयामों को प्रस्तुत किया। प्रयोगशीलन नाटककार डॉ० धर्मवीर भारती, लक्ष्मीनारायण लाला, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, विनोद रस्तोगी, मुद्राराक्षस, जगदीश चन्द्र माथुर, दयाप्रकाश सिन्हा, ज्ञानदेवी अग्निहोत्री आदि की श्रेणी में डॉ० शंकर शेष भी आते है। मोहन राकेश के बाद शिल्प और कथ्य की दृष्टि से नये प्रयोग करने वाले नाटककार हे- सुरेन्द्र वर्मा, दयाप्रकाश मणिमधुकर, मुद्राराक्षस, लक्ष्मीनारायण लाल तथा डॉ० शंकरशेष।

डॉ० शंकर शेष के नाटकों में मानवीय भावनाओं की तीव्र भावना दिखाई देती है। उन्होंने अपने नाटकों में आधुनिक, सामाजिक एवं धार्मिक समस्याओं को दर्शाया है। साथ ही आधुनिक काल की उथल-पुथल को भी चित्रित किया है।

डॉ० शंकर शेष के नाटकों की भाषा सरल-सहज एवं सम्प्रेषणीय है। उन्होंने नाटकों के विषय के अनुसार भाषा का प्रयोग किया है। कही यथार्थपरक भाषा का प्रयोग करते हुए कही-कही आम बोलचाल की भाषा का भी प्रयोग किया है।

डॉ० शंकर के नाटकों की आत्मा भारतीय रही है। वे युगबोध के नाटककार है। युगबोध के नाटककार होने के कारण उनके नाटकों में मानवीय भावनाओं की तीव्र वेदना एवं कसमसाहट दिखाई देती है।

नाटककार डॉ० शंकर शेष ने मध्यवर्गीय परिवार की वास्तविक परिस्थिति का चित्रण करने का प्रयास किया है। उन्होंने मध्यम वर्ग के परिवार की पारिवारिक परिस्थिति का वर्णन आम बोलचाल की भाषा में किया है। मनष्य जीवन ऐसा संघर्षपूर्ण जीवन बन जाता है। जब व्यक्ति अर्थ के हाथों मजबूर हो जाता है। वह अपने परिवार का भरण पोषण भी नही कर पाता।

''मूर्तिकार" नाटक में मनुष्य जीवन की सार्थकता का वर्णन किया है। जीवन की विडम्बना और यथार्थता का वास्तविक चित्रण किया है। पारिवारिक जीवन की आकांक्षा और निराशा से जूझते हुए पति-पत्नी की दु:खद कहानी का वास्तविक चित्रण किया है।

आधुनिक मध्यवर्गीय परिवारों की, ऐसी स्थिति है कि वो दो वक्त के खाने को भी तरसते है। मिट्टी को आकार और सौन्दर्य देने वाला, मिट्टी में कला से प्राण फूंकने वाला 'मूर्तिकार' अपने परिवार के लिए दो वक्त का भोजन जुटाने में भी असमर्थ है। भारतीय कला की रचनाकारों का कैसा दुर्भाग्य है मरने के बाद, साहित्यकारों की मजारों पर घी के दीये जलाये जा सकते है लेकिन जीवित रहते उनके परिवारों पर छाए, संघर्ष के संकट को कोई हटाने का प्रयास नही करता।

> ''कलाकार के जीवित रहते उसकी आंतरिक संवेदना के चाँद-सितारों से कोई रोशनी की शीतल किरणें नही लेता।"[11]

गरीबी के कारण शेरवट और उसके परिवार वालों को भूखा मरना पड़ता है। पत्नी ललिता पर परिस्थिति के कारण कैसे-कैसे प्रसंग आ जाते है। गरीबों का नाजायज फायदा उठाकर उसे पतन कीी ओर धकेलने का प्रयास करते है। उसे धमकाया जाता है।

मध्यवर्गीय मकड़ी की तरह बनाये अपने ही शतरंजी जाल में फंस कर झटपटाती है, फिर बुने हुए जाल से निकलने का प्रयास करती रहती है निरन्तर, बिना सके। घर की एक-एक वस्तु मुंह खोल कर घोषणा कर रही है जिसे मूर्तिकार स्वीकार भी करता है।

> ''धन जैसी चलती-फिरती सम्पति वह अपनी प्रिया को नही दे पाया।"[12]

मूर्ति बनाने में व्यस्त, चित्रकारिता में पारंगत साधना और कला के अंह:डूबा कलाकार मिट्टी की मूर्ति की आंखे इतनी सुंदर बनाना चाहता है कि वह ''भाव मछलियां बनकर समुंदर में तैर जाए।"[13]

नाटकार ने हमारे भारत में होने वाले कलाकारों की वास्तविक दशा का वर्णन किया है। कलाकार अपनी कला के सामने किसी की नही सुनता चाहें उसे कितना ही संघर्ष करना पड़े। वो हालातों के सामने अपनी कला को नही बेचता।

आज वो समय वही रहा जब राजा महाराजा और शहजादे कवियों और कला के प्रेमियों को भोग विलास या मनोविलास के लिए पाला जाता था। पर यह बात शेखर पूरी तरह भूल जाता है। कला के नाम पर जिंदगी की वास्तविकता से दूर भागता है। इसलिए हर व्यक्ति उसका अपमान करके चला जाता है।

यदि शेखर का आदर्श हैं तो ललिता का स्वाभिमान भी है ललिता का मानना है कि शेखर का खोखला आदर्शवाद हैं। उसका यह कोरा घमण्ड है। इसलिए वह शेखर से कहती है कि- ''इस दुनिया में कौन-सी चीज बिकाऊ नही है। कवि अपने गीत बेच रहा है। संगीतकार अपना संगीत बेच रहा है। विद्वान अपनी विदवहता बेच रहा है। लोग बेच रहे है। लोग खरीद रहे है।"[14]

शेखर को अपने परिवार की गरीबी के कारण भूखा मरना पड़ता है। वह अपने परिवारा को दो वक्त का भोजन भी नही दे सकता। अपने आदर्शो पर वह कायम है।

डॉ० शंकर शेष ने नाटक में सूक्तियों के प्रयोग से परिवार की वास्तविक स्थिति का वर्णन किया है।

> ''गरीबों के यहां खूबसूरती अभिशाप है। हर कसाई बलिदान से पहले बकरे को अच्छा चारा खिलाता है।...''[15]

प्रेम अंधा होता है। हर आदमी की ठोकर में रास्ता है। साथ ही मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है।

डॉ० शंकर शेष ने जीवन की विसंगति और यथार्थ का चित्रण किया है। मध्यमवर्गीय व्यक्ति अपने जीवन मूल्यों के प्रति आस्थावान है। इन्ही जीवन के मूल्यों को लेकर वह जीना चाहता है। परंतु जीवन की परिस्थितियाँ उसे पग-पग पर समझौता करने के लिए मजबूर करती है।

शेखर गरीबी के हाथों इतना मजबूर है कि वह अपनी पत्नी को अच्छे कपड़े भी नही पहना सकता।

> ''क्या मैं घर की हालत नहीं जानता? तुम उसी साड़ी को धोकर पहन रही हो यह साड़ी जगह-जगह से मूँह खोलकर घुट्टी की माँग कर रही है और मैं"[16]

इस नाटक में अनादि नाम का पात्र अपने घर की परिस्थिति का वर्णन अपनी भाभी को बताता है कि किस प्रकार उसकी ने कैसे संघर्ष करके उसको पढ़ाया है।

> ''भाभी सोचने से ही क्या होता है। जब मैं बार-बार को शिश कर अपनी माँ को सुख न दे सका तो केवल आदर्शवादी ढ़ंग से सोचकर अपने आपको धोखा क्यों दूं। शायद आप नही जानती भाभी कि मेरी माँ ने दूसरों के घर में बर्तन माँजकर और आटा पीसकर मूझे पढ़ाया लिखाया है। और मैं इतना नालायक हूँ कि उसके लिए दवा की दो खुराके भी नही जुटा सका।"[17]
>
> "ललिता जब चाय बनाती है तो उसे पूरा सामान नही मिलता फिर भी वह कहती है कि घर में सब कुछ है मगर पर चाय....''[18]

फिर झूठ। भाभी, क्या सचमुच इस घर में सब कुछ है? नही भाभी, इस घर में कुछ नहीं है। मैर ईसाँ को भले नहीं पहचानता: पर गरीबी को अच्छी तरह पहचानता हूँ। गरीबी से मेरी लँगोटिया दोस्ती है। इस घर में सुन्दर मूर्तियाँ है, रंग-बिरंगे चित्र है पर शाम के लिए आटा नहीं है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शंकर शेष के नाटकों में प्राचीन परम्पराओं के साथ वर्गीकरण भी है और आधुनिकता का भी बदलाव भी देखने को मिलता है। प्राचीन समय में पारिवारिक स्थिति क्या थी किस प्रकार कई प्रकार के समाज में बँटा हुआ था। कृषक समाज, जनजातीय समाज, औद्योगिक समाज और आधुनिक समाज। सभी में हमने समाज के अलग-अलग रूपों को देखा है। शंकर शेष के नाटकों द्वारा सामाजिक स्थिति के बारे में भी जानकारी मिली है। समाज में बदलाव की क्रान्ति आ चुकी थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. समाजशास्त्र, प्रो० एम० एल० गुप्ता एंड डी०डी० शर्मा, पृ० 96
2. ए हैडबंक ऑफ सोशियोलॉजी ई०बी० रेऊतर, पृ० 127

3. सोसाइटी एंड इंटोडक्टरी: आर० एम० मैकाइवर एंड पेज, पृ० 56
4. समाजशास्त्र, प्रो० एमडॉ० एल० गुप्ता एंड डॉ० डी० डी॰ शर्मा, पृ० 104
5. समाजशास्त्र प्रो० एमडॉ० एल० गुप्ता एंड डीडॉ०डीडॉ० शर्मा, पृ० 105
6. समाजशास्त्र प्रो० एमडॉ० एल० गुप्ता एंड डी०डी० शर्मा, पृ० 105
7. ए हैडबंक ऑफ सोशियोलॉजी ई०बी० रेऊतर, पृ० 127
8. सोशियोलॉजी, आर टी लापिए, पृ० 32
9. समाजशास्त्र, प्रो० एम० एल० गुप्ता एंड डी०डी० शर्मा, पृ० 105
10. समाजशास्त्र, प्रो० एम० एल० गुप्ता एंड डी०डी० शर्मा, पृ० 153
11. राजपथ से जनपथ नट शिल्पी शंकर शेष - डॉ० सुरेश एवं वीणा गौतम, पृ० 54
12. मूर्तिकार, डॉ० शंकर शेष, पृ० 5
13. वही, पृ० 3
14. वही, पृ० 55
15. वही, पृ० 32
16. शंकर शेष - समग्र नाटक, हेमन्त कुकरेती, पृ० 33
17. शंकर शेष - समग्र नाटक, हेमन्त कुकरेती, पृ० 34
18. मूर्तिकार, डॉ० शंकर शेष, पृ० 33

चीन-पाक धुरी और भारत के आंतरिक सुरक्षा को खतरा

मुकेश कुमार यादव

शोधार्थी (पीएच.डी. राजनीति विज्ञान) स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय दुर्ग, हेमचंद यादव विश्वविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.)

डॉ. शकील हुसैन

(विभागाध्यक्ष राजनीति विज्ञान) तामस्कर स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय दुर्ग, हेमचंद यादव विश्वविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.)

सारांशः-

चीन और पाकिस्तान की धुरी भारत की आंतरिक सुरक्षा के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती पेश करती है। दोनों देशों के बीच सैन्य और रणनीतिक सहयोग बढ़ता जा रहा है, जो भारत के लिए सुरक्षा चिंताओं को और भी गंभीर बना देता है। चीन-पाक धुरी का मुख्य उद्देश्य भारत को रणनीतिक रूप से घेरना और उसके विकास को बाधित करना है। इसके तहत, पाकिस्तान आतंकवाद को बढ़ावा देने के लिए चीन की सैन्य और आर्थिक मदद का उपयोग करता है, जिससे भारत के विभिन्न हिस्सों में अस्थिरता पैदा होती है। इसके अलावा, चीन की विस्तारवादी नीतियाँ और सीमा विवादों को लेकर उसका आक्रामक रुख भारत की सुरक्षा के लिए एक बड़ा खतरा बनता जा रहा है। इस धुरी के प्रभाव से भारत को आंतरिक सुरक्षा के मोर्चे पर सशक्त कदम उठाने की आवश्यकता है, जिसमें सीमा सुरक्षा को मजबूत करना, आतंकवाद के खिलाफ कठोर कार्रवाई करना, और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कूटनीतिक प्रयासों को तेज करना शामिल है।

प्रस्तावनाः-

भारत ने हमेशा वैश्विक शांति का संदेश दिया है, लेकिन धार्मिक, सामाजिक, और आर्थिक विविधता और विषमताओं के कारण उसे आंतरिक विवादों और आतंकवादी गतिविधियों से जूझना पड़ा है। पिछले 20 वर्षों में, देश के विभिन्न शहरों और यहां तक कि संसद भवन पर हुए हमलों ने भारत की आंतरिक सुरक्षा को चुनौती दी है। कश्मीर में समय-समय पर आतंकवादी हमलों ने भी देश की शांति को प्रभावित करने का प्रयास किया है। हालांकि, भारत की शक्ति और सामर्थ्य इतनी है कि सरकार ने आतंकवादियों के हमलों का दृढ़ता से जवाब दिया है। पठानकोट और पुलवामा हमलों के बाद, भारत ने पाकिस्तान में घुसकर आतंकवादी ठिकानों को नष्ट किया, जो उसकी क्षमता और दृढ़ संकल्प का उदाहरण है। जम्मू-कश्मीर में स्वतंत्रता के बाद से शांति का माहौल स्थापित हुआ है, हालांकि छुटपुट घटनाएं होती रही हैं। भारत की सीमा विवादों के संदर्भ में, भारत दक्षिण एशिया में स्थित है और उसकी सीमाएं चीन, नेपाल, म्यांमार, भूटान, श्रीलंका, बांग्लादेश और पाकिस्तान जैसे देशों से मिलती हैं।

चीन और पाकिस्तान के बीच बढ़ते सहयोग और उसके परिणामस्वरूप भारत की आंतरिक सुरक्षा को उत्पन्न हो रहे खतरे एक गंभीर चिंता का विषय है। चीन-पाक धुरी का गठन मुख्य रूप से भारत को रणनीतिक और सुरक्षा दृष्टिकोण से कमजोर करने के उद्देश्य से हुआ है। यह शोधन पत्र चीन-पाक धुरी की उत्पत्ति, उनके आपसी संबंधों की गहराई, और भारत के आंतरिक सुरक्षा पर इसके प्रभावों का विश्लेषण करता है। साथ ही, इसमें इन खतरों से निपटने के लिए भारत के संभावित उपायों का भी परीक्षण किया गया है।

2000 के दशक की शुरुआत में चीन और पाकिस्तान से दो मोर्चों पर सैन्य खतरों की चिंताओं ने भारत को अपने क्षेत्र की रक्षा के लिए निवारण और हतोत्साहन पर आधारित एक रणनीति विकसित करने के लिए प्रेरित किया। लेकिन, सेना को कभी भी उन जरूरतों के हिसाब से पर्याप्त संसाधन नहीं दिए गए, जिससे गंभीर कमजोरियाँ सामने आई। हालाँकि भारत-चीन

और भारत-पाकिस्तान संबंधों में हाल के सुधार हुए हैं, फिर भी दो मोर्चों पर सैन्य खतरा एक गंभीर चुनौती बना हुआ है जिसका कोई आसान समाधान नहीं है। भारत के पास दो मोर्चों पर युद्ध लड़ने के लिए अपनी सेना को संसाधन देने के लिए आर्थिक क्षमता नहीं है। अन्य शक्तियों के साथ साझेदारी के विकल्प भी मुश्किल साबित हो रहे हैं, क्योंकि क्वाड पहल अभी अपने शुरुआती चरण में है और विश्वसनीय सुरक्षा प्रदान करने की स्थिति में नहीं है। इसलिए, नई दिल्ली के लिए सबसे व्यावहारिक विकल्प न तो दो मोर्चों पर युद्ध लड़ना है और न ही इसकी तैयारी करना। इसके अतिरिक्त, भारत को अपने विरोधियों में से किसी एक के साथ दृढ़ता और स्थायी शांति की तलाश करनी चाहिए। चूंकि चीन एक दीर्घकालिक रणनीतिक प्रतिद्वंद्वी बना हुआ है और पाकिस्तान के साथ स्थायी शांति नई दिल्ली की प्रमुख राजनीतिक विचारधारा के विपरीत है, इसलिए भारतीय सेना के संसाधनों की कमी, अत्यधिक तनाव और असुरक्षा की स्थिति में बने रहने की संभावना है। (सिंह: 2021: ई-पत्रिका)

भारत हमेशा अपने पड़ोसियों के साथ शांति और मित्रता के संबंध स्थापित करना चाहता है। इसकी विदेश नीति गुटनिरपेक्षता, शांति, और सद्भावना पर आधारित रही है। भूटान, बांग्लादेश, श्रीलंका, और मालदीव जैसे देशों ने भारत के साथ हमेशा मित्रवत संबंध बनाए रखे हैं, जबकि चीन और पाकिस्तान ने बार-बार भारत के हितों को नुकसान पहुंचाने की कोशिश की है। भूटान और बांग्लादेश ने भारत के साथ अपने संबंधों को मजबूत करते हुए कई समझौतों पर हस्ताक्षर किए हैं, जिनमें पावर प्लांट, पावर ट्रांसमिशन लाइन, बंदरगाह विकास, और रेल लाइन निर्माण शामिल हैं, जिनमें दोनों देशों ने एक-दूसरे का सहयोग किया है। मालदीव, जो दक्षिण और अरब सागर में सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, भारत के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। (ठाकुर: 2024: ई-पत्रिका)

चीन-पाक धुरी: उत्पत्ति और विकास

चीन और पाकिस्तान के बीच संबंधों की शुरुआत 1960 के दशक में हुई, जब दोनों देशों ने एक-दूसरे को अपना सामरिक सहयोगी मानना शुरू किया। चीन की पाकिस्तान के प्रति नीति मुख्य रूप से भारत को घेरने की रणनीति पर आधारित है। 1962 के भारत-चीन युद्ध और 1965 के भारत-पाक युद्ध के बाद दोनों देशों के बीच सैन्य और आर्थिक सहयोग में तेजी आई। समय के साथ, चीन ने पाकिस्तान को व्यापक आर्थिक सहायता, रक्षा उपकरण और प्रौद्योगिकी प्रदान की, जिससे पाकिस्तान की सैन्य शक्ति में उल्लेखनीय वृद्धि हुई।

चीन और पाकिस्तान के अलावा, नेपाल के साथ भी भारत के संबंध हमेशा मधुर नहीं रहे हैं। नेपाल में चीन और पाकिस्तान के बढ़ते हस्तक्षेप के कारण, नेपाल अक्सर भारत की आलोचना करता आया है। पाकिस्तान में इस्लामिक कट्टरपंथ, सेना, और शासन के नेताओं ने भारत को अपना मुख्य दुश्मन माना है। भारत और नेपाल के बीच सीमा विवाद ने भी नेपाल के भारत के प्रति दृष्टिकोण को प्रभावित किया है, जिससे दोनों देशों के बीच संबंधों में खटास आई है।

चीन-पाक धुरी भारत की आंतरिक सुरक्षा के लिए एक गंभीर और बहुआयामी खतरा प्रस्तुत करती है। इन दोनों देशों के बीच बढ़ते सामरिक और रणनीतिक सहयोग ने भारत के सामने नई चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं। यह धुरी केवल सीमाओं पर सैन्य संघर्ष तक सीमित नहीं है, बल्कि साइबर हमले, आतंकवाद, नशीले पदार्थों की तस्करी और सूचना युद्ध जैसी गतिविधियों के माध्यम से भारत की आंतरिक स्थिरता को भी प्रभावित कर रही है। पाकिस्तान द्वारा समर्थित आतंकवादी गतिविधियों और चीन की उन्नत साइबर युद्ध क्षमताओं के चलते भारत को आंतरिक सुरक्षा के मोर्चे पर सतर्कता और मजबूत सुरक्षा उपायों की आवश्यकता है। इसके साथ ही, दोनों देशों द्वारा नशीले पदार्थों की तस्करी और सूचना युद्ध की रणनीति ने भारतीय समाज और युवाओं को गंभीर खतरे में डाल दिया है। इस परिप्रेक्ष्य में, चीन-पाक धुरी को भारत के आंतरिक सुरक्षा के लिए एक समग्र और दीर्घकालिक खतरे के रूप में देखा जाना चाहिए, जिसके समाधान के लिए व्यापक और रणनीतिक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है।

चीन और पाकिस्तान के बीच मजबूत होते संबंध, जिसे आमतौर पर 'चीन-पाक धुरी' के नाम से जाना जाता है, भारत की आंतरिक सुरक्षा के लिए एक गंभीर खतरा बनती जा रही है। यह धुरी न केवल भारत के बाहरी सुरक्षा वातावरण को प्रभावित करती है, बल्कि भारत के आंतरिक स्थिरता और सुरक्षा के लिए भी कई तरह की चुनौतियाँ उत्पन्न करती है।

चीन-पाक धुरी के प्रमुख घटक

- **सैन्य सहयोग**- चीन और पाकिस्तान के बीच रक्षा समझौते और संयुक्त सैन्य अभ्यासों की बढ़ती संख्या ने दोनों देशों के बीच सैन्य संबंधों को और अधिक मजबूत किया है। चीन ने पाकिस्तान को हथियारों की आपूर्ति, परमाणु तकनीक और मिसाइल तकनीक में मदद दी है, जिससे पाकिस्तान की सैन्य क्षमता में वृद्धि हुई है।

- **आर्थिक सहयोग**- चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारा (CPEC) इस धुरी का एक प्रमुख आर्थिक पहलू है। CPEC ने न केवल पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था को मजबूती दी है, बल्कि चीन के लिए हिंद महासागर और पश्चिम एशिया में अपने प्रभाव को बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण साधन भी प्रदान किया है। इस परियोजना के माध्यम से, चीन पाकिस्तान के भीतर बुनियादी ढांचे का विकास कर रहा है, जिससे उसकी आर्थिक और सैन्य स्थिति में सुधार हो रहा है।
- **रणनीतिक साझेदारी**- चीन और पाकिस्तान की रणनीतिक साझेदारी का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि वे दोनों भारत के खिलाफ एक साझा मोर्चा बनाते हैं। चीन पाकिस्तान को भारत के खिलाफ अपने राजनीतिक और सैन्य हितों को सुरक्षित करने के लिए एक मोहरा मानता है, जबकि पाकिस्तान चीन की मदद से अपने सामरिक लक्ष्यों को पूरा करता है।

चीन का समर्थन और प्रभाव

चीन ने पाकिस्तान को कई मोर्चों पर समर्थन दिया है, जिसमें आतंकवाद भी शामिल है। चीन का पाकिस्तान के प्रति यह समर्थन, दोनों देशों के बीच गहरे सामरिक संबंधों और भारत के प्रति उनके साझा प्रतिरोध से उत्पन्न होता है। चीन ने पाकिस्तान के आतंकवादी संगठनों के खिलाफ अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भारत के प्रयासों को बार-बार कमजोर किया है। (कपलान: 2009 पृ. 20-21)

- **संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में अड़चनें**- चीन ने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में पाकिस्तान आधारित आतंकवादी संगठनों और उनके नेताओं को प्रतिबंधित करने के भारत के प्रयासों को बार-बार बाधित किया है। उदाहरण के लिए, मसूद अजहर, जो जैश-ए-मोहम्मद का प्रमुख है और जिसे भारत में कई आतंकवादी हमलों का मास्टरमाइंड माना जाता है, को संयुक्त राष्ट्र में वैश्विक आतंकवादी घोषित करने के भारत के प्रस्ताव का चीन ने कई बार विरोध किया। इससे न केवल भारत की आतंकवाद विरोधी कूटनीति को नुकसान पहुंचा, बल्कि आतंकवादी संगठनों को और अधिक सक्रिय होने का मौका मिला।
- **आर्थिक और सैन्य सहायता**- चीन ने पाकिस्तान को व्यापक आर्थिक और सैन्य सहायता प्रदान की है, जिससे पाकिस्तान की आतंकवादी गतिविधियों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से बढ़ावा मिला है। चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारा (CPEC) के तहत पाकिस्तान को मिलने वाले संसाधन और बुनियादी ढांचे ने पाकिस्तान की क्षमता को और बढ़ाया है, जिससे वह आतंकवादी समूहों को समर्थन प्रदान कर सकता है। (अहमर: 2015: पृ. 42)
- **अंतरराष्ट्रीय मंचों पर समर्थन**- चीन ने पाकिस्तान का अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भी समर्थन किया है, जिससे पाकिस्तान को आतंकवाद के मुद्दे पर वैश्विक समुदाय की कठोर प्रतिक्रियाओं से बचने में मदद मिली है। चीन का यह समर्थन पाकिस्तान को आतंकवाद के माध्यम से अपनी रणनीतिक नीति जारी रखने की हिम्मत देता है।
- **उग्रवाद और अलगाववादी आंदोलनों का प्रोत्साहन**- चीन-पाक धुरी पूर्वोत्तर भारत में उग्रवाद और जम्मू-कश्मीर में अलगाववादी आंदोलनों को अप्रत्यक्ष रूप से समर्थन देने का काम करती है। पाकिस्तान के साथ चीन के नजदीकी संबंध इन क्षेत्रों में अस्थिरता को बढ़ावा देते हैं। पाकिस्तान, चीन की आर्थिक और सैन्य सहायता से प्रेरित होकर, भारत के अंदर विभाजनकारी गतिविधियों को बढ़ावा देने का प्रयास करता है।

नशीले पदार्थों की तस्करी: चीन-पाक सहयोग का स्वरूप

चीन और पाकिस्तान के बीच नशीले पदार्थों की तस्करी में बढ़ता सहयोग भारत की आंतरिक सुरक्षा के लिए एक गंभीर खतरा है। इससे न केवल संगठित अपराध और नशे की समस्या बढ़ सकती है, बल्कि युवाओं के भविष्य और समाज की स्थिरता पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। भारत को इस चुनौती का सामना करने के लिए अपने सुरक्षा उपायों को और सुदृढ़ करना होगा, साथ ही अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सहयोग बढ़ाना होगा। जागरूकता और शिक्षा के माध्यम से नशे की समस्या का समाधान खोजने के प्रयासों को और बढ़ावा देना होगा, ताकि भारत की आंतरिक सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके।

भारत की प्रतिक्रियाएँ

भारत ने पाकिस्तान के आतंकवाद और चीन के समर्थन के खिलाफ कई कदम उठाए हैं-

- **कूटनीतिक पहल**- भारत ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पाकिस्तान को आतंकवाद के मुद्दे पर अलग-थलग करने के प्रयास किए हैं। संयुक्त राष्ट्र और अन्य अंतरराष्ट्रीय संगठनों में भारत ने पाकिस्तान के आतंकवादी गतिविधियों को उजागर करने के लिए सक्रिय भूमिका निभाई है।
- **सैन्य प्रतिक्रियाएँ**- पाकिस्तान समर्थित आतंकवाद का मुकाबला करने के लिए भारत ने सर्जिकल स्ट्राइक और एयर स्ट्राइक जैसे कठोर कदम उठाए हैं, जिससे पाकिस्तान और उसके समर्थक आतंकवादी संगठनों को सख्त संदेश दिया गया है।
- **आर्थिक प्रतिबंध**- भारत ने पाकिस्तान के साथ व्यापारिक और आर्थिक संबंधों को सीमित करने के कदम उठाए हैं, जिससे उसकी आतंकवाद समर्थक गतिविधियों को आर्थिक नुकसान पहुंचे।

चीन द्वारा पाकिस्तान को दिया गया समर्थन भारत के आतंकवाद विरोधी प्रयासों को गंभीर रूप से कमजोर करता है। यह समर्थन न केवल आतंकवादी संगठनों को बल देता है, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत की कूटनीतिक स्थिति को भी कमजोर करता है। अत:, भारत को इस चुनौती का सामना करने के लिए अपनी सुरक्षा रणनीतियों को और मजबूत करने के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अधिक सक्रिय और प्रभावी भूमिका निभानी होगी।

भारत की आंतरिक सुरक्षा पर प्रभाव

- **आतंकवाद का समर्थन**- पाकिस्तान द्वारा आतंकवादी संगठनों को समर्थन और चीन द्वारा पाकिस्तान को दी जाने वाली सैन्य और आर्थिक सहायता के कारण, भारत को आतंकवाद की गंभीर चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। जम्मू-कश्मीर और उत्तर-पूर्वी राज्यों में आतंकवाद की घटनाओं में चीन-पाक धुरी की प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष भूमिका हो सकती है।
- **सीमा विवाद और सुरक्षा चुनौती**- भारत और चीन के बीच लद्दाख, अरुणाचल प्रदेश और सिक्किम जैसे क्षेत्रों में चल रहे सीमा विवादों ने भारत के लिए सुरक्षा खतरे बढ़ा दिए हैं। इन क्षेत्रों में चीन की सैन्य उपस्थिति और आक्रामकता ने भारत की सीमा सुरक्षा के लिए गंभीर चुनौतियां उत्पन्न की हैं। इसके अलावा, पाकिस्तान के साथ नियंत्रण रेखा (LoC) पर बढ़ती गतिविधियों ने भारत की सुरक्षा चिंताओं को और भी गंभीर बना दिया है।
- **साइबर हमले और सूचना युद्ध**- चीन और पाकिस्तान दोनों ही भारत के खिलाफ साइबर युद्ध और सूचना युद्ध में भी संलग्न हैं। साइबर हमलों के माध्यम से भारत की महत्वपूर्ण बुनियादी ढांचे को निशाना बनाया जा रहा है, जिससे देश की आंतरिक सुरक्षा को खतरा पैदा हो रहा है।

निवारक उपाय और संभावित रणनीतियाँ

- **कूटनीतिक प्रयास**- भारत को अंतरराष्ट्रीय मंचों पर चीन-पाक धुरी के खिलाफ कूटनीतिक प्रयासों को तेज करना चाहिए। अंतरराष्ट्रीय समुदाय को इस धुरी के खतरों से अवगत कराते हुए, भारत को समर्थन प्राप्त करना चाहिए और वैश्विक सहयोग को मजबूत करना चाहिए।
- **सीमा सुरक्षा का सुदृढ़ीकरण**- चीन और पाकिस्तान के साथ लगी सीमाओं पर सुरक्षा उपायों को और अधिक मजबूत करना आवश्यक है। इसके तहत, नई तकनीकों और निगरानी प्रणालियों का उपयोग किया जाना चाहिए, ताकि किसी भी प्रकार की घुसपैठ या सैन्य गतिविधियों का तत्काल जवाब दिया जा सके।
- **आतंकवाद विरोधी रणनीति**- भारत को आतंकवाद के खिलाफ अपनी रणनीति को और सशक्त बनाना होगा। इसमें आतंकवादी संगठनों के वित्तपोषण को रोकने के उपाय, स्थानीय स्तर पर सुरक्षा बलों को मजबूत करना और आतंकवाद विरोधी अभियानों को तेज करना शामिल है।
- **आर्थिक और साइबर सुरक्षा**- भारत को अपनी आर्थिक सुरक्षा को बढ़ाने के लिए नए उपायों पर काम करना चाहिए, जिसमें चीनी निवेश की समीक्षा और पाकिस्तान के साथ व्यापारिक संबंधों का पुनर्मूल्यांकन शामिल है। इसके अलावा, साइबर सुरक्षा के क्षेत्र में नए प्रोटोकॉल और सुरक्षा उपायों को लागू करना जरूरी है।

भारत के लिए सुरक्षा निहितार्थ -

पिछले खंडों में भू-राजनीति के नजरिए से सीपीईसी की ताकत और कमजोरियों पर प्रकाश डाला गया था। इस खंड का उद्देश्य भारत के लिए सीपीईसी के सुरक्षा निहितार्थों को रेखांकित करना है। दक्षिण एशियाई दिग्गज दो ऐतिहासिक शत्रुओं के बीच फंसा हुआ है, जिनके साथ उसने युद्ध लड़े हैं। भारत सीपीईसी को चीन और पाकिस्तान द्वारा आईओआर में भारत के हितों को भड़काने के लिए एक तंत्र के रूप में देखता है। यह खंड इस बात पर गौर करेगा कि सीपीईसी भारत के लिए सुरक्षा चुनौती के रूप में कैसे सामने आता है।

क्षेत्रीय अखंडता: कश्मीर का मामला

सीपीईसी पाकिस्तान प्रशासित कश्मीर में गिलगित-बाल्टिस्तान से होकर गुजरता है जो भारत और पाकिस्तान के बीच एक गंभीर रूप से विवादित क्षेत्र है। भारत पूरे कश्मीर क्षेत्र को अपने क्षेत्र का अभिन्न अंग मानता है, और पश्चिमी हिस्से पर पाकिस्तान का नियंत्रण अवैध माना जाता है। इसलिए भारत ने इस क्षेत्र को पाकिस्तान के कब्जे वाले कश्मीर (पीओके) के रूप में परिभाषित किया है।

स्थिति को और भी गंभीर बनाने वाली बात यह है कि चीन नहीं चाहता कि यह मुद्दा भारत के पक्ष में हल हो क्योंकि इस क्षेत्र को चीन और पाकिस्तान के बीच भौतिक ष्नाभि नालष् माना जाता है (सिंह: 2021: ई-पत्रिका) और सीपीईसी के लिए यह एक महत्वपूर्ण तत्व है। मामले को और अधिक जटिल बनाने के लिए, 1963 के तथाकथित चीन-पाकिस्तान सीमा समझौते के तहत, पाकिस्तान ने पीओके में भारत द्वारा अपना क्षेत्र माने जाने वाले हजारों वर्ग किलोमीटर क्षेत्र को चीन को दे दिया (लैम्ब : 1964: पृ. 299)। भारत इस समझौते को मान्यता नहीं देता है और इसे अपनी राष्ट्रीय संप्रभुता और सुरक्षा हितों के लिए एक सीधी चुनौती के रूप में देखता है। ऐतिहासिक विवाद में चीन को शामिल करना भारत के लिए दिन-प्रतिदिन अधिक परेशानी भरा होता जा रहा है। कश्मीर के विवादित क्षेत्र या भारत जिसे पीओके कहता है, वहां चीनी सैनिकों की बढ़ती मौजूदगी की भी खबरें आई हैं। (चांसोरिया: 2016: पृ. 70)

भारत हिंद महासागर में चीन और पाकिस्तान के बीच संयुक्त नौसैनिक गतिविधियों की बढ़ती तीव्रता से चिंतित है। इन गतिविधियों से हिंद महासागर की शांति भंग होने और भारत की सुरक्षा और ऊर्जा हितों को गंभीर चुनौती मिलने की संभावना है। यदि चीन अरब सागर में अपनी नौसैनिक क्षमताओं का निर्माण जारी रखता है, तो इसका परिणाम ग्वादर बंदरगाह के माध्यम से होर्मुज जलडमरूमध्य को नियंत्रित करना हो सकता है।

निष्कर्ष

चीन-पाक धुरी भारत की आंतरिक सुरक्षा के लिए एक जटिल और बहुआयामी खतरा है। इस धुरी के माध्यम से चीन और पाकिस्तान, भारत को रणनीतिक रूप से कमजोर करने का प्रयास कर रहे हैं। इस धुरी का प्रभाव भारत के अंदर आतंकवाद, उग्रवाद, साइबर हमले, और संगठित अपराध के रूप में देखा जा सकता है। भारत को इस धुरी के खतरों का सामना करने के लिए सतर्कता, रणनीतिक योजना, और अंतरराष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता है। इस चुनौती का सफलतापूर्वक सामना करने के लिए भारत को अपनी आंतरिक सुरक्षा तंत्र को और सुदृढ़ करना होगा और साथ ही बाहरी समर्थन को भी सुनिश्चित करना होगा। चीन-पाक धुरी के खिलाफ एक सशक्त और संगठित प्रतिक्रिया ही भारत की सुरक्षा और अखंडता को सुनिश्चित कर सकती है।

संदर्भ सूची -

- सिंह, सुशांत (2021) "दो मोर्चों पर युद्ध की चुनौती: भारत की चीन-पाकिस्तान दुविधा" https://www.stimson.org/2021/the-challenge-of-a-two-front-war-indias-china-pakistan-dilemma/
- ठाकुर, संजीव (2024) "भारत को आंतरिक तथा बाह्य सुरक्षा से बड़ा खतरा: चीन और पाकिस्तान परंपरागत दुश्मन" https://www.swatantraprabhat.com/article/142101/india-faces-a-major-threat-from-internal-and-external-security
- "https://www.drishtiias.com/hindi/daily-updates/daily-news-editorials/internal-security-of-india-and-their-challenges
- अहमर, मूनिस (2015) "चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारे का रणनीतिक अर्थ।" सामरिक अध्ययन 35(1), https://issi.org.pk/wp-content/uploads/2015/12/Moonis-Ahmar_3435_SS_41_20142015.pdf

- टूरंगबाम, मोनीश (2020) "चीन-भारत-पाकिस्तान त्रिकोण: उत्पत्ति, समकालीन धारणाएं और भविष्य" https://www.stimson.org/2020/the-china-india-pakistan-triangle-origins-contemporary-perceptions-and-future/
- कपलान, रॉबर्ट डी. (2009) "इक्कीसवीं सदी के लिए केंद्र मंच: हिंद महासागर में शक्ति का खेल।" विदेश मामले 88(2), 16-32. http://www.jstor.org/stable/20699491
- मिश्रा, विवेक (2017) "भारत-अमेरिका सुरक्षा सहयोग: हिंद महासागर के लिए निहितार्थ।" समुद्री मामले: भारतीय राष्ट्रीय समुद्री फाउंडेशन की पत्रिका 13(1), doi: 10.1080/09733159.2017.1315890
- लैम्ब, एलिस्टेयर (1964) "2 मार्च 1963 का चीन-पाकिस्तान सीमा समझौता।" ऑस्ट्रेलियन आउटलुक 18(3), doi: 10.1080/10357716408444182
- चांसोरिया, मोनिका (2016) "चीन की वर्तमान कश्मीर नीति: स्थिर क्रिस्टलीकरण।" जर्नल फॉर द सेंटर ऑफ लैंड वारफेयर स्टडीज, https://claws.in/images/journals_doc/1879857213_2078418284_MonikaChansoria.pdf
- सिंह, सत्येंद्र (1992) ''ब्लूप्रिंट टू ब्लूवाटर: द इंडियन नेवी'', नई दिल्ली: लांसर्स इंटरनेशनल।
- स्कॉट, डेविड (2006) "हिंद महासागर के लिए भारत की 'भव्य रणनीति': महानियन विजन।" एशिया पैसिफिक रिव्यू 13(2) doi :10.1080/13439000601029048

गोपालगंज जनपद में लिंग अन्तरीय साक्षरता प्रभेद पर शैक्षिक विकास का प्रभाव

डॉ० उषा सिंह

विभागाध्यक्ष (शोध-पर्यवेक्षक) भूगोल विभाग, जे. पी. विश्वविद्यालय छपरा

प्रियंका प्रियदर्शिनी

शोध छात्रा, जे०पी०पू०, छपरा

प्रस्तुत शोध-प्रबंध गोपालगंज जनपद में लिंग अन्तरीय साक्षरता प्रभेद पर शैक्षिक विकास का प्रभाव के विश्लेषण पर केन्द्रित है। आधुनिक युग में शिक्षा, जो मानव का एक अति विशिष्ट गुण है, निर्विवाद रूप से व्यक्ति, समाज, क्षेत्र एवं राष्ट्र सभी स्तरों पर सामाजिक एवं आर्थिक विकास का मूल आधार प्रस्तुत करती है। शिक्षा न केवल सामाजिक, आर्थिक विकास प्रक्रिया में सहायक होती है, अपितु इसका प्रसार किसी क्षेत्र या समाज विशेष के सर्वांगीण विकास स्तर का द्योतक भी माना जाता है। यह लोगों में प्राचीन रूढ़िगत परम्पराओं की बुराईयों को दूर करने की क्षमता तथा आधुनिक जीवन पद्धति को अपनाने में जागरूकता उत्पन्न करती है तो दूसरे शब्दों में निरक्षरता, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं प्राविधिक दृष्टि से पिछड़ेपन का सूचक है। विदित हो कि जनसंख्या और शिक्षा के मध्य अंर्तसंबंध की महत्ता है और विकास की ओर उन्मुख होने के लिए दोनों ही एक माध्यम हैं। शिक्षा न केवल जनसंख्या में परिवर्तन से प्रभावित होती है, शिक्षा का विकास भी जनसंख्या की गति को प्रभावित करता है।

शैक्षिक परिवेश

यद्यपि भारत में स्कूली शिक्षा चार चरणों प्राथमिक, उच्च प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक, कुल 10 वर्षों में प्रदान की जाती है लेकिन बिहार राज्य में आँकड़े प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक के लिए प्रकाशित होते हैं।

स्कूली शिक्षा की संरचना देश में सर्वत्र लगनेवाली अवधि की दृष्टि से एक जैसी नहीं है। फिर भी समग्र रूप से शिक्षा प्रणाली में लगभग समानता है।

विदित हो कि प्राक्- प्राथमिक शिक्षा बिहार में अर्ली चाइल्ड केयर एवं एडुकेशन (ई.सी.सी. ई.) जिससे इन्ट्रीग्रेटेड चाइल्ड डेभलपमेंट स्कीम (आई.सी.डी. एस.) भी जुड़ा है। सभी बसे हुए ग्राम में आंगनवाड़ी द्वारा संचालित की जाती है। इसके द्वारा बच्चों को 6 वर्षों की उम्र तक स्वास्थ्य, पोषण एवं प्राक्- स्कूली शिक्षा प्रदान की जाती है तथा गर्भवती एवं स्तन्यकालिक माताओं को भी ये सेवाएँ उपलब्ध हैं।

इस क्रम में 2001 में प्रारंभ सर्व शिक्षा अभियान (एस. एस. ए.) एक राष्ट्रीय कार्यक्रम है जिसका उद्देश्य 2007 तक प्राथमिक तथा 2010 तक प्रारंभिक प्रदान करना था। इस क्रम डिस्ट्रीक्ट प्राइमरी एडुकेशन प्रोग्राम (डी. पी. इ. पी), मिड डे मील स्कीम (एम. डी. एम. एस.), टीचर एडुकेशन स्कीम एवं कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय स्कीम (के.जी.बी. भी. एस.) भी प्रारंभिक शिक्षा को सर्वव्यापी बनाने हेतु चलाये गये हैं।बालिकाओं के लिए नेशनल प्रोग्राम फॉर एडुकेशन ऑफ गर्ल्स स्टे एलीमेंटरी लेभेल (एन.पी.इ.जी.इ.एल.) विशिष्ट रूप से चलाया गया है। महिला समस्या कार्यक्रम (1989) उनकी सशक्तिकरण के निमित है। केन्द्रीय स्तर पर इसकी सफलता हेतु मानव संसाधन विकास मंत्रालय (2000) के अन्तगर्त प्राथमिक शिक्षा का एक अलग विभाग भी स्थापित किया गया है। माध्यमिक शिक्षा भी इसमें सम्मिलित (2006) है। वर्तमान

में मानव संसाधन विकास मंत्रालय के दो विभाग (i) स्कूली शिक्षा तथा साक्षरता एवं (ii) उच्च शिक्षा हैं। स्कूली शिक्षा के अन्तर्गत माध्यमिक को शैक्षिक पदानुक्रम में महत्व दिया गया है क्योंकि उच्च शिक्षा के योग्य व्यक्ति का निर्माण इस चरण में ही पूर्ण होता है। केन्द्रीय स्तर पर माध्यमिक शिक्षा के लिए स्थापित संस्थायें एन.सी. इ.आर.टी., सी.बी.एस.ई., नेशनल स्कूल ऑफ ओपेन स्कूल (एन. आइ.ओ. एस.), नेशनल विद्यालय समिति (एन.भी. एस.) केन्द्रीय विद्यालय संगठन (के. भी.एस.) एवं सेन्ट्रल टीबेटन स्कूल एडमिनिस्ट्रेशन (सी.टी.एस. ए.) है।

इसके अतिरिक्त माध्यघमिक तथा उच्च माध्यमिक विद्यालयों की बालिकाओं के लिए होस्टल तथा बोडिंग, विकलांग बच्चों के लिए समाकलित शिक्षा, विद्यालयों में सूचना संचार प्रौद्योगिकी तथा गुणवत्ता उन्नयन की कई सुविधायें केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रायोजित होती रही है। उच्च शिक्षा के अन्तर्गत चार प्रणाली निम्म्वत् हैं :-

(i) केन्द्रीय विश्वविद्यालय
(ii) प्रान्तीय विश्वविद्यालय
(iii) डीम्ड विश्वविद्यालय
(iv) राज्य व्यवस्थापिका द्वारा स्थापित संस्थायें,
(v) केन्द्रीय व्यवस्थापिका द्वारा स्थापित संस्थान और
(vi) राज्य व्यवस्थापिका द्वारा स्थापित कृषि / पशु चिकित्ब्सा एवं मुक्त विश्वविद्यालय है।

विदित् हो कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा देश में इन सबकी देख-रेख होती है।उच्च शिक्षा के क्षेत्र में महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के विकास का प्रयास किया जा रहा है। इस क्रम में महिलाओं के लिए हेल्थ केयर सेन्टर, सिम्पल संस्कृति स्पीकिंग सेन्टर्स, पोपुलेशन एडुकेशन रीसोर्स सेन्टर्स वीमेन स्ट्डीज सेन्टर्स तथा एस. सी. एवं एस.टी. सेल्स खोले गये हैं।

शैक्षणिक सुविधायें

शैक्षणिक सुविधाओं के मापदंड के रूप में विद्यालयों तक तय की जानेवाली दूरी महत्वपूर्ण है। छात्रों की स्कूली उम्र बाल्यावस्था से लेकर अधिक से अधिक 16 वर्ष मानी गयी है। इस आयुवर्ग के छात्रों द्वारा तय की जानेवाली दूरी लंबी होने पर छात्रों का समय आवागमन के क्रम में निरर्थक व्यवतीत होता है। अतएव स्कूल अगर ग्राम के अन्तर्गत ही अवस्थित हो शैक्षणिक सुविधाओं की दृष्टि से इसे आदर्श माना जाता है

प्राथमिक विद्यालय

गोपालगंज स्तर पर 88 प्रतिशत से भी अधिक ग्रामों में प्राथमिक विद्यालय अवस्थित है। बल्कि कुछ गाँव ऐसी भी है जिनमें एक से अधिक प्राथमिक विद्यालयों द्वारा शैक्षणिक सुविधाएँ प्राप्त हो रही हैं। क्षेत्रीय औसत की तुलना में उच्चतर प्रतिशत क्षेत्र के उन अंचलों में प्रदर्शित है, जो क्षेत्र के पूर्वी एवं उत्तरी भागों में केन्द्रित है। इनमें शहरी, संघटक अनिवार्य रूप से सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ग्रामीण जनसंख्या वाले अंचलों का भी योगदान है। क्षेत्रीय स्तर से न्यूनतर ऐसी शैक्षणिक सुविधाएँ देश के दक्षिणी सीमा के सहारे फैले हैं। बैकुण्ठ्पुर, उत्तर प्रदेश के सीमा विजयपुर और भोरे इत्यादि अंचलों में प्रस्फुटित हैं। क्षेत्र जहाँ सघन घनत्व अधिक है और जहाँ बस्तियाँ सघन रूप में विकसित हैं, वहाँ विद्यालयों से युक्त गाँवों का प्रतिशत उच्चतर है।

मध्य विद्यालय

मध्य विद्यालय का क्षेत्रीय औसत 19.64 प्रतिशत का है। इसके परिप्रेक्ष्य में उच्चतर आपतन जिन अंचलों में हैं।

वे प्राथमिक विद्यालयों से युक्त बस्तियों वाले भी हैं। इसके अतिरिक्त मध्य विद्यालय युक्त गाँवों का प्रतिशत न्यूनतर प्रदर्शित है। द्रष्टव्य है कि प्राय: क्षेत्र में प्राथमिक एवं मध्य विद्यालय की स्थापना हुई है। अत: प्राय: जहाँ कहीं प्राथमिक विद्यालय हैं, उसकी निरंतरता में मध्य विद्यालय भी शैक्षणिक सेवायें प्रदान कर रहे हैं।

उच्च विद्यालय

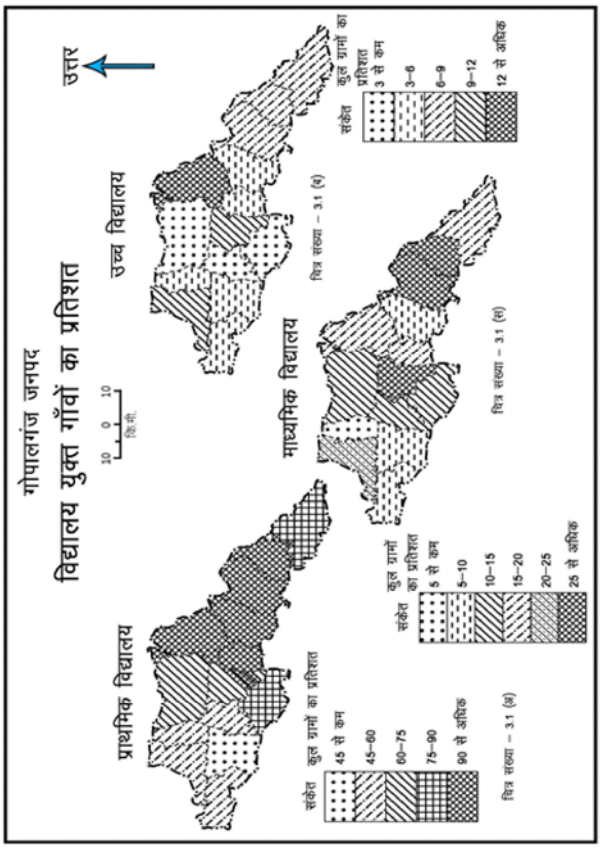

उच्च विद्यालय गाँवों का क्षेत्रीय औसत 6.12 प्रतिशत है। इससे उच्चतर प्रतिशत से युक्त अंचल गोपालगंज, उचकागाँव, कटैया, बरौली एवं पंचरुखी हैं। द्रष्टव्य है कि ऐसे ग्राम क्षेत्र के मध्यवर्ती और उत्तरी भाग में विशेषकर शहरी सेवा केन्द्रों से युक्त है। इसमें दो अंचल पूर्णत: एक शहरी एव्र ग्रामीण जनसंख्या के हैं। न्यूनतम प्रतिशत वाले अंचल क्षेत्र के पूर्वी द०-पू० और द० क्षेत्रों में प्रस्फुटित हैं। उल्लेखनीय है कि राज्यों में विगत दो दशकों में उत्क्रमित किये जाने वाले विद्यालय प्राय: ग्रामीण सेवा केन्द्रों पर अवस्थित है। ऐसे केन्द्रों पर न जीवनोपयोगी सुविधाओं की सहज उपलब्धता है और न ऐसी दशाओं में विद्यालयों की क्रियाशीलता बनी रहती है।

विद्यालयों में नामांकन

यद्यपि क्षेत्र में प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों में जनसंख्या के नामांकन 2009-10 में 4.58 प्रस्फुटित है, जबकि 2010-11 एवं 2011-12 (4.61) तुलनात्मक रूप से अगर देखा जाए तो बिहार राज्य की 180.3 (2009-10), 33.65 (2010-11) एवं 9.69 (2011-12)। अतएव नामांकन में अस्थिरता के प्रति सतत् रूप से उनमें न पायी जाने वाली जागरूकता हैं। सरकारी एवं एन.जी.ओ. गतिविधियों के कारण पुन: मन्द पड़ने पर नामांकन में ह्रास होता है। लेकिन राज्य के स्तर नामांकन 2009-10 की तुलना में 2010-11 में उच्चतर है। नामांकित जनसंख्या की अस्थिरता जैसे क्षेत्र के लिए आकलित है। संभवत: अस्थिरता का कारण आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से पायी जाने वाली भिन्तायें हैं।

छात्र- शिक्षक अनुपात

शिक्षा की गुणवत्ता में उन्नयन के पहलू में छात्र शिक्षक अनुपात की भूमिका महत्वपूर्ण है, यद्यपि कि विगत् दशकों में सामान्यत: रूप से बिहार की शिक्षा के विकास में अवनयन के लिए असंतुलित छात्र-शिक्षक अनुपात की तुलना में अन्ध प्रतिकारक प्रभावशाली रहे हैं। विशेषकर नीति-निर्धारकों में शिक्षा के प्रति व्याप्त उदासीनता एक प्रमुख कारण हैं। विद्यालयों,

महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की संख्या में होने वाली वृद्धि और समकालीन शिक्षा के गिरते स्तर के बीच विलोमीय संबंध है। छात्र शिक्षक अनुपात का राष्ट्रीय अनुपात प्रति शिक्षक 30 छात्र का है (सिंह, आर0बी0 1986)'। इसके आलोक में क्षेत्र में सर्वत्र अनुपात असंतुलित है। क्षेत्रीय अनुपात की तुलना में स्थानिक भिन्नताओं का प्रदर्शन (चित्र 1) में किया गया है।

क्षेत्रीय अनुपातिक परिप्रेक्ष्य में न्यूनतर अनुपात वाले अंचल गोपालगंज (1:36), उचकागाँव (1:39) एवं बिजयपुर (1:40) है। इसमें शहरी जनसंख्या वाले जिला मुख्यालय है। इसके अतिरिक्त शेष बचे हुए इस श्रेणी के सभी संघटक ग्रामीण जनसंख्या किन्तु विकसित सांस्कृतिक संश्लिष्ट से युक्त है। क्षेत्र के अन्य अंचलों में अनुपात बढ़ते हुए क्रम में असंतुलन होते गया है। स्मरणीय है कि इनमें क्षेत्र के दक्षिणी सीमा के सहारे अंचल सम्मिलित है। शहरी सेवा केन्द्रों से सेवित गोपालगंज, उचकागाँव और बरौली अंचलों में छात्र- शिक्षक अनुपात का अपेक्षाकृत संतुलित होना शहरीकरण द्वारा प्रभावित है। शहरों में सरकारी संस्थाओं के अतिरिक्त निजी संस्थाओं की भूमिका शिक्षा की गुणवता उन्नयन में काफी महत्वपूर्ण है। बल्कि निजी विद्यालयों में सी. बी. एस. ई. एवं आई. सी. एस. ई. बोर्ड द्वारा नियंत्रित शिक्षा मौद्रिक दृष्टि से महंगी होने के बावजूद सरकारी विद्यालयों द्वारा प्रदत्त शिक्षा की तुलना में सर्वाधिक लोकप्रिय हैं।

विदित हो कि हाल के वर्षों में ऐसे विद्यालयों की सेवा क्षेत्र के मध्यवर्ती पंचरूखी, और बिजयपुर अंचलों में काफी बढ़ी है।

चित्र 3.2 के निरीक्षण मात्र से स्पष्ट है कि छात्र शिक्षक अनुपात में होने वाले परिवर्तन के प्रमाण उपस्थित है। अर्थात् शिक्षकों की नियुक्ति भिन्न स्त्रों पर निर्धारित मानदेय के आधार पर की गयी है। नि:संदेह इसके कारण शिक्षकों की संख्या में वृद्धि हुयी है जबकि छात्रों की संख्या पूर्ववत् है। सिमटता हुआ अनुपात शिक्षा में प्रगति की संभावना प्रदर्शित करता है। किन्तु शिक्षकों के दिये जाने वाले मानदेय प्रोत्साहक नहीं है। स्वाभाविक है कि जर्जर अर्थव्यवस्था से अभावग्रस्त प्रतिभावान शिक्षक भी अपेक्षित योगदान करने में असमर्थ हैं।

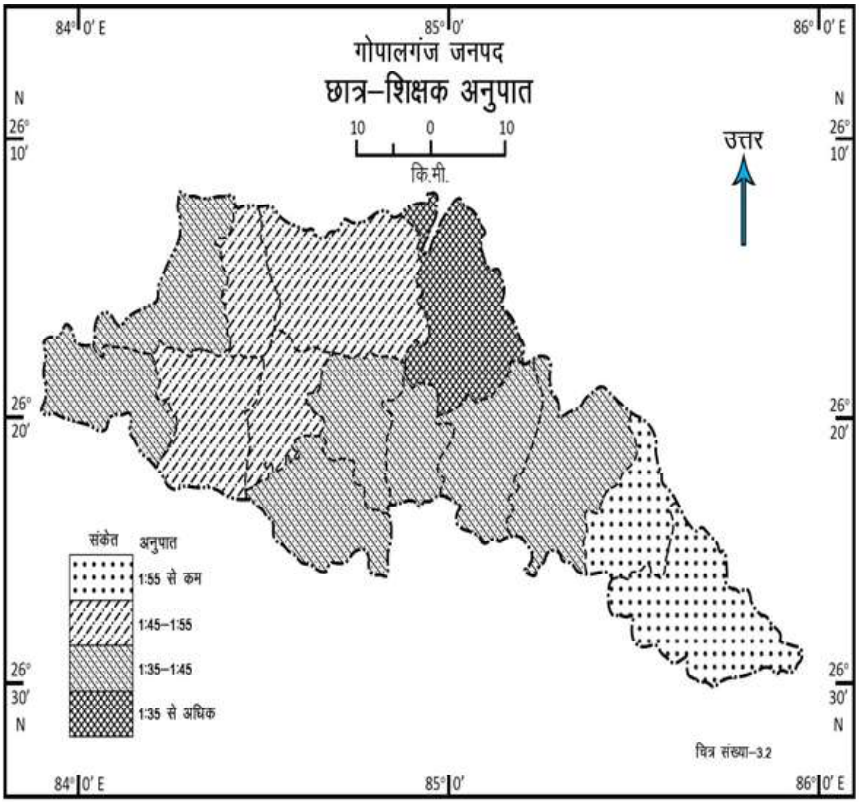

तालिका 3.1: छात्र-शिक्षक अनुपात

क्रम सं.	अंचल	छात्र-शिक्षक अनुपात
1	2	3
1.	कटैया	1:59
2.	बिजयपुर	1:50
3.	भोरे	1:32
4.	पंचदेउरी	1:51
5.	कुचायकोट	1:65
6.	फुलवरिया	1:65
7.	हथुआ	1:55
8.	उचकागाँव	1:79
9.	थावे	1.66
10.	गोपालगंज	1:56
11.	माझा	1:71
12.	बरौली	1:86
13.	सिधवलिया	1:71
14.	बैकुण्ठपुर	1:83
कुल		1:63

जिला शिक्षा विभाग, गोपालगंज

शैक्षिक विकास

तालिका 3.2 मात्र से स्पष्ट होता है कि 1901-02 के वित्तीय वर्ष में तत्कालीन सारण जिला में कुल स्कूल 951 और 26705 छात्र थे। 30 से 32 वर्षों के बाद 1931-32 में संस्थाओं में 52 प्रतिशत और छात्रों की संख्या में वृद्धि 145.96 प्रतिशत की संचयी वृद्धि हुई थी। दस वर्षों के उपरांत छात्रों की संख्या में वृद्धि की गति बनी रही, किन्तु संस्थाओं में वृद्धि 8.4 प्रतिशत ही हो पायी। पुनः दस वर्षों के उपरांत 1951-52 में छात्रों की दशकीय वृद्धि जहाँ 39.47 प्रतिशत की हुई, संस्थायें मात्र 8.61 प्रतिशत की दर से बढ़ पायी। अर्थात् प्राक् स्वतंत्रता अवधि संस्थाओं की संख्या में वृद्धि की दृष्टि से ध्यानाकर्षक नहीं थी। किन्तु स्वतंत्रता के उपरांत संस्थाओं की वृद्धि 1956-57 में 16.83 प्रतिशत एवं 1959-60 में 7.49 प्रतिशत की दर से हुई। छात्रों की संचयी वृद्धि इस अवधि में 290. 12 प्रतिशत की आकलित की गई। कालान्तर में भी संस्थाओं की वृद्धि की गति छात्रों की संख्या में वृद्धि की गति से काफी पीछे थी। 2012-13 में संस्थाओं की वृद्धि 3.73 प्रतिशत परिगणित की गई। तत्पश्चात् छात्रों की वृद्धि का सिलसिला 2013-14 तक बना रहा है। छात्रों की संचयी वृद्धि 2013-14 में भी लगभग 7 प्रतिशत प्रतिवेदित है।

तालिका 3.2: शिक्षा का विकास

वर्ष	शिक्षण संस्थान		छात्रों का नामांकन	
	संख्या	वृद्धि	संख्या	वृद्धि
1	2	3	4	5
1901-02	951	-----	26705	-----
1931-32	1480	529	65684	38979
1941-42	1605	125	90750	25066
1951-52	1743	138	144724	53974
1953-54	2003	260	143163	1561
1954-55	2244	241	172480	29317
1955-56	2501	257	198805	26325
1956-57	2922	421	295851	17046
1959-60	3141	219	1154171	858320
1981	2779	362	-----	----
2001	3377	598	-----	-----
2007-08	3717	340	880000	-244171
2010-11	3762	45	889000	9000
2012-13	4135	373	1317838	428838
2013-14	4570	435	1402927	85089

तालिका 3.3 के अवलोकन मात्र से स्पष्ट है कि क्षेत्र में संस्थाओं की संख्या में वृद्धि का ग्राफ स्वतंत्रता के पश्चात् दूसरे दशक 1961 से तीव्रता के साथ उर्द्धगामी होता गया है। 1961 की प्राथमिक विद्यालयों की कुल संख्या 916 से 1981 और 2001 में 1052 एवं 1270 के लिए प्रगामी है।

मध्य विद्यालयों की संख्या में आयी वृद्धि की तीव्रता प्राथमिक विद्यालयों जैसी ही थी। 1981 तथा इनकी कुल संख्या 86 थी जो 2001 में 272 पर जा पहुँची थी। किन्तु उच्च विद्यालयों की संख्या में वृद्धि जो 1961 से 1981 के बीच 38 एवं 57 के लिए हुई। 2001 तथा 95 तक पहुँची है। साथ ही बिहार विश्वविद्यालय से 1961 में 21, 1981 में 4 और 2001 में 7 अस्तित्व में आ चुके थे। इस अवधि में विशेषकर बेसिक एवं प्रशिक्षण संस्थाओं की संख्या अति गत्यात्मक रही। 1961-1981 के बीच भिन्न-भिन्न स्तरों की संस्थाओं में प्रशिक्षण शिक्षकों की आवश्यकता के ख्याल से शिक्षण प्रशिक्षण विद्यालय सरकारी स्तरों पर खोले जाते रहे। ऐसे विद्यालयों में औधोगिक प्रशिक्षण देने वाले विद्यालय भी सम्मिलित थे। किन्तु रोजगार की उपलब्धता में संपृक्तता की स्थिति आने पर ऐसे अनेकानेक विद्यालय बंद कर दिये गए। फलस्वरूप पूर्ववर्ती 93 कुल 2001 में 40 पर सीमित है। उपरोक्त विश्लेषण से जनसंख्या की वृद्धि के साथ दोआब में शैक्षणिक संस्थाओं में वृद्धि की प्रवृति का आभास मिलता है; हालांकि राज्य की गिरती विधि व्यवस्था और शिथिल किया जाता नियम, अधिनियम और प्रशासन शिक्षा की गुणवत्ता की दृष्टि से बड़ा ही महंगा प्रमाणित हुआ है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के सभी मापदंड छिन्न-भिन्न होते चले गए हैं। यह अवनयन यहाँ कई चरणों में हुआ है। सर्वप्रथम प्रवेशिका पाठ्यक्रम में अंग्रेजी का ऐच्छिक किया जाना पतन का प्रारंभ था। तत्पश्चात् शिक्षा के क्षेत्र में किया जाने वाला अन्यवश्थाक प्रयोग, जैसे कभी 10+2 कभी प्री., कभी पार्ट वन, कभी दो वर्षीय स्नातक, कभी तीन वर्षीय स्नातक भी अप्रत्यक्ष रूप से शैक्षणिक विकास को बाधित करता है। अंततः हाल के वर्षों में स्नातक वर्ग के पाठ्यक्रम में अंग्रेजी का महत्वहीन किया जाना शिक्षा के विकास के लिए आत्मघाती है।

शैक्षणिक विकास के उपरोक्त इतिहास से स्पष्ट है कि क्षेत्र में जनसंख्या की तीव्र से तीव्रतर होती वृद्धि से प्रतिफलित छात्रों की संख्या में कृतिमान रूप से वृद्धि प्रतिवेदित हैं इस दिशा में संस्थाओं में उनके अंतर्लीन किये जाने के उद्देश्य से विद्यालय एवं विश्वविद्यालय खोले जाते रहे हैं। समग्र रूप से शिक्षा के क्षेत्र में संख्यात्मक वृद्धि की यह एक उल्लेखनीय अवधि है। किन्तु गुणात्मक दृष्टि से शिक्षा का स्तर आधार तल तक अवनत् एवं पतनोमुख हो चुका है। इस दिशा में (जी.पी. झा (2013) 2 द्वारा जनसंख्या संसाधन विकास के संदर्भ में अभिव्यक्त विचार यहाँ के शैक्षणिक परिदृश्य का सटीक चित्रण है। उनके

अनुसार संस्थाओं की संख्या में सर्वाधिक वृद्धि हुयी है। जबकि विश्व में उच्च शिक्षा पर दिए गए प्रतिवेदन में 200 विश्वविद्यालयों की सूची में भारत के किसी भी विश्वविद्यालय का नाम नहीं है। प्राय: संस्थाएँ अपनी आधारभूत संरचना शिक्षा नीति तथा उनमें नियुक्त शिक्षाविदों के मेधा की दृष्टि से अति दुर्बल है। अच्छी मस्तिष्क भारत से विदेशों में जाता है और भारत में मानव संसाधन को समुचित ढ़ग से शिक्षित नहीं किया जाता है।

तालिका 5.1: समग्र लिंग अन्तरीय साक्षरता

---	क्षेत्र	1991				2001				2011			
क्रम स०		व्यक्ति	पुरुष	स्त्री	अन्तरीय	व्यक्ति	पुरुष	स्त्री	अन्तरीय	व्यक्ति	पुरुष	स्त्री	अन्तरीय
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
1.	भारत	51.21	64.13	32.29	0.48	65.24	75.87	54.13	0.33	74.04	82.14	65.46	0.22
2.	बिहार	38.54	52.63	231.	0.76	47.53	60.32	33.57	0.56	63.82	73.82	53.33	0.31
3.	गोपाल गंज	34.90	51.64	17.15	0.99	48.19	63.81	32.81	0.64	67.04	73.38	56.03	0.33

स्त्रोत: पी.सी.ए. यू सी.डी., 1991, 2001 एवं 2011.

द्रष्टव्य है कि समग्र साक्षरता राष्ट्र, राज्य एवं क्षेत्र का 1991, 2001 एवं 2011 का तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि 1991 एवं 2011 के मध्य लिंग अन्तरीय साक्षरता सूचकांक में ह्रास प्रवृति का प्रस्फुटन होता है किन्तु अभी भी राष्ट्र एवं राज्य की तुलना में अवनत है हालांकि सरकारी एवं गैर सरकारी योजनाओं का प्रभाव स्पष्टत: दिखता है किन्तु जो लिंग अन्तरीय साक्षरता दर में विद्यमान है वह संतोषजनक नहीं कहा जा सकता।

तालिका 5.2: समग्र साक्षरता दर का लिंग अन्तरीय (1951-2011)

वर्ष	व्यक्ति	पु०	स्त्री	लिंग अन्तरीय सूचक (GDLI)
1951	7.82	10.32	1.53	1.12
1961	14.27	25.73	3.83	1.53
1971	------	------	------	------
1981	21.37	34.33	8.48	1.21
1991	34.95	51.61	17.75	0.97
2001	47.48	62.96	32.16	0.65
2011	65.47	76.51	54.81	0.33

स्वतंत्रता के शीघ्र बाद 1951 की जनगणनानुसार लिंग अन्तरीय सूचकांक 1.12 था। दशकोपरांत (1961-1981) (1.53 एवं 1.21) परिकलित हुई। इस अन्तर का मुख्य कारण सारण जिला से गोपालगंज (अनुमंडल) से जिला में रूपांतरण था। तत्पश्चात 2001 एवं 2011 में 0.65 एवं 0.33 लिंग अन्तरीय सूचकांक परिकलित हुई।

अतएव 2001 एवं 2011 के मध्य स्त्रियों की साक्षरता दर में लगनेवाला छलांग पुरुषों की तुलना में अपेक्षाकृत लंबी दूरी का है। वस्सुत: बिहार राज्य में स्त्रियों की साक्षरता दर में वृद्धि एवं शिक्षा में आयी क्रान्ति की दृष्टि से राष्ट्रीय स्तर पर अग्रणी राज्य है। सरकारी गैर-सरकारी अनेकानेक कार्यक्रमों (साइकिल योजना, पोशाक योजना, मिड डे मिल इत्यादि) के कारण स्कूलों में बालिकाओं का नामांकन और शैक्षणिक संस्थाओं के परिसर में स्त्री शिक्षार्थियों का मानो सैलाव सा आ गया। बल्कि एक दशक (2001-2011) के बीच सामान्य रूप से साक्षरता दर में आयी आज तक की तीव्रतम वृद्धि का श्रये स्त्री साक्षरों एवं शिक्षार्थियों को भी जाता है। राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में संचालित सर्वेक्षण के अनुसार 2001 से 2011 तक के दशक में 72 प्रतिशत स्त्रियाँ रहीं। क्षेत्र में साक्षरता की लैंगिक खाई अब तक के व्याप्त इतिहास के अनुसार प्राचीन काल से ही विद्यमान रहा है,

हालांकि पुरुष-स्त्री साक्षरता का अन्तरीय सदा एक सा नहीं रहा है। यहाँ विदेशियों के सत्तासीन होने के पूर्व पर्दा प्रथा के बावजूद शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक उत्थान में स्त्रियों का भागीदारी हुआ करती थी। कालान्तर में जब उनकी अस्मिता पर खतरा बढ़ा तो रक्षात्मक दृष्टि से घर की चहारदीवारी से बाहर आना सामाजिक रूप में प्रतिबन्धित किया गया है। अंग्रेजों का शासन काल इतना दमनकारी तो था, लेकिन स्त्रियों की शिक्षा पर उनका भी ध्यान सीमित रहा, क्योंकि उन्हें तो यहाँ शिक्षा उतनी ही देनी थी, जिससे की उनका शासनतंत्र सुचारू रूप से चल सके।

निष्कर्षः-

शैक्षिक विकास के परिणाम स्वरूप, सुविधाओं के विस्तार, छात्र शिक्षक अनुपात में वृद्धि, सरकारी योजनाओं के लाभ के कारण गोपालगंज जनपद में लिंग अंतरीय साक्षरता प्रभेद में कमी आई है। मुख्यालय, अनुमण्डल, शहर के समीप के अंचल में प्रभेद निम्न है तथा दुरस्थ अंचल में अभी भी प्रभेद अधिक है।

संदर्भः-

1. सिंह, आर. बी., 1986 जियोग्राफी ऑफ रूरल डेवलमेंट इन्ट्रा-इंडिया पब्लिकेशंस, न्यू देलही, पृ. 12.
2. झा, जी.पी. 2013, ह्यूमन रिसोर्स डेभलपमेंट हेल्थ एंड एडुकेशन इन इंडिया जियोग्राफिकल पर्सपेक्टिव (ए. जी. वी. जे.), पटना, बिहार, वौल्यूम- 14, पृ. 4.

COVID-19 एवं भारतीय अर्थव्यवस्था

डॉ० रश्मि पाण्डेय

सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, शासकीय रेवती रमण मिश्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सूरजपुर (छ0ग0)

कोरोना वायरस का प्रकोप पहली बार दिसंबर 2019 में चीन के वुहान में पाया गया था। डब्ल्यूएचओ ने 30.01.2020 को अंतर्राष्ट्रीय चिंता का सार्वजनिक स्वास्थ्य आपातकाल और 11.03.2020 को महामारी घोषित किया था। दुनिया भर में 03.07. 2020 तक, 213 देशों में फैले कोविड-19 संक्रमण के कारण दुनिया भर में 1,12,20,009 लोग प्रभावित हैं और 5,29,604 मौतें हुई हैं। इस तरह के वायरस के प्रसार की भयावहता थी, अगर इसे जल्दी से नियंत्रित नहीं किया जाता तो, आशंका थी कि यह 1918 में स्पेनिश फ्लू द्वारा किए गए नुकसान से अधिक होने की संभावना हो सकती थी, जिसमें दुनिया की आबादी का एक तिहाई संक्रमित था। डब्ल्यूएचओ की भूमिका को गलत तरीके से समझने, कवर करने और महामारी का समय पर पूर्वानुमान न कर पाने की ओर इशारा किया जा रहा है। इसका तात्पर्य यह है कि डब्ल्यूएचओ ने 11 मार्च 2020 की तुलना में बहुत पहले महामारी की घोषणा की थी, संभवत: वायरस के प्रसार की गंभीरता को काफी कम कारणों से कम किया जा सकता था, हजारों लोगों की जान बचाई जा सकती थी और विश्व अर्थव्यवस्था और कम संपार्शिवक क्षति के साथ सामाजिक ताना-बाना। अमेरिकी प्रशासन के डब्ल्यूएचओ के महानिदेशक टेड्रोम अदनोम घेबियस की आलोचना करते हुए आरोप लगाया है कि वह चीन केंद्रित था और उसने महामारी का गलत इस्तेमाल किया है।

अमेरिकी राष्ट्रपति, ट्रम्प ने 07 अप्रेल को एक बयान में कहा कि डब्ल्यूएचओ ने वास्तव में इसे उड़ा दिया। फंडिंग के लिए डब्ल्यूएचओ को निलंबित करने की घोषणा करके अमेरिका ने बड़ी कार्रवाई की है। डब्ल्यूएचओ में अमेरिका का सबसे ज्यादा योगदान है। बाद में ऑस्ट्रेलिया ने भी चीन को दोष देने के लिए अमेरिका के साथ मुहिम में शामिल हो गया। अमेरिकी चीनी वायरस के रूप में कोविड-19 का नाम लेने की सीमा तक गया। 24 मार्च 2020 को, भारत सरकार (जीओआई) ने पूरे भारत में कोविड-19 महामारी के खिलाफ निवारक उपाय के रूप में संपूर्ण 1.3 बिलियन भारतीयों के आंदोलन को सीमित करने के लिए 21 दिनों के लिए देशव्यापी तालाबंदी का आदेश दिया गया। 22 मार्च को जनता कर्फ्यू नामक 14 घंटे की स्वैच्छिक कर्फ्यू के बाद यह आदेश दिया गया था, इसके बाद देश के कोविड-19 प्रभावित क्षेत्रों में नियमों की श्रृंखला को लागू किया गया था। महामारी ने दुनिया भर में सामाजिक और आर्थिक व्यवधानों के माध्यम से गंभीर संपाशि्वक नुकसान पहुंचाया है। कहा जा रहा है कि 1929 के महामंदी के बाद से विघटन ने सबसे बड़ी वैश्विक मंदी का कारण बना है। इसने भारत और दुनिया के अन्य देशों में पूर्ण तालाबंदी कर दी है, जिसमें खेल, धार्मिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों को स्थगित करना या रद्द करना शामिल था। कारखानों, दुकानों, वाणिज्यिक और व्यावसायिक प्रतिष्ठानों, निर्माण कार्यों, थिएटर, शैक्षिक और अनुसंधान संस्थानों, पूजा स्थलों, सभी गैर-जरूरी सार्वजनिक और निजी परिवहन, उड़ानों के निबंधन घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय और मॉल आदि को तो पूरी तरह से बंद करने का आदेश दिया गया था।

दुनिया भर में सबसे मजबूत अर्थव्यवस्थाओं में से कुछ एक अभूतपूर्व मांग के झटके में स्थिति से निपटने के लिए संघर्ष कर रहे हैं और सभी प्रमुख आर्थिक गतिविधियों को बंद कर रहे हैं जो विकास की गति देते हैं और भारत अलग नहीं है। भारत में, इनमें से कुछ गतिविधियों को चरणबद्ध और प्रतिबंधात्मक तरीके से संचालित करने की अनुमति दी गई थी। विशेष रूप से 4वें चरण के बाद लॉकडाउन खत्म हो गया और अनलॉक में शुरू हुआ। प्रोटोकॉल का सख्ती से पालन किया गया। भारत में लॉकडाउन को चरणों में 20 दिनों के लिए 31.05.2020 तक बढ़ाया गया था और 01 जून 2020 को भारत सरकार ने अनलॉक-1 घोषित किया, जिसमें कुछ व्यवसाय खोलने के लिए छूट दी गई थी। भारतीय अर्थव्यवस्था और देश की जीडीपी वृद्धि मुख्य रूप से इन क्षेत्रों के विकास पर निर्भर है। इसका अभिप्राय यह है कि एम0एस0 एम0 ई0, कंस्ट्रक्शन, कंज्यूमर गुड्स, ऑटोमोबाइल, दूरिज्म, एविएशन और उससे ऊपर की सभी कृषि। गंभीर रूप से प्रभावित क्षेत्रों से बेरोजगारों का एक बड़ा हिस्सा बताया गया है। वैश्विक रेटिंग एजेंसियों ने वित्त वर्ष 2021 के लिए भारत के जी0डी0पी0 अनुमानों को 0.08 प्रतिशत घटा दिया। भारत पहले से ही एक महामारी का सामना कर रहा था और इसलिए महामारी ने भारत को कड़ी टक्कर दी। वायरस ने न केवल संकट को गति दी बल्कि कुछ क्षेत्रों में अच्छी चाल को समाप्त कर दिया।[1]

कोविड-19 महामारी ने भारतीय अर्थव्यवस्था को अत्यधिक प्रभावित किया है। कोविड-19 के कारण पूरे देश में लॉकडाउन लगाया गया, जिससे लोगों का रोजगार एवं व्यवसाय प्रभावित हुआ। जून 2020 में विश्व बैंक द्वारा जारी की गई वैश्विक आर्थिक संभावना रिपोर्ट के अनुसार वित्त वर्ष 2020-21 के लिए भारत का सकल घरेलू उत्पाद (GDP)-3.2 प्रतिशत रहने का अनुमान है। इस महामारी ने निम्नलिखित क्षेत्रें को प्रभावित किया है-

मांग में गिरावट: कोविड-19 महामारी के दौरान आवश्यक वस्तुओं (चावल, दाल आदि) की जमाखोरी देखी गई। परंतु लॉकडाउन के कुछ ही दिन बाद सब्जियों तथा फलों की मांग में लगभग 60 प्रतिशत तक की कमी हुई, क्योंकि थोक खरीदारों और रेस्तरां बंद होने के कारण इनकी खरीद नहीं की गई। आवश्यक वस्तुओं तथा सब्जियों और फलों के मूल्य में गिरावट के बाद विद्युत, डीजल तथा पेट्रोल की मांग में क्रमश: 9.2 प्रतिशत 26 प्रतिशत तथा 17 प्रतिशत की कमी दर्ज की गई, परंतु जून के शुरूआत से ही डीजल तथा पेट्रोल की दामों में बढोतरी हो रही है।

आवश्यक वस्तुओं तथा ईंधन की मांग में गिरावट के साथ ही साथ गैर-आवश्यक वस्तुओं (इलेक्ट्रोनिक, आभूषण आदि) जैसे क्षेत्रें में मांग में आकस्मिक गिरावट दर्ज की गई है। एक्सिस कैपिटल के एक अध्ययन के अनुसार भारत में विवेकाधीन खर्च में प्रति माह लगभग 3.3 लाख करोड़ रुपये की कमी हो सकती है।

आपूर्ति का बाधित होना: कोविड-19 महामारी से हुए लॉकडाउन ने बड़ी कंपनियों की आपूर्ति शृंखलाओं को प्रभावित किया है और केवल अति आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन एवं वितरण तक सीमित कर दिया। देश के विभिन्न मंडियों में किसी भी प्रकार की व्यापारिक गतिविधियों के न होने या न्यूनतम गतिविधियों के संचालित होने, श्रम में कमी, परिवहन संबंधी समस्याओं और किसानों की अनिच्छा आदि के कारण कृषि उपज की आपूर्ति प्रभावित हुई है, जिससे थोक कीमतें कम हो गई।[2]

कीमत में गिरावट: मांग और आपूर्ति के साथ-साथ बाजार की परिस्थितियों में हो रहे परिवर्तन के कारण कीमतें अस्थिर हो गई हैं, जिससे समग्र रूप में उभरते बाजारों में वस्तुओं की कीमतों में भारी गिरावट आई है। भुगतान संतुलन पर प्रभाव: वैश्विक लॉकडाउन के कारण आयात- निर्यात आर्डर में 50 प्रतिशत से अधिक की कमी आयी है। कच्चे तेल की कीमतों में कमी, स्वर्ण एवं अन्य आयातों में गिरावट से व्यापार घाटे में कमी हो सकती है। रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के अनुसार स्वर्ण की कीमतों में वृद्धि के कारण मार्च के अंतिम सप्ताह में भारत के विदेशी मुद्रा भंडार में वृद्धि हुई है।

मुद्रास्फीति: RBI के अनुसार निम्न प्रतिफल और कम आय के कारण मांग में गिरावट एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था की तनावग्रस्त स्थिति में वित्त वर्ष 2020-21 की चौथी तिमाही में मुद्रास्फीति गिरकर 2.4 प्रतिशत हो गई।[3]

करों पर प्रभाव: कोविड-19 के कारण लाभ और आय में पहले की अपेक्षा कमी आयी है, जिससे प्रत्यक्ष करों में वृद्धि नहीं की जा सकती है और न ही अप्रत्यक्ष कर में वृद्धि की जा सकती है। क्योंकि अप्रत्यक्ष कर में वृद्धि होने से यह स्फीतिकारी सिद्ध होगा और गरीब लोगों को अत्यधिक प्रभावित करेगा साथ ही साथ मांग में और अधिक कमी आई।

निवेश: निवेश से संबंधित सबसे प्रचलित मॉडल हैराड-डोमर मॉडल है, जो बताता है कि किसी भी अर्थव्यवस्था में बचत जितना ज्यादा अधिक होगा, निवेश भी उतना ही अधिक होगा। परंतु कोविड-19 के कारण देश भर में हुए लॉकडाउन के प्रभाव से देश में बेरोजगारी की दर में बढोतरी हुई है, जिससे बचत में कमी आई है। सेंटर फॉर मॉनिटरिंग इंडियन इकोनॉमी की नवीनतम रिपोर्ट के अनुसार निवेश की संभावनाओं में कमी बनी हुई है।

वित्त वर्ष 2011 में भारत को जो संकुचन देखने की उम्मीद है, वह एक समान नहीं होगा, बल्कि यह राज्य और क्षेत्र जैसे विभिन्न मापदंडों के अनुसार अलग-अलग होगा। कृषि और सरकारी क्षेत्रों में कोई संकुचन देखने की संभावना नहीं है। 1 सितंबर 2020 को सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय ने वित्त वर्ष 2021 की पहली तिमाही के लिए जीडीपी के आंकड़े जारी किए, जिसमें 24 प्रतिशत की गिरावट देखी गई।

इसलिए, यह स्वत: स्पष्ट है कि पिछले वित्तीय वर्ष में धीमी वृद्धि से प्रभावित अर्थव्यवस्था महामारी के परिणामस्वरूप लॉकडाउन से गंभीर रूप से प्रभावित होगी। छोटे और मध्यम उद्यमों की बाजार रेटिंग का अनुमान है कि राष्ट्रव्यापी लॉकडाउन से लॉकडाउन के दौरान हर दिन +4.5 बिलियन (35,000 करोड़ रुपये) से अधिक का नुकसान होने की उम्मीद है। स्वास्थ्य सेवा क्षेत्र, देश में चौथा सबसे बड़ा नियोक्ता, और विशेष रूप से निजी क्षेत्र जो लगभग 80 प्रतिशत बाह्य रोगी देखभाल और लगभग 60 प्रतिशत रोगी देखभाल प्रदान करता है, वर्तमान में कमी के कारण 90 प्रतिशत नुकसान का सामना कर रहा है।

अर्थव्यवस्था में आई मंदी सिर्फ जीडीपी के सिकुड़ने जितनी बात नहीं है। सही मायने में यह बीते कई वर्षों में अर्जित आर्थिक विकास के सिकुड़ने का क्रम भी है। इसमें वर्षों की लंबी लड़ाई के बाद गरीबी से बाहर निकाली गई आबादी, बड़े स्तर पर रोजगार सृजन, प्रति व्यक्ति आय दर में वृद्धि, लोगों के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर में सुधार आदि में अर्जित सफलता

के निराशा में बदल जाने की प्रबल आशंका है। कोविड-19 के दौर में मंदी भी भारतीय अर्थव्यवस्था को रोजगार, गरीबी, आय जैसे महत्वपूर्ण आयामों पर काफी पीछे ले जा सकती है।

आर्थिक मंदी सिर्फ हमें कमजोर नहीं करती बल्कि ज्यादा भयावह इसलिए हो जाती है क्योंकि यह एक नए मोड़ पर ले जाकर छोड़ देती है। कोविड-19 के चलते यह वह मंदी है जो एक अनिश्चित मोड़ पर ले जाकर हमें खड़ा कर देगी। एक भयंकर बेरोजगारी की समस्या निकट भविष्य में आने वाली है और यही बेरोजगारी की समस्या भविष्य में गरीबी और आय असमानता की गंभीर समस्या को पैदा करेगी।

कोविड-19 संकट के आने से भारतीय अर्थव्यवस्था अपने दो दशक के सबसे बुरे दौर से गुजरी। बाजारों में उत्पाद एवं सेवाओं की खपत कम हो गयी। भारत की लगभग 72 प्रतिशत कम्पनियॉ चीन एवं अन्य देशों में औद्योगिक निर्माण, विनिर्माण सेवाऐं, आई टी और बीपीओं, लॉजिस्टिकल रसायन, एयरलाइंस और पर्यटन सहित कई क्षेत्रों में कार्य कर रही थी। जिससे यह अनुमान लगाया गया कि वित्त वर्ष 2021 में जीडीपी वृद्धि दर में 1 प्रतिशत की कमी आ सकती है। वैश्विक बंद के कारण निर्यातों में भारी गिरावट, बेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न हो गयी। कोविड-19 ने निर्यात, जिसे अर्थव्यवस्था का इंजन माना जाता है, को रोक दिया। वैश्विक मंदी की स्थिति उत्पन्न हो गयीं, विनिवेश, सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर रूक गया।[4]

बाजार में भारतीय अर्थव्यवस्था नामिनल जीडीपी के आधार पर 45 साल के न्यूनतम स्तर पर थी। पिछले 45 वर्ष में बेरोजगारी सबसे अधिक थी। ग्रामीण मांग पिछले 40 वर्षों में सबसे कम थी। कृषि वृद्धि दर अपने एक दशक के न्यूनतम पर थी इस क्षेत्र में आय के साधन स्थिर हो गये थे। वित्तिय फ्रॉड़ बीते वर्ष में 2 लाख करोड़ हो चुका था। कोविड-19 ऐसी घटना रही जिसमें मानव जाति, सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों एवं रीति रिवाजों, परम्पराओं, आर्थिक,राजनीतिक सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है। जितनी भारी तबाही स्वास्थ्य के क्षेत्र में रही उससे कही अधिक तबाही आर्थिक क्षेत्र में रही। बाजार में उपभोक्ताओं का आत्मविश्वास घट गया। आरबीआई का एनपीए 10 लाख करोड़ के आंकडों का छू रहा था। कोविड-19 के दौरान लगाए गए लॉकडाउन का सबसे अधिक नकारात्मक प्रभाव देश की जीडीपी की वृद्धि दर लगातार गिरना प्रारम्भ हो गयी। सबसे अधिक रोजगार असंगठित क्षेत्रों में गये और सबसे अधिक असंगठित क्षेत्र बंद हुए। इसलिए यह वर्ष असंगठित क्षेत्रों के रूप में भारतीय अर्थव्यवस्था का भयवाह दौर रहा है।

निष्कर्ष

COVID-19 महामारी ने अर्थव्यवस्था को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। इस महामारी के दौरान आपूर्ति शृंखलाओ के बाधित होने, श्रमिकों के पलायन और वित्तीय तरलता की चुनौतियों के साथ इसके किसी प्रमाणिक उपचार के अभाव में उत्पन्न हुई अनिश्चितता से अन्य सभी क्षेत्रों के साथ आर्थिक क्षेत्र को अभूतपूर्व क्षति हुई है। देश के अधिकांश हिस्सों से लॉकडाउन के हटने के बाद पिछले कुछ महीनों में स्थितियों में कुछ सुधार हुआ है। हालाँकि देश की अर्थव्यवस्था को पुनः गति प्रदान करने के लिये सरकार को सर्वाजनिक निवेश के साथ स्थानीय आपूर्ति शृंखला को मजबूत करने, वित्तीय तरलता को बनाए रखने तथा सार्वजनिक खपत को प्रोत्साहित करने पर विशेष ध्यान देना होगा।

COVID-19 महामारी के कारण अर्थव्यवस्था में तीव्र गिरावट देखी गई, इस महामारी ने औद्योगिक क्षेत्र के विभिन्न घटकों (आपूर्ति शृंखला, मानव संसाधन आदि) को गंभीर रूप से प्रभावित किया और इसके साथ ही दैनिक खपत में भी भारी गिरावट देखने को मिली। इन चुनौतियों के कारण अर्थव्यवस्था में सुधार और इसे पुनः गति प्रदान करने को लेकर चिंताएँ बनी हुई थीं। हालाँकि देश में COVID-19 महामारी के नियंत्रण हेतु लागू लॉकडाउन के हटने के बाद देश की अर्थव्यवस्था में तीव्र सुधार के संकेत और अधिक स्पष्ट होते जा रहे हैं। आर्थिक क्षेत्र में यह सुधार विनिर्माण, कोल, स्टील आदि प्रमुख क्षेत्रों में भी देखने को मिला है। हालाँकि सेवा क्षेत्र के साथ कुछ अन्य क्षेत्रों में यह सुधार उतना प्रभावी नहीं रहा है, ऐसे में अर्थव्यवस्था को पुनः गति प्रदान करने के लिये कुछ बड़े सुधारों की आवश्यकता होगी।

संदर्भ

1. Dargaville T., Spann K., Celina M. Opinion to address a potential personal protective equipment shortage in the global community during the COVID-19 outbreak. Polym. Degrad. Stab. 2020.
2. Chang H.-H., Meyerhoefer C. National Bureau of Economic Research; 2020. COVID-19 and the Demand for Online Food Shopping Services.
3. "RBI us COVID-19 के आर्थिक नतीजों से निपटने के लिए और उपायों की घोषणा की"। द इकोनॉमिक टाइम्स।
4. Laing T. The economic impact of the Coronavirus 2019 (Covid-2019): Implications for the mining industry. *Extract. Indust. Soc.* 2020.

बिहार में पर्यावरणीय मानक एवं उनकी निगरानी: कार्यान्वयन और सुधार की संभावनाओं का विश्लेषण

आनंद

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

डॉ० दिलीप कुमार

विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, जगत नारायण लाल कॉलेज, खगौल, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

सारांश

बिहार में पर्यावरणीय मानकों का प्रभावी कार्यान्वयन और निगरानी, राज्य के पर्यावरणीय स्वास्थ्य को सुधारने के लिए आवश्यक है। कानूनी ढाँचे में सुधार, उन्नत तकनीकी समाधानों का उपयोग, सामुदायिक भागीदारी, और संसाधन बढ़ाने के उपायों से इस दिशा में महत्वपूर्ण सुधार किए जा सकते हैं। यह शोध पत्र बिहार में पर्यावरणीय मानकों की स्थिति और सुधार की संभावनाओं पर एक गहन दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जो नीति निर्माताओं, प्रशासनिक अधिकारियों, और स्थानीय समुदायों के लिए मार्गदर्शक हो सकता है। बिहार पर्यावरणीय चुनौतियों से जूझ रहा है, जिनमें वायु, जल, और मृदा प्रदूषण शामिल हैं। पर्यावरणीय मानकों का प्रभावी कार्यान्वयन और निगरानी, इन समस्याओं से निपटने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह शोध पत्र बिहार में पर्यावरणीय मानकों की स्थिति, उनकी निगरानी, कार्यान्वयन की चुनौतियाँ और सुधार की संभावनाओं का विश्लेषण करेगा।

शब्द कुंजी – पर्यावरणीय मानक, प्रदूषण, सामुदायिक भागीदारी, निगरानी

परिचय

पर्यावरणीय मानक उन मानदंडों और नियामकों का सेट है जो किसी विशेष पर्यावरणीय घटक, जैसे वायु, जल, मृदा, या ध्वनि के स्वीकार्य स्तर को परिभाषित करते हैं।[1] इन मानकों का उद्देश्य पर्यावरण की गुणवत्ता को बनाए रखना और प्रदूषण के प्रभावों को नियंत्रित करना है, ताकि मनुष्यों, वन्यजीवों, और पारिस्थितिकी तंत्र की सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके। ये मानक अक्सर वैज्ञानिक अनुसंधान, स्वास्थ्य प्रभावों, और पर्यावरणीय स्थिरता के आधार पर निर्धारित किए जाते हैं और इन्हें स्थानीय, राष्ट्रीय, या अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लागू किया जा सकता है। उदाहरण के लिए: वायु गुणवत्ता मानक:- हवा में विभिन्न प्रदूषकों, जैसे कि पार्टिकुलेट मैटर (PM2-5 और PM10), सल्फर डाइऑक्साइड (SO2), और नाइट्रोजन डाइऑक्साइड (NO2) की अधिकतम अनुमेय सांद्रता।[2] जल गुणवत्ता मानक: पेयजल, सतही जल, और भूमिगत जल में हानिकारक रसायनों और प्रदूषकों की स्वीकार्य सांद्रता। ध्वनि स्तर मानक: विभिन्न क्षेत्रों (जैसे आवासीय, औद्योगिक, और वाणिज्यिक) में ध्वनि प्रदूषण के स्वीकार्य स्तर। इन मानकों का पालन सुनिश्चित करने के लिए सरकारें निगरानी और प्रवर्तन तंत्र स्थापित करती हैं, और इनका उल्लंघन करने पर कानूनी दंड भी निर्धारित किए जाते हैं।

अध्ययन की प्रासंगिकता

पर्यावरणीय मानक मानव स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए बनाए जाते हैं। ये मानक सुनिश्चित करते हैं कि वायु, जल, और मृदा में प्रदूषकों का स्तर एक निश्चित सीमा से अधिक न हो, जिससे स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव न पड़े। उदाहरण के लिए, वायु गुणवत्ता मानकों का पालन करना श्वसन संबंधी बीमारियों, हृदय रोग, और अन्य स्वास्थ्य समस्याओं के जोखिम को कम करता है। पर्यावरणीय मानक पारिस्थितिकी तंत्र को संरक्षित करने में मदद करते हैं। वे सुनिश्चित करते हैं कि प्रदूषण के कारण

पारिस्थितिकी तंत्र में असंतुलन न हो, जिससे वनस्पतियों और जीवों की विविधता बनी रहे। मानक सतत विकास को बढ़ावा देते हैं। वे औद्योगिक और विकासात्मक गतिविधियों को इस तरह से मार्गदर्शन करते हैं कि प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग संतुलित और जिम्मेदार तरीके से हो, जिससे भविष्य की पीढ़ियों के लिए पर्यावरण सुरक्षित रहे। पर्यावरणीय मानकों के माध्यम से सरकारें और नियामक निकाय उद्योगों, व्यवसायों, और नागरिकों पर कानूनी और सामाजिक उत्तरदायित्व लागू करते हैं। यह सुनिश्चित करता है कि सभी हितधारक पर्यावरण संरक्षण के प्रति जिम्मेदार हों और अपने कार्यों के पर्यावरणीय प्रभाव को कम करें। प्रदूषण के विभिन्न स्रोतों को नियंत्रित करने में सहायक होते हैं। वे यह निर्धारित करते हैं कि विभिन्न प्रकार के प्रदूषकों का उत्सर्जन और निपटान कैसे किया जाए, ताकि वे पर्यावरण को हानि न पहुँचाएं। पर्यावरणीय मानक इसलिए महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे मानव जीवन, जैव विविधता, और प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा के लिए एक ढांचा प्रदान करते हैं। उनका पालन करना एक स्वस्थ और संतुलित पर्यावरण सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है।

साहित्य समीक्षाएँ

शर्मा, एस. (2020).पटना में जलवायु परिवर्तन और सस्टेनेबल विकास नीतियाँ. नीति आयोग, इस पुस्तक में पर्यावरणीय नियमों और मानकों को स्थापित करने की प्रक्रिया, उनकी चुनौती, और उनकी प्रभावशीलता पर चर्चा की गई है। पुस्तक पर्यावरण संरक्षण के लिए नियामक ढांचे का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करती है।

मिश्र, एम. पी. (2022) "भारत में पर्यावरणीय शासन" इस पुस्तक में भारत में पर्यावरणीय शासन और उससे संबंधित मानकों पर विस्तृत चर्चा की गई है। इसमें भारतीय पर्यावरणीय नीति, कानून, और मानकों के संदर्भ में गहन अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

सिंह, रवींद्रनाथ (2020) "पर्यावरणीय समस्याएँ और समाधान" इस पुस्तक में पर्यावरणीय समस्याओं और उनके समाधान पर चर्चा की गई है, जिसमें पर्यावरणीय मानकों की भूमिका और उनके कार्यान्वयन की चुनौतियों का गहन विश्लेषण शामिल है।

जॉनसन, बैरी एल. (2021) "पर्यावरण नीति और सार्वजनिक स्वास्थ्य: वायु प्रदूषण, वैश्विक जलवायु परिवर्तन और जंगल. यह पुस्तक पर्यावरण नीति और सार्वजनिक स्वास्थ्य के बीच संबंध पर केंद्रित है। इसमें वायु प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, और जंगलों के संरक्षण के संदर्भ में पर्यावरणीय मानकों की भूमिका का विश्लेषण किया गया है।

मिश्रा, वी. (2021). "बिहार में ठोस कचरा प्रबंधन और नीति सुधार." नगर विकास विभाग, बिहार सरकार, इस रिपोर्ट में बिहार में कचरा प्रबंधन के क्षेत्र में आने वाली कठिनाइयों का वर्णन किया गया है। क्योंकि बिहार में कचरा प्रबंधन के लिए पहले से कोई सुनियोजित व्यवस्था उपलब्ध नहीं थी। इसलिए बिहार के लिए कचरा प्रबंधन एक चुनौती पूर्ण कार्य रहा है। ई कचरा से निपटने हेतु इसमें नीतियों में सुधार हेतु कई सुझाव दिए गए हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

पर्यावरणीय मानकों के अध्ययन का उद्देश्य न केवल पर्यावरण की सुरक्षा और सुधार को सुनिश्चित करना है, बल्कि सतत विकास, स्वास्थ्य सुरक्षा, और प्रभावी नीति निर्माण के लिए आधार प्रदान करना भी है।

1. वर्तमानमें बिहार पर्यावरणीय स्थिति क्या है, और विभिन्न प्रदूषकों और उनके स्तरों का पर्यावरणीय घटकों (जैसे वायु, जल, मृदा) पर क्या प्रभाव पड़ रहा है।
2. अध्ययन का उद्देश्य यह जानना है कि प्रदूषण के विभिन्न स्तरों का मानव स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ सकता है।
3. यह समझना कि लागू किए गए मानकों और नियमों का प्रदूषण को नियंत्रित करने में कितना प्रभाव पड़ रहा है।

शोध पद्धति

यह शोध वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक प्रकृति का है और अध्ययन केवल द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है, जो पुस्तक, पत्रिका, समाचार पत्र, सरकारी रिपोर्टों और इंटरनेट से एकत्र किया गया है।

बिहार में पर्यावरणीय मानकों की स्थिति

बिहार में पर्यावरणीय मानकों की स्थिति पर विचार करते समय कई पहलुओं को ध्यान में रखना आवश्यक है। राज्य की पर्यावरणीय चुनौतियाँ, सरकारी नीतियाँ, और मौजूदा मानकों का कार्यान्वयन इस क्षेत्र में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। बिहार में पर्यावरणीय मानकों की वर्तमान स्थिति को समझने के लिए नीचे दिए गए बिंदुओं पर विचार किया जा सकता है:

वायु गुणवत्ता मानकः बिहार के कई शहरों में, विशेषकर पटना, गया, और मुजफ्फरपुर जैसे शहरों में, वायु प्रदूषण एक गंभीर समस्या है। वायु गुणवत्ता सूचकांक (AQI) अक्सर निर्धारित मानकों से अधिक होता है, जिससे स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। राज्य सरकार और केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (CPCB) द्वारा निर्धारित वायु गुणवत्ता मानकों के बावजूद, प्रदूषण पर नियंत्रण की चुनौतियाँ बनी हुई हैं।[3]

कृत्रिम प्रकाश प्रदूषण मानकताः बिहार में प्रकाश प्रदूषण का स्तर दिल्ली से भी ज्यादा है और यह अपने भयावह रूप में है, लेकिन वर्तमान में सरकार एवं जनता दोनों ही इसके प्रति जागरूक नहीं है और यह अपने मानकता से 400% ज्यादा है,[4] इसी के कारण बिहार में पक्षी विलुप्त होने के कगार पर आ चुके हैं। वर्तमान में नई नीतियां बनाने की जरूरत है और नियंत्रण प्रणाली को इस हेतु सक्षम बनाने की आवश्यकता है।

जल गुणवत्ता मानकः बिहार में गंगा नदी और अन्य जल स्रोतों की गुणवत्ता को बनाए रखना एक महत्वपूर्ण चुनौती है। नदी प्रदूषण, कृषि अपशिष्ट, और औद्योगिक कचरे के कारण जल गुणवत्ता पर गंभीर प्रभाव पड़ा है। राज्य में केंद्रीय जल आयोग (CWC) और बिहार राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (BSPCB) द्वारा जल गुणवत्ता मानकों की निगरानी की जाती है,[5] लेकिन प्रदूषण नियंत्रण में कई चुनौतियाँ हैं।

कचरा प्रबंधन और ठोस अपशिष्ट मानकः बिहार में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन एक बड़ी चुनौती है, खासकर शहरी क्षेत्रों में। उचित कचरा संग्रहण, पृथक्करण, और निपटान की व्यवस्था की कमी के कारण ठोस अपशिष्ट मानकों का पालन पूरी तरह से नहीं हो पाता है। राज्य में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के लिए मानकों और दिशानिर्देशों का कार्यान्वयन सुधार की आवश्यकता है।[6]

जैव विविधता और वन संरक्षण मानकः बिहार में वन और जैव विविधता संरक्षण के लिए कई मानक और नीतियाँ लागू हैं। राज्य के वन क्षेत्रों में वन्यजीव संरक्षण और वन संसाधनों का सतत उपयोग सुनिश्चित करने के प्रयास किए जा रहे हैं। हालांकि, अवैध कटाई, अतिक्रमण, और वन्यजीवों के लिए अनुकूल वातावरण की कमी जैसी समस्याओं के कारण इन मानकों का पूर्ण कार्यान्वयन एक चुनौती बना हुआ है।[7]

औद्योगिक प्रदूषण नियंत्रणः बिहार में औद्योगिक इकाइयों के लिए पर्यावरणीय मानकों का पालन सुनिश्चित करने के लिए कठोर नियम बनाए गए हैं। औद्योगिक प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए जल और वायु प्रदूषण से संबंधित मानकों का पालन अनिवार्य किया गया है।[8] हालांकि, छोटे और मध्यम स्तर के उद्योगों में मानकों का पालन संतोषजनक नहीं है, जिससे प्रदूषण की समस्या बनी रहती है।

बिहार सरकार ने पर्यावरण संरक्षण और मानकों के कार्यान्वयन के लिए विभिन्न नीतियाँ और कार्यक्रम शुरू किए हैं। जैसे कि "जल-जीवन-हरियाली अभियान" जो राज्य में पर्यावरण संरक्षण और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के उद्देश्य से चलाया जा रहा है। इसके तहत वृक्षारोपण, जल संचयन, और हरियाली बढ़ाने के प्रयास किए जा रहे हैं। पर्यावरणीय मानकों के बारे में जन जागरूकता और शिक्षा का अभाव एक बड़ी चुनौती है। नागरिकों में पर्यावरण संरक्षण और मानकों के पालन की समझ बढ़ाने के लिए शिक्षा और जागरूकता कार्यक्रमों की आवश्यकता है। बिहार में पर्यावरणीय मानकों की स्थिति में सुधार की आवश्यकता है, विशेष रूप से वायु और जल गुणवत्ता, कचरा प्रबंधन, और औद्योगिक प्रदूषण नियंत्रण के क्षेत्रों में। राज्य सरकार और केंद्रीय एजेंसियों के बीच समन्वय, नीतियों का कठोर कार्यान्वयन, और जन जागरूकता बढ़ाने के प्रयासों से इन मानकों की स्थिति में सुधार हो सकता है।

निगरानी और कार्यान्वयन की चुनौतियाँ

बिहार में पर्यावरणीय मानकों की निगरानी और उनके प्रभावी कार्यान्वयन में कई चुनौतियाँ सामने आती हैं। इन चुनौतियों को समझने के लिए राज्य के पर्यावरणीय संदर्भ, प्रशासनिक व्यवस्था, और सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों का विश्लेषण आवश्यक है। निम्नलिखित बिंदुओं में बिहार में पर्यावरणीय मानकों की निगरानी और कार्यान्वयन से जुड़ी प्रमुख चुनौतियों का वर्णन किया गया है:

संस्थानिक और प्रशासनिक कमजोरियाँः बिहार में पर्यावरणीय मानकों की निगरानी के लिए जिम्मेदार संस्थानों, जैसे बिहार राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (BSPCB), के पास पर्याप्त मानव संसाधन, उपकरण और वित्तीय संसाधनों की कमी है।[9] यह संस्थानिक कमजोरियाँ पर्यावरणीय मानकों की प्रभावी निगरानी और कार्यान्वयन में बाधा डालती हैं।

तकनीकी और वित्तीय सीमाएँ: पर्यावरणीय मानकों की निगरानी के लिए अत्याधुनिक तकनीक और उपकरणों की आवश्यकता होती है। बिहार में तकनीकी संसाधनों की कमी और वित्तीय सीमाएँ निगरानी प्रक्रिया को कमजोर करती हैं। इसके कारण प्रदूषण निगरानी केंद्रों की संख्या सीमित है, और उपलब्ध केंद्रों का संचालन भी प्रभावी ढंग से नहीं हो पाता।

औद्योगिक प्रदूषण की निगरानी: बिहार में छोटे और मध्यम उद्योगों की संख्या अधिक है, जो कि पर्यावरणीय मानकों का पालन करने में कई बार विफल रहते हैं। इन उद्योगों में उचित प्रदूषण नियंत्रण उपायों का अभाव है, और मानकों का पालन सुनिश्चित करने के लिए सख्त निगरानी की कमी है।[10] इसके अलावा, अवैध उद्योगों और अतिक्रमण के कारण भी प्रदूषण की समस्या बनी रहती है।

वायु और जल गुणवत्ता की निगरानी: बिहार में वायु और जल गुणवत्ता की निगरानी के लिए पर्याप्त संसाधनों की कमी है। वायु गुणवत्ता निगरानी स्टेशन और जल परीक्षण प्रयोगशालाएँ सीमित हैं, जिससे व्यापक निगरानी संभव नहीं हो पाती। इसके अतिरिक्त, ग्रामीण और दूरदराज के क्षेत्रों में इन मानकों की निगरानी लगभग नगण्य है।

कचरा प्रबंधन और ठोस अपशिष्ट की चुनौतियाँ: ठोस अपशिष्ट प्रबंधन में सबसे बड़ी चुनौती कचरा संग्रहण, पृथक्करण, और निपटान की व्यवस्था की कमी है। बिहार के अधिकांश शहरी क्षेत्रों में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन का उचित ढांचा नहीं है, जिससे कचरा जलाने, डंपिंग, और अस्वच्छ निपटान की समस्याएँ पैदा होती हैं।[11] इसके अलावा, अपशिष्ट प्रबंधन नीति का कार्यान्वयन भी प्रभावी नहीं है।

कानूनी और प्रवर्तन संबंधी चुनौतियाँ: पर्यावरणीय मानकों के उल्लंघन के मामलों में कानूनी कार्रवाई में देरी और प्रवर्तन की कमजोरी प्रमुख समस्याएँ हैं। कानूनों का प्रवर्तन कमजोर होने के कारण उद्योग और अन्य प्रदूषणकारी संस्थान मानकों का पालन नहीं करते। इसके अलावा, न्यायिक हस्तक्षेप की प्रक्रियाएँ भी लंबी और जटिल होती हैं।

जन जागरूकता और सहभागिता की कमी: बिहार में पर्यावरणीय मुद्दों के प्रति जन जागरूकता का अभाव है। नागरिकों, विशेष रूप से ग्रामीण और शहरी गरीब समुदायों में, पर्यावरणीय मानकों और उनके पालन के महत्व की जानकारी की कमी है। इसके साथ ही, स्थानीय समुदायों की पर्यावरणीय नीति निर्माण और निगरानी में सहभागिता भी नगण्य है।

जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक आपदाएँ: जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के कारण बिहार में पर्यावरणीय मानकों के पालन में अतिरिक्त चुनौतियाँ उत्पन्न हो रही हैं। बाढ़, सूखा, और अन्य प्राकृतिक आपदाओं से पर्यावरणीय क्षति बढ़ जाती है, जिससे मानकों की निगरानी और कार्यान्वयन और भी कठिन हो जाता है।[12]

राजनीतिक और सामाजिक कारक: बिहार में पर्यावरणीय मुद्दों पर राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव और विकास परियोजनाओं के नाम पर पर्यावरणीय मानकों की अनदेखी एक बड़ी चुनौती है। इसके अलावा, सामाजिक और आर्थिक दबावों के कारण भी कई बार पर्यावरणीय मानकों का उचित कार्यान्वयन संभव नहीं हो पाता। इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए राज्य सरकार, केंद्रीय एजेंसियों, और नागरिक समाज के बीच बेहतर समन्वय, जागरूकता बढ़ाने के प्रयास, और सख्त कानूनों का प्रवर्तन आवश्यक है। इसके साथ ही, तकनीकी और वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता को भी सुनिश्चित करना आवश्यक है, ताकि पर्यावरणीय मानकों का प्रभावी ढंग से पालन हो सके।

कार्यान्वयन और सुधार की संभावनाएँ

बिहार में पर्यावरणीय मानकों के कार्यान्वयन और सुधार की संभावनाएँ व्यापक और महत्वपूर्ण हैं। राज्य में तेजी से हो रहे औद्योगिक विकास, शहरीकरण, और कृषि गतिविधियों के विस्तार ने पर्यावरणीय चुनौतियों को जन्म दिया है, जिससे मानकों का प्रभावी कार्यान्वयन और सुधार की जरूरत बढ़ गई है। निम्नलिखित बिंदुओं में बिहार में पर्यावरणीय मानकों के कार्यान्वयन और सुधार की संभावनाओं का विश्लेषण किया गया है:

(i) क्षमता निर्माण: बिहार राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (BSPCB) और अन्य पर्यावरणीय संस्थानों की क्षमता में सुधार के लिए कर्मचारियों का प्रशिक्षण, तकनीकी विशेषज्ञता, और संसाधनों का सुदृढ़ीकरण आवश्यक है। इससे मानकों की निगरानी और कार्यान्वयन में सुधार हो सकता है।

(ii) संस्थानिक समन्वय: राज्य और केंद्रीय एजेंसियों के बीच बेहतर समन्वय से नीतियों का प्रभावी कार्यान्वयन सुनिश्चित किया जा सकता है। विभिन्न विभागों के बीच सहयोग से पर्यावरणीय मानकों के उल्लंघन पर तेजी से कार्रवाई संभव हो सकती है।

(iii) निगरानी उपकरणों का उन्नयन: पर्यावरणीय मानकों की निगरानी के लिए अत्याधुनिक तकनीक और उपकरणों का उपयोग किया जा सकता है। स्वचालित वायु गुणवत्ता निगरानी स्टेशन, जल गुणवत्ता परीक्षण प्रयोगशालाएँ, और GIS-आधारित निगरानी प्रणालियाँ इन मानकों के प्रभावी कार्यान्वयन में सहायता कर सकती हैं।

(iv) डेटा प्रबंधन और विश्लेषण: पर्यावरणीय डेटा का बेहतर प्रबंधन और विश्लेषण के लिए डिजिटल प्लेटफॉर्म्स और बिग डेटा तकनीकों का उपयोग किया जा सकता है। इससे नीतियों का प्रभावी क्रियान्वयन और निगरानी संभव हो सकेगी।[13]

(v) सख्त प्रवर्तन: पर्यावरणीय मानकों के उल्लंघन पर सख्त कानूनी कार्रवाई सुनिश्चित करना आवश्यक है। इसके लिए, उद्योगों और अन्य प्रदूषणकारी संस्थानों की नियमित निरीक्षण की व्यवस्था की जा सकती है,[14] और उल्लंघन करने वालों पर त्वरित जुर्माना और दंड लगाया जा सकता है।

(vi) तेजी से न्यायिक प्रक्रिया: पर्यावरणीय मामलों से संबंधित न्यायिक प्रक्रियाओं को तेज किया जा सकता है, ताकि मामलों का समय पर निपटारा हो सके और प्रवर्तन में सुधार हो सके।

(vii) पर्यावरणीय शिक्षा: स्कूलों, कॉलेजों, और सामुदायिक कार्यक्रमों के माध्यम से पर्यावरणीय शिक्षा को बढ़ावा दिया जा सकता है। इससे नागरिकों में पर्यावरणीय मानकों के प्रति जागरूकता और संवेदनशीलता बढ़ाई जा सकती है।

(viii) सामुदायिक सहभागिता: स्थानीय समुदायों को पर्यावरणीय नीतियों के निर्माण और कार्यान्वयन में सहभागी बनाया जा सकता है। ग्राम स्तर पर पर्यावरणीय समितियों का गठन किया जा सकता है, जो स्थानीय पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान में मददगार हो सकती हैं।

(ix) हरित प्रौद्योगिकी का उपयोग: उद्योगों और कृषि क्षेत्रों में हरित प्रौद्योगिकी और पर्यावरण-अनुकूल उपायों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। इससे पर्यावरणीय मानकों का पालन सुनिश्चित किया जा सकेगा।

(x) नवीकरणीय ऊर्जा का प्रसार: राज्य में सौर ऊर्जा, बायोमास, और अन्य नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का अधिकाधिक उपयोग करके प्रदूषण को कम किया जा सकता है और पर्यावरणीय मानकों का पालन सुनिश्चित किया जा सकता है।

(xi) सतत नीतियाँ: बिहार सरकार को सतत विकास के लिए पर्यावरणीय मानकों को ध्यान में रखते हुए नीतियाँ बनानी चाहिए। पर्यावरण संरक्षण को राज्य की विकास योजनाओं में प्रमुख स्थान दिया जाना चाहिए।

(xii) स्थानीय अनुकूल नीतियाँ: बिहार की पर्यावरणीय चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए राज्य-विशिष्ट नीतियाँ बनाई जानी चाहिए। ये नीतियाँ स्थानीय जलवायु, भौगोलिक, और सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के अनुकूल होनी चाहिए।

(xiii) निजी क्षेत्र की भागीदारी: पर्यावरणीय मानकों के सुधार और कार्यान्वयन में निजी क्षेत्र की भागीदारी को बढ़ावा दिया जा सकता है। विभिन्न औद्योगिक और कृषि कंपनियों को पर्यावरणीय नीतियों और मानकों के पालन के लिए जिम्मेदार बनाया जा सकता है।

(xiv) साझी पहल: पर्यावरणीय प्रबंधन के लिए सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के बीच साझी पहल को बढ़ावा दिया जा सकता है। इसके तहत कचरा प्रबंधन, जल संरक्षण, और वनीकरण जैसी परियोजनाओं को सामूहिक रूप से संचालित किया जा सकता है।[15]

(xv) जलवायु परिवर्तन की तैयारी: जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को ध्यान में रखते हुए राज्य में अनुकूलन और शमन रणनीतियाँ विकसित की जा सकती हैं। इसके तहत बाढ़, सूखा, और अन्य प्राकृतिक आपदाओं से निपटने के लिए पर्यावरणीय मानकों का अद्यतन किया जा सकता है।

(xvi) संवेदनशील क्षेत्रों की पहचान: बिहार में जलवायु-संवेदनशील क्षेत्रों की पहचान करके वहाँ के लिए विशेष पर्यावरणीय मानक और नीतियाँ बनाई जा सकती हैं।

निष्कर्ष

बिहार में पर्यावरणीय मानकों के कार्यान्वयन और सुधार की संभावनाएँ उज्जवल हैं, बशर्ते कि संस्थानिक सुदृढ़ीकरण, तकनीकी उन्नयन, कानूनी प्रवर्तन, और जन जागरूकता पर ध्यान केंद्रित किया जाए। राज्य सरकार, केंद्रीय एजेंसियाँ, और नागरिक समाज के समन्वित प्रयासों से इन मानकों का प्रभावी ढंग से पालन और सुधार संभव हो सकता है। सतत विकास

की दिशा में उठाए गए कदम बिहार की पर्यावरणीय चुनौतियों से निपटने में मददगार साबित होंगे। बिहार में पर्यावरणीय मानकों का प्रभावी कार्यान्वयन राज्य के सतत विकास और नागरिकों के स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य है। इसके लिए संस्थानिक, कानूनी, तकनीकी, और सामाजिक क्षेत्रों में सुधार और सुदृढ़ता आवश्यक है। सभी संबंधित पक्षों के समन्वित प्रयासों से बिहार की पर्यावरणीय स्थिति में सकारात्मक बदलाव लाया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1. चौधरी, डी. (2015). भारत में जलवायु परिवर्तन की नीति और उसका प्रभाव. पर्यावरण और नीति विश्लेषण, 6 (4), 77-93.
2. सक्सेना, ए. (2014). भारत में प्रदूषण नियंत्रण: चुनौतियाँ और समाधानों की खोज. पर्यावरण प्रदूषण अध्ययन, 15(4), 102-118.
3. कर्ण, एस. (2011). बिहार में भूमि उपयोग और पर्यावरणीय चुनौतियाँ. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. कुमार, वी. (2020). पर्यावरण संरक्षण और समाज: बिहार का ग्रामीण परिप्रेक्ष्य. सेज पब्लिकेशंस।
5. तिवारी, आर. (2021). बिहार में जल संसाधन प्रबंधन और विकास. जल संसाधन और विकास अध्ययन, 17(3), 70-86.
6. सिंह, वी. (2017). बिहार के शहरी क्षेत्रों में ठोस कचरा प्रबंधन. शहरी और पर्यावरण नीति पत्रिका, 13(1), 95-112.
7. सिंह, आर. (2020). बिहार में वन संरक्षण और वन्यजीव सुरक्षा. वन विभाग, बिहार सरकार. https://www.forest.bih.nic.in
8. सिंह, ए. (2019). बिहार में जल संसाधनों का प्रबंधन और संरक्षण. जल संसाधन विभाग, बिहार सरकार. https://www.bwrb.bih.nic.in
9. रंजन, डी. (2011). बिहार में गंगा नदी का संरक्षण और पर्यावरणीय चुनौतियाँ. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
10. मलिक, आर. (2018). भारत में औद्योगिक प्रदूषण और पर्यावरणीय न्याय. औद्योगिक और पर्यावरण नीति अध्ययन, 8(1), 52-69.
11. मिश्रा, वी. (2021). बिहार में ठोस कचरा प्रबंधन और नीति सुधार. नगर विकास विभाग, बिहार. https://www.udd.bih.nic.in
12. राय, एस. (2018). बिहार में गंगा नदी प्रदूषण नियंत्रण की स्थिति. राष्ट्रीय गंगा नदी बेसिन प्राधिकरण. https://nmcg.nic.in
13. श्रीवास्तव, एन. (2017). भारतीय नदियों का संरक्षण और जलवायु परिवर्तन का प्रभाव. जलवायु विज्ञान और जल प्रबंधन, 19(3), 85-101.
14. सिंह, के. (2019). भारत में ठोस कचरा प्रबंधन और पर्यावरणीय स्वास्थ्य. शहरी और पर्यावरणीय स्वास्थ्य, 14(2), 95-111.
15. वर्मा, पी. (2016). भारतीय जल संसाधनों का प्रबंधन और उसकी चुनौतियाँ. जल संसाधन नीति पत्रिका, 10(2), 130-146.

हिन्द महासागर में चीन की उपस्थिति एवं भारत की चुनौतियाँः चीन के मोतियों की माला के परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन

अनिल कुमार रवि

शोधार्थी, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

डॉ० दशरथ राम

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, कमला रॉय कॉलेज गोपालगंज, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

शोध-सार

किशोर मुहोबानी अपनी पुस्तक 'हैज द वेस्ट लॉस्ट इट?" में चरणबद्ध तरीके से बताया है कि संयुक्त राज्य के नेतृत्व में पश्चिम का प्रभाव अपने अवसान की ओर अग्रसर है और चीन अगले वैश्विक महाशक्ति बनने की दिशा में तेजी से आगे जा रहा है। हलांकि उनकी इस मान्यता को बहुत सारे विचारकों ने नकार दिया है जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के विद्वान जैसे जान मार्सिमर का मानना है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अभी यह पूरी तरह स्पष्ट नहीं है कि चीन अगले कुछ दशकों में उसी तरह की वैश्विक भूमिका निभा पायेगा जैसा संयुक्त राज्य निभाता आया है। जब वैश्विक शक्ति का केन्द्र बिन्दु अमेरिका से चीन की ओर स्थांनान्तरित होगा तो इसका प्रभाव भौगोलिक स्थिति पर भी दिखायी देगा। उस समय अटलांटिक तथा प्रशांत महासागर का भूराजनीतिक महत्व बना रहेगा लेकिन शक्ति के बदलाव होते ही हिन्द महासागर का स्थान ज्यादे ताकतवर हो पाएगा। हिन्द महासागर का महत्व चीन की ऊर्जा सुरक्षा के लिए आवश्यक है और यदि किसी प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका तथा भारत के साझीदारी में कोई संकट आता है या युद्ध की स्थिति में, हिन्द महासागर में ही वह नियंत्रित हो पाएगा। ऐसी स्थिति में चीन के लिए वह गंभीर परेशानी का कारण होगा। इसलिए चीन यह प्रयास कर रहा है कि वह एक सुरक्षित समुद्री संचार का माध्यम विकसित करे। घेराबंदी की नीति या मोतियों की माला चीन भारत और उसके पड़ोसियों को घेरने की नीति है जिसे आधारभूत ढाँचे का विकास करने का नाम दिया जा रहा है। भारत इस नीति का प्रतिकार कूटनीतिक तथा सैन्य मोर्चे पर QUAD (चतुष्परीक सुरक्षा वार्ता) को बढ़ावा देकर और मालाबार में आस्ट्रेलिया के साथ अभ्यास शुरू किया है। लेकिन मोतियों की माला की नीति को उपेक्षित नहीं किया जा सकता क्योंकि यह चीन की महत्वाकांक्षा को उजागर करता है। वर्तमान समय में चीन द्वारा नियंत्रण रेखा पर तथा दक्षिण चीन सागर पर डेंग जियोजिंग की नीतियों के आधार पर काम किया जा रहा है।

मूल शब्दः भारत, चीन, मोतियों की माला, नीति, समुद्री संचार

प्रस्तावना

भारतीय विदेश मंत्री सुब्रहण्यम जयशंकर ने अपनी पुस्तक 'द इण्डिया वेः स्ट्रेटजीज फार ऐन अनसरटेन वर्ल्ड" में लिखा है कि "चीन की उभरती हुयी ताकत इस अनिश्चित दुनिया में काम करने वाले कई कारकों में से एक है।" यह अनिश्चिता पूरे विश्व में चल रही है भारत-चीन का आपसी संबंध पर निर्धारित करेगा की एशिया की सदी का सपना पूरा हो पायेगा या नहीं। विगत कई वर्षों का दो उभरती हुयी शक्तियों का परस्पर संबंध आपसी सहयोग से ज्यादा तनाव, गतिरोध तथा टकराव का रहा है। दोनों देशों के बीच टकराव पर्वतीय जमीनी सीमा से आगे बढ़कर हिन्द महासागर में नीले पानी तक पहुंच गया है, जहां दोनों देश एक दुसरे को मजबूत चुनौती दे रहे हैं। चीन इसे अपने राष्ट्रपति सी जीनपिंग के माध्यम से 'चीन स्वप्न' बता रहा है जिसके चीन को प्रभावशाली ताकतवर देश बनाया जायेगा जो आर्थिक व सैन्य दोनों दृष्टयों से होगा, जमीन तथा जल दोनों स्तरों पर/चीन की मोतियों की माला और कुछ नहीं है बल्कि हिन्द महासागर क्षेत्र में अपने आधिपत्य तथा नेतृत्व को मजबूत करने का एक माध्यम है।

भारत-चीन विवाद पैदा करने वाले कारक

यद्यपि बहुत सारे सामरिक विश्लेषक भारत तथा चीन के विवाद के बीच कई कारकों को दर्शाते है परन्तु व्याख्या हेतु इनका दो रूपों में वर्गीकरण किया जा सकता है। प्रथम, चीन का पूरा 'मध्य बनने की है जो वैश्विक राजनीति, आर्थिक तथा सुरक्षा मामलों का केन्द्र बिन्दु हो।" चीन के इस प्रयास में सबसे बड़ी बाधा भारत की उपस्थित कर सकता है, जो हिन्द महासागर में अपने पहचान को लेकर हो सकता है, भूराजनीतिक स्तर पर अपने प्रभाव को व्यापक बनाने की दिशा में हो सकता है। पूर्व विदेश मंत्री यशवंत सिन्हा ने कहा है कि चीन व भारत को चाहिए कि "दोनों के पास पर्याप्त सामरिक जगह उपलब्ध है।" दो महाशक्तियों का एक साथ उभार ज्यादे तनाव को पैदा कर रहा है, जिसके पहले कोई कल्पना नहीं किया था। दुसरा, दोनों देशों के बीच तनाव के लिए कुछ अन्य कारक उत्तरदायी है जो अपने 'स्थान व प्रभाव को बनाये रखने के लिए प्रयासरत हैं। ग्राहय एलिसन का प्रसिद्ध 'थ्यूडिसिस जाल' हमें भारत-चीन के संबंधों में बाहरी कारकों की व्याख्या करने में सहायता कर सकता है। इसमें बताया गया है कि इतिहास देखकर हम कह सकते हैं कि युद्ध की संभावना तब बनती है जब वर्तमान शक्तिशाली को उभरती हुयी शक्ति से चुनौती मिले। भारत व संयुक्त राज्य के बीच का संबंध जिस तनाव व विवाद की दिशा में जा रहा है वह इस कथन को ही चरितार्थ कर रहा है। इतिहास इस तथ्य को दिखाता है कि जब भी युद्ध होता था विवाद की स्थिति दो महाशक्तियों के बीच होती है तो रोकथाम की नीति एक अनिवार्य शर्त का काम करती है। हिन्द महासागर में अगर चीन के साथ संयुक्त राज्य अमेरिका का संघर्ष होता है तो भारत का 'राजनीतिक उपयोग' चीन के विरूद्ध संयुक्त राज्य कर सकता है क्योंकि भारत का पहले से ही चीन के साथ विवादास्पद सम्बन्ध बना हुआ है। इसलिए हिन्द महासागर जो पहले भूराजनीतिक संघर्ष से बहुत दूर था, वह अब महाशक्तियों के संघर्ष का केन्द्र बिन्दु हो गया है और उभरती हुयी शक्ति संघर्ष का स्थल हो गया है।

हिन्द महासागर तथा मोतियों के माला (स्ट्रिंग ऑफ पल्स) में चीन का हित

यद्यपि हिन्द महासागर एकमात्र महासागर है जिसका नाम एक देश पर रखा गया है लेकिन भारतीय नीति निर्धारकों ने इस क्षेत्र को उस रूप में प्रभावशाली नहीं बनाया जिसका यह अधिकारी है। भारत की इस क्षेत्र में नीति सक्रिय रहने की तुलना में प्रतिक्रियाशील हो रही है। इस क्षेत्र में चीन अपने हितों को लेकर सामरिक प्रयास कर चुका है, जिसे मोतियों की माला की रणनीति में देखा जा सकता है चीन यह अपने हितों को संरक्षित करने के लिए कर रहा है जिस पर भारत के सामरिक विश्लेषकों के सामने चिन्ता के बादल हैं। भारत के हितों पर भय व संशय दिखाई दे रहा है जिसकी वजह से भारत अपनी गठजोड़ व उपस्थिति को मजबूत कर रहा है। दोनों महाशक्तियों का इस क्षेत्र में गतिविधि संदेह व भय का वातावरण तैयार कर दिया है। हिन्द महासागर में चलने वाला सुरक्षा को लेकर चलने वाला यह खेल अपने आप में अद्वितीय है।

चीन के लिए ऊर्जा सुरक्षा अत्यंत महत्वपूर्ण है। परन्तु हिन्द महासागर का भूगौलिक स्थिति जो अफ्रीका के पूर्वी तट से लेकर आस्ट्रेलिया के पश्चिमी तट तक फैला है उसमें कुछ चेक प्वाइन्ट भी है जैसे हरमूज जलसंधि, मल्लका जलसंधि, बेव-अल-मन्देब जलसंधि, सुन्दा जलसंधि आदि। चीन की उत्सुकता तथा घबड़ाहट को व्यक्त करते हुए "हू जिन्टो" ने कहा है कि मल्लका जलसंधि एक संकरी जलमार्ग है जो मलेशिया और इण्डोनेशिया को अलग करती है। चीन का ज्यादातर तेल का आयात इसी मार्ग से होता है और यदि संघर्ष के दौरान इसे बंद कर दिया जाए तो चीन को भारी नुकसान होगा जिससे उसे आर्थिक अस्थिरता और अन्ततः घरेलू राजनीतिक अस्थिरता का भी सामना करना पड़ सकता है। मल्लका जलसंधि चीन के लिए "एड़ी के दर्द' के समान होगा।" इससे पहले की मल्लका जलसंधि मार्ग को टोका जाए चीन हिन्द महासागर में अपनी उपस्थिति मोतियों के माला कूटनीति से तैयार किया है।

2001 में चीन की सरकार ने पाकिस्तान के साथ एक समझौता किया जिसमें उसके बन्दरगाह ग्वाडार के लिए चीन विकास का काम करेगा। 'ग्वाडार एक ऐसा स्थान हो गया है जहां चीन तथा पाकिस्तान इसे नई दुबई का रूप देना चाहते हैं, जहां पर दो मिलियन लोगों के रहने का आवास बन सके। 2017 में चीन, श्रीलंका से हमबतुता बन्दरगाह ले लिया है और पहला समुद्री पड़ाव किसी अफ्रीकी देश जीजीबुती में तैयार कर रहा है।"

ग्वाडार, हम्बनटोटा तथा जीजीबुती मोती है चीनी की माला में। मोतियों की माला में, "प्रत्येक मोती में स्थायी रूप से चीनी सेना को उनकी स्थिति के अनुसार रखा जायेगा।" और माला में वे मोतियां जुड़ जायेंगी। व्यापारिक सुविधा देकर सैन्य स्थापना का यह नेटवर्क है जिससे भारत को घेरकर चीनी हितों को सुरक्षित किया जा सके। इसके पहले भी 'स्ट्रिंग ऑफ पल्स कहावत

का उपयोग होता था परन्तु इसका इस संदर्भ में उपयोग 2004 के एक रिपोर्ट 'एनर्जी, फ्यूचर इन एशिया में सामने आया, जिसे अमेरिकी थिंक टैंक बूजी एलन हेमिलंटन ने तैयार किया था।

माला में मोतियां

मोतियों की माला, "चीन के मुख्य भूमि के किनारे से आगे बढ़कर, दक्षिण चीन महासागर, मल्लाका जलसंधि तथा हिन्द महासागर होते हुए अरबसागर तथा पारस की खाड़ी तक जायेगी। इस माला में महत्वपूर्ण मोती 'चीटीगंगा में जहाजों का कण्टेनर, सीटवी म्यांमार में गटटा पाना का बंदरगाह, हम्बुनटोटा श्रीलंका में जहाजों का काण्टेनर बन्दरगाह, पाकिस्तान के ग्वाडार में गहरा नौसैनिक अड्डा, इसके साथ ही पाकिस्तान के ही जैसे ओरमारा में नौसैनिक अड्डा जो पश्चिमी मारकान के किनारे होगा। इन सभी में खुफिया सिगनल की सुविधा होगी, जिसमें एअरस्ट्रीप, म्यांमार के महान कोको द्वीप पर दी जायेगी जो अण्डमान से कुछ मील की दुरी पर है।"

चीनी माला-देश पर आधारित विश्लेषण व इसके निहितार्थ

चीन की 'भारत की घेरने की नीति सफल है। इसके लिए चीन के हिन्द महासागर वाले देशों के अपार धनराशि खर्च किया है। लेकिन चीन के द्वारा आधारभूत ढाचा खड़ा करने के लिए खर्च की गयी धनराशि इन देशों को बिना कीमत का उपहार नहीं है। कुछ देश जो चीन के कर्ज से दबे हुए है, उन्हें चीनी उत्पादों को बेचने का दबाव बनाया जा सकता है या उनके प्रबंधन को चीनी राज्य के फार्मों को सौंप दिया जाएगा।

2014 में म्यांमार की सरकार ने क्यूकप्यू बंदरगाह पर विशेष आर्थिक जोन स्थापित करने का प्रस्ताव चीन को दिया जिससे 2015 में छः चीनी कम्पनियों पर राय शुरू कीं।

चीन की रूचि क्यूकप्यू बंदरगाह को प्राप्त करने में थी क्योंकि यह बंगाल की खाडी के समीप था जिसका चीन दो तरफा उपयोग कर सकता है। वाणिज्यिक तथा सैन्य दृष्टि से। क्यूकप्यू से चीन को मल्लका से जुड़ने में भी सहायता होती जिसमें दो गैस तथा तेल पाईपलाईन क्यूकप्यू तथा चीन के कुमिंग को जोड़ते हैं। इससे चीन को मल्लाका जलसंधि से जुड़ने में आसानी हो जायेगी। चीन अपना एक खुफिया तंत्र भी विकसित कर रहा है जो म्यांमार के कोको द्विप पर होगा जो अण्डमान निकोबार से काफी नजदीक होगा।

बांग्लादेश का किटिगंगा बंदरगाह चीनी माला का दूसरा मोती है जो बंगाल की खाड़ी में स्थित होने से चीन की पहुंच आसान करेगा। श्रीलंका के विषय में विशेष स्थिति है क्योंकि वह चीन को कर्ज चुकाने में असमर्थ था इसलिए श्रीलंका के प्रधानमंत्री ने हेमबेनटोटा बंदरगाह को चीन को निन्नाबे साल के लीज पर सौंप दिया।

हेमबेनटोटा बंदरगाह जो दक्षिण भारत के करीब है। चीन ने वहां सामरिक उपलब्धि हासिल कर ली है जो भारत के सामरिक अदूरदर्शिता को दिखाता है क्योंकि भारत ने श्रीलंका के प्रस्ताव को उसका विकास करने को ठुकरा दिया था। इस तरह से भारत को घेराबंदी में चीन को एक ओर सफलता मिली जो सामरिक दृष्टि से उसके लिए अत्यंत लाभप्रद है।

कुछ विश्लेषक मानते है कि मालदीव भी माला का एक मोती है और चीन ने मालदीव के फियदू फिनलू को लीज पर ले लिया है। यहां पर बहुत सारी चीनी कम्पनियां मालदीव में रिसार्ट तथा अन्य विकासपरक कार्यों में लगी हुयी है। ग्वादर बंदरगाह का विकास जो चीन पाकिस्तान आर्थिक गलियारे (CPEC) का अंग है, के द्वारा पाकिस्तान चीन को सामरिक दृष्टि से एक आंख सौंप दिया है जिससे वह पश्चिमी मोर्चे पर आसानी से निगरानी रख सकता है। ग्वादर बंदरगाह का भारत, चीन, पाकिस्तान के लिए सामरिक महत्व है, जो इस क्षेत्र के प्रभावी किरदार हैं।

जब इस बंदरगाह पर और CPEC पर भारी मात्रा में धन खर्च कर रहा है। इस बन्दरगाह का पाकिस्तान के लिए भी सामरिक दृष्टि से उतना ही महत्व है क्योंकि यह ज्यादे कराची बंदरगाह पर ऊर्जा व खाद्यान्न के लिए निर्भर हैं और जहां भारत का प्रभाव दिखाई देता है। ब्रीवेस्टर ने लिखा है कि "कराची भारत से लगा हुआ है। भारत ने इसका लाभ 1971 के भारत-पाकिस्तान युद्ध में लिया है जिसमें उसने कराची का नाकाबंदी कर दिया था। 1999 में भी भारतीय नौसेना ने कारगिल संघर्ष के समय इसकी धमकी दी थी, कुछ लोगों का मानना है कि इस कारण से भी पाकिस्तान ने अपनी सेना कश्मीर से हटाई। इस तरह से लग रहा है कि चीन ने अल्फ्रेड महान के कथन की चरितार्थ कर दिखाया है जिसमें कहा गया है कि, "जो हिन्द महासागर पर नियंत्रण कर लेगा वह एशिया पर नियंत्रण कर लिया। यह महासागर सात समुद्रों तक पहुंचने का माध्यम है।'

निष्कर्ष

चीन भी 21वीं सदी की रणनीतिक स्पष्ट रूप से सुरक्षात्मक है, बेल्ट रोड पहल (BRI) तथा हिन्द महासागर से जुड़े देशों के साथ घनिष्ट संबंध बनाना, चीन को भविष्य में राजनीतिक प्रभाव का विस्तार करने में सहायता देगा। यह स्पष्ट हो गया है कि चीन के सैनिक अड्डे या लाजेस्टिक सुविधाएं हिन्द महासागर में उसकी भूमिका को बढ़ा देंगे जो इस क्षेत्र में संयुक्त राज्य की उपस्थिति के लिए एक चुनौती होगा। चीन के दक्षिण तथा दक्षिण पूर्व एशिया के अन्दर सामरिक निवेश का नाम मोतियो की माला के रूप में दिखाई दे रहा है, जो मानचित्र से स्पष्ट करता है कि कोई माला भारत को घेरी हुयी है। भारत को हिन्द महासागर में प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण अपनाना होगा। एसुम्पसन द्वीप का विकास तथा मौरिटुरियस के आगे लेगा द्वीप का विकास एक अच्छी पहल है।

चीन भी अपने प्रभाव को व्यापक बनाने की इच्छा, भारत के भूराजनीतिक चिन्ता को बढ़ा देती है। महाशक्तियाँ केवल अपना हित देखती है। भारत तथा चीन उभरती हुयी एशिया की शक्ति है, इन्हें परस्पर सहयोग करना चाहिए और किसी भी अन्य महाशक्तियों को इसमें हस्तक्षेप करने का अवसर नहीं देना चाहिए। वैश्विक स्तर पर चीन एक महत्वपूर्ण शक्ति का पहचान बनाने की दौड़ में लगा है। परन्तु यह दौड़ इस क्षेत्र में अन्य शक्तियों को सम्मिलित होने का अवसर भी देगी। चीन को भी भारत की तरह इस क्षेत्र में शांतिपूर्ण शक्तिशाली होने का परिचय देना होगा।

संदर्भ सूचिः

1. Brewster, D. (2014). Beyond the 'String of Pearls': is there really a Sino-Indian security dilemma in the Indian Ocean?. Journal Of The Indian Ocean Region, 10(2), pp-133-149. doi: 10.1080/ 19480881. 2014. 922350
2. Mahbubani, K. (2018). Has the West Lost It?: A Provocation. Penguin, UK
3. Jaishankar, S. (2020). The India Way: Strategies for an Uncertain World. Harper Collins, Noida, Uttar Pradesh. p-151.
4. Tharoor, S., & Saran, S. (2020). The New World Disorder and the Indian Imperative. Aleph Book Company, New Delhi.p-192.
5. Ji, Y. (2007). Dealing with the Malacca Dilemma: China's Effort to Protect its Energy Supply. Strategic Analysis, 31(3). pp-467-489. doi: 10.1080/ 09700160701415743 IG-155716
6. Scott, D. (2008). The Great Power 'Great Game between India and China: 'The Logic of Geography, Geopolitics, 13:1. pp-1-26, DOI: 10.1080/ 14650040701783243
7. Niazi, T., 2005. "Gwadar: China's Naval Outpost on the Indian Ocean," China Brief, The Jamestown Foundation, February 28, 2005 Available at: https:// jamestown.org/program/gwadar-chinas-naval- outpost-on-the-indian-ocean/
8. Tharoor, S., & Saran, S. (2020). The New World Disorder and the Indian Imperative. Aleph Book Company, New Delhi.p-204.
9. Baker, B. (2015). Where Is the 'String of Pearls in 2015?. The Diplomat. Retrieved from https:https:// thediplomat.com/2015/10/where-is-the-string- of- pearls-in-2015/
10. MacDonald, J. (2004). Energy Futures in Asia: Final Report. Booz-Allen & Hamilton.
11. Banerjee, Gautam & Suri, G. (2017). ed. Strategic discourse on the People's Republic of China.

श्री गुरु नानक देव का सामजिक दृष्टिकोण

परविंदर शर्मा

असिसिटेंन्ट प्रोफेसर, टी.पी.डी कॉलेज, रामपुरा फूल

सारांश

मनुष्य का समाज से गहरा सम्बन्ध है। मनुष्य समाज की इकाई है और समाज मनुष्य की समष्टि का बोधक है। समाज का स्वरूप निर्माण व्यक्ति के आचार विचारों पर निर्भर करता है। सामान्यत: यह देखा गया है कि जब भी व्यक्ति कर्त्तव्यच्युत हुआ तब-तब समाज की व्यवस्था भंग हुई है। समाज को पुन: सुव्यवस्थित करने के लिए प्राय युग पुरुषों का जन्म होता है। इसी प्रकार 15 वीं सदी में सिक्ख धर्म के संस्थापक गुरु नानक देव ने आंखे खोली, गुरु नानक देव जी के समय भारतीय जनता मुख्यत: धर्म के प्रभाव में दो सामजिक खंडो में विभक्त थी, हिन्दू और मुसलमान इसमें कोई सन्देह नहीं कि गुरु नानक ने यंत्र-तंत्र मुसलमानों की सामजिक स्थिति और स्वरूप पर प्रकाश डाला है। गुरु नानक देव जी ने वर्णाश्रम का विरोध किया है। गुरु नानक जी ने ऊंच-नीच की भेद भावना को दूर किया और शूद्र समाज के लोगों को इज्जत प्रदान की, जो वैदिक धर्म में कम थी। गुरु नानक जी ने नारी को पुरूष के समान समझा है। जो कि मध्यकाल में आकर कम हो गई थी गुरुजी के अनुसार शिक्षा में 'किरत और मानव हित का मुख्य स्थान है। शिक्षक और शिक्षार्थी में भी कोई अन्तर नहीं माना गया और सत्कर्मो की निरन्तर प्रक्रिया संयम, मय और संतोष इसके व्यवहारिक तत्त्व बताए गए है। समाज को संतुलित बनाए रखने के लिए उन्होंने पर-सेवा पर बहुत बल दिया है और श्राद्ध, सूतक, मांस भक्षण आदि व्यर्थ की भ्रामिक एवं कल्पना-प्रसूत सामाजिक प्रथाओं से ऊंचा उठ कर आध्यात्मिक कर्म में संलग्न होने का उपदेश दिया है। वस्तुत: नाम-जपना, किरत करना और बांट कर खाना उनकी सामाजिक विधि के आधार तत्त्व है। शिक्षा के आध्यात्मिक स्वरूव पर बल देते हुए गुरुजी ने संयम, भय, संतोष आदि पर बहुत बल दिया है।

प्रस्तावना

हम मानते है कि मनुष्य का समाज से अत्यन्त गहरा संबंध है। हम यह भी कह सकते है कि मनुष्य समाज की इकाई है और समाज मनुष्य की समष्टि का बोधक करता है। समाज का स्वयप निर्माण व्यक्ति के आचार-विचारों पर निर्भर करता है। सामान्यत: यह देखा गया है कि जब भी व्यक्ति कर्त्तव्यच्युत हुआ है, समाज की व्यवस्था भंग हो गई है। समाज को पुन: सव्यवस्थित करने के लिए प्राय: युग पुरुषों का जन्म होता है। गुरू नानक ऐसी ही युग विभूति थे जिन्होंने अस्त-व्यस्त और ह्रासोन्मुख समाज की पुन: स्थापना की। उस समय समाज की कोई मर्यादा नहीं रह गई थी। यदि स्त्रियां मुर्ख हो गई थी तो पुरूष निर्दय बन चुके थे।

गुरु नानक जी के समय में शील, संयम और पवित्रता के बंधनों को तोड़कर खाद्य अखाद्य खाने लगे थे शर्म और प्रतिष्ठा नष्ट हो गई थी।[1] लोगों के आचार गिर चुके थे। झूठ बोल कर घूस लेना साधारण दुराचार था। किन्तु ऐसे दुराचारी लोग ही दूसरों को सही काम करने के लिए समझाने वाले भी बने हुए थे।[2]

आत्मिक प्रेम के स्थान पर स्वार्थपरक भावनाओं पर सामाजिक संबंधों की स्थापना होती थी। स्त्री और पुरुष के परस्पर संबंध भी धन की प्राप्ति पर अवलम्बित थे भले ही कमाई के सघान घटिया क्यों न हो।[3]

गुरू नानक के अविर्भाव से समय भारतीय समाज मुख्यत: दो वर्गों में विभाजित था- हिन्दू समाज और मुसलमान समाज यह दोनो समाज ह्रासोन्मुख हो रहे थे। इनमें किसी प्रकार की सामाजिक मर्यादा नहीं रह गई थी। जन साधारण के आचार-व्यवहार पतनान्मुखा थे। सामाजिक संबंधों में मात्र निजी स्वार्थ को आधार बनाया जाता था। हिन्दू समाज में जाति-प्रथा ने कठोर रूप धारण कर लिया था जिससे समाज का निम्न वर्ग अमानवीय जीवन-यापन कर रहा था। स्त्री उसे समाज में अनादर और तिरस्कार मिलता था। मुस्लिम समाज में भी ऊंच-नीच की भावना विद्यमान थी। साधारण स्त्री की स्थिति भी शोचनीय थी। ऐसी संकीर्ण विषम और अनाचार युक्त सामाजिक स्थिति को सुधारने का प्रयत्न हिन्दू और मुसलमान महापुरूषों ने किया। मुसलमानों में सूफी संतों ने समाज को सुन्दर और खुशहाल बनाने का प्रयत्न किया। हिन्दु समाज में रामानुज, रामानन्द, माध्व,

ज्ञानेश्वर, चौतन्य और बललभ ने वर्ण-व्यवस्था को स्वीकार करते हुए और उसके अनुशासन के अन्तर्गत रह कर भी अधिक उदार सामाजिक भावों का आह्वाहन किया। रामानन्द ने जन साधारण की भाषा में सब वर्गों के नर-नारियों को अपनी भक्ति का उपदेश दिया।[4] गुरु नानक ने भारतीय समाज के दो प्रमुख समुदायों में एकता लाने का सफल प्रयत्न किया। उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों में मुनष्यता को अधिक महत्व दिया। मानव को अधिक महत्व प्रदान करने हेतु ही इन्होंने कहा था-

न को हिन्दु न को मुसलमान

इन्होंने इन दोनों के भेद-भाव को नहीं माना। गुरु नानक देव जी ने अपने को कभी किसी से अलग नहीं माना। उन्होंने कहा था कि एक की ज्योति से संसार उत्पन्न किया गया है इसमें कौन अच्छा है कौन बुरा।[5]

"एक जोति ते जग ऊपजा कौन भले कौन मन्दे।

गुरु नानक भारत में व्याप्त जातीय भेद में विश्वास नहीं करते थे। ये भारतीय समाज को समता और एकता के सूत्र में बाधना चाहते थे। इसीलिए इन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों के पारस्परिक जातीय भेद भाव की आलोचना की और उन्हें श्रेष्ठ मानव बनाने के लिए अनुप्रेरित किया। इन्होंने स्पष्ट घोषित किया कि जाति-पांति के झगडे में मत पढ़ो। एक परमात्मा की ज्योति ही प्रत्येक मनुष्य में है चाहे वह किसी भी जाति या धर्म का हो।

जाणाहु जोति न पूरछहु जाती
आगे जाति न हे।।[6]

वर्णाश्रम का गुरु नानक जी ने विरोध किया है। क्योंकि गृहस्थाश्रम में रहकर ज्ञान की प्राप्ति की जा सकती है। जो पर त्याग देते है वह यति कहलाते है किन्तु वास्तविक यति बनने की युक्ति को नहीं जानते और व्यर्थ में अपना घर-बार छोड़ बैठते है। इनके व्यर्थ कृत्यों पर प्रकाश डालते हुए गुरु जी ने इनकी साधना को भी निरर्थक माना है और इसके विपरीत गुरुजी भी भक्ति को सफल एवं कल्याणकारी माना है-

जोगी भोगी कापड़ी किआ भवाहि दिसंतर।
गुरु का सबहु न चीन्ही ततु सारू निरतर।
पंडित पाधे जो इसी नित पड़हि पुराया।
अंतरि वसतु न जाणनी पटि ब्रह्मु जुकाणा।
इकि तपसी बन महि तपु करहि नित तीरथ वासा।
आपुन चीनहि तापसी काहे भए उदासा।
इकि गिरही सेवक साधिका गुरमाती लागे।
नामु दानु इसनानु दृढ़ हरि भगति सु जागे।[7]

गुरु नानक ही मध्ययुग के सर्वप्रथम महापुरूष थे। जिन्होंने स्त्री को समाज में सम्मानजनक स्थान दिलाया था। गुरु गोरखनाथ, संत कबीर, गोस्वामी तुलसीदास प्रवृति समाज सुधारकों ने स्त्री की निन्दा की थी। गुरु नानक के शब्दों में उस नारी की यह दुर्दशा था कि:-

'साहुरै ढोई न मिलै, पेइएं ताहि थाऊं।

डॉ. धर्मपाल सिंहल, नारी की ऐसी बुरी अवस्था के प्रति गुरु नानक की प्रतिक्रिया को प्रस्तुत शब्दों में वर्णित करते है। ष्वे (गुरु नानक) नारी की माता की यह दीन-हीन दशा न देख सके। जहां वे स्त्री को भक्ति का पूर्ण अधिकार देते है वहां वे उसे वन्दनीय भी मानते है। उन्होंन उस समय में फिऊडल वर्ग के विचारों की निन्दा की और उन्होंने कहा कि नारी केवल काम-वासना की तृप्ति करने वाली, पुरूष की दासी एवं रूप और श्रृंगार करने वाली ही नहीं है। वह स्त्री उसे जन्म देती है, पालन-पोषण करती है, जिसकेबिना विवाहादि यज्ञ अपूर्ण है। स्त्री बड़े-बड़े राजाओं महाराजाओं एवं ऋषियों महात्माओं की जननी है- वह निन्दनीय कैसे हो सकती है? ऐसे विचार केवल गुरु नानक ही कहने का साहस करते है।

"भंड जंमिए मंडि निमीऐ भंडि मंगणु वीआहु।।
भडहु होवे दोसती भंडहु चलै राहु।।
भडु मुआ भंडु भालीऐ भंडु होवै बधानु।
सो किउ मंदा आखीए जितु जमहि राजान।।[8]

डॉ. धर्मपाल सिंहल जी के विचारों के संबंध में हमारा निवेदन है कि संत कबीर और गोस्वामी तुलसीदास ने पतिव्रता नारी की बहुत प्रशंसा की है। गुरु नानक के स्त्री संबंधी विचारों ने स्त्री को पूजा-अर्चना, उपासना और समाज में पुरुषों के बराबर आजादी के अधिकार दिलाये। धर्मार्थ तथा ज्ञान में वह पुरूष के बराबर ही अधिकारी की स्वामिनी बन गई। वह भी मोक्ष की अधिकारणी बन गई। उसे सिख समाज में पुरुष के बराबर अधिकार मिल गये।[9]

गुरु नानक ने ही सर्वप्रथम समाजवादी समाज के विचार दिये थे। इन्होंने भारतीय समाज के शोषित और दलितों से ही अपना संबंध घोषित किया।

गुरु नानक के सामाजिक दृष्टिकोण का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व पर सेवा की भावना भी है। पर-सेवा से स्वार्थ की मावर का विनाश होता है। स्वार्थ बूढ़ का जनक है, इससे समाज में अनावश्यक और अततोगत्वा विनाशक प्रतिवृद्धिता का विकास होता है।

इसके अलावा श्राद्ध धर्म आधारित एक समाजिक प्रथा है। संतान के द्वारा अपने पूर्वजों के निमित दिए गए दान, मोजन आदि पदार्थ स्वर्ग में पूर्वजों को प्राप्त होंगे- इस धारणा के वशीभूत धर्म भीरू व्यक्ति अनेक प्रकार के दान करते है। गुरु नानक इस प्रथा के विरोधी थे। उनका मत है कि आगे चलने पर वहीं कुछ प्राप्त होता है जो शरीरिक परिश्रम द्वारा इस संसार में कमाया जाता है।

गुरुजी ने सूतक को मरणावसर पर पुरोहितों द्वारा चलाई सूतक प्रथा को गुरुजी ने न उचित माना है और न ही मनुष्यता के लि कल्याणकारी। क्योंकि गोबर, लकड़ी, अनाज, जल आदि के अन्दर जीव है। यदि परणावसर पर ही सूतक पढ़ता है तो इन वस्तुओं का जलाने पर पाकशास्ता भी सूतक युक्त हो सकती है। गुरुजी ने ऐसे सूतक को वास्तविक सूतक न मान कर तृष्णा को सही सूतक का नाम दिया है। क्योंकि इसी के द्वारा समस्त संसार का नाश हो रहा है।

गुरुजी ने मरणावसर पर पुरोहितों द्वारा चलाई सूतक प्रथा को न उचित माना है और न ही मनुष्यता के लिए कल्याणकारी। क्योंकि गीबर, लकडी, अनाज, जल आदि सब के अन्दर जीव है। यदि मरणवसर पर ही सूतक पड़ता है तो इन वस्तुओ को जलाने पर पाकशाला भी सूतक युक्त हो सकती है। कि मन का सूतक लोभ, जिव्हा का झूठ, आंखों का पर नारी के रूप सौदर्य और पर धन को देखना और कानों का सूतक दूसरों को चुगली सुनना है। सूतक का केवल भ्रम मानते हुए गुरु नानक ने जनमना, मरना, खाना, पीना सभी ईश्वरीय इच्छा के अधीन माने है अतः यह सब कुछ पवित्र है-

सभी सूतकू भरमु है दूजै लगै जाइ।
जमणु मतणा हुकमु है भाणै आवे जाइ।
खाणा पीणा पवितु है दितोनु रिजकु सबाहि।
नानक जिन्ही गुरमुखि बुझिआ तिन्हा सूतकु नाहि।[10]

सारांश में हम कह सकते है कि गुरु नानक देव जी ने सांसारिक शिखा अथवा ज्ञान की अपेक्षा आध्यात्मिक शिक्षा अथवा ब्रह्म ज्ञान को महत्व दिया है। इस प्रकार की शिक्षा में 'किरत' और मानवहित का मुख्य स्थान है। शिक्षक और शिक्षार्थी में भी कोई अन्तर नहीं माना गया और सत्कर्मो की निरन्तर प्रेरणा, संयम, भय और संतोष इसके व्यावहारिक बताऐ गए है। विश्लेषण से भली-भांति स्पष्ट है कि गुरु नानक तत्कालीन सामाजिक व्यवसथा से संतुष्ट नहीं थे क्योंकि वह मानव विकास का मार्ग अवरूद्ध किए हुए थी।

गुरूजी ने संत कबीर के समान जाति-पांति की प्रथा को निरर्थक मानते थे और गृहस्थ जीवन को सर्वोत्तम समझते थे। नारी को समाज में गौरवपूर्ण स्थान देने के वे पक्ष में थे, समाज को संतुलित बनाए रखने के लिए उन्होंने पर सेवा पर बहुत बल दिया है और श्राद्ध, सूतक, मांस भक्षण आदि व्यर्थ की भ्रामक एवं कल्पना प्रसूत सामाजिक प्रथाओं से ऊंचा उठकर आध्यात्मिक कर्मो में संलग्न होने का उपदेश दिया है। वस्तुत नाम जपना, किरत करना और बांट कर खाना उनकी सामाजिक विधि के आधार तत्त्व है। शिक्षा के आध्यात्मिक स्वरूप पर बल देते हुए गुरुजी ने संयम, भय, संतोष आदि पर बहुत बल दिया है।

पुस्तक सूची

1 गुरू नानक, व्यक्तित्व, कृतित्व और चितन, डॉ रत्नसिंह जग्गी, पृ. 662
2 कूड बोलि मुरदार खइ/ अवरी नो समझवणि जाइ। (माझकी वार, श्लोक 1)
3 इसतरी पुरसौ साआि भाउ। भावै आवउ भावै जाउ (रामकली श्लोक-1)
4 डॉ राधाकमल मुखर्जी, भारतीय समाज विन्यास, पृ 51
5 डॉ. हाजरी प्रसाद द्विवेदी, सिक्ख गुरुओं का पुण्य स्मरण, पृ. 24
6 रागु आसा.
7 आसा, अष्टपदी 14/3-7
8 रागु आसा, वार, श्लोक-41
9 गुरुचरनसिंह युग प्रवर्तक गुरु नानक और उनकी वाणी, पृ. 100
10 आसा की वार, श्लोक 39

श्रीराम के आदर्श और डॉ. आम्बेडकर की सामाजिक क्रांतिः एक विश्लेषण

डॉ० किस्मत कुमार

सहायक आचार्य, आम्बेडकर अध्ययन केन्द्र, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला

शोध सारांशः प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य भारत के संविधान निर्माता डॉ. भीमराव रामजी आम्बेडकर के विचारों में सामाजिक समरसता के संदेश का अध्ययन करना है। आंबेडकर के विचार और दृष्टिकोण भारतीय समाज के सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक उत्थान के प्रति गहन प्रतिबद्धता का प्रदर्शन करते हैं। बाबासाहब आम्बेडकर, जिन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त असमानता और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष किया, 'राम' को सामाजिक सुधार और समरसता के प्रतीक के रूप में स्वीकार करते थे। उनके विचार में भगवान श्रीराम का जीवन और उनकी शिक्षाएं भारतीय समाज में समानता और न्याय के आदर्शों को स्थापित करने में सहायक हो सकती हैं। इस शोध पत्र में बाबासाहब के सामाजिक आंदोलन के दौरान श्रीराम के प्रति उनके दृष्टिकोण, मंदिर निर्माण के प्रति उनके विचार, और उनके सामाजिक समरसता के संदेश का विवेचन किया गया है।

संकेत शब्दः डॉ. भीमराव रामजी आम्बेडकर, श्रीराम, श्रीराम जन्मभूमि, प्राण प्रतिष्ठा, भारतीय संविधान, समरसता, सवर्ण इत्यादि।

प्रस्तावनाः अयोध्या में श्रीराम जन्मभूमि के मन्दिर की प्राण प्रतिष्ठा के प्रसंग पर भारत के संविधान निर्माता डॉ. भीमराव रामजी आम्बेडकर उपाख्य बाबासाहब को स्मरण करना भी महत्वपूर्ण है। बाबासाहब आम्बेडकर भी भारतीय समाज जीवन रचना में सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक उत्थान के लिए 'राम' को आवश्यक मानते थे। इसलिए सामाजिक आंदोलन की यात्रा में उन्होंने कलम, पानी के साथ साथ मन्दिर को भी निमित्त बनाया। मन्दिर और वो भी 'श्री राम' का मन्दिर। ऐसा उन्होंने इसलिए किया, क्योंकि वो 'राम' की जीवन लीला से परिचित थे। राम के सामाजिक समरसता संदेश से प्रभावित थे।

श्रीराम के आदर्श और डॉ. आम्बेडकर की सामाजिक क्रांति

बाबासाहब आम्बेडकर की जीवन यात्रा जिस कालखण्ड में हुई, उस समय सामाजिक कुव्यवस्था के कारण जातिभेद की जड़ें बहुत गहरी हो चुकीं थीं। इस जातिभेद की कुव्यवस्था का प्रभाव उनके पालन-पोषण पर भी पड़ा। एक ऐसा तंत्र प्रभावी हो गया, जो जाति के कारण मानव और मानव में भेद करने लग पड़ा, जन्म के कारण ही श्रेष्ठता और हीनता के बोध में व्यक्ति को खड़ा कर मन से लेकर व्यवहार तक भेद-तन्त्र बन गया।

इसी दूषित तन्त्र में से समाज को बाहर निकालने के लिए बाबासाहब आम्बेडकर अपनी वंश परम्परा को अमर कर गये। वंश की परम्परा अर्थात् समाज के भले के लिए सर्वस्व अर्पण करने की परम्परा और उस परम्परा का नाम है संन्यास परम्परा। वास्तव में बाबासाहब के कुल में तीन संन्यासी हो चुके थे। सन्यासियों के आशीर्वाद, माता-पिता ने अपने समाज को जातिभेद की बीमारी से मुक्त करने के दृढ़ संकल्प को पूरा करने के लिए 14वीं सन्तान के रूप में जन्म दिया। पुत्र प्राप्ति के संकल्प को तो माता भीमाबाई नित्यप्रति भजन में इस प्रकार दोहराती थीं-

'अस्पृश्यता का कलंक धोने के लिए
हे देव!
तू दौड़; मेरे अपंग, अज्ञ और विपन्न दशा में सड़रहे बांधवों की रक्षा के लिए
हे देव! तू अवतार ले ले।'

पिता रामजी सकपाल के नाम में तो 'राम' वैसे ही समाया हुआ था। इसलिए बालक का पूरा नाम भीमराव रामजी सकपाल बना। 'बाबासाहब का बचपन परिवार के अत्यंत संस्कारी व धार्मिक वातावरण में बीता। उनके घर में चलनेवाले रामायण, पांडव प्रताप, ज्ञानेश्वरी व अन्य संत वाङ्मय के नित्य पाठन तथा भजन के दैनंदिन प्रभाव से निर्मित होने वाले धार्मिक पवित्र वातावरण

का सविस्तार वर्णन दोनों चरित्र ग्रंथकारों चा.भ. खैरमोडे व धनंजय कीर ने किया है।'[1] उनके कुल का गोत्र सकपाल था, परंतु महाराष्ट्र में गांव का नाम भी जोड़ने की परम्परा है। इनके गांव का नाम अंबावड़ेकर था। पाठशाला के रिकॉर्ड के अनुसार इनका नाम भीमराव रामजी अंबावड़ेकर रखा गया। 'चूंकि रत्नागिरि जिले के खेड़ा तालुके में अम्बावाड़े नामक गाँव के इनके दादे-परदादे थे, इसलिए इन लोगों के नाम के साथ अम्बावाड़ेकर नाम जुड़ा करता था।'[2] उपनाम लिखने और उच्चारण में टेढ़ा होने के कारण इनके प्राथमिक अध्यापक ने अंबावड़ेकर के स्थान पर अपना उपनाम आम्बेडकर कर दिया। 'उन्होंने ही उसे 'आंबेडकर' उपनाम दिया'।[3] इस प्रकार 'आम्बेडकर' उपनाम तो उन्होंने अपने प्रिय ब्राह्मण अध्यापक से प्राप्त किया था। इसी कारण बी से भीमराव, आर से रामजी और ए से से आम्बेडकर (बीआर आम्बेडकर) आम्बेडकर नाम से विश्वप्रसिद्ध हुए और सामाजिक समरसता के आन्दोलन की धार को तेज किया।

आम्बेडकर का स्वतंत्रता को लेकर व्यापक एवं दूरगामी विचार था। 'डॉ. आंबेडकर का राष्ट्रवाद केवल भारतीयों को सत्ता हस्तांतरण तक सीमित नहीं था। उनकी दृष्टि में राष्ट्रवाद एक स्थायी प्रकृति के राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का कार्य था अर्थात् यह सामाजिक समानता और सांस्कृतिक एकता के जरिए युगों पुरानी जातिग्रस्त, अन्यायपूर्ण, भेदभाव युक्त सामाजिक व्यवस्था को छोड़कर लोकतांत्रिक गणराज्य का निर्माण था।'[4] इस प्रकार उन्होंने स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के दूरगामी भविष्य की कल्पना की थी।

आम्बेडकर के सामाजिक जीवन की शुरुआत ही नासिक में भगवान राम के मन्दिर में प्रवेश के अधिकार को लेकर हुई थी। इस मन्दिर को काला राम मन्दिर कहते हैं। भगवान श्री राम की मूर्ति काले रंग के ग्रेनाइट में होने के कारण यह देवस्थान काला राम मन्दिर के रूप में ही जनमानस में प्रसिद्ध हो गया था।

आम्बेडकर समाज में व्याप्त जातिभेद की बीमारी को समाप्त करने के लिए इसी 'काला राम मन्दिर' को अपना केन्द्र बनाते हैं। इसमें प्रवेश एवं मन्दिर दर्शन का अधिकार प्राप्त करने के लिए संघर्ष करते हैं। संघर्ष को टालने के लिए सवर्ण जातियों के लोग उन्हें उनकी बस्ती में ही 'नया राम मन्दिर' बनाने का प्रस्ताव रखते हैं, परन्तु आम्बेडकर इस प्रस्ताव को सिरे से नकारते हुए कहते हैं- जो हिन्दू समाज हमें अधिकारपूर्वक अपना अभिन्न अंग मानता है, उसी अधिकार के नाते हमें भी उसी राम की पूजा करने का अधिकार चाहिए, जिसकी पूजा सवर्ण समाज करता है। 'मई, 1930 में उन्होंने नासिक के कला राम मंदिर में अछूत प्रवेश का आन्दोलन खड़ा किया। 15,000 पुरुष और 500 महिला सत्याग्रहियों ने इस आन्दोलन में हिस्सा लिया। डॉ० अम्बेदकर ने स्वयं इस सत्याग्रह की अगुआई की।'[5] आम्बेडकर काला राम मन्दिर में राम के दर्शन को सामाजिक दृष्टि से समानता, समरसता के लिये प्रतीक बनाते हैं।

अब भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी अयोध्या में राम मन्दिर की प्राण प्रतिष्ठा के लिए अपने अनुष्ठान का प्रारम्भ नासिक के इसी कालाराम मन्दिर दर्शन से करते हैं। अर्थात् सामाजिक विषमता को समाप्त करने की आम्बेडकर की यह यात्रा नासिक से अयोध्या को अपना साक्षी बनाती है। क्योंकि एक समय आम्बेडकर को इसी मन्दिर में दर्शन पूजा प्रवेश के लिए आन्दोलन करना पड़ा और अब अयोध्या में जिस राम जन्मभूमि पर मन्दिर की प्राण प्रतिष्ठा हुई है, उस मन्दिर का शिलान्यास ही अनुसूचित जाति के श्री कामेश्वर चौपाल जी के कर कमलों से होता है।

इसी प्रकार जब भारत के संविधान के प्रारूप को बनाने की चर्चा चली तो जिस कांग्रेस पार्टी ने आम्बेडकर को संविधान सभा के लिए निर्वाचित नहीं होने दिया था। तब वे बंगाल के जोगेंद्रनाथ मण्डल के सहयोग से संविधान सभा में चुनकर आते हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि देश के लिए, देशहित में कांग्रेस से कटुता भुलाकर कांग्रेस के मंत्रिमंडल में कानून मन्त्री का दायित्व ग्रहण करते हैं अर्थात् राम का जीवन भी सभी को जोड़कर चलने का जो संदेश देता है, आम्बेडकर उसी का अनुसरण करते हुए दिखते हैं।

इतना ही नहीं, संविधान के लिखित स्वरूप को भारत की संस्कृति और भावना से भरने की बात आती है तो उसमें भारत की सांस्कृतिक जीवन मूल्यों के प्रतीक चित्रों को समावेशित करने का विचार होता है तो उसमें प्रभु राम के लंका विजय के पश्चात् लक्ष्मण, और माता सीता के साथ अयोध्या आगमन का चित्र स्थापित करना अपने आप में ही संविधान निर्माताओं के मन में राम के प्रति गहरी आस्था व्यक्त करता हुआ दिखता है।

विचारणीय तो यह है कि संविधान के रचनाकारों को भी 'श्रीराम' प्रासंगिक लगते हैं, उसी राम को अपनी जन्मभूमि पर मन्दिर में पुनः प्राण प्रतिष्ठित होने में संविधान लागू होने के बाद भी 75 वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

राम के अस्तित्व को नकारने से लेकर राम को स्वीकारने की यात्रा का यह कालखण्ड भी अनेक प्रकार के तर्कों, कुतर्कों का साक्षी बन गया। वास्तव में कलियुगाब्द 5125, विक्रमी 2080, पौष शुक्ल द्वादशी, ईसाई दिनांक 22 जनवरी, 2024 'भारत के संविधान की भावना के प्राण प्रतिष्ठा का भी दिन' बन गया, जिसमें श्रीराम विद्यमान हैं। आम्बेडकर के नेतृत्व वाली प्रारूपकार समिति इन चित्रों का समावेश इस लिए करती है, क्योंकि वह भारत की राजनैतिक स्वतंत्रता के साथ साथ सामाजिक स्वतंत्रता को भी महत्वपूर्ण मानते हैं।

श्रीराम भारत की संप्रभुता के प्रतीक हैं। समानता, स्वतंत्रता और बंधुता से युक्त समाज की कल्पना रामराज्य का ही प्रतिमान है। राम की यात्रा विद्यार्थी जीवन में निषादराज गुह के साथ प्रारंभ होती है, शबरी के जूठे बेर खाकर सामाजिक समानता और बन्धुता का सन्देश देते हुए, सुग्रीव की सहायता कर स्वतंत्रता का महत्व स्थापित करते हुए आगे बढ़ती है। जंगल, बीहड़, में निवास करने वाले समाज का संगठन कर रावण जैसे समाजघातक दुष्टों का दमन करती है।

भारत के संविधान की मूल प्रति में अंकित रामायण से संबंधित चित्र

भारतीय संविधान की आत्मा में इन तत्वों का समावेश प्राण प्रतिष्ठा की वेला पर भी स्मरणीय, अनुकरणीय है। 'राम सभी के हैं, सब में राम हैं' यह वाक्य ही बाबासाहब आम्बेडकर के जीवन का अभीष्ट भी था। राम मन्दिर की प्राण प्रतिष्ठा समारोह भारत की सभी जाति, बरादरियों, मत, पन्थ, सम्प्रदायों की उपस्थिति में होना बाबासाहब की आत्मा को भी आह्लादित कर रहा होगा। नासिक के कालाराम मन्दिर से प्रारम्भ हुआ उनका सामाजिक आन्दोलन अयोध्या से होता हुआ एक रस, समरस समाज के निर्माण की ओर बढ़ रहा है।

निष्कर्ष: सामाजिक लोकतंत्र की वकालत करते हुए संविधान सभा के अन्तिम भाषण (26 नवम्बर 1949) में बाबासाहब आम्बेडकर कहते हैं, "हम लोगों को राजनीतिक लोकतन्त्र के साथ सामाजिक लोकतन्त्र को भी प्रस्थापित करना चाहिए। सामाजिक लोकतन्त्र की नींव के बिना राजनीतिक लोकतन्त्र टिक नहीं सकेगा, सामाजिक लोकतन्त्र का अर्थ है- समानता, स्वतंत्रता और बन्धुतायुक्त जीवन पद्धति।" और आज भारत अपने संविधान की इसी मूल भावना अनुसार प्रगति पथ पर बढ़े, यही बाबासाहब आम्बेडकर चाहते थे, यही श्रीराम मन्दिर के प्राण प्रतिष्ठा का सन्देश भी है।

1 कुमार, नचिकेता, सामाजिक क्रांति के महानायक, (किशोर मकवाणा द्वारा संपादित किताब डॉ. आंबेडकररू जीवन दर्शन से), प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020
2 सिंह, मोहन, डॉ. भीमराव अम्बेदकर: व्यक्तित्व के कुछ पहलू, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006, पृष्ठ-3
3 किशोर, पंकज, भारत रत्न डॉ. भीमराव आंबेडकर, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-11
4 जाधव, नरेंद्र, डॉ. आंबेडकर: आत्मकथा और जनसंवाद, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ-14
5 सिंह, मोहन, डॉ. भीमराव अम्बेदकर: व्यक्तित्व के कुछ पहलू, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006, पृष्ठ-11
6 सारस्वत, स्वामी चौतन्यानंद, ह्यमून वैल्यूज इन राम राज्य विजन एंड दि कॉन्स्टिच्यूशन ऑफ भारत: ऐन इम्फैटिकल व्यूपॉइंट, 2024

सेवानिवृत्ति और संस्कृति- एक अध्ययन

डॉ० रश्मि दत्त

सहायक प्राध्यापक, मनोविज्ञान विभाग, ललित नारायण जनता, महाविद्यालय, झंझारपुर, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारांश

राष्ट्र ऐतिहासिक रूप से निर्मित लोगों का एक समुदाय है। एक राष्ट्र की पहचान सर्वप्रथम वहाँ के लोगों की सामान्य भौतिक परिस्थितियों, जैसे-सीमाएँ, आर्थिक जीवन, उस समुदाय की भाषा, मनोवैज्ञानिकता और कुछ राष्ट्रीय चरित्र व प्रवृत्तियों जो उनकी राष्ट्रीय सांस्कृतिक विशेषता के रूप में अभिव्यक्त होती हैं, राष्ट्रवाद कहते हैं। राष्ट्र किसी मानव समुदाय का सबसे विशाल रूप है जो पूँजीवादी संरचना के साथ ही साथ दिखाई देता है। एक देश में सामन्ती विभाजन की समाप्ति, एक अंचल में आर्थिक सम्बन्धों का सुदृढ़ीकरण और स्थानीय बाजारों का एक राष्ट्रीय बाजार में विलय, एक राष्ट्र के घनीभूत होने के आर्थिक आधार के रूप में काम करता है।

कुट शब्दः- ऐतिहासिक, मनोविज्ञान, सांस्कृतिक, पूँजीवाद, राष्ट्र।

परिचय

इस अवधि में बुर्जुआ ही राष्ट्रों की नेतृत्वकारी शक्ति होता है और उस राष्ट्र के सामाजिकराजनीतिक और धार्मिक पहलुओं पर अपनी निश्चित छाप छोड़ जाता है। जैसे-जैसे बुर्जुआ राष्ट्र का विकास होता है, उनके बीच में सामाजिक मतभेद तीक्ष्ण होते जाते हैं और वों के बीच मतभेद स्पष्ट हो जाते हैं।

बुर्जुआ इन मतभेदों अन्तर्विरोधों को छुपाने और राष्ट्रों के बीच अन्तर्विरोधों को बढ़ाने का प्रयास करता है। बुर्जुआ वर्ग राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय स्वार्थपरता की वकालत करता है। राष्ट्रों के बीच मनमुटाव और नफरत, राष्ट्रों के बीच झगड़े, पूँजीवाद का अपरिहार्य परिणाम है।बर्जआ राष्ट्रवाद के मुकाबले सर्वहारा वर्ग, सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रवाद की नीति और सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। पूँजीवाद की समाप्ति के साथ-साथ राष्ट्रवाद की अवधारणा में रेडिकल परिवर्तन होता है।पुराने बुर्जुआ राष्ट्र, मजदूर वर्ग और मेहनतकश किसानों के साथ संशय कायम कर नये वर्ग आधार पर नये सोशलिस्ट राष्ट्रों में रूपान्तरित हो जाते हैं।

राष्ट्र, राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रवाद जैसे शब्दों की कोई मानक परिभाषा प्रस्तुत करने में यह कठिनाई है कि या तो उनका प्रयोग पर्याय के रूप में या फिर विविध प्रसंगों में विभिन्न रूपों में किया जाता है।परन्तु सभी प्रकार की विभिन्नताओं के बावजूद, कुछ गहरी मनोवैज्ञानिक और संवेगात्मक धारणाओं के पुंज अर्थात् एक जीवित रखने वाली सामान्य राजनीतिक चेतना के घटक को ही मौलिक महत्त्व प्रदान किया जाता है। अधिकांश स्थितियों में, राष्ट्रवाद को मातृभूमि से प्रेम अथवा देशभक्ति का समरूपी माना जाता है। राष्ट्र एकता व एकत्व के प्रबल बन्धन से बँधे लोगों का समूह है। जो प्रभुसत्ता सम्पन्न हो अथवा जो विदेशी जुए से मुक्ति पाने के लक्ष्य के लिए संघर्ष कर रहा हो। यही कारण है कि विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने के लिए पराधीन लोगों का संघर्ष उनके राष्ट्रीय आन्दोलन (national movement) का इतिहास बन जाता है।

स्वदेशी मनोविज्ञान किम और बेरी (1993) द्वारा परिभाषित किया गया है "मानव व्यवहार या मन का वैज्ञानिक अध्ययन जो मूल है, कि अन्य क्षेत्रों से नहीं ले जाया जाता है, और वह अपने लोगों के लिए डिजाइन किया गया है।" स्वदेशी मनोविज्ञान आम तौर पर ज्ञान, कौशल और विश्वास की जांच करता है, लोग अपने बारे में और उनके प्राकृतिक संदर्भो में अध्ययन करते हैं। मनोवैज्ञानिक घटनाओं के अनुरूप सिद्धांत, और आदेश को विकसित किया जाता है। स्वदेशी मनोविज्ञान स्पष्ट रूप से सामग्री और अनुसंधान के संदर्भ दोनों को शामिल करने की वकालत करता है। स्वदेशी मनोविज्ञान आवश्यक माना जाता है क्योंकि मौजूदा मनोवैज्ञानिक सिद्धांत अनिवार्य रूप से सार्वभौमिक नहीं हैं, और अक्सर यूरोप और उत्तरी अमेरिका के मनोविज्ञान और सांस्कृतिक परंपराओं का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं। स्वदेशी मनोविज्ञान यह जानना चाहता है कि सांस्कृतिक विचारों, सिद्धांतों, मान्यताओं और वर्गीकरण के साथ-साथ अतिसामाजिक संस्थाओं ने प्रत्येक संबंधित संस्कृति (2007) में मनोवैज्ञानिक विषयों को कैसे प्रभावित किया है।

भारत में राष्ट्रवादी विचारधारा का अंकुर सत्रहवीं शताब्दी के मध्य से उगने लगा था किन्तु यह धीरे-धीरे विकसित होता रहा अन्त मे 1857 ई० में पूर्ण हो गया। अत: भारतीय राष्ट्रीय जाग ति का काल उन्नीसवीं शताब्दी का मध्य मानना उचित ही होगा। भारत में राष्ट्रवाद के जन्म के कारण जो राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ हुआ वह विश्व में अपने आप में एक अनूठा आन्दोलन था भारत में राजनीतिक जाग ति के साथ-साथ सामाजिक तथा धार्मिक जाग ति का भी सूत्रपात हुआ। वास्तव मे सामाजिक तथा धार्मिक जाग ति के परिणामस्वरूप राजनितिक जाग ति का उदय हुआ। डॉ० जकारिया का मत है कि "भारत का पुनर्जागरण मुख्यत: आध्यात्मिक था। इसने राष्ट्र के राजनीतिक उद्धार के आन्दोलन का रूप धारण करने से बहुत पहले अनेक धार्मिक और सामाजिक सुधारों का सूत्रपात किया।" इस रूप मे भारतीय राष्ट्रीय जाग ति यूरोपीय देशों में हुई राष्ट्रीय जाग ति से भिन्न है। भारत मे राष्ट्रवादी विचारों के उदय और विनाश के लिए निम्नलिखित कारण माने जाते है:-

समाजिक तथा धार्मिक आन्दोलन

भारत मे राष्ट्रीय जाग ति पैदा करने मे 19 वीं शताब्दी में हुए सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलनों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। देश की सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियाँ दिन-प्रतिदिन बिगड़ती ही जा रही थी और धर्म के नाम पर समाज मे अन्धविश्वास और कुप्रथाएँ पैदा हो गई थी। इन आन्दोलनों ने एक और धर्म तथा समाज में व्याप्त बुराईयों को दूर करने का प्रयास किया तो दूसरी ओर भारत में राष्ट्रीयता की भाव भूमि तैयार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस प्रकार के आन्दोलनों मे ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामक ष्ण मिशन एवं थियोसोफिकल सोसायटी आदि विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं, जिसके प्रवर्तक क्रमश: राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, एवं श्रीमती एनी बेसेन्ट आदि थे। इन सुधारकों ने भारतीयों में आत्मविश्वास जागृत किया तथा उन्हें भारतीय संस्कृति की गौरव गरिमा का ज्ञान कराया, उन्हें अपनी संस्क ति की श्रेष्ठता के बारे में पता चला।

इन महान व्यक्तियों में राजा राम मोहन राय को भारतीय राष्ट्रीयता का अग्रदूत कहा जा सकता है। उन्होंने समाज तथा धर्म मे व्याप्त बुराईयों को दूर करने हेतु अगस्त 1828 ई० मे ब्रह्म समाज की स्थापना की। राजा राम मोहन राय ने सती प्रथा, छुआ-छूत जाति मे भेदभाव एवं मूर्ति पूजा आदि बुराईयों को दूर करने का प्रयास किया। उनके प्रयासो के कारण आधुनिक भारत का निर्माण सम्भव हो सका। इसलिए उन्हें आधुनिक भारत का निर्माता कहा जाता है। डा० आर० सी० मजुमदार ने लिखा है कि राजा राम मोहन राय को बेकन तथा मार्टिन लुकर जैसे प्रसिद्ध सुधारकों की श्रेणी में गिना जा सकता है। ए०सी० सरकार तथा के०के० दत्त का मानना है कि राजा राम मोहन राय के आधुनिक भारतवर्ष में राजनीति जाग ति एवं धर्म सुधार का आध्यात्मिक युग प्रारम्भ किया वे एक युग प्रवर्तक थे। इसलिए डा० जकारिया ने उन्हें सुधारकों का आध्यात्मिक पिता कहा है। बहुत से विद्वान उन्हें आधुनिक 'भारत का पिता' तथा 'नये युग का अग्रदूत' मानते हैं। राजा राममोहन राय ने भारतीयों के लिए राजनीतिक अधिकारों की माँग की। 1823 ई० में प्रेस आर्डिनेन्स के द्वारा समाचार पत्रों पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। इस पर राजा राम मोहन राय ने इस आर्डिनेन्स का प्रबल विरोध किया और उसे रद्द करवाने का हर सम्भव किया इसके पश्चात् उन्होंने ज्यूरी एक्ट एक आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। डॉ० आर०सी० मजुमदार के शब्दों में "राजा राम मोहन राय" पहले भारतीय थे जिन्होंने अपने देशवासियों की कठिनाई तथा शिकायतों को ब्रिटिश सरकार के सम्मुख प्रस्तुत किया और भारतीयों को संगठित होकर राजनीतिक आन्दोलन चलाने का मार्ग दिखलाया उन्हें आधुनिक आन्दोलन का अग्रदूत होने का भी श्रेय दिया जा सकता है।"

राजा राममोहन राय के बाद स्वामी दयानन्द सरस्वती एक महान सुधारक हुए। जिन्होंने 1875 ई० में बम्बई में 'आर्य समाज' की नींव रखी। आर्य समाज एक साथ ही धार्मिकऔर राष्ट्रीय नवजागरण का आन्दोलन था इसने भारत और हिन्दू जाति को नवजीवन प्रदान किया। स्वामी दयानन्द ने न केवल हिन्दू धर्म तथा समाज में व्याप्त बुराईयों का विरोध किया अपितु अपने देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना का संचार भी किया। उन्होंने ईसाई धर्म कि कमियों पर प्रकाश डाला और हिन्दुत्त्व के महत्व का बखान कर भारतीयों का ध्यान अपनी सभ्यता व संस्कृति की ओर आकर्षित किया। उन्होंने वैदिक धर्म की श्रेष्ठता को फिर से स्थापित किया और यह बताया कि हमारी संस्कृति विश्व की प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण संस्कृति है। उनका मानना है कि वेद ज्ञान के भण्डार है और संसार मे सच्चा हिन्दू धर्म है, जिसके बल पर भारत विश्व में अपनी प्रतिष्ठा फिर से स्थापित कर गुरु बन सकता है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में निर्भीकतापूर्वक लिखा है "विदेशी राज्य चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न हो, स्वदेशी राज्य की तुलना मे कभी भी अच्छा नहीं हो सकता।" एच० बी० शारदा ने लिखा है कि "राजनीतिक

स्वतन्त्रता की प्राप्ति स्वामी दयानन्द का मुख्य उद्देश्य था। वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने 'स्वराज' शब्द का प्रयोग किया और अपने देशवासियों को विदेशी माल के प्रयोग के स्थान पर स्वदेशी माल स्वदेशी माल के प्रयोग की प्रेरणा दी। उन्होंने सबसे पहले हिन्दी में राष्ट्रीय भाषा स्वीकार किया।" श्रीमती एनी बेसेन्ट ने लिखा है "स्वामी दयानन्द सरस्वती पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने सबसे पहले यह नारा लगाया था, कि भारत भारतीयों के लिए है।" स्वामी विवेकानन्द ने यूरोप और अमेरिका में भारतीय संस्कृति का प्रचार किया। उन्होंने अंग्रेजों को यह बता दिया कि भारतीय संस्कृति पश्चिमी संस्कृति से महान् है और वे बहुत कुछ भारतीय संस्कृति से सीख सकते हैं। इस प्रकार उन्होंने भारत में सांस्कृतिक चेतना जागृत की तथा यहाँ के लोगों को सांस्कृतिक विजय प्राप्त करने की प्रेरणा दी। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भारत का स्वतन्त्र होना आवश्यक है। इस प्रकार उन्होंने भारतीयों की राजनीतिक स्वाधीनता का समर्थन किया जिससे राष्ट्रीय भावनाओं को असाधारण बल मिला। निवेदिता के अनुसार "स्वामी विवेकानन्द भारत का नाम लेकर जीते थे। वे मात भूमि के अनन्य भक्त थे और उन्होंने भारतीय युवकों को उसकी पूजा करना सिखाया।"

थियोसोफिकल सोसाइटी की नेता श्रीमती एनी बेसेन्ट ने भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। श्रीमती एनी बेसेन्ट एक विदेशी महिला थीं, जब उसके मुँह से भारतीयों ने हिन्दू धर्म की प्रशंसा सुनी तो वे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। जब उन्हें अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता का ज्ञान हुआ तो उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध स्वाधीनता की प्राप्ति हेतु आन्दोलन आरम्भ कर दिया।

सारांश यह है कि 19 वीं शताब्दी के सुधारकों ने भारतीय जनता में राष्ट्रीय जाग ति उत्पन्न की। उन्होंने ऐसा वातावरण तैयार किया जिसके कारण भारत स्वतन्त्रता के लक्ष्य को प्राप्त कर सका। ए.आर. देसाई ने इस सम्बन्ध मे लिखा है कि "ये आन्दोलन कम अधिक मात्रा मे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और सामाजिक समानता के लिए संघर्ष थे और उनका चरम लक्ष्य राष्ट्रवाद था।"

भारत की राजनीतिक एकता

1707 ई० के बाद भारत में राजनीतिक एकता का लोप हो चुका था किन्तु अंग्रेजों के समय लगभग सम्पूर्ण भारत का प्रशासन एक केन्द्रीय सत्ता के अधीन आ गया था। समस्त साम्राज्य में एक जैसे कानून एवं नियम लागू किए गए। समस्त भारत पर ब्रिटिश सरकार का शासन होने से भारत एकता के सूत्र मे बँध गया। इस प्रकार देश में राजनीतिक एकता स्थापित हुई। यातायात के साधनों तथा अंग्रेजी शिक्षा ने इस एकता की नींव को और अधिक ठोस बना दिया जिससे राष्ट्रीय आन्दोलन को बल मिला। इस प्रकार राजनीतिक दृष्टि से भारत का एक रूप हो गया। डॉ० के०वी० पुन्निया के शब्दों में "हिमालय से कन्याकुमारी तक सम्पूर्ण भारत एक सरकार के अधीन था और इसने जनता में राजनीतिक एकता को जन्म दिया।"

ऐतिहासिक अनुसंधान

विदेशी विद्वानों की खोजों ने भी भारतीयों की राष्ट्रीय भावनाओं को बल प्रदान किया। सर विलियम जेम्स, मैक्समूलर, जैकोवी कोल ब्रुक, ए०वी० कीथ, बुनर्फ आदि विदेशी विद्वानों ने भारत की संस्कृत भाषा में लिपिबद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थों का अध्ययन किया और उनका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया। अंग्रेजों द्वारा संस्कृत साहित्य को प्रोत्साहन देने से संस्कृत भाषा का पुनरुद्धार हुआ। इसके अतिरिक्त, पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय ग्रन्थों का अनुवाद करने के पाश्चात् यह बताया कि ये ग्रन्थ संसार की सभ्यता की अमुल्य निधियाँ हैं। पश्चिमी विद्वानों ने प्राचीन भातीय कलाक तियों की खोज करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया है कि भारत की सभ्यता और संस्कृति विश्व की प्राचीन और श्रेष्ठ संस्कृति है। इससे विश्व के सम्मुख प्राचीन भारतीय गौरव उपस्थित हुआ। जब भारतीयों को यह पता चला कि पश्चिम के विद्वान भारती4य संस्कृति को इतना श्रेष्ठ बताते हैं, तो उनके मन में आत्महीनता के स्थान पर आत्मविश्वास की भावनाएँ जागृत हुई। और उन्होंने उसकी श्रेष्ठता स्थापित करने का प्रयत्न किया। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा स्वामी विवेकानन्द ने भी भारतीयों को उनकी संस्कृति की महानता के ज्ञान से अवगत कराया।

इन अनुसंधानों ने भारतीयों के मन में एक नया ज्ञान और उत्साह जागृत किया। इससे उनके मन मे यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि फिर हम पराधीन क्यों हैं? डा० आर०सी० मजूमदार के कथनानुसार "यह खोज भारतीयों के मन में चेतना उत्पन्न करने मे असफल नहीं हो सकती थी, जिसके परिणामस्वरूप उसके हृदय राष्ट्रीयता की भावना व देश भक्ति से भर गए।" श्री के०

एम० पाणिक्कर लिखते है कि इन ऐतिहासिक अनुसंधान ने भारतीयों में आत्मविश्वास जागृत किया और उन्हें अपनी सभ्यता और संस्कृति पर गर्व करना सिखलाया। इन खोजों से अपने भविष्य के सम्बन्ध मे भारतीय आशावादी बन गए।

पश्चिमी शिक्षा का प्रभाव

भारतीय राष्ट्रीयधारा में पश्चिमी शिक्षा ने सराहनीय योगदान दिया। 1825 ई० में लार्ड मैकाले के सुझाव पर भारत मे शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा को निश्चित किया। इसका मुख्य उद्देश्य भारत की राष्ट्रीय चेतना को जड़ से नष्ट करना था। रजनी पाम दत्त ने सही लिखा है, "भारत में ब्रिटिश शासन द्वारा पाश्चात्य शिक्षा प्रारम्भ किए जाने का उद्देश्य यह था कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति का पूर्णरूप से लोप हो जाए और एक ऐसे वर्ग का निर्माण हो जो रक्त और वर्ण से तो भारतीय हों, किन्तु रुचि विचार शब्द और बुद्धि से अंग्रेज हो जाए।" इस उद्देश्य में अंग्रेजों को काफी सीमा तक सफलता भी प्राप्त हुई, क्योकि शिक्षित भारतीय लोग अपनी संस्कृति को भुलकर पाश्चात्य संस्कृति का गुणगान करने लगे। परन्तु पाश्चात्य शिक्षा से भारत को हानि की अपेक्षा लाभ अधिक हुआ। इससे भारत में राष्ट्रीय चेतना जागृत हुई अत: दृष्टि से पाश्चात्य शिक्षा भारत के लिए एक वरदान सिद्ध हुई। अंग्रेजी भाषा के ज्ञान के कारण भारतीय विद्वानों ने पश्चिमी देशों के साहित्य का अध्ययन किया। जब उन्होंने मिल्टन, बर्क, हरबर्ट, स्पेन्सर, जॉन स्टुअर्ड मिल आदि विचारकों की कृतियों का ज्ञान प्राप्त हुआ, तो उनमे स्वतन्त्रता की भावना जागृत हुई। भारतीयों पर पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव का वर्णन करते हुए ए.आर. देसाई लिखते हैं कि "शिक्षित भारतीयों ने अमेरिका, इटली और आयरलैण्ड के स्वतन्त्रता संग्रामों के सम्बन्ध में पढ़ा। उन्होंने ऐसे लेखकों की रचनाओं का अनुशीलन किया, जिन्होंने व्यक्तिगत और राष्ट्रीय स्वाधीनता के सिद्धान्तों का प्रचार किया है। ये शिक्षित भारतीय भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के राजनीतिक और बौद्धिक नेता हो गए।" इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि राजा राम मोहन राय, दादा भाई नौरोजी, फिरोज शाह मेहता, गोपाल कृष्ण गोखले, वोमेश चन्द्र बेनर्जी आदि नेता अंग्रेजी शिक्षा की ही देन हैं। अंग्रेजी शिक्षा के कारण भारतीय नेताओं के दृष्टिकोण का विकास हुआ। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए अनेक भारतीय इग्लैण्ड गए और वहाँ के स्वतन्त्र वातावरण से बहुत प्रभावित हुए। भारत आने के पश्चात् उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रोत्साहन दिया। क्योंकि वे यूरोपीय देशों की भाँति अपने देश में भी स्वतन्त्रता चाहते थे। श्री गुरमुख निहालसिंह लिखते है कि "इग्लैण्ड में रहने से उन्हें स्वतन्त्र राजनीतिक संस्थाओं की कार्यविधि का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त हो जाता था, वे स्वतन्त्रता और स्वाधीनता का मूल्य समझ जाते थे तथा उनके मन मे जमी हुई दासता की मनोवृत्ति घर कर जाती थी।"

अंग्रेजी भाषा लागू होने से पूर्व भारत के विभिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोली जाती थी। इसलिए वे एक-दूसरे के विचारों को नहीं समझ सकते थे। सम्पूर्ण भारत के लिए एक सम्पर्क भाषा की आवश्यकता थी, जिसे अंग्रेज सरकार ने अंग्रेजी भाषा लागूकर पूरा कर दिया। अब विभिन्न प्रान्तों के निवासी आपस में विचार विनियम करने लगे और इसने उन्हें राष्ट्र के लिए मिलकर कार्य करने की प्रेरणा दी। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन को बल मिला। सर हेनरी काटन के अनुसार "अंग्रेजी माध्यम से और पाश्चात्य सभ्यता के ढंग पर शिक्षा ने ही भारतीय लोगों की विभिन्नताओं के होते हुए भी एकता के सूत्र में आबद्ध करने का कार्य किया। एकता पैदा करनेवाला अन्य कोई तत्त्व सम्भव नहीं था, क्योंकि बोली का भ्रम एक अविछिन्न बाधा थी। श्री के.एम. पणिक्कर लिखते हैं, "सारे देश की शिक्षा पद्धति और शिक्षा का माध्यम एक होने से भारतीयों की मनोदशा पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उनके विचारों, भावनाओं और अनुभूतियों की एक रसता होनी कठिन न रही। परिणामस्वरूप भारतीय राष्ट्रीयता की भावना दिन प्रतिदिन प्रबल होती गई।"

सारांश यह है कि पाश्चात्य शिक्षा भारत के लिए वरदान सिद्ध हुई। डॉ० जकारिया ने ठीक ही लिखा है, "अंग्रेजों ने 125 वर्ष पूर्व भारत में शिक्षा का जो कार्य आरम्भ किया था, उससे अधिक हितकर और कोई कार्य उन्होंने भारतवर्ष में नहीं किया है।" इसलिए प्राय: यह कहा जाता है कि भारतीय राष्ट्रीयता की भावना पश्चिमी शिक्षा का पोषण शिशु था।

इस प्रकार पश्चिमी शिक्षा ने भारतीय राष्ट्रीय चेतना में नवजीवन का संचार किया। लार्ड मैकाले ने 1833 ई० में कहा, "अंग्रेजी इतिहास मे वह गर्व का दिन हागा जब पाश्चात्य ज्ञान से शिक्षित भारतीय पाश्चात्य संस्थाओं की माँग करेंगे।" उसका यह स्वप्न इतनी जल्दी साकार हो जाएगा इसकी कल्पना भी उसने कभी न की थी।

भारतीय समाचार पत्र तथा साहित्य

मुनरो ने लिखा है, "एक स्वतन्त्र प्रेस और विदेशी राज एक दूसरे के विरुद्ध हैं और ये दोनों एक साथ नहीं चल सकते।" भारतीय समाचार पत्रों पर यह बात खरी उतरती है। राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति तथा विकास में भारतीय साहित्य तथा समाचार

पत्रों का भी काफी हाथ था। इनके माध्यम से राष्ट्रवादी तत्त्वों को सत्त प्रेरणा और प्रोत्साहन मिलता रहा। उन दिनों भारत में विभिन्न भाषाओं में समाचार पत्र प्रकाशित होते थे, जिनमें राजनीतिक अधिकारों की माँग की जाती थी। इसके अतिरिक्त उनमें ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीति की भी कड़ी आलोचना की जाती थी। उस समय प्रसिद्ध समाचार पत्रों में संवाद कौमुदी, बाम्बे समाचार (1882), बंगदुत (1831), गस्तगुफ्तार (1851), अम तबजार पत्रिका (1868), ट्रिब्यून (1877), इण्डियन मिरर, हिन्दू, पौट्रियाट, बंगलौर, सोमप्रकाश, कामरेड, न्यु इण्डियन केसरी, आर्य दर्शन एवं बन्धवा आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। फिलिप्स के अनुसार, "1871 ई० मे देशी भाषा में बम्बई प्रेसीडेन्सी और उत्तर भारत मे 62 तथा बंगाल और दक्षिण भारत में क्रमशः 28 और 20 समाचार पत्र प्रकाशित होते थे, जिनके नियमित पाठकों की संख्या एक लाख थी।" 1877 ई० तक देश में प्रकाशित होनेवाले समाचार पत्रों की संख्या 644 तक जा पहुंची थी, जिनमें अधिकतर देशी भाषाओं के थे। इन समाचार पत्रों में ब्रिटिश सरकार की अन्याय पूर्ण नीति की कड़ी आलोचना की जाती थी, ताकि जन साधारण में ब्रिटिश शासन के प्रति घणा एवं असन्तोष की भावना उत्पन्न हो। इससे राष्ट्रीय आन्दोलन को बल मिलता था। इन पत्रों के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए ब्रिटिश सरकार ने 1878 ई० में 'वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट' पास किया, जिसके द्वारा भारतीय समाचार पत्रों को बिल्कुल नष्ट कर दिया गया। इस एक्ट ने भी राष्ट्रीय आन्दोलन की।

भारतीय साहित्यकारों ने भी देश की भावना को जागृत करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। श्री बंकिमचन्द्र चटर्जी ने 'वन्देमातरम' के रूप मे देशवासियों को राष्ट्रीय गान दिया। इनसे भारतीयों में देश-प्रेम की भावना जागृत हुई। मराठी साहित्य में शिवाजी का मुगलों के विरुद्ध संघर्ष विदेशी सत्ता के विरुद्ध संघर्ष बताया गया। श्री हेमचन्द्र बैनर्जी ने अपने राष्ट्रीय गीतों द्वारा स्वाधीनता की भावना को प्रोत्साहन दिया। श्री बिपिन चन्द्र पाल लिखते है, "राष्ट्रीय प्रेम तथा जातीय स्वाभिमान को जागृत करने में श्री हेमचन्द्र द्वारा रचित कविताएँ अन्य कवियों की ऐसी कविताओं में कहीं अधिक प्रभावोत्पादक थी।" इसी प्रकार केशव चन्द्र सेन, रविन्द्र नाथ टैगोर, आर० सी दत्त, रानाडे, दादा भाई नौरोजी आदि ने अपने विद्वतापूर्ण साहित्य के माध्यम से भारत में राष्ट्रीय भावना को जागृत किया। इन्द्र विद्या वाचस्पति के अनुसार, "इसी समय माइकेल मधुसुदन दत्त ने बंगाल में, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी में, नर्मद ने गुजराती में, चिजलुणकर ने मराठी में, भारती ने तमिल में तथा अन्य अनेक साहित्यकारों ने विभिन्न भाषाओं में राष्ट्रीयता की भावना से परिपूर्ण उत्कृष्ट साहित्य का सज न किया। इन साहित्यिक कृतियों ने भारतवासियों के हृदयों में सुधार एवं जाग ति की अपूर्व उमंग उत्पन्न कर दी।"

राष्ट्रवाद के जन्म के लिए कारणों का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में इसका जन्म ब्रिटिश सरकार की नीतियों के परिणामस्वरूप हुआ। भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के दो विरोधी दृष्टिकोण सामने आते हैं. विकासवादी और प्रतिक्रियावादी। लेकिन इन दोनों ही स्वरूपों ने राष्ट्रवाद के जन्म में सहायता प्रदान की। जैसा कि उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है ब्रिटिश शासन में ही भारत में राजनीतिक एकता स्थापित हुई, पाश्चात्य शिक्षा का प्रसार हुआ और यातायात के साधनों का विकास हुआ। इनसे यदि एक ओर ब्रिटिश शासन को लाभ हुआ तो दूसरी ओर अप्रत्यक्षरूप से राष्ट्रवाद के जन्म में भी योगदान मिला।

ब्रिटिश शासन के विकासशील स्वरूप ने यदि राष्ट्रवाद के जन्म के लिए अप्रत्यक्षरूप से योगदान किया तो उसके प्रतिक्रियावादी स्वरूप ने इस प्रक्रिया को तेज किया। ब्रिटिश शासन द्वारा भारत का आर्थिक शोषण, भारतीयों के साथ भेद-भाव, उन्हें सरकारी नौकरियों में स्थान न मिलना, प्रेस का गला घोटना, हथियार रखने या लेकर चलने पर रोक लगाना। साम्राज्यवाद के विस्तार के लिए युद्ध लड़ना जैसे कामों ने यह स्पष्ट कर दिया कि ब्रिटिश शासन भारत के हित में नहीं है। अधिकांश राष्ट्रीय नेताओं का मत था कि भारत की आर्थिक दुर्दशा का मूल कारण भारत में अंग्रेजी शासन है।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भयंकर स्फोट हुआ है। उसका प्रभाव काफी व्यापक स्तर पर अन्य देशों के समान भारतीय जन-जीवन पर भी पडा है। भारतीय लोक जोवन टूटने एवं बिखरने लगा। नई पोटो के सम्मुख निराशा, कुण्ठा, दृष्टिहीनता, लक्ष्यहीनता, शून्यता, संत्रस्तता, परसुखापेक्षिता, आत्महीनता आदि का वातावरण पैदा हो गया। मनुष्य का आचरण कृत्रिम, सतही तथा दमित-सा बन गया। नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ। फ्रायड, सात्र, मार्क्स आदि के कान्तिकारी विचारों से समाज के साथ साहित्य भी प्रभावित हुआ। कथा-साहित्य घटनात्मकता और बिम्बात्मकता छोडकर चरित्र प्रधान बन गया। साहित्य और मनोविज्ञान का गठ-बन्धन अति स्वाभाविक था। व्यक्तिवादी जोवन-दर्शन का सूक्ष्म चित्रण और हासोन्मुख मध्यवर्गीय समाज की गट जानकारी इस परिस्थिति की उपज मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मिलती है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास अपनी विषयगत तथा शैलीगत विशेषताओं के कारण नवीन परिस्थिति तथा जीवन चेतना की अभिव्यक्ति देने का सशक्त माध्यम बन गया है। मानव की आन्तरिक गहराई तथा विचित्रता, असामान्य मनःस्थितियों में द्रष्टव्य

होती है। इसलिए मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में असामान्य मनवाले पात्रों को प्रधानता रहती है। उपन्यासकार अपने पात्रों में रमकर उन्हें अध्ययन, अनुभव और कल्पना भी साकार रूप में प्रस्तुत करते हैं। इसी कारण यह मात्र रसात्मक नहीं है। "अन्तश्चेतनावादी उपन्यासकार ने युग परिस्थितियों के प्रभाववश साहित्य की परिभाषा ही बदल दी। वह साहित्य की रसात्मक वस्तु न मानकर उसे केवल वैयक्तिक और अन्तर्मखी पदार्थ मानता है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास मानव आचरण और प्रेरक मन के पारस्परिक संबन्ध का विश्लेषण करता है। मानव क्रियाएँ क्यों और कैसे है, इसका उल्लेख मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में है। मानव-मनोभूमि का प्रत्यक्षीकरण मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। "पात्रों की मानप्तिक धारा का उद्घाटन, उसकी अन्तर्धाराओं में एकान्विती की खोज और स्फुट घटनाओं से पात्रमानस को संगति बिठाना - उपन्यास की कथा है। मानसिक तन्तुओं का पात्रों के कथनों के आधार पर व्यक्तिकरण संवाद है। पात्रों को मनोभूमि का उद्घाटन और उनकी साधारण-सी क्रियाओं के मूल में भी अन्तर्निहित गहन मानसिक प्रक्रिया को पहचान, उन्हें प्रकाशित करना और बोधगम्य बनाना मनोवैज्ञानिक उपन्यास का उद्देश्य है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:-

1. बिपनचन्द्र "आधुनिक भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद 2005।
2. शेखर बंदोप्पाध्याय "फरोम प्लासी टू पारटीशन: ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इन्डिया, नयी दिल्ली, ओरिन्ट ब्लैकसवन प्राईवेट लिमिटेड, 2004।
3. नदीम हसनेन, "समकालीन भारतीय समाज एक समाजशास्त्रीय परिदृष्य," भारत बुक सेन्टर, लखनऊ 2004।
4. वी.पी.वर्मा, "आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन," लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा-3।
5. इंडियन जनरल ऑफ सोसाइटी ऑफ पोलिटिक्स वोल्यम-3।
6. जनरल "इडियन पोलटिकल सांइस ऐसिशेषन।
7. इकबाल नारायण राजनीति शास्त्र के मूल सिद्वान्त, रतन प्रकाशन मन्दिर।

दलितों की राजनीतिक चेतना और सामाजिक न्याय

शैलेन्द्र कुमार

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, बी०एन०एम०यू०, मधेपुरा

सारांश

दलितों की राजनीतिक चेतना का मूल प्रेरक दलित चेतना है। दलित लेखकों के लिए दलित चेतना जाति प्रथा अपने वजूद और आजादी की एक लंबी लड़ाई की ओर इशारा करती है। वहीं दूसरी और दलित समाज शास्त्री और राजनीतिक शास्त्री की दृष्टि से चेतना पुरातन रूप से दलितों में रही है। इतिहास गवाह है कि जाति व्यवस्था की स्थापना और उसका कायम रहना तथा कथित उच्च जातियों के लिए ही फायदेमंद रहा है। समाज में दलितों के पैरों में इतनी भारी बोझ डाल दी कि धर्म परिवर्तन के बावजूद उनकी मुक्ति का मार्ग अवरुद्ध ही रहा है। इसी तरह देश व समाज पर सतही नजर रखने वाला भी यह आसानी से समझ सकता है कि जैसे-जैसे दलित चेतना में परिवर्तन हुई वैसे ही राजनीतिक शक्ति बदलती जा रही है।

शब्द कुंजी-सामाजिक, सांस्कृतिक, विचारधारा, समावेश, उपेक्षा, कांग्रेस, जाति व्यवस्था।

दलितों की राजनीतिक चेतना का मूल प्रेरक दलित चेतना है। दलित चेतना को अंग्रेजी में दलित कोन्शसनेस कहा गया है। और आजादी की एक लंबी लड़ाई की और इशारा करती है। वहीं दूसरी और दलित समाज शास्त्री और राजनीतिक शास्त्री की दृष्टि से यह चेतना पुरातन रूप से दलितों में रही है। उदाहरण के तौर पर मध्यकालीन युग में चोखा मेला रविदास इत्यादि स्रोतों ने हमेशा ही जात-पात की नीतियों पर जमकर आक्रोश प्रकट किया है। प्रोफेसर विवेक कुमार अपनी किताब indian roaring revolution dalit assertion and new horizons. मैं लिखते हैं कि दलित राजनीतिक चेतना मूल रूप से दो प्रकार से समझा जा सकता है

1. स्वाधीन दलित पॉलीटिकल लीडरशिप।
2. अधीन दलित पॉलीटिकल लीडरशिप।

दलित स्वालंबन की लड़ाई भारतीय राज्य की स्थापना से पूर्व चली आ रही है। इसलिए इसकी यह दो मुख्य धाराएं हैं एक धारा राष्ट्र के अंतर्गत तो दूसरी धारा राष्ट्र विचारधारा को बिल्कुल भी नजर में नहीं रखती, क्योंकि इसकी नींद रात से भी पुरानी है। इस धारा का सीधा टकराव ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था को लेकर है। दूसरी विचारधारा में ब्राह्मणवादी टैक्टर का समावेशन देखा जाता है। इसलिए ब्राह्मणवादी समाज और भारतीय राष्ट्र दोनों की ही जोरदार आलोचना होती है। प्रोफेसर कांचा इलैया जैसे दलित चिंतक की किताब why i am not a hindu इस विचारधारा को अंकित करती है। प्रोफेसर विवेक कुमार आगे बताते हैं कि dependet dalit political leadership हमेशा से ही मुख धारा के राजनीतिक जीवन के अंतर्गत ही चलती आई है और हिंदू समाज के अंतर्गत ही दलित समस्या का समाधान खोजती रही है। अंबेडकर के समय से चली आ रही republican party of indian कांग्रेस के साथ गत जोड़ करके दलित मुद्दों का प्रतिनिधित्व करती रही। वहीं दूसरी ओर independent dalit political leadership 1935 के दौर से ही अपना स्वाधीन पक्ष हिंदू समाज के उपेक्षा में रखती आई। किसी इंडिपेंडेंट पॉलीटिकल लीडरशिप का एक पहलू अंबेडकर राजनीति के सेपरेट इलेक्टरेट की मांग भी कहा जा सकता है। गोपाल गुरु और भाजपा के 90 दशक के गठजोड़ में सर्वजन की राजनीति पर लिखते हैं कि किस तरह दलित राजनीति राष्ट्र विचारधारा के अंतर्गत सीमित होने पर मजबूर है। यही मजबूती मान्यवर काशीराम को भी देखनी पड़ी थी। उसे समय दलित मोर्चा अध्यक्ष महिपाल सिंह ने इस पर जोर देते हुए तंज कसते हुए कहा था कि बसपा का हाथी अब तक मनुवादियों का गणेश बन चुका है। इस पर मान्यवर काशीराम भाजपा को सीढी के सीधी के रूप में इस्तेमाल करने का एक जरिया मात्र बताते रहे थे। उनका मानना था कि जब तक भाजपा का इस्तेमाल अपने समुदाय के हितों के लिए किया जा सकता है तो वह उसे गठबंधन को अवश्य ही अपनाएंगे। यह मजबूरी स्वयं अंबेडकर ने भी महसूस की थी खासकर पूनम पेस्ट के समय जहां महात्मा गांधी अंबेडकर को यह समझा रहे थे कि दलित मुद्दा राष्ट्रीय हित में समाया हुआ है तब से आज तक यह तय नहीं हो पाया है

कि इस राष्ट्रीय हित में दलितों का हित कितना है। इसलिए निरंतर ही दलित चेतना राष्ट्रीय हित को कटघरे में बुलाती रही है। इस संदर्भ में आर्टिकल 370 को लेकर अंबेडकर के बयान को शामिल करना एक बार फिर से यह दर्शाता है कि दलित राजनीति और चेतना को किस तरह से राष्ट्रीय विचारधारा के ढांचे में तब्दील किया जा रहा है। दूसरे शब्दों में यह केवल अंबेडकर का ही राष्ट्रीयकरण नहीं है बल्कि दलित चेतना का भी राष्ट्रीयकरण है। वह चेतन जो की राष्ट्रीय विचारधारा के दोनों और समय हुई है आदि हरबर्ट मारखेज के शब्दों में कहे तो दलित चेतना एक प्रति सांस्कृतिक चेतना है और इसीलिए विद्रोही भी इस चेतना का भारतीय सामाजिक संरचना है जो न सिर्फ जाति पर आधारित है बल्कि इन जाति व्यवस्था को धार्मिक वैधता भी प्राप्त है। यहां हमें यह भी समझ लेना होगा कि हमारी जाति व्यवस्था सामाजिक दुराव के सिद्धांत पर आधारित है। प्रसिद्ध समाज शास्त्री एम एन श्रीनिवास के शब्दों में जाति भारतीय जीवन शैली का सामान मुहावरा है यह हमारे व्यक्तिगत संबंधों को ही नहीं वरन सामाजिक आर्थिक राजनीतिक एवं आध्यात्मिक संबंधों को भी प्रभावित कर करती रही है। भारत के समाज के निचले पायदान पर खड़ी जातियां आर्थिक कठिनाइयों से इतनी विचलित नहीं होती जितनी कि आरोपित नीचे की संस्कृति चेतना से और यह नीच परिणाम है कि हिंदू समाज की वर्ण व्यवस्था के प्रति धार्मिक दृष्टिकोण का जिसके चलते इस सामाजिक अन्याय को वैध मान लिया गया है।

हिंदू समाज की सताई जानकारी रखने वाले भी जानते हैं और मानते हैं कि जाति व्यवस्था के सबसे निचले पायदान पर सदियों से खरीद दलितों की मुक्ति के लिए इससे कोई जगह नहीं है और यही कारण है कि जब भी हमारे देश में किसी मुक्तिकामी विचारधारा का विकास हुआ तो उसमें दलितों की भागीदारी सबसे ज्यादा हुई। व्यावहारिक स्तर पर हिंदू धर्म की जो अवधारणा आम आदमी तक पहुंचती है वह बहुत हद तक जातीय आचार व्यवहार और संस्कार से परी सीमित हुई रहती है जिन्हें आज हम दलित के नाम से जानते हैं। यहां यह जान लेना आवश्यक है कि भारत में जी मानव समूह को वर्ण व्यवस्था में जगह प्राप्त नहीं होती थी उसे उन अधिकारों से भी वंचित रहना पड़ता था। वंसगत अछूत इसी व्यवस्था का स्वाभाविक परिणाम है। समाज में जब धर्म की सत्ता हो तो मुक्ति का मार्ग केवल मोक्ष ही हो सकता है और हिंदू समाज में मोक्ष का एकमात्र उपाय था जातीय कर्मों का निष्ठा पूर्वक पालन। जाति आधार पर वर्ण का विभाजन इसी कर्म सिद्धांत का व्यावहारिक रूप था। ब्राह्मणों के लिए जहां पठन-पाठन वेद का नियमन हुआ वहीं शुद्रो के लिए उच्च वर्णों की निस्वार्थ सेवा का। सूत्रों को सेवा भी किसी तन मन के साथ करनी थी की सेवा करते समय उन्हें किन्हीं कर्म से उनके मन में ईर्ष्याभाव का समावेशन ना हो। इस दमघोट वातावरण से निजात पाने की चाहत मन में कैसे नहीं होगी।

समाज ने दलितों के पैरों में इतनी भारी भोज डाल दी कि धर्म परिवर्तन के बावजूद उनकी मुक्ति का मार्ग अवरुद्ध ही रहा। धर्म तो बदल गया लेकिन जाती पूर्वत बनी रही। यानी धर्म परिवर्तन भी उनके लिए मृग मरीचिका ही साबित हुआ। इस तरह जाति व्यवस्था भारतीय सत्ता तंत्र की धुरी है एक ऐसी सामाजिक और राजनीतिक हकीकत है जिसे सांस्कृतिक वर्चस्व की शक्ति हासिल है। इस प्रकार देश व समाज पर सताई नजर रखने वाला भैया आसानी से समझ सकता है कि जैसे-जैसे दलित चेतना में परिवर्तन हुई वैसे ही राजनीतिक शक्ति बदलती जा रही है।

संदर्भ सूची

1. बिहार में सामाजिक परिवर्तन के कुछ आयाम, नई दिल्ली 2001
2. पिछड़ा वर्ग (पिछड़ा वर्ग संघ का प्रमुख पत्र) वर्ष 5 अंक 3 4, 18 मई 1953
3. द सर्चलाइट, 11 और 12 दिसंबर 1954, प्रदीप,13 दिसंबर 1954
4. राम चंद्रिका, ए प्लान फॉर हरिजन एंड अदर बैकवर्ड क्लासेस नई दिल्ली 1951
5. बिहार राज्य दलित वर्ग संघ का वार्षिक प्रतिवेदन, 1958 59 पटना 1959
6. श्री भगवान सिंह, गांधी और दलित भारत जागरण, वाणी प्रकाशन।
7. सुखदेव थोरात, निधि सभरवाला, दलित सशक्तिकरण सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण।
8. जीएल शर्मा, सामाजिक मुद्दे, रावत प्रकाशन।
9. जीके अग्रवाल, भारतीय समाज मुद्दे एवं समस्याएं, एसबीपीडी पब्लिशिंग हाउस।
10. डॉ एस सी सिंहल, भारत में राजनीतिक प्रक्रिया, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल।

https www.inditoday.in

पंथ निरपेक्षता की धारणा एवं गांधी और नेहरू की विरासत

डॉ० क्रान्ति प्रकाश

नोवामुण्डी कॉलेज, नोवामुण्डी

भारत ऐसा देश है जिसमे अनेक पंथों के मानने वाले, अनेक जातियों के अनेक भाषा-भाषी एवं अनेक नस्लों के लोग रहते है थे। पहले के नेता इस तथ्य से परिचित थे, इसलिए वे राष्ट्रीय शिक्षा एवं सम्यक बहुलवादी समाज की बात करते थे।

प्रारंभ में कांग्रेस की बागडोर उच्च वर्ग के ही लोगो के हाथों में थी, किंतु वे भी टकराव का मार्ग पसंद नहीं करते थे। अरविन्द, तिलक, लाजपत राय जैसे कांग्रेस के उग्रवादी नेताओं ने जनसाधारण को साथ लेने के उद्देश्य से और उनमे ब्रिटिश विरोधी भावना जागृत करने के लिए काली पूजा, गणेश उत्सव, शिव उत्सव, गौ रक्षा आदि धार्मिक उत्सवों तथा नारों का सहारा लिया, किन्तु ये नारे केवल एक ही पंथ के अनुयायियों को आकृष्ट करते थे। फलतः अन्य धार्मिक समुदायों में धार्मिक पुनर्जागरण की लहर आई।

सन 1920 के दशक में जब गांधी, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अग्रणी नेता के रूप में उभरे तब उन्होंने यह अनुभव किया कि शक्तिशाली ब्रिटिश राज के विरुद्ध वास्तविक संघर्ष छेड़ने के लिए यह आवश्य था, कि विभिन्न पंथों को मानने वाले लोगों के बीच एकता हो। 1919-22 में असहयोग एवम् खिलाफत आंन्दोलन के अवसर पर गांधीजी ने पहली बार हिन्दू और मुस्लिम सम्प्रदायों को संयुक्त करने का प्रयत्न किया, किंतु इसके बाद गांधी द्वारा स्थापित एकता संकट में पड़ गई, क्योंकि यह एकता शुद्ध रूप से धार्मिक आन्दोलन के समर्थन के लिए भावनात्मक आकर्षण पर आधारित थी। तिलक एव अरविन्द की परंपरा में गांधी ने भी राम-राज्य आदि हिंदू शब्दावली का प्रयोग किया, प्रार्थना सभाओं में किर्तन को अपनाया और गौ रक्षा जैसे आन्दोलनों का समर्थन किया, जिसका आकर्षण मुख्यतः हिन्दूओं के लिए था। उन्होने वैज्ञानिक आधार पर कांग्रेस को पंथनिरपेक्ष छवि विकसित करने के लिए कांग्रेस की उग्रवादी परंपरा में कोई आधारभूत परिवर्तन करने का प्रयत्न नहीं किया। वस्तुतः गांधीजी जो स्वयं बड़े धार्मिक और जनसाधारण का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्ति थे, यह विश्वास करते थे कि धर्म को राजनीति से अलग नहीं किया जा सकता। वे धर्म कि सार्वभौमिकता में विश्वास करते थे और धर्म के माध्यम से विभिन्न धार्मिक समुदायों को मिलाने का प्रयत्न करते थे। वह कट्टर हिन्दू परिवार में जन्मे थे और अधिकांश में हिन्दू मान्यताओं का पालन करते थे। यद्यपि यदा-कदा अन्य धर्मों की मान्यताओं एवं रितियों का भी अनुसरण करते थे।

गांधीनी राजनीति में धर्म का समावेश करके राजनीति का आत्मीकरण करना चाहते थे। उनके अनुसार धर्म से शून्य राजनीति मृत्यु का एक जाल हैं स जब वे राजनीति में धर्म के प्रवेश की बात करते थे तो उनका आशय था कि "राज्य में रहने वाले प्रत्येक नागरिक को बिना किसी बाधा के अपना धर्म पालन करने का पूर्ण अधिकार हो- राज्य न तो किसी धर्म का संरक्षण करे और न किसी धर्म के उचित विकास में बाधक हो। संक्षेप में, राज्य का अपना कोई विशेष पंथ या संप्रदाय नहीं होना चाहिए किन्तु राज्य, धर्म रहित भी न हो। राज्य को नीति धर्म के शाश्वत और सार्वभौमिक नियमों- सत्य, अहिंसा, प्रेम, सेवा आदि का पूर्ण पालन करना चाहिए।

जवाहर लाल नेहरू ने पंथनिरपेक्षता के प्रति अपनी गहन निष्ठा रखी। उनका अभिमत था कि पंथनिरपेक्षता का मार्ग भारत को एकता की सुदृढ़ करने वाला है। उन्होंने कहा, "भारत एक पंथनिरपेक्ष राज्य है इसका अर्थ सभी धर्मो के प्रति समान आदर भाव तथा सभी व्यक्तियों के प्रति समान अवसर है"। नेहरु को धर्म अथवा ईश्वर से घृणा नहीं थी। धर्म के वैज्ञानिक और स्वस्थ दृष्टिकोण से उन्हें कोई चिढ़ न थी किंतु उनके जीवन दर्शन में अंधवि वास, कट्टरता कर्मकाण्ड और संस्कार वाद को स्थान न था। धर्म से उनका आशय था निष्ठापूर्वक सत्य की खोज करना, सत्य के लिए सब कुछ बलिदान करने को उद्धत रहना। महात्मा गांधी और पं. नेहरू की धर्मनिरपेक्षता का यही संकल्प कांग्रेस को विरासत में मिला और इसी को बाद में संविधान में भी शामिल किया गया।

भारतीय संविधान के पंथ निरपेक्ष प्रावधानों का स्वरूपः- कुछ विचारकों का कहना है कि भारतीय संविधान के पंथनिरपेक्ष प्रावधान मात्र दिखावा है और वास्तव में भारत को एक पंथनिरपेक्ष राज्य कहना उचित नहीं है। उनका कहना है कि भारत में राज्य सक्रिय रूप से धार्मिक मामलों में भाग लेता है। भारतीय संविधान विभिन्न धर्मो को आर्थिक सहायता देकर प्रोत्साहित करने की व्यवस्था करता है। सरकार के प्रतिनिधि धार्मिक उत्सवों में सम्मिलित होते है। धार्मिक नेताओं के जन्म दिवस मनाए जाते है और उन अवसरों पर सरकारी छुट्टी होती है। रेडियो तथा दूरदर्शन द्वारा विभिन्न धार्मिक कार्यक्रम प्रसारित किए जाते है। राज्य विधायिनी वर्गीकरण के नाम पर विभिन्न धर्मो के मानने वालों के बीच भेदभाव कर सकता है और विभिन्न धर्मो के नियमों में सार्वजनिक हित में सुधार के नाम पर परिवर्तन कर सकता है।

वस्तुतः भारत में, राज्य धार्मिक मामलों में बिल्कुल पृथक नहीं है। वह धार्मिक मामलों में रुचि लेता है, लेकिन विभिन्न पंथो के बीच कोई विभेद न करके समानता के सिद्धांत को अपनाता है। भारत इन अर्था में एक पंथनिरपेक्ष राज्य है कि वह एक धर्मतन्त्र की स्थापना नहीं करता। स्मिथ के अनुसार, पंथनिरपेक्षघ्ता मूल रूप से दो बातों पर निर्भर करती है-धार्मिक स्वतंत्रता एव कानून के समक्ष समानता। भारत का संविधान इन दोनी शर्तो को पूरा करता है। इन अर्थों में भारत निसंदेह एक पंथनिरपेक्ष राज्य है। स्मिथ के शब्दों में"। भारत उसी अर्थ में पंथ निरपेक्ष है जिस अर्थ में भारत को प्रजातंत्र कहा जाता है"। एस. आर. बोम्मई बनाम यूनियन आफ इन्डिया वाद में उच्चतम न्यायालय ने घोषित किया है कि "पंथनिरपेक्षता" संविधान का आधारभूत ढांचा है।

भारतीय पंथनिरपेक्षताः व्यवहारिक पक्षः- भारत में सरकार इन बातों के लिए वचन बद्ध है कि वह अल्प संख्यको के प्रति चाहे वे धार्मिक सांस्कृतिक या भाषाई कोई भी क्यों न हो, किसी किस्म का भेद्भाव होने नहीं देगी। भारत में सभी धर्मो के मानने वाले सम्मान और इज्जत के साथ रहते है। उन्हे न केवल कानून द्वारा समान अधिकार और संरक्षण की गारंटी प्राप्त है बल्कि वे देश के महत्वपूर्ण सामाजिक, राजनीतिक, और धार्मिक जीवन में सक्रियता से भाग ले रहे है। इन बातों को कोई भूल नहीं सकता कि मौलाना अबुल कलाम आजाद और रफी अहमद, किदवई भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख सेनापतियो में थे स भारतीय संविधान के निर्माण में डॉ. बी आर अम्बेडकर की प्रमुख भूमिका रही है।

दो प्रमुख मुस्लिम नेता जाकिर हुसैन और फखरुद्दिन अली अहमद एक प्रमुख वैज्ञानिक ए. पी. जे. अब्दुल कलाम और एक सिख ज्ञानी जैलसिंह राष्ट्रपति के सर्वोच्च पद को सुशोभित कर चुके थे। बहुत से राज्यों में मुस्लमान, सिक्ख और इसाई राज्यपाल, मुख्यमंत्री आदि ऊँचे पदों पर है। हमारे एक मात्र फील्ड मार्शल मानेकशा पारसी है। एयर चीफ मार्शल लतीफ मुस्लमान, एयर मार्शल इंजीनियर पारसी तथा एयर चीफ मार्शल अर्जुन सिंह सिख थे। हमारे नौसेना अध्यक्ष रह चुके परेरा ईसाई तथा कसेंटजी, पारसी थे। देश के गृहमंत्री रह चुके मुफ्ती मुहम्मद मुस्लमान थे। सेना में वरीयता के लिए पुरस्कार प्राप्त करने वाले शूरवीरों में मुस्लमान, सिख और इसाई सभी धर्मो के लोग होते हैं।

भारतीय पंथ निरपेक्षता का यह ज्वलंत उदाहरण है कि देश में मुस्लिम समुदाय की जनसंख्या दूसरे प्रमुख जन समुदायों की तुलना में तेजी से बढ़ी है। 1981-91 के बीच इसमें 32.76% वृद्धि हुई जबकि इस दौरान जनसंख्या वृद्धि का राष्ट्रीय औसत 25.79% रहा। इस अवधि में हिंदू समुदाय की जन संख्या में 22.70% की वृद्धि हुई। 1991-2001 के बीच मुस्लिम समुदाय में जनसंख्या वृद्धि पर सर्वाधिक 29.5% रही जबकि इस दौरान हिन्दू समुदाय की जनसंख्या में 20.4%% की वृद्धि हुई। 2001-2010 के बीच मुस्लिम जनसंख्या की वृद्धि दर 24.6% रही। हालांकि, यह राष्ट्रीय दर 6.9% ज्यादा है। दूसरे धर्मो की जनसंख्या राष्ट्रीय औसत से कम है। हिन्दूओं की जनसंख्या के बढ़ने की दर 16.8%, ईसाईयो की 15.5%, सिक्खो की जनसंख्या बढ़ने की दर 8.4%, बौर्दध धर्म की 6.1% तथा जैन की जनसंख्या बढ़ने की दर 5.4% रहीं। कुल 45 लाख की जनसंख्या वाला जैन समुदाय देश के सामाजिक और आर्थिक रूप से सबसे अधिक विकसित धार्मिक समुदाय के रूप में उभरा। इस समुदाय में जहां जन्मदर सबसे कम है, वही साक्षरता का स्तर 94.1% से ज्यादा है, जैन महिलाओं की साक्षरता दर 90.6% है और यह भी बाकि समुदायों के मुकाबले सर्वाधिक है।

भारतीय पंथनिरपेक्षताः समस्याएं और चुनौतियाः- पंथनिरपेक्षता की नीति आज कसौटी पर है। लोक व्यवहार में आमतौर पर यह देखा गया है कि पंथनिरपेदाता का उपयोग मात्र अल्पसंख्यक वर्ग के हित में किया जा रहा है। जहां कहीं अन्य धर्मावलम्बी अल्पसंख्यक है वहा उन्हें लुभाया जाता है, परन्तु बहुसंख्यको को निरंतर कोसा जाता है। इस व्यवहार के पीछे विचारपूर्ण दृष्टिकोण न होकर राजनीतिक स्वार्थमात्र रहा है। पंथनिरपेक्षता की दुहाई देने वाले सभी दिल्ली के इमाम अब्दुल्ला बुखारी से अल्पसंख्यको के वोट दिलवाने की फरियाद करते दिखाई देते है और मिजोरम में क्रिश्चियन, चर्च की दुहाई देकर वे चुनाव लड़ते हैं।

भारतीय जनता पार्टी नकली पंथनिरपेक्षता का विरोध करती है। उनके अनुसार व्यवहार में यह अल्पसंख्यकों के प्रति तुष्टिकरण की नीति है। राजनीतिक स्वार्थ के लिए देश को अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक वर्ग में बांट दिया गया है। इससे

अल्पसंख्यक वर्ग में अलगाव की भावनाएं पैदा हुई। वर्ग विशेष के प्रति अनावश्यक तुष्टिकरण नीति के कारण बहुसंख्यक वर्ग में प्रतिक्रियाएं पैदा हुई। विपिनचंद्र जैसे वामपंथी चिंतक का भी स्पष्ट मत है कि "पंथनिरपेक्ष लोग अल्पसंख्यको की साम्प्रदायिकता की उतनी तीखी आलोचना नहीं कर पाते जितनी तीखी आलोचना वे बहुसंख्यक साम्प्रदायिकता की करते है।" शाहबानो के मामले में सरकार ने धर्मांधता तथा कठमुल्लापन के सामने घुटने टेक दिए। तुष्टिकरण और अल्पसंख्यकवाद के पोषण का ही परिणाम है कि कश्मीर घाटी से ढाई लाख हिन्दू पलायन करके अपने देश में ही शरणार्थियों का जीवना व्यतीत करने हेतु बाध्य हुए।

डॉ. पी. बी. गजेन्द्र गडकर ने पंथनिरपेक्ष राज्य की निम्न-लिखित प्रमुख समस्याएं बताई है:

'साम्प्रदायिकता आज की सर्वाधिक गंम्भीर समस्या है। यदि राज्य नागरिको की सम्पति व जीवन की साम्प्रदायिक हिंसा से रक्षा नहीं कर सकता तो पंथनिरपेक्ष राज्य एक मजाक बनकर रह जाएगा।

- पंथनिरपेक्षा राज्य के लिए दूसरी बड़ी समस्या हिन्दू धार्मिक संस्थाओं में राज्य का बहुत अधिक हस्तक्षेप है।
- वर्तमान भारत में तीसरी बड़ी समस्या कानूनी ढांचे में धार्मिक निजी कानून की स्थिति हैं।
- चौथी समस्या पंथनिरपेक्षता राज्य को आधारभूत रूप से परिभाषित करने की है।
- समान नागरिक संहिता (अनुच्छेद 44) जैसे निदेशक सिद्धातों का क्रियान्वयन कठिन हो गया है। उच्चतम न्यायाल ष्अहमद खान बनाम शाहबानोष प्रकरण

में समान नागरिक, संहिता लागू करने के लिए संविधान निर्माताओं की पवित्र इच्छा की तरफ ध्यान आकर्षित किया था, किन्तु सरकार ने अल्पसंख्यक तुष्टीकरण नीति अपनाते हुए संसद में मुस्लिम महिला अधिकार कानून' बनाकर मुस्लिम महिलाओ के गुजारे के अधिकार को ही ष्छीन लिया। हाल ही में 'तीन तलाक' और जल्लीकट्ट' मामले पर जन आक्रोश को देखते हुए ऐसा लगता है कि देश में एक बड़े वर्ग को 'देश तो धर्म- निरपेक्ष चाहिए, लेकिन कानून धार्मिक'।

भारत में पंथनिरपेक्षता के जिस आदर्श को अपनाया गया, उसका लक्ष्य है कि विविध धर्मो के अनुयायियों में धार्मिक विभेद के बावजूद भाईचारे की भावना को जन्म देकर भारत के भावनात्म एकीकरण' की स्थिति को प्राप्त करना' हम अब तक इस स्थिति को प्राप्त नहीं कर पाए है और दुखद तथ्य यह है कि हम इस दिशा में आगे नहीं बढ़ रहे है मूल बात यह कि संविधान ने पंथनिरपेक्ष राज्य तो स्थापित कर दिया, लेकिन एक पंथनिरपेक्ष समाज की स्थापना हम आज तक भी नहीं कर पाए है। सभी राजनीतिक दलो ने अपना लक्ष्य येन केन प्रकारेण' सत्ता प्राप्ति बना लिया है और सत्ता की इस अंधी दौड़ में वे व्यक्तियों की धार्मिक भावनाओं और जातीय भावनाओं के साथ खिलवाड़ कर रहे है।

आज पंथनिरपेक्षता के मार्ग में किसी भी अन्य समय की अपेक्षा अधिक गंभिर चुनौतियां है। 'मंदिर-मस्जिद विवाद' राष्ट्रीय जीवन पर छा जाए, पंथनिरपेक्षता के लिए इससे बड़ी विडंबना क्या हो सकती है? कुछ संगठनो को अवैध घोषित करना, राजनीतिक दलों के गठन ,चुनाव व्यवस्था के संचालन और सामाजिक सांस्कृतिक जीवन के संबंध में कुछ कानूनों का निर्माण कर इन चुनौतियों का उत्तर दे पाना संभव नहीं है। इसके लिए तो हम सब को अपने मन-मस्तिष्क में, अपने सोच और विचार में क्रांतिकारी परिवर्तन लाना होगा। पंथनिरपेक्षता के लक्ष्य को प्राप्त कर पाना तो तभी संभव है, जब प्रत्येक भारतीय अपने हृदय में इस बात को संजो ले कि 'हम पहले तथा अंतिम रूप में भारतीय हैं और हमें अपने भारतीय होने पर गर्व है'।

2 जनवरी 2016 को उच्चतम न्यायालय ने अपने एक निर्णय मे स्पष्ट किया कि चुनावों में धर्म के नाम पर वोट नहीं मांगे जा सकते। न्यायालय के अनुसार देश भर में कहीं भी धर्म, नस्ल, जाति, समुदाय भाषा के नाम पर आधार पर वोट मांगना गैर-कानूनी एवं भ्रष्ट आचरण है। उम्मीद्वार के साथ-साथ दूसरे राजनेता, चुनाव एजेंट या धर्मगुरु इत्यादि भी इसके दायरे में आएंगे। न्यायालय के अनुसार चुनाव एक धर्मनिरपेक्ष प्रक्रिया है और चुने गए उम्मीद्वार का कार्यकलाप भी धर्मनिरपेक्ष होना चाहिए। आशा है निर्णय से धर्मनिरपेक्ष राजनीति की ओर मजबूती से बढ़ना आसान होगा।

संदर्भ सूची:-

1) डी व डी व बसु- भारत का संविधान
2) सुभाष कश्यप- हमारी संसद
3) एस० सी० सिंधल-भारतीय शाषण एवं राजनति
4) रामधारी सिंह दिनकर- संस्कृति के चार अध्याय
5) विपिन चन्द्रा- भारत का स्वतंत्रता संग्राम
6) महात्मा गांधी- माई एक्सपेरिमेंट विद ट्रथ

भूमंडलीकरण और हिन्दी: एक साहित्यिक विमर्श

डॉ० तानाबाई पाटिल

यह एक अनोखी घटना है कि आठवां विश्व हिन्दी सम्मेलन वहाँ (न्यूयॉर्क) हो रहा है, जहाँ 'लिबर्टी स्टैच्यू' है। क्या हिन्दी आजाद हुई है? इतिहास के जिस दौर में यह सम्मेलन हो रहा है, उसकी एक बड़ी खूबी यह है कि दुनिया में सैकड़ों भाषाएं मर रही हैं। उनके साथ उनकी अपनी सभ्यताएं-संस्कृतियां भी नष्ट हो रही हैं या विकृत हो रही हैं। दुनिया के बहुत से देश जब गुलाम थे, उपनिवेशक चाहने के बावजूद उन देशों की नैतिक और बौद्धिक परंपराओं को मिटा नहीं पाये थे। यह काम अब आजादी के वातावरण में आसानी से हो रहा है। इसलिए मेरी नजर में हिन्दी के प्रश्न पर विचार करते समय आज के सांस्कृतिक परिदृश्य को समझना आवश्यक है। किसी भाषा के साथ सबसे बड़ा विश्वासघात उसे सूचना-तंत्र में सीमित कर देना हैं भाषा का एक मुख्य काम संवेदना और ज्ञान की रचना करना है। यह आत्मनिरीक्षण करने की जरूरत है कि हम हिन्दी को बाजार की सूचनात्मक और चुलबुली भाषा के रूप में पाकर संतुष्ट हैं या संवदेना और ज्ञान की भाषा के रूप में इनकी कमजोर स्थिति देखकर विचलित हैं।

आज इस पर सोचना चाहिए कि क्या हिन्दी को एकदम बाजार के हवाले करके निश्चिंत हुआ जा सकता है। यह सही है कि हिन्दी बाजार में पैदा हुई, बाजार से पली-बढ़ी और आज बाजार में एक खास स्वरूप में विकसित हो रही है। इसमें भी संदेह नहीं कि नयी पीढ़ियों के लिए हिन्दी में पर्याप्त आकर्षण होना चाहिए, क्योंकि हिन्दी को भविष्य में उन्हीं के साथ विकसित होना है। लेकिन हिन्दी सिर्फ पेट और हल्के-फुल्के मनोरंजन की भाषा नहीं हैं यह दिलोदिमाग की भाषा भी है—यह संवेदना और ज्ञान की भाषा भी है। हिन्दी को लेकर चर्चाएं-बहसें पिछली सदी से होती आ रही हैं, पर आज निस्संदेह हम एक बिल्कुल भिन्न आर्थिक और सांस्कृतिक परिदृश्य में इस पर चर्चा कर रहे हैं। हमारे सामने एक बुनियादी प्रश्न है कि हिन्दी को राष्ट्रीय आत्मसम्मान की भाषा बनाने, विश्व भाषा का दर्जा देने और संयुक्त राष्ट्र की भाषा बनाने का प्रश्न व्यापक सामाजिक चिंताओं से जुड़ा हुआ है या नहीं। निश्चय ही यह प्रश्न हिन्दी परिवार की 48 भाषाओं/उपभाषाओं/बोलियों से हिन्दी की अखंडता, हिन्दी-उर्दू अंतर्संबंध और दूसरी भारतीय भाषाओं से 'इंटरेक्शन' और मेलमिलाप के प्रश्नों से जुड़ा होना चाहिए। वे उत्पीड़ित समुदाय जो अब तक मूक या हाशिये पर रहे हैं, उनके मानवाधिकारों से भी यह प्रश्न जुड़ा होना चाहिए। हिन्दी बोलने-पढ़ने-समझने वाले चालीस करोड़ लोगों के जीवन से यह प्रश्न जुड़ा होना चाहिए। इसमें किसी को संदेह नहीं कि भाषा में ताकत जनता से आती है।

हम जब हिन्दी को विश्व भाषा के रूप में विकसित करने का स्वप्न देखते हैं, हमारे सामने एक बड़ी चुनौती यह उपस्थित होती है कि हमारा रूख दूसरी संस्कृतियों के प्रति क्या है—उदाहरण के तौर पर पश्चिमी और इस्लामी संस्कृतियों के प्रति क्या है। हिन्दी की खूबी है कि काफी पहले से ही यह उदार, समावेशी और वसुधैवकुटुंबकम् की प्रकृति वाली रही है। हिन्दी का रिश्तों की मिठास की भाषा के रूप में भी कम महत्त्व नहीं है। कहा जा सकता है कि हिन्दी सबको जोड़ने वाली भाषा है।

हम एक ऐसे भारत में रहते हैं जो बहुभाषिक है। इक्कीसवीं सदी में निश्चय ही हम एक अधिक सघन बहुसांस्कृतिक परिवेश में रहते हैं। आज संस्कृतियां एक दूसरे में घुलमिल रही हैं। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि हिन्दी पढ़ कर हम आज सिर्फ हिन्दी संस्कृति को जानते हैं। हिन्दी एक उदार विश्व मन की भाषा है। हिन्दी में सिर्फ भारत नहीं पूरा विश्व झलकता है। एक जीवंत भाषा का लक्षण है कि वह पूरे विश्व में बसती है और उसमें एक पूरा विश्व बसता है। निस्संदेह हिन्दी पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा निर्मित एक ऐसी कृत्रिम उपभोक्तावादी संस्कृति का दबाव है, जो इंसान को भीतर से एकायामी और छिछला बनाती है। हिन्दी में अंग्रेजी की घुसपैठ दूसरी किसी भी भाषा से ज्यादा है। हमें तेजी से भागती दुनिया में थोड़ा ठहर कर सोचना होगा कि यह सांस्कृतिक सम्मिश्रण है या सांस्कृतिक आत्मविसर्जन। हमें निश्चय ही इन दोनों में फर्क करना होगा, क्योंकि हिन्दी के विकास के साथ हिन्दी की पहचान का प्रश्न कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। हिन्दी में उप-संस्कृतियों (सब-कल्चर्स) का उभार भी है, जो हिन्दी की विविधता का चिन्ह है। हिन्दी की पहचान के प्रश्न पर विचार करते समय हमें सांस्कृतिक आत्मविसर्जन का विरोध करना है और सांस्कृतिक विविधता और सम्मिश्रण के पक्ष में खड़ा होना है।

हिन्दी में पिछले लगभग डेढ़ सौ सालों से पश्चिमी साहित्य के ही नहीं, हिंदीतर भारतीय भाषाओं के भी प्रचुर अनुवाद हुए हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि हिन्दी में भू-सांस्कृतिक विविधता ही नहीं है, एक व्यापक साहित्यिक उदारवाद भी है। इस भाषा में जिस तरह बहुस्रोतपरकता और विविधता है उसी तरह किसी भी सांस्कृतिक चौहद्दी के पार जाने की ताकत है। इसकी व्यापक समावेशिकता इसमें ट्रांस-नेशनलिज्म ला देती है, जिसकी वजह से एक भिन्न भाषा, देश और संस्कृति का व्यक्ति भी इसे अपनी भाषा के रूप में देख सकता है। यही चीज है, जो हिन्दी को महज 'कनेक्शन' की भाषा नहीं 'रिजेशन' की भाषा बनाती है। इसी वजह से आज हिन्दी के आंगन में दुनिया भर के लोगों का एक अपनापन, शांति और विश्वबंधुत्व का अहसास होता है। आज के बदलते विश्व परिदृश्य में यह रेखांकित करना जरूरी है कि अपने लंबे इतिहास में हिन्दी सभ्यताओं की टकराहट की भाषा नहीं, सभ्यताओं के बीच संवाद की भाषा बन कर उभरी है।

किसी भाषा का साहित्य उस भाषा का वैभव है, उस भाषा का सौंदर्य है। आज साहित्य की एक बड़ी समस्या उसका सामाजिक विस्थापन है। आज उस चीज का कोई महत्त्व नहीं है, जिसकी बाजार में कीमत न हो। उपभोक्तावाद ने समाज से 'तर्क' और 'नैतिक मूल्यों' को ही बहिष्कृत नहीं किया है, मानवीय संवदेना, उच्चतर सौंदर्यबोध और साहित्य को भी हाशिये पर फेंक दिया है। जाहिर है, आज उपभोक्तावाद के दबाव में जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदल रहा है। इसलिए भाषा के प्रति भी दृष्टिकोण बदल रहा है।

आज संकट संपूर्ण जीवन पर है। इसलिए भाषा का जो भी संकट है, उसका संबंध जीवन के संकट से है। बाजार चाहता है कि सिर्फ उसकी भाषा चले। वह एक भाषा, एक स्वाद और एकरूपता चाहता है। निश्चय ही आज के आधुनिक जीवन का अपनी सांस्कृतिक जड़ों से विच्छिन होना कहीं से भी इस जीवन के हित में नहीं है। आदमी की जिंदगी बाजारू चीजों से भले घिरी हो, उसमें कविता जैसी गैर-व्यावसायिक चीजों के लिए भी थोड़ा 'स्पेस' होना चाहिए। क्योंकि आदमी की जिंदगी में सिर्फ सफलता काफी नहीं है, उसमें थोड़ी गुणवत्ता और अर्थवत्ता भी जरूरी है।

किसी भाषा को जानना उसके 'नॉलेज सिस्टम' को जानना है। भारत में भाषा जब-जब बदली, ज्ञान-व्यवस्था में भी परिवर्तन आया। हम भारत के इतिहास से जान सकते हैं कि उत्तर-वैदिक काल से तीन मौकों पर भाषा बदली। बुद्ध ने जब सत्ता की भाषा संस्कृत छोड़ कर पालि-प्राकृत भाषाएं अपनाईं, तब उन्होंने हिंदू कर्मकांड और वर्ण व्यवस्था वाली ज्ञान व्यवस्था की जगह एक भिन्न ज्ञान व्यवस्था भी चुनी थी। भक्त कवियों ने धर्मशास्त्रों की भाषा छोड़ कर लोक भाषाओं को अपनाया, यह भी एक भिन्न ज्ञान व्यवस्था की ओर बढ़ना था। तुलसी अगर अवधी की जगह संस्कृत में 'रामचरितमानस' लिखते, उसमें शूद्र-वध और स्त्री-वनवास के प्रसंग जरूर होते। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने क्वींस कॉलेज में अंग्रेजी शिखा पाई थी, पर वर्चस्व की भाषा अंग्रेजी छोड़ कर अपना साहित्य हिन्दी में लिखा था। बंगाल के माइकेल मधुसूदन दत्त ने ईसाइयत और अंग्रेजी अपना ली थी, पर 1857 के बाद वे अंग्रेजी छोड़ कर अपनी जातीय भाषा बांग्ला की उन्नति में लग गये। बुद्ध, कबीर, तुलसी या भारतेंदु-माइकेल मधुसूदन दत्त ने सत्ता विमर्श की भाषाओं को छोड़ कर लोक विमर्श की भाषाएं चुनी थीं। यह महज एक भाषा से दूसरी भाषा की ओर बढ़ना नहीं था, यह एक विचारधारा को चुनौती देकर एक दूसरी विचारधारा, एक दूसरे 'नॉलेज सिस्टम' को चुनना भी था। क्या एक बार फिर लोक विमर्श की भाषाओं के दिन लौटेंगे? इतिहास कहता है, लौटेंगे।

पिछले डेढ़-दो दशकों से हिन्दी को छोड़ कर जो लोग हिंग्लिश अपना रहे हैं और इस तरह हिन्दी भाषा में अंग्रेजी के अंधाधुंध मिश्रण से जो बदलाव दिख रहा है, यह सब दरअसल एक विपर्यय का मामला है। यह हिन्दी को परजीवी और इसको सांस्कृतिक उपनिवेशवाद का हथियार बनाने का दुश्चक्र है। यह हिन्दी को लोक विमर्श की भाषा से सत्ता विमर्श, खासकर बाजार की सत्ता की भाषा बनाना है। यह वस्तुतः एक उदात्त ज्ञान व्यवस्था से छिछली ज्ञान व्यवस्था में छलांग लगाना है। पहले तीन मौकों पर आये बदलाव से जाहिर है, वर्तमान बदलते समय के रूझान भिन्न हैं। यह उल्टी गंगा है। आज के 'विकास' में हिन्दी की कोई भूमिका नहीं हो सकती और अंग्रेजी ही काफी है, ऐसा सोचना निश्चय ही एक भ्रम है। बल्कि यह विकास मानवीय और जनतांत्रिक तभी होगा, जब उसमें हिन्दी की भी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका होगी। अभी 2005 में वैज्ञानिकों की एक सभा में किसी वैज्ञानिक के हिन्दी में पर्चा पढ़ने के कारण उस सभा की अध्यक्षता कर रहे सैम पित्रोदा ने उठ कर माफी मांगी, जबकि गांधी ने 1948 की सभा में पश्चिम के लोगों के सामने कहा था, मैं हिन्दी में बोलने के लिए माफी नहीं मांगूंगा। अंग्रेजी आर्थिक सत्ता ही नहीं सांस्कृतिक सत्ता भी बन रही है। इसलिए अंग्रेजी के बढ़ते वर्चस्व से सार्वभौम चिंता स्वाभाविक है।

दुनिया के विभिन्न मंचों से हमें हिन्दी के स्थान, महत्त्व और आत्मसम्मान का सवाल अधिक संगठित होकर उठाना होगा, यदि हिन्दी को आजाद करना हैं प्रसिद्ध स्वाधीनता सेनानी और पत्रकार गणेश शंकर विद्यार्थी ने कहा था, यदि देश आजाद

हो गया तो भी भाषा गुलाम रह सकती है, पर भाषा आजाद हो गयी तो देश गुलाम नहीं रह सकता। आठवें विश्व हिन्दी सम्मेलन से यह चीज भी निकलनी चाहिए कि एक व्यापक हिन्दी चेतना और हिन्दी के प्रति उत्तरदायित्व का अहसास कैसे बनेगा। इन चीजों को हिन्दी राष्ट्रवाद समझना या हमेशा आत्मधिक्कार से भरे रहना एक आत्मछह है। हिन्दी को उच्च-शिक्षा और रोजगार की भाषा के साथ-साथ कला-संस्कृति की भाषा भी बनाना होगा, ताकि इस भाषा को चौतरफा बल मिले। हिन्दी को इक्कीसवीं सदी में पहुंचाने के लिए अभी अपने घर में ही बहुत कुछ करना बाकी है। इसमें संदेह नहीं कि हिन्दी के संयुक्त राष्ट्र की भाषा बनने से सिर्फ हिन्दी नहीं, सभी भारतीय भाषाओं की एकता, प्रतिष्ठा और महत्ता बढ़ेगी। इससे अंग्रेजी का वर्चस्व घटेगा, विश्व बंधुत्व की भावना मजबूत होगी, भारतीय भाषाओं की उन्नति का मार्ग प्रशस्त होगा और दुनिया भर में आम जन का आत्मविश्वास बढ़ेगा। यह सब केवल तब होगा, जब हिन्दी लोग जातीय स्वाभिमान रखने के साथ थोड़ा आत्मनिरीक्षण करें और अपना मन बड़ा करें। शब्दवीर के साथ थोड़ा कर्मवीर भी बनें।

हिन्दी का दौर

वैश्वीकरण के मौजूदा दौर में हिन्दी बाजार की सशक्त भाषा बन चुकी है। पहले राष्ट्रीय आंदोलन और फिर हिन्दी फिल्मों ने इसे देश की संपर्क भाषा बना दिया है। हाल के दिनों में आईटी प्रोफेशनल हिन्दी को पश्चिमी देशों तक ले गये हैं। दुनियाभर में उसका प्रसार हो रहा है। यह दुनिया में चीनी के बाद सर्वाधिक बोली जाने वाली दूसरी सबसे बड़ी भाषा है। देश में 50 करोड़ लोग हिन्दी बोलते हैं और उसे कम या पूरा समझने वालों की संख्या 80 करोड़ है। टीवी चैनल हो या विज्ञापन उद्योग-बाजारवादी अर्थव्यवस्था पर हिन्दी का जादू सिर चढ़कर बोल रहा है। इसके बावजूद यह ज्ञान-विज्ञान की भाषा नहीं बन पाई है। इसके अभाव में देश तेजी से प्रगति के ऊंचे सोपान पर नहीं पहुंच सकता। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने न्यूयॉर्क में आयोजित विश्व हिन्दी सम्मेलन को भेजे संदेश में सही कहा है कि अच्छे हिन्दी सॉफ्टवेयर और सर्च इंजन बनाने की जरूरत है। उन्होंने कहा कि सरकार हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता दिलाने के लिए प्रयासरत है। इस आश्वासन से हिन्दी के तेजी से प्रसार का भरोसा बंधा है। इस सम्मेलन में हिन्दी के विकास को लेकर अनेक पहलुओं पर व्यापक चर्चा होगी तथा कुछ प्रस्ताव पारित होंगे। संयुक्त राष्ट्र के महासचिव बान की मून द्वारा सम्मेलन को संबोधित करने से इस विश्व संस्था में हिन्दी को आधिकारिक मान्यता मिलने के बारे में उम्मीदें जगी हैं।

किसी भी भाषा के विकास में सरकारी या सांस्थानिक प्रोत्साहन महत्त्वपूर्ण होता है, लेकिन स्वयं हिन्दीसेवियों-लेखकों-प्रकाशकों को भी नये जमाने की जरूरतों के अनुकूल ठोस पहल करनी होगी। हिन्दी में पठन-पाठन की संस्कृति अपेक्षानुसार विकसित नहीं हो पायी है। बांग्ला, तमिल, मलयालम जैसी भारतीय भाषाएं साहित्य सृजन में कहीं आगे हैं। उनके पाठकों का रूझान भी उत्साहवर्द्धक रहा है। हिन्दी में पठन-पाठन तभी बढ़ सकता है, जब साहित्यिक मोर्चे पर सक्रियता बढ़े और विभिन्न विधाओं (ज्ञान, विज्ञान, टेक्नोलॉजी, कला आदि) पर नयी-नयी किताबें लिखी-छापी जायें। इसके बिना बड़े पैमाने पर पाठकों को आकर्षित करना संभव नहीं है। विज्ञान व संचार क्रांति ने दुनिया की तस्वीर बदल दी है। हमारी नयी पीढ़ी इन विषयों के अध्ययन के बारे में अंग्रेजी पर आश्रित है, क्योंकि हिन्दी में स्तरीय तो दूर की बात है, कामचलाऊ पुस्तकें भी उपलब्ध नहीं। आईटी और संचार क्रांति के साथ हिन्दी को जोड़ना अतिआवश्यक है। पिछले कुछ सालों में दोनों क्षेत्रों में देश-विदेश में रोजगार के असंख्य अवसर पैदा हुए हैं। इनमें हिन्दी को महत्त्व देकर इनका आधिकारिक फायदा उठाया जा सकता है। विश्व हिन्दी सम्मेलन के प्रस्तावों या प्रधानमंत्री के आश्वासन की सार्थकता तभी है, जब उनकी घोषणाओं पर कुशलता से अमल हो।

संदर्भ

1. दैनिक हिन्दुस्तान
2. जनसत्ता
3. राष्ट्रीय सहारा

समाजशास्त्र की प्रकृति का आलोचनात्मक मूल्यांकन

आलोक कुमार श्रीवास्तव

सहायक प्रोफेसर, समाजशास्त्र, किशोरी रमण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मथुरा

'समाजशास्त्र की प्रकृति, अकादमिक जगत में अपने आरंभ से ही एक वाद का विषय रहा है। इसके केंद्र में वस्तुनिष्ठता बनाम व्यक्तिनिष्ठता का मुद्दा सर्वोपरि रहा है। अति संक्षेप में वस्तुनिष्ठता का तात्पर्य है तथ्य आधारित एवं मूल्य रहित विश्लेषण। प्रत्यक्ष अवलोकन, विश्वसनीयता एवं वैधता, मापन इत्यादि वस्तुनिष्ठ विश्लेषण के कुछ अपरिहार्य आधार एवं उपकरण है, क्योंकि इसके बिना वस्तुनिष्ठ विश्लेषण कदापि संभव नहीं हो पाएगा। वहीं दूसरी ओर व्यक्तिनिष्ठता का तात्पर्य है, वास्तविकता के विश्लेषण में मात्र तथ्यों पर ही अपने विश्लेषण को आधारित नहीं करना, बल्कि इसके साथ ही साथ मानवीय मूल्यों को भी शामिल करना। इस प्रकार के तर्क के पीछे सर्व प्रमुख कारण यह है कि तथ्यों को मूल्यों से कभी भी पृथक नहीं किया जा सकता।

वस्तुनिष्ठता बनाम व्यक्तिनिष्ठता के आलोक में ही समाजशास्त्र की प्रकृति दो रूपों में दिखाई देती है। कुछ विद्वानों के अनुसार समाजशास्त्र की प्रकृति वैज्ञानिक है, वहीं दूसरी ओर कुछ विद्वानों के अनुसार समाजशास्त्र की प्रकृति वैज्ञानिक नहीं है, तथा इसमें मानवीय अभिमुखन की झलक स्पष्ट देखी जा सकती है। इस संक्षिप्त विश्लेषण से या स्पष्ट है कि समाजशास्त्र की प्रकृति का व्यवस्थित विश्लेषण दो शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है। जिसका संक्षिप्त विश्लेषण इस प्रकार से है:

(1) समाजशास्त्र विज्ञान के रूप में

कुछ विद्वानों के अनुसार समाजशास्त्र की प्रकृति वैज्ञानिक है अर्थात समाजशास्त्र एक विज्ञान है। अति संक्षेप में विज्ञान का तात्पर्य किसी भी विषय के क्रमबद्ध और व्यवस्थित ज्ञान से है। वस्तुनिष्ठता, मापन, प्रत्यक्ष अवलोकन, प्रयोगसिद्धता,विश्वसनीयता एवं वैधता तथा सर्वभौमिकता आदि विज्ञान की कुछ अनिवार्य एवं महत्वपूर्ण कसौटिया है। समाजशास्त्र के पिता अगस्त कोंत समाजशास्त्र को विज्ञान के रूप में देखने का प्रयास किया है। यही कारण है कि उन्होंने समाजशास्त्र को सामाजिक भौतिकी नाम दिया। उल्लेखनीय है कि भौतिकी के अंतर्गत मूलत: पदार्थ की यांत्रिकी को ढूंढने का प्रयास किया जाता है, दूसरे शब्दों में विभिन्न पदार्थों की कार्य विधि क्या है? यही भौतिकी का केंद्र बिंदु है। सामाजिक भौतिकी का तात्पर्य समाज की यांत्रिकी के अध्ययन से है अर्थात समाज किस ढंग से काम करता है, यही सामाजिक भौतिकी के अध्ययन का मूल है। समाजशास्त्र की प्रकृति को वैज्ञानिक रूप देने की प्रयास के क्रम में कोंत ने प्रत्यक्षवाद की अवधारणा प्रस्तुत की। अति संक्षेप में प्रत्यक्ष वाद का तात्पर्य सामाजिक घटनाओं के अध्ययन के लिए उन्हें पद्धतियों के प्रयोग किए जाने से है, जिन्हें प्राकृतिक विज्ञानों में प्राकृतिक वास्तविकता के अध्ययन के लिए किया जाता है।

प्रत्यक्षवाद ही वह माध्यम है, जिसके द्वारा समाजशास्त्र की वैज्ञानिक प्रकृति को समझा जा सकता है। अत: यह आवश्यक हो जाता है कि प्रत्यक्षवाद की कुछ मूलभूत मान्यताओं को रेखांकित किया जाए। प्रत्यक्षवाद की कुछ मूलभूत मान्यताये इस प्रकार है:

(1) प्राकृतिक वास्तविकता और सामाजिक वास्तविकता की प्रकृति में कोई मौलिक अंतर नहीं है।

(2) प्राकृतिक वास्तविकता और सामाजिक वास्तविकता दोनों ही वस्तुनिष्ठ वास्तविकताएं हैं।

(3) जो कुछ वास्तविक है, वह प्रत्यक्ष रूप से अवलोकनीय है। दूसरे शब्दों में वास्तविकता का प्रत्यक्ष अवलोकन किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में जो कुछ प्रत्यक्ष रूप से अवलोकनीय नहीं है, उसका वैज्ञानिक अध्ययन संभव नहीं है।

(4) वास्तविकता की विश्लेषण में तथ्यों को मूल्य से पृथक किया जाना न केवल संभव है बल्कि ऐसा किया जाना अपरिहार्य भी है।

प्रत्यक्षवाद के उपरोक्त संक्षिप्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अगस्त कोंत ने प्रत्यक्षवाद के द्वारा समाजशास्त्र की प्रकृति को वैज्ञानिक बनाने की आधारशिला रखी।

ईमाईल दुर्खीम ने अगस्त कोंत के विचारों को मूर्त रूप देने का प्रयास किया। उन्होंने अपनी पुस्तक The Rules of Sociological Method में सामाजिक तथ्य की अवधारणा प्रस्तुत की है। उनके अनुसार सामाजिक तथ्यों के अंतर्गत व्यक्ति के कार्य करने के, सोचने के एवं अनुभव करने वह प्रत्येक तरीके शामिल हैं जो व्यक्ति के बाहर हैं तथा व्यक्ति को एक निश्चित तरीके से व्यवहार करने के लिए बाध्य करते हैं। स्पष्ट है कि वाह्यता तथा बाध्यता सामाजिक तथ्यों की दो अनिवार्य विशेषताएं हैं। दुर्खीम का कहना है कि अपनी इन्हीं दो विशेषताओं के कारण सामाजिक घटनाओं की प्रकृति वस्तुनिष्ठ है। दूसरे शब्दों में यह व्यक्ति की चेतना से स्वतंत्र है। इसका स्त्रोत व्यक्ति में निहित ना होकर समाज में निहित है। समाज एक वस्तुनिष्ठ वास्तविकता है। दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों का अध्ययन वस्तु की तरह करने का सुझाव दिया है। ऐसा की जाने के पीछे उनका तर्क है कि जिस प्रकार वस्तुओं का अध्ययन तथ्यों और मूल्यों को पृथक करके संभव है, ठीक उसी प्रकार से सामाजिक घटनाओं का अध्ययन भी तथ्य आधारित एवं मूल्य रहित हो सकता है।

वह सभी विद्वान जो समाजशास्त्र की वैज्ञानिक प्रकृति से सहमत है, सामाजिक वास्तविकता का अध्ययन बृहद से सूक्ष्म की ओर अथवा समष्टि से व्यष्टि की ओर करना चाहते हैं। ऐसे सभी समाजशास्त्री समष्टि समाजशास्त्र (Macro Sociology) के अंतर्गत आते हैं। समाजशास्त्र की वैज्ञानिक प्रकृति के प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं:

(1) प्राकृतिक वास्तविकता की तरह ही सामाजिक वास्तविकता एक वस्तुनिष्ठ वास्तविकता है, जिसका अस्तित्व स्वतंत्र है और इस पर व्यक्ति की चेतना का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यही कारण है कि समाजशास्त्र सामाजिक घटनाओं का अध्ययन मूल्य निरपेक्ष आधार पर कर पाने में पूर्णतया सक्षम है।

(2) जिस प्रकार से प्राकृतिक घटनाएं बिना किसी उद्दीपन (stimulus) के घटित नहीं होती, दूसरे शब्दों में प्राकृतिक घटनाएं वाह्य वातावरण के प्रभाव स्वरूप घटित होती है, ठीक उसी प्रकार से सामाजिक घटनाओं के उद्गम का स्रोत भी सामाजिक वातावरण में निहित होता है तथा इस सामाजिक पर्यावरण की यांत्रिकी (Mechanism) की वैज्ञानिक व्याख्या संभव है। कारण - प्रभाव की पारस्परिक संबंधों का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से कर पाना पूर्णतया संभव है।

(3) प्राकृतिक घटनाओं के समान ही, सामाजिक घटनाओं का मापन (measurement) किया जा सकता है। जिस प्रकार से पदार्थ के व्यवहार और साथ ही साथ उसके प्रभाव की मापन के आधार पर इसकी सटीक व्याख्या की जा सकती है, ठीक इसी प्रकार से सामाजिक घटनाओं के विभिन्न आयामों, उनके पारस्परिक संबंधों तथा उनके प्रभावो का मापन करके सामाजिक यथार्थ की सटीक व्याख्या कर पाना संभव है। उदाहरण के लिए पदार्थ के व्यवहार को अलग-अलग आधारों जैसे उसके स्वरूप, आयतन, भार इत्यादि के संदर्भ में मात्रात्मक रूप से अभिव्यक्त कर इसका मापन किया जाता है, वैसे ही सामाजिक घटनाओं उदाहरण के लिए विकास के विभिन्न आयामों जैसे-आर्थिक विकास, मानव विकास, पर्यावरणीय विकास, धारणीय विकास, और लैंगिक विकास को इससे संबंधित संकेतको के आधार पर मात्रात्मक रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है। वैश्विक स्तर पर एवं साथ ही साथ राष्ट्रीय स्तर पर बनाए गए विभिन्न सूचकांक उदाहरण के लिए भ्रष्टाचार निरोधक सूचकांक, वैश्विक प्रसन्नता सूचकांक, धारणीय विकास लक्ष्य (sustainable development goals) इत्यादि से संबंधित सूचकांक इस बात के प्रमाण है कि सामाजिक घटनाओं जिसकी प्रकृति गुणात्मक है को मात्रात्मक रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है।

(4) विश्वसनीयता, वैज्ञानिक विश्लेषण का आधार है। अति संक्षेप में विश्वसनीयता का तात्पर्य है, समान स्थिति में, किसी कारक विशेष के द्वारा परिणाम की पुनरावृति। प्राकृतिक घटनाओं की संदर्भ में विश्वसनीयता स्वयं सिद्ध है परंतु सामाजिक घटनाओं के संदर्भ में इस प्रकार की विश्वसनीयता की प्रति संदेह व्यक्त किया जाता है। समाजशास्त्र की प्रकृति को वैज्ञानिक मानने वाले विचारको का मत है कि सामाजिक घटनाओं के संदर्भ में भी ऐसी ही विश्वसनीयता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। सामाजिक संस्थाओं, मूल्यों, मानदंडों, संस्कृति, प्रस्थिति एवं भूमिका आदि के द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में एकरुपता देखी जा सकती है तथा इस प्रकार व्यक्ति के व्यवहार की भविष्यवाणी की जा सकती है। सामाजिक संरचना, जिसे अति संक्षेप में समाज में प्रतिमानित सामाजिक संबंधों के रूप में देखा जाता है, के द्वारा

व्यक्ति के व्यवहारों में एक स्पष्ट प्रतिमान को देखा जा सकता है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सामाजिक घटनाओं का अध्ययन इस तरीके से किया जा सकता है जिसमें विश्वसनीयता हो।

(5) जिस प्रकार सभी विज्ञानों में एक प्रयोगशाला का होना अनिवार्य है, ठीक उसी प्रकार से समाजशास्त्र में भी एक प्रयोगशाला दिखाई देती है और वह प्रयोगशाला है संपूर्ण समाज। इसी प्रयोगशाला के अंतर्गत एक समाजशास्त्री वैज्ञानिक ढंग से समाज का व्यवस्थित अध्ययन करता है।

समाजशास्त्र की वैज्ञानिक प्रकृति के संबंध में आपत्तियां

प्रत्यक्षवादी पद्धतिशास्त्र को अपना कर, आरंभिक समाजशास्त्रियों ने समाजशास्त्र के विज्ञान होने का दावा प्रस्तुत किया है, परंतु उनका ऐसा दावा निर्विवाद नहीं है, अनेक विद्वानों ने समाजशास्त्र की वैज्ञानिक प्रकृति के संबंध में कई आपत्तियां प्रकट की है। इस संबंध में मैक्स वेबर के विचार अत्यंत प्रासंगिक है। वेवर ने रेखांकित किया कि सामाजिक यथार्थ की रचना में सामाजिक कर्ता की द्वारा लगाया गया अर्थ अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है, सामाजिक वास्तविकता को समझने के लिए कर्ता के द्वारा सामाजिक क्रिया को संपादित किए जाने में निहित प्रेरणा का निर्वचन किया जाना अत्यंत महत्वपूर्ण है। यही कारण है कि उन्होंने समाजशास्त्र को परिभाषित करते हुए लिखा है कि समाजशास्त्र सामाजिक क्रियो के व्यक्तिनिष्ठ अर्थ को खोजने का प्रयास करता है। मैक्स वेबर के विचारों से ही निर्वाचनातमक समाजशास्त्र की नींव पड़ी तथा सामाजिक यथार्थ को समझने में व्यक्तिनिष्ठता का महत्व प्रकाश में आया। इसी के फलस्वरूप व्यष्टी अथवा सूक्ष्म समाजशास्त्र का उद्‌भव हुआ, जिसका स्पष्ट प्रतिबिंबन प्रतीकात्मक अंत:क्रियवाद, प्रघटनाशास्त्र तथा एथनमेथोडोलोजी इत्यादि में दिखाई देता है। अति संक्षेप में समाजशास्त्र की वैज्ञानिक प्रकृति के समक्ष निम्नलिखित चुनौतियां हैं:

(1) प्राकृतिक विज्ञानों और सामाजिक विज्ञानों की विषय वस्तु में नितांत भिन्नता है। जहां एक और प्राकृतिक विज्ञानों की विषय वस्तु व्यक्ति की चेतना से परे है, वहीं इसके ठीक विपरीत सामाजिक विज्ञानों की विषय वस्तु व्यक्ति की चेतना से अत्यंत गहराई तक जुड़ी हुई है। ऐसी स्थिति में सामाजिक घटनाओं का वस्तुनिष्ठ अध्ययन कर पाना संभव नहीं है। सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में तथ्यों का मूल्यों से पूर्णतया पृथक्करण संभव नहीं है।

(2) कई विद्वानों का विचार है कि सामाजिक घटनाओं की प्रकृति गुणात्मक है, इसे मात्रात्मक रूप में अव्यक्त नहीं किया जा सकता। प्राकृतिक विज्ञानों में प्राकृतिक वास्तविकता को मात्रात्मक रूप में अभिव्यक्त करना सरल है, परंतु एक तरफ ना तो सामाजिक यथार्थ के सभी पहलुओं को रेखांकित किया जा सकता है ना ही दूसरी तरफ सामाजिक यथार्थ के सभी पक्षों के संकेतक (indicators) विकसित किया जा सकते हैं। जिन संकेतको की चर्चा समाजशास्त्र को विज्ञान मानने वाले विद्वान करते हैं, ऐसी तथाकथित संकेतक सामाजिक यथार्थ को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त नहीं करते।

(3) वैज्ञानिक विश्लेषण एक नियंत्रित दशा में ही संभव है। प्राकृतिक विज्ञानों में जितने भी प्रयोग होते हैं वह सभी प्रयोगशाला की नियंत्रित दशाओं के अंतर्गत ही संपादित किए जाते हैं, परंतु सामाजिक घटना एवं सामाजिक यथार्थ का अध्ययन नियंत्रित दशा के अंतर्गत कर पाना असंभव है, क्योंकि सामाजिक यथार्थ के अंतर्गत प्रत्येक कारक का अपना महत्व है, और एक दूसरे पर इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, ऐसी दशा में यह कह पाना कि अमुक कारक अमुक प्रभाव डालता है, एक नितांत दुरूह कार्य होगा। विभिन्न कारकों की संयुक्तता, कारक विशेष की भूमिका को तय कर पाने में एक प्रमुख बाधा है।

(4) सामाजिक घटनाओं का अध्ययन प्रत्यक्ष तरीके से कर पाना संभव नहीं है। यहां हमें प्राकृतिक घटनाओं और सामाजिक घटनाओं के मध्य एक मूलभूत अंतर को समझना होगा। प्राकृतिक घटनाएं सिर्फ घटित होती हैं, क्योंकि इनको घटित होना होता है, इनमें किसी प्रकार का कोई निहित अर्थ छिपा नहीं होता। अत: प्राकृतिक घटनाओं का अध्ययन प्रत्यक्ष अवलोकन के द्वारा कर पाना संभव है। वहीं दूसरी और सामाजिक घटनाओं में कुछ निहित अर्थ है, जिसे प्रकाश में लाकर ही किसी भी सामाजिक यथार्थ को उसकी संपूर्णता में समझा जा सकता है, सामाजिक यथार्थ कोई स्थिति मात्र नहीं है, बल्कि यह एक प्रक्रिया है, अत: सामाजिक घटनाओं का अध्ययन मात्र प्रत्यक्ष अवलोकन के द्वारा किया जाना की त्रुटिपूर्ण होगा। सामाजिक घटनाओं में चुकी कर्ता द्वारा भिन्न-भिन्न अर्थ लगाया जाता है, अत: इसकी प्रकृति वस्तुनिष्ठ ना होकर व्यक्तिनिष्ठ होती है। अति सामान्य शब्दों में कहे तो सामाजिक यथार्थ स्वयं में वस्तुनिष्ठ ना होकर व्यक्तिनिष्ठ है। अपनी इसी व्यक्तिनिष्ठा के कारण, सामाजिक घटनाओं का वस्तुनिष्ठ अध्ययन कर पाना संभव नहीं हो पता।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि समाजशास्त्र की प्रकृति को लेकर मूलतः दो प्रकार के परस्पर विरोधी विचार देखने को मिलते है, जिनके अपने- अपने तर्क है। सामाजिक घटनाओं की गुणात्मक प्रकृति , समाजशास्त्र को विज्ञान की श्रेणी से दूर करती है। इसकी व्यक्तिनिष्ठता, सामाजिक अनुसंधान में गुणात्मक अध्ययन पद्धति के महत्व को रेखांकित करती है। परन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि हमें सामाजिक घटनाओं के वैज्ञानिक अध्ययन के लक्ष्य को त्याग देना चाहिए। यद्यपि सामाजिक घटनाओं की प्रकृति गुणात्मक है, परंतु इस गुणात्मक प्रघटना का वस्तुनिष्ठ अध्ययन, समाजशास्त्र का मूल उद्देश्य है। इस संदर्भ में मैक्स वेबर के विचार अत्यंत प्रासंगिक है, इन्होंने प्राकृतिक विज्ञानों में प्रयुक्त प्रविधि ,जिसे उन्होंने नामोथेटिक उपागम का नाम दिया एवं सामाजिक विज्ञानों में प्रयुक्त प्रविधि, जिसे इडियोग्रैफिक उपागम का नाम दिया के बीच का रास्ता अपनाने का सुझाव दिया, दूसरे शब्दों में वेबर ने पूर्णतः वस्तुनिष्ठ एवं पूर्णतः व्यक्तिनिष्ठ उपागम के मध्य का मार्ग सुझाया है।

इसी क्रम में एंथोनी गिडेंस के विचार भी उल्लेखनीय है, उन्होंने अपने संरचनाकरण सिद्धांत में व्यक्ति की चेतना एवं सामाजिक संरचना दोनो के ही महत्व को स्वीकार किया है तथा व्यक्ति बनाम समाज के मध्य द्वंद को अस्वीकार किया है। सामाजिक अनुसंधान में अब त्रिकोणीय उपागम (triangulation approach) का महत्व बढ़ता जा रहा है, जिसमें सामाजिक घटनाओं के अध्ययन हेतु गुणात्मक एवं मात्रात्मक उपागम के संयोजन पर बल दिया गया है।

संदर्भ सूची

(1) गिडेंस, एंथोनी, (2009) सोसियोलॉजी

(2) गुडे एवं हाट, (1987) मेथड्स इन सोशल रिसर्च

(3) यंग, पी. वी., (1984) साइंटिफिक सोशल सर्वे एंड रिसर्च

(4) रिट्जर, जॉर्ज, (2013) सोशियोलॉजिकल थ्योरी

(5) हरालंबोस, एम, एवं हेराल्ड, एम. (2000) सोसियोलॉजी थीम्स एंड पर्सपेक्टिव

उर्मिला एक पौराणिक पात्र- हाशिये से केंद्र की ओर

डॉ० राजेश कुमारी कौशिक

मोतीलाल नेहरू महाविद्यालय (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

शोधसार:

एक प्रसिद्ध नारीवादी संशोधनवादी लेखिका कविता काणे ने अपने इस उपन्यास 'उर्मिला-सीता की बहन की गाथा' में 'रामायण' महाकाव्य की उपेक्षित नारी पात्र उर्मिला के चरित्र को केंद्र में स्थापित कर इस उपन्यास की रचना की है। 'रामायण' महाकाव्य में उर्मिला, जनक की वास्तविक पुत्री एक अल्पज्ञात पात्र है। जैसा कि पितृसत्तात्मक समाज में नाम भी संबंधों से मिलते हैं, उसे भी मिला है- सीता की बहन या लक्ष्मण की पत्नी। महाकाव्य में उसका बहुत संक्षिप्त उल्लेख मिलता है। उसके नाम का उल्लेख विवाह के समय किया गया है। इसके अतिरिक्त उसके जीवन के सुख-दुख, उतार-चढ़ाव या अन्य किसी भी प्रकार के अनुभवों का वर्णन नहीं किया गया है। 'रामायण' में उसे एक ऐसी स्त्री के रूप में चित्रित किया गया है जो चौदह वर्ष के वनवास के पूरे समय सोती रही। लेकिन इस उपन्यास में महाकाव्य के विपरीत लेखिका ने उसे चुस्त, फुर्तीली, सक्रिय और शक्तिशाली स्त्री के रूप में दर्शाया है जो अयोध्या के राजा की अनुपस्थिति में संपूर्ण राज-काज और सारी गतिविधियों के केंद्र में स्थित है। वह परिवार को निरापद रखने और शासन को मजबूत बनाए रखने में अपनी मुख्य भूमिका का निर्वाह करती है। उसे राजा की वास्तविक पुत्री होने, एक ऐसे राजकुमार की पत्नी, जो सदैव नायक के साथ हो और कथा में एक मुख्य भूमिका में होने के कारण महाकाव्य में ज्यादा स्थान मिलना चाहिए था। लेकिन उसे कथा में पूर्ण रूप से उपेक्षित रखा गया। उसके नाम या संबंधों में मिले संबोधन के सिवाय कुछ भी महत्त्व नहीं दिया गया- "उर्मिला, सीता की बहन और लक्ष्मण की पत्नी, जिन्होंने अलगाव के उन चौदह वर्षों के आँसुओं और त्रासदी को चुपचाप सहन किया, अपना निजी निर्वासन जिया। वह शायद 'रामायण' में सबसे ज्यादा नजरअन्दाज किया जाने वाला किरदार है" (कविता काणे के साथ साक्षात्कार- न्यू एशियन राइटिंग)[1]। लेकिन लेखिका ने उर्मिला को एक शक्तिशाली एवं दृढ़ निश्चय वाली नारी के रूप में चित्रित किया है। वह एक उत्कृष्ट कलाकार, महान् विदुषी होने के साथ-साथ आत्मविश्वासी और विविध रुचि संपन्न स्त्री है।

बीज शब्द: पितृसत्तात्मकता, शिक्षित एवं विदुषी, निर्भीक, घर-परिवार में सहयोग एवं त्याग, समर्पित पत्नी, कुशल शासिका, आदर्श नारी।

मूल लेख:

पारंपरिक रूप से ऐसा माना जाता है कि उर्मिला अपने पति लक्ष्मण की अनुपस्थिति में चौदह वर्ष तक सोती रही। वन में निद्रा देवी से लक्ष्मण प्रार्थना करते हैं कि वह राम और सीता की निरंतर सेवा में होने के कारण सोना नहीं चाहते इसलिए उसके नाम की निद्रा उर्मिला को प्रदान कर दे- "दक्षिण भारत की 'रामायण' के अनुसार तब लक्ष्मण ने निद्रादेवी से अनुरोध किया कि वह जाकर मेरे हिस्से की नींद उर्मिला को दे दें। यह बात जब निद्रा देवी ने उर्मिला को बताई तो वह तुरंत ही तैयार हो गई। इस प्रकार उर्मिला चौदह सालों तक सोती रही और लक्ष्मण, राम और सीता की सेवा करते रहे, इस प्रकार उर्मिला ने अपने पति धर्म को निभाया" (अमर उजाला)।[2] लेखिका इस पारंपरिक मिथक को केवल एक रूपक मानती हैं। वनवास के समय उर्मिला लक्ष्मण के साथ वनवास जाना चाहती है। लेकिन लक्ष्मण उसे अयोध्या में ही रुकने के लिए कहते हैं। उर्मिला अपने पति का कहना मानकर अयोध्या में ही रुक जाती है। उर्मिला यह सोच कर कि अब उसे अपने पति के बिना रहना पड़ेगा, उसका हृदय वेदना से भर जाता है। एक बार वियोग होने के बाद उर्मिला और लक्ष्मण की भेंट तब होती है जब भरत के साथ अन्य लोग भी राम को वापस लौट आने और फिर से राज्य की बागडोर संभालने की प्रार्थना लेकर वन पहुँच जाते हैं। राम वापस लौट आने के लिए मना कर देते हैं और एक बार फिर सब कुछ सामान्य होने की आशा धूमिल हो जाती है। उर्मिला को अपने पति लक्ष्मण से पुनः अलग होना पड़ता है। अब वह सब कुछ भूलकर, बिना किसी अनुभूति के जीवन व्यतीत करना

चाहती है ताकि पति की अनुपस्थिति में परिवार की देखभाल कर सके- "हाँ, संभवत: मैं अगले चौदह वर्ष के विछोह के लिए क्रोध, असंतोष, चिंता और निराशा से मुक्त हो गई हूँ। मैं थक गयी हूँ", उसने गहरी साँस लेकर कहा। वह सिसकने लगी। मुझे आशा है कि मैं अब मुक्त हो चुकी हूँ। मैं केवल अपने नेत्र बंद करना चाहती हूँ। पीड़ा और मर्मभेदी दुख अनुभव नहीं करना चाहती हूँ। मैं दीर्घ निद्रा लेना चाहती हूँ।"[3]

वह अपने मन-मस्तिष्क को अभेद्य बना लेती है ताकि उसमें कोई परेशानी या निराशा प्रवेश ही ना कर पाए और वह पति की अनुपस्थिति में परिवार की देखभाल करने के अपने वायदे को सफलतापूर्वक निभा सके। लेखिका उर्मिला के लिए चौदह वर्ष का निजी वनवास मानती है। उपन्यास में राजा जनक अपनी पुत्री उर्मिला को समझाते है- "जनक ने कहा, "राम का वनवास लक्ष्मण के लिए भी वनवास था और उसके साथ उर्मिला के लिए उनसे दूर रहना था। वनवास हमें तपस्या का अर्थ समझाता है और हमें तपस्वी बनाता है।[4] इन्हीं चौदह वर्षों के दौरान उर्मिला ने चिंतन-मनन कर अपने आप को तपस्विनी और विदुषी के रूप में स्थापित कर लिया। यह एकाकी होने का समय उसके लिए तपस्विनी बनने में उपयोगी सिद्ध हुआ था। उसके पिता भी स्वीकार करते हैं कि इस वियोग ने उर्मिला को आध्यात्मिकता के महत्त्व को समझने का अवसर प्रदान किया है। इसी आत्म-संयम और बौद्धिकता के प्रति समर्पण ने उसे एक महान् विदुषी बना दिया है- "वनवास से तुम्हें तपस्या का अर्थ समझ में आया और जिसने तुम्हें तपस्विनी बनाया। ऐसी तपस्विनी, जिसके पास महान् आध्यात्मिक समझ और बौद्धिकता है। मैं तुम्हें एक विदुषी होने के लिए आज शुभकामनाएँ देता हूँ। तुम्हारी विद्वता मंत्रों के उच्चारण मात्र या गहन अध्ययन से नहीं आई है, वरन यह आरंभिक दर्द, अलगाव और विरक्ति से आई है। तुम्हारा अलगाव ही तुम्हारा ध्यान, तुम्हारा आध्यात्मिक पुनर्जन्म और पति के प्रति तुम्हारा प्रेम और तड़प था।"[5]

लेखिका ने उर्मिला को एक जीवंत, साहसी और दृढ़ निश्चयी स्त्री के रूप में चित्रित किया है। वह उर्मिला के गुणों का वर्णन करते हुए उसके संबंध में कहती है- "वह बहुत कुछ उन रंगों की तरह ही थी, जिन्हें वह इस समय तल्लीनता से मिलाने में जुटी थी, उष्ण, जीवंत और चमकदार। इसमें उसकी पारे के समान तीव्रता से बढ़ती-घटती मनोवृत्ति भी शामिल थी। उसका सरल, सहज आचरण उसे बहुत ही मिलनसार बनाता था।"[6] उसकी शारीरिक संरचना और मनोहर रूप का वर्णन करती हुई लेखिका कहती हैं कि वह न केवल रूपवती और बुद्धिमान थी बल्कि उसके विचार किसी भी प्रकार के द्वेष से मुक्त थे- "उर्मिला के स्वरूप में एक खुलापन और जीवंतता थी, उसके अंडाकार चेहरे पर दो बड़ी, चमकदार आँखें अपनी विशिष्ट छाप छोड़ती थी। उसकी पतली और आकर्षक नाक थी। गुलाब की कली के समान होंठ थे, जो अक्सर सहजता से खुलकर चित्ताकर्षक मुस्कान में बदल जाते थे, ऐसी मुस्कान जिसकी कोई अनदेखी नहीं कर सकता था।"[7]

पारंपरिक रूप से नारी को सिखाया जाता है कि विवाह जीवन का परम उद्देश्य है। एक पितृसत्तात्मक समाज में नारी के लिए शैक्षिक रुचि या उपलब्धि महत्त्व नहीं रखती बल्कि विवाह उसे सामाजिक पहचान और अपने-आप में पूर्ण होने का अहसास देता है। लेखिका इस उपन्यास में एक ऐसी नायिका को चित्रित करती है जो इस पारंपरिक मान्यता को ध्वस्त करती है। उर्मिला को विवाह से ज्यादा बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य करना पसंद है- "विवाह में उर्मिला की अधिक रुचि नहीं थी, लेकिन यह एक सामाजिक रस्म थी, जिसका पालन उसे भी करना पड़ेगा। वह विवाह करने की अपेक्षा ज्ञान अर्जन करना अधिक पसंद करती थी।"[8]

एक पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष को ही बौद्धिक रुचि रखने का अधिकारी माना जाना है, इसके विपरीत नारी से अपेक्षा की जाती है कि वह घरेलू काम-काज सीखने और करने में रुचि ले। उसकी शिक्षा अवांछनीय है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने उर्मिला को ज्ञानपिपासु साधक के रूप में प्रदर्शित कर पितृसत्तात्मक मान्यता को चुनौती दी है। वह न केवल वेदों, उपनिषदों तथा शास्त्रों से भली-भाँति परिचित है बल्कि वह राजनीति, साहित्य, कला और संगीत में भी पारंगत है। वह राजा जनक जो स्वयं भी एक ख्याति प्राप्त राजर्षि हैं, के साथ विभिन्न धर्मसभाओं में जाती है। उर्मिला, विदुषी एवं सदैव बौद्धिक कार्यों में लगी रहने वाली स्त्री है। उर्मिला की बहन मांडवी उसे खुले विचारों वाली मानती है। लक्ष्मण के साथ विवाह होने के बाद भी वह अयोध्या के राजदरबार में वशिष्ठ और अन्य गुरुओं के सान्निध्य में लक्ष्मण के साथ अपने बौद्धिक कार्य जारी रखती है। उसे अन्य महान् विचारकों के साथ धार्मिक एवं दार्शनिक सभाओं में एक प्रतिष्ठित विदूषी के रूप में आमंत्रित किया जाता है- "वह एक जिज्ञासु छात्रा से विदूषी बन चुकी थी, जिसका अनुकरण किया जा सके। उसने अन्यत्र परिश्रम से अध्ययन के बाद, वेद और उपनिषद् की शिक्षा ली। यही कारण था कि राजा सीरध्वज जनक ने केवल उर्मिला को ही सभा का निमंत्रण भेजा था।"[9]

वह सभाओं में वैदिक पद्य-पाठ करती है तथा धर्म और दर्शन पर अन्य गुरुओं के साथ वाद-विवाद भी करती है। उर्मिला ज्ञान प्राप्त करके बौद्धिक तथा पांडित्य के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त कर पितृसत्तात्मक सिद्धांतों को चुनौती देती है। वह अपने आप को एक विदूषी के रूप में स्थापित करती है।

उर्मिला की माता सुनयना याद करती है कि किस प्रकार उर्मिला अपनी बहनों की अपेक्षा ज़्यादा समझदार और जिम्मेदार थी। वह अपनी पुत्री के सहज गुणों पर गर्व करती है- "तुम कठोर, संवेदनापूर्ण, सामर्थ्यवान और तीव्र बुद्धि थी- ये चार गुण जो दुनिया में जीवित रहने के लिए आवश्यक हैं।[10] वह आत्मविश्वासी, साहसी, ईमान्दार, विश्वसनीय है जो अपने चाहने वालों को कभी निराश नहीं करती। वह अपनी बहनों एवं लक्ष्मण को भी बचाती है। जब स्वयंवर में असंभव शर्त पूरा न कर पाने पर राजा क्रोध में थे तब उर्मिला ने स्थिति को गंभीरता से सम्भाला। अपने प्रियजनों को बचाने के लिए वह सदैव तत्पर रहती थी- "वह जानती थी कि उसे इससे अकेले जूझना होगा- स्वयं के लिए और अपनी बहनों के लिए।"[11] जब राम ने धनुष तोड़ दिया और परशुराम क्रोधित हो गए तब बीच में हस्तक्षेप कर वह लक्ष्मण के प्राणों की रक्षा भी करती है।

उर्मिला बुद्धिमान, सहनशील, शक्तिशाली और आवश्यकता पड़ने पर अपने परिवार की रक्षा करने वाली है। विवाह पश्चात् वह अपनी सभी बहनों को एक मार्गदर्शक के रूप में नए घर में अपने आप को ढालने में मदद करती है। सुनयना भी इस बात को जानती है कि वह सभी बहनों की विश्वास पात्र है। सुनयना ने इसलिए विवाह के समय उससे कहा था- "दरअसल, सदैव ही उर्मिला उसकी बड़ी बहन की तरह रही, तेज-तर्रार, सुदृढ़, सदैव उसकी रक्षा में तत्पर जैसे शेरनी अपने बच्चे की रक्षा करती हो, वह सदैव ही उसकी मदद करती थी, सांत्वना देती थी, उसे राह दिखाती थी।"[12] वह हमेशा अपनी बहनों का बचाव करने वाली रही है।

वह जनक की वास्तविक एवं एक स्वाभाविक उत्तराधिकारी होने के बावजूद कभी भी इस बात पर न तो दावा करती है और न ही द्वेष करती है। ईर्ष्या और दुर्भावना की बजाय प्यार और सहयोग उसके व्यवहार से झलकता है। उसकी बहन कीर्ति, उर्मिला की प्रशंसा करती हुई कहती है- "तुम सब कुछ थी, लेकिन तुम्हें कुछ नहीं मिला। इन सबके बाद भी तुमने बहुत प्यार से सब बटोर रखा है। यह मत सोचना कि मुझे तुम पर दया आ गई या कुछ और। नहीं मैं तुम्हें बहुत मानती हूँ। तुमने कभी अनुभव नहीं होने दिया कि सीता को गोद लिया गया था और हम बिन माँ के बच्चे थे।"[13]

उर्मिला हमेशा सभी बहनों के लिए शक्ति का स्रोत बनी रहती है। लक्ष्मण भी उसकी इस योग्यता से अनभिज्ञ नहीं था इसलिए वह उर्मिला से साथ न जाकर घर को संभालने के लिए कहता है- "और तुम तो बहुत सुदृढ़ हो- मैं जितनी भी महिलाओं को आज तक जानता हूँ, तुम उनमें सबसे अधिक सुदृढ़ इरादों वाली हो।" वह प्यार और स्नेह से कहते हैं, 'तुम उर्मिला हो, जहाँ दिलों का मिलन होता है..." वह विनती करते हैं, 'यह तुम ही थी, जिसने अपने धैर्य और बुद्धिमत्ता से अपनी बहनों को एकजुट रखा था, कृपया वही काम मेरे लिए करो। मेरे बिखरे हुए परिवार की देखभाल करो।"[14] उर्मिला भी लक्ष्मण की अनुपस्थिति में उसकी इच्छा पूरी करने का भरसक प्रयत्न करती है।

संकट के समय में उर्मिला परिवार के सभी सदस्यों को सहारा और साहस प्रदान करती है। मांडवी स्वीकार करती है कि उसके बिना वह भरत को नहीं संभाल पाती। जब उसे पता चला कि राम को वनवास देने में उसकी माता का हाथ है तब उर्मिला ही थी जिसके कारण स्थिति को काबू किया जा सका। वह मांडवी की तब भी सहायता करती है जब भरत महल छोड़कर प्रायश्चित करने निकल गया। ऐसे समय में उर्मिला ने उसे नई आशा की किरण दिखाई। जब भरत निर्णय लेता है कि वह तपस्वी का जीवन जीएगा और राज-काज राम के नाम से ही चलाएगा, उर्मिला क्रोधित हो गई और मांडवी के जीवन को कठिनाइयों से भरने वाले इस निर्णय की निंदा करने लगी। वह अपनी बहन को अकेलेपन और उदासी से बचाना चाहती थी। वह भरत का ध्यान सामाजिक और पारिवारिक जिम्मेदारियों के साथ-साथ अपनी पत्नी की जिम्मेदारी की ओर भी दिलाना चाहती है। वह उसे अपनी जिम्मेदारियों से न भागने का परामर्श देती है- "आज इस कक्ष में हमने सभी तरह के धर्म व दायित्वों पर विचार किया। पिता, पुत्र, राजा, राजकुमार, ब्राह्मण और क्षत्रिय, यहाँ तक कि अपने पति के प्रति पत्नी के धर्म पर विचार किया गया, लेकिन क्या अपनी पत्नी के प्रति पति का कोई धर्म नहीं होता है? अपनी माता के लिए पुत्र का कोई धर्म नहीं होता है? पिता, पुत्र और भाइयों के लिए ही धर्म होता है क्या?"[15]

गुरू कश्यप उर्मिला का प्रतिकार करता है जब उसे लगता है कि पुरुषों के निर्णय पर आपत्ति करने और स्वयं की बराबरी पुरुषों से करके वह पितृसत्तात्मक सिद्धांतों का उल्लंघन कर रही है। जब एक पितृसत्तात्मक समाज में नारी अडिग रहती है तो उसे धृष्ट कहा जाता है- "गुरु कश्यप ने रुष्ट होकर उसकी बात को काटते हुए कहा, "राजकुमारी तुमने इस तरह कठोर शब्दों में बोलने का साहस क्यों किया?" "तुम क्या सोचती हो, यह तुम्हारे पिता राजा जनक का दरबार है, जो दार्शनिक गार्गी को बेशर्मी के साथ तर्क करने जैसी महिलाओं की मुक्त सोच को प्रोत्साहन देता हो। यहाँ ऐसा नहीं होता है। यह अयोध्या

के महान् विचारकों के मध्य विचार- विमर्श है।"[16] लेकिन उर्मिला अपनी बात पर अडिग रहते हुए पुनः पूछती है- "अपनी पत्नी के प्रति किसी व्यक्ति का धर्म क्या है? उत्तर देने की कृपा करें।"[17] वह हक्का-बक्का और आग बबूला होकर रह जाता है। वह परिवार में नारियों के विरुद्ध हो रहे लैंगिक भेदभाव की ओर ध्यान आकर्षित करती है। वह ध्यान दिलाती है कि किस प्रकार परिवार में नारियाँ पितृसत्तात्मक सोच की शिकार होती हैं- "सामंती नैतिकता के अंतर्गत स्त्री के जो गुण उपभोग्य नहीं थे जिन्हें स्त्रियों के लिए निषिद्ध कर दिया गया था। साहस, बुद्धिमत्ता, स्पष्टवादिता, आत्मनिर्भरता, दृढ़ता, उन्मुक्तता जैसे गुण स्त्री के 'अवगुण' माने जाते थे।[18] राम के वनवास के दौरान और भरत की अनुपस्थिति में सभी दरबारियों की प्रार्थना पर उर्मिला मिथिला में राज-काज के राजनीतिक एवं अन्य मामलों को भी संभालती है- "एक झटके के साथ, उर्मिला को अहसास हुआ कि उसके ऊपर अब कौन सा दायित्व है- राज-दरबार के कार्य और साथ ही साथ राजनीतिक चिंताएँ।"[19]

उर्मिला अपने अनुभव का प्रयोग शासन चलाने में करती है, वह अपने बुद्धिबल से पारिवारिक एवं शासकीय मामलों की जिम्मेदारी भी बखूबी संभालती है। वह शिष्टता, शक्ति, साहस और बुद्धिमता का अनूठा संगम है। लेखिका इस उपन्यास में उर्मिला के माध्यम से कुछ अति महत्वपूर्ण प्रश्न उठाती है और स्त्री चेतना के दृष्टिकोण से उर्मिला का चरित्र-चित्रण करती है।

इस प्रकार उपन्यास में लेखिका ने एक उपेक्षित नारी पात्र उर्मिला को केंद्र में रखकर उसके महत्त्व का प्रतिपादन किया है। लेखिका ने उसे एक मुख्य पात्र के रूप में निर्मित किया है जो अपनी प्रतिबद्धताओं का न केवल खुलासा करती है बल्कि अपने कार्यों को भली-भाँति कार्यान्वित भी करती है। वह कहानी मैं मुख्य भूमिका में हैं और अन्य सभी पात्र उसके इर्द- गिर्द घूमते हैं। लेखिका उसे एक मोहक, प्रबुद्ध और योग्य स्त्री के रूप में चित्रित करती है। वह ऐसी पात्र है जो नारी को गौण समझने वाली पितृसत्तात्मकता के विरुद्ध लड़ती है। लेखिका उसके व्यक्तित्व को एक उपेक्षित नारी पात्र से एक योग्य राजकुमारी, प्रिय और समर्पित पत्नी, सम्मानित शासक और एक सच्ची उद्धारक के रूप में परिणत कर सफलतापूर्वक कथानक के केंद्र में स्थापित कर देती है।

संदर्भः

1. कविता काणे- साक्षात्कार- न्यू एशियन राइटिंग
   https://new-asian-writing.com/naw-interview-with-kavita-kane/
2. अमर उजाला- 27 जून 2017
   https://www.amarujala.com/photo-gallery/spirituality/religion/some-facts-about-lakshman-s-wife-urmila
3. कविता काणे- उर्मिला- सीता की बहन की गाथा (अनुवाद- अजय तिवारी)- पृ० 239, मंजुल पब्लिशिंग हाउस, द्वितीय तल, उषा प्रीत कॉम्प्लेक्स, 42 मालवीय नगर, भोपाल- 462003, प्रथम संस्करण- 2021
4. वही- पृ० 287
5. वही- पृ० 287- 288
6. वही- पृ० 8
7. वही- पृ० 9
8. वही- पृ० 11
9. वही- पृ० 281
10. वही- पृ० 198
11. वही- पृ० 36
12. वही- पृ० 25- 26
13. वही- पृ० 283
14. वही- पृ० 154
15. वही- पृ० 234
16. वही- पृ० 234
17. वही- पृ० 234
18. जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधा सिंह (सं०)- स्त्री अस्मिताः साहित्य और विचारधारा- पृ० 442, आनन्द प्रकाशन 176-178 रवींद्र सरणी, कोलकाता- 700007, प्रथम संस्करण- 2004
19. कविता काणे- सीता की बहन की गाथा- पृ० 193

वैश्वीकरण और उपभोक्तावादी संस्कृति

डॉ० जोगेश

सहायक प्रोफेसर, आई० बी० स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पानीपत

शोध सार

संसार एक कुटुंब एक परिवार की सुंदर कल्पनाधारित नारे पर स्वयं को समर्पित कर बैठा और भ्रमित होकर एक कठपुतली की भांति पूँजीपति वर्ग द्वारा मध्यम वर्ग को मनचाहा नाचने का कुकृत्य करता रहा। आम व्यक्ति या तो अपनी जिजीविषा के प्रवाह में स्वयं के सपनों को भुलाकर एक ऐसे मार्ग पर अग्रसर हुआ जिसने उसकी पहचान और स्वतंत्रता की मुक्ति कामना को दरकिनार कर दिया। उन्नति और वृद्धि की तलाश में वह रूपहले वादों और क्रय शक्ति में उलझ कर रह गया। एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र से जोड़ने वाली संचार क्रांति ने युद्धों और आयुद्धों के लिए भूमि तैयार की। भारत जैसे राष्ट्र ने माध्यम मार्ग अपनाते हुए स्वयं को वैश्वीकरण का मित्र बनाया और विकास पथ पर आगे बढ़ते हुए एक नया कीर्तिमान स्थापित किया। विश्व की अन्य अर्थव्यवस्थाओं ने हमसे प्रेरणा लेते हुए हमारे नेतृत्व को स्वीकार किया।

कूट शब्द – वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद, अर्थव्यवस्था, सूचना क्रांति, संचार क्रांति, उदारीकरण, क्रय शक्ति, मेक इन इंडिया, वोकल से लोकल, व्यवसाय, नेतृत्व।

मूल लेख

मानव जाति ने समाज और संस्कृति का निर्माण किया। इसके परिप्रेक्ष्य में स्वयं को सुरक्षित रखने का विचार रहा। एकल जीवन से समूह में जीवन व्यतीत करने का निर्णय वास्तव में शक्ति के केंद्रीकरण के विचार पर आधारित था। संप्रेषण व्यवहार में और व्यवहार व्यापार में परिवर्तित हुआ। जीवनयापन हेतु मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उसको विनिमय करने का मार्ग सूझा। आरंभिक काल में मुद्रा के जन्म न होने से केवल वस्तु विनिमय महत्त्वपूर्ण था। इसके उदाहरण मोहनजोदड़ो जैसी सभ्यताओं में प्रचलित व्यापारिक संस्कृति से ज्ञात होता है। उदाहरणार्थ नील के बदले गेहूँ अथवा कपास की गाँठ। मुद्रा के जन्म के बाद यह वस्तु विनिमय, मुद्रा विनिमय में बदल गया। कुटीर उद्योग के स्थान पर वृहत् उद्योगों के जन्म के साथ ही संस्कृति में भयावह परिवर्तन दृष्टव्य हुए। इसका रूप और भी विकराल तब हुआ जब समाज का कल्याण चाहने वाला पूँजीपति वर्ग केवल धनलोलुपता में आकर उपभोक्ता को अपने मोहपाश में बाँधने हेतु उसको राजा की पदवी देते हुए अपने स्वार्थपरक इरादों को उसको दिग्भ्रमित कर पूर्ण करने लगा। यह छलावा आम प्रजा पर भारी पड़ा इसका परिणाम हुआ कि पूंजीपति और धनवान होता चला गया और आमजन सर्वहारा से भी बदतर जीवन जीने लगा।[1]

अन्य राष्ट्रों को एक मंडी अथवा बाजार को देखने वाले औपनिवेशिक महत्वाकांक्षा से प्रेरित लोग प्रलोभन भरे प्रस्तावों के साथ दूसरे राष्ट्रों में मित्र बनकर प्रस्तुत होने लगे और उन्हें इस बात का विश्वास दिलाने में सफल रहे कि वे उनके राष्ट्र एवं संस्कृति से प्रेम करते हैं और उनके हितैषी मित्र नहीं भाई हैं। वास्तविकता तो यह थी कि शक्तिशाली बनकर भारत को हानि पहुँचाने वाला मित्र बनकर दस्तक देने लगा। भारतीय संस्कृति का पवित्र सूत्र 'अतिथि देवो भव' ने इन धूर्त मित्रों को सभी अधिकार देते हुए अनायास ही इतना शक्तिशाली बना दिया कि यह पश्चिमी दोस्त कब पूंजीपति बन जाएगा ऐसा कभी किसी ने सोचा भी ना होगा। संतों, महात्माओं और महापुरुषों की धरती कहा जाने वाला भारत जिसने विश्व को एक से बढ़कर एक सौगात दी है, चाहे वह प्राचीन संस्कृति में छिपे हुए आयुर्वेद के रहस्य हों अथवा सुश्रुत द्वारा किए जाने वाले वे अभ्यास जो मरते हुए व्यक्ति को भी मौत से बाहर खींच लाने में सक्षम थे। ऐसी औषधीय संजीवनी जो मृत्यु के बाद भी प्राणों को पुनः खींच लाने की योग्यता रखती थी। रामायण इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है, जिसमें लक्ष्मण को शक्ति लगने के बाद सुषेन ने जो उपाय बताए उसमें संजीवनी बूटी को फूलों की घाटी से लेकर आना था जिसने अंत में लक्ष्मण के प्राण बचाए और राम को स्वयं के प्राण लेने से मुक्त किया।

विश्व इतिहास में ऐसी बहुत-सी क्रांतियाँ हुई जिनके कारण किसी न किसी राष्ट्र पर उसके सिद्धांतवादी दृष्टिकोण ने करवट ली। गुलाम कहे जाने वाले देश विवेकशीलता के गुण से प्राय अनभिज्ञ थे जिन्हें अपनी वृहद संपदा का बिल्कुल भी ज्ञान नहीं

था केवल अपने जीवन को सुधारने के लिए इन लालच से भरे पश्चिमी देशों को अपने घर में घुसपैठ करने दी। अफ्रीका जैसे देशों का दोहन इसका उदाहरण है। अफ्रीका जैसा देश जहाँ के निवासियों को पानी पीना उपलब्ध नहीं वहाँ उन्हीं के देश में उनकी धरती के अंदर सुरंग खोदकर उन्होंने हीरे निकाले।

दुनिया के श्रमिकों एक हो जाओ, यह नारा देने वाले कार्ल मार्क्स ने जिस समाजवादी सिद्धांत को वह प्रतिपादित करना चाहते थे उसने भी वैश्वीकरण के द्वार खोल दिए। श्रमिक क्रांति ने संसार के सभी श्रमिकों को एक कर दिया। प्रथम विश्व युद्ध ने दुनिया को घातक हथियार दिए वहीं द्वितीय विश्व युद्ध में पूंजीपति देश के नाकामयाब होते हुए चेहरों को इस संसार के समक्ष रख दिया और इसी के परिणाम स्वरूप विश्व बैंक की स्थापना हुई। इसके परिप्रेक्ष्य में अंतरराष्ट्रीय मुद्रा का वह कोष बनाया गया जिसके माध्यम से एक देश दूसरे देश से कर्ज ले सकता था।

साम्राज्यवादी विचारधारा ने युद्धों को जन्म दिया। युद्ध द्वारा एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र द्वारा हथिया लेने पर वह राष्ट्र उस राष्ट्र का गुलाम या उपनिवेश बन जाता था लेकिन अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष ने इस स्वरूप को बदलकर एक नए उपनिवेशवाद को जन्म दिया जिसमें कर्ज के बदले एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र के संसाधनों का मनचाहा दोहन करना था और यह उदारीकरण पूंजीपतियों की ही देन था। भले ही इससे गरीब देश की अर्थव्यवस्था को एक सुदृढ़ता प्राप्त हुई किंतु उसके साथ-साथ आम जनजीवन भी प्रभावित हुआ। विदेशी निवेश ने जनता को रोजगार और बेहतर जीवन के छद्म स्वप्न दिखाए, किंतु इन स्वप्नों ने मोहभंग की स्थिति उत्पन्न कर दी। बुद्धिजीवियों ने इसको नवसाम्राज्यवाद का नाम दिया जिसमें सोवियत संघ पूंजीपति देश के समक्ष उसके विरोध में खड़ा दिखा। सोवियत संघ बहुत से देशों के सहायक के रूप में उभरा। अब विश्व दो गुटों में बंट चुका था। एक गुट सोवियत संघ था और दूसरा अमेरिका। भारत की निरपेक्ष नीति के चलते किसी भी समूह में शामिल होने का संकल्प लिया।[2]

संचार क्रांति ने विश्व का कायाकल्प कर दिया। कंप्यूटर ने विश्व की अर्थव्यवस्था को एक नया मोड़ दिया वहीं इंटरनेट ने संचार की दुनिया में एक बहुत बड़ी क्रांति को जन्म दिया। अब एक देश दूसरे देश से इंटरनेट के जरिए संपर्क बना सकता था।

सोवियत संघ के उदारवादी नीति के कारण सोवियत खरबूजे का टुकड़ों में बंट जाना नब्बे के दशक में हुई एक बहुत बड़ी घटना थी जिसने संपूर्ण विश्व को दो के स्थान पर एक गुट में परिवर्तित कर दिया। सोवियत रूस का विघटित हो जाना सूचना क्रांति के परिणाम स्वरुप हुआ क्योंकि रूस ने सूचना क्रांति को स्वीकार न करते हुए अपने परंपरागत सिद्धांतों को अपनाने में ज्यादा बुद्धिमानी समझी और इस तरह से सूचना क्रांति के एक बहुत बड़े धमाके के साथ सोवियत रूस की अर्थव्यवस्था जो कि पहले से ही जर्जर थी टुकड़े-टुकड़े हो गई।

पश्चिमी पूंजीवादी विचारधारा से ओतप्रोत राष्ट्र जो कि अपने मद में चूर थे, उन्होंने विकराल और घातक हथियारों के जरिए दुनिया में अपना वर्चस्व कायम किया। भारत में भूमंडलीकरण का दौर प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की मृत्यु के बाद आया। तत्कालीन प्रधानमंत्री ने एक नए भारत का स्वप्न के चलते और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से ऋण उठाते हुए अपने देश को आर्थिक संकट से उबारने का प्रयास किया।[3]

नब्बे के दशक में ही उदारीकरण की विचारधारा ने पश्चिमी देशों से आयत के प्रतिबंधों को हटाकर उन्हें मुक्त व्यापार करने की छूट दे दी और इसका परिणाम यह हुआ कि तीसरी दुनिया के देशों में आने वाली भारतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक सुधार हुए। आयात और निर्यात के पारंपरिक तरीकों को बदल कर उन्हें मुक्त कर दिया गया। सीमा पर लगने वाली चुंगी हटा ली गई अथवा कम कर दी गई इससे कीमतें घटी और बाजारवाद का जन्म हुआ।

वैश्वीकरण का एक प्रभाव यह भी हुआ कि विदेशी कंपनियों का निवेश भारत में बढ़ने लगा जिसका रोजगार और भारतीय उत्पादन को बढ़ाने से कोई भी सरोकार नहीं था भारत तो उनके लिए केवल एक ऐसे चारागाह के रूप में था जिसमें उन्होंने अपने पूंजीवादी विचार रूपी पशुओं को मुक्त रूप से चलने के लिए स्वछंद रूप से छोड़ दिया।[4]

उपभोक्तावाद

उपभोक्तावाद एक ऐसी विचारधारा है जिसके अंतर्गत बाजारवादी संस्कृति का केंद्रीय विचार निहित है। औद्योगिक क्रांति और सर्वहारा संघर्ष के बाद मनुष्य को यह समझ में आ गया कि किसी भी देश के संसाधनों का उपयोग कैसे किया जा सकता है औद्योगिक क्रांति ने जहाँ विश्व को एक खुले बाजार के रूप में प्रस्तुत किया वहीं इसके कारण तानाशाही नकारात्मक

विचारधारा के अंतर्गत गरीब देश में संसाधन होने के बावजूद पश्चिमी देशों के कुटिल नीतियों के परिणाम स्वरूप पूर्ण रूप से दोहन किया गया। यह शोषण न केवल मानवीय स्तर पर था अपितु प्रकृति का भी था बाजार में भी संस्कृति के परिपेक्ष में यही औपनिवेशीकरण कारण रहा।

विश्व एक ग्राम की संकल्पना ऐसे ही नहीं आ गई थी, इसके पीछे मार्को पोलो वास्कोडिगामा जैसे लोगों का हाथ था जिन्होंने अपनी समुद्र यात्राओं से एक से दूसरे देश को जोड़ा जहाँ की जो भी संस्कृति की विशेषता रही उसको अपने समृद्ध कोष में संलग्न किया। भारत समेत विश्व के बहुत से देश इस बात का उदाहरण हैं कि इन देशों की विपुल संपदाओं ने दूसरे आक्रमणकारियों को आने का निमंत्रण सहज ही दे डाला। उनका ईश्वर में विश्वास, आस्था ईश्वर को स्वर्ण में सजाए रखने की पवित्र भावना से प्रेरित था लेकिन यह आक्रमणकारी जिन्होंने ऐसा कुछ भी नहीं देखा था उन्होंने हमारे यहाँ की एक-एक ईट को तोड़ डाला और चुराकर अपने साथ ले गए और बाद में वैश्विक स्तर पर इसको अपनी धरोहर माना। चंगेज खान, अहमद शाह अब्दाली, बाबर जैसे बहुत-से आक्रमणकारी हुए जिन्होंने हमारे यहाँ के मंदिरों की नींव तक हिला डाली।

यह कहना कि उदारीकरण या वैश्वीकरण अथवा बाजारवाद आधुनिक युग की देन है यह गलत होगा क्योंकि इसके पीछे की भावनाओं में कहीं ना कहीं किसी न किसी तानाशाह ने करवट ली होगी। प्रत्येक राष्ट्र की कुछ ना कुछ विशेषता अवश्य होती है कहीं हीरे सुंदर मिलते हैं, तो कहीं सोना, तो कहीं कच्चा तेल और कहीं गैस के भंडार, कहीं मिट्टी भी, और कहीं कपड़ा, मसाले बिकते हैं और कहीं केवल सूखे मेवे सोने के भाव बिकते हैं और कहीं फूलों से निकलने वाला केसर किसी राष्ट्र की जान हो जाता है पहचान हो जाता है।

वैश्वीकरण के कारण उदारीकरण का जन्म हुआ और उदारीकरण की नीतियों ने निजीकरण को जन्म दिया। इतना ही नहीं धीरे-धीरे भारतीय अर्थव्यवस्था में भी बदलाव आया और सरकारी संस्थाओं को अंतरराष्ट्रीय दबाव के चलते निजीकरण के हाथों सौंपना पड़ा। औद्योगिक इकाइयों जिनमें सरकारी यातायात के साधन और मार्ग आते हैं वहीं बिजली जैसे उद्योगों को निजीकरण की योजनाओं में के माध्यम से निजीकरण की भेंट चढ़ा देना भी रणनीति का एक हिस्सा है। विश्व मुद्रा कोष से लिया गया कर्ज उतरने की बजाय भारत की अर्थव्यवस्था इस कर्ज की परतों की परतों में उलझ कर रह गई जिसका परिणाम यह हुआ कि विदेशी पूंजीपतियों ने अपनी सरकारों के साथ मिलकर तीसरी दुनिया के देशों के खिलाफ एक नए साम्राज्यवाद का आह्वान किया जिसके अंतर्गत बाजार में उनका सबसे अधिक धन निवेश होना लेकिन अर्थव्यवस्था के उत्थान और रोजगार के अवसर प्रदान करने गरीबों को समाप्त करने का उपाय खोजा गया। इस तीसरी दुनिया के देश में भारत भी अपना स्थान बनाए हुए हैं भारत के पास जहाँ एक बहुत बड़ा मध्यम वर्ग है वहीं भारत की जनसंख्या भी बाजारवाद को जन्म देती है। मध्यमवर्ग जिसके पास की निवेश के लिए पैसा रहता है जो बाजार में पैसा लगा सकता है दूसरे शब्दों में जिसके पास क्रय शक्ति का गुण है। विदेशी कंपनियों को तो इसी मध्यम वर्ग में रुचि रहती है। संचार साधनों के विकास के साथ ही भारत में फिल्म निर्माण के क्षेत्र में भी जोर पकड़ा और इसके साथ-साथ डिश टी०वी० का जन्म हुआ। इस डिश टीवी ने फिर से आम आदमी की जेब को चुपके से हल्का करने की योजना बनाई। समाचार चौनलों की बाढ़ में देश-विदेश की खबरों को लुभावनी थाली में इस प्रकार से परोसा की मध्यम वर्ग जो कर और क्रय में उलझा रहता है वह भी इन चौनलों की बाढ़ में स्वयं को कहीं खो बैठा। सूचना क्रांति के कारण न केवल कंप्यूटर और इंटरनेट साथ ही ओटीटी प्लेटफॉर्म ने जन्म लिया। वही सर्च इंजन की भी तलाश खत्म हुई और गूगल सर्च इंजन के तौर पर हमें घर बैठे निकम्मा बनाने के लिए आ गया सूचनाओं का यह महामार्ग। जिन पुस्तकों को पढ़कर बड़े-बड़े वैज्ञानिकों ने नए-नए आविष्कार किए और नए वैज्ञानिकों को जन्म दिया उन्हीं पुस्तकों का रूप बदला और यह ई-पुस्तकों में तब्दील हो गया और जिन पुस्तकों की मिट्टी छानकर घंटों समय व्यतीत कर बड़े-बड़े साहित्यकारों ने महान सृजन किया वहीं उन्हें किताबों का संकलन स्थल ई-पुस्तकालय में तब्दील हो गए। घर बैठे ही बटन दबाकर हम किसी भी स्थान पर या पर निवेश कर सकते हैं या फिर कहीं भी जाने के लिए टिकट बुक कर सकते हैं उदारीकरण का एक स्वरूप नई-नई एप्स के जरिए देखने को मिला। विदेशी कंपनियों ने भारत में निवेश और सुविधाओं के नाम पर प्लास्टिक मनी को जन्म दिया जिससे एटीएम कार्ड ने आम आदमी की जेब को पूरी तरह से नेस्तनाबूद कर दिया। बहुत-सी विक्रय ऐप्स ने वैश्वीकरण को और बढ़ावा दिया और घर बैठे ही अब गृहणियों अपना मनपसंद सामान मँगवाने की सुविधा प्राप्त हुई। इन लुभाने आकर्षणों ने तीसरी दुनिया के इन देशों की आम जनता को सच्चाई से दूर रखा। समाचार एजेंसियों ने देश की आजादी में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। पहले कहा जाता था कि जो तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो, किंतु अब न तो तोप ही रही और न ही अखबार की पैनी चुभन, अब तो केवल और केवल पेड मीडिया

है और इस पेड मीडिया ने पीत पत्रकारिता को जन्म दिया जिसे केवल शासक पक्ष की तूती बजाई। भले ही खबरों में यह सुना जाए कि विकास के कारण देश तरक्की कर रहा है किंतु सत्य तो यह है कि आज पैदा होने वाला बच्चा भी कर्ज के ढेर तले दबा हुआ है। वाक् स्वातंर्त्य भी इस मुक्त बाजार ने, उदारीकरण की दुनिया ने छीन लिया है। संसार में तानाशाहों का जन्म हर बार होता रहा और हर बार तानाशाही का एक नया रूप देखने को मिला न्याय केवल किताबों की बात बनकर रह गया और आम आदमी इस न्याय की गुहार लगाने वाली अदालत में कहीं खो गया।[5]

सामाजिक संस्कृति और अर्थव्यवस्था पर भी इसका प्रभाव पड़ा। धरती का दोहन हुआ कोयला खजाने खाली हुए और धरती की गुफा से यूरेनियम जैसे बहुमूल्य पदार्थों को छीन कर पूंजीपतियों के हवाले कर दिया गया और इस तरह से औद्योगिक इकाइयों के नाम पर लगाए गए उद्योग धंधे केवल और केवल पूंजीपति वर्ग का पोषण करने लगे। सब्सिडी को समाप्त करना भी इसी के क्रम में एक बहुत बड़ी दुर्घटना थी। निजीकरण के कारण सब्सिडी समाप्त हुई। गरीब जनता को मिलने वाला राशन कार्ड भी अनाज और ईंधन उपलब्ध नहीं करवा पाता। उस पर पीले और गुलाबी कार्ड की आड़ में राजनीति के नाम पर वोट बटोरे जाने लगे। वैश्वीकरण की नीतियों ने अर्थव्यवस्था की आत्मनिर्भरता पर भी गहरी चोट पहुँचाई। एक आंकड़े के अनुसार भारत के लगभग आधी से अधिक आबादी 20 रुपये से भी कम में गुजारा करती है। महंगाई की मार में 20 रुपये एक बहुत बड़ी रकम है ऐसा संसद में सुना गया।[6] विदेशी माल और विदेशी कंपनियों के आने से भारतीय माल और भारतीय कंपनियों की उपयोगिता घट गई और खूबसूरत पैकिंग को देखकर ग्राहक भी और आकर्षित हुआ।

मुक्त बाजार की नीति ने बड़े-बड़े डिपार्टमेंटल स्टोर और शॉपिंग मॉल को जन्म दिया जिनमें बिग बाजार, मेगा मोर ऐसे बहुत से नाम हैं। एसटीडी फोन और पत्र का स्थान मोबाइल फोन ने ले लिया। फल-सब्जियाँ और दैनिक जीवन की वस्तुओं पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का एकाधिकार भारत को कृषिप्रधान राष्ट्रों की श्रेणी से च्युत करके संपूर्ण बाजारीकरण का अस्तित्व कायम करने की पूर्णत: तैयारी कर चुका है। अब यह कंपनियाँ किसानों के खेत खरीदकर किसान को ही अपने पास काम पर रखकर 'फार्म फ्रेश' का नारा देकर वस्तुओं का बाजारीकरण कर उपभोक्ताओं को अपनी ओर आकर्षित करने लगी। आज भी भारत की अधिकांश जनता निरक्षर और भूख से पीड़ित है। यथार्थ स्थिति का बोध करवाते कुछ आंकड़ों के अनुसार महाराष्ट्र जैसे क्षेत्र से अध्यापक और प्राध्यापकों के पत्रों में सोमवार को मिड डे मील अधिक भेजा जाना चाहिए जैसी प्रार्थना के परोक्ष में कारण बताया गया कि बच्चा कई बार शनिवार और इतवार को भोजन नहीं कर पाता।[7]

भारतीय संस्कृति और वैश्वीकरण का मेल बहुत अनूठा है भारतीय समाज ने इसे स्वीकार किया और इसके कंधों पर चढ़कर स्वयं को भी गौरव प्रदान किया वास्तविकता तो यही है कि आत्मनिर्भर बनने वाला भारत अपने तैयार माल से खुद को ही पूरी तरह से संतुष्ट नहीं कर पाया।

उपभोक्तावाद ने भारतीय बाजार को आधार बनाकर एक ऐसे संस्कार को जन्म दिया जिसमें युवाओं के हाथ में पारंपरिक भोजन का स्थान विदेशी पकवानों ने ले लिया। पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण करते हुए युवा वर्ग अपनी इच्छाओं को पूरी करने के लिए अपराध की ओर अग्रसर हुआ। उपभोक्तावाद ने विज्ञापन के जरिए दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की की। नारी की छवि अधिक रुपहली हुई। नारी की एक अलग छवि विज्ञापन की दुनिया में देखने को मिली।[8] उपभोक्तावाद ने न केवल संस्कृति को जर्जर स्थिति में पहुँचाया अपितु पर्यावरण और प्रकृति माँ को भी क्षति पहुँचाने से हिचकिचाए नहीं। हर वर्ष सुर्खियों में वायु की गुणवत्ता क्षमता के घटने और संकट के स्तर तक पहुँचने की खबरें रहती हैं। अब गर्मी और शरद ऋतु के अवकाश को वर्ष आरंभ होने से पहले ही आरंभ हो जाती लेकिन मानव ने इनमें वृद्धि करते हुए प्रदूषण की छुट्टियाँ भी जुड़ चुकी हैं। इस गंभीर समस्या की ओर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है। गाँव जो भारत की जीवनरेखा माने जाते हैं शहरों ने उन्हें केवल उपेक्षा दी। शहर जहाँ पूर्ववत् ही सुविधाएँ उपलब्ध करवाई गई यह सोचकर कि लोग आकर यहाँ प्रसन्नता से काम कर सकें परन्तु अति तब हुई जब गाँव इनके भ्रमित आकर्षण में फँसकर अपने जीवन को बेहतर करने की इच्छा से नगरों के विस्तार में एक बहुत कड़ी बने स जिससे प्रदूषण, संसाधनों का दोहन और आपूर्ति की बढ़ती माँग के कारण पर्यावरण दूषित हुआ। सुविधाजन्य मशीनों ने आम जनजीवन को सरल बनाया किंतु बढ़ते कूड़े के ढेर, मल के निष्कासन के लिए व्यवस्था न होने तथा पानी और भोजन की बढ़ती माँग ने एक ऐसे संकट को उत्पन्न कर दिया जिससे प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को असुरक्षित समझने लगा। भू-माफिया, जल-माफिया तथा रेत-माफिया ने धरती के सौंदर्य को नष्ट कर दिया। यातायात के साधनों ने जहाँ कूड़े के निष्कासन हेतु सागर को गंदा किया वहीं मशीनों और इंजन से रिसने वाले तेल ने मछलियों और जलीय जीवों के स्वर्ग से सुंदर संसार को। घर-घर पानी के लिए नलों, हैंडपंप की व्यवस्था ने कुओं और बावड़ियों को भुला दिया और परिणाम हुआ

जल संकट। वैश्वीकरण ने इंटरनेशनल स्कूलों को कुकुरमुत्ते की भांति जन्म दिया और इन स्कूलों में अपने बच्चों को पढ़ाने की होड़ और उनके खोते हुए बचपन की ओर देखने का समय स्वयं अभिभावकों को भी नहीं रहा। महँगी फीस ने निजी प्रतिष्ठानों को तो फलने-फूलने दिया पर उससे आम आदमी का व्यक्तित्व ही नहीं आत्मा भी प्रभावित हुई।

खुले बाजार की नीति ने न केवल उदारीकरण को जन्म दिया उसके बाद उसके साथ-साथ संप्रदायवाद को भी जन्म दिया और इस संप्रदायवाद की आग को भड़काने का काम निजी संचार की दुनिया ने किया जिससे एक मानव दूसरे मानव का शत्रु बन बैठा स मीडिया का यह निरंकुश रूप सभी के लिए प्रताड़ना का कारण बना। सम्प्रदायवाद की विभीषिका ने जहाँ एक समृद्ध राष्ट्र को दो हिस्सों में विभाजित होने के लिए मजबूर किया वहीं इसी सम्प्रदायवाद की अग्नि को सदैव सुलगते देने का काम किया। राजनीतिकरण के कारण संप्रदाय के मायने ही बदल गए धर्म का निरंकुश रूप राष्ट्रवाद और संप्रभुता के नाम पर भुनाया जाने लगा।

इतने सारे जोखिमों के बावजूद भारत की उन्नति का द्वार इसी वैश्वीकरण और उदारीकरण का परिणाम है। भारत विश्व व्यापार में स्वालंबन के उदाहरण से स्वयं को सिद्ध करने में सक्षम हुआ। विदेशी निवेश से हमने उद्योग धंधों को सुदृढ़ता प्रदान करते हुए आत्मनिर्भरता की मिसाल कायम की। नए निवेशो ने बाजार को सबलता दी तो युवाओं को तकनीक और उद्यम के क्षेत्र में काम करने का अवसर प्रदान किया। वैश्वीकरण की सफलता का एक अन्य उदाहरण है कि विश्व के कई देशों ने भारत को सस्ते और उपयोगी सैटेलाईट के निर्माता के रूप में चुना। भारत ने अपने हस्तकरघा उद्योगों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक पहचान दिलाई तथा नई खादी ने विदेशियों के मन में एक उत्तम वस्त्र निर्माता के श्रेष्ठ स्थान पर आसीन किया। पंचवर्षीय योजनाओं का विदेशी सहयोग गाँवों को उन्नत बनाने में तथा एक मॉडल गाँव बनाने में कारगर हुआ साथ ही जापान जैसे राष्ट्र द्वारा कुछ गाँवों को सुधार कार्यक्रम के अंतर्गत गोद लिया स मेक इन इंडिया के बिगुल ने स्व-रोजगार और व्यवसायों को जन्म दिया स युवाओं में आत्म-विश्वास का पुनः जन्म हुआ और नौकरी करने की बजाय नौकरी देने के दृढ़ संकल्प ने भारत की जीडीपी को बढ़ाने में मदद की। अपने देश में निर्मित आयुध, मशीनों, दवाओं और यंत्रों से भारत आत्मनिर्भर बना।

वैश्वीकरण के परिणाम भले ही भूमंडलीकरण के दौर में आरंभ में उपयुक्त न रहे हों किंतु सिक्के के दो पहलुओं की भांति यह पूर्णतः एक तरफा नहीं हो सकते। किसी भी बात का केवल नकारात्मक पक्ष हो ऐसा संभव नहीं अपितु आँखों पर ऐसे चश्मे लगाकर देखने की आवश्यकता भी है जो स्थिति को समझने और समझाने के लिए आवश्यक है।

संदर्भ सूची

1. राम शरण जोशी, इक्कसवीं सदी के संकट, राजकमल प्रकाशन, 2008
2. सुभाष धूलिया, प्रस्तावना, संचार क्रांति की राजनीति और विचारधारा, ग्रंथ शिल्पी, पृ० सं० 8
3. रुद्रदत्त, भूमंडलीकरण का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, बिजेंद्र कुमार, हिंदी पत्रकारिता और भूमंडलीकरण, पृ० सं० 38
4- Eric Toussaint, The Concentration of Capital, Your money of your life, Tr. Raghu Krishna, Vikas Adhyaya Kendra, p. 19
5. अरुंधति राय, नोम चोमस्की की तनहाइयाँ, नव साम्राज्य के नए किस्से, अनु० जितेन्द्र कुमार, पृ० 39
6. पी० साईनाथ, झूठ बोलने की संरचनागत बाध्यता, अनु० अभिषेक श्रीवास्तव, समयांतर पत्रिका, सं० पंकज बिष्ट, अंक-5, फरवरी, 2011, पृ० 35
7. पी० साईनाथ, झूठ बोलने की संरचनागत बाध्यता, अनु० अभिषेक श्रीवास्तव, समयांतर पत्रिका, सं० पंकज बिष्ट, अंक-5, फरवरी, 2011, पृ० 36
8. सुधीश पचौरी, मीडिया और महिला: दूसरे चरण के प्रश्न, साइबर स्पेस और मीडिया, पृ० 87

भारत में स्त्री शिक्षा की स्थिति एवं समाज पर प्रभाव

डॉ० धर्मेन्द्र कुमार भारतीय

(असि० प्रोफेसर) बी० एड० विभाग, हंडिया पी० जी० कालेज, हंडिया, प्रयागराज

सारांश

आज स्त्रियों शिक्षा प्राप्त करके समाज के महत्वपूर्ण कार्यो में पुरुषों के साथ योगदान कर रही है। वे आज घर की चहारदिवारी के अंदर घुटकर भाग्य के भरोसे बैठी अनपढ़ कठपुतली मात्र नहीं है वरन वे अज्ञानता के आवरण से बाहर आकर तथा ज्ञान के आलोक में परिपूर्ण होकर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरूषों से स्पर्धा करने के लिए तत्पर है। वास्तव में वर्तमान समय में स्त्रियों में क्रांतिकारी परिवर्तन तथा महिला सशक्तिकरण का प्रमुख स्त्री शिक्षा के प्रचार प्रसार को है। महिलाओं को भी पुरुषों की तरह शिक्षा संबंधी गतिविधियों में बराबरी का मौका दिया जाना चाहिए। उन्हें शिक्षा से जुड़ी किसी भी तरह की कार्यवाही से दूर रखना क्रूरता के समान है। हमारे देश की आधी जनसंख्या का प्रतिनिधित्व महिलाएं करती है। अगर महिलाएं अपनी शिक्षा पूरी नहीं कर पायी तो इसका मतलब है की हमारे देश का विकास भी अधूरा है जो देश को पिछडेपन की ओर ले जायेगा। महिलाओं के शिक्षित होने से समाज और देश में विकास भी तेजी से हो पायेगा। महिलाओं के लिए शिक्षा के महत्व को व्यापक स्तर पर फैलाने के लिए पूरे देश का विकास कर सकती है। महिला शिक्षा को दर कम दर कम होने की ही वजह से जनसंख्या के मामले में हमारा देश पूरे विश्व में दूसरे नंबर पर आता है। अगर महिला खुद शिक्षित होगी तो देश का आने वाला भविष्य भी शिक्षित होगा। महिला शिक्षा मध्यकालीन भारत में बहुत बड़ा मुद्दा था हालाँकि आज यह मसला काफी हद तक सुलझ चुका है। भारत में अब महिला शिक्षा को पुरुष की शिक्षा की ही तरह अहमियत दी जाती है ताकि महिलाएं भी सामाजिक और आर्थिक स्तर पर सकारात्मक बदलाव ला सकें पुराने जमाने में महिलाओं को घर से बाहर निकलने की इजाजत नहीं थी। शिक्षा के नाम पर वे सिर्फ घरेलू कामकाजों तक ही सीमित थी।

संकेत शब्द- भारत में स्त्री शिक्षा, स्थिति, समाज पर प्रभाव

प्रस्तावना- प्राचीनकाल में नारी की स्थिति:- भारत में प्राचीन काल से स्त्रियों की शिक्षा को विशेष महत्व दिया जाता था क्योंकि स्त्री जीवन के हर पहलू में पुरुष का साथ देती है । वैदिक साहित्य में गार्गी, मैत्रयी, आत्रेय, शकुन्तला आदि अनेक विदुषी स्त्रियों की चर्चा मिलती है। इस समय नारी शिक्षा अत्यंत सीमित थी तथा केवल समाज के संभ्रात परिवारों की लड़कियाँ ही शिक्षा प्राप्ति के अवसरों का सदुपयोग कर पाती थी। उस समय स्त्रियों के लिए पृथक शिक्षा संस्थाओं की कोई व्यवस्था नहीं थी और न ही उस काल में रित्रियों की शिक्षा के लिए कोई सुरांगठित व्यवस्था थी। फिर भी प्राचीन काल में मैत्रयी, लोपमुद्रा, अपाला, शैव्या, सीता, उर्मिला, विद्योत्तमा, चुडाला जैसी अनेक नारियों ने अपनी विद्वता, त्याग एवं समर्पण का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया। बौद्धकाल में प्रारंभिक वर्षो में स्त्रियों को प्रवेश नहीं दिया जाता था, परंतु बाद में महात्मा बुद्ध ने स्त्रियों को संघ के रूप में प्रवेश करने की अनुमति देकर स्त्री शिक्षा को एक नया आयाम दिया, जिसके कारण स्त्री शिक्षा को एक नया जीवन मिला। उस समय के संघमित्रा जैसी विदुषी नारियों के नाम विशेष उल्लेखनीय है। शिक्षा केवल धनी-मनी व कुलीन घरानों तक ही सीमित थी। स्वतंत्रता के उपरांत नारी शिक्षा के मार्ग में आनेवाली बाधाओं को जानने तथा उसका समाधान प्रस्तुत करने हेतु अनेक समितियों एवं आयोगों का गठन किया गया।

नारी शिक्षा की वर्तमान स्थिति:- सन् 1947 में स्वाधीनता प्राप्त करने के उपरांत महिलाओं की सामाजिक तथा शैक्षिक स्थिति में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। अज्ञानता, परतंत्रता, रूढिवादिता तथा असहायता के बंधनों से मुक्त होकर भारतीय स्त्रियाँ आज एक सम्मानजनक जीवन जी रही है। स्त्रियों से संबंधित सामाजिक मान्यताएं बदल रही है। भारतीय संविधान में पुरूषों तथा स्त्रियों को पूर्ण स्वरूप सम्मान दर्जा देते हुए भी शिक्षा के प्रसार पर बल दिया गया। स्वतंत्रता के उपरांत नारी शिक्षा के मार्ग में आनेवाली बाधाओं को जानने तथा उसका समाधान प्रस्तुत करने हेतु अनेक समितियों एवं आयोगों का गठन किया गया।

नारी शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्वः- मानव समाज में नारी शिक्षा का विशिष्ट महत्व है क्योंकि कोई भी काम चाहे सामाजिक हो या आर्थिक या सांस्कृतिक या राजनैतिक हो, बिना स्त्री के पूर्ण नहीं होता। एक अच्छे समाज के निर्माण का आधार भी नारी है। नारी समाज निरंतरता तथा उत्पादकता का भी प्रमुख आधार है। वास्तव में संपूर्ण समाज के निर्माण एवं विकास की संभावनाएँ नारी पर ही निर्भर है। इसलिए नारी शिक्षा की अवहेलना करना समाज के प्रति अन्याय करना है

नारी शिक्षा की समस्याएँः- निःसंदेह स्वतंत्र भारत में स्त्रियों की स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए है। इसके बावजूद भी स्त्री शिक्षा की वर्तमान स्थिति को संतोषप्रद स्वीकार नहीं किया जा सकता है। वर्तमान में नारी शिक्षा के मार्ग में निम्नलिखित समस्याएँ है।

- शैक्षिक अवसरों की समानता की समस्या,
- कन्याओं के शिक्षा के प्रति उचित दृष्टिकोण
- अपव्यय तथा अवरोधन की समस्या,
- दोषपूर्ण पाठयक्रम,
- दोषपूर्ण प्रशासन,
- अध्यापको का आभाव,
- आर्थिक समस्या,
- व्यवसायिक तथा तकनीकी शिक्षा की कमी

स्त्री शिक्षा की समस्याओं के समाधान तथा स्त्री शिध्क्षा के प्रचार हेतु विभिन्न आयोगों एवं समितियों के सुझाव-

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोगः- इस आयोग ने स्त्री शिक्षा को बल देते हुए लिखा है कि शिक्षित स्त्रियों के बिना शिक्षित स्त्री नहीं हो सकती। स्त्रियों की शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जिससे वे सुमाता एवं गृहिणी बन सके।

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952):- इस आयोग ने बालक-बालिकाओं के पाठ्यक्रम में विभिन्नता लाने पर विशेष जोर नहीं दिया किंतु बालिकाओं को गृह विज्ञान के अध्ययन की सुविधा प्रदान करने का विशेष बल दिया। अध्यापिकाओं को सेवा सुविधा देने का भी सुझाव दिया।

दुर्गाबाई देशमुख समिति (1958)- स्त्री शिक्षा की समस्या तथा समाधान करने पर विचार करने के लिए सन् 1958 में भारत सरकार ने दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में राष्ट्रीय महिला शिक्षित समिति का गठन किया जिसे समिति का अध्ययन के नाम पर इसे दुर्गाबाई देशमुख समिति कहकर भी पुकारा जाता है। इस समिति का प्रमुख कार्य स्त्री से संबंधित विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करके उनके समाधान हेतु सुझाव देना है।

हंसा मेहता समिति (1962):- सन् 1962 में राष्ट्रीय महिला शिक्षा परिषद् ने विद्यलय स्तर पर बालक तथा बालिकाओं के पाठ्यक्रम में अंतर होने अथवा नहीं होने की महत्वपूर्ण समस्या पर विचार करने हेतु श्रीमती हंसा मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया जिसे अध्यक्षा के नाम पर हंसा मेहता समिति कहा जाता है। इस समिति ने सुझाव दिया है कि विद्यालय स्तर पर बालक तथा बालिकाओं के पाठ्यक्रम में अंतर नहीं होना चाहिए।

भक्त वत्सलम् कमेटी रिपोर्ट (1963):- भक्त वत्सलम् कमेटी ने स्त्री शिक्षा के संदर्भ में कई प्रकार के सुझाव दिये। बालिकाओं के विद्यालयों में यथासंभव अध्यापिकाएँ नियुक्त हो, अध्यापिकाओं की कार्य परिस्थिति आकर्षक बनाई जाए, ग्रामीण क्षेत्रों में अंशकालीन अध्यापिकाओं को लगाया जाए, महिला निरीक्षक का प्रबंध हो तथा एच्छिक विषय की व्यवस्था लड़कियों की रूचि एवं कार्य क्षेत्र के अनुरूप हो।

कोठारी कमीशन (1964-66):- सन् 1964 में डॉ0 दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग, जिसने अपने प्रतिवेदन सन् 1966 में दिया था, ने भी महिला शिक्षा की समस्या पर विचार किया तथा अपने सुझाव प्रस्तुत किया। कोठारी आयोग ने मानव संसाधनों को विकास परिवारों की उन्नति तथा बालकों की चरित्र निर्माण में पुरूषों की अपेक्षाओं महिलाओं की शिक्षा को अधिक महत्वपूर्ण माना।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986):- शिक्षा प्राप्त करने में स्त्रियाँ दूसरों का अनुकरण न करें अपितु स्त्रियोचित शिक्षा प्राप्त करें। शिक्षा संस्थानों का पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जिसे स्त्रियाँ सामान्य समाज में अपना सम्मानजनक स्थान ग्रहण कर सके। माता-पिता की खराब आर्थिक स्थिति 'कई तरह की सामाजिक पाबंदी' घर में माता-पिता या सास-ससुर का कहना मानने का दबाव 'ऊंची शिक्षा हासिल करने की अनुमति ना होना' बचपन में संक्रमण रोग से लड़ने की प्रयाप्त शक्ति की कमी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020):- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में महिलाओं के लिए विशेष प्रावधानों को देखते हुए सहज ही कहा जा सकता है कि यह शिक्षा नीति महिलाओं के लिए अति उपयोगी सिद्ध होगी। छात्रा सुरक्षा एवं अधिकाधिक छात्रवृतियाँ महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने को प्रेरित करेगी। लिंग समावेशी फंड, परिसर में पृथक शौचालय, पृथक महिला छात्रावास, अत्यधिक सुरक्षित विद्यालय महाविद्यालय, मुक्त साईकिल स्कूटी आदि महिलाओं की शिक्षा क्षेत्र में संख्या में इजाफा करेगी। कहा जा सकता है महिला शिक्षा क्षेत्र में इस नीति में सजगता बरती गई है।

सुझाव-

- बालिकाओं के प्रति हिंसा और अपराध को देखते हुए उनकी सुरक्षा के लिए और अधिक प्रभावी कदम उठाए जाए ताकि विद्यालयों में बालिकाओं का पंजीयन बढ़े।
- स्त्रियों के प्रति सामाजिक मापदंडो का पुनः मुल्याकन किया जाकर उन्हें भी पुरूषों के समान अधिकार दिए जाएं ताकि वे स्वतंत्र निर्णय ले सके।
- घरेलु कार्यों की प्राथमिकता की सामाजिक सोच को बदलकर महिलाओं को शिक्षा मन्दिर तक पहुंचाने की प्रभावी योजनाएं क्रियांवित की जाए।
- शिक्षा के सभी क्षेत्रों में लिंग-संतुलन को बढ़ावा दिया जाए।
- सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़ी महिलाओं की शिक्षा पर तुलनात्मक अधिक ध्यान केन्द्रित किया जाए।
- सभी शिक्षण संस्थानों में महिला सुरक्षा, भेदभाव अथवा उत्पीड़न नियमों को सख्ती से लागू किया जाए।

भारत की उन्नति के लिए महिलाओं का शिक्षित होना बहुत जरूरी है क्योंकि अपने बच्चों की पहली शिक्षक माँ ही होती है जो उन्हें जीवन की अच्छाईयों और बुराइयों से अवगत कराती है। अगर नारी शिक्षा को नजरंदाज किया गया तो देश के भविष्य के लिए यह किसी खतरे से कम नहीं होगा। एक अनपढ़ महिला में वो काबिलियत नहीं होती जिससे वह अपने परिवार, बच्चों का सही ख्याल रख सके। इस कारण आने वाली पीढ़ी कमजोर हो जाएगी। हम महिला साक्षरता के सारे लाभ की गिनती तो नहीं कर सकते पर इतना जरूर कर सकते है की एक शिक्षित महिला अपने परिवार और बच्चों की जिम्मेदारी को अच्छे बुरे का ज्ञान दे सकती है, सामाजिक तथा आर्थिक कार्य करके देश की प्रगति में अपना योगदान दे सकती है।

महिला शिक्षा की बेहतरी के लिए निम्नलिखित योजनायें भारत सरकार द्वारा चलाई जा रही है

सर्व शिक्षा अभियान इंदिरा महिला योजना बालिका समृद्धि योजना महिला समृद्धि कोश रोजगार तथा आमदनी हेतु प्रषिक्षण केन्द्र' महिलाओं तथा लड़कियों की प्रगति के लिए विभिन्न कार्यक्रम भारत में महिला शिक्षा को प्रभावित करने वाले निम्नलिखित कारण है 'कुपोशण तथा भरपेट खाना न मिलना' नाबालिंग उम्र में यौन उत्पीड़न।

सर्व शिक्षा अभियान क्या है- सर्व शिक्षा अभियान एक राष्ट्रीय योजना है जिसे भारत सरकार द्वारा चलाया जा रहा है इसका उद्देश्य 8 साल तक 6 से 14 वर्ष के बच्चों को उत्तम शिक्षा देने का है। पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी द्वारा शुरू की गयी इस योजना का मुख्य लक्ष्य है। 2002 तक देश के सभी जिलों में शिक्षा को पहुँचाना। 2003 तक सभी बच्चों का स्कूल में दाखिला करवाना। 2007 तक सभी बच्चों की न्यूनतम 5 साल की शिक्षा अनिवार्य करना। 2010 तक सभी बच्चे अपनी 8 साल की शिक्षा पूरी कर चुके हो इसको सूनिष्चित करना।

निष्कर्षः- आज के समय में भारत महिला साक्षरता के मामले में लगातार प्रगति कर रहा है। हिन्दुस्तान के इतिहास में भी बहादूर महिलाओं जिक्र किया गया है। मीराबाई, दुर्गावती, अहिल्याबाई जैसी कुछ मषहूर महिलाओं के साथ साथ वेदों के समय की महिला दर्षनवास्त्री गार्गी विस्वबरा, मैत्रयी आदि का भी उदाहरण इतिहास का पन्नों में दर्ज है। ये सब महिलाएं प्रेरणा का स्त्रोत थी। समाज और देश के लिए दिए गयें उनके योगदान को हम कभी नहीं भूल सकते। भारत में महिला साक्षरता नए जमाने की अहम जरूरत है। महिलाओं के शिक्षित हुए बिना हम देश के उज्जवल भविष्य की कल्पना भी नहीं कर सकते। परिवार,

समान और देश की उन्नति में महिलाओं की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। भारत के लोकतंत्र को सफल बनाने का एकमात्र रास्ता यही है। की महिलाओं तथा पुरुषों को शिक्षा हासिल करने के लिए बराबरी को हक दिया जाए। शिक्षित महिलाएं ही देश, समाज और परिवार में खुषहाली ला सकती हैं यह कथन बिलकुल सत्य है। की एक आदमी सिर्फ एक व्यक्ति को ही शिक्षित कर सकता पर एक महिला पूरे समाज को शिक्षित कर सकती है। जिससे पूरे देश को शिक्षित किया जा सकता है। एक महिला अपनें जीवन में माँ बेटी, बहन, पत्नी जैसे कई रिश्तों को निभाती है। किसी भी रिश्ते में बंधने से पहले यह महिला देश की आजाद नागरिक है तथा वह उन सब अधिकारों की हकदार है जो पुरुष को मिले हुए है। उन्हें अपनी इच्छा अनुसार शिक्षा ग्रहण करने को हक है जिससे वे अपने मनपसंद क्षेत्र में कार्य कर सके। महिलाओं को अपने पैरों पर खड़ा करने तथा आत्मनिभर बनाने में शिक्षा सहायता करती है। शिक्षा न सिर्फ महिलाओं को अपने पैरों पर खड़ा करने तथा आत्मनिर्भर बनाने में शिक्षा सहायता करती है। शिक्षा न सिर्फ महिलाओं का समाज में उच्च शिक्षा स्तर करती है। बल्कि महिलाओं के प्रति समाज की उस संकीर्ण सोच जिसमें उन्हें माँ बाप पर बोझ की तरह देखा जाता था को भी खत्म करती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वतंत्रता के उपरांत भारत में नारी शिक्षा के प्रति कुल प्रचलित संकुचित दृष्टिकोण को समाप्त करने का प्रयास किया गया है। आज भारत में पुरुषों के समान स्त्रियों को शैक्षिक अधिकार प्राप्त है। आज महिलाएं, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षिक क्षेत्रों में पुरुष के समान सक्रिय रूप से भाग ले रही है। केंद्र व राज्य सरकार के द्वारा बालिकाओं के शिक्षा के संदर्भमें अनेक प्रकार की योजनाओं को लागू किया गया है जिससे बालिकाओं की सुव्यवस्थित शिक्षा की राह में आ रही कठिनाईयों का निवारण हो सके।

संदर्भ ग्रंथः-

1. गुप्ता, एस०पी० तथा अल्का गुप्ता, (2008)- भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्यायें. इलाहाबाद, हि शारदा पुस्तक भवन।
2. प्रोग्राम ऑफ एक्शनः नेशनल पॉलिसी ऑन एजुकेशन, 1986
3. योजना, जनवरी 2016 अंक, लोधी रोड, नई दिल्ली।
4. शिक्षण स्त्र मरिअम वेबस्टर ऑनलाइन शब्दकोश से परिभाषा Mark "Levels of Teaching". Learning Classes online . LCO. "Shikshan ka safar ", Learning Classes online .
6. राजस्थान शिक्षा राजस्थान के शिक्षा संबंधी समाचारों को समर्पित बेवसाइट
5. ज्ञानगंगा
7. शिक्षा विकास पीडिया

सतसईकार तुलसीराम शर्मा 'दिनेश' की शिल्प चेतना

शर्मिला यादव

सहायक प्रोफेसर, आई०बी० स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, पानीपत

हरियाणा, साहित्य-सृजन की उर्वर भूमि हैं। इस धरती पर अनेक साहित्यकारों ने जन्म लेकर हिन्दी साहित्य भण्डार में श्रीवृद्धि की है। प्राचीन काल से आजतक के अनेक साहित्यकारों के सुनाम गिनाये जा सकते है जिन्होंने नाना विधात्मक साहित्य की सृजना की है। आधुनिक काल के महत्त्वपूर्ण कवियों में तुलसीराम शर्मा दिनेश का अग्रगण्य है, उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण साहित्य-ग्रन्थों की रचना की है।

'कथ्य' एवं 'शिल्प' एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यदि कथ्य का सम्बन्ध किसी रचना के आतरिक स्वरूप से है तो शिल्प का सम्बन्ध रचना के बाह्य स्वरूप से है।

कथ्य के साथ-साथ साहित्यकार को गाथा में वैशिष्ट्य भरना भी होता है। रचना को सुष्ठु और सम्प्रेषणीय बनाने के लिए रचनाकार की शिल्प चेतना पर विशेष ध्यान देना होता है।

1. शिल्पः अर्थ एवम् परिभाषा

'शिल्प' शब्द की व्युत्पति 'शील' धातु में 'प' प्रथम जोडने से हुई है। शील का अर्थ है- ध्यान करना, पूजन करना, अर्चन करना, अभ्यास करना। 'प' प्रयोग पीने वाले के अर्थ में होता है।[1] इस प्रकार शिल्प का अर्थ है- शैली, कार्य पद्धति, विशेष उपाय, यंत्र चातुर्य प्रविधि। इसके अतिरिक्त कला आदि कर्म, कारीगिरी, दक्षता, हस्तकर्म, रूप, आकृति, निर्माण, सृष्टि को भी शिल्प का ही पर्याय स्वीकार किया गया है।[2]

वस्तुतः शिल्प शब्द अंग्रेजी के टेकनीक का हिन्दी रूपान्तर है, जिसका अर्थ है- रचना पद्धति या रचना तन्त्र शिल्प, ढाचा, रूप आदि इसके अन्य पर्यायवाची है। प्रामाणिक हिन्दी कोश के अनुसार रूप (शिल्प) के कई अर्थ है जैसे बनावट, गठन आकृति, लक्षण अवस्था, दशा सौंदर्य आदि।[3]

शिल्प (सप) के सीमित तथा व्यापक दोनों अर्थों को समाहित करते हुए डॉ० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल तरुण का मत है कि रूप (शिल्प) प्रायः सीमित व व्यापक दोनो ही अर्थों में प्रयुक्त होता है। सीमित अर्थों में वह ढांचा या बाह्य आकृति मात्र का और व्यापक अर्थों में काव्य या साहित्य मे अभिव्यक्ति पक्ष मात्र का घोतक है।[4]

किसी भी विषय अथवा कथ्य को कहने अथवा व्यक्त करने के लिए जो विधि, रीति या प्रणाली काम में लाई जाती है उसे शिल्प विधि कहते है। शिल्प विधि को रचना तन्त्र भी कहते है। डॉ० ओम के शब्दों में, ''अपनी मनोगत भावनाओं को रूपायित करने के लिए कलाकार जो विधि, ढंग या तरीका अपनाता है, वही रूपायन विधि उस कला की शिल्प विधि के नाम से प्रख्यात हो जाती है।"[5]

वस्तुतः शिल्प विधि विषय वस्तु को कला के रूप में ढालने की प्रक्रिया है। डॉ० कैलाश वाजपेयी के अनुसार, ''काव्य कृति के निर्माण में जिन उपादानों द्वारा काव्य का ढांचा तैयार किया जाता है, वे सब काव्य के शिल्प तत्त्व कहे जाते है।"[6]

यहाँ यह ध्यातव्य है कि कथ्य एवम् शिला दोनों अन्योन्याश्रित हैं। किसी ने ठीक कहा है- कथ्य शिल्प में संचरित रहता है तो शिल्प कथ्य को पूर्णतया वहन करके चलता है। वस्तुतः कलाकार कला का सृजन करते समय कथ्य एवम् शिल्प को विभाजित रूप में नहीं देखता अपितु दोनों के मिश्रण से ही कला की रचना करता है। विलियम कोनर के अनुसार, ''रूप तो विचार और गुणवता का बाहरी परिधान है, इसलिए प्रकट है कि यह रूप शिल्प) जितना ही विचारानुकूल होगा, उतना ही यह उत्कृष्ट होगा।"[7]

वास्तव में कथ्य एवम् शिल्प दोनों एक दूसरे पर निर्भर है तथा एक दूसरे के पूरक है। शिल्प की सार्थकता इस पर निर्भर करती है कि वह विचारानुकूल हो। जिस प्रकार शरीर और आत्मा को अलग नहीं किया जा सकता उसी प्रकार कथ्य एवम् शिल्प को अलग नहीं किया जा सकता।

2. 'श्याम सतसई' में शिल्प चेतना के विविध आयाम

काव्य के क्षेत्र में शिल्प का अर्थ है- कवि के जागरूक एवं सचेष्ट प्रयत्नों की मूर्त सिद्धि। वस्तुतः कवि शिल्प का प्रयोग अपने भावों, विचारों के मूर्तीकरण के लिए करता है। डॉ० कैलाश वाजपेयी के अनुसार, काव्य के क्षेत्र में शिल्प का प्रयोग काव्य शिल्प के अन्तर्गत आती है।[8] वास्तव में कवि की अनुभूति का कलात्मक रूपायन काव्यशिल्प कहलाता है। श्याम सतसई काव्य शिल्प की दृष्टि से एक सुन्दर रचना है। इस में काव्य शिल्प के विविध उपादानों का सुन्दर समावेश है प्रस्तुत रचना की शिल्प चेतना को विविध उपादानो के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है-

भाषा सौष्ठव

भाषा, भावों की अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन होती है और भाषा के माध्यम से ही कोई कवि अपने हृदयस्थ भावो को श्रोता था पाठक के समीप पहुंचाता है। यहा यह ध्यातव्य है कि कवि की अनुभूति जितनी गहन होगी, उसकी अभिव्यक्ति भी उतनी ही गहन और प्रभावशाली होगी। यही कारण है कि कवियों का भाषा पर असाधारण अधिकार देखा जाता है।

कविवर 'दिनेश' खड़ी बोली के प्रकांड पंडित थे। उनकी भाषा सहज, सरल, भावानुकूल माधुर्य स्वम् सौदर्य से ओत-प्रोत है। वह कही भी क्लिष्ट एवम् बोझिल नही जान पड़ती। उनके सभी छंद सरिता की धारा के समान प्रवाहमान जान पड़ते हैं। श्याम सतसई के भाषा सौष्ठव को निम्न उपादानों के आधार पर व्यक्त किया जा सकता है।

(क) तत्सम -

'तत्सम' दो शब्दों के मेल से बना है- तत् सम अर्थात उसके (मूल) भाषा के समान। संस्कृत के शुद्ध व मूल शब्दों को तत्सम कहा जाता हौं' 'श्याम सतसई' में तत्सम शब्दों का प्रयोग इस प्रकार हुआ है - धर्म, सजल, पुष्प, शिशु, अनमोल, श्रृंगार, केश, अहकार, युक्ति, निर्मल, कटुता, करुणा, कत्तिन, उदार, काव्य, वैभव, मधुरता, सांत्वना, समता, भूषण, अतिथि, दर्पण, विराग, निष्काम, सन्ताप, सुत, विश्वम्भर, सदुल, आत्मनिष्ठ, विस्तारक, अलौकिक आदि।

(ख) तद्भव -

'तद्भव' शब्द वे है जो तत्सम शब्दो से बिगडकर बने है। सतसई में तद्भव शब्दों का प्रयोग इस प्रकार हुआ है- मोर, जोगी, दाँत, हाथ, आँख, आसू, जमुना, पसार आदि।

(ग) देशज -

देशज शब्द क्षेत्रीय था आचलिक शब्द होते है। उनकी व्युत्पत्ति अज्ञात होती है। सतसई मे प्रयुक्त देशज शब्द इस प्रकार है-

घुँघरू, झाँई, सुहाली, चोखी, गठ, गारी, खाबो, पीबो, हँसिबो चौतरो, पैतरों आदि।

(घ) विदेशी शब्द -

विदेशी भाषाओं से हिन्दी में आए हुए शब्दों को विदेशी शब्द कहते है। कविवर दिनेश ने अपनी 'सतसई' में अरबी फारसी, अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग इस प्रकार किया है।

अरबी-फारसी शब्द - पर्दा, खूब, गजब, कमाल, नशा, हैरान, दीन, खुफिया, हकीम, बेहाल आदि।

अंग्रेजी शब्द - हाई कोर्ट, फुटबाल, टेलीफोन, आदि कवि ने अपनी वाणी में अहीरवाटी हरियाणवी व ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग भी किया है।

मुहावरा सौष्ठव

मुहावरे किसी वाक्य के अंश होते है। काव्य की व्यंजना शक्ति और सौदर्य चेतना के संवर्धन में मुहावरों का विशेष महत्व होता है। वस्तुतः, मुहावरे किसी भाषा के श्रृंगार होते है। भाषा को सशक्त, प्रवाहमान, गतिशील व व्यंजनापूर्ण बनाने के लिए

मुहावरों का प्रयोग किया जाता है। मुहावरे अर्थवान होते है जो थोडे से शब्दों में मर्म पर सीधी चोट करते हैं। कविवर दिनेश मे भाषायी सौष्ठव एव अर्थ गांभीर्य की सृष्टि हेतु अपने काव्य में अनेक मुहावरों का प्रयोग किया है। कवि द्वारा प्रयुक्त विशिष्ट अलंकारों का प्रयोग दृष्ट्य है

1. जगत खाक में सो गया, हीरा मन अनमोल (खाक होना)[9]
2. इसलिए मैं छानता, जग की धूल अतोल (छूल छानना)[10]
3. सहज निशाद पद प्रदा, तेरे पद की धूल (पैरों की धूल होना)[11]
4. हाथ न जोशी को दिखाना, दिखा जगत को हाथ।[12]
5. दाँत दिखा मत जगत को (दाँत दिखाना)[13]
6. धन को छाती मत लगा, ठुकरा भी मत यार। (छाती से लगाना)[14]

अलंकार सौष्ठव

आचार्य जगन्नाथ के अनुसार रमनीयार्थ प्रतिपादक शब्दः काव्य अर्थात् रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द ही काव्य होते हैं। काव्य में अलंकारों की योजना इस उद्देश्य को सामने रखकर की जाती है। दण्डी ने के काव्य के शोभाकारक धर्म[15] को अलकार की सज्ञा दी है तो वामन ने अलकार को सौन्दर्य का पर्याय मानकर उसी काव्य को ग्राहय बताया है जो अलंकार युक्त हो।[16] कविवर दिनेश का संवेदना पक्ष जितना गम्भीर और विस्तृत है उसी प्रकार उनका अभिव्यक्ति पक्ष उतना ही प्रखर और लालित्यपूर्ण है। कविवर दिनेश ने काव्य परम्परा के अनुरूप शब्दालंकारों व अर्थालकारो का सुष्ठु प्रयोग किया है। यथा

1. शब्दालंकार

1. अनुप्रास - जहाँ पर वर्षों की समानता हो वहा अनुप्रास अलंकार होता है। भावोद्रेक नादोंत्मेष, तथा प्रभावान्वित के लिए अनुप्रास अलंकार की उपेक्षा नहीं सकती। कविवर दिनेश ने अनुप्रास का अनेक स्थलों का प्रयोग किया। यथा तेरी सुन्दर सांवरी, सहज सलोनी मूर्ति।[17]

2. यमक अलंकार -

जहाँ पर एक ही शब्द की दो या दो से अधिक बार आवृत्ति हो तथा हर बार भिन्न-भिन्न अर्थों की प्रतीति हो, वहाँ यमक अलंकार होता है यथा-

उसे खोजने के लिए मत जा तू हरिद्वार।
तेरा अंतकरण ही, है सांचा हरिद्वार।।[18]

यहा 'हरिद्वार' शब्द की दो बार आवृत्ति हुई है तथा दोनो बार अर्थ में भिन्नता है। पहले हरिद्वार स्थान का नाम है तथा दूसरे हरिद्वार का अर्थ हरि का द्वार है।

3. पुनरुक्ति प्रकाश -

अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाने के लिए जहां एक शब्द की दो बार आवृत्ति हो, वहां पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार होता है। यथा-

मन पारस के पास बस कण-कण यों भीख।
पासस को छूकर अरे, भ्रातृभाव तू सीख।।[19]

उक्त पतियों में कण-कण शब्दों में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।

4. वीप्सा अलंकार -

आदर, आश्चर्य, आतुरता, पीड़ा, शोक आदि भावो की गहन व्यजना के लिए जहाँ शब्दों की आवृत्ति होती है, वहा वीप्सा अलंकार होता है। यथा-

उधो! माखन खात ही, उठत करे जै पीर।
छिप-छिप कर रोवै अरे, मिलै न कितहूँ धीर।।[20]

उक्त पंक्तियो में छिप छिप शब्दों में भावावेग की अतिशय तीव्रता के कारण वीप्सा अलकार है।

5. अर्थालंकार –

अर्थालंकारों के अन्तर्गत निम्नलिखित अलकारों का सौन्दर्य दृष्टव्य है–

1. उपमा अलंकार – जहाँ एक वस्तु की दूसरी वस्तु के साथ किसी गुण, धर्म, तथा स्वरूप के कारण समानता दिखाई जाती है, वहां उपमा अलंकार होता है। उपमा में चार बातें आवश्यक है उपमेय, उपमान, वाचक शब्द, साधारण धर्म। ये चारों कभी शब्दों द्वारा उल्लेखित होते है, और कभी नहीं होते अर्थात् छिपे रहते हैं। तब इनका अध्याहार करना पड़ता है। 'श्याम सतसई' में प्रयुक्त उपमा के दृष्ख्य प्रयोग।

नहीं प्रकृति–सी पतिव्रता, जग ने न्यारी अन्य
भूक पगु पति की सदा, करती टहल अनन्य।[21]

उपर्युक्त दोहे में 'सी' शब्द के प्रयोग से उपमा की सृष्टि हुई है

2. रूपक अलंकार – जहाँ एक वस्तु पर दूसरी वस्तु का आरोप किया जाए अथवा जहा उपमेय और उपमान में अभेदात्मकता व्यंजित की जाए, वहाँ रुपक अलंकार होता है। श्याम सतसई में इस अलंकार का प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ हैं। यथा

लेते गोदी क्यों नहीं, तुम मुझको हे नाथ।
देह–चौतरे पर खड़ा, मैं फैलाये हाथ।।[22]

उपर्युक्त दोहे में 'देह–चौतरे' में रूपक अलंकार की छटा देखी जा सकती है।

3. उत्प्रेक्षा अलंकार – जहाँ उपमेय में उपमान की सम्भावना की जाती है, वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। इसमें मानो, मनु, मनहुँ, जानौ, जनु इत्यादि उत्प्रेक्षा वाचक शब्दों का प्रयोग होता है। श्याम सतसई में उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग इस प्रकार हुआ है–

कृष्ण नाक में लटकती, सुन्दर सरस बुलाक।
मानो शुक है खा रहा, पकी तोड़कर दाख।

उपर्युक्त पद में में 'मानो' शब्द के प्रयोग से उत्प्रेक्षा अलंकार है।

4. विभावना अलंकार – जहां कारण के न होने पर भी कार्य सम्पन्न हो जाए, वहाँ विभावना अलंकार होता है।

श्याम सतसई में विभावना अलंकार का प्रयोग दृष्टव्य है

सच्चे स्नेही का प्रकट, मक्खी प्रबल प्रभावा
बिना अनल ही स्नेह में, होम किये निज प्राण।।[24]

निष्कर्ष–

निस्संदेह श्याम सतसई शिल्प की दृष्टि से अनुपम रचना है। शिल्प का अर्थ है– कथन की चातुरी था प्रस्तुतीकरण की कला। वस्तुतः शिल्प कवि के भागवत वैशिष्ट्य का बाह्य उपकरण हैं। कविवर दिनेश ने भाषा, अलंकार, आदि शिल्पगत उपादानों के द्वारा अपने काव्य को सजाया और संवारा हैं। कवि ने खड़ी बोली का प्रयोग किया है तथा इसे अपने पांडित्य से भाषा को सहज, सरल व भावानुकूल प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। भाषा में तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशज शब्दों के प्रयोग के साथ मुहावरों का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है। कवि ने शब्दालंकारों व अर्थालंकारों का भी सटीक प्रयोग किया है। अलंकार भाषा बोझिल नहीं बनाते अपितु प्रभावपूर्ण एवं संवेदनीय बनाते हैं।

सन्दर्भ सूचि

1. सम्पादक द्वारिका प्रसाद शर्मा, प्रारिशीर्ष सा संस्कृत शब्द कौस्तुभ पृ० 56–60
2. सम्पादक कालिका प्रसाद, बृहत् हिन्दी कोश, पृ० 750
3. सम्पादक रामचन्द्र वर्मा प्रामाणिक हिन्दी कोश प्र०. 87
4. डॉ० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल, जयशंकर प्रसादः वस्तु और कला पृ० 2.
5. डॉ. भीम शुक्ल, हिन्दी उपन्यास की शिल्प विधि का विकास, पृष्ठ 8

6. डॉ. कैलास वाजपेयी, आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, पृ० 19
7. विलियम कोनर, फार्मस ऑफ फिक्शन, पृ० 1
8. ई० कैलाश वाजपेयी, आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, पृष्ठ-7
9. श्याम सतसई, पृ० 27
10. श्याम सतसई, पृ० 27
11. श्याम सतसई पृ० 33
12. श्याम सतसई पृ० 49
13. श्याम सतसई पृ० 50
14. श्याम सतसई पृ०
15. काव्य शोभा कराम धर्मान लका प्रचक्षते (दंडी, काव्यादर्श, 281)
16. सौदर्यलंकारः। काव्यग्राह्यमलंकारात्। (वामन, काव्यालंकार सूत्रवृति 18181-2)
17. श्याम सतसई पृ० 4.
18. श्याम सतसई पृ० 2
19. श्याम सतसई पृ० 5
20. श्याम सतसई पृ० 91
21. श्याम सतसई पृ० 24
22. श्याम सतसई पृ० 17
23. श्याम सतसई पृ० 5
24. श्याम सतसई पृ० 36

कारागार पुस्तकालयः इसकी भूमिकाएँ और चुनौतियाँ

डॉ० संगीता सिंह

प्राध्यापक, सामाजिक विज्ञान विभाग (पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान), डॉ. सी. वी. रमन विश्वविद्यालय, कोटा, बिलासपुर, छत्तीसगढ़

अन्वया पांडेय

शोधार्थी, सामाजिक विज्ञान विभाग (पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान), डॉ. सी. वी. रमन विश्वविद्यालय, कोटा, बिलासपुर, छत्तीसगढ़

सारः इस शोधपत्र का शीर्षक है कारागार पुस्तकालय इसकी भूमिकाएँ और चुनौतियाँ। पढ़ना एक सार्वभौमिक अधिकार है। आज के समाज में सभी को बेहतर पुस्तकालय और सूचना सेवाएँ प्रदान करने की आवश्यकता को देखते हुए, कारागार पुस्तकालय की स्थापना बहुत जरूरी है। इस शोधपत्र में कारागार पुस्तकालय की भूमिका के साथ-साथ चुनौतियों पर भी चर्चा की गई है। इन पुस्तकालयों की कैदियों के जीवन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। इन पुस्तकालयों के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कर्मचारियों और अधिकारियों के सामने कई चुनौतियाँ हैं। यदि अधिकारी मानकों और दिशा-निर्देशों का पालन करें, बुद्धिमानी से अपनी कार्ययोजना बनाएँ और उसे ठीक से क्रियान्वित करें, तो लक्ष्य हासिल किए जा सकते हैं।

कीवर्डः कारागार पुस्तकालय

परिचयः पुस्तक से अधिक वफादार कोई मित्र नहीं होता। एक अच्छी पुस्तक एक अच्छी मार्गदर्शक, मित्र, शिक्षक और एक बढ़िया साथी होती है। पुस्तकालय, जो अच्छी पुस्तकों और अन्य ज्ञानवर्धक और मनोरंजक संसाधनों का केंद्र है, उपयोग के लिए सुलभ बनाया जाता है, सलाखों के पीछे या सुधार कक्षों में काम करने वाले लोगों के बीच सामाजिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक कल्याण का निर्माण कर सकता है। सुधार संस्थानों के अंदर एक ऐसा माहौल बनाना महत्वपूर्ण है, जिससे इन संस्थानों का उद्देश्य पूरा हो सके यानी कैदियों को समाज में सामान्य बनाना और फिर से एकीकृत करना। जेलों या सुधार संस्थानों में कैदी जेल संस्कृति के संपर्क में आते हैं। अगर उन्हें अच्छी किताबें, मास मीडिया आदि तक पहुँच मिलती है, तो हम उन्हें बाहर के जीवन के लिए तैयार कर सकते हैं। सामान्यीकरण और पुनर्वास की इस कार्यवाही में महत्वपूर्ण उपकरण कारागार पुस्तकालय है। कारागार पुस्तकालय का प्रावधान कैदियों को सलाखों के पीछे अपने व्यक्तित्व को बेहतर बनाने में मदद करता है।

कारागार पुस्तकालय मानक और दिशानिर्देशः किसी भी संस्था की स्थापना के लिए मानकों और दिशा-निर्देशों की आवश्यकता होती है। इसलिए कारागार के लिए भी इन पुस्तकालयों की स्थापना, विकास और प्रबंधन के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मानक और दिशा-निर्देश मौजूद हैं। इंटरनेशनल फेडरेशन ऑफ लाइब्रेरी एसोसिएशन और इंस्टीट्यूशंस (IFLA) के अनुसार; "प्रत्येक संस्था में सभी श्रेणियों के कैदियों के उपयोग के लिए एक पुस्तकालय होना चाहिए, जिसमें मनोरंजन और निर्देशात्मक दोनों तरह की किताबें पर्याप्त मात्रा में हों और कैदियों को इसका उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।" IFLA दिशा-निर्देश इस धारणा के साथ विकसित किए गए थे कि सभी नागरिक चाहे वे आम जनता हों या कैदी, उन्हें जानकारी का उपयोग करने का अधिकार है। और कैदियों के लिए, पुस्तकालय कारागार के अंदर स्थित होने चाहिए ताकि उन्हें बिना किसी बाधा के पढ़ने की सामग्री तक पहुँच मिल सके। इसके अलावा, कारागार पुस्तकालय कारागार का एक अनिवार्य और अभिन्न अंग होना चाहिए और कैदियों को इसका उपयोग करने के लिए पर्याप्त समय मिलना चाहिए। इसके अलावा, पुस्तकालय को बौद्धिक स्वतंत्रता, जिज्ञासा और पढ़ने की क्षमता के माहौल को बढ़ावा देना चाहिए। उत्तरदायित्व और सांस्कृतिक समझ को बढ़ावा देना चाहिए और कैदियों को समाज में पुनः प्रवेश के लिए तैयार करने में उनकी मदद करनी चाहिए। कैदियों के लिए पुस्तकालय सेवाओं के लिए IFLA मानक और दिशानिर्देश इस उद्देश्य से विकसित किए गए हैं कि वे अलग-अलग देशों के लिए अपने स्वयं के मानकों और दिशानिर्देशों को विकसित करने और संशोधित करने के लिए एक मार्गदर्शक के रूप में काम करें जो उनकी स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल हों। इन सामान्य सिद्धांतों के तहत, IFLA अच्छी

पुस्तकालय सेवाओं और सुविधाओं के लगभग सभी पहलुओं को कवर करने की कोशिश करता है, जिसमें संग्रह विकास, कर्मचारियों के स्तर और उनकी योग्यता, भौतिक बुनियादी ढाँचा, उपकरण और पुस्तकालय के लिए धन के लिए नीतियाँ और प्रक्रियाएँ शामिल हैं।

कारागार पुस्तकालयों की भूमिका/महत्वः कारागार पुस्तकालय की मुख्य भूमिकाएँ क्या हैं? जैसा कि हम सभी जानते हैं कि अलग-अलग उद्देश्यों के लिए अलग-अलग प्रकार के पुस्तकालय होते हैं, जैसे शैक्षणिक पुस्तकालय, विशेष पुस्तकालय, सार्वजनिक पुस्तकालय, आदि। कारागार पुस्तकालयों की भूमिकाएँ सार्वजनिक पुस्तकालयों के लगभग समान ही होती हैं। कारागार पुस्तकालय कैदियों और आम जनता दोनों को शिक्षित करने, अपराध की पुनरावृत्ति को कम करने और पढ़ने के माध्यम से उनमें पारिवारिक बंधन को बेहतर बनाने में मदद करते हैं। शिक्षा कैदियों में सजा पूरी करने के बाद रिहा होने के बाद समाज में वापस आने के लिए कौशल विकसित कर सकती है और पुस्तकालय उन्हें ये कौशल सीखने में मदद करने के लिए सबसे आगे हैं। इस उद्देश्य के लिए ये विशेष पुस्तकालय जीवन कौशल, साक्षरता कक्षाएं और पुस्तकालयों का उपयोग कैसे करें आदि पर कक्षाएं जैसे कई कार्यक्रम प्रदान कर सकते हैं। शैक्षिक अवसरों के अलावा, कारागार पुस्तकालय इन कैदियों को अपने परिवारों के साथ सकारात्मक और सार्थक संबंध विकसित करने में मदद कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, पुस्तकालय अपने कार्यक्रमों के माध्यम से कैदियों को किताबें प्रदान करते हैं ताकि वे उन्हें अपने बच्चों और पोते-पोतियों को पढ़कर सुना सकें। कैदियों को वही पठन सामग्री दी जा सकती है जो उनके बच्चे और पोते-पोतियाँ पढ़ रहे हैं, ताकि उनके पास बात करने के लिए कुछ समान हो। यहाँ तक कि कैदियों को अपनी भावनाओं को रिकॉर्ड करने के लिए रंगीन किताबें और क्रेयॉन रंग आदि दिए जा सकते हैं, जिन्हें उनके परिवारों को भेजा जा सकता है और इसके विपरीत, कारागार पुस्तकालयों की एक और महत्वपूर्ण भूमिका है यानी समान रुचि वाले कैदियों को संपर्क में लाना। इन पुस्तकालयों के लाइब्रेरियन पुस्तक क्लब बना सकते हैं और सामुदायिक सेवा परियोजनाएँ भी शुरू कर सकते हैं। यह मंच कैदियों को अपनी वर्तमान स्थितियों से छुटकारा पाने के लिए ऐसी रचनात्मक गतिविधियों में शामिल होने में मदद करता है। यहाँ तक कि लाइब्रेरियन उन्हें आगे की चर्चाओं के लिए उनकी रुचि के विषयों का मार्गदर्शन भी करते हैं। कारागार पुस्तकालय सुधार केंद्रों पर स्कूल पाठ्यक्रम सहायता गतिविधि विकसित कर सकते हैं, जहाँ पुस्तकालय पाठ्यपुस्तकों के पूरक के रूप में सामग्री उपलब्ध करा सकते हैं और कक्षा की गतिविधियों में सुधार कर सकते हैं और किशोरों को उनकी सजा पूरी करने के बाद फिर से अपनी पढ़ाई में शामिल होने में मदद कर सकते हैं। यहाँ तक कि ये पुस्तकालय विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन भी कर सकते हैं जो कैदियों को उनके व्यक्तित्व को निखारने में मदद कर सकते हैं जैसे क्रोध नियंत्रण प्रबंधन पर कार्यक्रम आदि।

कारागार पुस्तकालय की चुनौतियांः हमारे आधुनिक समाज में कारागार पुस्तकालयों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। लेकिन इन पुस्तकालयों के सामने कई चुनौतियाँ भी हैं। कोई भी पुस्तकालय स्वतंत्र रूप से काम नहीं कर सकता, यही बात कारागार पुस्तकालयों के मामले में भी लागू होती है। यह स्वतंत्र रूप से काम नहीं करता बल्कि कारागार के नियंत्रित वातावरण में काम करता है। कारागार के अपने मिशन और सुरक्षा नीतियाँ होती हैं जो अक्सर पुस्तकालय पेशे की आचार संहिता यानी सूचना तक मुफ्त पहुँच के साथ टकराव में आ जाती हैं। कारागार पुस्तकालयों के लाइब्रेरियन सबसे बड़ी चुनौती का सामना कर रहे हैं कि कारागार के नियंत्रित वातावरण में सूचना को स्वतंत्र रूप से कैसे उपलब्ध कराया जाए, जहाँ दैनिक जीवन के लगभग सभी पहलू कारागार के नियमों और विनियमों द्वारा नियंत्रित होते हैं। एक और चुनौती जिसका लाइब्रेरियन को सामना करना पड़ता है, वह है कैदियों की विविध सूचनात्मक जरूरतों को पूरा करना जो अलग-अलग क्षेत्रों से आते हैं और एक साथ रहने के लिए मजबूर होते हैं। इन पुस्तकालयों के लिए प्रौद्योगिकी का उपयोग फिर से सबसे चुनौतीपूर्ण मुद्दा है। प्रौद्योगिकी हमें घर बैठे दूसरों के संपर्क में रहने में मदद करती है। लेकिन अगर कैदियों को इंटरनेट और अन्य तकनीकों का उपयोग करने की अनुमति दी जाती है, तो यह एक बड़ी आपदा का कारण बन सकता है। लेकिन दूसरी ओर, हमें कैदियों को उनकी शिक्षा और व्यक्तिगत विकास के लिए उपयोगी व्यापक जानकारी तक पहुँचने से नहीं रोकना चाहिए। यदि उचित योजना और नियंत्रण उपाय किए जाते हैं, तो वास्तव में उनकी आवश्यक जानकारी तक पहुँच प्रदान करना संभव है। ऐसे पुस्तकालयों में कर्मचारियों, धन और स्थान की कमी अन्य महत्वपूर्ण समस्याएँ हैं। ऐसी परिस्थितियों में जहाँ कर्मचारी और धन सीमित हैं, बुनियादी सेवाएँ प्रदान करना अपने आप में एक बड़ी चुनौती है, फिर भी पुस्तकालयाध्यक्षों को कुछ गतिविधियाँ और कार्यक्रम शुरू करने का प्रयास करना होगा जो इन पुस्तकालयों के लक्ष्यों को प्राप्त करने में मदद करें, अर्थात कैदियों में अपने व्यक्तित्व को पहचानने और अपने परिवार और समाज के साथ सार्थक संबंध और बंधन स्थापित करने की क्षमता विकसित करना। इसके लिए पुस्तकालय कर्मचारियों को कैदियों को इन गतिविधियों और कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित और राजी करना होगा।

पुस्तकालय कर्मचारियों का सकारात्मक रवैया बहुत जरूरी है। वित्तपोषण एजेंसियों को कारागार पुस्तकालयों को प्राथमिकता पर रखना होगा ताकि कर्मचारियों को नवीनतम जानकारी प्रदान करने में मदद मिल सके। कुछ अन्य बाधाएं हैं समय, ऐसे पुस्तकालयों के लिए सामग्री का चयन, आदि। ऐसे पुस्तकालयों के लिए पठन सामग्री का चयन करना एक बड़ी जिम्मेदारी है।

निष्कर्ष: यह बिल्कुल स्पष्ट है कि एक अच्छी तरह से भंडारित, अच्छी तरह से स्थापित कारागार पुस्तकालय कैदियों की आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है। पुस्तकालय उतना ही अच्छा है जितना कि पेशेवर पुस्तकालय कर्मचारी इसे बनाते हैं। इन पुस्तकालयों और उनके कर्मचारियों को उनकी पूरी क्षमता बढ़ाने के लिए सुविधा प्रदान करने के लिए, अधिकारियों और आम जनता से अधिक व्यावहारिक और नैतिक समर्थन की आवश्यकता है। एक कुशल, अच्छी तरह से शिक्षित और भावुक कर्मचारियों का होना एक सफल कारागार पुस्तकालय की कुंजी है। यह हमारे समाज की एक बड़ी समस्या है कि वे इन सेवाओं और सहायता के पीछे के उद्देश्य को नहीं समझते और उसकी सराहना नहीं करते हैं। लेकिन अगर सरकार पहल करे और समाज को इन पुस्तकालयों के उद्देश्यों के बारे में जागरूक करे, तो उद्देश्य को प्राप्त करना आसान हो जाएगा। कारागार पुस्तकालय में काम करना एक चुनौतीपूर्ण काम है जिसके लिए लचीलेपन, दृढ़ता, भावनात्मक परिपक्वता, ध्वनि निर्णय, हास्य की भावना और तनाव को संभालने की क्षमता की आवश्यकता होती है। किसी के जीवन में सकारात्मक बदलाव लाना वास्तव में एक संतुष्टिदायक पुरस्कार है। यह एक नेक काम है और ऐसा कोई दूसरा काम नहीं है जो इतनी संतुष्टि देता हो।

संदर्भ :

- गैलर, ऐनी एम. (1997)। लाइब्रेरी स्कूल में वंचित व्यक्तियों के लिए लाइब्रेरी सेवाओं का समावेशन पाठ्यक्रम, IFLA जर्नल 23 (516)।
- जूडिथ जोर्डेट। प्रो-सोशल संस्था के रूप में जेल लाइब्रेरी
- कैसर, फ्रांसेस ई., एड., (1995)। कैदियों के लिए लाइब्रेरी सेवा के लिए दिशानिर्देश, दूसरा संशोधित संस्करण। द हेग: IFLA।
- लेहमैन, वी. और लोके, जे (2005) IFLA कैदियों के लिए लाइब्रेरी सेवाओं के लिए दिशानिर्देश। तीसरा संस्करण। द हेग: IFLA
- लेहमैन, वी. (2011)। अमेरिकी जेल पुस्तकालयों में चुनौतियाँ और उपलब्धियाँ। लाइब्रेरी ट्रेंड्स, 59(3)
- महमूद, बासित। जेल लाइब्रेरी: अक्सर अनदेखी की जाती है, फिर भी सुधार और पुनर्वास मे महत्वपूर्ण है।

चोल सिंहल संघर्ष एवं चोल आधिपत्य का श्रीलंका पर प्रभाव

व्योमेश यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, एस आर के (पीजी) कॉलेज, फिरोजाबाद, उ0प्र0

चोल शासकों ने अपनी सुदृढ़ सैन्य शक्ति एवं कुशल प्रशासनिक संगठन के बल पर दक्षिण भारत में दीर्घ अवधि तक महाशक्ति के रूप में शासन किया। इन साम्राज्यवादी राजाओं ने दक्षिण भारत के विस्तृत क्षेत्र में ही नहीं वरन् श्रीलंका तथा दक्षिण-पूर्वी एशिया के द्वीपों तक अपने प्रभुत्व का विस्तार किया।

साम्राज्य विस्तार के इस क्रम में चोल राजाओं का अपने पड़ोसी देश श्रीलंका के साथ निरंतर संघर्ष होता रहा। चोल-सिंहल संघर्ष के विस्तृत विवेचन से पूर्व इस संघर्ष की पृष्ठभूमि का ज्ञान आवश्यक है जो दक्षिण भारत में ही तैयार हुई। चोल शासक नवीं-दसवीं शती में अपनी शक्ति का विस्तार कर रहे थे। उस समय दक्षिण भारत में चोल राजवंश के प्रमुख प्रतिद्वंद्वी पांड्य शासक थे। चोल शासक परान्तक प्रथम 907 ई0 में सिंहासनासीन हुआ। अपने राज्यारोहण के कुछ ही समय पश्चात उसने पांड्य राज्य पर आक्रमण कर दिया। इस संघर्ष एवं इसके परिणामों की सूचना सिंहली ग्रंथ 'महावंश' तथा गंग शासक पृथ्वीपति के 921-22 ई0 के उदयेन्दिरम् ताम्रपत्रों से प्राप्त होती है। इस युद्ध के दो चरण थे-प्रथम चरण में परान्तक प्रथम ने पांड्य शासक राजसिंह द्वितीय को परास्त कर पांड्य राजधानी मदुरा पर अधिकार कर लिया। इस विजय के उपलक्ष्य में परान्तक प्रथम ने 'मदुरैकोंड' (मदुरा का विजेता) उपाधि धारण की।

महावंश के विवरणानुसार प्रथम युद्ध में चोलों द्वारा परास्त होने के पश्चात राजसिंह द्वितीय ने सिंहल के शासक कस्सप पंचम से सहायता मांगी जिसके उत्तर में कस्सप ने सक्क के नेतृत्व में नौकाओं द्वारा अपनी सेना भेज दी। 915 ई0 के लगभग मदुरा के दक्षिण-पश्चिम में स्थित वेल्लूर नामक स्थान पर परान्तक ने राजसिंह व कस्सप की सम्मिलित सेनाओं को पराजित किया। महावंश में वर्णित है कि महामारी के कारण पांड्य सेना का काफी विनाश हुआ और कस्सप ने अपनी सेना वापस बुला ली। युद्ध के इस द्वितीय चरण का उदयेन्दिरम् ताम्रलेख में अति विशद् वर्णन प्राप्त होता है तदनुसार परान्तक की सेना ने पांड्यों की सेना के बहुत से पदातियों, अश्वों तथा हाथियों का विनाश किया और साथ ही श्रीलंका के राजा द्वारा भेजी गयी सेना का भी विनाश करके 'संग्राम राघव' की उपाधि धारण की।[1] इस पराजय के उपरान्त राजसिंह द्वितीय ने पुनः श्रीलंका जाकर वहां के राजा दप्पुल चतुर्थ से सहायता मांगी। दप्पुल चतुर्थ स्वयं ही एक दुर्बल शासक था और स्वयं ही आंतरिक विद्रोह से कष्ट में था अतः उसने पाण्ड्य शासक की सहायता करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की। राजसिंह द्वितीय अपना मुकुट, राजदण्ड, कुछ बहुमूल्य रत्न तथा आभूषण दप्पुल चतुर्थ के पास रखकर दक्षिण भारत लौट आया। ये वस्तुएं आगे चलकर चोल सिंहल संघर्ष का कारण बनी।[2]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि चोल शासक सिंहली शासकों से इसलिए कटु थे क्योंकि उन्होंने पाण्ड्यों की चोलों के विरुद्ध सहायता की थी। इस संघर्ष का एक कारण पांड्य राजा राजसिंह द्वितीय का मुकुट और राजदण्ड और बहुमूल्य रत्न भी थे। जिन्हें 'चोल शासक' अपनी विजय के चिन्ह के रूप में प्राप्त करना चाहते थे। इसके अतिरिक्त साम्राज्य का विस्तार करने की अभिलाषा और श्रीलंका जैसे महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र को अधिकृत करना भी चोल-सिंहल संघर्ष का प्रमुख कारण रहा। वस्तुतः यह संघर्ष दो शासकों का नहीं वरन् दो राजवंशों का संघर्ष था जो पीढ़ी दर पीढ़ी एक शताब्दी से भी अधिक समय तक चलता रहा।

चोल-सिंहल संघर्ष का प्रथम चरण परान्तक प्रथम द्वारा पांड्य राजा का मुकुट, राजदण्ड एवं रत्नादि की प्राप्ति हेतु सिंहल पर आक्रमण करने से आरंभ हुआ। चूल वंश के अनुसार श्रीलंका के राजा उदय चतुर्थ के समय परान्तक ने ये राजचिह्न प्राप्त करने का प्रयत्न किया किन्तु उदय चतुर्थ राजमुकुट और दूसरी वस्तुएं लेकर रोहण भाग गया। परान्तक प्रथम ने अनुराधपुर पर अधिकार कर लिया किन्तु इसी बीच चोल साम्राज्य पर राष्ट्रकूट कृष्ण द्वितीय के आक्रमण के कारण परान्तक प्रथम को अपने राज्य की रक्षार्थ वापस आना पड़ा। उदयचतुर्थ ने पुनः अनुराधपुर पर अधिकार कर लिया। जिस समय परान्तक प्रथम राष्ट्रकूटों

से संघर्ष में व्यस्त था, सिंहल के शासक ने अपने सेनापति को चोल राज्य पर आक्रमण करने भेजा। सिंहली सेनानायक ने चोल राज्य के सीमावर्ती क्षेत्र में लूटपाट की और लौट गया।[3] यद्यपि इस चरण में कोई पक्ष निर्णायक रूप से विजयी नहीं हुआ तथापि चोल शासक का पक्ष अपेक्षाकृत भारी रहा।

परान्तक प्रथम के पश्चात उसके पौत्र सुंदर चोल परान्तक द्वितीय के समय भी यह संघर्ष जारी रहा। परान्तक द्वितीय ने अपने सेनापति सिरियावेलार के नेतृत्व में विशाल सेना श्रीलंका भेजी। चोल सेना को सिंहली सेना ने सेनापति सेना के नेतृत्व में परास्त किया। इस युद्ध में चोल सेनापति युद्ध में मारा गया।[4] महावंश के अनुसार सुंदर चोल परान्तक द्वितीय को सिंहली शासक महिन्द चतुर्थ से प्रतिकूल शर्तों पर संधि करनी पड़ी। महिन्द चतुर्थ का पुत्र सेन पंचम अयोग्य और दुर्बल शासक था। अल्पायु में ही उसकी मृत्यु हो गयी। अत: वह चोलों को कोई क्षति नहीं पहुंचा सका। उसके पश्चात महिन्द पंचम सिंहल का राजा बना, यह भी एक निर्बल शासक था। महिन्द पंचम के समय सिंहल में सैनिक विद्रोह हो गया। इस विद्रोह से उत्पन्न अराजकता का लाभ चोल शासक राजराज र्प्रथम ने उठाया और अपनी सेना सिंहल भेजकर अनुराधपुर पर विजय प्राप्त कर ली। इस प्रकार 993 ई. में उत्तरी श्रीलंका चोल साम्राज्य का एक प्रान्त बन गया।[5] तिरुवालंगाडु लेख में राजराज प्रथम की तुलना श्रीलंका विजयी राम से की गयी है।[6] श्रीलंका की राजधानी अनुराधपुर नष्ट कर चोल प्रशासन के अंतर्गत अनुराधपुर के दक्षिण-पूर्व में स्थित पोलोन्नरूवा को नवीन राजधानी बनाया गया। भौगोलिक दृष्टि से पोलोन्नरुवा की स्थिति प्राचीन राजधानी से अधिक केन्द्रवर्ती थी। राजराज की उपाधि 'जननाथ' के नाम से नवीन राजधानी का नामकरण 'जननाथपुर' या 'जननाथमंगलम्' किया गया। राजराज ने श्रीलंका के उत्तरी क्षेत्र राजरठ्ठ का नाम मुम्मुडि-चोलमण्डलम् रख दिया और मतोता का क्षेत्र राजराजपुर कहा जाने लगा।[7] राजराज प्रथम के काल में श्रीलंका के उत्तरी क्षेत्र ही चोलों के अधीन थे किन्तु उसके पुत्र राजेन्द्र प्रथम ने श्रीलंका पर पूर्ण विजय प्राप्त की। महावंश के विवरणानुसार राजेन्द्र प्रथम ने महिन्द के शासन के 36वें वर्ष में श्रीलंका पर पूर्ण विजय प्राप्त की। चोलों ने युद्ध के इस चरण में कूटनीति का आश्रय लेते हुए महिन्द पंचम को वार्ता के लिये आमंत्रित किया और उसे बंदी बना लिया। यही नहीं चोलों ने श्रीलंका के शासक की रानी और राजकुमारी को भी बंदी बना लिया एवं पाण्ड्य राजा राजसिंह द्वितीय के मुकुट, राजदण्ड आदि वस्तुओं पर अधिकार कर लिया।[8] चोलों ने महिन्द पंचम का राजकोष भी अधिकृत कर लिया। इन सभी वस्तुओं और राजकीय बंदियों को दक्षिण भारत लाया गया। बारह वर्षों तक चोलों के बंदी रहने के उपरान्त माहिन्द पंचम की मृत्यु हो गयी। पोलोन्नरूवा और कोलम्बो संग्रहालय से प्राप्त खण्डित अभिलेख भी राजेन्द्र प्रथम की विजय की पुष्टि करते है।[9] महिन्द पंचम की मृत्यु के उपरान्त श्रीलंका का दक्षिण-पश्चिम भाग, जिसे महावंश में रोहण कहा गया है, सिंहलवासियों को स्वतंत्रता दिलाने के लिए निरंतर युद्ध करता रहा। राजकुमार 'कित्ति' जिसने 1058 ई0 में 'विजयबाहु' की उपाधि ग्रहण की, चोलों के विरुद्ध संघर्ष का नेतृत्वकर्ता था।[10] चोल शासन के विरुद्ध सिंहल में निरंतर विद्रोह होते रहे और जब चोल शासक वीर राजेन्द्र के राज्यकाल में चोल-चालुक्य संघर्ष के कारण श्रीलंका पर चोल अधिकार शिथिल पड़ गया तो विजय बाहु ने 1070 में पोलोन्नुरुवा को जीतकर चोल शासन का अंत कर दिया।

चोल शासकों का श्रीलंका पर 993 ई0 से 1070 ई0 तक 77 वर्षों तक आधिपत्य रहा। चोलों के अधिकार का श्रीलंका के राजनैतिक, प्रशासनिक, धार्मिक, आर्थिक आदि सभी क्षेत्रों पर प्रभाव पड़ा। चोल शासकों द्वारा विजित होने के उपरान्त श्रीलंका अपने इतिहास में प्रथम बार स्वतंत्र राज्य से औपनिवेशिक राज्य में परिणत हो गया। चोल शासकों ने श्रीलंका को अपने साम्राज्य में एक प्रांत के रूप में सम्मिलित कर लिया और इस नवीन प्रान्त के प्रशासन के लिये चोल प्रान्ताधिपति (गर्वनर) नियुक्त किया। श्रीलंका की प्रशासनिक व्यवस्था में उच्च पदों पर अपने विश्वासपात्र व्यक्तियों की नियुक्ति के अतिरिक्त चोल शासकों ने कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया। अभिलेखों में कई चोल अधिकारियों के उल्लेख विविध संदर्भों में प्राप्त होते हैं। चोलों के एक अधिकारी तालिकुमारन द्वरा मातोता में राजराजेश्वर मंदिर का निर्माण करवाये जाने का उल्लेख एक अभिलेख से प्राप्त होता है। उसने मंदिर को प्रभूत दान भी दिया था।[11]

चोल अधिकार का श्रीलंका के धार्मिक जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा। श्रीलंका के प्रमुख धर्म बौद्ध धर्म को इस अवधि में बहुत क्षति पहुंची। क्योंकि चोलों द्वारा बौद्ध धर्म को राज्याश्रय नहीं प्रदान किया गया था। चोल शासकों ने यद्यपि बौद्ध धर्म का दमन नहीं किया किन्तु चूंकि वे शैव धर्मावलम्बी थे अत: उनके आधिपत्य में शैव धर्म को प्रोत्साहित किया गया। चोल शासकों द्वारा बौद्ध धर्म के प्रति उदारता दिखाने के भी उदाहरण मिलते हैं। अभिलेखों के अनुसार चोलों ने एक बौद्ध मंदिर को दान दिया था।[12] चोल शासन के अंतर्गत श्रीलंका में शिव देवालयों का निर्माण हुआ था जिनके अवशेष वहां से प्राप्त होते हैं। चोल आधिपत्य में बने शिव मंदिरों में पोलोन्नरुवा का शिवदेवालय संख्या-2 वर्तमान समय में भी ठीक स्थिति में है। यह मंदिर ग्रेनाइट तथा लाइमस्टोन से निर्मित है तथा चोल स्थापत्य कला का प्रभाव इस पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। यहां से प्राप्त राजेन्द्र प्रथम तथा अधिराजेन्द्र देव के अभिलेखों से इस मंदिर का नाम 'वानवनमहादेवी ईश्वरम् उदैयर' मिलता है।

वानवनमहादेवी, राजराज प्रथम की रानी एवं राजेन्द्र प्रथम की माता थी। पोलोन्नरुवा से ही एक अन्य शिव मंदिर के भग्नावशेष प्राप्त हुये हैं, यह शैव मंदिर 'संख्या-एक' के नाम से जाना जाता है।[14] इस मंदिर का शिखर ईंटों से बना था। मंदिर में प्रयुक्त प्रस्तर खण्ड अपनी मौलिकता रखते हैं। पोलोन्नरुवा से प्राप्त स्तम्भ लेख में भगवान शिव को 'महादेव' तथा 'महाईश्वर' कहा गया है। इसी प्रकार मातोता में स्थित तिरुवीरामेश्वरनम् नामक मंदिर को राजेन्द्र के राज्यकाल में पेरुन्दरम् स्तर के राजकीय अधिकारी द्वारा दान दिये जाने का उल्लेख भी प्राप्त होता है।[15] उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि चोल आधिपत्य के समय श्रीलंका में शैव धर्म को बहुत प्रोत्साहित किया गया था। इसके अतिरिक्त पोलोन्नरुवा, पदविया तथा त्रिन्कोमली से अनेक देवी-देवताओं, जिनमें शिव-पार्वती, गणेश, स्कंद, विष्णु, लक्ष्मी, सूर्य, हनुमान आदि प्रमुख हैं, की कांस्य प्रतिमायें प्राप्त होती हैं, जो श्रीलंका में ब्राह्मण धर्म के प्रभाव का प्रतीक हैं।

चोल आधिपत्य के समय श्रीलंका में तमिल संस्कृति का प्रसार हुआ। श्रीलंका से प्राप्त बहुसंख्यक अभिलेखों तथा शैव एवं वैष्णव धर्म से सम्बन्धित मंदिरों के भग्नावशेषों से श्रीलंका में तमिलों के आवास की पुष्टि होती है। महावंश में श्रीलंका के पश्चिमी क्षेत्र में स्थित सात महत्वपूर्ण स्थानों पर चोल प्रभुत्व का उल्लेख प्राप्त होता है। ये स्थान है-मुहुन्नरु (नुवरकाल) बदलट्टुल (बटलगोडा), वापिनगर (वेनारू), तिलगुल्ल (तलगल्ले अल), महागल्ल, (मागल या निकारवति), मण्डगल (महामडगल्ल) और बुद्धगाम (माणिक देव) हैं।[16] श्रीलंका में कुंसाल, नैनतिवु, पलयोत्तइ, तिरुकोइल एवं त्रिन्कोमली से प्राप्त तमिल भाषा एवं लिपि के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उस समय श्रीलंका में तमिलों को उच्च स्थान प्राप्त था।[17] श्रीलंका के स्थल बुदुमुत्ताव से प्राप्त दो अभिलेखों में से एक में चोलों के प्रसिद्ध क्षेत्र महागल्ल में स्थापित किये गये एक शिव मंदिर का उल्लेख है और दूसरे लेख में तमिल लुहारों और रजकों के महामत्त में ही निवास करने का उल्लेख प्राप्त होता है। एक अन्य तमिल लेख में अङ्गत्रूकवर के नाम से प्रसिद्ध व्यवसायी समुदाय के कार्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। इस व्यवसायी वर्ग के अतिरिक्त नानादेशी, नगरत्तार, चेट्टी आदि दक्षिण भारतीय व्यापारिक समुदायों के नाम भी प्राप्त होते हैं। अभिलेखों से ज्ञात होता है कि चुंगी तथा कुछ अन्य करों की वसूली करना, वसूल किये हुए धन को मंदिरों की व्यवस्था हेतु प्रदान करना एवं व्यापारियों को आवश्यक सहायता प्रदान करना आदि उच्च व्यवसायिक संगठनों के प्रमुख कार्य थे।[18] इससे स्पष्ट है कि इन व्यवसायिक समुदायों की श्रीलंका के राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका थी।

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में यह स्पष्ट है कि चोलों के आधिपत्य का श्रीलंका के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों पर न्यूनाधिक मात्रा में प्रभाव अवश्य पड़ा था।

संदर्भ सूची-

1. साउथ इंडियन इन्सक्रिप्शन्स पप, सं0 76, 69, 9-11
2. शिवनंदन मिश्र तथा दामोदरदत्त दीक्षित, प्राचीन श्रीलंका का इतिहास, पृष्ठ 63
3. शिवनंदन मिश्र तथा दामोदरदत्त दीक्षित, प्राचीन श्रीलंका का इतिहास, पृष्ठ 63
4. एपीग्राफिया इंडिका, 12, पृष्ठ 124 एवं आगे।
5. साउथ इंडियन इन्सक्रिप्शन्स, पपप, पृष्ठ 4
6. तिरुवालंगाडु ताम्रपत्र, छंद 80
7. शैलेन्द्र नाथ कपूर, श्रीलंका में हिन्दू धर्म, पृष्ठ 70
8. एपिग्राफिया इंडिका, 9, पृष्ठ 232 और आगे
9. साउथ इंडियन, इन्सक्रिप्शन्स, iv, संख्या 1389 तथा 1414
10. के.ए. एन शास्त्री, चोलवंश, पृष्ठ-199
11. साउथ इंडियन इन्सक्रिप्शन्स, संख्या 1414 तथा शैलेन्द्र नाथ कपूर, श्रीलंका में हिन्दू धर्म, पृष्ठ 90
12. शिवनंदन मिश्र एवं दामोदर दत्त दीक्षित, प्राचीन श्रीलंका का इतिहास, पृष्ठ 111
13. शैलेन्द्र नाथ कपूर, श्रीलंका में हिन्दू धर्म पृष्ठ 88
14. वहीं, पृष्ठ 89
15. साउथ इंडियन इन्सक्रिप्शन्स, पअ संख्या 1414
16. शैलेन्द्र नाथ कपूर, श्रीलंका में हिन्दू धर्म, पृष्ठ 71
17. के.के. पिल्लई, साउथ इंडिया एण्ड सीलोन, पृष्ठ 179

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: राजनीतिक और सामाजिक प्रभाव - एक अध्ययन

निखिल गुप्ता

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, श्री ब्रज बिहारी डिग्री कॉलेज, कोसीकलां, मथुरा

शोध सारांश:

वर्ष 2020 में भारत सरकार द्वारा घोषित नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) शिक्षा क्षेत्र में एक ऐतिहासिक परिवर्तन का संकेत है। इस नीति का उद्देश्य न केवल शैक्षणिक गुणवत्ता में सुधार लाना है, बल्कि इसे अधिक समावेशी, लचीला और वैश्विक मानकों के अनुरूप बनाना भी है। यह शोधपत्र राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के राजनीतिक और सामाजिक प्रभावों का विश्लेषण करता है। राजनीतिक दृष्टि से यह नीति केंद्र और राज्यों के बीच शक्ति-संतुलन, भाषा नीति, और निजीकरण के मुद्दों को सामने लाती है। वहीं सामाजिक दृष्टिकोण से यह नीति समानता, समावेशिता और डिजिटल पहुंच जैसे मुद्दों को उजागर करती है। विशेष रूप से, ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच डिजिटल अंतर, आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों की शिक्षा में भागीदारी, और महिला एवं वंचित समुदायों की भागीदारी जैसे पहलुओं पर विशेष ध्यान दिया गया है।यह शोध निष्कर्ष निकालता है कि हालांकि NEP 2020 में अनेक सकारात्मक पहलू हैं, लेकिन इसके सफल क्रियान्वयन के लिए राजनीतिक इच्छाशक्ति, संसाधनों की उपलब्धता, और सामाजिक विविधताओं की समझ अत्यंत आवश्यक है।

प्रमुख शब्द: राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020), शिक्षा प्रणाली, राजनीतिक प्रभाव, सामाजिक असमानता, उच्च शिक्षा, नीति क्रियान्वयन, शैक्षणिक सुधार, केंद्र-राज्य संबंध

परिचय: शिक्षा किसी भी राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास की आधारशिला होती है। भारत में शिक्षा नीति का इतिहास स्वतंत्रता के बाद से ही विकासशील रहा है, जिसमें समय-समय पर परिवर्तन और सुधार होते रहे हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020), लगभग 34 वर्षों के अंतराल के बाद प्रस्तुत की गई, जिसे भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा आयोग की सिफारिशों के आधार पर स्वीकृत किया। इस नीति का उद्देश्य 21वीं सदी की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा व्यवस्था को अधिक समावेशी, लचीला, बहु-विषयी और नवाचार पर केंद्रित बनाना है।

NEP2020 के अंतर्गत 5/3/3/4 का नया शैक्षिक ढांचा, मातृभाषा में प्रारंभिक शिक्षा, तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा का समावेश, तथा डिजिटल लर्निंग जैसे महत्वपूर्ण सुधारों का प्रस्ताव किया गया है। जहां एक ओर यह नीति शैक्षणिक क्षेत्र में दूरगामी बदलाव लाने का वादा करती है, वहीं दूसरी ओर यह राजनीतिक विमर्श और सामाजिक प्रतिक्रिया का भी विषय बन गई है।

शिक्षा केवल ज्ञान का हस्तांतरण नहीं है, बल्कि यह सामाजिक परिवर्तन, सशक्तिकरण और राष्ट्र निर्माण का माध्यम भी है। भारत जैसे विविधतापूर्ण और बहुभाषी देश में शिक्षा नीति का स्वरूप न केवल शैक्षणिक दिशा तय करता है,

NEP 2020 का मुख्य उद्देश्य भारत की शिक्षा प्रणाली को 21वीं सदी की वैश्विक आवश्यकताओं के अनुरूप ढालना है। इसमें शिक्षा को अधिक सुलभ, समान, गुणवत्तापूर्ण और समावेशी बनाने का प्रयास किया गया है। यह नीति बाल्यावस्था से लेकर उच्च शिक्षा तक के हर स्तर को प्रभावित करती है और इसका फोकस सीखने के परिणामों (learning outcomes) पर है।

नीति के कुछ प्रमुख प्रावधान जैसे कि

- मातृभाषा में शिक्षा को प्राथमिक स्तर तक लागू करना,
- स्कूल शिक्षा का नया ढांचा (5/3/3/4),
- उच्च शिक्षा में बहु-विषयी संस्थानों का निर्माण,
- एकल नियामक संस्था का गठन (HECI),

• और विदेशी विश्वविद्यालयों को भारत में प्रवेश की अनुमति. ये सभी न केवल शैक्षणिक, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर भी गहरे प्रभाव छोडते हैं।

राजनीतिक प्रभाव- नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 न केवल एक शैक्षणिक दस्तावेज है, बल्कि यह भारत की राजनीतिक दिशा और शासन की विचारधारा को भी दर्शाता है। चूंकि शिक्षा एक समवर्ती विषय (Concurrent Subject) है, अत: इसमें केंद्र और राज्यों की भूमिका बराबर की होती है। ऐसे में यह नीति कई राजनीतिक विमर्शों और मतभेदों का कारण भी बनी है। इस अनुभाग में इस नीति के प्रमुख राजनीतिक प्रभावों का विश्लेषण किया गया है।

1. केंद्र-राज्य संबंधों पर प्रभाव - NEP 2020 की कई सिफारिशें कृ जैसे कि भाषा नीति, एकल नियामक प्रणाली, तथा राष्ट्रीय मूल्यांकन प्रणाली कृ राज्यों को यह संकेत देती हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में केंद्र की भूमिका और नियंत्रण बढ रहा है। कई राज्य सरकारों ने इसे राज्य के अधिकारों में हस्तक्षेप के रूप में देखा है। उदाहरण स्वरूप, तमिलनाडु और केरल जैसे राज्यों ने त्रिभाषा सूत्र का विरोध किया।
2. भाषा और सांस्कृतिक पहचान का मुद्दा - नीति में प्राथमिक शिक्षा के लिए मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा को प्राथमिकता देने की बात की गई है। इसे कुछ राज्यों और राजनीतिक समूहों ने हिंदी थोपने या सांस्कृतिक वर्चस्व का प्रयास माना है। इसने भाषा आधारित राजनीति को और हवा दी है, विशेषकर दक्षिण भारत में।
3. शिक्षा का निजीकरण और नव-उदारवाद - NEP 2020 में निजी निवेश को प्रोत्साहन देने और विदेशी विश्वविद्यालयों को भारत में प्रवेश की अनुमति देने जैसे प्रावधान हैं। कई राजनीतिक दलों और शिक्षाविदों ने इसे शिक्षा के बाजारीकरण (Commercialization) और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों के विरुद्ध माना है। यह वामपंथी दलों और कुछ सामाजिक संगठनों की आलोचना का केंद्र बिंदु रहा है।
4. राजनीतिक विचारधारा की छाया - नीति में भारतीय ज्ञान परंपराओं, संस्कृति, और प्राचीन शिक्षा प्रणाली को प्रमुखता दी गई है। कई आलोचकों का मानना है कि यह एक खास राजनीतिक विचारधारा के अनुरूप है, जो शिक्षा के माध्यम से सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को बढावा देती है।
5. चुनावी राजनीति और घोषणाएँ - शिक्षा नीति का उपयोग विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा अपने चुनावी घोषणापत्रों और भाषणों में एक प्रचार टूल की तरह भी किया गया है। NEP को लेकर राजनीतिक समर्थन और विरोध, दोनों ने इसे एक राजनीतिक बहस का विषय बना दिया है।
6. संघीय ढांचे में सत्ता-संतुलन का मुद्दा -शिक्षा नीति के कई निर्णय, जैसे भाषा नीति, राष्ट्रीय मूल्यांकन प्रणाली (NTA), और शिक्षा संस्थानों के लिए केंद्रीकृत मानक, राज्यों को यह संकेत देते हैं कि केंद्र सरकार शिक्षा पर अधिक नियंत्रण चाहती है।तमिलनाडु, केरल, पश्चिम बंगाल जैसे राज्य सरकारों ने नीति को राज्य अधिकारों के उल्लंघन के रूप में देखा और कई प्रावधानों को लागू करने से इनकार किया। इससे यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या शिक्षा पर नियंत्रण का केंद्रीकरण भारतीय संघीय ढांचे को कमजोर कर सकता है।
7. भाषा नीति और राजनीतिक विवाद - NEP 2020 में त्रिभाषा सूत्र की बात की गई है, जिसमें हिंदी, अंग्रेजी और एक स्थानीय भाषा के अध्ययन की सिफारिश की गई दक्षिण भारतीय राज्यों, विशेषकर तमिलनाडु, ने इसे 'हिंदी थोपन' की कोशिश के रूप में देखा। भाषा नीति शिक्षा से हटकर सांस्कृतिक और पहचान की राजनीति में तब्दील हो गई, जिससे भाषाई विविधता और राष्ट्रीय एकता के बीच संतुलन की बहस तेज हुई।
8. निजीकरण और नव-उदारवादी झुकाव - NEP 2020 में शिक्षा में निजी क्षेत्र की भागीदारी को बढावा देने की बात की गई है। उच्च शिक्षा संस्थानों की स्वायत्तता, विदेशी विश्वविद्यालयों के प्रवेश, और महत्वपूर्ण नियामक बदलावों से यह संकेत मिलता है कि नीति नव-उदारवादी आर्थिक नीतियों से प्रेरित है। वामपंथी दलों और सामाजिक न्याय समर्थक संगठनों ने इसे समानता-विरोधी और शिक्षा के बाजारीकरण की दिशा में कदम बताया।
9. विचारधारा और शिक्षारू संस्कृति का सवाल - नीति में प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणाली, संस्कृत, और भारतीय संस्कृति की महिमा पर विशेष बल दिया गया है। कई शिक्षाविदों और आलोचकों का मानना है कि यह एक खास राजनीतिक विचारधारा कृ विशेष रूप से हिंदुत्व को बढावा देता है। इससे शिक्षा का उपयोग राष्ट्र निर्माण बनाम सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के टकराव में होता प्रतीत होता है।

सामाजिक प्रभाव - नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (NEP 2020) न केवल शैक्षिक, बल्कि सामाजिक रूप से भी एक गहरा प्रभाव डालने वाली है। यह नीति एक ओर जहां भारतीय शिक्षा प्रणाली को सुधारने का दावा करती है, वहीं दूसरी ओर यह समाज के विभिन्न वर्गों, जैसे कि गरीब, वंचित समुदाय, महिलाओं, अनुसूचित जाति और जनजाति, और ग्रामीण क्षेत्रों पर उसके प्रभाव को प्रभावित कर सकती है। यह खंड NEP 2020 के सामाजिक प्रभाव को विभिन्न कोणों से समझने की कोशिश करता है, जिसमें सामाजिक समानता, समावेशिता, और सांस्कृतिक विविधता शामिल हैं।

1. सामाजिक समानता और समावेशिता - NEP 2020 का उद्देश्य समावेशी शिक्षा को बढावा देना है, जो वंचित वर्गों, अनुसूचित जाति (SC) अनुसूचित जनजाति (ST), और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए महत्वपूर्ण है। नीति में यह प्रस्तावित किया गया है कि इन समुदायों को शिक्षा में समान अवसर प्रदान किए जाएं, और उन्हें मुख्यधारा की शिक्षा से जोडने के लिए विशेष उपाय किए जाएं।

इसके बावजूद, डिजिटल डिवाइड और संरचनात्मक असमानताओं के कारण, यह सवाल उठता है कि क्या अत्यधिक निर्भरता पर आधारित डिजिटल शिक्षा वंचित वर्गों के लिए वास्तविक रूप से सुलभ हो सकेगी या नहीं। विशेष रूप से ग्रामीण भारत में जहां इंटरनेट और तकनीकी संसाधनों की कमी है, वहाँ यह नीति अपने उद्देश्य को पूरी तरह से हासिल नहीं कर पाएगी।

2. ग्रामीण और शहरी असमानताएँ - NEP 2020 में डिजिटल शिक्षा को बढावा दिया गया है, जिससे शहरी और ग्रामीण समाज के बीच की खाई को पाटा जा सकता है। लेकिन डिजिटल शिक्षा की पहुंच में अंतर, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में, यह सवाल खडा करता है कि क्या यह नीति शहरी-ग्रामीण विभाजन को और अधिक गहरा कर सकती है।

इंटरनेट और स्मार्टफोन की उपलब्धता के अभाव में, ग्रामीण बच्चों और युवाओं के लिए इस नीति का लाभ उठाना मुश्किल हो सकता है। मूलभूत सुविधाओं की कमी और अवसंरचनात्मक समस्याएँ इसके कार्यान्वयन में रुकावट डाल सकती हैं।

3. महिला सशक्तिकरण और लिंग समानता - NEP 2020 का एक प्रमुख उद्देश्य महिला सशक्तिकरण है, और इसके लिए किशोरियों के लिए शिक्षा में सुधार और बालिका शिक्षा को प्राथमिकता देने की बात की गई है। नीति में महिलाओं के लिए शैक्षिक अवसरों को बढावा देने की सिफारिश की गई है, खासकर ग्रामीण और पिछडे क्षेत्रों में।

हालांकि, यह पहल महिलाओं के शैक्षिक उत्थान में सहायक हो सकती है, लेकिन सामाजिक और सांस्कृतिक बाधाओं का सामना करने वाली लडकियों को सामाजिक मान्यताओं, लिंग आधारित भेदभाव, और सुरक्षा समस्याओं के कारण इस नीति का फायदा उठाने में कठिनाई हो सकती है।

4. जातिवाद और सामाजिक संरचना - NEP 2020 का उद्देश्य जातिवाद से मुक्ति और समाज के सभी वर्गों को समान अवसर प्रदान करना है। लेकिन सामाजिक संरचनाओं और जातिवाद के प्रभाव को ध्यान में रखते हुए यह सवाल उठता है कि क्या यह नीति वास्तविक रूप से समानता ला पाएगी। शिक्षा प्रणाली में जातिवाद और वंचित समुदायों के लिए कम अवसर पहले से मौजूद हैं, और इस नीति के कार्यान्वयन में जाति आधारित भेदभाव को समाप्त करने की चुनौती बनी रहेगी।

उदाहरण के तौर पर, सामाजिक रूप से पिछडे वर्गों के बच्चों के लिए समान अवसरों की कमी और कुलीन वर्गों के प्रभुत्व को खत्म करना एक बडा कार्य है, जो केवल नीति द्वारा नहीं बल्कि समाज के प्रत्येक वर्ग की मानसिकता को बदलकर ही संभव हो सकता है।

5. सांस्कृतिक विविधता और भाषाई पहचान - NEP 2020 में मातृभाषा में शिक्षा को बढावा देने की बात की गई है। इसका उद्देश्य है कि बच्चे अपनी मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करें, जिससे उनकी सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान को बढावा मिले। हालांकि, इस नीति को आंचलिक भाषा और लोकल संस्कृति को बढावा देने के रूप में देखा जा सकता है, लेकिन केंद्र की भाषा नीति खासकर हिंदी के संबंध में विरोध उत्पन्न हो सकता है।

कुछ राज्यों ने इसे हिंदी थोपने की नीति के रूप में देखा है, जबकि अन्य इसे भारतीय भाषाओं की समृद्धि और सांस्कृतिक विविधता के लिए सकारात्मक कदम मानते हैं।

6. सामाजिक न्याय और वंचित वर्गों की स्थिति - नई शिक्षा नीति 2020 में सामाजिक न्याय और समानता को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है, और यह विशेष रूप से दलितों, आदिवासियों, और अल्पसंख्यकों के लिए प्रासंगिक है। नीति के अनुसार, इन वर्गों के लिए विशेष योजना बनाने, पारंपरिक शिक्षा पद्धतियों को उनके स्थानीय संदर्भ में एकीकृत करने, और उन्हें प्राथमिक और उच्च शिक्षा में बेहतर अवसर देने की बात की गई है।

जाति आधारित असमानताएँ – भारत में जातिवाद एक गहरी सामाजिक समस्या है, और शिक्षा का क्षेत्र इससे पूरी तरह से मुक्त नहीं है। दलितों और आदिवासियों के बच्चों को शिक्षा में समान अवसर प्राप्त करने में कई सामाजिक और संरचनात्मक बाधाओं का सामना करना पडता है। हालांकि NEP 2020 ने शिक्षा में समावेशिता का दावा किया है, फिर भी जातिवाद की समस्या, सामाजिक भेदभाव, और संवेदनहीनता के कारण ये वर्ग शिक्षा प्रणाली से बाहर हो सकते हैं।

इसके बावजूद, नीति में प्राथमिक शिक्षा में समान अवसर, शिक्षक प्रशिक्षण, और वंचित समुदायों के लिए विशेष पाठ्यक्रम जैसे पहल किए गए हैं। इन पहलुओं को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए स्थानीय और सांस्कृतिक समझ आवश्यक होगी, ताकि इन समुदायों की वास्तविक जरूरतों का सही तरीके से ध्यान रखा जा सके।

7. महिलाओं के लिए शिक्षा के अवसर – नीति में महिला शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए सुरक्षा और सुविधाओं का भी ध्यान रखा गया है। महिलाओं के लिए विशेष योजनाएं, जैसे कि मूलभूत सुविधाएं, स्कूलों और कॉलेजों में महिला छात्राओं के लिए सुरक्षित माहौल और महिला शिक्षा पर सरकारी योजनाओं का विस्तार, पर बल दिया गया है। हालांकि, भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में, लिंग आधारित भेदभाव और परंपरागत मानसिकताएं आज भी बडे अवरोधक बनकर सामने आती हैं। महिला शिक्षा को लेकर सामाजिक संरचनाएँ और परिवारों के भीतर के विचार नीति के पूर्ण प्रभावी कार्यान्वयन में बडी चुनौती हो सकते हैं।

8. शैक्षिक गुणवत्ता और सामाजिक प्रभाव – नई शिक्षा नीति 2020 का एक प्रमुख उद्देश्य शैक्षिक गुणवत्ता में सुधार है, जो समाज के सभी वर्गों के लिए सकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। हालांकि, शैक्षिक गुणवत्ता को बेहतर बनाने के प्रयासों का असर तब तक सीमित रहेगा जब तक इसके साथ समाज में समानता और सभी को समान अवसर सुनिश्चित नहीं किया जाता।

समाज के कमजोर वर्गों के लिए शैक्षिक सुधारों का सही दिशा में कार्यान्वयन, उन्हें शैक्षिक दुनिया में एक समान स्थान दिला सकता है। निजीकरण और प्राइवेट स्कूलों के बढते प्रभाव से यह सामाजिक असमानताओं को और बढा सकता है, यदि सार्वजनिक और प्राइवेट स्कूलों के बीच का अंतर बढे।

चुनौतियाँ –

1. कार्यान्वयन की जटिलताएँ – नीति का कार्यान्वयन सबसे बडी चुनौती साबित हो सकती है। नीति में कई लंबी अवधि की योजनाओं और मूलभूत संरचनाओं में सुधार की बात की गई है, लेकिन इन योजनाओं को जमीन पर लागू करने में समय और संसाधनों की आवश्यकता होगी। राज्यों में समान क्रियान्वयन की कमी और राज्यों की विवादास्पद प्रतिक्रियाएं (जैसे भाषा नीति और केंद्रीयकरण) भी कार्यान्वयन में विघ्न डाल सकती हैं। नीति में कुछ प्रावधान राज्यों पर अधिक दबाव डाल सकते हैं, जिससे राज्यों के बीच विरोध हो सकता है।शिक्षक प्रशिक्षण और अधिकारिक मार्गदर्शन की कमी भी कार्यान्वयन में बाधा डाल सकती है। शैक्षिक संस्थान, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, इन बदलावों के लिए तैयार नहीं हो सकते।
2. वित्तीय संसाधनों की कमी – NEP 2020 में कई महत्वाकांक्षी योजनाओं का प्रस्ताव किया गया है, जैसे नई पाठ्यपुस्तकों का निर्माण, शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम, और नई तकनीकी अवसंरचनाओं का निर्माण। हालांकि, इन योजनाओं को लागू करने के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन और बजट की आवश्यकता होगी। शासन की वित्तीय प्राथमिकताएँ और बजट की कमी, खासकर पब्लिक स्कूलों और सार्वजनिक संस्थानों के लिए, इस नीति के प्रभावी कार्यान्वयन में प्रमुख बाधा हो सकती है। यदि निजीकरण और निवेश के प्रवाह की अधिकता हो तो यह शैक्षिक असमानताएँ और सामाजिक विभाजन बढा सकता है।
3. शिक्षक प्रशिक्षण और गुणवत्ता में सुधार – NEP 2020 का उद्देश्य शिक्षकों के प्रशिक्षण और शिक्षण कौशल में सुधार करना है। हालांकि, देशभर में शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों की गुणवत्ता में भिन्नता है और कुछ राज्यों में यह पर्याप्त नहीं है। शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थान और टीचर शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार की आवश्यकता होगी। इसके अलावा, शिक्षक-मूल्यांकन प्रणाली और शिक्षकों के प्रदर्शन पर निगरानी को और बेहतर करने की आवश्यकता है। शिक्षकों की कमी और शिक्षकों के प्रति मोटिवेशन की कमी भी एक चुनौती हो सकती है, जिससे नीति के लक्ष्यों को हासिल करना कठिन हो सकता है।

4. उच्च शिक्षा और विदेशी विश्वविद्यालयों की स्थिति – NEP 2020 में विदेशी विश्वविद्यालयों के प्रवेश को बढावा देने की बात की गई है, जिससे भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली में बाजारीकरण और निजीकरण की आशंका बढ सकती है। विदेशी विश्वविद्यालयों को भारतीय शिक्षा क्षेत्र में प्रवेश देने से शैक्षिक गुणवत्ता का उत्थान हो सकता है, लेकिन यह भारतीय संस्थानों को सामाजिक और वित्तीय चुनौतियों का सामना करा सकता है।यह नीति सामाजिक और आर्थिक असमानताएँ बढा सकती है, क्योंकि केवल अमीर वर्ग ही इन विश्वविद्यालयों का लाभ उठा पाएगा, जबकि वंचित वर्ग शिक्षा की इस नई दिशा से बाहर रह जाएगा।

निष्कर्ष– नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (NEP 2020) भारत की शिक्षा व्यवस्था में क्रांतिकारी बदलाव लाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। यह नीति शिक्षा के समावेशी और गुणात्मक विकास को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से बनाई गई है, जो समाज के सभी वर्गों को समान अवसर प्रदान करती है। हालांकि इस नीति के पीछे की महत्वाकांक्षाएँ और दूरदर्शिता सराहनीय हैं, लेकिन इसके कार्यान्वयन में कई चुनौतियाँ और अडचनें भी सामने आ सकती हैं, जिन्हें बिना हल किए इसके उद्देश्य पूरे करना कठिन हो सकता है।

सकारात्मक पहलू

1. समावेशिता और समानता: NEP 2020 में समाज के सभी वर्गों, विशेषकर वंचित वर्गों, महिलाओं, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए शिक्षा में समान अवसर प्रदान करने की महत्वपूर्ण योजनाएँ हैं। इसके तहत प्रारंभिक शिक्षा में मातृभाषा का उपयोग, निजीकरण और बाजारीकरण के बावजूद, सरकारी स्कूलों और कॉलेजों की गुणवत्ता में सुधार की बात की गई है।
2. डिजिटल शिक्षा: NEP 2020 डिजिटल शिक्षा को एक सशक्त माध्यम के रूप में प्रस्तुत करती है, जो शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में शिक्षा की पहुंच को बढाने में सहायक हो सकता है। यह बच्चों को प्रौद्योगिकी और ऑनलाइन प्लेटफार्मों से जोडने की दिशा में अहम कदम है।
3. शिक्षक प्रशिक्षण: शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए शिक्षकों के प्रशिक्षण और मूल्यांकन प्रणाली को सुधारने की आवश्यकता महसूस की गई है, और NEP में इसके लिए कई योजनाएँ दी गई हैं।
4. सांस्कृतिक विविधता का सम्मान नीति का उद्देश्य भारतीय सांस्कृतिक धरोहर, भाषाई विविधता, और स्थानीय ज्ञान प्रणालियों को बढावा देना है। यह भारत के विविधता-भरे समाज में समरसता और सामूहिक पहचान को बढावा देने का एक प्रयास है।

सकारात्मक प्रभावों के बावजूद, कई चुनौतियाँ

1. संरचनात्मक और अवसंरचनात्मक चुनौतियाँ: NEP 2020 की योजनाओं के कार्यान्वयन में वित्तीय संसाधनों और शैक्षिक संस्थाओं की अवसंरचना की कमी प्रमुख रुकावट हो सकती है। विशेषकर ग्रामीण और पिछडे क्षेत्रों में शैक्षिक सुविधाओं का अभाव और डिजिटल डिवाइड से नीति का प्रभाव सीमित हो सकता है।
2. शिक्षक प्रशिक्षण और गुणवत्ता: शिक्षक प्रशिक्षण की प्रक्रिया और शिक्षक-शिक्षण गुणवत्ता में सुधार की आवश्यकता है। यदि शिक्षकों को नए परिवर्तनों के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण और संसाधन नहीं मिलेंगे, तो नीति का कार्यान्वयन असफल हो सकता है।
3. डिजिटल शिक्षा में असमानता: डिजिटल शिक्षा का प्रचलन और ऑनलाइन कक्षाओं की सुविधा, खासकर स्मार्टफोन और इंटरनेट कनेक्टिविटी की कमी वाले क्षेत्रों में वंचित समुदायों के लिए कठिन हो सकती है। इंटरनेट की गति, शिक्षण संसाधन, और स्मार्ट डिवाइसों की उपलब्धता में अंतर इस नीति के उद्देश्य को पूरा करने में बाधक बन सकता है।
4. सामाजिक और सांस्कृतिक विरोध: NEP के कुछ पहलू, जैसे कि त्रिभाषा सूत्र, हिंदी को प्राथमिकता देना और संस्कृत शिक्षा को लेकर सामाजिक और सांस्कृतिक विरोध हो सकता है। यह विरोध दक्षिण भारत के राज्यों में खासतौर पर देखा जा सकता है, जहाँ स्थानीय भाषाओं का समर्थन मजबूत है।

5. निजीकरण और शैक्षिक असमानताएँ: नीति में निजीकरण और विदेशी विश्वविद्यालयों के प्रवेश के बारे में विचार किया गया है, जिससे शैक्षिक असमानताएँ बढ सकती हैं। शहरी-ग्रामीण विभाजन और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों को शिक्षा से बाहर करने का जोखिम हो सकता है। निष्कर्ष रूप में कहें तो

संदर्भ ग्रंथ सूची-

- भारत सरकार (2020)। नई शिक्षा नीति 2020: शिक्षा के क्षेत्र में सुधार हेतु दिशा-निर्देशनई दिल्ली: शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार।
- कुमार, एस. (2021)। नई शिक्षा नीति 2020 और भारतीय समाज: एक समीक्षा। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
- शर्मा, आर. (2020)। भारत में शिक्षा नीति और सामाजिक प्रभाव। दिल्ली विश्वविद्यालय, शोध पत्र।
- पांडे, म. (2020)। शिक्षा नीति और समावेशी विकास: NEP 2020 का विश्लेषण।जयपुररू सागर पब्लिकेशन।
- चतुर्वेदी, अ. (2021)। राजनीतिक दृष्टिकोण से NEP 2020: चुनौतियाँ और अवसर। लखनऊ: यूपी विश्वविद्यालय प्रकाशन।
- यादव, वी. (2021)। शिक्षा नीति 2020 और सामाजिक न्याय: एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य। पटना: बिहार विश्वविद्यालय प्रकाशन।
- सरकार, आर. (2020)।डिजिटल शिक्षा और NEP 2020: एक नई दिशा। कोलकाता: बंगाल पुस्तकालय।
- राज, स. (2020)। भारत में शिक्षा और लोकतंत्र: NEP 2020 का सामाजिक असर। मुंबई: साहित्य अकादमी।
- जोशी, एम. (2021)NEP 2020 और भारतीय सांस्कृतिक विविधता: एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण, वाराणसी, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय प्रकाशन।
- सिंह, पी. (2021)NEP 2020 का कार्यान्वयनरू सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण।दिल्ली विश्वविद्यालय, शोध पत्र।
- शर्मा, ए. (2020)। भारत में शिक्षा और भाषा नीति: NEP 2020 का विश्लेषण। नई दिल्ली: महात्मा गांधी विश्वविद्यालय प्रकाशन।
- .भारतीय शिक्षा रिपोर्ट (2020)।शिक्षा क्षेत्र में सुधार और NEP 2020 की दिशा। नई दिल्ली: नीति आयोग, भारत सरकार।

मोदी काल में भारत-अफ्रीका संबंधो का विश्लेषणात्मक अध्ययन

रेखा यादव

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, हिन्दू कन्या महाविद्यालय, सीतापुर

सार:

अफ्रीका वैश्विक राजनीति का एक ऐसा भूभाग है जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता। यह विश्व के 20 प्रतिशत क्षेत्र व 1.4 प्रतिशत आबादी का प्रतिनिधित्व करता है। इस महाद्वीप में 60 प्रतिशत वैश्विक नवीकरणीय ऊर्जा व 50 प्रतिशत खनिज संसाधनों का भंडार है। अफ्रीकी संघ के सदस्य देशों का सकल घरेलू उत्पादन 3 ट्रिलियन अमरीकी डॉलर है। अफ्रीका के बढ़ते महत्व को देखते हुए भारत ने भी अपनी विदेश नीति में अफ्रीका संबंधों में परिवर्तन किया है। प्रस्तुत शोध-पत्र पिछले 1 दशक के दौरान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के शासन काल में भारत-अफ्रीका संबंधों का विश्लेषण करता है। शोध पत्र का प्रथम भाग भारत-अफ्रीका के पारंपरिक संबंधों पर केन्द्रित है जबकि दूसरा भाग मोदी शासन के प्रथम (2014-19) व दूसरे (2019-2023) काल में भारत-अफ्रीका के मध्य बढ़ते सामरिक, राजनीतिक, आर्थिक संबंधों का विश्लेषण करता है। इसके अतिरिक्त भारत अफ्रीका संबंधों के समक्ष चुनौतियों का भी विश्लेषण करता है।

मुख्य शब्द:- भारत, अफ्रीका, आर्थिक, विदेश नीति, कूटनीतिक।

भूमिका:- अफ्रीका भारतीय विदेश नीति में सदैव से ही महत्वपूर्ण रहा है। अफ्रीकी देशों के साथ भारतीय संबंधों का एक पुराना इतिहास रहा है। दोनों ही देश रंगभेद, उपनिवेशवाद, गरीबी पर समान विचार साझा करते रहे हैं। भारत आरम्भ से ही उपनिवेशवाद रंगभेद, अफ्रीकी राष्ट्रों की स्वतंत्रता का सदैव से ही समर्थक रहा है परन्तु यह बात भी सत्य है कि भारतीय विदेश नीति की प्राथमिकता एक लम्बे समय तक पूर्वोन्मुखी व पड़ोसी देशों तक सीमित रही। जिसमें अफ्रीका के साथ वैदेशिक संबंधों के विषय में कोई विशेष सुनियोजित, व्यापक कार्ययोजना का पूर्णतया अभाव रहा। 90 के दशक में भारतीय व्यवसायियों ने अफ्रीका में उपलब्ध संसाधनों व उत्पादों के लिए उसे एक उपयुक्त बाजार के रूप में देखा। वर्ष 2001 में भारतीय-अफ्रीकी व्यापार महज 5.3 बिलियन डॉलर था। अफ्रीकी परियोजनाओं के निमित्त प्रदान की जाने वाली ऋण सहायता मित्रवत् संबंधों का प्रमुख आधार रही है। वर्ष 2003-2004 के दौरान भारत सरकार ने भारतीय विकास पहल नीति का गठन किया। इसके माध्यम से प्रगति अनुभवों को अन्य राष्ट्रों से साझा किया जा सके। पहला भारत अफ्रीकी मंच शिखर सम्मेलन 2008 दिल्ली में आयोजित किया गया जिसमें उप अल्प विकसित अफ्रीकी देशों को शुल्क मुक्त बाजार प्रदान कर उनकी पहुँच की सुविधा की घोषणा की गयी व 4.5 बिलियन घ्ऋण की सहायता प्रदान की गयी। वर्ष 2012 में विदेश मंत्रालय के अंतर्गत विकास साझेदारी प्रशासन के उपरांत वर्ष 2008 के बाद से ही अफ्रीका को 2.8 बिलियन ऋण प्रदान किया गया। दूसरे शिखर सम्मेलन वर्ष 2011 में दोनों देशों के मध्य आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक स्वास्थ्य, पर्यटन व संचार क्षेत्रों में सहयोग को बढ़ाने पर सहमति व्यक्त की गई। अफ्रीका में व्याप्त भुखमरी की समस्या का सामना करने के लिए अफ्रीकी कृषि विकास कार्यक्रम, खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम के लिए तकनीकी प्रदान करना है। दूसरे शिखर सम्मेलन की प्रमुख उपलब्धि भारतीय तकनीकि की माध्यम से भारत अफ्रीकी भागीदारी कार्यक्रम की स्थापना व तकनीकी स्थानान्तरण प्रक्रिया को सुगम बनाना है। वर्ष 2011 में भारत अफ्रीका मंच शिखर सम्मेलन जिसमें 5 बिलियन डॉलर, नये संस्थान व प्रशिक्षण कार्यक्रम हेतु 7 मिलियन अमेरिकी डॉलर का प्रस्ताव रखा गया। अफ्रीकी देश इथियोपिया, जिबूती के मध्य रेलवे लाइन के निर्माण हेतु 300 मिलियन डॉलर की घोषणा की गयी। आर्थिक संबंध विदेश नीति का महत्वपूर्ण पहलू है। संभवत: यही कारण है कि चीन ने अफ्रीका में महत्वपूर्ण संरचनाओं के विकास के आवरण में ऋण आर्थिक विकास के माध्यम से अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। जहॉ चीन ने अफ्रीकी नेताओं को वित्त उपलब्ध कराकर कम्पनियों के बड़े बड़े टेन्डर हासिल किये। वर्ष 2011 में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की अफ्रीकी यात्रा को एक नए दृष्टिकोण से देखा गया। चीन के विपरीत यू0पी0ए0 सरकार ने साफ्ट कूटनीति के मार्ग पर चलते हुए अफ्रीकी जनता को प्रशिक्षण, क्षमता निर्माण संबंधी कार्यक्रम, दूरस्थ शिक्षा, ई-चिकित्सा, अफ्रीकी छात्रों को उच्च शिक्षा हेतु छात्रवृत्ति प्रदान की गई।

मोदी व भारत-अफ्रीका संबंधों का प्रथम कार्यकाल (2014-2019)- मोदी द्वारा अपने प्रथम कार्यकाल के दौरान अफ्रीका संबंधी नीतियों पर विशेष ध्यान दिया जिसका संकेत प्रधानमंत्री मोदी द्वारा वर्ष 2014 में सर्वप्रथम नई दिल्ली में आयोजित विश्व आर्थिक मंच से भारत-अफ्रीका व्यापार के दौरान देखा गया जहॉ आगामी 2020 तक 500 बिलियन अमरीकी डॉलर तक पहुॅचाने का लक्ष्य रखा। इस दौरान अफ्रीका-भारतीय निर्यात 32 प्रतिशत दर रहा। जबकि (2014-2015) में भारतीय निर्यात 22 प्रतिशत रहा। अफ्रीका के संबंधों को और प्रगाढ़ बनाने की दिशा में प्रधानमंत्री मोदी द्वारा अफ्रीका के विभिन्न देशों की यात्रा की गई। इन यात्राओं का विशेष महत्व इस अर्थ में भी है कि ये यात्राएॅ एक लम्बे अंतराल के उपरान्त की गई। इसके अतिरिक्त उपराष्ट्रपति व अन्य समकक्ष पदाधिकारियों द्वारा समय-समय अफ्रीका की यात्रा की गई। अनेक चरणों की मंत्रिमंडल स्तरीय बैठकों के उपरान्त संयुक्त वक्तव्य में सामरिक संबंधों में प्रगति पर बल दिया। वर्ष (2014-2015) में भारत-अफ्रीका में पांचवा शीर्ष निवेशकर्ता देश था। पूर्ववर्ती सरकारों की भांति मोदी सरकार ने भी अफ्रीका के आर्थिक विकास, दूरसंचार, शिक्षा, तकनीकि सहयोग पर विशेष जोर दिया। जो अफ्रीका में भारत की बढ़ती रूचि को दिखाता है। वर्ष 2015 में भारत-अफ्रीका फोरम के तीसरे सम्मेलन में अफ्रीकी यूनियन को आमंत्रित किया जहॉ उनसे विभिन्न मुद्दों पर चर्चा की गई। वर्ष 2015 में पूर्वी अफ्रीकी तटवर्ती देशों के साथ रक्षा सहयोग 'सागर' का आरम्भ किया गया। इसके अतिरिक्त भारत अफ्रीका फोरम शिखर सम्मेलन 2015 ने प्रधानमंत्री मोदी ने 10 बिलियन डॉलर का ऋण अफ्रीका को भारतीय विकास कोष को 100 मिलियन डॉलर व 500 मिलियन डॉलर का अनुदान प्रदान किया गया। जबकि अफ्रीकी छात्रों को भारत में उच्च शिक्षा हेतु 50,000 छात्रवृत्तियों की घोषणा की गई जो अफ्रीका के प्रति भारत के बदलते दृष्टिकोण को दिखाता है। भारत अफ्रीका फोरम को भारत ने 2015 में 10 अरब डॉलर प्रदान करने की घोषणा की। इसके अतिरिक्त भारत द्वारा आरम्भ की गई परियोजनाओं का वित्तीय लाभ के अतिरिक्त क्षमता निर्माण में भी सहायता की। अफ्रीका से वर्ष 2014-15 के दौरान भारत का तेल आयात 15.5 प्रतिशत से बढ़कर 26 प्रतिशत हो गया है। इसी क्रम में वर्ष 2016 में भारत जापान, एशिया, अफ्रीका ग्रोथ क्षमता का प्रस्ताव रखा गया जिसमें क्षमता व कौशल में वृद्धि, गुणवत्तापूर्ण बुनियादी ढॉचा, विकास व सहयोग, परियोजनाएॅ, जन भागीदारी पर विशेष बल दिया गया। वर्ष 2018 में अफ्रीकी देश युगांडा की राजकीय यात्रा के दौरान प्रधानमंत्री मोदी ने अफ्रीका के साथ सामरिक संबंधों को और प्रगाढ़ बनाते हुए मार्गदर्शक सिद्धांतों को प्रस्तुत किया।

इन 10 मार्गदर्शक सिद्धांतों में नियमित आदान-प्रदान के माध्यम से सहयोग की गति में वृद्धि, अफ्रीकी उत्पादों की भारतीय बाजारों में उपलब्धता, अफ्रीका में डिजिटल क्रान्ति का दोहन में सहायता, अफ्रीका की कृषि क्षमता में सुधार, जलवायु परिवर्तन का सामना, महासागरों, समुद्री मार्गो की सुलभता, न्यायपूर्ण प्रतिनिधि जनतांत्रिक मूल्यों पर आधारित वैश्विक व्यवस्था के मध्य सामंजस्यपूर्ण ढंग से कार्य करना है। मोदी सरकार ने कूटनीतिक दिशा में व्यावहारिक पहल करते हुए वर्ष (2018-2021) तक 18 नए भारतीय मिशन का प्रस्ताव भी रखा। वहीं 2019 में अफ्रीकी छात्रों को मुफ्त टेली शिक्षा ई-विद्या भारती व ई आरोग्य का आरम्भ किया गया। खनिज तत्वों की उपलब्धता, 60 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि के उपरांत भी अफ्रीका अभी भी गंभीर बीमारियों व महामारियों से मुक्त नहीं हो पाया है। वर्ष 2019 में प0 अफ्रीका में 'इबोला' महामारी से ग्रस्त पीड़ितों की सहायता हेतु भारत-सरकार द्वारा 10 मिलियन अमरीकी डॉलर की आर्थिक सहायता प्रदान की गई।

भारत-अफ्रीका व्यापार 2014-2021

वर्ष	*भारतीय निर्यात*	*आयात*
2014	34.63	40.36
2015	25.64	33.78
2016	22.61	26.14
2017	24.36	35.78
2018	27.01	50.75
2019	20.59	38.77
2020	26.05	27.49
2021	37.9	44.64
2022	40.3	31.97

स्रोत- विश्व एकीकृत व्यापार समाधान

मोदी सरकार का दूसरा कार्यकाल (2019-2023)- वर्ष 2020 में वैश्विक कोरोना महामारी के प्रथम चरण के दौरान भारत द्वारा 'वैक्सीन मैत्री' के अन्तर्गत 42 अफ्रीकी देशों को 24.7 मिलियन वैक्सीन, दवाएँ व खाद्य सामग्री उपलब्ध कराई गई। जबकि दूसरे चरण में अपनी आंतरिक चुनौतियों के कारण भारत अपेक्षित सहायता नहीं कर पाया। जबकि कोविड-19 के कारण प्रस्तावित भारत-अफ्रीका के मध्य चौथा शिखर सम्मेलन (2020) भी अधर में रह गया। देश की स्वतंत्रता के 75 वर्ष के उपलक्ष्य में द0 अफ्रीका के वाणिज्यिक दूतावासों, राजकीय मिशन द्वारा विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन किया गया।

अफ्रीकी देशों में भारतीयों की एक विशाल संख्या निवास करती है। अतः भारत-सरकार द्वारा वर्ष 2022-2023 में अर्न्त0 मातृभाषा दिवस जैसे कार्यक्रमों के आयोजन के द्वारा प्रवासी भारतीयों को भारतीय संस्कृति के विविध पहलुओं से अवगत कराया गया। मोदी सरकार के द्वितीय कार्यकाल में भारत द्वारा जी-20 की अध्यक्षता के दौरान अफ्रीकी संघ को जी-20 की स्थायी सदस्यता दिलाने के प्रयास ने संबंधों को और मधुर बनाया क्योंकि इसके पूर्व अफ्रीका पिछले कई वर्षों से जी-20 की ससदस्यता प्राप्त करने का प्रयास कर रहा था। भारत ने अफ्रीकी क्षमता निर्माण फाउन्डेशन व द0 अफ्रीकी विकास समुदाय व प0 अफ्रीकी राज्यों के आर्थिक समुदाय व अफ्रीकी राज्यों के विभिन्न संगठनों में सहभागी बनकर पर्यवेक्षक के माध्यम से अफ्रीकी देशों के साथ संबंधों पर नए सिरे से विचार किया। जी-20 शिखर सम्मेलन (2023) में प्रधानमंत्री मोदी ने वैश्विक द0 देशों के लिए 'वॉयस आफ द ग्लोबल साउथ समिट' का विचार रखा, जिसमें सभी देशों के समावेशी, शांतिपूर्ण, समृद्ध भविष्य के लिए सामूहिक वैश्विक कार्यवाही हेतु 10 क्षेत्रों की बात की।

भाजपा शासित मोदी काल के दौरान भारत-अफ्रीकी संबंधों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि अपने प्रथम कार्यकाल में मोदी सरकार ने भारत-अफ्रीकी संबंधों पर एक सुनियोजित रणनीति पर जोर दिया। अपने प्रथम कार्यकाल के दौरान कूटनीतिक वक्तव्य, साफ्ट डिप्लोमेसी, नए राजदूत कार्यालय, दूतावासों को खोलने का प्रस्ताव रखा, परन्तु अभी भी वहां अधिकारियों का अभाव एक प्रमुख समस्या है। यह बात सत्य है कि पूर्व की सरकारों की अपेक्षा भारत-अफ्रीका संबंधों, आर्थिक, व्यापार में काफी वृद्धि हुई है। जो एक व्यावहारिक कदम है परन्तु अभी भी चीन की अपेक्षा अफ्रीका में भारतीय सक्रियता काफी पीछे है। जबकि दूसरे कार्यकाल के दौरान भी भाजपा शासित सरकार की अफ्रीकी नीति में और समावेशी बनाने पर जोर दिया परन्तु कोविड-19 महामारी के दूसरे चरण के दौरान भारत द्वारा वैक्सीन की आपूर्ति की असमर्थता ने उसकी स्थिति को कमजोर दिखाया व भारत द्वारा आत्म निर्भरता पर जोर दिया गया। जबकि भारत द्वारा जी-20 की सदस्यता के लिए समर्थन जुटाकर निश्चय ही भारत ने अफ्रीका को शामिल कर संबंधों में और सुधार होगा व अंतर्राष्ट्रीय मंच पर विभिन्न मुद्दों पर साथ मिलकर कार्य कर सकेंगे।

चुनौतियाँः-

1. भारत के समक्ष एक प्रमुख चुनौती अफ्रीका में महाशक्तियों का बढ़ता प्रभाव, विशेषकर चीन का वर्चस्व है। चीन ने अफ्रीका के अनेक देशों में मूलभूत विकास, बुनियादी सेवाओं के आधार पर ऋण-जाल प्रदान किया जाता हैअ ौ र भारत के लिए उस स्थान की पूर्ति निश्चय ही कठिन कार्य है। चीन द्वारा चीन अफ्रीकी फोरम के माध्यम से अफ्रीका को 60 बिलियन अमेरिकी डॉलर की वित्तीय सहायता उनकी वित्तीय निर्भरता को दिखाता है।
2. भारत-अफ्रीका विभिन्न वैश्विक संस्थाओं, IMF, World Bank, UNo~ में सुधार के समर्थक रहे हैं। अफ्रीकी देशों की विशाल मतदान संख्या भारत द्वारा UNSc~ की स्थायी सदस्यता के लिए अपनी दावेदारी सिद्ध करता रहा है।
3. तीसरे भारत-अफ्रीका मंच पर अफ्रीकी देशों में भारत की स्थायी सदस्यता के समर्थन के संबंध में पूर्ण सहमति का अभाव दिखा। जहां कुछ देशों ने ही भारत की दावेदारी का समर्थन किया।
4. अफ्रीकी देशों में भ्रष्टाचार, कुशासन व जनतंत्र का अभाव एक प्रमुख समस्या है।
5. भारत सरकार द्वारा अफ्रीकी छात्रों को उच्च शिक्षा हेतु छात्रवृत्तियां प्रदान की जाती है परन्तु पिछले कुछ वर्षों के दौरान अफ्रीकी छात्रों के साथ मारपीट, नस्लीय, भेदभाव, अभद्र टिप्पणी भी प्रमुख समस्या है।

पिछले एक दशक में मोदी सरकार के कार्यकाल के दौरान भारत-अफ्रीकी संबंधो में काफी सुधार आया है। भारत ने अफ्रीकी क्षमता निर्माण फाउन्डेशन की पूर्णकालिक सदस्यता व दक्षिण अफ्रीकी विकास समुदाय व द0 अफ्रीकी राज्यों के आर्थिक समुदाय जैसी संस्थाओं में पर्यवेक्षण के माध्यम से अफ्रीकी देशों में परामर्श व उनकी आवश्यकताओं को भली प्रकार समझने के लिए अनेक प्रयास किये। जिसमें उच्च स्तरीय शिखर सम्मेलन, अफ्रीका में दूतावासों, राजनायिकों व कर्मचारियों

की संख्या में वृद्धि प्रमुख हैं, परन्तु यथार्थ में देखा जाए तो मोदी सरकार द्वारा दूतावासों की संख्या में वृद्धि, पूर्ववर्ती सरकारों के दौरान आरम्भ में कार्यों की पुनरावृत्ति है। साथ ही कर्मचारियों, राजनायिकों की संख्या में कमी भी चिन्ता का विषय है। यद्यपि भारत ने अफ्रीका के विभिन्न देशों में मूलभूत विकास में काफी कार्य किया है परन्तु उसके उपरांत भी अफ्रीका में भारत कूटनीतिक रणनीति का अभाव है और यह व्यापार व निवेश की भावना के प्रतिकूल है। भारत–अफ्रीका के मध्य प्रस्तावित भारत–अफ्रीका चौथा शिखर सम्मेलन 2020, कोरोना वैश्विक महामारी के आधार पर स्थगित कर दिया जबकि अफ्रीकी संघ ने चीन, तुर्की, यूरोपीय संघ, जापान, अमरीका व अन्य सहयोगी देशों के साथ शिखर सम्मेलन आयोजित किए। जो भारत के प्रति उसकी स्थिति को दर्शाता है।

निष्कर्ष– भारत और अफ्रीका दोनों ही वर्तमान समय में विकास प्रतिमानों का प्रतिनिधित्व करते हैं और कमोबेश दोनों ही समान रूप से मूलभूत विकास चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। दोनों ही देशों को विशेष रूप से बुनियादी ढॉचों के निर्माण, वित्तीय समावेशन, ऊर्जा संसाधनों के विकास, तकनीकि सहायता में सुधार की आवश्यकता है। अतः भारत को अफ्रीकी विकास साझेदारी में सुधार व व्यावहारिक नीतियों पर ध्यान देना होगा।

संदर्भ–सूची–

1). Defreese Michelle (2016). The Modi Doctrine and India- Africa ties retrieved from https://thediplomat.com retrieved on 2 Jan. 2024.
2). Roychowdhury Adrija (2016). Modi in Africa : India has trade relationswith Africa from first century CE, https://www.theindianexpress retrieved from retrieved on 03 Jan. 2024.
3). Trigunatyat Anil (2019). Evolution and importance of India-Africa relations, from Gandhi to Modi retrieved from https://aage.ris.org.in retrieved on 03 Jan. 2024.
4). Bhattacharya Samit (2022). Navigating India-Africa relations in a post- pandemic world retrieved from https://www.hindustantimes.com retrieved on 03 Jan. 2024.
5). Bhatia Rajiv (2021). Staging a come back, re-energising India's Africa policy retrieved from https://www.thehindu.com retrieved on 03 Jan. 2024.
6). Haidar, Suhasini, Bhattacharya (2021). Modi calls India, Africa 'two bright spots', retrieved from https://www.thehindu.com retrieved on 03 Jan. 2024.
7). Bhatia Rajiv (2016), India's hour in Africa retrieved from https://www.thehindu.com retrieved on 03 Jan. 2024.
8). Navtulya Paul (2023), Africa-India Cooperation sets benchmark for partnership retrieved from https://www.africacenter.org retrieved on 03 Jan. 2024.
9). Banda Chiudza Paul (2020), India-Africa relations ? 1947 to the present retrieved from https://www.diplomatist.com retrieved on 03 Jan. 2024.
10). PTI (2023), India is your trusted partner : P.M. Modi to African countries retrieved from https://www.timesofindia.times retrieved on 03 Jan. 2024.
11). Shringla Harsh (2020). Why the India-Africa bond matters retrieved from https://www.hindustantimes.com retrieved on 03 Jan. 2024.
12). PTI (2019), India deepens strategies with South Africa retrieved from https://www.deccanherald.com retrieved on 03 Jan. 2024.
13). Pant V. Harsh (2019), India and South Africa : Adjusting to the New World retrieved from https://www.thediplomat.com retrieved on 03 Jan. 2024.
14). Seth Manju Amb (2022), The prospects for India-Africa relations in 2022 retrieved from https://www.diplomatist.com retrieved on 03 Jan. 2024.
15). https://wits.worldbankorg

हिन्दी आत्मकथा लेखन का साहित्यिक अवदान

अमित गोयल

असि. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, दीन दयाल उपाध्याय राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सहजनवा, गोरखपुर, उ0प्र0

हिंदी गद्य साहित्य की विधाओं में निबंध, आलोचना, उपन्यास, कहानी, नाटक तथा एकांकी प्रमुख है। इनके अतिरिक्त आधुनिक युग में हिन्दी गद्य साहित्य की अन्य नई विधाओं का विकास हुआ, जिनमें रिपोर्ताज,यात्रा-वृतांत, डायरी, साक्षात्कार, ललित-निबंध, जीवनी, संस्मरण, पत्र, रेखाचित्र, व्यंग्य-विनोद, फीचर, लघुकथा, नुक्कड़ नाटक, सोप-ओपेरा, एकालाप, कोलाज तथा केरीकेचर प्रमुख हैं। ये सभी विधाएं साहित्य और जीवन यथार्थ के निरंतर प्रगाढ़ होते संबंधों के अनुरूप विकास के पथ पर अग्रसर हैं। हिंदी की इन्हीं आधुनिक और नवीन गद्य विधाओं में 'आत्मकथा' एक महत्वपूर्ण विधा है।

'आत्मकथा' अर्थात् अपनी कथा, अपने जीवन की कथा या आपबीती। आत्मकथा में लेखक अपने विगत जीवन अनुभवों की कथा 'मैं' शैली में लिखता है। इस प्रकार यह लेखक का आत्मचरित होता है। आत्मकथा को परिभाषित करते हुए डॉ. वासुदेव नंदन प्रसाद लिखते हैं, ''आत्मकथा किसी ख्यात लेखक या व्यक्ति के जीवन की आत्माभिव्यक्ति है। इसमें विगत जीवन के महत्वपूर्ण, तलस्पर्शी और उपदेशात्मक प्रसंगों का संबद्ध वर्णन होता है। यह लेखक की आपबीती और जगबीती है।''[1] प्रकारांतर से कहें तो जब कोई व्यक्ति या लेखक अपने जीवन से जुड़ी कहानियों को कलम बद्ध करता है, तो उसे आत्मकथा कहते हैं। आत्मकथा में लेखक अपने ही जीवन का सिंहावलोकन करता है। आत्मकथा मूलत: लेखक का आत्ममंथन, आत्मालोचन और आत्मान्वेषण है। आत्मकथा के माध्यम से लेखक अपने मानवीय अस्तित्व के जटिल प्रश्नों को सुलझाने और उसके केन्द्रीय सच को पाने का प्रयास करता है। वास्तव में, आत्मकथा अपने जीवन का सच्चा और गंभीर आत्म परीक्षण है। इसमें लेखक से पूरी सच्चाई और ईमानदारी के साथ आत्मनियंत्रण की अपेक्षा रहती है।

आत्मकथा जीवनी से भिन्न है। आत्मकथा में लेखक 'मैं' शैली का प्रयोग करता है और 'मैं' शैली होने के कारण इसमें आत्मपरकता तथा वैयक्तिकता का तत्व जीवनी से कहीं ज्यादा होता है। यही नहीं, जीवनी में लेखक किसी दूसरे व्यक्ति का जीवन चरित्र प्रस्तुत करता है जबकि आत्मकथा में अपने अतीत के जीवन पर दृष्टिपात करता हुआ व्यापक पृष्ठभूमि में उसके महत्व को रेखांकित करता है। आत्मकथा लेखन के विषय में डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है, ''अपने चरित्र का विश्लेषण करना सरल नहीं होता है, क्योंकि यदि लेखक अपने गुणों का वर्णन करता है तो आत्म प्रशंसक कहलाता है, यदि दोषों का उल्लेख करता है तो यह भय बना रहता है कि कहीं श्रद्धालुजनों की श्रद्धा ही समाप्त न हो जाये और यदि वह अपने दोषों का उल्लेख नहीं करता है तो सच्चा आत्मकथा लेखक होने का अधिकारी नहीं है।''[2] डॉ.नगेन्द्र से ही मिलता-जुलता कथन डॉ.कैलाशचन्द्र भाटिया का भी है। उनके अनुसार, ''आत्मकथा में पूरी ईमानदारी के साथ आत्मचित्रण करना होता है, जो कठिन कार्य है। इसकी एकमात्र कसौटी है कि मैं अपने को कितनी निर्ममता के साथ छील सकता हूँ। यही कारण है कि चरित्रवान एवं शुद्ध निर्मल हृदय ही मानव आत्मचरित्र लिख सकते हैं।.... चरित्रवान व्यक्तियों की आत्मकथा पढ़ने के लिए प्रत्येक पाठक लालायित रहता है।''[3] वस्तुत: आत्मकथा एक ऐसी विधा है जिसे हर हाल में जीवन-यथार्थ के अधीन रहना होता है। इसमें लेखक से उसके वास्तविक जीवन-सत्य के यथार्थ निरूपण की अपेक्षा होती है। अत: इसका (आत्मकथा) कोई पूर्वनिर्धारित शिल्प नहीं होता है। आत्मकथा में अप्रत्याशित परिस्थितियों की टकराहट होती है। लेखक द्वारा स्वानुभूत जीवन को पन्नों पर उतार देने में ही आत्मकथा की सार्थकता है। निश्चित रूप से इसके लिए लेखक में नैतिक साहस की आवश्यकता होती है।

आत्मकथा क्यों लिखा जाय, आत्मकथा का प्रयोजन क्या है? इस पर विचार करते हुए डॉ.कुमार सर्वेश लिखते हैं, ''आत्मकथा का उद्देश्य आत्मनिरीक्षण होता है जिसके जरिए व्यक्ति को न केवल आत्मपरिष्कार का अवसर मिलता है वरन् वह अतीत की गलतियों को दुहराने से भी बच सकता है। कई बार अपने अनुभवों को अन्य तक पहुंचाने की इच्छा, कलात्मक अभिव्यक्ति की आकांक्षा और अपनी पद, मर्यादा या ख्याति का लाभ उठाने की व्यावसायिक इच्छा भी आत्मकथा के प्रेरणास्रोत का काम करती है। आत्मकथा की रचना के पीछे अपने अतीत को पुनर्जीवित करने का मोह भी हो सकता है और अपने आपको अन्वेषित करने का सार्थक प्रयास भी। साथ ही इसके जरिए व्यक्ति किसी घटना, प्रश्न या समस्या पर अपने नजरिये को दूसरों तक पहुंचाने का काम भी करता है, ताकि दूसरे लोग लेखक के पक्ष को जान सके। यदि धर्म, राजनीति या साहित्य

के इतिहास-निर्माण में किसी व्यक्ति का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, तो उसके नजरिए के बारे में पाठक की रुचि भी आत्मकथा लेखन को प्रेरणा देती है।''[4]

हिंदी में आत्मकथा को 'आत्मचरित' व आत्मचरित्र भी कहा जाता है। वास्तव में ये आत्मकथा के पर्यायवाची शब्द हैं और इन शब्दों में कोई तात्विक अंतर नहीं है। फिर भी इनमें जो अन्तर पाया जाता है वह यह है कि आत्मचरित कहलाने वाली रचना विश्लेषणात्मक और विवेक प्रधान होती है और आत्मकथा कही जाने वाली कृति अपेक्षतया अधिक रोचक और सुग्राह्य होती है।''[5] आज आत्मकथा स्वतंत्र विधा के रूप में अपना स्थान बना चुकी है और साहित्य-समृद्धि के विकास पथ पर अग्रसर है। अब आत्मकथा साहित्य में ऐतिहासिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा असाहित्यिक लोगों (लेखकों) द्वारा भी अच्छा साहित्य सृजन हो रहा है। डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया ने आत्मकथा लेखन के दो रूप बताए हैं-

- स्फुट निबंधों के रूप में, संस्मारणात्मक शैली में
- निजी डायरी पर आधारित अथवा स्मरण शक्ति के आधार पर संबद्ध पूरी या अधूरी अर्द्ध कथा)

हिन्दी-साहित्य में आत्मकथा लेखन की परंपरा बहुत पुरानी नहीं है। वास्तव में भारतीय मनीषी चिंतक व कवि आत्मप्रशंसा या आत्म प्रकाशन की अपेक्षा शाश्वत् जीवन-मूल्यों की खोज को ज्यादा अहमियत देते थे। कवियों, कलाकारों, चिंतकों आदि की इस प्रवृत्ति के कारण हिंदी-साहित्य में आत्मकथा बहुत कम लिखी गयी। आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी-साहित्य में जैन साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान बनारसी दास जैन की अर्द्धकथा (1641ई.) ही मिलती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, ''ये जौनपुर के रहने वाले एक जौहरी थे, जो आमेर में भी रहा करते थे। इनके पिता का नाम खड़गसेन था। ये संवत् 1643 में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने संवत् 1698 तक अपना जीवन वृत्त अर्द्धकथानक नामक ग्रंथ में दिया है।''[6] बनारसी दास जैन की यह आत्मकथा पद्य में है। इस कृति के अब तक दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं- प्रयाग विश्वविद्यालय की हिंदी परिषद से डॉ. माता प्रसाद गुप्त द्वारा संपादित सन् 1643 में तथा हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय बम्बई से सन् 1943 ई. में स्वर्गीय नाथूराम प्रेमी के संपादकत्व में। गुप्त जी की तुलना में प्रेमी जी का संस्करण अधिक महत्वपूर्ण है। अर्द्धकथानक नाम के विषय में उन्होंने लिखा है कि वर्तमान समय में मनुष्य की आयु का परिमाण 110 वर्ष है, उन्होंने उसकी आधी अवस्था, पचपन वर्ष का अपना विवरण दिया है। इसी से बनारसीदास के चरित्र का अर्द्धकथानक है यथा-

''अपना चरित्र कहो विख्यात। तब तिनि बरस पंच पंचास।।
परिमिति दसा कही मुख भाषा। आगे ज्यु कछु होइगी और।।
तैसी समुझैगे तिस ठौर। बरतमान-नर-आउ बखान।।
बरस एक सौ दस परवान। ताते अरध कथान यहु बनारसी चरित्र।।''[7]

बनारसीदास जी ने 675 छंदों की पद्यात्मक आत्मकथा में अपने जीवन के प्रसंग में अनेक ऐसी घटनाओं का उल्लेख किया है जिनसे तत्कालीन परिस्थिति का सजीव परिचय मिलता है। आत्मकथा कहने के लिए जैसी निर्भीकता की आवश्यकता होती है, वह बनारसीदास में थी। अपनी संकटपूर्ण स्थिति, जीवन के उतार-चढ़ाओं और दुर्बलताओं का जिस साहस और सरलता से उन्होंने चित्रण किया है उससे कृति का मूल्य बहुत बढ़ गया है। अपनी इस कृति की भाषा को कवि ने 'मध्यदेश की बोली' कहा है। इनकी भाषा का मूल ढाँचा ब्रजभाषा का है जिसमें खड़ी बोली का भी पुट मिलता है। कृति अत्यन्त सहज और सरल शैली में लिखी गयी है। अलंकारों के प्रयोग का प्रयास इसमें नहीं है, न कवि कल्पना के दर्शन होते हैं। स्वाभाविकता और आत्मीयता बनारसीदास की शैली के आकर्षक गुण हैं। अर्द्धकथानक का प्रधान छंद चौपाई और दोहा है।

बनारसी दास जी की इस पद्यात्मक अर्द्धकथा के अलावा मध्यकाल में किसी अन्य आत्मकथा का उल्लेख नहीं मिलता। सच्चे अर्थों में आत्मकथा या आत्मचरित्र लिखने की परंपरा की शुरुआत भारतेन्दु से होती है। भारतेन्दु जी ने 1876 ई. में 'कवि वचन सुधा' में आत्मचरित (कुछ आप बीती कुछ जग बीती) का प्रारंभिक अंश 'प्रथम खेल' शीर्षक से 26 वर्ष की अवस्था में लिखी थी। कुछ विद्वान तो व्यवस्थित रूप से आत्मकथा लेखन की शुरूआत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से ही मानते हैं, जबकि भारतेंदु ने अपनी कोई विशेष आत्मकथा नहीं लिखी है। हाँ, उनके अनेक विवरणों में तथा 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' में आत्मकथा के तत्व मिलते हैं। भारतेंदु युग के साहित्यकारों में श्री राधाचरण गोस्वामी द्वारा लिखित 'मेरा संक्षिप्त जीवन चरित्र' (1864ई0) तथा श्री अम्बिकादत्त व्यास रचित 'निज वृतांत' (लगभग 55 पृष्ठों की पुस्तिका जिसमें उन्होंने अपने वंश, परिवार

व शिक्षा-दीक्षा आदि का परिचय संक्षेप में दिया है।) वस्तुतः आत्मकथा ही है। प्रताप नारायण मिश्र ने 'आत्म चरित' (अधूरी आत्मकथा) और सुधाकर द्विवेदी ने 'राम कहानी' नामक आत्मकथा लिखी। द्विवेदी युग में अनेक लेखकों ने अपनी आत्मकथा लिखी है। पं. देवीदत्त शुक्ल और पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने आत्मकथाएं लिखीं। बख्शी जी की आत्मकथा 'मेरी अपनी कथा' नाम से प्रसिद्ध है।

भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग के बाद की उल्लेखनीय आत्मकथाओं में है- स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत 'आत्मचरित', सत्यानंद अग्निहोत्री लिखित 'मुझमें देव जीवन की विकास', भाई परमानन्द लिखित 'आपबीती', स्वामी श्रद्धानंद लिखित 'कल्याण पथ का पथिक' रामविलास शुक्ल लिखित 'मैं क्रांतिकारी कैसे बना', तथा इन्द्र विद्या वाचस्पति कृत 'जीवन की झाँकियाँ' प्रमुख हैं। बाबू श्यामसुंदर दास कृत 'मेरी आत्मकहानी' (1941ई.) हिंदी की पहली प्रसिद्ध आत्मकथा कही जा सकती है। यह आत्मकथा हिंदी भाषा और साहित्य के पूरे युग को प्रतिफलित करती है। डॉ. श्यामसुंदर दास की इस आत्मकथा (मेरी आत्म कहानी) में उनके साहित्यिक जीवन की गतिविधियों का वर्णन मिलता है। इस आत्मकथा के महत्व का एक और कारण है, श्यामसुंदर दास काशी नागरी प्रचारिणी सभा के संस्थापक सदस्य थे। अतः उनके साहित्यिक जीवन-परिचय के बहाने काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना से संबंधित प्रारंभिक इतिहास का विवरण भी मिल जाता है। बीसवीं शताब्दी की अन्य उल्लेखनीय आत्मकथाओं में महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित 'मेरी जीवन रेखा' तीन पृष्ठों में अपना संस्मरणात्मक विवरण दिया है।

हिन्दी साहित्य में आत्मकथा और संस्मरण लेखन की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने का श्रेय मुंशी प्रेमचन्द और उनकी हंस (पत्रिका) को दिया जाता है। 'हंस' पत्रिका में मुंशी प्रेमचन्द ने 1932 ई. में आत्मकथा विशेषांक प्रकाशित किया था। इस अंक में मुंशी प्रेमचन्द के 'मेरा जीवन साथी' के साथ-साथ अनेक लेखकों का जीवन-संस्मरण को आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया था।

हिंदी साहित्य में आत्मकथा लेखन की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण उपलब्धि राहुल सांकृत्यायन की पांच खण्डों में प्रकाशित 'मेरी जीवन यात्रा' (1946 ई.) है। इसमें राहुल जी के विभिन्न स्थानों पर भ्रमण के अनुभव संकलित है। अतः उनकी रचना में विभिन्न देशों के देश-काल वातावरण, रीति-रिवाज एवं उनके संबंध में राहुल सांस्कृत्यायन की प्रतिक्रिया साहित्यिक शैली में प्रस्तुत है। वास्तव में हिंदी साहित्य में आत्मकथा-लेखन को लोकप्रियता 20वीं शताब्दी में मिली। इस समय राजनीतिक क्षितिज पर जो महापुरूष आए उन्होंने भी साहित्य की इस विधा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन राजनीतिक पुरुषों से देश की नौजवान पीढ़ी को दिशा प्राप्त हुई और समाज में जागरण की लहर आई जिससे शक्तिशाली विदेशी सत्ता की जड़े हिलने लगीं। राष्ट्रीयता से ओतप्रोत इन नेताओं ने प्रेरणा दी। अप्रत्यक्ष रूप से उन्होंने आत्मकथा लिखकर अपने जीवन से प्रेरणा दी। इस प्रकार आत्मकथा विधा को राजनीतिज्ञों, समाजसुधारकों, दार्शनिकों तथा साहित्यकारों सभी ने समृद्ध किया है। अभी तक कई आत्मकथाएँ प्रकाशित रूप में उपलब्ध हैं और इनमें कला व शैली की दृष्टि से कुछ आत्मकथाएँ अद्वितीय हैं। अतः गुणात्मक तथा कलात्मक दोनों दृष्टियों से आत्मकथा-साहित्य की प्रगति संतोषप्रद है। कुछ प्रमुख आत्मकथाएँ निम्नवत् हैं-

1. महात्मा गांधीः 'सत्य के प्रयोग' (मूलतः गुजराती में हरिभाऊ उपाध्याय द्वारा अनुवादित सन् 1927ई0 में प्रकाशित)
2. जवाहर लाल नेहरूः 'मेरी कहानी' (1939ई0)
3. डॉ. राजेन्द्र प्रसादः' 'आत्मकथा' (1947ई0) (इसमें लेखक ने अपने बाल्यकाल से लेकर राजनीतिक जीवन की घटनाओं और अपने अनुभव तथा अनुभूतियों का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त इससे ('आत्मकथा') स्वतंत्रतापूर्व के स्वतंत्रता-आंदोलन पर भी व्यापक रूप से प्रकाश पड़ता है।
4. सुभाष चन्द्र बोसः 'तरुण के स्वप्न' (अनूदित सन् 1935ई0)
5. डॉ- सर्वपल्ली राधाकृष्ण 'सत्य की खोज' (1940 ई.)
6. जानकीदेवी बजाजः 'मेरी जीवन गाथा' (1956ई0) (महिला लेखिका द्वारा आत्मकथा लिखने की दृष्टि से यह हिंदी की पहली रचना मानी जा सकती है।)
7. विनोद शंकर व्यासः 'मैं, उलझी स्मृतियाँ' (1950ई0)

8. वियोगी हरि: 'मेरा जीवन प्रवाह' 1947 ई.
9. भवानी दयाल सन्यासी: 'प्रवासी की आत्मकथा' (1947 ई.) (इसमें लेखक ने अपने अफ्रीका निवास के जीवन का चित्रण प्रभावशाली ढंग से किया है।)
10. गुलाब राय: मेरी असफलताएँ (1942 ई.)

इसके अतिरिक्त हरिवंश राय बच्चन कृत 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ, (1969), 'नीड़ का निर्माण फिर' (1970 ई.), 'बसेरे से दूर' (1978 ई.) और 'दशद्वार से सोपान तक' (1985 ई.), डॉ. देवराज उपाध्याय कृत 'यौवन के द्वार पर' (1970 ई.), वृंदावन लाल वर्मा; 'अपनी कहानी (1970 ई.), शिवपूजन सहाय; 'मेरा जीवन' (1985 ई.), डॉ. राम दरश मिश्र; 'जहाँ मैं खड़ा हूँ', 'रोशनी की पगडंडियाँ', 'टूटते बनते रिश्ते', 'उत्तर पथ', 'सहचर है समय', 'डॉ. भोलानाथ तिवारी', 'हार नहीं मानी', राम विलास शर्मा 'घर की बात' (1933 ई. संक्षिप्त), 'अपनी धरती अपने लोग' (विस्तृत), यशपाल: 'मेरी जीवन धारा', (1987 ई.), कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर, 'तपती पगडंडियों पर पगयात्रा' (1989ई.) आदि आत्मकथाएँ विशेष रूप से चर्चित रहीं। इन सभी रचनाकारों ने बदलते परिवेश में 'अपने जीवन की संघर्ष-कालीन मानसिकता' का उद्घाटन किया है।

हिन्दी-साहित्य में आत्मकथा लेखन के विधागत विकास की दृष्टि से महिला लेखिकाओं द्वारा लिखी गई आत्मकथाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनकी (महिला लेखिकाओं) की रचनाओं में न केवल इनके व्यक्तिगत जीवन-अनुभवों और संघर्षों पर प्रकाश पड़ता है अपितु इसका (आत्मकथा) सम्यक् रूप से अध्ययन-विश्लेषण करने पर नारी मात्र के व्यावहारिक जीवन-उसके मन की पीड़ा, लिंग-भेद, यौन-अस्मिता, शोषण के विविध आयामी पक्ष, उसकी मनोसामाजिकी, समर्पण और विवशता के कारणों, नारी मुक्ति के लिए उठाए गए प्रतिरोध और आक्रोश के स्वर को भलीभांति समझ सकते हैं। महिला लेखिकाओं की आत्मकथाएँ उनका स्वानुभूत जीवन सत्य या निजी अनुभव मात्र न होकर समूची स्त्री जाति का अनुभव होती हैं। प्रकारांतर से कहें तो लेखिका का अनुभव सिर्फ उसका न होकर सामाजिक संस्था के अनुभव में रूपांतरित होकर सार्वभौमिक हो जाता है। इस स्थिति में वह पूरी नारी जाति का प्रतिनिधित्व करने लगता है। वास्तव में महिला लेखिकाओं की आत्मकथाओं में उनके शताब्दियों से शोषित-दमित नारी-मन का दर्द, तल्खी क्षोभ आदि मुखरित हुआ है। यदि हम हिंदी आत्मकथा-लेखन पर परंपरा पर दृष्टि डालें तो एक उल्लेखनीय बात यह नजर आती है कि अब महिलाएँ किसी भी मुखापेक्षी नहीं रह गयी हैं। वे अपनी बात को स्वयं मुक्त मन से अपनी आत्मकथाओं में लिखने लगी हैं। ''कालक्रम की दृष्टि से देखा जाय तो 'दस्तक जिंदगी की' (1990ई0) और 'मोड़ जिंदगी का' (1996ई0) इन दो खण्डों में प्रकाशित प्रतिभा अग्रवाल की आत्मकथा सबसे पहले आती है।''[8] आत्मकथा लेखन के इसी महत्वपूर्ण कड़ी में कुसुम अंसल कृत 'जो कहा नहीं गया' (1996ई0), कृष्णा अग्निहोत्री, 'लगता नहीं है दिल मेरा' (1987ई0), शीला झुनझुन वाला, 'कुछ कहीं कुछ अनकही' (2000ई0), मैत्रेयी पुष्पा; 'कस्तूरी कुण्डल बसै' (2002ई0), रमणिका गुप्त; 'हादसे', प्रभा खेतान, अन्या से अनन्या, मन्नू भंडारी, 'एक कहानी यह भी' (2007) और चन्द्रकिरण सोन रेकसा की 'पिंजरे की मैना' उल्लेखनीय है। अपने वास्तविक जीवन के तल्ख अनुभवों और पुरुष प्रधान समाज के दोहरे मानदण्डों के बीच पिसती, शोषित नारी का पीड़ा, दर्द और आक्रोश को इन महिला साहित्यकारों अपनी आत्मकथाओं में बखूबी उतारा है।

विगत कुछ वर्षों में दलित आत्मकथाओं ने भी हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान बनाया है। करीब दो दशक पूर्व भगवानदास की सामाजिक आत्मकथा 'मैं भंगी हूँ' (1975ई0) प्रकाशित हुई थी' जिसमें लेखक ने पूरे भंगी जाति की कहानी बयाँ की थी। इसके अतिरिक्त शरण कुमार लिंबाले की (अक्करमाशी), मोहनदास नैमिश्य राय: 'अपने-अपने पिंजरे' (1995), ओम प्रकाश बाल्मीकि 'जूठन' 1997, कौशल्या बैसंत्री: दोहरा अभिशाप, सूरजपाल चौहान की 'तिरस्कृत', डॉ0 जाटव की 'मेरा सफर मेरी जिंदगी', माता प्रसाद की आत्मकथा 'झोपड़ी से राजभवन' और डॉ0 तुलसीदास की मुर्दहिया' लेखक के निजी अनुभवों के साथ-साथ पूरे दलित वर्ग की समस्याओं की तरफ हमारा ध्यान बरबस आकृष्ट कर लेता है। वास्तव में ये आत्मकथाएँ लेखक मात्र का निजी दस्तावेज नहीं हैं, अपितु इस बात की साक्षी है कि आज भी हमारे समाज में सामन्तीय संस्कार हावी हैं। धर्म निरपेक्षता, वसधैव कुटुम्बकम् और सामाजिक समरसता की बात करने वाले हमारे देश में रूढ़िवादी सामन्ती संस्कार कितना हावी हैं। ये आत्मकथाएँ न केवल सामाजिक विसंगतियों को उघाड़कर उसका नग्न यथार्थ सामने लाती हैं अपितु उससे संघर्ष कर आगे बढ़ने की प्रेरणा भी देती है।

'आत्मकथा' मूलत: लेखक की वैयक्तिक अनुभूतियों का परिणाम होते हुए भी उसके (लेखक) सामाजिक परिवेश, चिंतन और समष्टिवादी विचारधारा से असंपृक्त नहीं होती है। किन्तु यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि आत्मकथा लेखन का उद्देश्य

पूरे वर्ग या समाज का प्रतिनिधित्व करना हो, आवश्यक नहीं है। हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार (आत्मकथा के संबंध में) ''सोचने पर दो भिन्न दृष्टिकोण लक्षित होते हैं। एक प्रकार के आत्मकथात्मक साहित्य का उद्देश्य होता है- आत्म-निर्माण, आत्म-परीक्षण या आत्म समर्थन, अतीत की स्मृतियों को पुनर्जीवित करने का मोह या जटिल विश्व के उलझावों में अपने आपको अन्वेषित करने का सात्विक प्रयास। इस प्रकार के आत्मकथात्मक साहित्य के पाठकों में सर्वप्रमुख स्वतः लेखक होता है, जो आत्मांकन द्वारा आत्म परिष्कार एवं आत्मोन्नति करना चाहता है। आत्म-संबंधी साहित्य लिखने का एक दूसरा उद्देश्य यह भी है कि लेखक के अनुभवों का लाभ अन्य लोग उठा सकें।..... इन दोनों स्वतः सिद्ध उपयोगों के अतिरिक्त आत्मकथा लेखन के मूल में कलात्मक अभिव्यक्ति की प्रेरणा भी हो सकती है और अपनी पद-मर्यादा अथवा ख्याति से लाभ उठाने की शुद्ध व्यावसायिक इच्छा भी।''[9]

वास्तव में आत्मकथा बेहद जटिल और जोखिम भरी विधा है। आत्मकथा में लेखक अपनी अस्मिता की अभिव्यक्ति करते समय आत्मप्रशंसा या आत्मश्लाघा से बचे तथा ईमानदारी से स्वानुभूत जीवन को ही पन्नों पर उतारे, ऐसी अपेक्षा की जाती है। किंतु ऐसा करना बहुत सरल नहीं होता है। इसलिए आत्मकथा की प्रामाणिकता पूर्णतः असंदिग्ध नहीं होती है। प्रकारांतर से कहें तो आत्मकथाकार की अनुभूति प्रामाणिक होते हुए भी उसकी ईमानदारी पूर्णतया संदेह से परे नहीं होती है। यह पूरे विश्वास के साथ नहीं कहा जा सकता है कि आत्मकथाकार ने आत्मकथा अपनी प्रामाणिक अनुभूति के आधार पर, पूरी ईमानदारी से, बिना किसी लाग लपेट के लिखी है। सच तो यह है कि आत्मकथा में अनुभूति की सच्चाई या वर्णित आत्मानुभव की सच्चाई मापने को कोई यंत्र नहीं होता है। अतः आत्मकथा का कितना अंश सच्चा है, कितना झूठा, कितना वैयक्तिक है, कितना सामाजिक, इस संबंध में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है। वास्तव में आत्मकथा की सफलता लेखक की ईमानदारी, सफलताओं-असफलताओं और अन्य जीवन-अनुभवों के निर्ममता पूर्वक पोस्टमार्टम पर निर्भर करती है। लेखक निष्पक्ष लेखन के प्रति जितना समर्पित होता है उसकी आत्मकथा उतनी ही अधिक विश्वसनीय होती है। आत्मकथाकार जब आत्ममुग्धता की भावना से मुक्त होकर अपना लेखन कार्य संपन्न करता है, उस स्थिति में उसकी आत्मकथा महज उसका निजी दस्तावेज ने होकर उसके समूचे वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। उनके जीवन-सत्य को वास्तविक रूप में व्याख्यापित करती है। वस्तुतः आत्मकथाओं के माध्यम से ही आज साहित्य सदियों से वंचित, दबे कुचले विशालजन-समूह की संवेदनाओं से अपने तार जोड़ने में सफल हो रहा है। यहीं नहीं आत्मकथा एक नयी विधा के रूप में स्थापित होकर साहित्य को व्यापकता भी प्रदान कर रही है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि बनारसीदास जैन की ''अर्द्धकथा'' से प्रारंभ हिन्दी साहित्य की यह परंपरा निरंतर विकास करती हुई हिंदी साहित्य की एक परिपक्व विधा बन चुकी है, और साहित्य-समृद्धि के विकास पथ पर अग्रसर है।

संदर्भ सूची-

1. (डॉ.) वासुदेव नंदन प्रसादः आधुनिक हिंदी व्याकरण तथा रचना पृ0सं0- 369
2. (डॉ.) नगेन्द्र (संपा.): हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.सं.- 595
3. (डॉ.) कैलाश चन्द्र भाटियाः हिन्दी साहित्य में गद्य की नई विधाऐं, पृ. सं. 55
4. कुमार सर्वेश, हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ.सं.- 476
5. (डॉ.) वासुदेव नंदन प्रसादः आधुनिक हिंदी व्याकरण तथा रचना पृ.सं.- 369
6. (आचार्य) रामचन्द्र शुक्लः हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. सं.- 132
7. धीरेन्द्र वर्मा (प्र.संपा.): हिंदी साहित्य भाग-2, पृ.सं.- 24-25
8. डॉ. रामचन्द्र तिवारीः हिंदी का गद्य साहित्य, पृ.सं.-132
   स्वयं भगवान दास इसे अपनी आत्मकथा मानने को तैयार नहीं थे। वे इसे भंगी समाज की आत्मकथा मानते थे। द्रष्टव्य है- विजय राय (प्र. संपा.): उत्तर प्रदेश (प.) दलित साहित्य विशेषांक, सितंबर- अक्टूबर 2002, मोहनदास नैमिशराय के लेख, 'मराठी और हिंदी दलित आत्मकथाएँ' से उद्धृत, पृ.सं.- 22
9. धीरेन्द्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश भाग-1, पृ.सं.- 77

ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्य में दलित जीवन का संवेदनात्मक यथार्थ

अजय कुमार

शोधार्थी एवं असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी), कर्म क्षेत्र महाविद्यालय इटावा, उ0प्र0

डॉ० चित्रा यादव

शोध निर्देशिका एवं एसोसिएट प्रोफेसर (हिंदी), कर्म क्षेत्र महाविद्यालय, इटावा

सार –

हमारे भारतीय समाज में अनेक जातियां हैं उनके नीचे कई और नीची जातियां बनाई गई हैं इन जातियों में इतने विभेद, इतनी विभिन्नताएं समाज को पीछे छोड़ती हैं जो हमारे समाज की गंभीर समस्याओं में से एक है। उन्हीं समस्याओं को ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने अपने साहित्य में उठाकर समाज को नई दिशा देने का अपना दायित्व निभाया है। इन समस्याओं से हमारा भारतीय समाज सदियों से जूझता रहा है। किंतु इसका सही निष्कर्ष अभी निकलना बाकी है इन सभी उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का साहित्य बहुत ही मददगार है।

प्रमुख शब्द– दलित साहित्य, संवेदना, यथार्थ, मनुवाद, जूठन, संघर्ष, प्रताड़ना, अंबेडकरवादी विचारधारा, वर्णवाद, कर्मकांड, ब्राह्मणवाद, विषमता, विसंगतियां, अत्याचार, दर्द, पीड़ा, असमानता, विवशता, खोखलापन इत्यादि।

परिचय– ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का जन्म उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर जिले के बरला नामक गांव में 30 जून सन् 1950 को दलित समाज में सर्वाधिक उपेक्षित समझी जाने वाली जाति (चूहड़ा) में हुआ था। वाल्मीकि जी का बचपन जिन परिस्थितियों का सामना करते हुए बीता वह अत्यंत भयावह है, हिंदू समाज की विषमताओं का एक जीता – जागता प्रमाण है वाल्मीकि जी का बचपन। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपने बचपन की उन बातों का उल्लेख अपनी आत्मकथा जूठन में करते हैं जिसे पढ़कर एक सहृदय पाठक अपनी भावनाओं पर नियंत्रण नहीं कर सकता। वाल्मीकि जी ने जिस गंदगी से भरे हुए वातावरण में अपना बचपन बिताया उसका चित्रण उन्होंने जूठन में इस प्रकार किया है– "चारों तरफ गंदगी भरी होती थी। ऐसी दुर्गंध की मिनट भर में सांस घुट जाए। तंग गलियों में घूमते सूअर, नंग–धड़ंग बच्चे, कुत्ते, रोजमर्रा के झगड़े बस यह था। वह वातावरण जिसमें बचपन बीता। इस माहौल में यदि वर्ण व्यवस्था को दो–चार दिन रहना पड़ जाए तो उनकी राय बदल जाएगी।" वाल्मीकि जी के पिता का नाम छोटनलाल और माता का नाम मुकुंदी था। पास – पड़ोस के लोगों में वाल्मीकि जी की माता खजूरीवाली के नाम से प्रसिद्ध थी। वाल्मीकि जी पांच भाई थे, पांचो भाइयों में वाल्मीकि जी सबसे छोटे थे उनकी दो बहने थी। कहने का मतलब वाल्मीकि जी का परिवार भाई बहनों से भरा था क्योंकि उनका परिवार संयुक्त परिवार के रूप में जीवन–यापन कर रहा था। जीवन को गति देने के लिए वाल्मीकि जी के परिवार को मजदूरी करनी पड़ती थी जो परिवार के सभी सदस्यों के लिए अनिवार्य थी। इतनी मेहनत के बावजूद पूरा परिवार आर्थिक विपन्नता से जूझता रहता था; यह समस्या उनके परिवार का हिस्सा बन चुकी थी। जो वाल्मीकि जी के बचपन की सबसे बड़ी समस्याओं में से एक थी, वाल्मीकि जी ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा बरला में स्थित प्राइमरी विद्यालय से प्राप्त की। पांचवी कक्षा के बाद उन्होंने बरला इंटर कॉलेज में दाखिला लिया वहां वह 12वीं कक्षा में फेल होने के कारण देहरादून के इंद्रेश नगर की डी०ए०वी० इंटर कॉलेज में प्रवेश लिया। इस प्रकार ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी उच्च शिक्षा एम०ए० हिंदी के साथ गढ़वाल विश्वविद्यालय (श्रीनगर) से प्राप्त की। प्रौद्योगिकी की शिक्षा जबलपुर एवं मुंबई से ग्रहण की जिसने जीवन पर्यंत उनका साथ दिया।

जिस समय वाल्मीकि जी शिक्षा के क्षेत्र में अपना कदम रख रहे थे उस समय दलित जातियों के लिए शिक्षा प्राप्त करना अत्यंत कठिन कार्य था। दलितों को शिक्षा का अधिकार संविधान ने तो दे दिया था किंतु स्कूल के मास्टरों से अधिकार मिलना अभी बाकी था। उसके लिए संघर्ष, प्रताड़ना, गाली, मार खाना अभी बाकी था। वाल्मीकि जी के पिता छोट्टनलाल की दृढ़

इच्छा थी कि मेरा यह बेटा पढ़ाई करे और जो काम हम लोग करते हैं वह यह न करे । इसी दृढ़ इच्छाशक्ति ने ओमप्रकाश वाल्मीकि को साहित्य जगत में अमर कर दिया।

विवाह - वाल्मीकि जी का वैवाहिक जीवन अत्यंत सफल रहा, 27 दिसंबर सन् 1973 में दलित साहित्य को अपनी लेखनी से ऊर्जा देने वाले साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की 23 वर्ष की आयु में चंद्रकला उर्फ चंदा से विवाह हुआ था। चंद्रपुर में वाल्मीकि जी का वैवाहिक जीवन प्रारंभ होता है, शिव बाबू मिश्र का कथन है कि "चंदा खैरवाल एक समझदार और पत्नी के महत्त्व को जानने वाली स्त्री है, जिन्होंने ओमप्रकाश वाल्मीकि का प्रत्येक समय और प्रत्येक पल साथ दिया और आज भी अपनी भूमिका का सफल निर्वाह कर रही हैं।"

अंबेडकरवादी विचारधारा का प्रभाव- ओमप्रकाश वाल्मीकि के जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव बचपन से ही देखे जा सकते हैं जो दलितों के जीवन का हिस्सा बन चुकी थी, जिसे प्रत्येक दलित अपने जीवन में भोगता है कुछ एक के जीवन में इसकी अधिकता होती है कुछ दलितों के जीवन में यह दर्द कम मात्रा में होते हैं। हर कोई ओमप्रकाश वाल्मीकि नहीं बन पाता, जो जीवन के हर पन्ने को बारीकी से उलट पाए और उसमें भोगे हुए यथार्थ को सबके सामने रख पाए। वाल्मीकि जी को यह प्रतिभा मिली थी जिसका प्रयोग उन्होंने अपने साहित्यिक माध्यम से समाज के सामने प्रस्तुत किया। अंबेडकरवादी विचारधारा का प्रभाव वाल्मीकि जी के जीवन में बहुत गहरा पड़ा जिसने वाल्मीकि जी के जीवन को प्रेरणा से भर दिया और उनकी आत्मशक्ति को मजबूती प्रदान की। वाल्मीकि जी प्राइमरी कक्षा से इंटरमीडिएट कक्षा तक अंबेडकर से परिचित नहीं थे, अंबेडकर का नाम भी नहीं सुना था। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि बारहवीं की पढ़ाई तक छात्रों को अंबेडकर की जानकारी नहीं दी गई जिन्होंने भारतीय संविधान का निर्माण किया। यह इस बात का द्योतक है कि वाल्मीकि जी के समय का भारत जातिवादी मानसिकता से कितना ग्रसित था कि शिक्षकों ने अंबेडकर के विषय में कोई जानकारी नहीं दी क्योंकि ऐसे मनुवादी शिक्षक अंबेडकर का नाम लेने से अपवित्र हो जाते। वाल्मीकि जी का कहना है कि "मेरे लिए डॉ अंबेडकर उस समय तक एक अपरिचित नाम था। मैं गांधी, नेहरु, पटेल, राजेंद्र प्रसाद, राधाकृष्ण ,विवेकानंद ,टैगोर, तिलक, भगत सिंह ,सुभाषचंद्र बोस, चंद्रशेखर आजाद, सावरकर आदि के विषय में जानता था लेकिन डां अंबेडकर से अनजान था। त्यागी इंटर कॉलेज बरला में कक्षा बारह तक पढ़ाई करके भी किसी भी रुप में यह नाम मेरी जानकारी में नहीं आया था। उस पुस्तकालय में भी अंबेडकर पर कोई पुस्तक नहीं थी, कभी किसी शिक्षक या किसी विद्वान के मुख से यह नाम नहीं सुना था। गणतंत्र दिवस पर भाषण होते थे, देशप्रेम की कहानियां दोहराई जाती थी लेकिन संविधान निर्माता की जानकारी नहीं थी। सूचना देने वाले तमाम माध्यम इस नाम को मुझ जैसे लोगों तक पहुंचाने में असमर्थ थे।" 1/89 (जूठन)

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने जब 'डॉ० अंबेडकर जीवन परिचय' नामक पुस्तक को पढ़ा तब इस पुस्तक ने वाल्मीकि जी के मन मस्तिष्क को झकझोर दिया। इस संदर्भ में वे कहते हैं- "कई दिन और रातें मैंने बेचौनी में काटी, मेरे भीतर की छटपटाहट बढ़ गई थी। मेरी चुप्पी जो मेरे रोम- रोम को जड़ बना रही थी, अचानक पिघलने लगी थी। उस पुस्तकालय में अंबेडकर की जो पुस्तकें थी वे सभी पढ़ डाली थी।" 1/90 (जूठन)

इस प्रकार डॉ० बाबासाहेब अंबेडकर की विचारधारा का प्रभाव वाल्मीकि जी के जीवन पर दृष्टिगोचर होता है। अंबेडकर साहब की पुस्तकों ने वाल्मीकि जी को शब्द दिया और आंतरिक रूप से मजबूती प्रदान की जिससे वे दलित आंदोलन से जुड़ते हैं और आगे महाराष्ट्र के चंद्रपुर में रहकर दलित आंदोलन को अपनी लेखनी के माध्यम से नई ऊर्जा प्रदान करते हैं। चंद्रपुर में रहकर अंबेडकर जयंती पर कविता पाठ करना, गोष्ठियां, नुक्कड़ नाटक, परिचर्चाएं ,पोस्टर इत्यादि के माध्यम से प्रदर्शन करते थे और अंबेडकर जयंती को नई ऊर्जा से भर देते थे। संस्था में कार्य करने वाले जो वाल्मीकि जी के सवर्ण साथी थे वे ऐसी गोष्ठियों में प्रतिभाग नहीं करते थे और पीठ पीछे बात बनाते थे ,अंबेडकर के लिए अपशब्द कहते थे यह सब सुनकर वाल्मीकि जी का खून खौलता था। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस दौरान वाल्मीकि जी पर अंबेडकरवादी विचारधारा का प्रभाव पूरी तरह से पड़ चुका था और वह अंबेडकर जी की तरह समाज में क्रांति लाना चाहते थे तथा अंबेडकर को जन-जन तक पहुंचाना चाहते थे।

दलित चेतना डॉ. अंबेडकर के जीवन दर्शन से मुख्य ऊर्जा ग्रहण करती है। इस तथ्य से सभी दलित लेखक एकमत है। दलित चेतना के प्रमुख बिंदु हैं -

1. मुक्ति और स्वतंत्रता के सवालो पर डॉ. अम्बेडकर के दर्शन को स्वीकार करना।
2. बुद्ध का अनीश्वरवाद, अनात्मवाद, वैज्ञानिक दृष्टिबोध, पाखंड - कर्मकांड विरोध।

3. वर्ण- व्यवस्था विरोध, जातिभेद-विरोध, सांप्रदायिकता विरोध।
4. अलगाववाद का नहीं, भाईचारे का समर्थन।
5. स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय की पक्षधरता।
6. सामाजिक बदलाव के लिए प्रतिबद्धता।
7. आर्थिक क्षेत्र में पूंजीवाद का विरोध।
8. सामंतवाद, ब्राह्मणवाद का विरोध।
9. अधिनायकवाद का विरोध।
10. महाकाव्य की रामचंद्रशुक्लीय परिभाषा से असहमति।
11. पारंपरिक सौंदर्यशास्त्र का विरोध।
12. वर्णविहीन, वर्गविहीन समाज की पक्षधरता।
13. भाषावाद, लिंगवाद का विरोध।

ओमप्रकाश वाल्मीकि का रचना संसार- ओमप्रकाश वाल्मीकि ने कई विधाओं में अपनी कुशलता का परिचय दिया है वह ऐसे कुशल साहित्यकार हैं जिन्होंने जिस विधा को अपनी कलम से पिरोया है वह हिंदी साहित्य की एक अनुपम निधि बन गई । इसी क्रम में उनकी साहित्यिक कृतियों का परिचय निम्न प्रकार है-

कविता संग्रह - वाल्मीकि जी की कविताओं की यदि बात की जाए तो उन्होंने अनेक कविताएं लिखी हैं जो उनकी कविता संग्रह में प्रकाशित हैं जिसमें निम्नवत हैं- 1. सदियों का संताप, 2. बस्स ! बहुत हो चुका, 3. अब और नहीं -, 4. शब्द झूठ नहीं बोलते।

इन चारों काव्य संग्रहों में उनकी संपूर्ण कविताएं प्रकाशित हैं जो दलित संवेदना से परिपूर्ण हैं। इन काव्य संग्रहों को पढ़ने पर दलितों के जीवन का समग्र सच उजागर हो जाता है कि बड़ी जातियों के लोग उनके साथ कैसा व्यवहार करते हैं और किस दृष्टि से उनको छोटा और अपने आप को बड़ा बनाकर समाज में भेदभाव को फैलाते हैं। समीक्षकों ने वाल्मीकि जी की कविताओं को अपनी नजर से देखा- परखा और फिर अपने शब्दों से उसे व्याख्यायित किया जो इस प्रकार है-

"सदियों का संताप' काव्य पुस्तक बहुत छोटी है, परंतु गुणात्मक दृष्टि से अभिव्यक्ति में बेहद सशक्त है।" -डॉ. धर्मवीर

"संग्रह की हर कविता मेरा बयान लगती है। मेरी पीड़ा और प्रश्न इन कविताओं में दिखाई दिये।" - शरणकुमार लिंबाले

"सचमुच संग्रह की कविताएं ज्वालामुखी बनकर सदियों का संताप उगल रही हैं और एक नयी सोच को जन्म दे रही हैं।" - डॉ. श्याम सिंह शशि

"कविताओं में भावाकुलता है और शब्द तथा भावना को एकाकार कर सकने की दुर्धर्ष जिजीविषा।" - बटरोही

"कविताओं ने इतने प्रश्न दिए कि हाथ मलने और हतप्रभ रह जाने के सिवा कुछ नहीं कर सका। दर्द का सैलाब हैं ये कविताएं।" - डॉ. प्रतीक मिश्र

कहानी संग्रह - ओमप्रकाश वाल्मीकि के तीन कहानी संग्रह हैं। जिसमें सलाम, घुसपैठिए और छतरी यह तीन कहानी संग्रह है, जिनमें उनकी तमाम दलित जीवन की कहानियां संग्रहित हैं।

सलाम - यह कहानी संग्रह सन् 2000 ईस्वी में प्रकाशित हुआ, यह वाल्मीकि जी का पहला कहानी संग्रह है ।जिसमें उनकी कुल 14 कहानी संग्रहीत हैं प्रस्तुत कहानी संग्रह श्री राजेंद्र यादव जी को समर्पित है। इन कहानियों में दलित जीवन की उन कुरूप संवेदनाओं को दिखाया गया है जिससे एक दलित संपूर्ण जीवन उससे पीड़ित रहता है। दलितों के जीवन संघर्ष और उनकी छटपटाहट का सजीव अभिलेख है यह कहानी संग्रह। इन कहानियों में दलित जीवन की पीड़ा, व्याकुलता, दर्द, घुटन, विवशता, बेचौनी को अत्यधिक सूक्ष्म तरीके से उकेरने का प्रयास किया गया और उसे समाज के सामने इस तरह प्रस्तुत किया गया है जिससे पाठक उस कथ्य पर स्वयं चिंतन कर दलितों की व्यथा को समझ सके। ओमप्रकाश बाल्मीकि जी ने दलित जीवन में फैली विसंगतियों पर भी करारा प्रहार किया है जो दलित विमर्श को सार्थक और गुणवत्ता परक बनाती है। इस तरह की कहानियों में दलित समुदाय के छुपे हुए दुख दर्द पूर्णत: मुखरित हो गए हैं। आजादी के बाद दलित जीवन में जो सुधार होने चाहिए थे वह आजादी के बाद भी नहीं हुए। अमूल-चूल परिवर्तन के साथ यथा- स्थिति अभी भी बनी हुई है किसी

प्रकार का परिवर्तन दलित जीवन में नहीं दिखाई देता। संविधान में जिन अधिकारों की बात दलितों के लिए कि गई है वह अधिकार दलितों तक पहुंच ही नहीं पाए। सदियों से शोषित,प्रताड़ित जनता को आज भी मनुवादी मानसिकता के लोग उसी दृष्टि से देखते और व्यवहार करते हैं जैसे स्वतंत्रता के पूर्व करते थे, ओमप्रकाश वाल्मीकि की सलाम कहानी संग्रह से स्पष्ट यह सब पता चलता है। दलित वर्ग की कड़ी मेहनत, परिश्रम का परिणाम है कि कुछ लोग शिक्षित होकर समाज में बदलाव लाने का प्रयास कर रहे हैं इसी भाव को वाल्मीकि जी अपने संग्रह के माध्यम से शिक्षित समाज को बताना चाहते हैं।

घुसपैठिए - यह कहानी संग्रह सन् 2003 में प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में वाल्मीकि जी की कुल 12 कहानियां संग्रहीत है। यह कहानी संग्रह वाल्मीकि जी ने मोहनदास नैमिषराय को समर्पित किया है। यह सभी कहानियां दलित समुदाय से संबंधित है जो दलितों के जीवन में घटित होने वाली सभी बड़ी-छोटी घटनाओं को प्रस्तुत करती है। इन कहानियों में संग्रहित प्रत्येक पात्र जीवन के गंभीर अवसादों से ग्रसित है और अपने जीवन से निराश ना हो कर जीवन को गति देने का प्रयास करता है। दलितों को शिक्षा से कैसे दूर रखा जाए इसका जीता जागता उदाहरण "घुसपैठिए" कहानी में दिखाया गया है। सवर्ण मानसिकता के छात्र, अध्यापक, प्रिंसिपल, डीन से लेकर मैनेजमेंट का पर्दाफाश प्रस्तुत कहानी के माध्यम से किया गया। इस कहानी में एक दलित छात्र सुभाष सोनकर की प्रबल इच्छा डॉक्टर बनने की है। कोटे से आने के कारण सवर्ण छात्र से लेकर मैनेजमेंट तक उसे घुसपैठिया मानता है और तमाम तरीके के हथकंडे अपनाए जाते हैं जिससे यह दलित छात्र मेडिकल कॉलेज से पलायन कर जाए। जब दलित छात्रों का समूह इसका प्रतिरोध करता है तो उनसे मारपीट और गाली-गलौच की जाती है पुलिस में गलत रिपोट दलित छात्रों के प्रति कराई जाती है। अंतत: दलित छात्र होने के कारण सुभाष सोनकर को अनुत्तीर्ण कर दिया जाता है। सुभाष सोनकर इस पीड़ा को नहीं सहन कर पाता और आत्मघात कर लेता है। इस यथार्थ को इतनी गहराई से ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने अपनी कहानी के माध्यम से प्रस्तुत किया है यह एक सराहनीय कार्य है। दलित छात्रों के साथ होने वाले शोषण का पर्दाफाश वाल्मीकि जी प्रस्तुत कहानी के माध्यम से करते हैं। इस तरह से इस संग्रह में अन्य कहानियां हैं जिसमें वाल्मीकि जी ने दलितों के साथ होने वाले शोषण को कहानी में दिखाया है।

छतरी - ओमप्रकाश वाल्मीकि का तीसरा कहानी संग्रह छतरी है जो सन् 2013 में प्रकाशित हुआ था। इसमें कुल 12 कहानियां संग्रहीत की गई है। यह संग्रह वाल्मीकि जी ने दलित विचारक व चिंतक कंवल भारती जी को समर्पित किया है।

इस संग्रह की कहानियों में वाल्मीकि जी ने दलित जीवन की विषमताओं, विसंगतियों, विद्रूपताओं और पीड़ा को बड़े ही सूक्ष्म तरीके से उकेरा है। इनकी कहानियों में मानवीय जीवन की गहरी संवेदनाएं तथा सामाजिक जीवन के सरोकार परस्पर गुथे दिखाई देते हैं। दलित जीवन में विद्यमान ये विसंगतियां भारतीय सामाजिक जीवन के खोखलेपन को अत्यंत गहराई से खोलती हैं ।

आत्मकथा -

जूठन - ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा जूठन के दो खंड हैं। पहला खंड सन् 1997 में प्रकाशित हुआ तथा दूसरा खंड संन् 2015 मे प्रकाशित हुआ। आत्मकथा जूठन को वाल्मीकि जी ने अपने माता-पिता को समर्पित किया है। जूठन एक बहुप्रचलित आत्मकथा है। जूठन केवल वाल्मीकि जी की आत्मकथा नहीं बल्कि आति दलित जीवन की यथार्थ सामाजिक गाथा है जिसमें समाज के एक ऐसे उपेक्षित वर्ग के संघर्षों, भारतीय सामाजिक परंपराओं के द्वारा निर्दिष्ट अत्याचारों का यथार्थ चित्रण है। यह आत्मकथा उस समय की सामाजिक स्थिति का चित्र प्रस्तुत करती है जब चुहड़ा, चमार, डोम, मेहतर, भंगी इत्यादि जातियों को मनुष्य नहीं समझा जाता था। उनसे अति अमानवीय व्यवहार होते थे जिसे सोचकर भी रूह कांप जाए। ऐसे सामाजिक नियम बनाने वाले उन मनुवादियों में जरा भी दया, धर्म, संवेदना नहीं थी जो इस तरीके का व्यवहार उन जातियों के ऊपर होते हुए आनंदपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे थे।उस समय की समस्त रुढ़िवादी परंपराओं को समाज के सामने प्रस्तुत करने वाली आत्मकथा जूठन है। जिसे वाल्मीकि जी ने स्वयं भोगा, उस पीड़ा गहराई का चित्रण वाल्मीकि जी ने जिस प्रकार किया है उसे पढ़कर सहृदय पाठक विचलित हो जाता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने अपनी इस आत्मकथा के माध्यम से तत्कालीन ग्रामीण और शहरी विचारधारा को बड़ी बारीकी से बताते चलते हैं। दलितों के प्रति जो विचारधारा ग्रामीण परिवेश में विद्यमान थी वही घृणित सोच शहरी पढ़े-लिखे शिक्षित वर्गो में भी विद्यमान थी। जाति का दंश वाल्मीकि जी को पूरे जीवन काल में झेलना पड़ा है। चुहड़े जाति में जन्म लेना उनके लिए एक अभिशाप से कम न था जिसे उन्हें पल-पल सहना पड़ता था। जूठन आत्मकथा के माध्यम से वाल्मीकि जी ने अपने जीवन की तमाम बातों को बताया है जिसे एक दलित प्रताड़ित होता रहता है और समाज से संघर्ष करता रहता है।

वाल्मीकि जी दलित जीवन के ऐसे विचारक, आलोचक, कवि, अनुभव संपन्न दलित साहित्यकार हैं जिन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से दलित समाज को एक नई दशा और दिशा दी है। उनकी रचनाओं में दलितों के जीवन को जिस संवेदना के साथ उकेरा गया है वह अपने आप में हृदय को झकझोर देने वाला है। वाल्मीकि जी का जीवन जिन संघर्षों के साथ आगे बढ़ा है वह यथार्थ जो दलितों के जीवन से इतनी गहराई के साथ जुड़ा है उनके साहित्य में स्पष्ट परिलक्षित होता है। उनके साहित्य ने भारतीय समाज को नए सिरे से विचार करने के लिए प्रेरित किया और भारतीय समाज की एकता अखंडता को बनाए रखने पर बल दिया है। उनकी पुस्तक 'दलित साहित्य अनुभव संघर्ष एवं यथार्थ' में ये 'मेरे लिए लेखन किसी यातना से कम नहीं है' के अनुक्रम में लिखा है 'मुद्रित शब्द की आग में मैंने अपने आप को हमेशा झुलसते पाया है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के जिला मुजफ्फर नगर, गांव बरला के बेसिक प्राइमरी स्कूल में मेरे दाखिले के वक्त गिड़गिड़ाते पिता का चेहरा आज भी मेरी आंखों में किरकिराता है और यातना भरे सफर और संघर्ष में यही मेरी ताकत भी बनता है। यह वह दौर था, जब भारत नया-नया स्वतंत्र हुआ था, लेकिन स्कूल कॉलेजों में किसी दलित के लिए प्रवेश पाना आसमान से तारे तोड़ लेने के बराबर था, किसी दलित के लिए स्कूल के दरवाजे बंद थे----------।" अपने जीवन से जुड़े हुए इन अनुभवों को वाल्मीकि जी जब शब्द बद्ध करते हैं तब दलित जीवन की यथार्थ संवेदना हृदय में हलचल पैदा कर देती है। सामाजिक संरचना की ऐसी विद्रूपता के दर्शन से हिंदू समाज के प्रति एक आलोचनात्मक दृष्टि जन्म लेती है जो उन नियम नियंताओं से प्रश्न करना चाहती है कि इंसान के लिए इंसानों जैसा नियम ना बनाना कहां की इंसानियत है। यह सभी घटनाएं जो एक दलित के साथ होती आ रही थी वह हमें एक ऐसी संवेदना के गह्वर में धकेल देती है जहां से निकलना अत्यंत कठिन होता है। इसी तरह की बहुत सारी घटनाओं का यथार्थ चित्रण वाल्मीकि जी ने अपनी आत्मकथा जूठन के माध्यम से लोगों के सामने पहुंचाने का प्रयास किया है आजादी के पहले और बाद दलितों की स्थिति क्या थी और उसमें कितना सुधार आया ये सभी बातें हमें वाल्मीकि जी के साहित्य को पढ़ने से पता चलती हैं। साहित्य में रचनाकार अपने समय के परिदृश्य को रेखांकित करता चलता है, उसकी संरचना में रचनाकार के उद्‌गार स्वतरू शब्द चित्र खींचते चलते हैं इसी क्रम में वाल्मीकि जी की कविता 'लेखा-जोखा' को पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ जिसे पढ़ने के बाद कविता के एक-एक शब्द ने हृदय को झंकृत कर रख दिया-

पसीना मिश्रित जल से
उगाई फसले
लगाए पेड़
पल भर ठिठक कर
जानना चाहा धूप का रंग
न फसल ही अपनी हो सकी
ना पेड़ ही
तपती दोपहर में
रजबाहे की नालियों में
बहते गंगाजल से
बुझाई प्यास अनेक बार
बिना हिसाब किये -
कितनी रेत समायी पेट में
कितना पानी बदला लहू में
फिर भी,
ना गंगा ही अपनी हो सकी
न रजबाहे की रेत ही।

ऐसा लेखा जोखा कहीं अन्यत्र मिलना दुर्लभ है जिसे वाल्मीकि जी ने बिल्कुल सही और सटीक तरीके से प्रस्तुत किया इस कविता में यह स्पष्ट हो जाता है कि दलित समाज कितनी ही मेहनत क्यों न कर ले उसका फल अंत में कोई अन्य ही

भोगता है।कभी भी दलितों के परिश्रम और लगन का उचित परिणाम उसे प्राप्त नहीं हुआ यह हमारे समाज की वास्तविकता है। पसीना किसी का बहता है, मेहनत, लगन किसी की रहती है लेकिन जब फल की बारी आती है तो फल देखने तक को नहीं मिलता है। जिस गंगाजल को छू लेने से सभी पाप धुल जाते हैं उस गंगाजल को पी लेने पर भी दलित के कर्म, उसकी जाति उसका पीछा नहीं छोड़ते, वह हमेशा अंतिम पंक्ति में खड़े किए हुए व्यक्ति की तरह ही रहता है चाहे वह कितना ही बड़ा करिश्मा क्यों न कर दे।

वाल्मीकि जी के साहित्य में ऐसे अनेक जीवन के उतार-चढ़ाव देखने को मिलते हैं जो जीवन को बारीकी से परखते हुए चलते हैं। उनकी रचनाएं दर्द और पीड़ा को बड़ी गहराई से उकेरती चलती हैं और जीवन के सभी हिस्सों को नए तरीके से समझने की प्रेरणा देती हैं। वाल्मीकि जी के साहित्य को पढ़कर विचारधारा और सोंच में परिवर्तन आता है, जिससे हमें प्रेरणा मिलती है कि हमारे समाज का एक ऐसा वर्ग भी है जिसे मुख्य धारा में लाने का दायित्व हम सभी शिक्षित वर्ग के लोगों का है।वाल्मीकि जी ने 'सफाई देवता' नामक अपनी पुस्तक के 'समस्या और समाधान' के अनुक्रम में लिखते हैं - "हिंदू समाज में जातियों का निर्माण, फिर ऊँच-नीच के आधार पर उनका विभाजन एक योजना के तहत हुआ है। जिसे दार्शनिक आधार देकर सुदृढ़ किया जाता रहा है। जिसका उद्देश्य समाज पर वर्चस्व बनाए रखना एक वर्ग के लिए जरूरी था। सत्ता पर अपना अधिकार बनाए रखने के लिए यह वर्ग नए-नए हथकंडे इस्तेमाल करता है। जो विभिन्न रूपों में दिखाई पड़ते हैं। जातियों को निम्न से निम्न बनाकर उन पर अपना शिकंजा कसते रहना और फिर उन जातियों को गाली की तरह इस्तेमाल करना एक सोची समझी रणनीति है।' -पेज -110 (सफाई देवता)

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने समाज की इस दुर्दशा के लिए एक विशेष समुदाय को जिम्मेदार ठहराया है ,जो लगातार अपने स्वार्थ के लिए समाज में विभेद करता रहा है। जिसमें एक जाति दूसरी जाति से मेल -मिलाप न कर सके और दूरी जब तक रहेगी तब तक उनके यहां देसी घी के पकवान बनते रहेंगे, बिना परिश्रम के संपूर्ण फल का उपभोग करते रहेंगे। वाल्मीकि जी ने अपनी रचनाओं में अनेक जगहों पर ऐसी मानसिकता के लोगों का सचरित्र वर्णन किया है। 'सफाई देवता' नामक पुस्तक के 'आर्थिक और सामाजिक शोषण' के अनुक्रम में वाल्मीकि जी लिखते हैं - "भारतीय समाज में दो प्रथाएं एक साथ चल रही हैं - 'दान प्रथा' और 'बेगार प्रथा' 'बेगार प्रथा' दलितों के लिए है और 'दान प्रथा' ब्राह्मणों, मंदिरों, संस्थाओं के लिए है। बिना शारीरिक श्रम किये 'दान' में इतना मिल जाता है कि उन्हें शारीरिक श्रम करने की आवश्यकता नहीं थी। कहा जाता है कि भारत कृषि प्रधान देश है लेकिन यदि किसी ब्राह्मण ने हल छू दिया तो निष्कृष्ट मान लिया जाता है। उसका ब्रह्मणत्व कम हो जाता है। उत्तरांचल के कुमाऊं क्षेत्र में 'छोटी धोती' और 'बड़ी धोती' की श्रेणी इसी आधार पर तय होती है। शायद यही कारण है कि श्रम को जीवन का आधार बनाने वालों को या उत्पादन से जुड़े लोगों को हीनता भाव से देखा जाता है।" पेज-10

सामाजिक संरचना का यह जो आधार बनाया गया उसको वाल्मीकि जी बहुत ही तार्किक ढंग से अपनी लेखनी में उतारते हैं। समाज की इस विचारधारा पर कुठाराघात करते हैं जो समाज में असमानता के पक्षधर हैं। जिस तरह के नियम मनुस्मृति और अन्य ब्राह्मण धार्मिक ग्रंथो में बताए गए हैं उनके पढ़ने मात्र से दिल दहल उठता है और जब यह नियम समाज में लागू होते हैं तो उनका चित्रण करने वाला रचनाकार गहरी पीड़ा को भोगता हुआ संवेदना से भर उठता है। यह संवेदना मनुष्य को मनुष्य होने का एहसास दिलाती है। जो वाल्मीकि जी की प्रत्येक रचना का मुख्य आधार है।

संदर्भ ग्रंथ-

1. ओमप्रकाश बाल्मीकि-व्यक्ति विचारक और सृजक - जयप्रकाश कर्दम (वाणी प्रकाशन नई दिल्ली), 2016
2. सलाम - ओमप्रकाश वाल्मीकि (राधा कृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली), 2000
3. अब और नहीं.., - (कविता संग्रह) ओमप्रकाश वाल्मीकि (राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली),2009
4. बस्स बहुत हो चुका - ओमप्रकाश वाल्मीकि (वाणी प्रकाशन नई दिल्ली), 1997
5. जूठन - ओमप्रकाश वाल्मीकि (राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली), 1997
6. दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष, एवं यथार्थ - ओमप्रकाश वाल्मीकि (राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली), 2013
7. सफाई देवता - ओमप्रकाश वाल्मीकि (राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली), 2013
8. ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्य में दलित विमर्श (शोध प्रबंध), (शोधार्थी- पूर्णिमा कतरौलिया)
9. ओमप्रकाश वाल्मीकि का साहित्य रूविभिन्न समस्याओं के विशेष संदर्भ में (शोध प्रबंध), (शोधार्थी -गोहिल ममता आर.)

अमरकांत की कहानियों में मध्यमवर्गीय चेतना

सुभाष चन्द्र सिंह

शोधार्थी एवं असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी), कर्म क्षेत्र महाविद्यालय, इटावा (उ0प्र0)

डॉ० हिमांशु कुमार

शोध निर्देशक एवं एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी), कर्म क्षेत्र महाविद्यालय, इटावा (उ0प्र0)

सार-

वर्ग वास्तव में मानव की वह व्यवस्था है जहाँ समाज के व्यक्ति समूह का होना निश्चित होता है। वर्ग के अन्तर्गत एक समुदाय का व्यक्ति अपने समूहों के एक प्रकार की संस्कृति, खान-पान कार्य योजना की विधि आदि में क्षमता रखता है। मानव समाज की कल्पना के साथ हमारे मस्तिष्क में वर्गों का स्वरूप उभरता है और इन वर्गो को ही एक प्रकार से सामाजिक श्रेणीकरण का विशिष्ट रूप कहा जाता है। समाज वैज्ञानिको ने वर्ग निर्माण की प्रक्रिया को विभिन्न रूपों में देखा है। उनकी दृष्टि में श्रेणी करने की प्रक्रिया द्वारा समाज अपने सदस्यों के स्थान का निर्धारण करता है। मैकाइवर तथा पेज ने वर्ग की परिभाषा करते हुए कहा है "किसी वर्ग का अर्थ ऐसे श्रेणी अथवा प्रकार से है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह आते हों "जिस वर्ग के अनुसार, वर्ग की संकल्पना दलों के सामाजिक भेद पर आधारित है।'' उपर्युक्त विद्वानों के मतो का विवेचन करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है, कि वर्ग व्यक्तियों का एक ऐसा समूह होता है जिसके आय के स्त्रोतो आचार-विचार पारिवारिक पृष्ठभूमि, रहन-सहन तथा प्रतिभा आदि में साम्यता रहती है यह समस्या ही इन्हें आपस में आकर्षित करती है, फलस्वरूप समाज में एक वर्ग का निर्माण होता है। समाज के आधार पर मुख्यत: तीन प्रकार के वर्ग पाये जाते है- उच्चवर्ग, मध्यमवर्ग एवं निम्नवर्ग। मध्यम वर्ग समाज उच्च का और निम्न के बीच का होता है इस वर्ग की अभिलाषाए उच्चवर्ग के समान होती है। इसी कारण यह वर्ग हर समय अर्थाभाव झेलता रहता है। आज प्राय: यह देखा जा रहा है कि अर्थाभाव के कारण यह वर्ग समाज के नैतिक आदर्शो को खोता चला जा रहा है इसलिए इस वर्ग की सामाजिक नैतिकता भी दाव पर लगी दिखती है। इसकी व्यापकता को देखते हुए इस वर्ग के बारे में निश्चित परिभाषा देना मुश्किल है फिर भी विद्वानों ने अपने-अपने हिसाब के इस वर्ग को परिभाषित करने का प्रयास किया है। आक्सफोर्ड इलास्ट्रेटेड डिक्शनरी के अनुसार- ''मध्यम वर्ग समाज के उच्च और निम्न वर्ग के बीच का वर्ग है जिसमें व्यावसायिक व्यापारिक अथवा क्रय विक्रय करने वाले लोग शामिल होते है। चेम्बर्स डिक्शनरी में मध्यमवर्ग की परिभाषा इस प्रकार दी गई है- मध्यमवर्ग वे सभी व्यक्ति आ जाते है जो अभिजात्य वर्ग और श्रमिक वर्ग के मध्य होते है।''

कुंजी शब्द- वर्ग, मानव संस्कृति, वैज्ञानिक, विशिष्ट, मध्यम, परिभाषा, विक्रय।

अमरकान्त का जीवन परिचय:- अमरकान्त का जन्म 1 जुलाई 1925 को नगरा गाँव, तहसील रसड़ा बलिया जिला (उत्तर प्रदेश) के एक कायस्थ परिवार में हुआ था इनके पिता का नाम सीताराम वर्मा व माता का नाम अनंती देवी था। इनके खानदान में लोग अपने नाम के साथ 'लाल' लगाते थे। अत: अमरकान्त का भी नाम श्री रामलाल' हो गया । बचपन में ही किसी साधु-महात्मा द्वारा अमरकान्त का एक नाम और अमरनाथ रखा गया था यह नाम अधिक प्रचलित तो नहीं हुआ किन्तु स्वयं श्रीराम लाल को इस नाम के प्रति आसक्ति हो गयी इसलिए उन्होंने कुछ परिवर्तन करके अपना नाम अमरकान्त रख लिया।

उनकी साहित्यिक कृतियाँ भी इसी नाम से प्रसिद्ध हुयी। अपने नाम कारण की चर्चा करते हुए स्वयं अमरकान्त ने लिखा है कि "मेरे खानदान के लोग अपने नाम के साथ 'लाल' लगाते थे। मेरा नाम भी श्रीराम लाल ही था। लेकिन जब हम लोग बलिया शहर में रहने लगे तो चार-पांच वर्ष बाद वहाँ अनेक कायस्थ परिवार में लाल के स्थान पर वर्मा जोड़ दिया गया और मेरा नाम भी 'श्रीराम वर्मा हो गया''

अमरकान्त जी का नगरा के प्राइमरी स्कूल में नाम लिखवाया गया था। कुछ दिनों बाद उनका परिवार बलिया शहर आ गया। यहाँ पर वे कक्षा दो तक ही पढ़ पाये बाद में उनका नाम गवर्नमेन्ट हाई स्कूल में कक्षा तीन में लिखा गया। यहाँ के प्रधानाध्यापक महावीर प्रसाद द्विवेदी भी थे। सन् 1946 में अमरकान्त ने बलिया के सतीश चन्द्र इन्टर कॉलेज से इण्टर मीडिएट की पढाई पूरी की और बी0ए0 इलाहाबाद विश्वविद्यालय से करने लगे।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातक की पढ़ाई पूरी करने के बाद नौकरी की तलाश शुरू कर दी कोई सरकारी नौकरी करने के बदले उन्होंने पत्रकार बनने का निश्चय कर लिया था। उनके अन्दर यह विश्वास बैठ गया था कि हिन्दी ही देश सेवा का पर्याय है। अमरकांत पत्रकारिता की तरफ मुडे अमरकान्त के चाचा उन दिनों आगरा में रहते थे। उन्ही के प्रयास से दैनिक 'सैनिक' में अमरकान्त को नौकरी मिल गयी।

कृतिया -

कहानी संग्रह- जिन्दगी और जोंक, देश के लोग, मौत का नगर, मित्र मिलन, कुहासा, तूफान, कला प्रेमी, प्रतिनिधि कहानियाँ।

उपन्यास - सूखा पत्ता, आकाश पक्षी, काले उजले दिन, कँटीली राह के फूल, ग्राम सेविका, सुखजीवी, बीच की दिवार, सुन्नर पाण्डे की पतोह, लहरे, इन्ही हथियारों से।

पुरस्कार एंव समानः- अमरकांत जी को जो प्रमुख पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त हुए वे निम्नलिखित है-

1. साहित्य अकादमी सम्मान - 2007
2. ज्ञानपीठ पुरस्कार - 2009
3. व्यास सम्मान - 2009
4. मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार
5. यशपाल पुरस्कार

निधनः- हिन्दी के यशस्वी कथाकार और प्रेमचंद की परंपरा के महान रचनाकार अमरकांत का सोमवार 17 फरवरी 2014 को सुबह अपने आवास पर स्नान करते वक्त फिसलने के बाद उनकी सांसे थम गई।

मध्यम वर्गीय चेतनाः- अमरकान्त ने अपने कहानियों में बहुत सहज रूप से समाज के मध्यम वर्ग का यथार्थ जीवन चित्रित किया है। अमरकान्त ने अपनी कहानियों में बदलते सामाजिक मूल्यों और जीवन पद्धति के प्रतिबद्धता एवं जागरूकता को दर्शाया है इनकी कहानियों में समाज की नव्य जीवन दृष्टि तथा उनसे जुडे गम्भीर प्रश्नों को भी उकेरने का सार्थक प्रयास किया है। उन्होंने पीडित समाज की समस्याओं को बयाँ करने का सशक्त माध्यम कहानी को चुना है। अतः ये कहानियों के माध्यम से परिवेश के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त अनाचार, दुराचार शोषण तथा अर्थवस्था से उत्पन्न नये-नये दुराग्रहों से परिचित कराते है।

अमरकांत गरीबों के मसीहा कहे जाएँ तो कोई अतिश्योक्ति नही होगी क्योंकि गरीबी के भयावह दंश से हमारा भारतीय समाज कई दशकों से जूझ रहा है। अमरकान्त ने इस विपरीत परिस्थिति में भी परिवार की एक दूसरे के प्रति सहयोग और समर्पण को एक साहसिक जीवन चेतना के रूप में प्रतिष्ठित किया है। इस कहानी के विषय में रवीन्द्र कालिया लिखते है कि "दोपहर का भोजन'' में भूख और अभाव के बीच पूरे परिवार की बहादुरी अद्भुत संवेदना और सद्भाव के साथ उस विषमता को भी उजागर करती है। जो भारत वर्ष के करोड़ो परिवार को अकारण झेलनी पड़ती है। ध्यान देने की बात यह है कि ये परिस्थिति किसी कमतर रचनाकार को नियतिवाद की ओर धकेल देती, लेकिन अमरकान्त विपरीत परिस्थितियों में भी मनुष्य को निरूपायता से बचा ले जाते है उनकी दृष्टि जीवन की सकारात्मकता और प्रगति मूलक चेष्टाओं पर फोकस रहती है।

अमरकान्त की कहानियाँ मध्यम और निम्न वर्ग के पात्रों की अभिव्यक्ति का साधन हैं। उन्ही के द्वारा लेखक गरीबी के कारण जीवन से भली-भाँति परिचित कराता है, इनकी तमाम कहानियाँ भूख से विलखते लोगो की जीवन कथा बन जाती है। जिसे पढ़कर ऐसा लगता है कि ये कहानी हमारे आस-पास से ली गयी है। 'केले पैसे और मूँगफली', 'जिन्दगी और जोंक', 'दोपहार का भोजन' घर आदि ऐसी कहानियाँ है जिनमें भूख, अभाव तंगी का यथार्थ रूप प्रस्तुत है लेखक ने पात्रों के माध्यम से समाज में घटित घटनाओं को पाठको से रूबरू करवाने का जिम्मा ले रखा हो।

जाति धर्म से उत्पन्न साम्प्रदायिकता एवं दंगे से उत्पन्न मानवीयता का ह्रास अमरकान्त की कहानियों में भरा पड़ा है धर्म जाति की विषमता ने सामाजिक भेदभाव और वैमनस्यता को बढ़ावा देता है, इसी से उत्पन्न हिंसा को आज का युवा वर्ग झेल रहा है, धर्म और सम्प्रदाय से उत्पन्न विभिन्न कारणों को लेखक ने अपनी छानबीन कर इससे उत्पन्न परिस्थितियों के प्रति चेतना के साथ कहानियों में अभिव्यंजित किया है।

"मौत का नंबर, हत्यारे, मनोबल, मुक्ति, महुआ, दो चरित्र, जोकर, शक्तिशाली, बस्ती, आदि ऐसी ही कहानियाँ है जिनमें लेखक ने इसकी जड़ों को टटोलते हुए लूटखसोट, दंगा, अंधविश्वास को चित्रित किया है।

अमरकान्त का समाज ठीक वैसा ही था जैसे स्वातन्त्रयोन्तर युग के पूर्व का समाज था, कहानीकार अपने समकालीन लोगों की भ्रष्टाचार स्वार्थीपना, कुटिल बुद्धि वाले चरित्रों का सृजन कर उनके प्रति सहृदयी पात्रों के भीतर बचाव और संघर्ष को जन्म देती है। उनकी कहानियों के नायक दोहरी नीति और दोहरे चरित्र की मार से डरते नहीं बल्कि डटकर उसका सामना करते है। इनकी प्रतिबद्धता साधारण, गरीब, असहाय के प्रति है। देश के लोग, छिपकली, दो चरित्र, पक्षधप्ता निर्वासित ऐसी ही कहानियाँ है।

बेरोजगारी:- अमरकान्त की कहानियों में बेरोजगार युवक की कथा और उनकी पीड़ा तथा निराशा समाज में उसकी दयनीय स्थिति का चित्रण है। अमरकान्त अपनी कहानियों में नौजवान युवको के पक्ष में बात करते हुए समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा उससे उत्पन्न समस्याओं से रूबरू करवाते है तथा कथा नायक अपने-अपने जीवन से समझौता करता उसी में अपनापन ढूढ़ लेता है।

अदम्य जिजीविषा से भरी कहानियाँ:- 'गंगन बिहारी', 'मूस', 'जिन्दगी और जोंक', 'दोपहर का भोजन,' 'डिप्टी कलक्टरी' आदि ऐसी ही कहानियाँ है जिनमें लेखन ने पात्रों के माध्यम से घनघोर काली रात की बरसात में भी सूर्य का प्रकाश ढूँढ़ लेने में समर्थ है। समाज में आज भी ऐसे पात्र विद्यमान है, जिनके पास किंचित भौतिक संसाधन का अभाव हो परन्तु अदम्य जिजीविषा का साधन है।

'जिन्दगी और जोंक' का रजुआ पात्र में जीवोल्लास की उमंग उसी तरह है जैसे शहद से मक्खी का। लेखक सामाजिक वातावरण को दु:ख उदासीनता से निकाल उसके अन्तर्मन में जीवन के प्रति मोह और प्रेम का दीपोल्लास जलाते है।

सन्दर्भ सूची-

1. अमरकान्त की सम्पूर्ण कहानियाँ (खण्ड एक) भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरा संस्करण - 2016
2. अमरकान्त की सम्पूर्ण कहानियाँ (भाग दो) भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन नई दिल्ली दूसरा संस्करण - 2016
3. अमरकान्त के साहित्य में मध्यम वर्ग- डॉ0 संजय कुमार नमन प्रकाशन नई दिल्ली - 2011
4. अमरकान्त का कथा साहित्य- बहादुर सिंह परमार शिल्पायन प्रकाशन नई दिल्ली - 2009
5. अमरकान्त वर्ष- 1 (व्यक्तित्व - कृतित्व की पड़ताल) रवीन्द्र कालिया इलाहाबाद प्रेस प्रकाशन - 1977

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में वर्णित पर्यावरणीय चिंतनः एक अवलोकन

डॉ० आनन्द कुमार त्रिपाठी

असिस्टेंट प्रोफेसर (इतिहास) खरडीहा महाविद्यालय, खरडीहा, गाजीपुर, उ०प्र०

वर्तमान विश्व में पर्यावरण तथा उससे संबंधित घटनाएं चर्चा तथा चिंता की विषयवस्तु बनी हुई हैं। यह मानवीय सरोकार से संबंधित एक ऐसी चिंता है, जो कि प्रासंगिक भी है तथा अनिवार्य भी। वर्तमान विश्व जिस तीव्रता से प्रगति पथ पर अग्रसर है उसी तीव्रता से वह प्रकृति प्रदत्त संशाधनों, यथा- जल, वायु और भूमि को या तो विनष्ट कर रहा है अथवा उन्हें प्रदूषित कर रहा है। ध्यातव्य है कि प्रकृति का समुचित दोहन ही मानव हित है। गांधी जी ने सम्भवतः इसी भाव को व्यक्त करते हुए कहा था कि- प्रकृति हमारी जरूरतों को पूरा करने के लिए है, लालचों को नहीं।

समूचे ब्रह्मांड में हमारी पृथ्वी पर ही जीवन के अनुकूल आदर्श परिस्थितियाँ विद्यमान हैं। वैज्ञानिकगण अन्य ग्रहों पर जीवन की तलाश में निरंतर अपना अनुसंधान करते रहे हैं किन्तु अभी उन्हें पूर्ण सफलता नहीं मिल पायी है। अतः वर्तमान में पृथ्वी और उसके पर्यावरण का संरक्षण और अनिवार्य हो जाता है, क्योंकि पर्यावरण ही पृथ्वी पर मनुष्य के जीवन का आधार है। स्वस्थ पर्यावरण के अभाव में मानव जीवन की कल्पना असंभव है। संभवतः यही कारण है कि आदिकाल से ही मनुष्य प्रकृति के प्रति कृतज्ञ रहा है और उसकी उपासना करता आया है। भारत में भी प्राचीन काल से ही प्रकृति पूजा प्रचलित रही है। प्रकृति ही हमारी जीवन-दायिनी शक्ति है। हमारे जीवन के लिए अनिवार्य हवा, पानी तथा प्रकाश आदि सब हमको प्रकृति ही प्रदान करती है। इसलिए भी मनुष्य को प्रकृति के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए एवं प्राकृतिक संतुलन को बनाये रखना चाहिए। प्रकृति के साथ संतुलन और सहअस्तित्व मानव जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक है। प्रकृति मनुष्य को उसके अस्तित्व हेतु सभी अनिवार्य संसाधन तो प्रदान करती ही है, साथ ही ओजोन परत के माध्यम से सूर्य की हानिकारक पराबैगनी किरणों से उसका बचाव भी करती है। बावजूद इसके वर्तमान विडंबना यह है कि मनुष्य ने अपनी अत्यधिक लोभवृत्ति के कारण प्रकृति का इस प्रकार दोहन किया है कि जल, वायु तथा ध्वनि प्रदूषण इस समय का यथार्थ हैं। इस प्रकार के प्रदूषणों ने मानव जीवन को गहराई से प्रभावित किया है। इन प्रदूषणों के कारण ही जीवन रक्षक ओजोन परत को नुकसान पहुंचा है। मनुष्य अगर प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन करता रहा तथा समावेशी ढंग से उनका उपयोग नहीं किया तो भविष्य में उसे अत्यधिक कठिन स्थिति का सामना करना पड़ सकता है। अतः जरूरत है कि मनुष्य प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक विवेकपूर्ण तथा समावेशी ढंग से उपयोग करे, जैसा प्राचीन भारतीय ग्रंथों में वर्णित है।[1]

प्राचीन भारतीय वाङ्गमय में पर्यावरण चिंतन से संबंधित अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। भारतीय चिंतनधारा, जिसका प्रारम्भ वेदों से होता है तथा जो उपनिषदों में विकसित होकर महाकाव्यों तथा पुराणों में अपने उत्कर्ष पर पहुँचती है, में प्रकृति और मनुष्य का संबंध पारस्परिक विरोधी अथवा अधीन-अधीनस्थ भाव के रूप में न होकर समावेशी और सामंजस्यपूर्ण वर्णित हुआ है। वैश्विक रूप से तो पर्यावरण संरक्षण का मुद्दा मुख्यतः उन्नीसवीं शताब्दी में आरम्भ होता है, किन्तु भारतवर्ष के तत्त्ववेत्ता ऋषियों ने उक्त विषय पर हजारों वर्ष पूर्व ही पर्याप्त मंथन कर लिया था। हमारे आदि ग्रंथ ऋग्वेद में ऋषियों ने पर्यावरण की शुद्धता पर अपनी चिंता प्रकट की है। ऋग्वेद के पृथ्वी सूक्त तथा नदी सूक्त में इन पर्यावरणीय घटकों के प्रति सामंजस्यपूर्ण तथा सहयोगी दृष्टि मिलती है तथा उन्हें माता और पिता के रूप में वर्णित किया गया है।[2] यजुर्वेद में भी वृक्षों, वनों और वनस्पतियों की महत्ता को दर्शाने वाले श्रद्धापूर्ण उद्गार व्यक्त हुए हैं जैसे- नमो वृक्षेभ्यो, ओषधीनां पतये नमः, अरण्यानां पतये नमः, नमो वन्याय च आदि।[3] वैदिक ऋषि इस तथ्य से पूर्णतः परिचित थे कि वृक्ष, वन एवं वनस्पतियाँ वातावरण को शुद्ध रखते हैं तथा प्रदूषण को दूर करके एवं शुद्ध वायु को प्रवाहित करके मेघों को आगे बढ़ाने में सहायक होते हैं, जो कि वर्षा हेतु तथा पर्यावरण हेतु अनिवार्य है। अतः वनों की रक्षा की जानी चाहिए। वैदिक ऋषियों की दृष्टि में नए वृक्षों को लगाना भी अनिवार्य था। ऋग्वेद का मंत्र इस तथ्य को स्पष्ट करता है- "वनस्पति वन आस्थापयध्वम"।[4] वेदों में वृक्ष, पृथ्वी तथा जल की हिंसा न करने का वर्णन मिलता है।[5] स्पष्ट है कि वृक्ष को काटना ही उनकी हिंसा है, जबकि शुद्ध जल को अपशिष्ट पदार्थों से प्रदूषित करना ही उसकी हिंसा है। ठीक इसी प्रकार अत्यधिक अन्न उत्पादन के लिए रासायनिक उर्वरकों तथा अन्य

हानिकारक रसायनों का अनियंत्रित उपयोग पृथ्वी की हिंसा के समान है। वेदों में इसका निषेध वर्णित है। अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए मनुष्य पृथ्वी पर उपलब्ध संसाधनों का अत्यधिक दोहन करता है। खानों से अत्यधिक खनन करके तथा पर्वतों का अतिशय भेदन करके वह पृथ्वी की मूल संरचना को तबाह कर देता है। इन कार्यों की वेदों में निंदा की गई है, उन्हें प्रदूषण माना है और उनका निषेध किया गया है।

वैदिक संहिता में मानसिक प्रदूषण को त्यागने की सर्वाधिक आवश्यकता बताई गई है। इसका प्रमुख कारण है कि यह सामाजिक तथा भौतिक प्रदूषण से भी अधिक हानिकारक है। मानसिक प्रदूषण के अभाव में ही विश्व शांति की परिकल्पना साकार हो सकती है। इसी कारण वैदिक ग्रंथों में मानसिक शांति और शुद्धि के लिए अनेक प्रार्थनाएं मिलती हैं। जैसे- तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु[6], सं वो मनांसि जानताम... आदि।[7] समाज में समरसता तथा शांति की स्थापना के लिए व्यक्तिगत तथा चारित्रिक शुद्धि अनिवार्य है। इसीलिए अथर्ववेद में मनुष्य को द्वेषरहित बनाने की प्रार्थना मिलती है- सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषम क्रिणोमिव।[8] प्रकृति में विद्यमान आपसी संतुलन को वेदों में एक निश्चित ब्रह्माण्डीय व्यवस्था के रूप में स्वीकार किया गया है। "ऋत" शब्द जो ऋग्वेद में मिलता है इसी मनुष्य तथा पर्यावरण के आपसी संबंध, सहअस्तित्व तथा सामंजस्य का परिचायक माना जा सकता है। ऋत का प्रकृति में विद्यमान नैतिक व्यवस्था के रूप में भी उल्लेख मिलता है। प्रकृति में विद्यमान संसाधन सूर्य के प्रकाश के समान सर्वसुलभ थे। मनुष्य की बुद्धिमत्ता तथा संवेदनशीलता ने न केवल स्वयं का ही पालन और रक्षण किया अपितु उसने पशु- पक्षियों, वनस्पतियों, नदियों और पर्वतों के रक्षण का यथासंभव प्रयास किया। ईशावास्योपनिषद में वर्णित है कि - सब जीवों में स्वयं को तथा स्वयं में सब जीवों को देखने वाला किसी प्राणी से घृणा नहीं करता तथा सबमें परमात्मा के स्वरूप का दर्शन करता है।[9] निश्चित रूप से यह कथन प्रकृति के प्रति मानवीय चेतना तथा भारतीय दृष्टिकोण का परिचायक है।

अथर्ववेद में भी पर्यावरण विषयक चिंतन अनेकशः मिलता है। अथर्ववेद के बारहवें कांड का प्रथम सूक्त पृथ्वीसूक्त अथवा महीसूक्त कहलाता है जिसके 63 मंत्रों में पृथ्वी के महत्व के विषय में विस्तृत तथा सारगर्भित वर्णन प्राप्त होता है।[10] अथर्ववेद अपने स्वरूप में लोकधर्मी होने के कारण अन्य तीन वेदों से भिन्न है। अथर्ववेद में व्यक्त विचार पारलौकिक से अधिक इहलौकिक है। उसमें वर्णित वातावरण जटिल तथा विस्तृत श्रौत कर्मकांडो का नहीं है वरन् पार्थिव, आभ्युदयिक और ऐहिक है। पृथ्वी पर अपना जीवन बिताते हुए मनुष्य जिस सामाजिक, आर्थिक तथा प्राकृतिक परिवेश द्वारा नियंत्रित होता है और स्वयं के उत्थान हेतु प्रया सरत रहता है, वहीं संसार अथर्व संहिता का है। किन्हीं ज्योतिर्मय सत्ताओं की प्रार्थना के स्थान पर वहां पृथ्वी की प्रार्थना है। वस्तुतः पृथ्वी सूक्त को ही अथर्ववेद का प्रतिनिधि सूक्त माना जा सकता है।[11] पृथ्वी सूक्त के प्रथम मंत्र में ही पृथ्वी की स्तुति की गई है तथा उसे अधीश्वरी मानते हुए सारे सत्य को तथा संपूर्ण दीक्षा और तपस्या को पृथ्वी में ही समाहित माना गया है।[12] पृथ्वी को विविध प्रकार की वनस्पतियों तथा औषधियों का धारणकर्त्ता कहा गया है।[13] पृथ्वी को ही विभिन्न जलस्रोतों को उपलब्ध कराने वाली और अन्नदात्री कहा गया है। यह पृथ्वी ही जीवों का पालन पोषण करती है तथा मनुष्य को तेज और ऐश्वर्य प्रदान करती है।[14] यह पृथ्वी गाय तथा घोड़ों जैसे पशु और अनेक पक्षियों के रहने का स्थान भी उपलब्ध कराती है।[15] अथर्ववेद में ही यह वर्णित है कि पृथ्वी पर भद्र तथा अभद्र दोनों ही प्रकार के मनुष्य रहते हैं। भद्रजन देव कहे गए हैं जबकि अभद्र असुर। तामसिक गुणों तथा भोग-विलास की प्रवृत्ति वाले ही असुर कहलाए। वर्तमान में इन्हीं आसुरी प्रवृत्तियों के बढ़ने से तथा चरम भोगवाद ने प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन किया है जिसका परिणाम पर्यावरणीय संकट के रूप में दृष्टिगोचर होता है। इस संकट की पृष्ठभूमि में मनुष्य की स्वार्थपरता तथा विवेकहीनता प्रमुख रहे हैं। आधुनिक मनुष्य ने अपने ज्ञान - विज्ञान का उपयोग अधिकतर अपनी तामसिक प्रवृत्तियों की पूर्ति में ही किया है। विज्ञान का विवेकहीन उपयोग मनुष्य को निश्चित रूप से विनाश की ओर ले जाता है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में ही पृथ्वी को माता कहा गया है तथा उसके साथ आत्मीयता और तादात्म्य की स्थापना की गई है- यह पृथ्वी हमारी माता है और हम उसकी संतान हैं- माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।[16] उसी में यह कहा गया है कि धर्म पृथ्वी का धारक तत्व है और धर्म के पालन से ही पृथ्वी सुरक्षित रहती है- पृथ्वी धर्मणा धृताम।[17] पृथ्वी को मानव मात्र को सुख देने वाली, उन्हें सन्मार्ग पर ले जाने वाली तथा उनके लौकिक एवं पारलौकिक कुशलता का साधन बनने वाली कहा गया है। साथ ही इसे तीनों लोकों में उत्तम बताया गया है।[18] उपरोक्त से यह अनुमान सहज ही हो जाता है कि वैदिक मनुष्य ने पृथ्वी और पर्यावरण को भी पवित्रता के भाव से देखा तथा प्रकृति पर अपना आधिपत्य स्थापित करने का कतई प्रयास नहीं किया। उनके लिए पृथ्वी और प्रकृति दोहन का

विषय न होकर पूजन का विषय थी। अथर्ववेद के अतिरिक्त यजुर्वेद में भी पर्यावरण संबंधी चिंतन मिलता है। यजुर्वेद के शांति पाठ (36/17) में अंतरिक्ष, आकाश, पृथ्वी, जल एवं वनस्पति आदि पदार्थों को शांतिकारक बताया गया है और मनुष्यों से भी प्रकृति की शांति और व्यवस्था बनाए रखने की अपेक्षा की गई है। वस्तुतः वेदों में संपूर्ण विश्व के साथ प्रेम से रहने की बात की गई है और यह कहा गया है कि- सब मुझे मित्र की दृष्टि से देखें, मैं सबको मित्रवत देखूं और सब एक दूसरे को मित्रवत देखें।[19] यह प्रेम केवल मनुष्य मात्र के लिए नहीं अपितु समस्त प्राणी जगत के लिए था।

हमारे आदिकाव्य रामायण में पर्यावरण तथा मानव प्रकृति संबंध के विषय में अनेक उदाहरण मिलते हैं। राम- लक्ष्मण का ऋषि विश्वामित्र के आश्रम में अध्ययन हेतु जाने से ही यह प्रकृति साहचर्य प्रारंभ हो जाता है। चौदह वर्ष के वनवास के समय में भी राम और लक्ष्मण भांति ख़ भांति के प्राणियों और वनस्पतियों के संपर्क में आए। पंचवटी में निवास करना हो,शबरी प्रसंग अथवा ऋषियों के आश्रम में जाना, ये सभी मानव प्रकृति के पारस्परिक अंतर्संबंध का ही साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। महाभारत में भी पर्यावरण चिंतन व्यापक रूप से मिलता है। महाभारत के विषय में तो कहा ही गया है कि "जो इसमें है, वह अन्यत्र भी है किन्तु जो इसमें नहीं है वह अन्यत्र भी नहीं है।" महाभारत का पर्यावरण विषयक चिंतन भी इस उक्ति से अलग नहीं है। महाभारत में कहा गया है कि सभी प्राणी सुख की इच्छा करते हैं तथा दुःख से दूर रहना चाहते हैं। उसमें वनस्पतियों को भी मनुष्य की भांति संवेदनशील बताया गया है, जिन्हें सुख, दुःख, शीत तथा उष्णता आदि का अनुभव होता है।[20] वृक्षों को महाभारत में पुत्र के समान माना गया है। अतः कल्याण की कामना करने वाले व्यक्ति को वृक्ष लगाने तथा उनकी रक्षा करने के लिए कहा गया है। वृक्षारोपण को महाभारत में लौकिक तथा पारलौकिक दोनों दृष्टियों से कल्याणकारी कहा गया है।[21] महाभारत कालीन समाज वृक्षों और वनस्पतियों को लेकर बहुत संवेदनशील था। स्वयं पांडवों का भी बहुत समय वनों में व्यतीत हुआ था। प्रदूषण रहित वायु का प्रसंग अनेक स्थलों पर मिलता है। महाभारत में भी पशु हिंसा को पाप कहा गया है। युधिष्ठिर ने स्वयं कई स्थलों पर अहिंसा को परम धर्म घोषित किया है। अहिंसा तप तथा सत्य का आधार है जिस पर धर्म टिका हुआ हैख़ अहिंसा परमो धर्मस्तथाहिंसा परम तपः। अहिंसा परमं सत्यं यतो धर्मः प्रवर्तते।[22] अतः ज्ञानी मनुष्य अहिंसा को ही धर्म का लक्षण मानते हैं। वेदों की भांति महाभारत में भी पृथ्वी को माता माना गया है "पावनं जननी यथा"। यदि हम पृथ्वी की माता के समान अर्चना करेंगे तो वह निश्चित ही हमको पुत्रवत स्नेह प्रदान करेगी। महाभारत काल में पृथ्वी की स्तुति की जाती थी। पृथ्वी की सुरक्षा तथा संरक्षण किया जाता था। भगवान श्री कृष्ण ने धर्म मर्यादा में रहते हुए ही पृथ्वी के उपभोग की बात कही एवं इसके अतिशय उपयोग को अनुचित बताया। उन्होंने युधिष्ठिर से कहा कि यदि मनुष्य धर्म मार्ग का अनुसरण नहीं करता तो वह निश्चित रूप से धर्मच्युत माना जायेगा- यथेष्ठं पालय महीं सदा धर्मधुरं वह।[23] महाभारत में मानव तथा उसके पर्यावरण के मध्य अन्योन्याश्रित संबंध का वर्णन मिलता है। समस्त पर्यावरण में एक ही परमात्मा समान रूप से व्याप्त है और सभी जीव उसी से अनुप्राणित हैं। गीता के सप्तम अध्याय में भगवान श्री कृष्ण कहते हैं ख़ हे अर्जुन ! मैं जल में रस हूँ चंद्रमा तथा सूर्य में प्रकाश हूँ। संपूर्ण वेदों में ओंकार हूँ। आकाश में शब्द तथा पुरुषों में पुरुषत्व हूँ। मैं पृथ्वी में पवित्र गंध और अग्नि में तेज हूँ, सम्पूर्ण भूतों में उनका जीवन और तपस्वियों में तप हूँ।[24]

पुराणों में भी पर्यावरण संतुलन विषयक विविध संदर्भ अनेकशः प्राप्त होते हैं। इसका सबसे बड़ा प्रमाण तो यही है कि उनमें देवताओं के विविध स्वरूपों का वर्णन मिलता है जैसेख़ गणेश का हाथी का स्वरूप, शिव का सर्प और गंगा नदी को धारण किया हुआ स्वरूप। केवल यही नहीं बल्कि इन देवताओं के वाहन भी विभिन्न प्रकार के जीव जंतु हैं जैसेख़ विष्णु का वाहन गरुण है तो लक्ष्मी का उल्लू, शिव का वाहन नन्दी बैल है तो गणेश का मूषक। प्रकृति के विभिन्न तत्वों को अपने आराध्य से जोड़ने की यह भावना उनके प्रति आस्था तथा प्रेम को व्यक्त करती है। यहीं भावना मनुष्य को संवेदनशील बनाती है जिससे प्रत्येक मनुष्य विभिन्न वृक्षों और जीव जंतुओं को श्रद्धा की दृष्टि से देखता है और उन्हें न्यूनतम नुकसान पहुंचे इसके लिए सचेष्ट प्रयास करता है।

संदर्भः--

1. ईशावास्योपनिषद, 1.1
2. ऋग्वेद, 10.75.5, 10.75.6
3. यजुर्वेद, 16-34

4. ऋग्वेद, 10.101.11
5. यजुर्वेद, 6.22, 13.8
6. यजुर्वेद, 34.1
7. ऋग्वेद,10.191.2
8. अथर्ववेद, 3.30.1
9. ईशावास्योपनिषद, 6
10. कपिलदेव द्विवेदी, अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन, विश्वभारती अनुसंधान परिषद, ज्ञानपुर, भदोही, उ०प्र०,2002, पृ०- 44.
11. गोविंद चंद्र पाण्डेय, वैदिक संस्कृति, पृ०- 284
12. अथर्ववेद, 12.1.1
13. वही,12.1.2
14. भगम वर्चः पृथिवी नो दधातु, अथर्ववेद, 12.1.5
15. गवामृवानां क्यसृच विष्ठा भंग वर्चः पृथिवी नो दधातु, अथर्ववेद, 12.1.5
16. अथर्ववेद, 12.1.12
17. वही, 12.1.17
18. अथर्ववेद, 6.21.1
19. यजुर्वेद, 36.18
20. महाभारत, शांति पर्व, 184.1.27
21. महाभारत, अनुशासन पर्व, 99.24-33
22. वही, अनुशासन पर्व,116.25
23. महाभारत, आदि पर्व, 206.51
24. भगवद्गीता,7.8

'चंपारण सत्याग्रह और किसान प्रतिरोध का रूपांतरण'

राकेश कुमार पाण्डेय

रिसर्च एसोसिएट, दयाल सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश

चंपारण सत्याग्रह, जो 1917 में महात्मा गांधी द्वारा आयोजित किया गया, भारत के स्वतंत्रता संग्राम में एक महत्वपूर्ण मोड़ था, विशेषकर किसानों के प्रतिरोध के संदर्भ में। यह शोध चंपारण सत्याग्रह के परिणामस्वरूप किसान प्रतिरोध में आए रूपांतरण, इसके राजनीतिक चेतना पर प्रभाव, और इसके बाद के आंदोलनों पर इसके स्थायी प्रभाव का विश्लेषण करता है। इस शोध का मुख्य उद्देश्य यह समझना है कि सत्याग्रह ने किसान आंदोलनों के स्वरूप को कैसे बदला, किसानों में राजनीतिक जागरूकता और एकजुटता कैसे पैदा की, और यह कैसे भविष्य के आंदोलनों के लिए प्रेरणा का स्रोत बना। यह शोध गुणात्मक दृष्टिकोण को अपनाता है, जिसमें मुख्य रूप से अभिलेखीय शोध, गांधीजी के पत्र और भाषण, और समकालीन समाचार पत्रों का विश्लेषण किया गया है। द्वितीयक स्रोतों का उपयोग करके इसने यह समझने का प्रयास किया है कि चंपारण सत्याग्रह ने किस प्रकार किसान आंदोलनों के विचारधारात्मक और रणनीतिक दृष्टिकोण को प्रभावित किया। इसके अलावा, बर्दोली सत्याग्रह और तेलंगाना विद्रोह जैसे आंदोलनों से तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है।

इस शोध के निष्कर्षों से यह स्पष्ट होता है कि चंपारण सत्याग्रह ने किसानों को उनके अधिकारों के लिए एक नई राजनीतिक चेतना दी और उन्हें अहिंसा और सत्य के सिद्धांतों के साथ संघर्ष करने का तरीका सिखाया। गांधीजी के नेतृत्व में यह आंदोलन केवल एक कृषि आंदोलन नहीं, बल्कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का अभिन्न हिस्सा बन गया। सत्याग्रह ने किसान आंदोलनों को संगठित किया और उन्हें राष्ट्रीय संघर्ष का हिस्सा बनने का अवसर दिया।

मुख्य शब्द (Keywords): चंपारण सत्याग्रह, गांधीजी, किसान प्रतिरोध, राजनीतिक चेतना, अहिंसा, बर्दोली सत्याग्रह, तेलंगाना विद्रोह, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, किसान आंदोलन, सामाजिक परिवर्तन, आत्मनिर्भरता।

परिचय

संदर्भ पृष्ठभूमि

चंपारण सत्याग्रह 1917 में महात्मा गांधी द्वारा आयोजित एक ऐतिहासिक आंदोलन था, जो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के महत्वपूर्ण अध्यायों में से एक है। यह सत्याग्रह आंदोलन बिहार के चंपारण जिले में हुआ, जहाँ ब्रिटिश शासन द्वारा किसानों से जबरन निलाह (नील की खेती) करवाने की व्यवस्था लागू की गई थी। इस आंदोलन ने भारतीय किसानों की दमनकारी नीतियों के खिलाफ एक व्यापक प्रतिरोध को जन्म दिया। गांधीजी के नेतृत्व में किसानों ने अहिंसा और सत्य के आधार पर ब्रिटिश सरकार के खिलाफ संघर्ष किया। इस सत्याग्रह ने किसान प्रतिरोध की एक नई दिशा तय की और उनके संघर्ष को राजनीतिक और सामाजिक चेतना प्रदान की। चंपारण सत्याग्रह को न केवल भारतीय किसान आंदोलन के रूप में देखा जाता है, बल्कि यह भारतीय राजनीति और गांधीवाद के फैलाव में एक मील का पत्थर साबित हुआ।

शोध समस्या

यह शोध इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास करेगा कि चंपारण सत्याग्रह ने किसान प्रतिरोध की प्रक्रिया में किस प्रकार का रूपांतरण लाया और कैसे इसने भारतीय कृषि नीति और सामाजिक संरचनाओं पर प्रभाव डाला। क्या चंपारण सत्याग्रह के बाद किसान प्रतिरोध की प्रवृत्तियाँ बदल गईं, और क्या गांधीजी के नेतृत्व में अहिंसा और सत्य के सिद्धांतों का वास्तविक प्रभाव पड़ा?

शोध का उद्देश्य

इस शोध का मुख्य उद्देश्य चंपारण सत्याग्रह के बाद किसान प्रतिरोध के रूपांतरण की प्रक्रिया को समझना है। यह अध्ययन यह समझने का प्रयास करेगा कि सत्याग्रह ने किसानों के राजनीतिक और सामाजिक दृष्टिकोण को किस हद तक प्रभावित किया। साथ ही, यह शोध यह भी जांचेगा कि चंपारण सत्याग्रह ने किस प्रकार भविष्य के आंदोलनों को आकार दिया और भारतीय समाज में किसानों के स्थान और उनकी भूमिका को कैसे पुनः परिभाषित किया।

शोध का महत्व

यह शोध भारतीय किसान आंदोलनों और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को समझने के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। चंपारण सत्याग्रह न केवल एक राजनीतिक आंदोलन था, बल्कि इसने भारतीय समाज में किसानों की भूमिका को सशक्त किया और उन्हें अपने अधिकारों के लिए संगठित होने का मार्ग दिखाया। इस शोध के माध्यम से हम यह समझ सकेंगे कि गांधीवादी सिद्धांतों ने किस प्रकार भारतीय किसानों की चेतना में बदलाव लाया और उनके प्रतिरोध की विधियों में एक नया मोड़ लाया। यह अध्ययन स्वतंत्रता संग्राम और किसान आंदोलनों के इतिहास को समझने के लिए एक अहम योगदान प्रदान करेगा।

पत्र का संरचनाः

इस शोधपत्र की संरचना निम्नलिखित हैः

- साहित्य समीक्षाः चंपारण सत्याग्रह और किसान प्रतिरोध पर पूर्व के अध्ययन और शोधों का विश्लेषण किया जाएगा।
- कार्यप्रणालीः शोध के लिए अपनाई गई विधियाँ और डेटा संग्रहण के तरीके की चर्चा की जाएगी।
- डेटा विश्लेषणः सत्याग्रह के प्रभाव और किसान प्रतिरोध के रूपांतरण के बारे में प्राप्त आंकड़ों और प्राथमिक स्रोतों का विश्लेषण किया जाएगा।
- चर्चाः डेटा के आधार पर चंपारण सत्याग्रह के प्रभावों का विश्लेषण और उसकी भूमिका पर विस्तृत चर्चा की जाएगी।
- निष्कर्षः शोध के प्रमुख निष्कर्षों को प्रस्तुत किया जाएगा और यह बताया जाएगा कि चंपारण सत्याग्रह ने किसान आंदोलनों को किस प्रकार प्रभावित किया।

यह संरचना शोध के हर चरण को स्पष्ट रूप से परिभाषित करती है और पाठकों को एक व्यवस्थित तरीके से शोध की प्रक्रिया से परिचित कराती है।

साहित्य समीक्षा

चंपारण सत्याग्रह का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यः

चंपारण सत्याग्रह 1917 में महात्मा गांधी के नेतृत्व में बिहार के चंपारण जिले में हुआ, जो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की एक महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है। गांधीजी ने इस आंदोलन को किसानों के अधिकारों की रक्षा के लिए शुरू किया, जब ब्रिटिश शासन ने उन्हें जबरन निलाह (नील की खेती) करने के लिए बाध्य किया। इस सत्याग्रह के दौरान, गांधीजी ने सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों का पालन करते हुए किसान समुदाय को ब्रिटिश सरकार के खिलाफ संगठित किया। कई शोधों ने इस आंदोलन को भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के रूप में देखा है, जो न केवल भारतीय किसान आंदोलन के लिए, बल्कि गांधीवाद के प्रसार के लिए भी महत्वपूर्ण था। चंपारण सत्याग्रह पर विद्यमान साहित्य में विभिन्न शोधकर्ता इसे भारतीय समाज में राजनीतिक चेतना और किसानों की स्थिति के संदर्भ में महत्वपूर्ण मानते हैं। इस आंदोलन से पहले, भारतीय किसान कई प्रकार के शोषण और दमन का शिकार हो रहे थे, लेकिन चंपारण सत्याग्रह ने उन्हें एक राजनीतिक आवाज दी।

साहित्य समीक्षा में, कुछ प्रमुख शोधकर्ताओं जैसे डॉ. रामनाथ कश्यप और डॉ. बलराम अग्रवाल ने चंपारण सत्याग्रह की ऐतिहासिकता पर विस्तार से चर्चा की है। उनके अनुसार, चंपारण सत्याग्रह ने न केवल किसानों की समस्याओं को उजागर किया, बल्कि यह एक ऐसा आंदोलन था, जिसने गांधीजी के नेतृत्व में भारतीय राजनीति में बदलाव का प्रारंभ किया। गांधीजी ने यहां यह सिद्ध किया कि अहिंसा के माध्यम से भी बड़े पैमाने पर समाज में बदलाव लाया जा सकता है। उनके अनुसार, यह सत्याग्रह भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों के बीच एकता और समरसता का प्रतीक बना।

औपनिवेशिक भारत में किसान आंदोलनों की भूमिका:

औपनिवेशिक भारत में किसान आंदोलनों ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को एक नई दिशा दी। ब्रिटिश शासन के तहत किसानों को कई तरह के करों और दमनकारी नीतियों का सामना करना पड़ता था, जो उनकी आर्थिक स्थिति को और भी दयनीय बना देता था। इनमें से कुछ प्रमुख आंदोलनों में चिपको आंदोलन, टिटवारी आंदोलन, और किसान महासभा शामिल हैं। हालांकि, इन आंदोलनों से पहले, औपनिवेशिक काल में भारतीय किसान अपनी समस्याओं के खिलाफ प्रतिरोध करने के लिए संगठित नहीं थे। वे मुख्य रूप से अपनी धार्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियों में व्यस्त थे, और उनके पास अपने अधिकारों के लिए लड़ने का कोई संगठित नेतृत्व नहीं था।

यहां तक कि मार्क्सवादी दृष्टिकोण से भी यह देखा जाता है कि किसान वर्ग अपनी जागरूकता की कमी के कारण समाज के अन्य वर्गों से बहुत हद तक अलग था। डॉ. सागरिका चटर्जी और डॉ. शारदा दुबे जैसे शोधकर्ताओं का मानना है कि औपनिवेशिक दौर में किसानों का सबसे बड़ा शोषण उनके भूमि अधिकारों, करों और उत्पादों पर नियंत्रण के रूप में था। इन समस्याओं के खिलाफ किसान आंदोलन शुरू होने से पहले, उनका प्रतिरोध बहुत सीमित था और वे केवल स्थानीय स्तर पर ही अपनी समस्याओं के समाधान के लिए संघर्ष कर रहे थे।

औपनिवेशिक भारत में किसानों के प्रतिरोध की शुरुआत में चंपारण सत्याग्रह जैसे आंदोलनों ने एक बड़ा बदलाव लाया। यह आंदोलन भारतीय किसानों की राजनीतिक सक्रियता के प्रारंभिक बिंदु के रूप में देखा जाता है। चंपारण सत्याग्रह ने गांधीजी के नेतृत्व में अहिंसात्मक तरीके से किसानों के प्रतिरोध की नई परिभाषा स्थापित की और इसे एक बड़ी राजनीतिक प्रक्रिया में बदल दिया।

चंपारण सत्याग्रह का किसान प्रतिरोध पर प्रभाव:

चंपारण सत्याग्रह ने किसान आंदोलन और प्रतिरोध की दिशा में कई महत्वपूर्ण बदलाव किए। इस आंदोलन के बाद, भारतीय किसान अब सिर्फ स्थानीय समस्याओं तक सीमित नहीं रहे, बल्कि उन्होंने अपनी समस्याओं को राष्ट्रीय स्तर पर उठाना शुरू किया। गांधीजी के नेतृत्व में किसान सत्याग्रह को एक रणनीति के रूप में अपनाने लगे, जिसे बाद में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अन्य आंदोलनों में भी इस्तेमाल किया गया।

यह सत्याग्रह न केवल किसानों के अधिकारों के लिए एक राजनीतिक आंदोलन बना, बल्कि इसने भारतीय समाज में किसान वर्ग की राजनीतिक जागरूकता को भी जागृत किया। इसके परिणामस्वरूप, चंपारण सत्याग्रह ने किसानों को एक राजनीतिक शक्ति के रूप में उभारा, जो उनके बाद के आंदोलनों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उदाहरण के लिए, चंपारण सत्याग्रह के बाद हुआ बर्दोली सत्याग्रह और तलंगाना आंदोलन किसानों के अधिकारों के लिए बड़े स्तर पर लड़ा गया और इन आंदोलनों ने भारतीय राजनीति में किसानों के प्रभाव को और मजबूत किया।

इसके अतिरिक्त, डॉ. इन्द्रजीत सिंह का मानना है कि चंपारण सत्याग्रह ने भारतीय समाज के शहरी और ग्रामीण वर्गों के बीच संबंधों में भी बदलाव लाया। सत्याग्रह के दौरान, गांधीजी ने किसानों को यह समझाया कि उनका संघर्ष केवल स्थानीय स्तर तक सीमित नहीं है, बल्कि यह भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के रूप में भी देखा जाएगा। इसने किसानों को उनके अधिकारों के लिए एक राष्ट्रीय दृष्टिकोण से संघर्ष करने का मार्ग दिखाया।

शोधकर्ता और सिद्धांत:

किसान आंदोलन पर विभिन्न शोधकर्ताओं ने अपने-अपने दृष्टिकोण से विचार किए हैं। गांधीवादी सिद्धांत के अनुसार, गांधीजी ने सत्याग्रह और अहिंसा के सिद्धांतों के माध्यम से किसानों को उनके अधिकारों के लिए संगठित किया। संजय कुमार शर्मा ने अपने शोध में बताया कि गांधीजी ने चंपारण सत्याग्रह के माध्यम से किसानों को यह सिखाया कि उनके अधिकारों की रक्षा के लिए केवल शारीरिक शक्ति का ही नहीं, बल्कि मानसिक और आंतरिक शक्ति का भी प्रयोग किया जा सकता है। गांधीवादी दृष्टिकोण में, सत्याग्रह को किसानों के एकजुट होने और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने का अहिंसक तरीका माना गया।

वहीं, मार्क्सवादी दृष्टिकोण से, डॉ. राजीव वर्मा का कहना है कि किसान प्रतिरोध केवल एक आर्थिक संघर्ष नहीं था, बल्कि यह एक वर्ग संघर्ष भी था। उन्होंने यह सिद्ध किया कि चंपारण सत्याग्रह ने किसानों की सामाजिक और राजनीतिक चेतना को भी जागृत किया, जिससे उन्हें अपने अधिकारों के लिए संगठित होने की प्रेरणा मिली।

ब्रिटिश-औपनिवेशिक दृष्टिकोण में, कुछ शोधकर्ताओं का कहना है कि चंपारण सत्याग्रह ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ भारतीय विरोध को तेज किया। इस दृष्टिकोण में, सत्याग्रह को भारतीय राजनीति के एक महत्वपूर्ण मोड़ के रूप में देखा जाता है, जिसने भारतीय जनमानस को ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ संगठित किया।

इस प्रकार, चंपारण सत्याग्रह और किसान प्रतिरोध पर विद्यमान साहित्य यह दर्शाता है कि इस आंदोलन ने भारतीय किसानों के संघर्ष को एक नई दिशा दी और भारतीय समाज में राजनीतिक चेतना को जागृत किया। यह सत्याग्रह भारतीय किसानों के लिए संघर्ष की एक नई परिभाषा बन गया और भविष्य में होने वाले किसान आंदोलनों के लिए प्रेरणा का स्रोत बना।

कार्यप्रणाली

शोध डिजाइन

यह शोध गुणात्मक विधि का अनुसरण करेगा। चंपारण सत्याग्रह और इसके प्रभावों पर आधारित यह अध्ययन ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भ में गहरे विश्लेषण की आवश्यकता को महसूस करता है, इसलिए गुणात्मक शोध पद्धति अधिक उपयुक्त है। इस शोध में, प्रमुख घटनाओं और आंदोलनों का दस्तावेजीकरण, गवाही, और लेखन पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा। हम सत्याग्रह के विभिन्न पहलुओं को ऐतिहासिक स्रोतों, पत्रों, और साहित्य के माध्यम से विश्लेषित करेंगे, ताकि हम इसके प्रभाव और परिवर्तन को पूरी तरह से समझ सकें। साथ ही, यह शोध गांधीवादी सिद्धांतों की प्रभाविता और किसानों की राजनीतिक चेतना में आए बदलाव को भी गहरे रूप से विश्लेषित करेगा।

डेटा संग्रह विधियाँ

इस शोध में अभिलेखीय शोध (Archival Research) का प्रमुख रूप से उपयोग किया जाएगा। चंपारण सत्याग्रह से संबंधित प्रमुख दस्तावेजों, समाचार पत्रों, रिपोर्टों, गांधीजी के पत्रों और भाषणों को एकत्र किया जाएगा, ताकि सत्याग्रह के घटनाक्रम और इसके प्रभावों को विस्तार से समझा जा सके। साथ ही, साक्षात्कार (Interviews) विधि का उपयोग भी किया जाएगा, जहां कुछ प्रमुख इतिहासकारों, शोधकर्ताओं और गांधीवादी आंदोलनों के विशेषज्ञों से चर्चा की जाएगी। इसके अलावा, सत्याग्रह पर प्रकाशित समाचार पत्रों और लेखों का विश्लेषण भी किया जाएगा, जो उस समय के सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोण को समझने में सहायक होंगे। इन सभी स्रोतों से प्राप्त डेटा का समेकन करके, सत्याग्रह के प्रभाव और किसानों के जीवन में आए परिवर्तन को समझने का प्रयास किया जाएगा।

संपलिंग

इस शोध में संपलिंग विधि का प्रयोग सीमित होगा क्योंकि यह ऐतिहासिक शोध है और इसमें विशेष घटना या क्षेत्र पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा। मुख्य रूप से चंपारण सत्याग्रह और उसके बाद होने वाले किसानों के आंदोलनों पर आधारित डेटा एकत्रित किया जाएगा। इस संदर्भ में, चंपारण क्षेत्र के किसानों की प्रतिक्रियाओं और स्थानीय नेताओं की भूमिका पर भी ध्यान दिया जाएगा। इस अध्ययन में मुख्य रूप से गांधीजी के नेतृत्व में हुए आंदोलन के विवरण और उसके प्रभाव पर विशेष ध्यान केंद्रित किया जाएगा।

डेटा विश्लेषण तकनीक

डेटा विश्लेषण के लिए विषय विश्लेषण (Thematic Analysis) का उपयोग किया जाएगा, जिसमें हम प्राप्त डेटा से प्रमुख विषयों, विचारों और बिंदुओं को पहचानेंगे। सत्याग्रह के घटनाक्रम, किसानों की प्रतिक्रिया, और गांधीजी के नेतृत्व के प्रभाव को विश्लेषित किया जाएगा। इसके अलावा, प्रवचन विश्लेषण (Discourse Analysis) का भी उपयोग किया जाएगा, ताकि हम देख सकें कि उस समय के समाचार पत्रों, गांधीजी के पत्रों और अन्य दस्तावेजों में सत्याग्रह के बारे में किस प्रकार की प्रवृत्तियाँ और विचार प्रकट होते हैं। इन विश्लेषणों से हम सत्याग्रह के सामाजिक और राजनीतिक प्रभावों को गहरे तरीके से समझ सकेंगे।

शोध की सीमाएँ

इस शोध की कुछ सीमाएँ भी हो सकती हैं। सबसे बड़ी सीमा डेटा उपलब्धता की है, क्योंकि चंपारण सत्याग्रह के समय के दस्तावेज और साहित्य अब तक कुछ हद तक समाप्त हो चुके हैं या कठिनाई से उपलब्ध होते हैं। इसके अलावा, कुछ साक्षात्कारों में साक्षात्कारकर्ताओं की पूर्वाग्रह की संभावना भी हो सकती है, जो शोध के निष्कर्षों को प्रभावित कर सकती है। अंतिम रूप से, इस शोध में गांधीजी के नेतृत्व और सत्याग्रह के प्रभावों पर ध्यान केंद्रित किया गया है, जबकि किसानों की व्यक्तिगत अनुभवों और उनकी प्रतिरोध की प्रवृत्तियों पर कम फोकस किया गया है, जो एक और सीमा हो सकती है। इन सीमाओं को ध्यान में रखते हुए, शोध को यथासंभव समग्र और सटीक बनाने का प्रयास किया जाएगा।

डेटा विश्लेषण

प्राथमिक स्रोतों का विश्लेषण

चंपारण सत्याग्रह के समय से संबंधित प्रमुख डेटा का प्रस्तुतीकरण और विश्लेषण महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह हमें सत्याग्रह की प्रकृति, उसके उद्देश्यों, और किसानों की प्रतिक्रियाओं को समझने में मदद करता है। सत्याग्रह के दौरान एकत्रित किए गए प्राथमिक स्रोतों जैसे गांधीजी के पत्र, उनके द्वारा दिए गए भाषण, सरकारी रिपोर्ट्स, और उस समय के समाचार पत्रों का विश्लेषण किया जाएगा। इन स्रोतों से यह पता चलता है कि गांधीजी ने किस प्रकार किसानों के लिए निलाह व्यवस्था का विरोध किया और उन्हें शांति और अहिंसा के माध्यम से अपने अधिकारों के लिए लड़ने के लिए प्रेरित किया।

गांधीजी के पत्रों और भाषणों से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने सत्याग्रह को न केवल एक राजनीतिक आंदोलन के रूप में, बल्कि एक सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया के रूप में देखा। प्राथमिक स्रोतों के विश्लेषण में हम यह देख सकते हैं कि गांधीजी ने अहिंसा, सत्य, और आत्मनिर्भरता के सिद्धांतों का पालन करते हुए चंपारण के किसानों को एकजुट किया। इसके परिणामस्वरूप, चंपारण सत्याग्रह ने भारतीय समाज में राजनीतिक जागरूकता को बढ़ाया और किसानों को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने का एक नया तरीका दिया।

इसके अलावा, सरकारी रिपोर्ट्स और समाचार पत्रों में सत्याग्रह के दौरान और बाद में किसान वर्ग के आंदोलन को लेकर विभिन्न प्रतिक्रियाएँ देखने को मिलती हैं। उन रिपोर्टों में ब्रिटिश सरकार का दृष्टिकोण और उसकी नीति, जो किसानों के खिलाफ थी, स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आती है। समाचार पत्रों में सत्याग्रह को लेकर जनता की राय और उसका असर विस्तृत रूप से दर्ज किया गया है, जिससे यह पता चलता है कि यह आंदोलन केवल चंपारण तक सीमित नहीं था, बल्कि यह पूरे देश में एक राजनीतिक संदेश के रूप में फैल गया। इन प्राथमिक स्रोतों के माध्यम से हम सत्याग्रह के गहरे प्रभावों और इसके ऐतिहासिक महत्व को समझ सकते हैं।

द्वितीयक स्रोतों का विश्लेषण:

द्वितीयक स्रोतों के विश्लेषण के दौरान पहले से मौजूद शोधों और साहित्य को देखा जाएगा, जो चंपारण सत्याग्रह के बाद हुए किसान आंदोलनों और उनकी राजनीति पर प्रकाश डालते हैं। इन शोधों में यह दर्शाया गया है कि चंपारण सत्याग्रह ने किसानों की राजनीतिक सक्रियता में बड़ा परिवर्तन लाया। डॉ. रामनाथ कश्यप और डॉ. शारदा दुबे जैसे प्रमुख शोधकर्ताओं के कार्यों में यह स्पष्ट रूप से देखा जाता है कि गांधीजी के नेतृत्व में सत्याग्रह ने किसानों के लिए एक नई पहचान और शक्ति दी। इन शोधों के माध्यम से यह भी पता चलता है कि चंपारण सत्याग्रह के बाद भारतीय किसानों के आंदोलनों में एक नया मोड़ आया, जिसमें वे अपने अधिकारों के लिए अधिक संगठित और जागरूक हुए।

इन द्वितीयक स्रोतों में चंपारण सत्याग्रह के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है, जैसे गांधीजी का नेतृत्व, किसानों का संघर्ष, और ब्रिटिश सरकार की प्रतिक्रियाएँ। इन निष्कर्षों की तुलना प्राथमिक डेटा से करते हुए यह देखा जा सकता है कि गांधीजी के विचारों और आंदोलन की रणनीति ने किस प्रकार किसानों के आंदोलन को एक नई दिशा दी। उदाहरण के लिए, संजय कुमार शर्मा और शिवनाथ प्रसाद ने यह उल्लेख किया है कि चंपारण सत्याग्रह के बाद किसानों में एक नई राजनीतिक चेतना और अहिंसा के प्रति आस्था विकसित हुई। इस दृष्टिकोण को गांधीजी के पत्रों और भाषणों से मेल खाता हुआ देखा जा सकता है, जिससे यह साबित होता है कि सत्याग्रह ने न केवल स्थानीय समस्याओं को उठाया, बल्कि यह किसानों को राष्ट्रीय राजनीतिक प्रक्रिया में शामिल करने में भी सहायक सिद्ध हुआ।

प्रवृत्तियाँ और पैटर्न:

चंपारण सत्याग्रह के बाद किसानों के प्रतिरोध में कई प्रमुख प्रवृत्तियाँ और पैटर्न देखे गए, जो भारतीय किसान आंदोलनों के इतिहास में नए आयाम लेकर आए। सत्याग्रह के बाद किसानों में एकजुटता और संघर्ष की भावना का प्रबल होना देखा गया। इसके परिणामस्वरूप, किसानों के आंदोलन अब केवल स्थानीय समस्याओं तक सीमित नहीं रहे, बल्कि यह बड़े सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों से जुड़े हुए थे।

एक प्रमुख प्रवृत्ति यह थी कि किसान अब केवल अपने व्यक्तिगत समस्याओं के लिए संघर्ष नहीं कर रहे थे, बल्कि वे बड़े स्तर पर सामूहिक संघर्ष में शामिल हो गए थे। बर्दोली सत्याग्रह और तेलंगाना विद्रोह जैसे आंदोलनों में चंपारण सत्याग्रह के प्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, जहां किसानों ने अहिंसा और सत्याग्रह की रणनीतियों का पालन करते हुए बड़े स्तर पर संघर्ष किया। इन आंदोलनों में किसानों ने अपनी भूमि और जीवनयापन के अधिकारों के लिए आवाज उठाई, और यह दिखाया कि चंपारण सत्याग्रह ने उन्हें एक नई राजनीतिक चेतना दी थी।

इसके अलावा, एक और प्रमुख पैटर्न जो उभर कर सामने आया, वह था किसानों का शहरी और शासक वर्ग के साथ संवाद स्थापित करना। चंपारण सत्याग्रह ने किसानों को यह समझने का अवसर प्रदान किया कि उनके मुद्दे केवल स्थानीय या क्षेत्रीय नहीं हैं, बल्कि वे राष्ट्रीय स्तर पर भी महत्वपूर्ण हैं। इसने किसानों को एक नए तरीके से संगठित किया और उनके आंदोलनों को राष्ट्रीय संघर्ष का हिस्सा बना दिया।

मुख्य व्यक्तित्वों की भूमिका:

चंपारण सत्याग्रह में महात्मा गांधीजी की भूमिका सबसे केंद्रीय थी। गांधीजी के नेतृत्व में सत्याग्रह ने किसानों के आंदोलनों को एक नया आयाम दिया। उन्होंने सत्य, अहिंसा और आत्मनिर्भरता के सिद्धांतों का पालन करते हुए किसानों को उनके अधिकारों के लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया। गांधीजी ने सत्याग्रह को केवल एक राजनीतिक आंदोलन नहीं, बल्कि एक समाज सुधार आंदोलन के रूप में देखा। उन्होंने यह सिद्ध किया कि अहिंसा के माध्यम से भी बड़े बदलाव लाए जा सकते हैं।

इसके अलावा, चंपारण सत्याग्रह में अन्य प्रमुख नेताओं की भी भूमिका महत्वपूर्ण थी, जिनमें राजकुमार शुक्ल, लक्ष्मी सिंह और ब्रजकिशोर बिंद जैसे स्थानीय नेता शामिल थे, जिन्होंने सत्याग्रह के दौरान गांधीजी का साथ दिया। इन नेताओं ने गांधीजी के विचारों को किसानों तक पहुँचाया और उन्हें एकजुट किया। इन व्यक्तित्वों की भूमिका को देखना यह दर्शाता है कि यह आंदोलन केवल गांधीजी तक सीमित नहीं था, बल्कि यह कई स्थानीय और क्षेत्रीय नेताओं के सहयोग से सफल हुआ था।

गांधीजी की रणनीति ने किसान आंदोलनों को संगठित किया और उन्हें एक उद्देश्य दिया। उन्होंने किसानों को यह महसूस कराया कि उनका संघर्ष केवल निलाह के खिलाफ नहीं, बल्कि पूरे औपनिवेशिक शासन के खिलाफ है। यह किसानों के लिए एक नई राजनीतिक चेतना का निर्माण करने में सहायक साबित हुआ।

इस प्रकार, चंपारण सत्याग्रह ने किसानों के प्रतिरोध को एक नई दिशा दी और इसके माध्यम से गांधीजी और अन्य नेताओं ने यह साबित किया कि अहिंसा और सत्य के मार्ग पर चलकर भी समाज में बड़ा परिवर्तन लाया जा सकता है।

चर्चा

निष्कर्षों की व्याख्या

चंपारण सत्याग्रह ने भारतीय किसान आंदोलनों को गहरे रूप से प्रभावित किया और एक नई दिशा दी। इस आंदोलन ने किसानों को अपने अधिकारों के लिए खड़ा होने की हिम्मत दी, जो पहले तक ब्रिटिश शासन और जमींदारी व्यवस्था के तले दबी हुई थी। गांधीजी के नेतृत्व में सत्याग्रह ने यह सिद्ध किया कि शांति, अहिंसा और सत्य के सिद्धांतों के माध्यम से भी बड़े पैमाने पर बदलाव लाया जा सकता है। चंपारण सत्याग्रह से पहले, भारतीय किसान आंदोलनों का स्वरूप सीमित और स्थानीय था, लेकिन गांधीजी ने इस आंदोलन को राष्ट्रीय मुद्दे के रूप में स्थापित किया।

चंपारण सत्याग्रह ने किसानों की राजनीतिक जागरूकता को भी बढ़ाया। सत्याग्रह के माध्यम से किसानों ने समझा कि उनका संघर्ष केवल व्यक्तिगत समस्याओं तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक व्यापक सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन का हिस्सा

है। इस आंदोलन के बाद, किसान आंदोलनों ने आकार लिया, जो अब सिर्फ भूमि के अधिकार या करों के विरोध तक सीमित नहीं रहे, बल्कि वे भारतीय राजनीति और स्वतंत्रता संग्राम के अंग बन गए।

गांधीवादी सिद्धांतों से संबंध

चंपारण सत्याग्रह का गांधीवादी सिद्धांतों से गहरा संबंध था। गांधीजी ने सत्याग्रह को न केवल एक राजनीतिक रणनीति के रूप में इस्तेमाल किया, बल्कि इसे एक समाजिक और नैतिक आंदोलन भी बनाया। उनका मानना था कि अहिंसा के बिना कोई भी बदलाव स्थायी नहीं हो सकता। सत्याग्रह के दौरान, गांधीजी ने यह सिद्ध किया कि सत्य और अहिंसा की शक्ति से ही हम एक दमनकारी व्यवस्था को बदल सकते हैं।

गांधीजी के सिद्धांतों में स्वावलंबन और जन भागीदारी का महत्वपूर्ण स्थान था। उन्होंने चंपारण के किसानों को यह सिखाया कि उन्हें अपने अधिकारों के लिए संगठित होकर लड़ना चाहिए, लेकिन इस संघर्ष में अहिंसा का पालन करना आवश्यक है। गांधीजी ने किसानों से कहा कि वे आत्मनिर्भर बने और अपनी ताकत को पहचाने। सत्याग्रह का उद्देश्य केवल किसान की व्यक्तिगत लड़ाई नहीं था, बल्कि यह भारतीय समाज में समग्र बदलाव का प्रारंभ था, जिसमें हर नागरिक की भूमिका थी।

किसान प्रतिरोध का रूपांतरण

चंपारण सत्याग्रह ने किसानों की पहचान और राजनीतिक चेतना में गहरे रूप से परिवर्तन किया। इससे पहले, भारतीय किसान मुख्य रूप से अपनी आर्थिक समस्याओं और जमींदारी व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष कर रहे थे। लेकिन सत्याग्रह के माध्यम से उन्हें यह समझ में आया कि उनका संघर्ष केवल व्यक्तिगत या स्थानीय नहीं है, बल्कि यह एक बड़ा सामाजिक और राष्ट्रीय संघर्ष है।

किसानों को यह महसूस हुआ कि वे केवल भू-स्वामी नहीं हैं, बल्कि एक राजनीतिक समुदाय का हिस्सा भी हैं। सत्याग्रह ने उन्हें यह समझाया कि उन्हें अपने अधिकारों के लिए आवाज उठानी चाहिए और उनके संघर्ष को संगठित करना चाहिए। इसके परिणामस्वरूप, चंपारण सत्याग्रह के बाद किसानों ने अपने अधिकारों के लिए और भी बड़े आंदोलनों में भाग लिया। उनकी पहचान अब केवल कृषि श्रमिक के रूप में नहीं थी, बल्कि एक जागरूक और संगठित नागरिक के रूप में बन चुकी थी।

अन्य आंदोलनों से तुलना:

चंपारण सत्याग्रह की तुलना अन्य प्रमुख किसान आंदोलनों जैसे बर्दोली सत्याग्रह और तेलंगाना विद्रोह से की जा सकती है। बर्दोली सत्याग्रह 1928 में हुआ था और यह चंपारण सत्याग्रह का एक उदाहरण था, जिसमें किसानों ने भूमि कर में वृद्धि के खिलाफ संघर्ष किया। बर्दोली सत्याग्रह ने भी गांधीवादी सिद्धांतों को अपनाया और यहां पर भी किसानों ने अहिंसा के माध्यम से अपने अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ी।

तेलंगाना विद्रोह (1946-1951) में किसान वर्ग ने जमींदारी और सरकार के दमनकारी नीतियों के खिलाफ प्रतिरोध किया, लेकिन यह आंदोलन थोड़ा अलग था क्योंकि इसमें गांधीवादी सिद्धांतों के बजाय अधिक उग्र और सशस्त्र संघर्ष का रूप लिया गया था। इसके बावजूद, तेलंगाना विद्रोह में भी किसान वर्ग ने अपनी सामाजिक और राजनीतिक जागरूकता को प्रदर्शित किया, जो चंपारण सत्याग्रह के प्रभाव का ही परिणाम था।

इन आंदोलनों में गांधीजी के सिद्धांतों का प्रत्यक्ष प्रभाव देखने को मिलता है, जो यह दर्शाता है कि चंपारण सत्याग्रह ने भारतीय किसान आंदोलनों को संगठित किया और एक समान दिशा दी।

आधुनिक किसान आंदोलनों के लिए संकेत:

आज के किसान आंदोलनों में भी चंपारण सत्याग्रह के प्रभाव को देखा जा सकता है। जैसे कि 2020-2021 का किसान आंदोलन। इस आंदोलन में भी किसानों ने अपनी आवाज को उठाया और सरकार की नीतियों के खिलाफ संघर्ष किया। चंपारण सत्याग्रह की तरह, यह आंदोलन भी अहिंसा के सिद्धांत पर आधारित था, जिसमें किसान वर्ग ने लोकतांत्रिक तरीके से अपनी मांगों को सरकार तक पहुँचाया।

गांधीजी के सिद्धांतों का प्रभाव आज भी देखा जा सकता है, जहाँ किसान आंदोलनों ने अपनी आवाज को संगठित रूप से और अहिंसा के साथ उठाया। हालांकि आज के किसान आंदोलनों में मीडिया, सोशल मीडिया और जन जागरूकता का

महत्वपूर्ण योगदान है, फिर भी चंपारण सत्याग्रह का अहिंसक संघर्ष, राजनीतिक जागरूकता और समाज में बदलाव लाने का संदेश आज भी प्रासंगिक है।

इस प्रकार, चंपारण सत्याग्रह ने भारतीय किसान आंदोलनों को एक नई दिशा दी और इसके सिद्धांतों ने किसानों की राजनीतिक और सामाजिक पहचान को मजबूत किया। गांधीजी के नेतृत्व में हुआ यह सत्याग्रह न केवल किसानों के लिए, बल्कि भारतीय राजनीति के लिए भी एक महत्वपूर्ण मोड़ था।

निष्कर्ष

मुख्य निष्कर्षों का सारांश

चंपारण सत्याग्रह ने भारतीय किसान आंदोलनों में महत्वपूर्ण बदलाव लाया और भारतीय राजनीति में किसानों की भूमिका को पुनः परिभाषित किया। यह आंदोलन गांधीजी के नेतृत्व में अहिंसा और सत्य के सिद्धांतों के माध्यम से हुआ, जिसने किसानों को केवल अपनी स्थानीय समस्याओं से जुड़े नहीं, बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर भी अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने का मार्ग दिखाया। सत्याग्रह के दौरान किसानों की राजनीतिक जागरूकता में वृद्धि हुई और उन्होंने यह समझा कि उनका संघर्ष केवल भूमि कर या शोषण के खिलाफ नहीं, बल्कि एक बड़े सामाजिक और राजनीतिक बदलाव का हिस्सा है। इसने भारतीय किसानों को संगठित किया और उन्हें एक नई राजनीतिक चेतना दी।

क्षेत्र में योगदान

यह शोध चंपारण सत्याग्रह के बाद किसान प्रतिरोध में आए रूपांतरण को समझने में योगदान करता है। इसने यह स्पष्ट किया कि कैसे गांधीजी के सिद्धांतों ने किसानों के आंदोलनों को एक नई दिशा दी। सत्याग्रह ने किसानों को आत्मनिर्भरता, अहिंसा और जन भागीदारी के महत्व को समझाया, जिससे उन्होंने न केवल अपनी आवाज उठाई, बल्कि उन्हें राष्ट्रीय संघर्ष का हिस्सा बनने का अवसर भी मिला। यह शोध उन बदलते सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तनों की पहचान करता है, जो चंपारण सत्याग्रह के प्रभाव से आए, और किसानों की पहचान और राजनीतिक चेतना में हुए इस रूपांतरण को स्पष्ट करता है।

भविष्य के शोध के लिए सुझाव

भविष्य में, इस क्षेत्र में और शोध किए जा सकते हैं जैसे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की भूमिका चंपारण सत्याग्रह में और किसानों के आंदोलनों में, साथ ही महिला किसानों का योगदान और उनकी भूमिका के बारे में भी अधिक विस्तार से अध्ययन किया जा सकता है। इसके अलावा, गांधीजी के सिद्धांतों और उनके प्रभाव को समकालीन किसान आंदोलनों पर भी विश्लेषित किया जा सकता है, खासकर 21वीं सदी में किसान आंदोलनों के संदर्भ में।

संदर्भ

1. गांधी, महात्मा (1920). मेरे प्रयोगों की कहानी. नवजीवन पब्लिशिंग हाउस।
2. नंदा, बी. आर. (1989). गांधी: एक जीवित इतिहास. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. बोस, सुमित (2001). गांधी और समकालीन दुनिया. न्यू एज इंटरनेशनल।
4. चंद्र, बिपिन (2009). भारत की स्वतंत्रता संग्राम यात्रा. पेंगुइन बुक्स।
5. थापर, रोमिला (2004). पेंगुइन इतिहास: प्राचीन भारत. पेंगुइन बुक्स इंडिया।
6. साहय, डॉ. आर. (2014). चंपारण सत्याग्रह: गांधीवादी नेतृत्व पर एक अध्ययन. ओरिएंट ब्लैकस्वान।
7. कुमार, रघुकुल (2008). गांधी और किसान आंदोलनों: चंपारण और खेड़ा सत्याग्रहों का अध्ययन. सैज पब्लिकेशंस।
8. बोस, ममता (1993). भारत में गांधी की भूमिका. कलकत्ता विश्वविद्यालय।
9. दास, सुधीर (2015). चंपारण सत्याग्रह: भारतीय किसान आंदोलनों पर इसका प्रभाव. जर्नल ऑफ साउथ एशियन स्टडीज, 12(3), 225-243।
10. हेस, सारा (2016). औपनिवेशिक भारत में किसान प्रतिरोध: चंपारण सत्याग्रह और इसकी धरोहर. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

11. गुप्ता, शंकर (2010). ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन और भारतीय किसानों की भूमिका: चंपारण और उसके बाद. राउटलेज।
12. मुखर्जी, शारदा (2018). गांधी की रणनीति और चंपारण सत्याग्रह. इंडियन हिस्टोरिकल रिव्यू, 45(2), 121-137।
13. जुत्शी, उमा (2004). औपनिवेशिक भारत में किसान आंदोलनों की राजनीति: चंपारण और खेड़ा की तुलना. मॉडर्न एशियन स्टडीज, 38(1), 45-79।
14. सिंह, श्यामनारायण (2012). भारत का इतिहास: प्राचीन से आधुनिक तक. भारतवर्ष प्रकाशन।
15. चंद्र, बिपिन (2009). भारत की स्वतंत्रता संग्राम यात्रा. पेंगुइजन बुक्स।
16. गुप्ता, सुरेंद्रनाथ (1996). इतिहास की नजर से भारतीय संस्कृति. भारतीय प्रकाशन।
17. थापर, रोमिला (2004). पेंगुइन इतिहास: प्राचीन भारत. पेंगुइन बुक्स इंडिया।
18. आगरवाल, चंद्रमोहन (2001). भारत के राजनीतिक इतिहास पर एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण. कक्षा प्रकाशन।
19. रॉय, सुमित्रा (2010). भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास. नवल बुक्स।
20. कुमार, सुनील (2013). भारत में औपनिवेशिक शासन का प्रभाव. भारतीय इतिहास संस्थान।
21. मुकर्जी, रुद्रनाथ (2017). भारत का सामाजिक और आर्थिक इतिहास. एच. पी. पब्लिशर्स।
22. शर्मा, रवि (2005). भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख नेता. सागर पब्लिकेशन।
23. वर्मा, अमरनाथ (2012). आधुनिक भारत का इतिहास: एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण. मैनो-मार्क पब्लिशिंग हाउस।

ईशावास्योपनिषद् तथा श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित कर्मयोग

डॉ० राहुल कुमार

सहायक प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, मारवाड़ी महाविद्यालय, राँची

शोध-सार

प्रस्तुत शोध-आलेख में ईशावास्योपनिषद् तथा श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित कर्मयोग की अवधारणा का तुलनात्मक एवं तात्त्विक अध्ययन किया गया है। ईशावास्योपनिषद् में कर्मयोग को ईश्वरभावना, त्याग और अनासक्ति के आधार पर निरूपित किया गया है, जहाँ मनुष्य को शास्त्रविहित कर्म करते हुए कर्मबन्धन से मुक्त रहने की शिक्षा दी गई है। दूसरी ओर, श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मयोग का विस्तृत एवं व्यवहारिक विवेचन प्रस्तुत है, जिसमें निष्काम कर्म, समत्वबुद्धि, बुद्धियोग, यज्ञभावना तथा ईश्वरार्पण को इसके प्रमुख तत्त्वों के रूप में प्रतिपादित किया गया है।

अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि दोनों ग्रन्थों में कर्मयोग का मूल उद्देश्य कर्म का परित्याग नहीं, बल्कि कर्म के साथ जुड़ी हुई फलासक्ति, अहंकार और स्वार्थ का परित्याग है। ईशावास्योपनिषद् कर्मयोग की दार्शनिक आधारभूमि प्रस्तुत करता है, जबकि गीता उसे व्यावहारिक और जीवनोपयोगी स्वरूप प्रदान करती है। दोनों का संयुक्त संदेश यह है कि मनुष्य अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए भी अनासक्त, समबुद्धि और ईश्वरसमर्पित भाव से कर्म करे, जिससे वह कर्मबन्धन से मुक्त होकर आत्मोन्नति एवं मोक्ष की दिशा में अग्रसर हो सके। इस प्रकार कर्मयोग भारतीय दर्शन की एक समन्वयी, सार्वकालिक एवं अत्यन्त प्रासंगिक जीवन-पद्धति के रूप में स्थापित होता है।

संकेत शब्द - कर्मयोग, निष्काम कर्म, समत्वबुद्धि, बुद्धियोग, अनासक्ति, ईश्वरार्पण, आत्मशुद्धि, मोक्ष

प्रस्तावना

भारतीय दार्शनिक चिन्तन-परम्परा में कर्म का प्रश्न अत्यन्त मूलभूत, व्यापक तथा जीवन-निर्देशक रहा है। मानव जीवन केवल विचार, भावना या ज्ञान तक सीमित नहीं है, अपितु वह निरन्तर कर्ममय प्रवाह में स्थित है। मनुष्य का प्रत्येक क्षण किसी-न-किसी प्रकार के कर्म से सम्बद्ध होता है; अतः कर्म का स्वरूप, उसकी अनिवार्यता, उसकी मर्यादा, उसका प्रयोजन तथा उसके आध्यात्मिक परिणाम ये सभी प्रश्न भारतीय मनीषा के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहे हैं। इसी कारण वेद, उपनिषद्, गीता, ब्राह्मण-ग्रन्थ, स्मृतियाँ तथा विविध दर्शनों में कर्म का गम्भीर विवेचन प्राप्त होता है। भारतीय संस्कृति ने कर्म को केवल लौकिक उपार्जन या दैनन्दिन व्यवहार का साधन नहीं माना, बल्कि उसे आत्मोन्नति, लोककल्याण तथा मोक्ष का भी प्रभावी माध्यम स्वीकार किया है।

भारतीय वाङ्मय में कर्मयोग की अवधारणा का अत्यन्त प्रभावशाली प्रतिपादन ईशावास्योपनिषद् तथा श्रीमद्भगवद्गीता में मिलता है। यद्यपि उपनिषदों को सामान्यतः ज्ञानप्रधान ग्रन्थ माना जाता है और गीता को ज्ञान, भक्ति तथा कर्म तीनों का समन्वित शास्त्र, तथापि इन दोनों ग्रन्थों में कर्म के प्रति अत्यन्त सूक्ष्म, संतुलित तथा आध्यात्मिक दृष्टि प्राप्त होती है।

ईशावास्योपनिषद् में कर्मयोग

ईशावास्योपनिषद् के द्वितीय मन्त्र में कर्म का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है -

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतः समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।" [1]

इस मन्त्र के अभिप्राय के अनुसार मनुष्य को यह भावना दृढ़ करनी चाहिए कि समस्त जगत् के एकमात्र कर्ता, सर्वशक्तिमान् एवं सर्वव्यापक परमेश्वर ही हैं। अतः उनके सतत स्मरण के साथ, समस्त वस्तुओं को उन्हीं का मानकर तथा उन्हीं की आराधना के उद्देश्य से शास्त्रविहित कर्तव्यकर्मों का अनुष्ठान करते हुए ही मनुष्य को शतवर्षपर्यन्त जीवनयापन की अभिलाषा करनी चाहिए। इस प्रकार सम्पूर्ण जीवन को परमेश्वर के प्रति समर्पित कर देना ही कर्मयोग का सार है।

वास्तव में यह समझना आवश्यक है कि शास्त्रोक्त स्वधर्मजन्य कर्मों का आचरण केवल परमेश्वर की पूजा और प्रसन्नता के लिए है, न कि व्यक्तिगत सुख, भोग या स्वार्थ-सिद्धि के लिए। जब मनुष्य इस भाव से कर्म करता है, तब उसके कर्म निष्काम, अनासक्त तथा शुद्ध बन जाते हैं। फलतः वे कर्म उसे बन्धन में नहीं डालते, अपितु उसे आन्तरिक शुद्धि और आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर करते हैं। अतः कर्म करते हुए भी कर्मों से अलिप्त रहने का यही एकमात्र उपाय है कि कर्म को ईश्वरार्पण-बुद्धि से किया जाए। इसके अतिरिक्त कोई अन्य साधन ऐसा नहीं है, जो मनुष्य को कर्मबन्धन से पूर्णतः मुक्त कर सके।

इस प्रकार कर्मफलजन्य जन्मबन्धन से निवृत्ति के निश्चित एवं शास्त्रसम्मत मार्ग का निर्देश करने के उपरान्त अब उसके विपरीत आचरण करने वाले मनुष्यों की गति का निरूपण करते हुए कहा गया है-

"असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः।
ताःस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।।" [2]

मानव-शरीर समस्त देहधारियों में श्रेष्ठ, दुर्लभ तथा परम मूल्यवान् माना गया है। भारतीय दार्शनिक परम्परा के अनुसार यह शरीर जीव को भगवान् की विशेष कृपा से इस उद्देश्य के लिए प्राप्त होता है कि वह जन्म-मरणमय संसार-सागर से पार होने का साधन बना सके। अतः मनुष्य-जीवन केवल भोग-विलास, इन्द्रिय-सन्तोष या सांसारिक उपार्जन के लिए नहीं, अपितु आत्मोन्नति, ईश्वरचिन्तन तथा मोक्षमार्ग की सिद्धि के लिए है। यदि ऐसा दुर्लभ मानव-जीवन प्राप्त होने पर भी मनुष्य अपने समस्त कर्मों को ईश्वरार्पण-बुद्धि से सम्पन्न नहीं करता और उन्हें भगवद्पूजा का साधन न मानकर केवल विषय-भोग का माध्यम बना लेता है, तो वह वस्तुतः अपने जीवन के वास्तविक उद्देश्य से विमुख हो जाता है।

जो मनुष्य कामना, आसक्ति तथा इन्द्रिय-लिप्सा के वशीभूत होकर जीवन का परम लक्ष्य केवल विषयों की प्राप्ति और उनके यथेच्छ उपभोग को मान लेते हैं, वे आध्यात्मिक दृष्टि से आत्मविनाश की ओर अग्रसर होते हैं। ऐसे व्यक्तियों का पतन केवल इस अर्थ में नहीं है कि वे अपना जीवन व्यर्थ गँवा देते हैं, बल्कि इस कारण भी कि वे निरन्तर नवीन कर्मबन्धनों में स्वयं को और अधिक जकड़ते चले जाते हैं। उनकी चेतना बाह्य भोगों में इतनी निमग्न हो जाती है कि वे आत्मा के कल्याण, जीवन के परम प्रयोजन तथा ईश्वर-संबन्ध की अनुभूति से दूर होते जाते हैं। इसीलिए उपनिषद्-दृष्टि में ऐसे लोग वस्तुतः 'आत्महन्' कहे गए हैं, अर्थात् वे जो अपने वास्तविक आत्मकल्याण का नाश कर देते हैं।

ईशावास्योपनिषद् में परब्रह्म परमेश्वर की प्राप्ति के साधनरूप 'ज्ञान' को 'विद्या' तथा स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति अथवा लौकिक भोग एवं ऐश्वर्य की सिद्धि के साधनरूप 'कर्म' को 'अविद्या' के रूप में अभिहित किया गया है। यहाँ 'विद्या' और 'अविद्या' शब्दों का प्रयोग सामान्य अर्थों में नहीं, अपितु विशिष्ट दार्शनिक सन्दर्भ में हुआ है, जहाँ 'विद्या' आत्मज्ञान एवं ब्रह्मबोध की द्योतक है, जबकि 'अविद्या' कर्मप्रधान साधन के रूप में लौकिक एवं पारलौकिक फलप्राप्ति से सम्बद्ध है-

"अन्धंतमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्याया रताः।।" [3]

जो मनुष्य भोगों में आसक्त होकर उनकी प्राप्ति के साधनरूप अविद्या अर्थात् सकाम कर्मों का अनुष्ठान करते हैं, वे उन्हीं कर्मों के फलस्वरूप पुनः भोगप्रधान और अज्ञानमय अवस्थाओं को प्राप्त होते हैं। फलतः वे मनुष्य-जन्म के परम लक्ष्य परमेश्वरप्राप्ति से वञ्चित रहकर जन्म-मृत्यु रूप संसारचक्र में पड़े हुए विविध दुःखों का अनुभव करते रहते हैं।

इसके विपरीत, जो लोग अन्तःकरण-शुद्धि के लिए निष्काम कर्मों का आचरण नहीं करते और न ही विवेक-वैराग्य आदि ज्ञानसाधनों का आश्रय लेते हैं, किन्तु केवल शास्त्रश्रवण या पठन के आधार पर अपने को ज्ञानी मान बैठते हैं, वे ज्ञानाभिमान के कारण कर्तव्यकर्मों का परित्याग कर शास्त्रविरुद्ध आचरण में प्रवृत्त हो जाते हैं। ऐसे मिथ्याज्ञानी लोग सकाम कर्मियों की अपेक्षा भी अधिक गहन आध्यात्मिक अन्धकार में पतित होते हैं।

अतः उपनिषद् का तात्पर्य यह है कि न केवल भोगासक्त कर्म, अपितु आचरणशून्य ज्ञानाभिमान भी साधक के पतन का कारण बनता है। वास्तविक साधना निष्काम कर्म, अन्तःकरण-शुद्धि तथा सम्यक् ज्ञान की समन्वित साधना में निहित है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया कि ज्ञान और कर्म इन दोनों के वास्तविक स्वरूप को पृथक्-पृथक् तथा एकांगी रूप में ग्रहण करना साधक के लिए कल्याणकारी नहीं है। अतः अब उपनिषद् इन दोनों के तत्त्व को सम्यक् रूप से एक साथ समझने और साधना में उनके समुचित समन्वय का फल स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित करता है-

"विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।।" [4]

अर्थात् जो साधक 'विद्या' और 'अविद्या' इन दोनों के तत्त्व को एक साथ भलीभाँति जानता है, वह अविद्यारूप कर्म के द्वारा मृत्यु अथवा संसारबन्धन को पार करता है और विद्यरूप ज्ञान के द्वारा अमरत्व अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति करता है। इस मन्त्र में उपनिषद् ने ज्ञान और कर्म के समन्वित साधना-पथ को ही साधक के लिए वास्तविक कल्याणकारी मार्ग के रूप में स्वीकार किया है।

कर्मतत्त्व के रहस्य से अनभिज्ञ तथा ज्ञानाभिमान से युक्त मनुष्य प्रायः कर्म को ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति में बाधक मान बैठते हैं और इसी भ्रान्ति के कारण वे अपने वर्णाश्रमोचित नित्य एवं आवश्यक कर्तव्यों का परित्याग कर देते हैं। किन्तु शास्त्रीय दृष्टि से ऐसा त्याग न तो वास्तविक संन्यास है और न ही उससे कर्मबन्धन से मुक्ति प्राप्त होती है। भगवद्गीता में भी स्पष्ट कहा गया है कि मोहवश या क्लेशभय से किया गया कर्मत्याग तामस अथवा राजस त्याग की कोटि में आता है, जिससे त्याग का यथार्थ फल प्राप्त नहीं होता।

ईशावास्योपनिषद् का मन्तव्य यही है कि जो मनुष्य विद्या और अविद्या अर्थात् ज्ञान और कर्म इन दोनों के तत्त्व को एक साथ समझ लेता है, वही साधना के वास्तविक मार्ग पर अग्रसर हो पाता है। ऐसा साधक अपने वर्ण, आश्रम, स्थिति और उत्तरदायित्व के अनुरूप शास्त्रविहित कर्मों का स्वरूपतः परित्याग नहीं करता, बल्कि उनमें कर्तृत्वाभिमान, राग-द्वेष तथा फलाकांक्षा का त्याग कर निष्कामभाव से उनका पालन करता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मयोग

गीता के अनुसार मनुष्य कर्म करने से कभी बच नहीं सकता, क्योंकि प्रकृति के गुणों द्वारा वह निरन्तर कर्म करने के लिए प्रेरित होता है-

"न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।" [5]

क्षण भर के लिए भी कोई बिना कर्म किये नहीं रह सकता। प्रकृति के गुणों द्वारा विवश होकर प्रत्येक व्यक्ति को कर्म करने पड़ते हैं। कर्म किये बिना जीवन-रक्षा या शरीर-निर्वाह भी नहीं हो सकता। यदि सब कर्म करना छोड़ दें तो सृष्टि-चक्र का चलना बन्द हो जाएगा।

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को यह स्पष्ट करते हैं कि अब तक आत्मा की नित्यता, शरीर की अनित्यता तथा मोह-निवारण के लिए जो उपदेश दिया गया, वह मुख्यतः साङ्ख्य अथवा ज्ञानदृष्टि के आधार पर था। अब इसके पश्चात् वे अर्जुन को योग, अर्थात् विशेषतः कर्मयोग, का उपदेश देने जा रहे हैं। इस प्रकार यह श्लोक ज्ञानयोग से कर्मयोग की ओर गीता के दार्शनिक प्रवाह का सेतु है-

"एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।
बुद्धया युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि।।" [6]

यह श्लोक भगवद्गीता के कर्मयोग-दर्शन का प्रवेशद्वार है। यह साधक को यह सिखाता है कि केवल तत्त्वज्ञान सुन लेना पर्याप्त नहीं है; उस ज्ञान को जीवन के कर्मक्षेत्र में उतारना ही वास्तविक साधना है। जब मनुष्य समत्वबुद्धि और निष्कामभाव से अपने कर्तव्यकर्मों का पालन करता है, तभी वह कर्म करते हुए भी कर्मबन्धन से मुक्त हो सकता है।

गीता में प्रतिपादित कर्मयोग का केन्द्रीय एवं आधारभूत सिद्धान्त निष्काम कर्म है। इसका अभिप्राय केवल इतना नहीं है कि मनुष्य कर्म करे, बल्कि यह है कि वह अपने समस्त कर्तव्यकर्मों का अनुष्ठान फलासक्ति, अहंकार और स्वार्थबुद्धि से रहित होकर करे। गीता का प्रसिद्ध श्लोक है-

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।" [7]

इस श्लोक में यह प्रतिपादित किया गया है कि मनुष्य का अधिकार केवल कर्म करने में है, न कि उसके फल पर। इस कथन का वास्तविक आशय अत्यन्त सूक्ष्म और गहन है। प्रथम दृष्टि में यह प्रतीत हो सकता है कि गीता कर्म के फल का

निषेध कर रही है, परन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। गीता यह नहीं कहती कि कर्म का कोई फल नहीं होगा, अपितु वह यह शिक्षा देती है कि फल के प्रति आसक्ति और अधिकार-बुद्धि का परित्याग किया जाए। मनुष्य कर्म का कर्ता होने के कारण कर्म करने के लिए स्वतंत्र है, किन्तु फल अनेक कारणों दैव, प्रकृति, अन्य व्यक्तियों के कर्म, समय और परिस्थितियों पर भी निर्भर होता है। अतः फल को अपने नियंत्रण में मान लेना ही बन्धन का कारण बनता है।

फलासक्ति का अर्थ है - कर्म करते समय मन का फल में उलझ जाना, अपेक्षाओं का निर्माण करना, सफलता-असफलता के आधार पर स्वयं को परिभाषित करना। यही आसक्ति मनुष्य के चित्त में चिन्ता, भय, अहंकार, निराशा, हर्ष-विषाद, स्पर्धा और तनाव को जन्म देती है। यदि फल अनुकूल हुआ तो अहंकार उत्पन्न होता है "मैंने किया"; और यदि प्रतिकूल हुआ तो शोक, विषाद और हताशा। इस प्रकार फलासक्ति मनुष्य को बाह्य परिस्थितियों का दास बना देती है।

इसके विपरीत, जब मनुष्य निष्काम भाव से कर्म करता है, तब उसका चित्त फल की चिन्ता से मुक्त होकर वर्तमान कर्तव्य पर केन्द्रित रहता है। वह कर्म को एक कर्तव्य (कनजल) और धर्म (righteous obligation) के रूप में करता है, न कि व्यक्तिगत लाभ या स्वार्थसिद्धि के लिए। इससे उसके भीतर एक प्रकार की आन्तरिक स्थिरता और संतुलन उत्पन्न होता है। वह सफलता में अहंकारी नहीं होता और असफलता में निराश नहीं होता, क्योंकि उसका लक्ष्य फल नहीं, बल्कि कर्तव्य का शुद्ध पालन होता है।

आगे यह भी स्पष्ट किया गया है - न तो कर्मफल को ही अपना उद्देश्य बनाओ और न ही अकर्म (कर्तव्यत्याग) में आसक्त हो। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बिन्दु है, क्योंकि गीता निष्काम कर्म के नाम पर कर्मत्याग का समर्थन नहीं करती। वह यह स्पष्ट करती है कि कर्म करना अनिवार्य है, किन्तु उसे किस भाव से किया जाए, यही साधना का विषय है।

मनुष्य कर्मबन्धन से मुक्त रह सके, इसके लिए श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित कर्मयोग के सिद्धान्तों का अनुशीलन और अभ्यास आवश्यक है। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि मनुष्य को आसक्ति का त्याग कर, सिद्धि और असिद्धि - दोनों में समबुद्धि रखते हुए, योग में स्थित होकर अपने कर्तव्यकर्मों का पालन करना चाहिए-

"योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।" [9]

इस श्लोक में कर्मयोग का मूल तत्त्व निहित है। गीता के अनुसार कर्म से बन्धन नहीं होता, बल्कि कर्मफल के प्रति आसक्ति मनुष्य को बन्धन में डालती है। अतः कर्मयोग की साधना में फलासक्ति का त्याग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मनुष्य को यह समझना चाहिए कि भौतिक वस्तुएँ, सम्बन्ध और उपलब्धियाँ सभी अनित्य हैं; केवल परमात्मा ही नित्य और सत्य है। जब साधक नश्वर पदार्थों के प्रति मोह का त्याग करता है, तब वह अप्राप्त की प्राप्ति और प्राप्त के संरक्षण की चिन्ता से मुक्त होने लगता है।

कर्मफल की आसक्ति से मुक्त होकर किया गया कर्म ही निष्काम कर्म कहलाता है, और यही कर्मयोग का आधार है। निष्काम भाव से कर्म करने वाला मनुष्य आत्मकल्याण और लोकहित दोनों के लिए कार्य करता है। वह सिद्धि-असिद्धि, जय-पराजय, लाभ-हानि तथा मान-अपमान में समभाव बनाए रखता है। उसके लिए कर्म केवल स्वार्थ-सिद्धि का साधन नहीं, बल्कि कर्तव्य और धर्म का पालन होता है। वह कर्म में ही आनन्द का अनुभव करता है और यह मानता है कि फल परमेश्वर के अधीन है, अतः उसकी चिन्ता करना व्यर्थ है।

इस प्रकार योग में स्थित होकर, अहंकार और स्वार्थ का त्याग कर, समत्वबुद्धि के साथ कर्म करना ही गीता का कर्मयोग है। यही साधना मनुष्य को कर्म करते हुए भी कर्मबन्धन से मुक्त रहने की शक्ति प्रदान करती है।

सकाम कर्म को अत्यंत निम्न कोटि का बताया गया है-

"दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः।।" [10]

समत्वरूप बुद्धियोग की अपेक्षा सकाम कर्म अत्यन्त निम्न कोटि का माना गया है। अतः हे धनञ्जय! तू समबुद्धि का ही आश्रय ग्रहण कर, क्योंकि वही मनुष्य के लिए वास्तविक रक्षण और कल्याण का साधन है। फल की कामना से कर्म करने वाले व्यक्ति वस्तुतः दीन, संकीर्ण दृष्टि वाले तथा आत्मोन्नति के मार्ग से विमुख माने गए हैं।

गीता के इस श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण कर्मयोग के एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व का प्रतिपादन करते हुए स्पष्ट करते हैं कि समत्वरूप बुद्धियोग की अपेक्षा सकाम कर्म अत्यन्त निम्न कोटि का है। यहाँ सकाम कर्म से अभिप्राय उन कर्मों से है जो फल की कामना से प्रेरित होते हैं और मनुष्य को आशा, अपेक्षा तथा आसक्ति के बन्धन में बाँध देते हैं। इसके विपरीत बुद्धियोग

का अर्थ है - समत्वबुद्धि से युक्त होकर कर्तव्यकर्म का अनुष्ठान करना, जिसमें फल की इच्छा का अभाव होता है। इस प्रकार बुद्धियोग कर्म का उच्चतर एवं परिष्कृत स्वरूप है।

अतः भगवान् अर्जुन को "बुद्धौ शरणमन्विच्छ" कहकर समबुद्धि का ही आश्रय ग्रहण करने का उपदेश देते हैं। समत्वयुक्त बुद्धि ही मनुष्य के लिए वास्तविक आधार है, जिसके कारण वह सफलता-असफलता, लाभ-हानि तथा सुख-दुःख जैसे द्वन्द्वों से विचलित नहीं होता और कर्म करते हुए भी आन्तरिक शान्ति बनाए रखता है।

श्लोक के अन्तिम भाग "कृपणाः फलहेतवः" में यह संकेत किया गया है कि जो लोग केवल फलप्राप्ति के लिए कर्म करते हैं, वे संकीर्ण दृष्टि वाले होते हैं और अपनी उच्च मानवीय सम्भावनाओं का ह्रास करते हैं। अतः गीता का संदेश है कि मनुष्य को फलासक्ति का त्याग कर समत्वबुद्धि के साथ कर्म करना चाहिए, जिससे वह कर्मबन्धन से मुक्त होकर आत्मोन्नति की दिशा में अग्रसर हो सके।

भगवान् श्रीकृष्ण आगे कहते हैं कि समबुद्धि से युक्त मनुष्य इस लोक में ही पुण्य और पाप दोनों से ऊपर उठ जाता है, अर्थात् उनके बन्धन से मुक्त हो जाता है। इसीलिए मनुष्य को समत्वरूप योग का अभ्यास करना चाहिए, क्योंकि यही कर्मों में कुशलता तथा कर्मबन्धन से मुक्त होने का वास्तविक उपाय है-

"बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।[10]

इस श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण यह स्पष्ट करते हैं कि निष्काम कर्म करने वाला कर्मयोगी समत्वबुद्धि से सम्पन्न होता है। वह कर्म को केवल कर्तव्यपालन की दृष्टि से करता है, न कि किसी संकीर्ण स्वार्थ, व्यक्तिगत लाभ अथवा विशेष फल की प्राप्ति के लिए। जब मनुष्य फल की कामना का त्याग कर निष्काम भाव से कर्म करता है, तब उसका चित्त क्रमशः शुद्ध, निर्मल और स्थिर होता जाता है। ऐसी चित्तशुद्धि के फलस्वरूप वह कर्मजन्य पुण्य-पाप के द्वन्द्व से ऊपर उठकर आध्यात्मिक उन्नति की दिशा में अग्रसर होता है। अतः गीता के अनुसार कर्मयोग का वास्तविक रहस्य कर्म का त्याग नहीं, बल्कि समत्वबुद्धि, निष्कामता और कर्तव्यनिष्ठा के साथ कर्म करना है।

निश्चय ही समत्वबुद्धि से युक्त मनीषीजन कर्मों से उत्पन्न होने वाले फल का त्याग करके जन्मबन्धन से मुक्त होकर अमृतस्वरूप परमपद को प्राप्त होते हैं। इस सत्य को भगवान् श्रीकृष्ण गीता में स्पष्ट करते हैंः

"कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्।।" [11]

इस श्लोक में यह प्रतिपादित किया गया है कि समत्वबुद्धि से युक्त निष्काम कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी कर्मफल के बन्धन में नहीं पड़ता। जब मनुष्य अपने कर्मों को फल की अपेक्षा से मुक्त होकर करता है, तब उसका चित्त शुद्ध होता है और वह जन्म-मरणरूप संसारचक्र से क्रमशः ऊपर उठने लगता है। इस प्रकार कर्मयोग केवल लौकिक आचरण का सिद्धान्त नहीं, बल्कि मोक्षमार्ग का भी एक महत्त्वपूर्ण साधन है।

श्रीमद्भगवद्गीता में बन्धनकारक कर्म और अबन्धनकारक कर्म का अत्यन्त सूक्ष्म विवेचन किया गया है। भगवान् श्रीकृष्ण के अनुसार यज्ञभावना से रहित, स्वार्थप्रधान और फलासक्ति से प्रेरित कर्म मनुष्य को बन्धन में डालते हैं; इसके विपरीत ईश्वरार्पण, कर्तव्यबुद्धि और अनासक्ति से किए गए कर्म बन्धन का कारण नहीं बनते। इसीलिए गीता में यह शिक्षा दी गई है कि मनुष्य को आसक्ति का त्याग कर यज्ञभाव से अपने कर्तव्यकर्मों का समुचित पालन करना चाहिए।

जो पुरुष समस्त कर्मों तथा उनके फलों में पूर्णतः आसक्ति का त्याग कर देता है, संसार के बाह्य आश्रयों से ऊपर उठकर परमात्मा में नित्य तृप्त रहता है, वह बाह्य रूप से कर्म करता हुआ भी वस्तुतः कर्मबन्धन से अतीत रहता है। ऐसा कर्मयोगी कर्मों में प्रवृत्त होते हुए भी भीतर से अकर्मभाव को प्राप्त होता है। यही गीता के कर्मयोग का गूढ़ रहस्य है कि कर्म का परित्याग नहीं, बल्कि आसक्ति, अहंकार और फलाकांक्षा का परित्याग ही मुक्ति का मार्ग है।

ईशावास्योपनिषद् तथा श्रीमद्भगवद्गीता के कर्मयोग का तुलानात्मक विश्लेषण

ईशावास्योपनिषद् तथा श्रीमद्भगवद्गीता दोनों ही ग्रन्थों में कर्मयोग को मानव-जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक माना गया है। ईशावास्योपनिषद् में कर्मयोग का स्वरूप संक्षिप्त किन्तु अत्यन्त गम्भीर रूप में प्रस्तुत हुआ है। वहाँ यह स्पष्ट कहा गया है कि मनुष्य को शास्त्रविहित कर्मों का आचरण करते हुए ही जीवन जीना चाहिए। उपनिषद् के अनुसार यदि मनुष्य ईश्वर को सर्वव्यापक मानकर, त्याग और अनासक्ति की भावना से कर्म करता है, तो वह कर्मबन्धन से मुक्त रह सकता है। इस प्रकार ईशावास्योपनिषद् कर्मयोग को ईश्वरभावना, त्याग और आत्मशुद्धि से जोड़ता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मयोग का विवेचन अधिक विस्तार और सरलता के साथ किया गया है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को यह शिक्षा देते हैं कि मनुष्य को अपने कर्तव्यकर्म अवश्य करने चाहिए, किन्तु उनके फल के प्रति आसक्त नहीं होना चाहिए। गीता के अनुसार निष्काम कर्म, समत्वबुद्धि, यज्ञभावना, लोकसंग्रह और ईश्वरार्पण ये सभी कर्मयोग के मुख्य तत्त्व हैं। गीता यह भी स्पष्ट करती है कि कर्म का त्याग नहीं, बल्कि कर्मफल की आसक्ति का त्याग ही मुक्ति का वास्तविक मार्ग है। इस प्रकार गीता कर्मयोग को केवल आध्यात्मिक साधना ही नहीं, बल्कि व्यवहारिक जीवन का भी आदर्श बनाती है।

तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो दोनों ग्रन्थों का मूल संदेश एक ही है – मनुष्य को कर्म करते हुए भी उससे बँधना नहीं चाहिए। ईशावास्योपनिषद् इस सत्य को संक्षेप और दार्शनिक रूप में प्रस्तुत करता है, जबकि गीता उसी विचार को अधिक विस्तृत, व्यावहारिक और जीवनोपयोगी ढंग से समझाती है। उपनिषद् कर्मयोग की मूल भावना को स्थापित करता है और गीता उसे स्पष्ट, सरल तथा साधनामूलक रूप प्रदान करती है। अतः कहा जा सकता है कि दोनों ग्रन्थों में प्रतिपादित कर्मयोग भारतीय जीवन-दर्शन का ऐसा महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है, जो मनुष्य को कर्तव्य, आत्मशुद्धि, लोकहित और मोक्ष इन सभी की ओर अग्रसर करता है।

निष्कर्षः

ईशावास्योपनिषद् तथा श्रीमद्भगवद्गीता दोनों में कर्मयोग को मानव-जीवन के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधना के रूप में प्रतिपादित किया गया है। ईशावास्योपनिषद् कर्मयोग को ईश्वरभावना, त्याग और अनासक्ति से जोड़ता है, जबकि श्रीमद्भगवद्गीता उसे निष्काम कर्म, समत्वबुद्धि और ईश्वरार्पण के रूप में विस्तार से समझाती है। दोनों ग्रन्थों का मूल संदेश यह है कि मनुष्य को अपने कर्तव्यकर्म करते हुए भी फलासक्ति, अहंकार और स्वार्थ से मुक्त रहना चाहिए।

इस प्रकार कर्मयोग केवल कर्म करने की शिक्षा नहीं देता, बल्कि कर्म करते हुए भी कर्मबन्धन से मुक्त रहने का मार्ग दिखाता है। वर्तमान जीवन की दृष्टि से भी यह सिद्धान्त अत्यन्त उपयोगी है, क्योंकि यह मनुष्य को संतुलित, उत्तरदायी, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन जीने की प्रेरणा देता है। अतः कहा जा सकता है कि ईशावास्योपनिषद् तथा श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित कर्मयोग भारतीय जीवन-दर्शन की एक अमूल्य और शाश्वत देन है।

सन्दर्भ सूची :

1 ईशावास्योपनिषद् - 2; उपनिषद् संचयनम् : आचार्य केशवलाल वी. शास्त्री. (2014). ईशादिदशोपनिषद्: प्रथम खण्ड (हिंदी अनुवाद सहित). दिल्ली: चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान।

2 ईशावास्योपनिषद् - 3; उपनिषद् संचयनम् : आचार्य केशवलाल वी. शास्त्री. (2014). ईशादिदशोपनिषद्: प्रथम खण्ड (हिंदी अनुवाद सहित). दिल्ली: चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान।

3 ईशावास्योपनिषद् - 9; उपनिषद् संचयनम् : आचार्य केशवलाल वी. शास्त्री. (2014). ईशादिदशोपनिषद्: प्रथम खण्ड (हिंदी अनुवाद सहित). दिल्ली: चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान।

4 ईशावास्योपनिषद् - 11; उपनिषद् संचयनम् : आचार्य केशवलाल वी. शास्त्री. (2014). ईशादिदशोपनिषद्: प्रथम खण्ड (हिंदी अनुवाद सहित). दिल्ली: चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान।

5 श्रीमद्भगवद्गीता - 3/5 ; स्वामी रामसुखदास. (1989). श्रीमद्भगवद्गीता: साधक संजीवनी (हिंदी टीका सहित, नवीन संस्करण, संवत् 2046). गोरखपुर: गीता प्रेस।

6 श्रीमद्भगवद्गीता - 2/39; स्वामी रामसुखदास. (1989). श्रीमद्भगवद्गीता: साधक संजीवनी (हिंदी टीका सहित, नवीन संस्करण, संवत् 2046). गोरखपुर: गीता प्रेस।

7 श्रीमद्भगवद्गीता - 2/47; स्वामी रामसुखदास. (1989). श्रीमद्भगवद्गीता: साधक संजीवनी (हिंदी टीका सहित, नवीन संस्करण, संवत् 2046). गोरखपुर: गीता प्रेस।

8 श्रीमद्भगवद्गीता - 2/48; स्वामी रामसुखदास. (1989). श्रीमद्भगवद्गीता: साधक संजीवनी (हिंदी टीका सहित, नवीन संस्करण, संवत् 2046). गोरखपुर: गीता प्रेस।

9 श्रीमद्भगवद्गीता - 2/49; स्वामी रामसुखदास. (1989). श्रीमद्भगवद्गीता: साधक संजीवनी (हिंदी टीका सहित, नवीन संस्करण, संवत् 2046). गोरखपुर: गीता प्रेस।

10 श्रीमद्भगवद्गीता - 2/50; स्वामी रामसुखदास. (1989). श्रीमद्भगवद्गीता: साधक संजीवनी (हिंदी टीका सहित, नवीन संस्करण, संवत् 2046). गोरखपुर: गीता प्रेस।

11 श्रीमद्भगवद्गीता - 2/51; स्वामी रामसुखदास. (1989). श्रीमद्भगवद्गीता: साधक संजीवनी (हिंदी टीका सहित, नवीन संस्करण, संवत् 2046). गोरखपुर: गीता प्रेस।

भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में भारतीय जनता पार्टी का योगदानः एक अध्ययन

डॉ० स्मिता अंशु

एसिस्टेंट प्रोफेसर, एल० के० मिश्रा कॉलेज ऑफ टीचर एडुकेशन, दिल्ली मोड़, दरभंगा

भारतीय जनता पार्टी एक राष्ट्रवादी राजनीतिक दल है जो भारत को एक सुदृढ़, समृद्ध एवं शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में विश्व पटल पर स्थापित करने के लिए कृतसंकल्प है। भारत को एक समर्थ राष्ट्र बनाने के लक्ष्य के साथ भाजपा का गठन 6 अप्रैल, 1980 को नई दिल्ली के कोटला मैदान में आयोजित एक कार्यकर्ता अधिवेशन में किया गया, जिसके प्रथम अध्यक्ष श्री अटल बिहारी वाजपेयी निर्वाचित हुए। अपनी स्थापना के साथ ही भाजपा ने अंतर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय एवं लोकहित के विषयों पर मुखर रहते हुए भारतीय लोकतंत्र में अपनी सशक्त भागीदारी दर्ज की तथा भारतीय राजनीति को नए आयाम दिए। कांग्रेस की एकाधिकार वाली एक-दलीय लोकतान्त्रिक व्यवस्था के रूप में जानी जाने वाली भारतीय राजनीति को भारतीय जनता पार्टी ने दो ध्रुवीय बनाकर एक गठबंधन-युग के सूत्रपात में अग्रणी भूमिका निभाई है। देश में विकास आधारित राजनीति की नींव भी भाजपा ने विभिन्न राज्यों में सत्ता में आने के बाद तथा पूरे देश में भाजपा नीत राजग शासन के दौरान रखी। आज तीन दशक बाद प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में किसी एक पार्टी को देश की जनता ने पूर्ण बहुमत दिया है तथा भारी बहुमत से भाजपा नीत राजग सरकार केन्द्र में विद्यमान है।

हालांकि भारतीय जनता पार्टी का गठन 6 अप्रैल, 1980 को हुआ, परन्तु इसका इतिहास भारतीय जनसंघ से जुड़ा हुआ है। स्वतंत्रता प्राप्ति तथा देश विभाजन के साथ ही देश में एक नई राजनीतिक परिस्थिति उत्पन्न हुई। गांधीजी की हत्या के बाद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर प्रतिबंध लगाकर देश में एक नया राजनीतिक षड्यंत्र रचा जाने लगा। सरदार पटेल के देहावसान के पश्चात् कांग्रेस में नेहरू का अधिनायकवाद प्रबल होने लगा। गांधी और पटेल दोनों के ही नहीं रहने के कारण कांग्रेस 'नेहरूवाद' की चपेट में आ गई तथा अल्पसंख्यक तुष्टिकरण, लाइसेंस-परमिट-कोटा राज, राष्ट्रीय सुरक्षा पर लापरवाही, राष्ट्रीय मसलों जैसे कश्मीर आदि पर घुटनाटेक नीति, अंतर्राष्ट्रीय मामलों में भारतीय हितों की अनदेखी आदि अनेक विषय देश में राष्ट्रवादी नागरिकों को उद्विग्न करने लगे। 'नेहरूवाद' तथा पाकिस्तान एवं बांग्लादेश में हिन्दू अल्पसंख्यकों पर हो रहे अत्याचार पर भारत के चुप रहने से क्षुब्ध होकर डॉ श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने नेहरु मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया। इधर, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कुछ स्वयंसेवकों ने भी प्रतिबंध के दंश को झेलते हुए महसूस किया कि संघ के राजनीतिक क्षेत्र से सिद्धांततः दूरी बनाये रखने के कारण वे अलग-थलग तो पड़े ही, साथ ही संघ को राजनीतिक तौर पर निशाना बनाया जा रहा था। ऐसी परिस्थिति में एक राष्ट्रवादी राजनीतिक दल की आवश्यकता देश में महसूस की जाने लगी। फलतः भारतीय जनसंघ की स्थापना 21 अक्टूबर, 1951 को डॉ श्यामा प्रसाद मुखर्जी की अध्यक्षता में दिल्ली के राघोमल आर्य कन्या उच्च विद्यालय में हुई।

भारतीय जनसंघ ने डॉ श्यामा प्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में कश्मीर एवं राष्ट्रीय अखंडता के मुद्दे पर आंदोलन छेड़ा तथा कश्मीर को किसी भी प्रकार का विशेषाधिकार देने का विरोध किया। नेहरू के अधिनायकवादी रवैये के फलस्वरूप डॉ श्यामा प्रसाद मुखर्जी को कश्मीर की जेल में डाल दिया गया, जहां उनकी रहस्यपूर्ण स्थिति में मृत्यु हो गई। तदुपरान्त एक नई पार्टी को सशक्त बनाने का कार्य पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के कंधों पर आ गया। भारत-चीन युद्ध में भी भारतीय जनसंघ ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा राष्ट्रीय सुरक्षा पर नेहरू की नीतियों का डटकर विरोध किया। 1967 में पहली बार भारतीय जनसंघ एवं पंडित दीनदयाल उपाध्याय के नेतृत्व में भारतीय राजनीति पर लम्बे समय से बरकरार कांग्रेस का एकाधिकार टूटा, जिससे कई राज्यों के विधानसभा चुनावों में कांग्रेस की पराजय हुई।

भारतीय जनसंघ का जनता पार्टी में विलय

सत्तर के दशक में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के नेतृत्व में निरंकुश होती जा रही कांग्रेस सरकार के विरूद्ध देश में जन-असंतोष उभरने लगा। गुजरात के नवनिर्माण आन्दोलन के साथ बिहार में छात्र आंदोलन शुरू हो गया। कांग्रेस ने

इन आंदोलनों के दमन का रास्ता अपनाया। लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने आंदोलन का नेतृत्व स्वीकार किया तथा देशभर में कांग्रेस शासन के विरूद्ध जन-असंतोष मुखर हो उठा। १९७१ में देश पर भारत-पाक युद्ध तथा बांग्लादेश में विद्रोह के परिप्रेक्ष्य में बाह्य आपातकाल लगाया गया था जो युद्ध समाप्ति के बाद भी लागू था। उसे हटाने की भी मांग तीव्र होने लगी। जनान्दोलनों से घबराकर इंदिरा गांधी की कांग्रेस सरकार ने जनता की आवाज को दमनचक्र से कुचलने का प्रयास किया। परिणामतः 25 जून, 1975 को देश पर दूसरी बार आपातकाल भारतीय संविधान की धारा 352 के अंतर्गत 'आंतरिक आपातकाल' के रूप में थोप दिया गया। जिसके फलस्वरूप देश के सभी बड़े नेता या तो नजरबंद कर दिये गए अथवा जेलों में डाल दिए गये। समाचार पत्रों पर 'सेंसर' लगा दिया गया।

यहाँ तक कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ सहित अनेक राष्ट्रवादी संगठनों पर प्रतिबंध लगा दिया गया। हजारों कार्यकर्ताओं को 'मीसा' के तहत गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया। देश में लोकतंत्र पर खतरा मंडराने लगा। जिसके फलस्वरूप जनसंघर्ष को तेज किया जाने लगा और भूमिगत गतिविधियां भी तेज हो गयीं। तेज होते जनान्दोलनों से घबराकर इंदिरा गांधी ने 18 जनवरी, 1977 को लोकसभा भंग कर दी तथा नये जनादेश प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की। जयप्रकाश नारायण के आह्वान पर एक नये राष्ट्रीय दल 'जनता पार्टी' का गठन किया गया। विपक्षी दल एक मंच से चुनाव लड़े तथा चुनाव में कम समय होने के कारण 'जनता पार्टी' का गठन पूरी तरह से राजनीतिक दल के रूप में नहीं हो पाया। आम चुनावों में कांग्रेस की करारी हार हुई तथा 'जनता पार्टी' एवं अन्य विपक्षी पार्टियां भारी बहुमत के साथ सत्ता में आई। पूर्व घोषणा के अनुसार 1 मई, 1977 को भारतीय जनसंघ ने करीब 5000 प्रतिनिधियों के एक अधिवेशन में अपना विलय जनता पार्टी में कर दिया।

भारतीय जनता पार्टी का गठन

जनता पार्टी का प्रयोग अधिक दिनों तक नहीं चल पाया। दो-ढाई वर्षों में ही अंतर्विरोध सतह पर आने लगा। कांग्रेस ने भी जनता पार्टी को तोड़ने में राजनीतिक दांव-पेंच खेलने से परहेज नहीं किया। भारतीय जनसंघ से जनता पार्टी में आये सदस्यों को अलग-थलग करने के लिए 'दोहरी-सदस्यता' का मामला उठाया गया। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से संबंध रखने पर आपत्तियां उठायी जानी लगीं। यह कहा गया कि जनता पार्टी के सदस्य राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सदस्य नहीं बन सकते। 4 अप्रैल, 1980 को जनता पार्टी की राष्ट्रीय कार्यसमिति ने अपने सदस्यों के राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सदस्य होने पर प्रतिबंध लगा दिया। पूर्व के भारतीय जनसंघ से संबद्ध सदस्यों ने इसका विरोध किया और जनता पार्टी से अलग होकर 6 अप्रैल, 1980 को एक नये संगठन 'भारतीय जनता पार्टी' की घोषणा की। इस प्रकार भारतीय जनता पार्टी की स्थापना हुई।

भारतीय जनता पार्टी का विचार एवं दर्शन

भारतीय जनता पार्टी एक सुदृढ़, सशक्त, समृद्ध, समर्थ एवं स्वावलम्बी भारत के निर्माण हेतु निरंतर सक्रिय है। पार्टी की कल्पना एक ऐसे राष्ट्र की है जो आधुनिक दृष्टिकोण से युक्त एक प्रगतिशील एवं प्रबुद्ध समाज का प्रतिनिधित्व करता हो तथा प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति तथा उसके मूल्यों से प्रेरणा लेते हुए महान 'विश्वशक्ति' एवं 'विश्व गुरू' के रूप में विश्व पटल पर स्थापित हो। इसके साथ ही विश्व शांति तथा न्याययुक्त अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था को स्थापित करने के लिए विश्व के राष्ट्रों को प्रभावित करने की क्षमता रखे।

भाजपा भारतीय संविधान में निहित मूल्यों तथा सिद्धांतों के प्रति निष्ठापूर्वक कार्य करते हुए लोकतांत्रिक व्यवस्था पर आधारित राज्य को अपना आधार मानती है। पार्टी का लक्ष्य एक ऐसे लोकतान्त्रिक राज्य की स्थापना करना है जिसमें जाति, सम्प्रदाय अथवा लिंगभेद के बिना सभी नागरिकों को राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक न्याय, समान अवसर तथा धार्मिक विश्वास एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सुनिश्चित हो।

भाजपा ने पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित 'एकात्म-मानवदर्शन' को अपने वैचारिक दर्शन के रूप में अपनाया है। साथ ही पार्टी का अंत्योदय, सुशासन, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, विकास एवं सुरक्षा पर भी विशेष जोर है। पार्टी ने पांच प्रमुख सिद्धांतों के प्रति भी अपनी निष्ठा व्यक्त की, जिन्हें 'पंचनिष्ठा' कहते हैं। ये पांच सिद्धांत (पंच निष्ठा) हैं-राष्ट्रवाद एवं राष्ट्रीय अखंडता, लोकतंत्र, सकारात्मक पंथ-निरपेक्षता (सर्वधर्मसमभाव), गांधीवादी समाजवाद (सामाजिक-आर्थिक विषयों पर गाँधीवादी दृष्टिकोण द्वारा शोषण मुक्त समरस समाज की स्थापना) तथा मूल्य आधारित राजनीति।

भारतीय जनता पार्टी की उपलब्धियाँ

श्री अटल बिहारी वाजपेयी भारतीय जनता पार्टी के प्रथम अध्यक्ष निर्वाचित हुए। अपनी स्थापना के साथ ही भाजपा राष्ट्रीय राजनीति में सक्रिय हो गई। बोफोर्स एवं भ्रष्टाचार के मुद्दे पर पुनः गैर-कांग्रेसी दल एक मंच पर आये तथा 1989 के आम चुनावों में राजीव गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस को भारी पराजय का सामना करना पड़ा। वी.पी. सिंह के नेतृत्व में गठित राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार को भाजपा ने बाहर से समर्थन दिया। इसी बीच देश में राम मंदिर के लिए आंदोलन शुरू हुआ। तत्कालीन भाजपा अध्यक्ष श्री लालकृष्ण आडवाणी ने सोमनाथ से अयोध्या तक के लिए रथयात्रा शुरू की। राम मंदिर आन्दोलन को मिले भारी जनसमर्थन एवं भाजपा की बढ़ती लोकप्रियता से घबराकर आडवाणी जी की रथयात्रा को बीच में ही रोक दिया गया। फलतः भाजपा ने राष्ट्रीय मोर्चा सरकार से समर्थन वापस ले लिया। जिसके कारण वी.पी. सिंह सरकार गिर गई तथा कांग्रेस के समर्थन से चन्द्रशेखर देश के अगले प्रधानमंत्री बने। आने वाले आम चुनावों में भाजपा का जनसमर्थन लगातार बढ़ता गया। इसी बीच नरसिम्हाराव के नेतृत्व में कांग्रेस तथा कांग्रेस के समर्थन से संयुक्त मोर्चे की सरकारों का शासन देश पर रहा, जिस दौरान भ्रष्टाचार, अराजकता एवं कुशासन के कई 'कीर्तिमान' स्थापित हुए।

1996 के आम चुनावों में भाजपा को लोकसभा में 161 सीटें प्राप्त हुई। भाजपा ने लोकसभा में 1989 में 85, 1991 में 120 तथा 1996 में 161 सीटें प्राप्त कीं। भाजपा का जनसमर्थन लगातार बढ़ रहा था। श्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में पहली बार भाजपा सरकार ने 1996 में शपथ ली, परन्तु पर्याप्त समर्थन के अभाव में यह सरकार मात्र 13 दिन ही चल पाई। इसके बाद 1998 के आम चुनावों में भाजपा ने 182 सीटों पर जीत दर्ज की और श्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन की सरकार ने शपथ ली। परन्तु जयललिता के नेतृत्व में अन्नाद्रमुक द्वारा समर्थन वापस लिए जाने के कारण सरकार लोकसभा में विश्वासमत के दौरान एक वोट से गिर गई, जिसके पीछे वह अनैतिक आचरण था, जिसमें उड़ीसा के तत्कालीन कांग्रेसी मुख्यमंत्री गिरिधर गोमांग ने पद पर रहते हुए भी लोक सभा की सदस्यता नहीं छोड़ी तथा विश्वासमत के दौरान सरकार के विरूद्ध मतदान किया। कांग्रेस के इस अवैध और अनैतिक आचरण के कारण ही देश को पुनः आम चुनावों का सामना करना पड़ा। 1999 में भाजपा 182 सीटों पर पुनः विजय प्राप्त किया तथा राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन को 306 सीटें प्राप्त हुई। एक बार पुनः श्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा-नीत राजग की सरकार बनी।

भाजपा-नीत राजग सरकार ने श्री अटल बिहारी के नेतृत्व में विकास के अनेक नये प्रतिमान स्थापित किये। पोखरण परमाणु विस्फोट, अग्नि मिसाइल का सफल प्रक्षेपण, कारगिल विजय जैसी सफलताओं से भारत का कद अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर ऊंचा हुआ। राष्ट्रीय राजमार्गों का निर्माण, सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार, शिक्षा एवं स्वास्थ्य में नयी पहल एवं प्रयोग, कृषि, विज्ञान एवं उद्योग के क्षेत्रों में तीव्र विकास के साथ-साथ महंगाई न बढ़ने देने जैसी अनेकों उपलब्धियां इस सरकार के खाते में दर्ज हैं।

भारत-पाक संबंधों को सुधारने, देश की आंतरिक समस्याओं जैसे नक्सलवाद, आतंकवाद, जम्मू एवं कश्मीर तथा उत्तर पूर्व के राज्यों में अलगाववाद पर कई प्रभावी कदम उठाए गये। राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता को सुदृढ़ कर सुशासन एवं सुरक्षा को केन्द्र में रखकर देश को समृद्ध एवं समर्थ बनाने की दिशा में अनेक निर्णायक कदम उठाये गए। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी एवं उपप्रधानमंत्री श्री लालकृष्ण आडवाणी के नेतृत्व में राजग शासन ने देश में विकास की एक नई राजनीति का सूत्रपात किया।

भारतीय जनता पार्टी की वर्तमान स्थिति

आज भाजपा देश में एक प्रमुख राष्ट्रवादी शक्ति के रूप में उभर चुकी है एवं देश के सुशासन, विकास, एकता एवं अखंडता के लिए कृतसंकल्प है। 10 साल पार्टी ने विपक्ष की सक्रिय और शानदार भूमिका निभाई। 2014 में श्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में देश में पहली बार भाजपा की पूर्ण बहुमत के साथ सरकार बनी, जो आज 'सबका साथ, सबका विकास' की उद्घोषणा के साथ गौरव सम्पन्न भारत का पुनर्निर्माण कर रही है। राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री अमित शाह के नेतृत्व में भाजपा लगभग 11 करोड़ सदस्यों वाली विश्व की सबसे बड़ी राजनैतिक पार्टी बन गयी है। 26 मई, 2014 को श्री नरेंद्र दामोदरदास मोदी ने भारत के प्रधानमंत्री के तौर पर शपथ ग्रहण किया। मोदी जी के नेतृत्व में भाजपा सरकार ने कम समय में ही अभूतपूर्व उपलब्धियां हासिल की हैं। उन्होंने विश्व में भारत की गरिमा को पुनः स्थापित किया, साथ ही राजनीति पर लोगों के विश्वास को फिर से स्थापित किया। अनेक अभिनव योजनाओं के माध्यम से नए युग की शुरुआत की। अन्त्योदय, सुशासन, विकास एवं समृद्धि

के रास्ते पर देश बढ़ चला है। आर्थिक और सामाजिक सुधार सुरक्षित जीवन जीने का मार्ग उपलब्ध करा रहे हैं। किसानों के लिये ऋण से लेकर खाद तक की नयी नीतियां जैसे प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना, सॉयल हेल्थ कार्ड आदि ने कृषि के तीव्र विकास की अलख जगायी है। ये नया युग है सुशासन का। चाहे आदर्श ग्राम योजना हो, स्वच्छता अभियान या फिर योग के सहारे भारत को स्वथ्य बनाने का अभियान, इन सभी कदमों से देश को एक नयी ऊर्जा मिली है।

भाजपा की मोदी सरकार ने 'मेक इन इंडिया', 'स्किल इंडिया', अमृत मिशन, दीनदयाल ग्राम ज्योति योजना, डिजिटल इंडिया जैसी योजनाओं से भारत को आधुनिक और सशक्त बनाने की दिशा में मजबूत कदम उठाया है। जनधन योजना, बेटी बचाओ-बेटी पढाओ, सुकन्या समृद्धि योजना जैसी अनेक योजनाएं देश में एक नयी क्रांति का सूत्रपात कर रही हैं। भाजपा सरकार ने देशवासियों को विश्व की सबसे बड़ी सामाजिक सुरक्षा योजना का उपहार दिया है।

भारतीय राजनीति में भारतीय जनता पार्टी का योगदान

राष्ट्रीय अखण्डता, कश्मीर के भारत में पूर्ण विलय, कबाइली वेश में पाकिस्तानी आक्रमण के प्रतिकार, परमिट व्यवस्था एवं धारा 370 की समाप्ति एवं पृथकतावाद से निरन्तर संघर्ष करने वाली एकमात्र पार्टी भारतीय जनसंघ या भाजपा है, अन्यथा कश्मीर का बचना कठिन था। गोवा मुक्ति आंदोलन, सत्याग्रह एवं बलिदान। जैसे बहुत दबाव के बाद ही सरकार ने सैनिक कार्यवाही की। बेरुबाड़ी एवं कच्छ समझौते हमारी राष्ट्रीय अखण्डता के लिए चुनौती थे, भाजपा ने इस चुनौती का सामना किया। आज भी देश में राष्ट्रीय अखण्डता के मुद्दे उठाना पृथकतावाद से जूझना एवं इस निमित्त समाज को निरन्तर जाग्रत रखने का काम भाजपा ही कर रही है। देश को परमाणु शक्ति सम्पन्न कर भारत पर हमलों की हिमाकत करने वालों को अटलजी की सरकार ने सीधा संदेश दिया।

भारतीय लोकतंत्र का विकास एवं रक्षा

प्रथम चरण में जब स्वतंत्रता आंदोलन के सभी नेता सत्ता पक्ष में जा बैठे थे, विपक्ष या तो था ही नहीं या राष्ट्रभक्ति से शून्य वामपंथियों के पास था तब जनसंघ ने चुनौती को स्वीकार किया तथा भारत के लोकतंत्र को भारतीय जनसंघ के रूप में सबल विपक्ष दिया। 1967 में जनसंघ दूसरा बड़ा दल बन गया था। चुनाव सुधार के मुद्दे उठाने वाला एकमात्र राजनीतिक दल जनसंघ या भाजपा ही है। लोकतांत्रिक मर्यादाओं को भारतीय जनता पार्टी ने बल दिया और उनका उल्लंघन नहीं होने दिया। आपातकाल के प्रतिकार की कहानी हमारी लोकतंत्रात्मक निष्ठा को पुष्ट करती है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के नेतृत्व में जो विपक्ष उभरा, वही विकल्प बनने में भी सक्षम था। श्री अटल बिहारी वाजपेयी एवं श्री नरेन्द्र मोदी भारतीय लोकतंत्र में विकल्प के नियामक हैं। भारतीय लोकतंत्र के लिए अपेक्षित अखिल भारतीय संगठन एवं नेतृत्व आज केवल भाजपा के पास है।

भारतीय जनता पार्टी की विचारधारा

राजनीति केवल सत्ता प्राप्त करने का साधन नहीं है। समाज को अपेक्षित दिशा में प्रगति पथ पर ले जाना भी उसका कार्य है। इसके लिये संगत दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है, जो संगत विचारधारा से प्राप्त होता है। आज भारत के सभी राजनैतिक दल विचारधारा शून्यता के शिकार हैं। भाजपा सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, एकात्म मानववाद तथा पंचनिष्ठाओं की संगत विचारधाराओं के आधार पर संगठन का नियमन कर रही है। शासन की नीति में भी इनका समुचित प्रतिबिम्बन होगा।

सुशासन

ध्येनिष्ठ कार्यकर्ताओं की शक्ति एवं सरकार का सुनियमन सुशासन की गारंटी है। दस साल का केन्द्रीय शासन एवं प्रदेशों में भाजपा की सरकारों ने अन्य दलों की सरकारों की तुलना में अच्छा शासन दिया है। गत दस वर्षों से श्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में सकारात्मक सुशासन की प्रक्रिया तीव्र गति से चल रही है। व्यवस्थाओं की पुरानी विकृतियों का शमन करने में अभी भी कुछ वक्त लगेगा।

निष्कर्ष

भारतीय जनता पार्टी वोट प्रतिशत के साथ ही संसद और राज्य विधानसभाओं में प्रतिनिधित्व के मामले में देश की सबसे बड़ी राजनीतिक पार्टी है। अगर प्राथमिक सदस्यों की संख्या की बात करें तो यह दुनिया की सबसे बड़ी पार्टी है। इस समय

केंद्र के साथ ही देश के 19 राज्यों में भाजपा की सरकार है। कुछ समय पहले तक यह संख्या 22 थी। पार्टी की बुनियाद श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने 1951 में बनी भारतीय जनसंघ के रूप में डाली थी। हालांकि 1977 में आपातकाल खत्म होने के बाद बनी जनता पार्टी में जनसंघ का विलय कर दिया गया था। 1980 में जनता पार्टी खत्म होने के बाद अटल बिहारी वाजपेयी ने पूर्व जनसंघ के नेताओं के साथ भारतीय जनता पार्टी का निर्माण किया। 1984 के लोकसभा चुनावों में केवल दो सीटें जीतने वाली पार्टी 1996 के संसदीय चुनावों में सबसे बड़े दल के रूप में उभरी और वाजपेयी के नेतृत्व में 13 दिनों की सरकार बनी। फिर 1998 में भाजपा के नेतृत्व में केंद्र में बनी एनडीए सरकार एक वर्ष चली। हालांकि इसके बाद 1999 में हुए संसदीय चुनावों में एनडीए को पूर्ण बहुमत मिला और वाजपेयी के नेतृत्व में बनी सरकार पूर्ण कार्यकाल पूरा करने वाली पहली गैर कांग्रेसी सरकार साबित हुई। हालांकि 2004 के आम चुनाव में भाजपा को हार खानी पड़ी और अगले 10 वर्षों तक उसने संसद में मुख्य विपक्षी दल की भूमिका निभाई। लेकिन 2014 में नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में उसे भारी जीत मिली और पूर्ण बहुमत के साथ केंद्र में सरकार बनी। राष्ट्रवादी सिद्धांतों के साथ जम्मू और कश्मीर के लिए विशेष संवैधानिक दर्जा खत्म करना, अयोध्या में राम मंदिर का निर्माण करना और सभी के लिए समान नागरिकता कानून पार्टी के मुख्य मुद्दे थे। जिसमें अनुच्छेद 370 की समाप्ति के साथ कश्मीर का विशेष संवैधानिक दर्जा खत्म हो अन्य राज्यों के समान की स्थिति प्राप्त हुआ और अयोध्या में न्यायालय के आदेश से राम मंदिर का निर्माण का मार्ग प्रशस्त हुआ। अब देश में समान नागरिक कानून के लिए मार्ग प्रशस्त हो रहा है।

आधुनिक राजनीति में भारतीय जनता पार्टी इंडियन नेशनल कांग्रेस के साथ भारत की मुख्य राजनीतिक दलों में से एक है। वस्तुतः 1980 में बनी भारतीय जनता पार्टी भारतीय जनसंघ से निकली है। जिसे 1951 में हिंदू राष्ट्रवाद को बढ़ावा देने और इंडियन नेशनल कांग्रेस की पॉलिसी, खासकर अल्पसंख्यक समूह (माइनॉरिटी ग्रुप्स) के प्रति उसके नजरिए का विरोध करने के लिए बनाया गया था। पार्टी हिंदू राष्ट्रवादी आदर्शों, सामाजिक रूढ़िवाद, फ्री.मार्केट इकॉनमी और मजबूत नेशनल डिफेंस की वकालत करती है। जिसकी प्राप्ति सर्वप्रथम लालकृष्ण आडवाणी और बाद में नरेंद्र मोदी जैसे लोगों की नेतृत्व में भारतीय जनता पार्टी को चुनावी सफलता मिली। खासकर मोदी के 2014 के कैंपेन से, जिससे बहुमत वाली सरकार बनी। तब से भारतीय जनता पार्टी ने खुद को भारतीय राजनीति में एक बड़ी ताकत के तौर पर स्थापित किया हैए और सदस्यता के हिसाब से दुनिया का सबसे बड़ा राजनीतिक संगठन होने का दावा किया है। इसकी पॉलिसी में बैंकिंग, सैनिटेशन और रियल एस्टेट रेगुलेशन तक पब्लिक एक्सेस बढ़ाने के मकसद से पहल शामिल हैं। निश्चय ही पार्टी का उदय भारतीय समाज में एक बड़े बदलाव को दिखाता है, जिसमें हिंदू सांस्कृतिक मूल्य और राष्ट्रीय पहचान पर जोर दिया गया है। सच तो यह है कि अपनी सफलताओं के बावजूद, भारतीय जनता पार्टी को भारत के अंदर धार्मिक अल्पसंख्यक और धर्म निरपेक्षता के प्रति अपने नजरिए को लेकर आलोचना का भी सामना करना पड़ रहा है। तथापि अपनी दृढ़ विचार शक्ति एवं विचारधारा पर आगे बढ़ते हुए राष्ट्रीय की भावना से जनता को आकर्षित करने का सफल प्रयास कारगर हो रहा है।

संदर्भ सूची

1. गुरूदास आहूजा, भारतीय राजनीति भा० ज० पा० का आगमन दिल्ली 1996, पेज-24
2. अटल विहारी वाजपेयीः कुछ भाषण तथा कुछ लेख, दिल्ली, 1996, पृ0 226
3. गीतापुरीः भारतीय जनसंघः आर्गेनाइजेशन एण्ड आइडियोलॉजी, स्टर्लिंग पब्लिकेशन, प्राइवेट लि0 नई दिल्ली।
4. हार्टस हार्टमैन, पोलिटिकल पार्टीज इन इण्डिया, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 2017, पृ0-117
5. डॉ० लक्ष्मी मल्ल सिंघवी का शोध पत्र- 'भारत के राजनीतिक दलः नीतियाँ एवं कार्यक्रम संवैधानिक एवं संसदीय अध्ययनः नई दिल्ली, 1972 पेज-144-45